दूरस्थ शिक्षा

स्व.अध्ययन सामग्री

पाठ्यक्रम का नाम – एम.ए. हिन्दी उत्तरार्ध

वर्ष – द्वितीय

प्रश्न–पत्र क्रमांक – 6

प्रश्न–पत्र का शीर्षक – आधुनिक कथा साहित्य

म.प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल
राजा भोज मार्ग, कोलार रोड, भोपाल

दूरस्थ शिक्षा

स्व–अनुदेशात्मक सामग्री

पाठ्यक्रम का नाम	–	एम.ए. हिन्दी उत्तरार्ध
वर्ष	–	द्वितीय
प्रश्न–पत्र क्रमांक	–	6
प्रश्न–पत्र का शीर्षक	–	आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक

म.प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल

राजा भोज मार्ग, कोलार रोड, भोपाल

पाठ्यक्रम का नाम– एम.ए. हिन्दी उत्तरार्ध

प्रश्न पत्र – षष्टम

दूरस्थ शिक्षा

स्व–अनुदेशात्मक सामग्री

म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रथम मुद्रण – 2013

विश्वविद्यालय – म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

पाठ्यक्रम – एम. ए. हिन्दी

प्रश्न पत्र क्रमांक – छः

इकाई लेखक – (1) **डॉ. छाया पाठक**

पूर्व प्राध्यापक–हिन्दी
डी.ए.वी. कॉलेज, भोपाल (म.प्र.)

(2) **डॉ. लोकेश खरे**

पूर्व सहायक प्राध्यापक–हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर कॉलेज, टीकमगढ़ (म.प्र.)

(3) **प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल**

निदेशक–साहित्य अकादमी, भोपाल

(4) **डॉ. धीरेन्द्र शुक्ला**

विभागाध्यक्ष – हिन्दी
शासकीय महात्मा गाँधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटारसी, मध्यप्रदेश

संपादक – **डॉ. प्रेम भारती**

समन्वय समिति – (1) **डॉ. आभा स्वरूप**

(निदेशक, मुद्रण एवं अनुवाद)

– (2) **मेजर प्रदीप खरे (से.नि.)**

सलाहकार (म.प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

सभी अधिकार सुरक्षित। म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना इस रचना का कोई भी अंश किसी भी तरह से पुनः निर्माण, मिमियोग्राफ या अन्य विधियों द्वारा नहीं किया जा सकता। दूरस्थ शिक्षा परिषद् के अनुदान द्वारास्व–अनुदेशात्मक सामग्री का लेखन व मुद्रण कार्य किया गया हैं।

इस पुस्तक में छपे विचारलेखक/लेखकों के हैं, न कि म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय के।

म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों की जानकारी हेतु सम्पर्क करें:–

कुलसचिव, म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, राजा भोज मार्ग (कोलार रोड) चूनाभट्टी, दामखेड़ा, भोपाल–462016

प्रकाशक–कुलसचिव, म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

दूरभाष– 0755–2492093

तरंगई–मेलस्थिति–www.bhojvirtualuniversity.com.

पाठ्यक्रम परिचय : आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक

एम.ए. (उत्तरार्द्ध) के पाठ्यक्रम में षष्ठम् प्रश्न–पत्र के अन्तर्गत आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक शामिल है। इसमें गद्य साहित्य की दो महत्वपूर्ण विधाएं जो आधुनिक कथा साहित्य के अन्तर्गत ली गई हैं, वे हैं 'उपन्यास' और 'कहानी'।

(क) उपन्यास के अन्तर्गत प्रेमचन्द्र का 'गोदान' तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'अनामदास का पोथा' दो उपन्यास शामिल किए गए हैं।

(ख) कहानी के अन्तर्गत, कफन, पत्नी, गेंगरीन, गदल, लालपान की बेगम, गुलकी बानो, पहाड़, दिल्ली में एक मौत, वापसी नौ कहानियां हैं।

(ग) नाटक के अन्तर्गत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'अंधेर नगरी' तथा मोहन राकेश कृत 'आधे अधूरे' शामिल है।

उपर्युक्त तीनों ही विधाएं आधुनिक काल में साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। मनुष्य की प्रकृति, परिवेश, परिस्थिति तथा चिंतन की विकास प्रक्रिया को इन माध्यमों द्वारा सहज ही जाना जा सकता है। अतः इनका अध्ययन करना अनिवार्य है। ये रचनाएं उच्च कोटि की हैं।

उपर्युक्त पाठ्यक्रम में शामिल उपन्यास, कहानी तथा नाटकों को सात खण्डों में विभाजित किया गया है, जिनका विस्तृत विवरण इकाईवार यहाँ दिया जा रहा है :–

खण्ड–1 (उपन्यास गोदान)

1. प्रेमचन्द्र की उपन्यास कला
2. प्रेमचन्द्र और गोदान
3. गोदान में शोषण संस्कृति

खण्ड–2 (उपन्यास गोदान)

4. गोदान : चरित्र चित्रण एवं प्रमुख पात्र
5. गोदान की भाषा–शैली एवं पाठक
6. गोदान के महत्वपूर्ण अवतरणों की व्याख्या

खण्ड–3 (उपन्यास अनामदास का पोथा)

7. हजारी प्रसाद द्विवेदी की उपन्यास कला
8. अनामदास का पोथा : उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन
9. उपन्यास के प्रमुख अंशों की व्याख्या

खण्ड–4 (कहानी)

1. कफन – प्रेमचन्द्र
2. पत्नी – जैनेन्द्र कुमार
3. गेंगरीन – अज्ञेय
4. दिल्ली में एक मौत – कमलेश्वर

खण्ड–5 (कहानी)

5. लालपान की बेगम – फणीश्वरनाथ
6. वापसी – उषा प्रियम्बदा
7. गुलकी बन्नो – धर्मवीर भारती
8. गदल – रांगेय राघव

खण्ड–6 (नाटक 'अंधेर नगरी')

1. भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा
2. अंधेर नगरी में नाट्य तत्व एवं युगबोध
3. (अ) अंधेर नगरी का प्रहसन स्वरूप एवं परिकल्पना
   (ब) व्याख्या खण्ड

खण्ड–7 (नाटक 'आधे अधूरे')

1. मोहन राकेश का नाट्य कर्म, चिन्तन एवं आधे अधूरे
2. नाट्य तत्वों की दृष्टि से आधे अधूरे
3. (अ) यथार्थवादी दृष्टि एवं युगबोध के परिप्रेक्ष्य में आधे अधूरे
   (ब) व्याख्या खण्ड

इस प्रकार इस पाठ्यक्रम में कुल 23 इकइयाँ शामिल हैं। इनका अध्ययन कर आप न केवल गद्य की इन तीनों विधाओं की रचनागत विशिष्टताओं को समझने में समर्थ होंगे अपितु आप पाठ्यक्रम में शामिल साहित्य का रसास्वादन भी कर सकेंगे।

म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

प्रथम खण्ड : **प्रेमचन्द्र और गोदान**

इकाई–1 प्रेमचन्द्र की उपन्यास कला

इकाई–2 प्रेमचन्द्र और गोदान

इकाई–3 गोदान में शोषण संस्कृति

लेखक

डॉ. छाया पाठक

पूर्व प्राध्यापक–हिन्दी

डी.ए.वी. कॉलेज, भोपाल (म.प्र.)

सम्पादक

डॉ. प्रेम भारती

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्रः **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

प्रथम खण्डः **प्रेमचन्द्र और गोदान**

खण्ड परिचय–

एम.ए. उत्तरार्द्ध (हिन्दी) का षष्ठम् प्रश्न–पत्र 'आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक' के अन्तर्गत खण्ड एक सम्राट प्रेमचन्द्र के बहुचर्चित उपन्यास 'गोदान' पर केन्द्रित है। इसका कथानक भारतीय किसान की व्यथा–कथा पर आधारित है। सरल–सुगम भाषा में संग्रहित यह उपन्यास तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों पर प्रकाश डालता है एवं समाज–सुधार की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत खण्ड में तीन इकाइयाँ हैं :–

प्रथम इकाई 'प्रेमचन्द्र और उपन्यास' में प्रेमचन्द्र के उपन्यास विषय चिन्तन से अवगत कराता है। इस इकाई में समकालीन आलोचकों का अवलोकन और समीक्षात्मक मंथन उपलब्ध है।

द्वितीय इकाई में 'प्रेमचन्द्र और गोदान' के अन्तर्गत गोदान की कथावस्तु से तो परिचय कराया ही गया है, उसके समसामयिक आन्दोलनों और विचार–धाराओं के प्रभाव का भी विवेचन किया गया है।

तृतीय इकाई 'गोदान में शोषण संस्कृति' के अन्तर्गत किसान के जीवन को प्रभावित करने वाले सामंती, साहूकार, पूँजीवादी, नौकरशाही, धार्मिक भावनाओं आदि के शोषण पर विमर्श उपलब्ध है।

इकाइयों में बोध प्रश्न दिए गए हैं। अध्ययन कर सही उत्तर देने का प्रयास कीजिए।

इकाइयों के अंत में संदर्भ–ग्रंथों की सूची भी प्रस्तुत की गई है, जिनका अध्ययन विषयों की विस्तृत विश्लेषण के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

इकाई–1

प्रेमचन्द्र और उपन्यास

सरंचना –

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 प्रेमचन्द का व्यक्तित्व विधायक परिवेश

1.3 व्यक्तित्व–दर्शन

1.4 प्रेमचन्द की जीवन दृष्टि

1.5 प्रेमचन्द की उपन्यास दृष्टि

1.6 उपन्यास क्या है?

1.7 उपन्यास में आदर्श और यथार्थ

1.8 आदर्शवाद और यथार्थवाद

1.9 आदर्शोन्मुखा यथार्थवाद

1.10 इकाई सारांश

1.11 अपनी प्रगति जाँचिए

1.12 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1.13 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.14 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में साहित्य में उपन्यास की परिभाषा और उसे प्रभावित करने वाले कारकों पर विमर्श किया गया है। इस इकाई के पठन के बाद आपको ज्ञात होगा –

- प्रेमचन्द का व्यक्तित्व
- साहित्य का उद्देश्य
- उपन्यास का लक्ष्य
- प्रेमचन्द का व्यक्तित्व
- प्रेमचन्द की जीवन दृष्टि
- प्रेमचन्द के उपन्यास विषयक विचार
- उपन्यास में आदर्श और यथार्थ का समावेश
- उपन्यास पर समकालीन विचारधाराओं का प्रभाव

1.1 प्रस्तावना

किसी भी साहित्यकार की रचना को उसके सम्पूर्ण वास्तव में समझने के लिए आवश्यक है कि उसके विषय में साहित्यकार की क्या अपेक्षाएँ हैं। प्रस्तुत अध्ययन चूँकि प्रेमचन्द के उपन्यास से संबंधित है, अतः उपन्यास को लेकर प्रेमचन्द के विचार क्या विवाद हैं ? इससे अभिज्ञ होना आवश्यक है। इस दृष्टि से उपन्यास कौशल से संबंधित विचारों से आप अवगत होंगे। प्रेमचन्द ने कहानियों और उपन्यासों की रचना इतनी तरलता और प्रखरता से की कि उन्हें 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से विभूषित कर साहित्य संसार गौरवान्वित है। जाहिर है कि उनकी अपनी सोच और समझ इनमें विनिविष्ट है। अतः उनकी रचना–प्रक्रिया पर उनके अपने विचार महत्वपूर्ण हैं और इन्हीं विचारों के आध ार उनके उपन्यासों की समालोचना समीचीन है। उनके उपन्यास कौशल और तात्विक चिन्तन का सही अर्थों में तभी तर्क–संगत और न्याय–संगत विवेचना हो सकता है।

1.2 प्रेमचन्द का व्यक्तित्व विधायक परिवेश

परिवार के प्रति उनकी चाहना इतनी उत्कट थी कि उन्हें छोड़कर कहीं जाने का भी मन नहीं होता था। "मुंशी जी के प्राण अपने बच्चें में बसते थे।... इसी प्रेम की डोर से उन्होंने हार लड़के को अपने संग बांध लिया था। पढ़ना–पढ़ाना और अपना लिखना बस उनकी सारी जिन्दगी थी, एकदर्शन बंधी–टंकी पूर्ण–संयत। खेलकूद से उन्हें कोई मतलब न था। हां मैच देखना अच्छा लगताथा, खासकर फुटबाल का डिबोट और ड्रामा वगैरह में दिलचस्पी लेते, मगर बहुत पेश–पेशन रहते।... पढ़ने–लिखने का जो वक्त बचता, वह उने कलम का था। इसीलिए मास्टरों के आपसी रगड़ो–झगड़ों से उन्हें सरोकार न रहता और न तरक्की–तनज्जुली की अनन्त चर्चाओं में कुछ खास रस मिलता।

हर रचनाकार अपने समय में जीता है। वह राजनीति से कैसे निरपेक्ष रह सकता है, प्रेमचन्द की समकालीन राजनीति गहरी रुचि थी। उनके मित्र और 'जमाना' के संपादक, नवाबराय को प्रेमचन्द का नाम देने वाले दयानारायण निगम सचिवीय हो चुके थे। सरकार से सहयोग करने ी उनकी नीति बन गई थी और इसी नीति के चलते उन्होंने प्रेमचन्द को सरकार द्वारा 'वार जर्नल' जारी किए जाने पर उसके उर्दू संस्करण का दायित्व करने का निवेदन भी किया था। प्रेमचन्द का विवेकानन्द दीक्षित मन इसे कैसे स्वीकार सकता था, उन्होंने इंकार कर दिया। उन्होंने निगम साहब को लिख भेजा, 'अब मैं सरकारी अखबार नवींस क्या बनूंगा! टगर अखबार नवीस बनना तकदीर में है तो गैर–सरकारी, आजाद अखबार नवीस होऊँगा। जंग के मुताल्लिक मजमीन लिखने की भी इस वक्त मुझे फुसीत नहीं है। बस, अपने इसी रतारे–कदीप पर चलूंगा। बी.ए. करके किसी प्राइवेट स्कूल की मास्टरी और एक अच्छे अखबार की एडीटरी और कुछ पब्लिक काम। यही मेराजे–जिन्दगी है। अखबार मजदूरों–किसानों का हायी और मुआविन होगा।" निगम साहब ने अपनी बेटी की शादी में आमंत्रित किया। चूंकि उसमें अनेक अंग्रेज दोस्त भी दावत में आमंत्रित थी, अतः प्रेमचन्द उस दावत में शामिल नहीं हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हुआ। सरकार की ओर से नवंबर, 1918 में विजयोल्लास मनाया गया। धनपतराय सरकारी नौकर थे, फिर भी शरीक नहीं हुए। स्पष्टतः धनपतराय भले ही नौकर हो, नवाबराय अथवा प्रेमचन्द सरकारी कर्मचारी नहीं है। प्रेमचन्द की अस्मिता के द्योतक देश–प्रेम, स्वाभिमान, स्वाधीन–चेता प्रवृत्ति और किसानों–मजदूरों के प्रति अदम्य सहानुभूति यहीं अपनी प्राकृतिक चमक के साथ झलक उठते हैं। वह कांग्रेस की सभाओं और बैठकों में बराबर जाते, जब–तब दतर भी हो आया करते थे। गांधी जी के रानैतिक चिन्तन और दर्शन में उनकी निष्ठा दृढंतर हो रही थी। ताल्सताय के साहित्य से सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि की समझ पहले ही प्राप्त कर चुके थे।

कर्मठता उनका स्व–भाव बन गया था। उनका कर्मयोगी चित्त उन्हें थकने ही नहीं देता था, विश्राम की तो वह सोच ही नहीं सकते थे। उनके लिए जिन्दगी का मतलब हमेशा एक ही रहा–काम, काम, काम। काम करने में उन्हें मजा आता है। उनके पुत्र अमृतराव लिखते हैं, "मुंह अंधेरे ही वह (प्रेमचन्द का व्यक्ति) उठ जाता है। फारिश होकर

घंटे भर के लिए घूमने चला जाता है। नौकर से काम लेना उसे पसन्द नहीं है। अपना बिस्तर वह खुद उठा लेता है। अपनी धोती वह खुद छांट लेता था... रस्सी भर शर्म नहीं है उसे कोई काम करने में। पत्ती तोड़कर बकरी के सामने डाल देता है। गाय की सानी बोर देता है। अपने कमरे में, बाहर के बरामदे में, बाहर के बरामदे में झाड़ भी लगा लेता है। चूल्हा जला देता है, क्योंकि पत्नी बीमार है और चाची को यह काम पसन्द नहीं।''

1.3 व्यक्तित्व–दर्शन

प्रेमचन्द अनूठे व्यक्तिव के धनी थे। सहजता और सरलता एक सच्चे भारतीय मनीषि की भांति उनके रग–रग में भरी थी। अपने बारे में उनका स्वयं का कथन है कि 'मेरा जीवन सपाट, सममतल मैदान है, जिसमें कहीं–कहीं राउढे तो हैं, टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खण्डहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों के शौकीन हैं, उन्हें तो यहां निराशा ही होगी।'' जो सज्जन पहाड़ों के शौकीन हैं कहकर वह संकेत कर देते हैं कि आभिजात्य के स्वभाव और चरित्र की किसी भी प्रकार से प्रकृति और प्रवृत्ति उनमें नहीं है। आम भारतीय की तरह उनके जीवन में सीधा–सीधा, सरल और सहज जीवन चरमाण है। स्पष्टतः प्रेमचन्द का जीवन तत्कालीन शासन में जीते–जागते साधारण भारतीय किसान का है जिसमें छल–छद्म, आडम्बर अथवा झूठ–फरेब के लिए कोई स्थान नहीं है। वहां सहना–ही सहना है और इस सहने के बीच हर विपत को जीवन में अनथक जीना है। उनके पुत्र अमृतराय ने सही ही कहा है कि प्रेमचन्द की सरलता में 'कुछ तो इस देश की पुरानी मिट्टी का संस्कार है, कुछ उसका नैसर्गिकशील है, संकोच है, कुछ उसकी गहरी जीवन–दृष्टि है और कुछ उसका सच्चा आत्मगौरव है जो किसी तरह के आत्मप्रदर्शन या विज्ञापन को उसके नजदीक घटिया बना देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनके व्यक्तित्व में प्रकृति के आत्मीय संसर्ग में जीने वाले आध्यात्मिक, नैतिक, परदुःखकालर साधु का अाििनवेश है। प्रकृतितः मनुष्य जो है, वही होने, दिखने और रहने का मंच उनके व्यक्तित्व का मूल मंत्र है। इसीलिए जब कभी वह लोगों के बीच में आ बैठते और वहां एकत्र सबकी कुशलक्षेम, पता–ठिकाना, निवास आदि पूछते, किसी हंसी की बात पर जोरदार खुलकर ठहाका मारते, कभी बच्चों जैसी ऊधम–पच्ची और सहज मुस्कान विखेरते तो सहज ही किसी को अनुमान लगाना मुश्किल होता कि यह व्यक्ति वही कलम का सिपाही प्रेमचन्द है। उनके देहान्त के समय इसीलिए जब शमशान की ओर अर्थी ले जाते जन–समूह के बीच साहित्यिकों का दल लोगों ने देखा तो फुसफुसाए बिना न रह सके कि लगता है, कोई मास्ट नहीं रहा।

व्यक्तित्व का निर्माण व्यक्ति के पारिवारिक और सामाजिक परिवेश में आरंभ होता है। इसकी चर्चा करना प्रासंगिक है–

1.3.1 पारिवारिक और सामाजिक परिवेश–

वह समय ही ऐसा था कि उत्तरप्रदेश ने मदरसों में उर्दू–फारसी का अध्ययन–अध्यापक आम था। धनपत्तराय ने अपने बाल्यकाल में आठ साल तक फारसी पढ़ी। धनपतराय प्रेमचन्द का औपचारिक नाम है। घर में उन्हें नवाब कहकर पुकारा जाता था। तदुपरान्त अंग्रेजी पढ़ी और बनारस के कालेजिएट स्कूल से एण्ट्रेन्स पास की। इसीलिए धनपतराय प्रमाण–पत्रों की बिना पर शैक्षिक प्रमाणों और नौकरी तक सीमित रहा। कथाकार के रूप में तो वह 'नवाबराय' के रूप में ख्यातनाम हुए।

मुंशी अजायबलाल अर्थात् प्रेमचन्द के पिता डाकखाने में कार्यरत थे। वह समय ही कुछ और था। दस रुपये माहवार से सरकारी सेवा शुरू हुई, निवृत्त होते तक चालीस रुपये तक पहुंच गई। जीवन यापन के लिए वेतन पर्याप्त था, एक रुपये मन चावल, अन्य खाद्य एवं परिधान सामग्री भी तुलनात्मक रूप वाजिव दाम में उपलब्ध थी किन्तु यह आय संयुक्त परिवार की आवश्यकताओं की तुलना में न काफी थी। अतः मध्यवर्गीय किसान की जैसी रहन–सहन होती है, गुजारा होता है उसी तरह प्रेमचन्द का बचपन गुजरा। मध्यवर्गीय किसान का बचपन जैसा होता है, वैसा ही बचपन

धनपतराय ने बिताया। गुल्ली–डण्डा, खेलना, ढेले उछालकर आम तोड़ लेना, खेतों में घुसकर ऊख उखाड़ लेना, डाक मुंखी के बेटे थे, डाकिया के कन्धों पर सवारी कर लेना, चुहलवाजी और मटरगस्ती करने के अलावा मौलवी साहब के पास फारसी पढ़ने जाना, उनकी थोड़ी–मोड़ी सेवा करना उनके बचपन में अभिन रूप से घुला–मिला था।

शिक्षा फारसी में शुरू हुई थी। अतः हिन्दी से वास्ता ही नहीं पड़ा। हिन्दी बिलकुल भी नहीं जानते थे। तेरह बरस की उम्र ही कोई उम्र है फिर भी जैसे वूत के वैर पालकों में दिखने लगती है, भावी महान कथाकार के लक्षण उसी उम्र में प्रकट होने लगे–कभी कभार घर से पैसे मार देना और कभी कभार सौदा पने से भी पैसे चटकर लेना, यह कर लेने के बाद मार खाना, पिटना और भूल जाना। यही तो कथाकार को चरित्र और उसके मनोभावों से सम्पूरित करता है। इन्हीं क्रिया–कलापों के बीच हल्की–फुल्की रचना स्वलेना।

1890 के आसपास उनकी मां का स्वर्गवास हो गया, सौतेली मां आई। मां का रूप–स्वरूप आंखों के सामने झूला। मां और सौतेली मां के होने और उनके बीच न होने का अहसास जीवन–संवेदना के सच से साक्षात्कार करा गया। पात्रों के नामकरण, सृजन और उन्नयन के लिए प्रभूत कच्चा माल मिल गया। 1893 में मिशन स्कूल में तीसरे दर्जे में दाखिल थे। सौतेली मां के आते ही उपेक्षा का अनुभव तो करने ही लगे थे, स्वभाव में विवाह ने घर कर लिया। मौलाना शाह, रतननाथ सरकार मिर्जा रुसवा, मोहम्मद अली की कहानियां, उपन्यासों के अनुवाद, पुराणों के उर्दू अनुवाद, तिलिस्मे–होशरुबा के कई खण्ड पढ लिए। कथासंसार और ज्ञान–विज्ञान के हथियार मिल गया। कथा–सांसर उनके श्वासों में रम गया। कथा–लेख्न जीवन जीने की कला बन गया।

प्रेमचन्द ने गोरखपुर और बनारस में बिताए अपने जीवन की विपन्नता का उल्लेख किया है– ''पाँव में जूतेथे देह पर सावित कपड़े न थे। हेडमास्टर ने फीस माफ कर दी थी। इम्तहान सिर पर था और मैं बाँस के फाटक पर एक लड़के को पढ़ाने जाता था। पढ़ाकर छह बजे छुट्टी पाता। वहां से मेरा घर देहात में पाँच मील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुंच पाता।'' अभाव का अनुभव, कुछ करने की लालसा और उत्तरदायित्व की भावना का यहीं से पल्लवन शुरू हुआ। यह जीवनानुभव कल्पना से संयुक्त होकर विभिन्न पात्रों के सृजन में सहायक होगा। इसी समय 15 वर्ष की उम्र में नवाब का ब्याह भी हो गया। पत्नी सो कुरूप थी ही, स्वभाव की भी कठोर। सास–बहू के बीच होने वाली कलह ने उन्हें निश्चित रूप से नारी स्वभाव के अन्तर्गत होने वाले प्राकृतिक राय–द्वेष, समझ, निरक्षरता और शिक्षित होने के महत्व की कल्पनाशीलता प्रदान की। जीवनानुभवों का यह भण्डार अनिवार्यतः स्वनाकार का वह अर्जित है जो निरंतर व्यय करते रहने पर अक्षय बना रहता है। स्वाभाविक है कि नवाब का पत्नी की ओर से मुंह फिर गया। 1898 में जब नौकरी लगी तब साथ नहीं ले गया। एक तरह से नाता टूट ही गया जो पत्नी के खुद होकर चले जाने के कारण परिपक्व हो गया। 1897 में पिता जी गुजर गए। प्रेमचन्द सत्रह वर्ष के ही थे। जीवन का यह आघात जीवन के वास्तविक संवेदना से भर गया। 1898 में मेट्रिक पास की। गणित में दक्षता के अभाव के कारण इण्टर में दाखिला हो सका। ट्यूशन और उधारी पर जिन्दगी का ठेला चलने लगा। ट्यूशन और उधारी का सिलसिला पहले से ही चल रहा था। 'फसाना–ए–आजाद' चन्द्रकान्ता सन्तति और बंकिमचन्द चटर्जी के उपन्यासों के उर्दू अनुवाद पढ़ डाले। आमदनी का कोई जरिया नहीं, विधवा सौतेली मां, सौतेला छोटा भाई और श्रीमती के भरण–पोषण का दायित्व। दैवयोग ही कहेंगे कि इसी साल उन्हें मास्टरी मिल गई। अठारह रुपये मासिक वेतन था। वह समय ही कुछ और था। गुजर–बसर के लिए पर्याप्त था किन्तु परिवार के खर्चों की पूर्ति कठिनाई से ही हो पाती थी। ट्यूशन करना और उधार लेना विवसता बन गया था। दुर्दैव ने साथ न छोड़ा– गोरों की टीम और उनके स्कूल की टीमों में फुटबाल मैच हुआ। विवाद हुआ। अन्य छात्रों के साथ मिलकर गोरों की पिटाई कर दी। साल भर भी नौकरी नहीं चली। निकाल बाहर कर दिए गए। अधिक दिनों प्रतीक्षा नहीं करना पड़ी। बहराइच के जिला स्कूल में नौकरी लग गया। तबादला प्रतापगढ़ हो गया। आर्थिक दृष्टि से कोई खास फायदा नहीं हुआ। आर्थिक तंगी पूर्ववत् थी। ट्यूशन ने पल्ला अभी भी नहीं छोड़ा था किन्तु अब कुछ चैन से गाड़ी चलने लगी। पढ़ने के साथ–साथ लिखने का क्रम सतत् था।

उत्तर भारत में इस समय आर्य–समाज का प्रचार जोरों पर था। बाल–विवाह, बेमेल–विवाह, विधवा–विवाह, विधुर विवाह, जाति–प्रथा, श्राद्ध आदि पर आर्य समाज का वैचारिक पुनजीगरण प्रभाव दिखा रहा था। धनपतराय इससे अप्रभावित कैसे रहते। उसके जलसों में जाते। शिक्षक–प्रशिक्षण (यजर्स ट्रेनिंग) और बी.ए. करने की मन में उत्कृष्टा थी। दो ासल का अवकाश लिया, ट्रेनिंग कॉलेज इलाहाबाद में 1902 में प्रवेश ले लिया। 1904 में परीक्षा पास की, साथ ही हिन्दी और उर्दू की वनीकुलर परीक्षा भी पास कर ली। 1905 में तबादला होकर, कानपुर पहुंचे। कानपुर से उसी समय 'जमाना' निकलना शुरू हुई थी। संपादक–दयानारायण निगम थे। संसर्ग के कारण लिखना उनके जीवन का जैसे उद्देश्य बन गया। 'जमाना' में कहानियां और साहित्यिक टिप्पणियां लिखने लगे। आर्य समाज के प्रभाव ने समस्याओं पर लिखने के जैसे विषयों का आंगार ही उपस्थित कर दिया। कानपुर की उनकी जिन्दगी जिन्दादिली और मस्त–भिजाजी में कटने लगी। गर्मी की छुट्टियों में लमही, अपने गांव जाने र उन्हें विकट दारिद्रय का सामना करना पड़ता। उनके पुत्र अमृतराय का कहना है कि ''कानपुर की जिन्दगी अगर स्वर्ग थी तो घर की वह जिन्दगी नरक। वहां बस स्कूल का काम था और उससे छुट्टी पाई तो दोस्तों की महफिल थी, हंसी–मजाक था, साहित्य चर्चा थी। न कोई फिक्र थी न परेशानी और घर जो आए तो जैसे भिड़ के छत्ते में हाथ मार, दिया हो, ासरी परेशानियां, जिनसे दूर रहने के कारण निजात मिली हुई थी, एकबार भी उनके ऊपर टूट पड़ी।'' दाम्पत्य सुख देखा था न था। विवाहित थे किन्तु वैसे ही जैसे न हुए। दूसरा विवाह करने का निश्चय कर लिया। आर्य समाज का प्रभाव था। विधवा युवती की तलाश थी। 1906 में महाशिवरात्रि के अवसर पर मुंशी देवीप्रसाद की बाल–विधवा कन्या शिवरानी देवीसे कर लिया। बारात में छोटे भाई महताबराय को छोड़कर और कोई रिश्तेदार न था। दो चार दोस्त और हमजोली दयानारायण साथ थे।'' प्रगतिशील होने, लोक विरुद्ध आचरण की जीवनानुभूति के साथ समाज के रूढ़िवादी दकियानूसी विचारों और व्यवहारों का अनुभव प्राप्त हुआ। रचनाकार के लिए चरित्र गठन में भाव–भक्ति की निधि प्राप्त हो गई। धनपतराय उर्फ नवाबराय की जिन्दगी का नया पन्ना खुल गया। लिखने का सिलसिला और तेज हो गया। 'जमाना' में 'रतारे जमाना' शीर्षक से उनका लिखा स्तम्भ देश में घर रहे और बन रहे परिवर्तनों का चिट्ठा प्रस्तुत करता था। इण्डियन नेशन कांग्रेस की स्थापना हो ही चुकी थी। 1905 से 1909 तक कानपुर में रहे। राजनीति में सक्रियता का आह्वान और भागीदारी युवकों में भरपूर थी। प्रेमचन्द की कलम को अजस्र प्रवाह मिल गया। कांग्रेस 'गरम दल' और 'नरमदल' में थे। उनकी राजनैतिक टिप्पणियां तिलक को ही अधिक अभिव्यक्ति देती थी। स्पष्टतः तिलक की सांस्कृतिक राजनैतिक और देश के पुरातन वैभव के गौरव से मण्डित हुए बिना न रह सके।

जून 1909 में वह सब–इंस्पेक्टर हो गए। तबादला कानपुर से हमीरपुर हो गया। इस नौकरी गांव–गांव, स्कूल–दर–स्कूल भ्रमण की भरपूर सुविधा थी। इससे उन्हें देश–दशा और जन–मन को निकट से दोख्ने और पराख्ने का व्यापक अनुभव प्रभप हुआ। यह अनुभव उनक`लेखन की जीवन्तता में सुस्पष्ट है। हमीरपुर ने उन्हें नवाबराय से प्रेमचन्द बना दिया। हुआ यह कि 1908 में 'सोजे–वतन' प्रकाशित हुआ। 'सोजे–वतन' की कहानियों में आविल देशप्रेम में ब्रिटिश सरकार को देश–द्रोह दृष्टिगत हुआ। उन्हें पता लगाते देर न लगी कि लेखक नवाब राय उनका कर्मचारी धनपतराय है। उन्होंने धनपतराय को तलब किया। नौकरी तो जैसे–तैसे बच गई किन्तु लिखने पर पाबन्दी लगा दी गई। एक जागरुक चिन्तक और संवेदनशील रचनाकार लिखना कैसे छोड़ सकता है। एक तरह से यह 'जीव......' ही हुआ। संकट मोल ले लिया, प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे। हमीरपुर में ही उन्हें पेचिस का रोग हो गया। इसका व्यक्ति पर तो प्रभाव पड़ना ही था, व्यक्तित्व भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। 1914 उनका स्थानान्तरण 'बस्ती' हो गया। रोग और प्रबल हो गया। इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, बनारस में कई महिने इलाज कराया। रोग को न हलका होना था, न हुआ। सरकारी नौकरी छोड़ दी, प्रायवेट नौकरी कर ली। पत्र निकालने का मन हुआ, वह कार्यरूप न हो सका। निरीक्षक का काम छोड़क रवह उससे कम वेतन पर स्कूल शिक्षक अवश्य हो गए थे किन्तु मन में जो अध यन–अध्यापन समाया हुआ था, वह जाता कहां? स्कूल की नौकरी, साहित्य–लेखन, उस पर शारीरिक दुर्बलता के बावजूद एफ.ए. कर लिया।

1916 में प्रेमचन्द का जब स्थानान्तरण गोरखपुर हुआ, उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ। पारिवारिक वातावरण सुखद था। लिखने का क्रम निरंतर था। यहां वे महावीरप्रसाद पोद्दार के सम्पर्क में आए। पोद्दार जी की कलकत्ता में 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' नाम की संस्था थी। उन्हें उर्दू से हिन्दी में आने की प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। इसी 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' प्रकाश्न संस्था से उनका पहला कहानी संग्रह 'सप्त सरोज' और 'सेवा सदन' शीर्षक से 'बाजारे–हुस्न' का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित हुआ। 1919 में बी.ए.कर लिया। इसी समय 'प्रेमाश्रम' के नाम से 'गोशा–ए–आफियत' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ। 1921 में गोरखपुर में महात्मा गांधी की विशाल जनसभा हुई। उनके असहयोग के सन्देश में प्रेमचन्द को अभिभूत कर दिया। नौकरी छोड़ने का मन बहुत दिनों से था। कारण की तलाश थी। निमित्त मिल गया। त्यागपत्र दे दिया। 16 फरवरी 1921 को इक्कीस वर्ष की नौकरी की परतंत्रता से स्वतंत्र हो गए। आवास और जीविका उपार्जन का प्रश्न तो सामने आकर खड़ा होना ही था। कुछ दिन महावीर प्रसाद पोद्दार के गांव मानीराम में रहे। प्रेस खोलने का विचार मन में आया किन्तु खोला कपड़े का कारखाना। आठ फरथे थे। चर्खे की भी दुकान खोली। दुकानदारी प्रेमचन्द के वश की बात नहीं थी। कारखाना नहीं चला। मारवाड़ी विद्यालय में प्रधानाध्यापक का कार्यभार सम्हाल लिया। यह नौकरी न चलना थी, न चली। 15 अगस्त को उनके दूसरे पुत्र अमृतराय का जन्म हुआ। 22 फरवरी 1922 को मैनेजर से अनबन हुई। त्यागपत्र दे दिया। 22 मार्च को बनारस की 'मर्यादा' में सम्पूर्ण नन्द के जेल जाने पर स्थानापन्न संपादक बने। मर्यादा में 22 जून तक रहे। काशी विद्यापीठ के हेडमास्टर बन गए। 1 जून 1922 को यह नौकरी भी चलती बनी। अनन्तोगत्वा 1923 में बनारस में सरस्वती प्रेस की स्थापना की। प्रेस निरन्तर नुकसान देता रहा। किसी तरह जिन्दगी चल रही थी। अगस्त 1924 में गंगा पुस्तक माला के साहित्यिक सलाहकार के रूप में लखनऊ पहुंचे। 'चौगाने हस्ती' की रचना हो रही थी। 1925 में वह गंगा–पुस्तकमाला से प्रकाशित हुआ। 29 अगस्त 1925 का गा पुस्तकमाला की एजेन्सी छोड़ दी। बनारस आ गए। लगभग दो वर्ष लखनऊ में रहे। 15 फरवरी 1927 को 'माधुरी' के सह संपादक के रूप में लखनऊ आ गए। मई में बनारस से पत्नी और बच्चे आ गए। 10 जनवरी 1931 को 'नवल किशोर प्रेस' के मालिक विष्णु नारायण भार्गव का स्वर्गवास हो गया। प्रेमचन्द का तबादला संपादक के पद से प्रेस बुकडिपो में कर दिया गया। अक्टूबर 1931 में उन्होंने नवलकिशोर की नौकरी छोड़ दी। पहली बार ल्लिी घूमने आए। फरवरी 1932 में लखनऊ से बनारस लौट आए। बनारस में रहकर 'हंस, 'जागरण' और 'सरस्वती' प्रेस की व्यवस्था करने में जुटे रहे। साहित्य साधना सतत् थी। 1 जून 1934 को अजन्ता सिनेटोन कम्पनी के प्रोप्राइटर एवं अवनानी के निमंत्रण पर बम्बई पहुंचे। 3 अप्रैल 1935 तक कंपनी में रहे। बम्बई में उन्होंने 'गोदान' लिखना शुरू किया था, बनारस आने पर पूरा हुआ। इस समय तक प्रेमचन्द ख्याति की ऊँचाई पर पहुँच चुके थे।

10 अप्रैल 1936 को प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। अध्ययक्षता प्रेमचन्द ने की थी। 'गोदान' प्रकाशित हुआ। स्वास्थ्य गिरता चला गया। 21 जून 1936 को 'आज' कार्यालय में गोर्फी के निधर पर शोक सभ आयोजित थी। प्रेमचन्द अपना लिखा हुआ भाषण भी शोकसभा में नहीं पढ़ पाए। स्वास्थ्य साथ देने से बराबर इंकार किए जा रहे थे। 8 अक्टूबर 1936 को बनारस में बनारसी रंग की छटा प्रेमचन्द अनन्त में विलीन हो गई।

प्रेमचन्द का अपने गांव लमही से होरी की 'मरजाद' की भांति जुड़ा रहा। बचपन लमही में बीता था, नौकरी के सिलसिले गांव से बाहर रहना होता था किन्तु फिर भी गर्मी की छुट्टी में गांव जाना न भूलते थे। गांव में उन्होंने नया घर बनवा लिया था। लखनऊ की नौकरी 1932 में छूटने पर कुछ अधिक समय लमही में बिताने का अवसर मिला। इस काल में वह गांव से जैसे पूरी तरह एकरस हो गए थे। अमृतराय का अवलोकन दृष्टव्य है– 'गांव से बाहर खेतों को जाने का रास्ता मुंशी जी के घर के बगल से गया था। अक्सर सुबह–शाम, वहीं पत्थर की बेंच पर बैठे–बैठे मुंशी जी की मुलाकात सबसे हो जाती! जे उधर से गुजरता, थोड़ी देर के लिए बैठ जाता, कुछ अपनी कहता, कुछ उनकी सुनता। किसी कहां जोत है, किसके यहां कब कौन बीमार है, किसके यहां भाइयों में अनबन चल रही है– सब कुछ उनको पता रहता। उसकी पूछताछ करके अपनी जानकारी अपटुडेट कर लेते।'' 'गोदान' प्रेमचन्द की इसी गांव

से रम–भीग की परिणति है। गोदान का लेखन भी इसी समय प्रारंभ हुआ था। दिल्ली बम्बई घूम आए थे। गोदान में शहर कथा के रंग की मदद आवश्यकता उन्होंने गोदान के सर्जक इस गांव में ही अनुभव की होगी।

1.3.2 व्यक्तित्व विकास–

प्रेमचन्द अपने युग के मनीषियों के अनुरूप सीधे और सरल थे। बाहर से कोई भी नहीं सेच सकता था कि यह व्यक्ति इतना गुणी हो सकता है। उनमें वैचारिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्तिकारी कदम उठाने की तीव्र लालसा थी। पहल करने में वह कभी पीछे नहीं हटे। चुनार के मिडिल स्कूल में गोरों की पिटाई में सक्रियता स्वाभिमान और देशप्रेम का वाचक है तो स्वयं होकर 1906 में विधवा–विवाह सामाजिक क्रान्ति की पहल है। राष्ट्रीय चेतना के विकास हेतु देश में हो रहे उथल–पुथल की झलकें प्रस्तुत करने के लिए 'रतारे जमाना' में स्तम्भ लिखना उनके क्रान्तिकारी सोच का प्रमाण है। सरकारी मुलाजिव के ऐसा कुछ कर पाना सचमुच दुःसाहस का काम है। साहसी कदम उठाने का माद्दा इसी से प्रकट है।

मई 1905 से जून 1906 तक का काल भारतीय राजनीति में चेतस्क्रियता और पेजस्क्रियता का काल था। इस समय प्रेमचन्द कानपुर में थे। कानपुर स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के प्रेरक और पोषक नाना साहब और तात्याटोपे की कर्मभूमि है। राजनैतिक सक्रियता उसके स्वभाव में है। कांग्रेस के 'गरमदल' और 'नरमदल' में विभाजित होने पर प्रेमचन्द 'गरम दल' के नेता बाल गंगाधर तिलक के विचारों के अग्रेसर रहे। अपनी राजनैतिक टिप्पणियों में उन्होंने तिलक का अनुमोदन किया। यद्यपिइ न दिनों राष्ट्रीय चेतना के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार की क्रूरता और दमन नीति अपनी चरम पर थी। तब भी वे पूरी निर्भीकता के साथ अग्रिम पंक्ति में खड़े थे। कहा जा सकता है कि ऐसा दुःसाहस वह नवाबराय के नाम से लिखकर दिखा रहे थे, तथापि उनकी हिम्मत का लोहा तो मानना ही होगा। क्या उन्हें या उनके प्रकाशक को इस बात का ज्ञान नहीं था कि लेखक का सत्य छिपाए नहीं छिपता। भले ही वह नवावराय से लिख रहे हैं, इस बात का ज्ञान सबको है, उन्हें भी यह नवाबराय धनपतराय, सरकारी कर्मचारी है।

खुदीराम बोस को फाँसी हुई। उन्होंने उसकी तस्वीर अपने कमरे में टांगी, 'जमाना' में गेरी बाल्डी का जीवन–चरित लिखा। उन्हें महापुरुष के रूप में प्रतिपादित किया। विवेकानन्द के विचारों से तो अत्यधिक प्रभावित थे। उनके विचारों पर उन्होंने अनेक बार लिखा। विवेकानन्द के विचारों ने ही उन्हें राष्ट्रीय चेतना का स्वर और घोष प्रदान किया था। इन सब बातों का गुप्तचर सूचना तो अवश्य ही रही होगी। 1909 में 'सोजे वतन' कहानी संग्रह जब्त किया गया। चेतावनी भी मिली, लिखने पर जिला–प्रमुख की सहमति लेनेकी बंदिश भी लगाई गई किन्तु नवाबराय ने लिखना नहीं छोड़ा। लिखना ही तो उनके जीवन का मर्म और धर्म था। उसे छोड़कर तो उनका तन जीव–शून्य हो जाता। कुछ दिनों अनाम छपी और कुछ दिनों छद्म–नाम से। ऐसा कितने दिन चलता। अस्मिता को कोई कब तक सुलाए रख सकता है। प्रेमचन्द नाम रख लिया। जेल की सजा भुगतने से लेकर नौकरी चले जाने की जोखिक उठाए लिखते रहे। पत्रकारिता शुरू करने का प्रगाढ़ लालसा उथल–पुथल मचाए हुए थी। सरकारी नौकरी छोड़ने का विचार बराबर उद्वेवदित करता रहा किन्तु परिवार चलाने की चिन्ता भी तो थी। पारिवारिक दायित्व के सम्मुख विवश हो जाते।

1.4 प्रेमचन्द की जीवन दृष्टि

रचनाकार का अपना जीवन–दर्शन होता है, सामाजिक को देखने–परखने का दृष्टिकोण होता है। इसी दृष्टिकोण के अभिलेख को आज साहित्यकार 'प्रतिबद्धता' की संज्ञा देते हैं जो सामाजिक जुड़ाव का कम, राजनैतिक खेमेबाजी के अभिनायकत्व का पर्याय बन जाता है। वस्तुतः रचनाकार जीवन–दृष्टि का विकास पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिवेश में होता है, जिसमें उसकी मनसा–वाचा–कर्मणा उठ–बैठ और रच–पच बनी हुई होती है। प्रेमचन्द का रचनाकार अपने पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दायित्वों की पूर्ति में पूरे मन

से संलग्न रहा और इसी कारण उकनी चेतना को कर्म की ऊर्जा प्राप्त है और परिणामस्वरूप वह अपनी भोगी सी मार्मिक और बेधक है। इस दृष्टि से उनकी जीवन–दृष्टि विचार करना समीचीन है।

राष्ट्रीय चेतना–

मिशन स्कूल में आयोजित फुटवॉल मैच में गोरों की टीम से भिड़ जाना, खुदीराम बोस का चित्र उसको फाँसी होने पर अपने कमरे में टांगना, कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेना, 'जमाना' में राजनैतिक टिप्पणियां और कहानियां लिखना देश–प्रेम की प्रगाढ़ चेतना की द्योतक है। 'त्सिजेवतन' की पुस्तकें जलाने और सरकारी अंकुश के बाद कुछ दिनों तो मन पर लगाम लगाने की कोशिश की किन्तु राष्ट्रप्रेम की उत्कटता के सम्मुख वह बेवस हो गए। 15 फरवरी 1921 को सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे ही डाला। सरकारी नियंत्रण और नौकरी से मुक्त होते ही उनकी राष्ट्रचेतना और देशप्रेम प्रखरत्तर होकर उनकी कहानियों और उपन्यासों में अभिव्यक्ति पाने लगा। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी का अंगीकार और प्रचार, महानिषेध, सत्याग्रह, पुलिस के अत्याचार आदि विषय उन्मुक्त भाव से कहानियों में अभिव्यक्त हो सके। नारी समाज के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने और जेल जाने के चित्र भी उत्कीर्ण हो सके। फरवरी 1922 की चौरा–चौरी की घटना ने उन्हें आन्दोलित ही नहीं किया, उनके चिन्तन को नया मोड़ दिया। इस घटना के बाद गांधी जी ने सत्याग्रह आंदोलन वापस लेकर प्रेमचन्द को गांधी भक्ति को गहरी ठेस पहुंचाई। उन्हें गांध ी का सत्याग्रह वापस लेना कतई रास नहीं आया। इस समय का उनका समकालीन विश्लेषण और आकलन नितान्त मौलिक, विशद और विवेकोन्मुखी है। 10 मार्च 1930 के पहले अंक के सम्पादकीय में उन्होंने नमक–सत्याग्रह की प्रशंसा की। उन दिनों सरकारी आज्ञा के विरुद्ध नमक सत्याग्रह के अनुरूप लखनऊ के अमीनुल्ला पार्क में नमक बनाया जाता था और विदेशी वस्त्रों की होली जलाई जाती थी। प्रेमचन्द ने स्वयं न जाने कितनों को अपने हाथ से खद्दर का कुर्त्ता–टोपी पहनाकर, पान का बीड़ा देकर, और उनकी पत्नी ने माथे पर तिलक लगाकर सामने पार्क में नमक बनोन भेजो।'' इस समय तो उनकी राष्ट्रीय चेतना इतनी उभार पर थी कि उनकी सबसे बड़ी आकांक्षा स्वराज्य संग्रा में विजयी होने की थी। उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा, ''धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की हवस नहीं। हां, यह जरूर चाहता हूं कि दो–चार ऊँची–कोटि की पुस्तकें लिखूं, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज–विजय ही है।''

विचारधाराओं का प्रभाव–

तकनीकी विकास, वैज्ञानिक आविष्कार और औद्योगिकीकरण में उन्नीसवी सदी में वैचारिक क्रान्ति ला दी। भारत में आर्य–समाज आन्दोलित था। उसके नारी उद्धार और सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति के विचारों ने प्रेमचन्द के जीवन और साहित्य दोनों को प्रभावित किया किन्तु जब आर्य समाज ने मुसलमानों की शुद्धि का विचार प्रकट किया त बवह 'हिन्दू–मुश्लिम' एकता में दरार पैदा करने वाले इस तर्क से असहमत थे। उन्होंने खुद को आर्य समाज से पृथक कर लिया।

1914–18 की अवधि में प्रेमचन्द गांधी से अत्यधिक प्रभावित थे। गांधी ने तॉलसताय के सिद्धान्तों को भारतीय सन्दर्भ में युक्तियुक्त मान लिया था। प्रेमचन्द तालस्ताय के साहित्य से पहले ही खासा परिचय प्राप्त कर चुके थे। 1918–19 में रूसी क्रांति के प्रभाव उन पर दिखाई देने लगे। 'जमाना' के फरवरी 1919 के अंक में उन्होंने लिखा– ''हमारे समाज के नेताओं में वकील और जमींदार ही सबसे अधिक हैं, कितने शर्म और अफसोस की बात है कि उन दोनों में से एक भी जनता का हमदर्द नहीं।''

प्रेमचन्द किसी राजनैतिक दल के सदस्य नहीं थे। रजानीति में विशेष चाव अवश्य था। वे तो उस आने वाली पार्टी के सदस्य थे जो 'कोतहुल्लास (छोटे आदमियों) की सियासी तालीम को अपना दस्तूर–उल–अमल बनाए।'' महाजनी सभ्यता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने 'हंस' सितम्बर 1936 में लिखा, 'मनुष्य समाज दो भागों में

बंट गया है। बड़ा हिस्सा भरने और खपने वालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का है जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किए हुए हैं... जिनके पास पैसा है, वे देवता–स्वरूप हैं, उनका अन्तःकरण कितना ही काला क्यों न हो। साहित्य संगीत और कला सभी धन की देहली पर माथा टेकने वालों में है। यह इता इतनी जरूरी ली हो गई है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है।... परन्तु अब एक नयी सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से रहा है... जिसका मूल सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्ति को जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है, और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप–दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बने रहना चाहता है, वह पतिततम प्राणी है।'' स्पष्ट इंगित मिलता है कि भले ही गांधीवाद की प्रासंगिकता पूरी तरह से उनके मोहभंग का शिकार न हुई हो, मार्क्सवाद के प्रति उनका रुझान है। भारत के बेहतर भविष्य के लिए पुनर्विचार की दिशा में अग्रसर हो चला था। कि साथ परिप्रेक्ष्य–प्रेमचन्द स्वराज्य के संघर्ष को किसानों, मजदूरों के शोषण ओर दमन की मुक्ति के सन्दर्भ में सोचते थे। प्रेमचन्द का जीवन ही किसान का जीवन था। जिसके हाथ में कुदरत्व की जगह कलम थी।'' इसीलिए उन्होंने 'स्वराज्य से किसका अहित होगा?' शीर्षक 'हंस' की अपनी टीप में कहा, 'कांग्रेस के मेम्बर या और लोग भी कभी–कभी न्याय और नीति के नाते भले ही किसानों की वकालत करें, लेकिन किसानों के नाना प्रकार के दुःखों और वेदनाओं की उन्हें वह असर नहीं हो सकती जो एक किसान को हो सकती है। सब छोटे–बड़े उसी को नोचते हैं, सब उसी का रक्त और मांस खा–खाकर मोटे होते हैं पर कोई उसकी खबर नहीं लेता।' प्रेमचन्द के लिए किसान के दुःख–दर्द की चिन्ता स्वराज्य की चिन्ता का पर्याय है। स्वराज्य किसानी को जिन्दा रखने के लिए अनिवार्य है।

नारी परिदृश्य–प्रेमचन्द विधवा–विवाह, स्त्री शिक्षा, स्त्री के मताधिकार आदि के पक्षधर थे। बाल–विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, परदा–प्रथा आदि के सख्त खिलाफ थे। यद्यपि अपनी कहानियों में और उपन्यासों में प्रेमचन्द समाज में नारी पर होने वाले अत्याचारों के विरोध में खड़े नजर आते हैं तथापि उनकी दृष्टि उसके प्रति भावुकतापूर्ण ओर आदर्शवादी है। वे स्त्री को त्याग की मूर्ति, जननी, स्नेह की प्रतिभा और मानवीय मूल्यों की रक्षिका ओर पोषिका के रूप में मान्य करते हैं।

साम्प्रदायिक सद्भाव– प्रेमचन्द का दृढ़मत था कि 'अब न कहीं मुस्लिम संस्कृति है, न कहीं हिन्दू संस्कृति, न कोई अन्य संस्कृति। अब संसार में केवल एक ही संस्कृति है और वह है : आर्थिक संस्कृति।' अपने इसी मत की पुष्टि के अनुरूप उनकी साम्प्रदायिक दृष्टि की लोच 'कर्वला' नाटक, 'काशी का कलंक', 'स्वामी विवेकानंद', 'हिन्दू तहजीव व रहाफे आम', 'हिन्दु–मुस्लिम इतहाद की कहानी', 'कुरान में धार्मिक ऐक्य का भाव' आदि लेखों, कहानियों और उपन्यासों में भली भांति लक्ष्य है।

दलित समस्या– 'अकुर का कुआं', 'दूध का दाम', 'सद्राति', 'मुक्ति का मार्ग' आदि कहानियों में उनकी उपेक्षितों और वंचितों के प्रति संवेदना दृष्टव्य है। वह स्पृश्यता को समाज का कोढ़ मानते थे और किसी भी प्रकार के भेद–भाव पसन्द नहीं करते। उन्होंने मानव में एक ही चिरसत्ता का समान रूप से आवेश देखा और इसी रूप में वह मानव में देवत्व के दर्शन के पक्षपाती थे।

1.5 प्रेमचन्द की उपन्यास दृष्टि

प्रेमचन्द की दृढ़ इच्छा थी कि उपन्यास 'मानव–चरित्र पर प्रकाश डाले और उसके रहस्यों को खोलता हुआ मानव जीवन को मंगलमय बनाने में योग दे।'' तात्पर्य यह कि प्रेमचन्द मानते हैं कि एक सफल उपन्यास की संज्ञा केवल उसी रचना को दी जा सकती है जिससे गुजरने के बाद पाठक अपने अंदर सद्भाव का अनुभव करे और लगे कि जैसे उसका उत्कर्ष जाग उठा है।

इस मान्यता के आधार पर स्पष्ट है कि प्रेमचन्द मनुष्य को समाज से अलग करके नहीं देखते। मानव–समाज की हलचलों में ही वे मनुष्य को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं और उसी में से मानवीय संवेदनाएँ और मानवता के

मान–मूल्य मथकर निकालते हैं। स्पष्ट है कि इसमें मनु की तस्वीर उभरकर प्रत्यक्ष होती है। इसी प्रप्रिेक्ष्य में प्रेमचन्द का यह कथन सटीक बैठता है कि ''मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। चरित्र संबंधी समानता और विभिन्नता–अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का गुख्य कर्त्तव्य है।

प्रेमचन्द के इस कथन से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं कि वह केवल सकार चरित्रों को यथावत् चित्रित करने के पक्षधर हैं। कोई भी चरित्र हो, सर्वथा सकारात्मक ही हो, यह संभव नहीं। वस्तुतः मनुष्य बुराइयों से घिरा हुआ रहता है और इन्हीं बुराइयों के बीच उससे अपना जीवन–यापन करता। वह स्वयं नेकी करने में कंजूसी करता है। प्रेमचन्द की इस धारणा को इसी प्ररिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है कि '' चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हो महान–से–महान पुरुषों में भी कुछ–न–कुछ कमजोरियाँ होती हैं। चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से हानि नहीं होती, बल्कि यही कमजोरियाँ उस चरित्र को महान बना देती हैं।''

स्पष्टतः प्रेमचन्द यथार्थ से पल्ला नहीं झाड़ते। वह उपन्यास को यथार्थ की नींव पर ही खड़ा करनें के पक्षपाती हैं तथापि निरा और नग्न यथार्थ समाज को वह दिशा प्रदान करने में सर्वथा असमर्थ रहता है जिसकी साहित्य से अपेक्षा की जाती है। अतः यथार्थ को समंजित होने की समाज हित में सर्वाधिक आवश्यकता है। समंजन के बिना वह समाज में कुरुचि और घृणा का विस्तारक तो हो ही जाता है, समाज में कुप्रवृत्तियों का विधायक भी होता है। अतः वह यथार्थ में भी आदर्श का समावेश करने के पक्षपाती हैं। तात्पर्य यह कि यथार्थ को आदर्श से संस्कृत और पर्यवसित हो जाना चाहिए। अतः अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त वह चरित्रों में यथावसर परिवर्तन करने के आकांक्षी हैं। यह परिवर्तन उसमें आदर्शवादिता के समावेश से ही संभव है। यह इस तथ्य को मानकर चलती है कि आदर्श को जीवन्तता प्रदान करने के लिए यथार्थ की शिला अपरिहार्य है। शुद्ध यथार्थ की वह कतई अपेक्षा नहीं करते। वह ऐसे आदर्श के भी पक्ष में नहीं जो सिद्धांतों की मूर्तिमन्त प्रतिमा हो। आदर्श और यथार्थ के बीच यदि समन्वय न हो तो मानव की मानव–मूल्य–परक चरित्र की उद्भावना की ही नहीं जा सकती। यथार्थ में आदर्श और आदर्श में यथार्थ की इसी पारस्परिकता को प्रेमचन्द ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा दी है।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि इस निमित उपन्यास के लिए विषय–वस्तु का चुनाव भी विशेष और अद्वितीय होना चाहिए। 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की सोच के अनुरूप सहज ही विचार मन में उदित होता है कि 'साहित्य सत हो' के मन्तव्य को प्राप्त करने के लिए उसके चरित्रों का सकारात्मक होना आवश्यक है; ऐसा सकारात्मक चरित्र जो किसी भी प्रलोभन के सामने आत्मसमर्पण न करें, अपितु उससे जूझकर उसे पराभूत करने के लिए कृतसंकल्प हो, जो वासनाओं से द्रवित होकर उनके जाल में फंस जाने की बजाय उसके विरुद्ध आत्मसंयम द्वारा उस पर विजय प्राप्त करें। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रेमचन्द का चरित्र पर आदर्श का आग्रह तो है, उसकी सकारात्मकता पर भी आग्रह है। ऐसे में पात्र का यथार्थ होने पर भी आदर्श की अतिरिक्त लोच के कारण विश्वसनीयता की हानि हो सकती है। अतः विषय–वस्तु के चयन के लिए कथाकार का अत्यधिक सजग होना आवश्यक है, यह कथाकार की परीक्षा का अवसर भी हो सकता है किन्तु जब प्रेमचन्द कहते हैं कि उपन्यास के विषय का विस्तार मानव–चरित्र से किसी कदर कम नहीं। उसका संबंध अपने चरित्रों के कर्म और विचार, उनका देवत्व और पशुत्व उनके उत्कर्ष और आकर्ष से है। मनोभावों के विभिन्न रूप और भिन्न–भिन्न दशाओं में उनका मुख्य–विकास उपन्यास के मुख्य विषय हैं, तब उनके इस विचार की सार्थकता सुस्पष्ट हो जाती है कि उपन्यास के लिए किसी विशेष परिदृश्य,व्यक्ति अथवा विषय का बंधन नहीं । अगर आपको इतिहास से प्रेम है तो आप अपने उपन्यास में गहरे–से–गहरे ऐतिहासिक तत्वों का निरूपण कर सकते हैं। अगर आपको दर्शन से रुचि है तो उपन्यास में उसके लिए भी काफी गुंजाइश है। समाज, नीतिविज्ञान, पुरातत्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान हैं।''

जिधर देखो, उधर तरह–तरह के राजनीतिक प्रपंच हैं; भाँति–भाँति के पंथों का भाँति–भाँति का राग और सामाजिकों की भावप्रवणता के दर्शन होते हैं; जिधर दृष्टि जाती है, रोना–विलखना, चीखना–कलपना दृष्टिगत होता है, विपत्तियों, संकटों और दुर्घटनाओं का जाल फैला है और उसमें आदमी फंसा संतप्त, दुःखी विषण्ण–चित्त नजर आता है। ऐसे में पाषाण–हृदय भी करुणा प्लावित हुए बिना नही रहता। रचनाशील व्यक्ति तो भावुकता से भर उठता है और बरबस वाग्मी हो जाता है। इस स्थिति में भाव–संयम और विचार संयम और कल्पना शक्ति की अकूतता रचनाकार के लिए उसकी सृजन–शक्ति के परीक्षा बन जाते हैं क्योंकि वह समाज की इस विपदाग्रस्त और कारुणिक अवस्था से समाज–चिन्तन और सभ्यता समीक्षा में प्रवृत्त हुए बिना रह नहीं सकता। द्रवित हृदय में उठे भाव–ज्वार उसे विवश कर देते हैं।

इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द के विचार मननीय हैं कि " क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार–प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करें जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता रहे।... (इसके लिए) उपन्यासकार को उसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाए, नहीं तो उपन्यास उपन्यास नीरस हो जाएगा।... ऐसे कितने ही लेखक हैं, जिनमें मानव–चरित्र के रहस्यों का बहुत मनोरंजक, सूक्ष्म और प्रभाव डालने वाली शैली में बयान करने की शक्ति मौजूद है, लेकिन कल्पना की कमी के कारण वे अपने चरित्रों में जीवन का संचार नहीं कर सकते।... जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करें, उसके सद्भाव जाग उठें, वही सफल उपन्यास है और ऐसे उपन्यास की रचना भी सभी उपन्यासकार नहीं कर सकते।... जिसके भाव गहरे हैं, प्रखर हैं– जो जीवन में दब्बू बनकर नहीं, सवार बनकर चलता है, जो उद्योग करता है और विफल होता है, उठने की कोशिश करता है और गिरता है, जो वास्तविक जीवन की गहराइयों में डूबा है, जिसने जिन्दगी के ऊँच–नीच देखे हैं, सम्पत्ति और विपत्ति का सामना किया है, जिसकी जिन्दगी मखमली गद्दों पर ही नहीं गुजरी, वही लेखक ऐसे उपन्यास रच सकता है, जिनमें प्रकाश, जीवन और आनन्द प्रदान करने की सामर्थ्य होगी।

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द एक साहित्यकार, सफल उपन्यासकार के लिए कर्म की पूँजी अपरिहार्य मानते हैं। यह कर्म की पूँजी वह अपनी पारिवारिक और सामाजिक संबंधता और सहभागिता से अर्जित करता है और अपने जीवनानुभव को इतना समृद्ध बनाता है कि उसमें मानवीय करुणा ही नहीं, मानवीय समझ भी प्रकाश–पुंज बनकर दमक उठती है। उसके चित्रण में सामाजिक यथार्थ अपने प्राकृतिक रूप में उपस्थित होकर भी आदर्श की प्रेरणा से संयोजित होकर सौन्दर्य का विधायक बनता है और शिवत्व का प्रसार करता है।

1.6 उपन्यास क्या है ?

साहित्य को प्रेमचन्द 'जीवन की आलोचना' मानते थे। इसका यही तात्पर्य है कि जीवन में जो भी घटित हो रहा है, उसका चित्रण तो उसमें होना ही चाहिए, साथ ही उस जीवन की परतों से गुजरकर उस जीवन के सौकर्य हेतु चिन्तन भी उपलब्ध होना चाहिए। मानव जीवन सुख–दुःख का संसार है। इन सुख–दुःखों की धूप–छाँव के बीच जीवन को जीने की कला छिपी होती है, उनके सूत्र निबेरना भी साहित्य का उद्देश्य है। 'हंस' दिसंबर, 1933 के अंक में प्रेमचन्द की टिप्पणी है कि "मानव–हृदय आदिकाल से ही 'सु' और 'कु' का रंग स्थल रहा है, और साहित्य की सृष्टि ही इसलिए हुई है कि संसार में जो 'सु' या 'सुदर' है; और इसलिए कल्याणकर है, उसके प्रति मनुष्य में प्रेम उत्पन्न हो; और 'कु' 'असुन्दर', इसलिए असत्य वस्तुओं से घृणा।"

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द साहित्य को शिवत्व की आराधना मानते हैं। इसलिए अपेक्षा करते हैं कि वह अपनी रचनात्मकता से मनुष्य के मन–मन्दिर में सुप्त सद्भावों को जगाएँ और उसे सत्पथ में चलने की प्रेरणा दें। उनकी यह धारणा इस तथ्य से स्पष्ट है कि वह साहित्य, समाज और राजनीति में एकत्व का अनुभव करते हैं और कहते हैं

कि 'ये चीजें, माला जैसी ही हैं । जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उसका समाज भी अच्छा होगा । समाज के अच्छा होने पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। ये तीनों साथ–साथ चलने वाली चीजें हैं... इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है– साहित्य इन तीनों (शेष दोनों?) की उत्पत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज और राजनीति का संबंध बिलकुल अटल है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि–लाभ तथा सुख–दुःख होता है, वह आदमियों पर ही होता है न ! राजनीति में जो सुख–दुःख होता है, वह आदमियों ही पर पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएँ अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है; और इन सब तीनों चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी है।''

उपरोक्त उदाहरण के परिप्रेक्ष्य में सहज ही प्रेमचन्द के इस वक्तव्य को समझा जा सकता है कि ' साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबन्ध के रूप में हो , चाहे कहानियों के; या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।'' इंगित स्पष्ट है कि साहित्य जिए जा रहे अथवा जिए गए जीवन की विवक्षा तो है ही, उसे उसके गुण–दोषों का विश्लेषण भी करना है, मात्र आलोचना नहीं। वह जीवन की जीवन्त समस्याओं का अवलोकन भी करता है और उनके समाधान भी प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्रः दोनों का प्रतिपाद्य एक ही है– केवल उपदेश विधि में अन्तर है। नीतिशास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का यत्न करता है, साहित्य ने मानसिक अवस्थाओं का क्षेत्र चुन लिया है।... और इसीलिए 'साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी मात्रा प्रौढ़ परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो; और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी रूप में उसी अवस्था में तभी आ सकता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त हों ।''

1.7 आदर्श और यथार्थ

आदर्श और यथार्थ जीवन सरिता के दो किनारे हैं। एक तट पर घाट है, सीढ़ियाँ हैं, स्नानार्थियों का, सामाजिकों का जमघट है; देवालय है, पुजारी है, पूजनार्थी हैं। यत्र–तत्र बाल–वृद्ध, युवा–युवतियाँ हैं। परस्पर वार्ता में लग्न हैं। पाट पर बैठी, सरिता का जल उलीचतीं, कपड़े भिगोती, मलती–प्रक्षालती–निचोड़ती प्रौढ़याँ कहीं अपने घर की तो कहीं और पर बीती बघारतीं और रस–लेतीं बतिया रही हैं तो कहीं सरिता की धार में तैरते बालकों–युवाओं का किल्लोल गुंजरित हो रहा है तो कहीं धारा में बहता अपशिष्ट विचार का विषय है। यह कूल ही यथार्थ है, जहाँ सब कुछ दृश्य, श्रृव्य और भोग्य है। सब कुछ घटा है और अघट की संभावना से अधरों पर अँगुली रखे सुचरु, सुष्ठु और सुकर की कल्पना में लीन है। कल्पना में यह लीनता ही उसका दूसरा तट आदर्श है, जहाँ उसे पहुँचना हैं। यह आदिकाल से मानव का चिन्त्य और चिरअपेक्षित लक्ष्य रहा है। यह आदर्श ही है जो उसे सुनहले दिनों की आकांक्षा से दीप्त–आनन बनाए हुए है।

वस्तुतः यथार्थ जीवनानुभव है; संवेदनात्मक ज्ञान है। आदिमानव ने सृष्टि के आरम्भ से प्रकृति में दिन–ब–दिन होते परिवर्तन देखे। इन परिवर्तनों ने कभी उसे उल्लसित किया, और कभी भयभीत; कभी प्राकृतिक सौन्दर्य ने उसे अभिभूत किया और कभी प्रकोपों ने पीड़ित। पीड़ा ने उसकी चेतना को मथा, सोच ने उसे मुक्ति का मार्ग शशोधने के लिए प्रेरित किया। उसने जड़ता से ऊपर उठकर चेतनता में अवगाहन किया तो आध्यात्मिकता ने पंख पसार दिए और वह उड़ने लगा।

युग बदलते गए। बुद्धितत्व प्रखर होता चला गया और मानव ने संस्कारों की महत्ता को समझा। पारस्परिक व्यवहार में मैत्री, करुणा, दवा और सौन्दर्य की स्थापना को बल प्राप्त हुआ। आदमी ने जीवन में नीति की उपयोगिता

को समझा। आदर्श जड़ता के विरोध में सदैव रहा है। वह मनुष्य के चैतन्य होने की पहचान है। तात्पर्य यह कि यथार्थ वह दार्शनिक पक्ष है जो इस तथ्य को मानता है कि चेतन अनुभूति से अलग और कुछ भी सत्य नहीं। आदर्शवाद चेतन अनुभूति के आलोक में बहुत कुछ अनुभूत्य, अनुभव करने योग्य मानता है। यह अनुभूत्य उसकी विवेक–चेतना का प्रतिफलन है। अतः मानना होगा कि यथार्थ वस्तु–तत्व को प्रधानता देता है, आदर्श बुद्धितत्व को। यथार्थ हमारे ज्ञान की पीठिका पर टिका है, ज्ञान के फलस्वरूप अस्तित्व में है जबकि आदर्श कल्पना में प्रारूपवान होता है। इनके कोई स्थायी अथवा सर्वथा निर्विकल्प रूप का स्वरूप स्थिर नहीं किया जा सकता। बोध यथार्थ के स्वरूप का ज्ञान कराता है और यह बोध को अनुभव स्वरूपवान् बनाता है। इस अनुभव की स्वरूपता को और अधिक सुखस्वरूप प्रदान करने की लालसा विभिन्न कल्पनाओं को उद्‌भुत करती है। कल्पना का यह विधान आदर्श को स्वरूपता प्रदान करता है। यथार्थ का ज्ञान और आदर्श की कल्पना, दोनों ही देश–काल और परिस्थितिजन्य होती है और कलाकार की, व्यक्ति की अथवा रचनाकार की, प्रमाता की वैयक्तिकता और सामाजिकता पर निर्भर करती है।

साहित्य के क्षेत्र में आदर्श वह कल्पना–प्रसूत अभिव्यक्ति है जिसमें मानव के मानव होने और उसमें पूर्णता प्राप्त करने की धारणा संग्रहीत है तो दूसरी ओर यथार्थ वस्तु–जगत जैसे है, वैसा है, उसका वास्तविक दृश्य उपस्थित करता है। आदर्श और यथार्थ इन दो छोरों के बीच की स्थिति को ही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अथवा यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की संज्ञा दी जा सकती है। यह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद एक ओर यथार्थ की तो दूसरी ओर आदर्श की अति पर अवरोध उपस्थित करता है और परस्परानुकूल के होने लिए नियमित और व्यवस्थित करता है।

1.8 आदर्शवाद और यथार्थवाद

प्राचीनकालीन और मध्यकालीन साहित्य आदर्शवादी था। वह मनुष्य को पूर्णता का ओर अग्रसर करने के लिए दत्तचित्त था। वह मनुष्य की आत्मिकता को आध्यात्मिकता के रंग में रंगकर परात्पर की अनुभूति से अभिभूत करता था और प्रतिपल 'आत्म' को पहचानकर सबमें अपने को और अपने में सबको जानकर परिपूर्ण होने की प्रेरणा देता है। यह आदर्श भी जीवन संघर्ष के यथार्थ की ही परिणति है। किन्तु अब वैयक्तिकता ने बौद्धिकता को इतनी प्रबलता प्रदान कर दी है कि वह अपने 'निजत्व' से हटकर और किसी के अस्तित्व को महत्व देने के लिए प्रस्तुत नहीं। उसका सारा जोर 'क्या है' पर होता है इसीलिए इस युग को यथार्थवाद का युग कहा जाता है। वह धार्मिक आस्था–विश्वास और परम्परागत साक्ष्यों से पूर्णतः मुक्त होकर 'वास्तव' के साक्षात्कार के लिए प्रतिबद्ध है। श्रद्धा और विश्वास के माध्यम से कदाचित् ही वह संसृप्ति के रहस्य को स्वीकारे हुए है तथापि उसके पास तर्क और संशय को फटकने की अनुमति नहीं। युग ने करवट ली है। युग में जिज्ञासाएँ हैं और जिज्ञासाओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक शोध और तार्किकता को महत्व देता है। इनके निष्कर्ष पर कसकर वह सत्य को स्वीकार करने का पक्षधर है।

युग के वर्तमान स्वरूप के साक्षात्कार के लिए उसके पीछे छिपी ऐतिहासिक ताकतों, सांस्कृतिक संक्रमणों और आर्थिक प्रभावों को जानना आवश्यक है। वस्तुतः मध्ययुग के मानव की श्रद्धा–विश्वास के साथ सब कुछ स्वीकार लेने की मनोदशा ने जब करवट ली तो जिज्ञासा ने अपने समाधान के लिए श्रद्धा–विश्वास के पूर्ण–विराम को हाइफन में बदल दिया। अब जिज्ञासा के भाव को यथार्थ से सम्मान देने की मानसिकता ने प्रबलता प्राप्त की। इस प्रकार मनु के अन्तःस्थ शक्तियों का उद्‌घाटन करने की प्रक्रिया ने जन्म लिया और वैयक्तिकता महत्वपूर्ण हो चली। इस प्रक्रिया में मानव–मन की यात्रा ने पुनर्जागरण युग में प्रवेश प्राप्त कर लिया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में घटनाओं के नैरन्तर्य ने उसके मन को ही नहीं उसके भाग्य को नई संभावनाओं से संवलित किया। अब वह भाग्य–विवश अथवा बेसहारा, असहाय मानव नहीं रह गया। अब वह परिस्थितियों का दास नहीं रह गया था। उसने परिस्थितियों पर नियंत्रण करने का संकल्प, साहस और श्रम बटोर लिया था।

परिस्थितियों को प्रभावित करने वाली घटनाओं की कड़ी में पहली कड़ी औद्योगिक क्रांति थी जिसमें इंग्लैण्ड

में आहट दी। इस क्रांति ने मनुष्य को यंत्र की सहायता प्रदान की। इसी सदी के अन्तिम चरण में अमरीका की राज्य क्रांति हुई। इस क्रांति ने लोकतंत्र को पुष्ट आधार प्रदान किया। दृढ़ता से इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान की कि समाज को न्यायपूर्ण सुशासन केवल लोकतंत्र, प्रजातंत्र ही प्रदान कर सकता है। फ्रांसीसी राज्य–क्रांति ने राजाओं की दैवी अधिकार संपन्नता की मान्यता को झटक दिया। सम्राट के शासन के स्थान पर प्रजातांत्रिक राष्ट्रीय एवं समाजवादी शक्तियों की संभावनाएँ उजागर की। मनुष्य ने दुर्दैव, दुर्नीति और निरंकुश शासकों के कशाघात से मुक्त होकर खुले मन से स्वीकार किया कि शासन जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिए ही वरेण्य है। इसके द्वारा उन्हें शासन में अपने अधिकार की प्राप्ति हो गई। कालान्तर में रूसी राज्य–क्रांति इस सिद्धांत में संशोधन करते हुए धारणा दी कि जनता के लिए, जनता काशशासन करने का अधिकार सिर्फ श्रम करने वालों को है, श्रम का शोषण करने वालों को नहीं। नई विचार–सरणियों की क्रांति और उसके प्रतिफलों ने आदमी के सदियों से चले आते दैवी विश्वास को तोड़ दिया। उसने मान लिया कि अब तक दैवी विश्वास के बल पर उसने जो सहा और भोगा, और मान्यताओं को स्वयं पर अधिरोपित पाया, वह यथार्थ नहीं था। यथार्थ के दर्शन तो उसे इन क्रांतियों में जन्मे विचार में हुए हैं।

पुनर्जागरण की पीठिका डारविन, फ्रायड और कार्ल–मार्क्स की मौलिक उद्भावनाओं ने प्रस्तुत की। डारविन के विकासवाद के सिद्धांत ने पीढ़ियों से चली आ रही मानव–विकास की धारणाओं को किंवदन्तियों का रूप दे दिया। फ्रायड ने मन की पर्तों में झाँककर स्थापना दी कि मनुष्य जो दिखता है, वह नहीं है। उसके वास्तविक स्वरूप की पहचान उसके अवचेतन–मन के माध्यम से ही ज्ञात की जा सकती है; न कि उसके द्वारा प्रत्यक्ष व्यवहार में किए जा रहे आचरण और व्यवहार से। मानव का हर कार्य अवचेतन–मन से प्रेरणा पाकर संपन्न होता है। अतः मनुष्य को उसके क्रिया–कलापों द्वारा नहीं, उसके अवचेतन–मन की प्रेरणा से ही जाना और समझा जा सकता है। फ्रायड ने उपपत्ति दी कि मनुष्य के विभिन्न क्रिया–कलाप 'काम' से अभिप्रेरित होते हैं। 'काम ग्रंथि' ही उसके कार्यों के मूल में है। मार्क्स ने अर्थ की महत्ता प्रतिपादित की। उसके मतानुसार अर्थ ही मनुष्य की प्रवृत्तियों और क्रिया–कलापों का विधायक है। उससे प्रेरित होकर ही मनुष्य कर्म में प्रवृत्त होता है।

इन उद्भावनाओं ने व्यक्ति और समाज की धारणाओं को प्रभावित किया । यूरोप में पैदा हुई इन वैचारिक क्रांतियों ने मानव को नए आलोक से उद्भासित किया। इनके फलस्वरूप यथार्थोन्मुखी दृष्टि का उन्मेष हुआ। इनसे साहित्य भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। आज जो साहित्य रचा जा रहा है, वह यथार्थवादी है। वह समस्याओं को उनके यथार्थ में समझने, जूझने और सुलझाने का आग्रही है। यह यथार्थवाद अपेक्षा करता है कि वर्ण्य–विषय का चयन सौन्दर्य और सरस क्षेत्रों से न किया जाय अपितु विद्रूपताओं और कुरूपताओं में से उभँरे। वह इन वस्तुओं का सूक्ष्म और विस्तार से वर्णन करता है। इनमें व्यक्ति का चित्र ही महत्वपूर्ण होता है; जो जैसा है, उसी रूप में रूपायित हो।

उन्नीसवीं सदी के मोपॉसा, एमिलजोला प्रभृति लेखकों ने यथार्थवाद में प्रकृतवाद की अवधारणा को पोसा। उनके अनुसार रचनाकारों को आदर्शवाद का पल्ला झाड़कर केवल वैज्ञानिक वास्तव का चित्रण करना चाहिए। उसे न तो उसका पर्यालोचन करना चाहिए और न किसी प्रकार की जुगुप्सा से मुँह चुराने की कोशिश करना चाहिए।

आधुनिक साहित्य की विभिन्न रूप से, विधाओं के साया वाद भी पश्चिम से आयातित हैं तथापि यह निश्चित रूप से, निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि साहित्य के वर्ण्य–विषय और उसके प्रयोजन आयात नहीं किए जा सकते। साहित्य में स्वाभाविकता सर्वोपरि होती है। रोम्यॉ रोला का तो मत है कि रचनाकार को वही रचना चाहिए जो वह सोचता है; कहना वही चाहिए जो मन को भाता है। अपने हृदय को ही अपनी रचनाओं में उड़ेलना चाहिए। पश्चात्य जीवन श्शैली में जिस तरह कृत्रिमता ने घर कर लिया है, उसमें यथार्थवाद प्रकृतवाद, अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद, प्रभृति वाद वाच्य हो सकते हैं। किन्तु भारतीय जीवन में उधारी के वादों से काम नहीं चल सकता। यहाँ सत्य, शिव और सुन्दर की उपासना की जाती है। अतः शिवोन्मेषी, , कल्याण–विधायक साहित्य की रचना ही योग्य और पुरस्कर

मानी जाती है। इस दृष्टि से साहित्य में आदर्श और यथार्थ की संतुलित और समन्वित दृष्टि का निवेश आवश्यक है। प्रेमचन्द की मान्यता है कि साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक सीमित नहीं रह गई है; बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होता जा रहा है। अब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता। इसलिए नहीं कि वह समाज पर हुकूमत करे, उसे अपने-अपने स्वार्थ-साधन का औजार बनाये-मानो उसमें और समाज में श्शत्रुता है; बल्कि इसलिए कि समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व कायम है और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है।''

यथार्थ और आदर्श के संबंध में प्रेमचन्द ने गहन चिन्तन किया। अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा कि यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और अमानवीय दुष्टताओं का नग्न चित्र होता है। परिणामस्वरूप वह हमें निराशाओं से भर देता है। हमें सब ओर बुराई-ही-बुराई दृष्टिगत होती है। मनुष्य की मन्युता और मनस्वता से जैसे हमारा विश्वास ही उठने लगता है। आदर्शवाद की सुरभि को विकीर्ण करते हुए जैसे वह कहते हैं कि आदर्शवाद हमें उस आनन्द की अनुभूति देता है जो हमें तब प्राप्त होता है जब हम किसी अंधेरी गर्म कोठरी में काम करते-करते थक जाते हैं और हमारी इच्छा होती है कि हम किसी बाग में निकलकर निर्मल स्वच्छ वायु में विचरण करें और उसका आनन्द उठाएँ। उनकी निश्चित धारणा है कि नग्न-यथार्थ पुलिस की रिपोर्ट के समान है। प्रेमचन्द का आदर्श और यथार्थ को लेकर प्रस्तुत चिन्तन तर्क-वितर्क की उपज नहीं है। वह उनके अनुभव का निचोड़ा हुआ सत् है। उन्होंने जो सोचा, वही लिखा और लिखे को व्यवहार की कसौटी पर कसकर कुंदन के रूप में निखरता अनुभव किया है।

भारतीय समाज भारतीय मन से अभिन्न है। भारतीय मन भारतीय साहित्य में सर्वत्र रमण करता लक्षित है। वह सांसारिक भौतिकता की विगर्हणा नहीं करता अपितु वह उसकी अति के यथार्थ का दर्शन कराकर उससे अभिभूत न होने का चेत जाग्रत करता है। वह ऐश्वर्य और आडंबर की अतिशयता में गुम होते 'स्व' में रमने की प्रेरणा देता है, अपने को पहचानने के लिए अपने अन्तस् में झांकने की सलाह देता है ताकि जड़-चेतन में एक मनोहारी चैतन्य का दर्शन कर मानव समत्व और शुभत्व का विस्तारक हो सके। आज का यथार्थ जब अन्तः प्रवेश करता है तो ऐसी तंग गलियों, गुहा-प्रदेशों और खण्डहरों का अविष्कार कर लेता है जिन्हें वह कुछ ही क्षणों में वितृष्णा और संत्रास से त्रस्त होकर त्याग देता है और पुनः उससे निकलकर विसंगति और विडंबना के फूलों को तलाशने लगता है। इन पथरीली गलियों और किरगीली चट्टानों में भटकता हुआ वह केवल स्वप्नभंग अथवा मोहभंग का शिकार हो जाता, अपेक्षित दिव्य-पक्ष की ओर उन्मुख हो ही नहीं पाता। इसीलिए अपने को पहचानने, स्वभाव अथवा अस्मिता के दर्शन करने के वृथा प्रयत्न में लग्न होने के कारण आज का यथार्थवादी साहित्य संप्रेष्य और प्रेरक नहीं हो सका। लगता है कि साहित्यकार अपने दायित्व से च्युत हो गया है। यही कारण है प्रेमचन्द उसकी आदर्श की मधु से संसक्ति अपरिहार्य मानते हैं और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की परिकल्पना करते हैं।

1.9 आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद ने हिन्दी साहित्य के समीक्षकों को भरपूर उद्वेलित किया है। कारण स्पष्ट है कि उनके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के विचार किसी परंपरागत अथवा स्थापित विचार से न तो अनुगत है; और न ही उनसे मेल खाते हैं। यह उनका मौलिक चिन्तन है जो अपने अनुभव और रचना-कर्म की ऊर्जा से उद्‌गत है। यही कारण है कि कुछ आलोचक उन्हें यथार्थवादी मानते हैं, कुछ आदर्शवादी। उनके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से सहमत कदाचित् ही कोई है। प्रेमचन्द ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह यथार्थवादी नहीं हैं किन्तु आदर्शोन्मुख यथार्थवादी होने की ध्वनि अनेक स्थलों पर उजागर हुई है। प्रेमचन्द के यथार्थवादी न होने की नकार से यह समझ लेना अन्यथा होगा कि वह यथार्थ की उपेक्षा करते हैं। यथार्थ की अवहेलना कर वे साहित्य सृजन की कल्पना कर ही नहीं सकते; किया भी नहीं।

वस्तुतः यथार्थवादी रचनाकार जब तक तटस्थ रहकर रचना करता है, रचना में अपने पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों को आरोपित नहीं करता, तभी तक वह वास्तव में रहता है किन्तु वह जब मार्क्स अथवा फ्रायड की रंगीनियों में पात्रों को रंगने लगता है, तब अति कर बैठता है। दूसरी ओर जब वह केवल कमजोरियों के वशीभूत पात्रों की असहायता में खो जाता है तब भी प्रकृतवादी रचनाकारों की तरह अति कर बैठता है। इसके ठीक विपरीत पाश्चात्य जगत में उभर आए खल–जीवटों को आकर्षक और मोहक जीवन प्रदान करने की कला ने खलों के प्रति उत्सुकता, पठनीयता और रोचकता प्रदान कर लेखन में अति का लेप भर दिया है। प्रेमचन्द का यथार्थवाद इन तीनों अतियों से मुक्त है। वह इन अतियों से ग्रस्त यथार्थवाद को ही नग्न यथार्थवाद की संज्ञा देते हैं। उनका यथार्थवाद निखालिस वास्तव पर आधारित है।

यथार्थ जीवन को देखता और चित्रित करता है। आदर्शवाद उसमें रंग भरता है। यदि यह कहा जाय कि यथार्थवाद अस्थि–पंजर या कंकाल है और आदर्श उसे सुस्वरूपता प्रदान करने वाली मांसल भरने और संस्कारी सुमनसता है तो इन्हें समझने में आसानी होगी। आदर्श यथार्थ में कल्पना से धारणा भरता है। आदर्श कल्पना भी है, भावना भी है और धारणा भी। कल्पना के द्वारा उसमें प्रेम, प्रणय, वात्सल्य अथवा माधुर्य भाव भरे जाते हैं, जबकि भावना और धारणा जीवन–जीने की दिशा–संधान करती है। इसी कल्पना, भावना और धारणा के विनिवेश से आदर्श का उद्भव होता है। वस्तुतः काम–कला अर्थात् रोमान्स अथवा स्वच्छन्दतावादी अंकन यथार्थ से मुँह फेरना है, पलायन है जबकि आदर्श यथार्थ को भावभूमि प्रदान कर वत्सल बनाता है। जैनेन्द्रकुमार अपनी विशिष्ट दार्शनिक अंदाज में इसे इस तरह कहते हैं कि रोमांस (स्वच्छान्दतावाद) एक साधनाहीन कल्पना है और आदर्श साधना–सम्पन्न। एक जीवन से पलायन है तो दूसरा जीवन से भेंट। प्रेमचन्द वैसे यथार्थवादी हैं जो यथार्थ के अभावों को अपने ढंग से भाव प्रदान करते हैं। फ्रयडवादी यथार्थ पर फ्रायड के सिद्धांतों का, काम–धारणाओं का आरोप करता है, मार्क्सवादी यथार्थ पर मार्क्स के सिद्धांतों का आरोप करता है अर्थ–सत्ता से परिचालित बुर्जुआ और सर्वहारा का आरोप करता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद यथार्थ पर आदर्शों का आरोप करता है। आदर्शों की निरी अभिव्यक्ति अथवा फ्रायड और मार्क्स के सिद्धांतों की बधार साहित्य को साहित्य नहीं रहने दे सकती। अतः आदर्श की अभिव्यक्ति जीवन के कार्य–कलापों में अभिव्यक्त होना चाहिए और वह जीवन–यथार्थ के धरातल पर ही संभव है। कदाचित इसीलिए प्रेमचन्द सौन्दर्य का सन्दर्भ लेते हुए विचार व्यक्त करते हैं,'' हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है; उषा और संध्या की लालिमा देखी है; कल–कल निनादिनी नदियाँ देखी हैं; सुन्दर, सुगन्धि भरे फूल भी दे देखे हैं; मीठी बोली बोलने वाली चिड़ियां देखी हैं; नाचते हुए मोर देखे हैं– यही सौन्दर्य है। इन दृश्यों को देखकर हमारा अन्तःकरण क्यों खिल उठता है? इसलिए कि इनमें रंग या ध्वनि का सामंजस्य है। बाजों का स्वरसाम्य अथवा मेल ही संगीत की मोहकता का कारण है। हमारी रचना ही तत्वों के समानुपात के संयोग से हुई है। इसीलिए हमारी आत्मा सदैव उसी साम्य की, सामंजस्य की खोज में रहती है। साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सांमजस्य का व्यक्त रूप है; और सामंजस्य सौन्दर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हमें वफादारी, सचाई, सहानुभूति, न्यायप्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है। जहाँ ये भाव हैं, वहीं दृढ़ता और जीवन है, जहाँ अभाव है, वहीं फूट, विरोध, स्वार्थपरता है– द्वेष, शत्रुता, मृत्यु है।''

'आत्मा के साम्य, सामंजस्य की खोज' ही आदर्शवाद है और कलाकार के आध्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप और सामंजस्य से सौन्दर्य की सृष्टि ही आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है जहाँ दृढ़ता और जीवन के रूप में भाषा आदर्श के रूप में तथा फूट, विरोध, स्वार्थपरता–द्वेष, शत्रुता, मृत्यु 'अभाव' के रूप में अवस्थित है। स्पष्ट है कि कोई भी लेखक अकस्मात ही आदर्शवादी नहीं हो जाता । याथार्थवादी आदर्शों की, सिद्धांतों को जो अनुभव कर लेता है, वही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर उन्मुख हो सकता। प्रेमचन्द के जीवनानुभव ने लेखन के दीर्घ प्रवास के अनन्तर प्राप्त जागतिक सत्यों ने, जनाकांक्षा और पाठकीय अभिरुचि ने उन्हें यह सोच प्रदान किया है। एक ओर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की धारणा है कि ये दोनों (यथार्थवादी और आदर्शवादी) परस्पर–विरोधी विचार–धाराएँ और कला–शैलियाँ

हैं। इनका मिश्रण किसी एक रचना में संभव नहीं। साहित्यिक निर्माण में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद या आदर्शवाद नाम की कोई वस्तु नहीं हो सकती।... प्रेमचन्द जी अपने विचार और लेखन में आदर्शवादी हैं। आपका चरित्र निर्माण और मनोवैज्ञानिक चित्रण आदर्शवादी है। आदर्शवादी चित्रण से तात्पर्य है, मानव की सद्वृत्ति कृतियों को देखकर हम ऐसा कहते हैं।

दूसरी ओर डॉ. नगेन्द्र मानते हैं कि " आदर्शवाद और यथार्थवाद में मूल विरोध है। पहले का आधार भागवत दृष्टिकोण है; और दूसरे के लिए वस्तुगत दृष्टिकोण आवश्यक है। आदर्शवादी रोमानी नहीं होगा, उसके लिए रोमानी होना सहज है, परन्तु यह भी अनिवार्य नहीं। वह कल्पना–विलासी और स्वप्त दृष्टा न होकर व्यवहारिक भी हो सकता है। उसके आदर्श कल्पना अथवा अतीन्द्रिय लोक के स्वप्न न होकर व्यवहार जगत के नैतिक समाधान भी हो सकते हैं। प्रेमचन्द के आदर्शवाद का यही रूप है, वह रोमानी आदर्शवाद नहीं है, व्यवहारिक आदर्शवाद है। परन्तु यथार्थवाद नहीं है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि जो रोमानी नहीं हैं, वह यथार्थ ही है।"

जहाँ एक ओर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की परिकल्पना को पूर्णतः नकार देते हैं, डॉ. नगेन्द्र किंचित संकोच के साथ प्रेमचन्द से सांहचर्य स्थापित करते दृष्टिगत होते हैं। उनका यह कहना है कि 'वह (आदर्शवादी)' कल्पना–विलासी और स्वप्तदृष्टा न होकर व्यवहारिक भी हो सकता है। उसके आदर्श कल्पना अथवा अतीन्द्रिय लोक के स्वप्न न होकर व्यवहार जगत के नैतिक– समाधान भी हो सकते हैं", तब लगता है कि वह आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच मूल विरोध के बावजूद सामंजस्य की गुंजाइश से इंकार नहीं करते। वह भले ही 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग नहीं करते तथापि जिस व्यवहारिक आदर्शवाद का वह कथन करते हैं, वह 'व्यवहार जगत के नैतिक समाधान' से पुष्ट होने के कारण आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रतीति तो देता ही है। इसी को परिपुष्ट करते जैनेन्द्र कुमार प्रतीत होते हैं जब वह कहते हैं कि "मैं मानता हूँ कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रेमचन्द पहले प्रणेता हैं जो यत्नपूर्वक यथार्थवाद के दबाव से बचने के लिए रोमान्स की गलियों में भूलकर मौज करने नहीं गए। रोमान्स को उन्होंने छोड़ ही दिया हो, ऐसी बात नहीं। उस अर्थ में रोमान्स कभी छूटता है? कोई लेखक कल्पना को कैसे छोड़ सकता है, कल्पना बिना लेखक क्या ? लेकिन अपने ह्रदयग रोमान्स को उन्होंने व्यवहार पर, वास्तव पर घटाकर देखा और दिखाया। उनके साहित्य की खूबी यह नहीं है कि उनका आदर्श अन्तिम है, अथवा सर्वथा स्वर्गीय है। उसकी विशेषता तो यह है कि उस आदर्श के साथ व्यवहार का असामंजस्य नहीं है। वह आदर्श क्या कम ऊँचा है कि वह नीचे वालों को ऊपर उठाकर उनके साथ–साथ रहना चाहता है। इस समन्वय की पुष्टता के कारण ही वह पुष्ट है।"

1.10 इकाई सारांश

उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द अप्रतिम हैं। उन्होंने इनके माध्यम से प्रेमचन्द युग का ही प्रवर्तन किया। उन्होंने साहित्य की विविध विधा पर लिखा और अपने विचार व्यक्त किए। उनके लिए 'साहित्य समाज का दर्पण मात्र नहीं है, वह जीवन की सच्चाइयों का दर्पण है। वह कहते हैं कि " पुराने जमाने में समाज की मजहब के हाथ में थी। मनुष्य की आध्यात्मिक और नैतिक सभ्यता का आधार धार्मिक आदेश था और वह भय या प्रलोभन से काम लेता था।... पुण्य–पाप के मसले उनके साधन थे।... अब साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया है और उसका साधना सौन्दर्य–प्रेम है।" इस साधन से वह सत्य का शोधन, अपने समय का प्रतिनिधित्व और जीवन की आलोचना करता है; मानसिक और आध्यात्मिक पुष्टि प्रदान करता है।

प्रेमचन्द उपन्यास को मानव चरित्र का आख्यान मानते हैं। मानव के चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को अनावृत करना ही उपन्यास का लक्ष्य होना चाहिए। अतएव प्रेमचन्द उस उपन्यास को ही सफल उपन्यास मानते हैं जिसे समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करें और उसके सद्भाव जाग उठें।"

प्रेमचन्द उपन्यास में यथार्थ और आदर्श के संयोजन के पक्षधर हैं। उनके मत में केवल यथार्थ नग्नता, क्रूरता और दैन्य का तो चित्रण करता है, मनुष्य को निराशावादी बनाता है जिससे मानव नाम के प्राणी पर से हमारा विश्वास डिगने लगता है। आदर्श भावना भरकर साहित्य को संप्रेष्य और प्रेरक बनाता है। अतएव यथार्थ अर्थात् भौतिक और आदर्श अर्थात् आध्यात्मिक का समन्वय ही उन्हें साहित्य में अभिप्रेत है।

यथार्थवाद के लिए सोच का विस्तार इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति, फ्रांस की राज्य क्रांति, अमेरिका की राज्य क्रांति, डार्विन के विकासवाद, रूसी राज्य क्रांति, फ्रायड मनोविश्लेषण और मार्क्स के आर्थिक चिन्तन से प्राप्त हुआ। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन वैचारिक क्रांतियों ने व्यक्ति और समाज दोनों को प्रभावित किया। साहित्य में यथार्थवाद का इसी प्रभाव के चलते पदार्पण हुआ।

प्रेमचन्द भारतीय मन के चितेरे थे ही, भारतीय साहित्य में प्राण–प्रतिष्ठित आध्यात्मिक मूल्यों में भी रमे–भीगे थे। यथार्थवाद की उपेक्षाकर साहित्य–सृजन हो नहीं सकता और आदर्श के बिना उसमें सौन्दर्य की सृष्टि नहीं हो सकती। अतः यथार्थ और आदर्श के समन्वय द्वारा साहित्य में लोच और जीवन और ऐसे जीवन–स्पन्दन भरने का विचार प्रस्तुत किया। उनके समय में आदर्शवाद के नाम केवल उपदेशात्मक और सुधारवादी चिन्तन ही चलन में था। प्रेमचन्द ने इसके भिन्न आदर्शवाद की कल्पना की और लेखन में स्वतंत्र मार्ग प्रशस्त किया। अपनी इस विचार–प्रणाली को उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की संज्ञा दी। उन्होंने यथार्थ का चित्रण करते हुए भी यथार्थ समस्याओं के आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किए। उनका अभिप्रेत युग–प्रवृत्तियों और विचारधाराओं के प्रभाव से व्युत्पन्न यथार्थ का संस्कार कर उसे समाजपोषी और जीवनोत्कर्षी बनाना था जो उसमें यथार्थ के सामंजस्य से ही संभव है।

1.11 अपनी प्रगति जाँचिए

1. प्रेमचन्द की साहित्य विषयक धारणा पर प्रकाश डालिए।
2. "साहित्य जीवन की आलोचना है" विषय पर प्रेमचन्द के विचार पर टिप्पणी कीजिए।
3. "उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है" के अनुसार उपन्यास पर प्रेमचन्द की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
4. "यथार्थवाद" की भावभूमि विचार–क्रांतियों के प्रभावों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कीजिए।
5. "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" से प्रेमचन्द का क्या आशय है? आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।,

1.12 नियत कार्य/गतिविधियाँ

– प्रेमचन्द के उपन्यासों का अध्ययन कीजिए।

– प्रेमचन्द के निबन्ध और आकृतियों को पढ़िए।

1.13 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

स्पष्टीकरण के बिन्दु

....

....

....

....

....

1.14 संदर्भ ग्रंथ

1. रामविलास शर्मा–प्रेमचन्द।
2. रामविलास शर्मा–प्रेमचन्द और उनका युग
3. अमृतराय : प्रेमचन्द : कलम का सिपाही
4. अमृतराय–विविध–प्रसंग (तीन खण्ड)
5. अमृतराय : चिट्ठी–पत्री (दो खण्ड)
6. पत्रिकाएँ–

   'उत्तरार्द्ध' का प्रेमचन्द अंक सं. सत्यसात्ती

   'उत्तरगाथा' प्रेमचन्द विशेषांक सं. सव्यसात्ती।

इकाई–2

प्रेमचन्द और गोदान

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 प्रेमचन्द का औपन्यासिक सृजन आदर्श और मोहभंग

2.4 आलोचकों की दृष्टि में गोदान

2.5 गोदान का रचना समय

2.6 गोदान : कथाकार

2.7 गोदान : शीर्षक की सार्थकता

2.8 इकाई सारांश

2.9 अपनी प्रगति जाँचिए

2.10 नियत कार्य

2.11 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

2.12 संदर्भ ग्रन्थ

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में प्रयत्न है कि आप अवगत हों कि–

- गोदान के विषय में कथाकारों और आलोचकों की राय क्या है ?
- गोदान की रचना के लिए प्रेमचन्द का जीवनानुभव और रचना–कौशल का प्रभाव
- गोदान की कथा
- गोदान : शीर्षक के आलोक में

2.2 प्रस्तावना

कोई भी रचना रचनाकार के व्यक्ति जीवन और व्यक्तित्व का आधार लिए बिना नहीं रची जा सकती। यह आधार उसका अपना जीवनानुभव भी होता है और जीवन–विवेक भी। यह उसके जिए हुए के साथ सोचे हुए की समन्वित प्रतिकृति होती है; उसके संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना का पारस्परिक समुच्चय होता है; उसके दीर्घ अनुभव का निचोड़ एक जीवन–दर्शन के रूप में प्रतिफलित होता है, तब वह एक जीवन गढ़ता है।

गोदान प्रेमचन्द की अन्तिम औपन्यासिक रचना है जिसमें उनके जीवन के अन्तिम वर्षों का सोच निचुड़कर आया है। इस समय उन्होंने धन के क्रूरतम सत्य का साक्षात्कार किया है। वह जिस ग्राम–संस्कृति में पले–बढ़े, उसमें धन को तुच्छ, मान और मर्यादा को श्रेयस्कर माना जाता रहा है। धन को कभी–भी आदर्श की दृष्टि से नहीं देखा जाता किन्तु युग की विचारधारा ने धन को इतना महत्व दे रखा है कि उसके सामने मानवता हीन हो गई है; सब ओर लूट–पाट और शोषण ने अपना जाल बिछा रहा है। पूँजीवादी और समाजवादी प्रवृतियों ने मानवीय सोच को प्रभावित किया किन्तु मानवता को पीछे छोड़ दिया।

औद्योगिक क्रांति, प्रजातांत्रिक प्रक्रिया के अभ्युदय और मार्क्सवादी चिन्तन ने साहित्यिकों को उद्वेलित किया और वे अपनी रचनाओं में उनको व्यवहारिक रूप देने में लग कए। रचनाओं में गांधीवाद, मार्क्सवाद, पूँजीवाद आदि उभरा और उसी तरह समीक्षक भी रचनाओं में इन्हीं तत्वों की तलाश करने लगे। इसमें मनुष्य का मानवीय पक्ष ओझल होता गया, परंपरा और संस्कृति का चिन्तन अनपेक्षित रूप से ओछा होता गया।

प्रेमचन्द ने युग देखा, अपने भूत और वर्तमान को देखा और जीवन जीने की कला के लिए क्या अनुकूल है, इसका सतत/ चिन्तन किया। यह चिन्तन उनके औपचारिक सृजन के कालक्रम में विभिन्न वादों और नारों से गुजरकर अपनी देशी–संस्कृति पर आ टिका। यहीं उन्हें जीवन के दर्शन हुए; वह सांस्कृतिक पक्ष के प्रकाश को समझ सके। उसके अनुरूप उन्होंने गोदान में गांव और शहर का चित्र उकेरा। आचार्य नन्दकुमार वाजपेयी कहते तो यह हैं कि गोदान में ग्राम–कथा और शहराती कथा अलग–अलग की जा सकती है। इससे गोदान का संगठन कौशल विवादग्रस्त हो गया है। फिर भी यदि दोनों कथाओं को एकाकार करने के प्रयास में तारतम्य बैठाया जाय तो 'गोदान' के व्यंग्यार्थ को समझने में कहीं कोई कठिनाई नहीं होगी। स्पष्ट भासित होगा कि होरी के रूप में किसान की मृत्यु एक संस्कृति की मृत्यु है जिस पर बदले हुए समय में भी जमींदार, साहूकार, महाजन, उद्योगपति और दार्शनिक चिन्तक विचलित नजर आ रहे हैं।

2.3 प्रेमचन्द का औपन्यासिक सृजन आदर्श और मोहभंग

परम्परा और परिवेश से कटकर कोई कलाकार अछूता रह नहीं सकता। इसका तात्पर्य यह नहीं किवह परंपरा और परिवेश को लीक मानकर सदैव उसी लीक पर चलता है। कलाकार हर रचना में अपने परिवेश और परंपरा से प्रतिक्रिया करता है और हर बार एक नयी परंपरा और परिवेश का सृजन करता है। इस मायने में उसकी रचना पिछली रचना से विद्रोह जैसी होती है। वह अपनी बनती हुई मान्यताओं को तोड़ता है और एक नयी भित्ति की नीव रखता है। विकास की यात्रा दो स्तरों पर होती है, एक तो वह जिसमें वह खाली जमीन पर भवन खड़ा करता है और दूसरा वह किवह खड़े हुए ध्वंस होते भवन को गिराकर उस पर नया भवन खड़ा करता है। कलाकार की विकास यात्रा दूसरे स्तर की विकास यात्रा होती है क्योंकि यथार्थ सदा स्थिर नहीं होता, तरल होता है और यह तरलता परंपरा और परिवेश में निरन्तर बदलाव से उसमें समीकृत होते हैं।

इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि रचनाकार/कलाकार मूर्ति मंजक होता है अथवा मूर्ति–भंजन उसकी प्रकृति होती है। मूर्ति–भंजन को अपने अधिकार के रूप में कभी इस्तेमाल नहीं करता। वह हर पिछली मूर्ति का पुनरावलोकन करता है और उसकी न्यूवता का अवलोकन कर उसने नये सौंदर्य–बोध के अनुरूप गढ़ता है। उसका यह नवगढ़न पिछले का संवर्द्धन अथवा परिमार्जन न होकर नवनवोन्मेषशाणिनी बुद्धिरिति प्रतिभा का प्रतिफलन होता है। इसीलिए यह कहना सर्वथा अनुचित होता है कि कलाकार कलाकार की हर रचना किसी विशेष ठप्पे की मुखापेक्षी अथवा अनुवर्ती होती है। रचनाकार लीक का अभ्यासी तो होता ही नहीं। उपन्यास में तो यह कतई संभव नहीं;

उपन्यास जीवन की आलोचना होता है, उसमें एक जिया हुआ जीवन प्र्यवसित होता है और जीवन युग परिवर्तन के साथ परिवर्तन से आवेष्ठित होकर हर आने वाली पीढ़ी के उच्चतर मूल्यों और जीवन–दर्शन का विध

ाायक होता है। 'गोदान' के होरी का जीवन एक ओर तो उसकी इच्छा–पूर्ति के संघर्ष की चेतना है तो दूसरी ओर नियति के प्रहारों का करुण कलाप; अन्तिम उपन्यास में सृजित यह पात्र प्रेमचन्द के जैसे जीवनानुभव का निचोड़ है। इसी कारण होरा अपने आप में एक आख्यानक बन गया है, जीवनादर्श के रूप में प्रतिष्ठिापित है। एक ऐसा प्रतीक बन गया है जिसका प्रतिरूप उपन्यास–जगत उपलब्ध नहीं। होरी ही क्यों सेमरी और बेलारी भी शोषण और संवेदना के प्रतीक बन गए हैं। 'गोदान' के प्रत्येक पात्र में मानवीय मूल्यों की ऐसी छाप डाल दी गई है कि वे अपने आप में एक ज्वलन्त उदाहरणीय संस्कार के वाचक बन गए हैं। यही कारण है कि 'गोदान' में मर्यादा की जो विचित्र परंपराएँ दिखाई देती हैं, जीवन–बोध में एक विस्मरणकारी ह्रास, विलास, उपहास और परिहास बुना हुआ नजर आता है, वह किसी चेतना के विकास की ओर इंगित करता है। यही कारण है कि 'गोदान' उपन्यास–विमर्श के लिए अब तक के तय–प्रतिमानों से अलग प्रतिमानों की अपेक्षा करता है। इसके निष्कर्ष के लिए विशिष्ट जीवन्त प्रक्रिया और उससे निसृत बोध की व्यापक संहिति की आवश्यकता है। 'गोदान' के इसी विशिष्ट संगठन एवं संयोजन के कारण आलोचक पूर्वाग्रहों से काम लेने पर विवश हो गए; निकष के लिए प्रतिमानों की पूर्ण संकल्पना नहीं की जा सकी। अतः प्रेमचन्द की औपन्यासिक विकास यात्रा से रू–ब–रू होना आवश्यक है।

प्रेमचन्द ने उपन्यासकार के रूप में 'सेवा सदन' के साथ प्रवेश किया। नाम तो उनका धनपत राय था किन्तु लेखक के रूप में वह 'नवाब राय' थे। शिक्षारंभ फारसी से हुआ था। लिखना उर्दू से ही सहज हो सका! उर्दू में वह 'सेवा सदन' से पूर्व असरारे यआविद अर्थात् देवस्थान रहस्य, हमखुर्सा व हयसवाब, किराना, जल्खर–ए–ईसार आदि उपन्यास लिख चुके थे। 'हमखुर्मा और हमसवाब का उन्होंने स्वयं रूपान्तर किया था जो 'प्रेमा' और 'दो सखियों' के विवाह के नाम से प्रकाशित हुआ। 'जलव–ए–ईसार' उनका तीसरा उपन्यास था जो वरदान के रूप में हिन्दी में आया।

'सेवा सदन' प्रेमचन्द का बहुचर्चित उपन्यास है जिसने उन्हें उपन्यास के रूप में प्रतिष्ठा दिलाई। इसे 'बाजारे–हुस्न' शीर्षक से उर्दू में लिखा गया था किन्तु हिन्दी में 'सेवा सदन' पहले प्रकाशित हुआ और उर्दू में 'बाजार–हुस्न' बाद में! 'सेवा सदन' को प्रेमचन्द के पहले हिन्दी उपन्यास की प्रतिष्ठा प्राप्त है। 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' भी पहले उर्दू में 'नाकाम/नेकनाम/शौक्ष–ए–आफियव और चौराने–हस्ती' शीर्षक से लिखे गए। प्रेमचन्द इनके साथ ही साथ हिन्दी रूपान्तरण भी करते चले गए थे। अतः ये दोनों वृहदाकार उपन्यास भी पहले हिन्दी में प्रकाशित हुए; ये अपने उर्दू रूप में बाद में ही प्रकाशित हो सके। हिन्दी में मौलिक रूप से लिखा गया उनका पहला उपन्यास 'कायाकल्प' है। 'कायाकल्प' के बाद लिखे गए उनके समस्त उपन्यास पहले हिन्दी में ही लिखे गए। ऐसा नहीं है कि उनके उर्दू संस्करण नहीं हो सके। 'कायाकल्प' और उसके बाद के उपन्यास भी उर्दू में अनूदित होकर बाद में प्रकाशित हुए।

प्रेमचन्द ने जब उर्दू में उपन्यास और कहानियां लिखना शुरू किया उस समय देवकीनन्दन खत्री शीर्ष पर थे। उनके 'चन्द्रकान्ता' प्रमृति ऐयारी और तिलिस्म प्रधान उपन्यास जलजला बनाए हुए थे। प्रेमचन्द को इनमें रुचि थी। उनका स्कूल के दिनों से ही उर्दू–फारसी के तिलिस्मी दास्तानों से सरबका पड़ चुका था। इनमें रुचि और पठन–पाठन के बाद भी उन्होंने ऐसे उपन्यास और कहानियां रचने में कोई दिलचस्पी नहीं ली। उन्होंने अपना अलग ही रास्ता चुना जो मानव जीवन और जगत से होकर जाता था। यही कारण है कि उन्होंने 'असरार–ए–महाविद' उर्फ 'देवस्थान रहस्य' में देवालयों और तीर्थ–स्थलों में फैले अवाचार, पाखण्ड और भ्रष्टाचार को ही वक्तव्य नहीं बनाया, चरित्रहीन स्त्रियों और वेश्याओं के अशोभनीय और अवांकित आचरण को आलोचना का आधार बनाया, उनकी कथा कही। महत्वपूर्ण यह है कि सम्पूर्ण कथा में कथाकार के रूप में कम ही प्रकट प्रतीत होते हैं, समाज–सुधारक और सभ्यता–समीक्षक के रूप प्रखरतर प्रकट हैं। उस समय चल रहे समाज–सुधार आन्दोलनों की विषय–वस्तु ही स्त्री प्रमुख रूप से थी। रचनाकार अपने समय से विरक्त कैसे रह सकता है। यही तो उसकी सामाजिक–सम्पृक्ति का प्रमाण है। सामाजिक सम्पृक्ति का ही यह प्रभाव है कि प्रेमचन्द हिन्दू–समाज में व्याप्त कुरीतियों का यथार्थ वर्णन कर सके। प्रेमचन्द पर आर्य समाज का प्रभाव स्पष्ट है। उसके ही अनुसार वह समाज को तर्क संगत, आधुनिक और नैतिक रूप

से स्वस्थ रूप देने के पक्षपाती हैं। मनुष्य–मनुष्य के बीच फासला पैदा करने वाली बातें उन्हें कभी रास नहीं आई। स्त्री–पुरुष संबंधों के बीच दरार पैदा करना उन्हें कतई पसन्द नहीं था। अमीर–गरीब के बीच की खाई उन्हें कुरेदती थी। जमींदार और किसान के बीच के शोषक, शोषित, उत्पीड़क–उत्पीड़ित रिस्ते उन्हें अमानवीय और कटु लगते थे। ईश्वर के नाम पर छल और कपटाचरण उनकी आंखों में खटकता था। यही सब उनके चिन्तन और मनन का आध ाार बनी और इसीलिए उनके उपन्यास आरंभिक रूप से इन्हीं तथ्यों और तर्कों पर आधारित थे। 'असरार–ए–यआविद' में जहां देव–स्थल के अनुचित, तिरस्करणीय कृत्य उजागर हैं तो वहीं 'हमखुर्मा' और 'हमसवाब' में विधवा विवाह आदर्श–समाजी रंग में उभरकर प्रत्यक्ष हुआ है।

अपने तिलिस्मी उपन्यासों से देवकी नंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी ने जो रोचक विशाल तिलिस्मी भवन तैयार कर रखा है, उसमें रोचकता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। पाठकवर्ग को लेखमात्र भी बौद्धिक सामग्री प्राप्त नहीं थी। इससे पाठकों का ऊबना स्वाभाविक था। हिन्दी में किशोरीलाल गोस्वामी, कुँवर हनुमन्तसिंह, गिरिजा नंदन तिवारी, जयरामदास गुप्ता, चन्द्रशेखर पाठक आदि वेश्याओं के जीवन पर उपन्यास रच चुके थे। उर्दू में मिर्जा हादी हस्वा 'उमरावजान अदा' वैश्या जीवन पर ही लिख चुके थे। इस दृष्टि से प्रेमचन्द को वेश्या–जीवन पर लिखने के लिए दिशा प्राप्त होना स्वाभाविक सा प्रतीत होता है। उन्होंनें वेश्या–जीवन से संबंधित समस्याओं को लेकर 'सेवा सदन' लिखा। ध्यान देने की बात है कि प्रेमचन्द ने 'सेवा सदन' में इस समस्या का निर्वाह 'उमराव जान अदा' की तह पर नहीं किया। किशोरीदास गोस्वामी के उपन्यास 'स्वर्गीय कुसुम' से भी उन्होंने भिन्न दृष्टिकोण अपनाया। 'सेवा सदन' शीर्षक का चुनाव भी उर्दू 'बाजार–ए–हुस्न' से अधिक संकेतात्मक था। सेवा सदन में वेश्यावृत्ति पनपने का कारण उसको प्रथा के रूप में चित्रित नहीं है और न वह नवाबी दौर अथवा किसी स्वभ्राज्यवादी प्रवृत्ति के अनुगमन के यप में लिया गया है। 'सेवा सदन' में वेश्वावृत्ति के लिए विवशता को कारण बनाया गया है। विवशता अनेक बार तिलक और दहेज के कारण उत्पन्न हुई है तो अनेक बार पति की उपेक्षा, प्रताड़ना, अविश्वास और परित्याग के कारण व्युत्पन्न है। समाज की ऐसी नारियों के प्रति उपेक्षा, विरार्हण और सहानुभूति की शून्यता ही जिम्मेदार है जिसके लिए समाज को जागरुक होना होगा और यह जागरुकता नारी की अपनी चेतस्क्रियता से आरंभ होना चाहिए। मध्यवर्ग की वैचारिकता से व्युत्पन्न यह समस्या मध्यवर्गीय समाज के संयोजन से समझी और सुलझाई जा सकती है। प्रेमचन्द ने यह अच्छी तरह समझ लिया था। यही कारण है कि प्रेमचन्द के उपन्यासों का वक्तव्य मध्यवर्ग पर केन्द्रित है जबकि उनके पूर्व के उपन्यासों में मध्यवर्ग की चिन्ता और उसकी समस्याओं पर किंचित ही ध्यान आकर्षित किया गया है। उनमें कथासूत्र जमींदार, सामन्त, समृद्ध, ठाकुर, समृद्ध ब्राह्मण अथवा व्यवसायी वर्ग की प्रेमकथा ही विलासपूर्वक अंकित हो सकती है। इनमें विशिष्ट दरबारीपन और चाटुकारिता की चुस्कियाँ तो है, समस्या और समस्या का निराकरण पूरी तरह मौन है। यहां तक कि पात्रों के नामों में भी संभ्रान्तवर्गीय छाप उपलब्ध ा है। इसके विपरीत प्रेमचन्द ने राजाधर, पदमसिंह, मदन सिंह के परिवारों का चित्रण मात्र नहीं किया, उनकी आर्थिक स्थितियों का आकलन किया है, उनकी नैतिक दुर्बलता और वैचारिक अनिश्चय और अस्थिरता आदि का विस्तारपूर्वक चित्रण किया है; पारिवारिक और परिस्थितिक घटनाचक्रों को विश्वसनीयता के साथ प्रस्तुत किया है। स्पष्टतः 'सेवा सदन' ने हिन्दी के कथा–संसार में बौद्धिक चेतना में प्रवेश किया, मात्र भाव ही नहीं, भाव के साथ ज्ञान ने भी प्रवेश किया। निश्चित रूप से इससे हिन्दी कथा संसार में बदलाव के द्वार अनावृत्त हुए। 'सेवा सदन' से उपन्यास कला में कर्म ने प्रवेश किया।

'सेवा सदन' के पूर्व के उपन्यासों में कुछेक अपवादों को छोड़कर घटनाओं की बहुलता देखने में आती है या फिर नारी सौंदर्य, श्रृंगार, धार्मिक–नैतिक उपेदश, आध्यात्मिक प्रवनों आदि का विवेचन प्राप्त है। 'सेवासदन' से ऐसे एपन्यासों की परंपरा प्रारंभ होती है जिसमें क्रिया–व्यापार की भूमिका ने घटनाओं का स्थान ले लिया है। इन क्रिया–व्यापारों की उनकी प्रेरक शक्तियों से इस तरह संबल प्राप्त हुआ कि उसमें कथात्मक–रोचकता का सन्निवेश हो गया। प्रेरक–शक्तियों के प्रभाव के फलस्वरूप क्रिया–व्यापार भावनाओं की ऐसी सन्निधि प्राप्त हो जाती है कि वह

पाठक के औत्सुक्य को तो बनाए रखती ही है, उसे उसके आगामी मोड़ों की कल्पना करने के लिए भी उत्प्रेरित करता है। यह कौशल पाठक में जिज्ञासा और चाव को बराबर बनाए रखता है। सेवासदन में भावनाओं से उत्प्रेरित कार्य–व्यापार उसकी भवन–सामग्री है। उनके ईंट–मिट्टी–गारे और रंग–रोगन से उसका शिल्पात्मक विकास हुआ है। घटनाओं का सेवासदन में अभाव है। अपने अनुवर्ती उपन्यासों में उन्होंने अवश्य इससे मुक्ति पाने की कोशिश की है और उसमें प्रवीणता भी अर्जित की है। किस्सागोई, कथा–दर–कथा का समेकन, नराटकीयता आदि 'सेवासदन' में उपलब्ध है। चन्द्रकान्ता, परीक्षा गुरु आदि की कथा शैली, किस्सागोई से सेवासदन युक्त नहीं हो सका। इसके पूर्व के उपन्यासों में किस्सागो प्रत्यक्ष होता था, पाठक को सम्बोधित करता हुआ अपनी कथा कहता चलता था, सेवासदन कथन–भंगिया में करवट ली, कथाकार अब पाठकों को, नानी–दादी की कहानियों की भांति श्रोता से हूं–हकार की अपेक्षा में बार–बार सम्बोधित नहीं कहता। वह परोक्ष–रूप से कथा में उपस्थित हो गया। इस प्रक्रिया में पाठक को पात्र की जेहन में उतरने का अवसर प्राप्त हो गया। अब कथाकार कथा के साथ–साथ चलता है, सहयात्रा करता है और यथावसर अपनी बात भी कहता है, पात्र से तो कहलवाता है ही।

इस रचनाक्रम में प्रेमचन्द में भाषा–संबंधी सोच और विस्तार स्पष्ट नजर आता है। यह परिवर्तन उनके अपने मनन और अभ्यास का परिणाम है। फारसी के उपन्यासों के अध्ययन मनन से जहां उनके असरार–ए–यआविद में उर्दू–फारसी शब्द का प्रभाव स्पष्ट है। तदैव इसमें तुकबन्दी है, कृत्रिम सीति है। हमखुर्मा और हयसवाय में वह इससे मुक्त होकर स्वयं स्फूर्त गद्य पर उतर आते हैं तथापि उसका हिन्दी रूपान्तर प्रेमा की बोली देवकी नन्दन खत्री के उपन्यासों की भाषा के निकट है जो प्रेमचन्द के इनके उपन्यासों से गहरे गुजरने का प्रमाण भी है और क्रमशः सीखते हुए स्वयं शिक्षित होने का उपक्रम है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाषा निर्विवाद रूप से देवकीनंदन खत्री की भाषा परिष्कृत संस्करण है जिसे उन्होंने स्वयं संस्कृत किया और सिरजा है।

सेवासदन के बाद को प्रेमचन्द की औपन्यासिक कृति है, 'प्रेमाश्रम'। भारत ब्रिट्रिश उपनिवेश था। उनके शासनकाल में किसनों और जमींदारों के ताल्लुकौ का वर्णन है और यह झलकाने में समर्थ है कि भारत विषायता उपनिवेश के रूप में उसके आर्थिक शोषण का शिकार हो रहा है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अंग्रेजी शासन ने मानवीय मूल्यों और अधिकारों की धज्जियां उड़ाई, दमन, अत्याचार और उपेक्षा की नयी हदें स्थापित कर दी थी। मानवीय शील और संकोच की भाषा को तो वह घोलकर पी गए थे। भारतीय जन के श्रम को शोषण और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन उनका प्रमुख लक्ष्य था और इसकी प्राप्ति के लिए उसने प्रशासन, जमींदार सामन्त, साहूकार और महाजन वर्ग को कड़ी के रूप में इस्तेमाल किया। इस वर्ग ने भी अने स्वार्थ की सुरक्षा और शोषण की सामर्थ्य प्राप्ति के वशीभूत अंग्रेजी सरकार की प्राण–पण से सेवा और सहायता की।

इस काल में साहित्यिकों को विलायती शासन के इरादों का भली–भांति ज्ञान हो चुका था। इस पर भी बहुतेरे कथाकार उनके दमन और आतंक से इस तरह मस्त थे कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रायोजित आर्थिक–शोषण, शिक्षा का प्रसार, देश की प्रगति, उद्योग–धंधों और कृषि के विकास, सामाजिक सुधार आदि का तो वर्णन किया किन्तु शासन का विरोध करने का साहस नहीं कर सके। जमींदारों द्वारा किसानों का शेषण किया जा रहा था, सरकारी अमला रिश्वतखोरी और अत्याचार में तर–बतर था, पुलिस विभाग में फैला भ्रष्टाचार मात्र इंगित ही हो पाते थे। प्रेमचन्द ने उनकी नीतियों का विरोध करने का साहस किया और राष्ट्रीय चेतना के जगाने का यत्न किया। 'खोजे–वतन' ने शासनाधिकारियों की नींद उड़ा दी और वे उनके कोप के शिकार हुए। स्पष्टतः प्रेमचन्द के मन में घर कर ब्रिटिश सरकार का मानव–मूल्य विरोधी, पाशविक व्यवहार अपनी अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रहा था। यद्यपि 'जलव–ए–ईसार' में उन्होंने देशभक्ति को उल्कारने का मन बनाया तो भी कथा स्पष्टतः अभिव्यक्त न हो सकी।

प्रेमाश्रय और उसके बाद के उपन्यासों में प्रेमचन्द का देशप्रेम निखरकर सामने आया है। इसमें उन्होंने परतंत्रता के मूल में गड़ी सचाई को व्यापक फलक पर विस्तार कर प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता से प्रेमचन्द का तात्पर्य मात्र राष्ट्रप्रेम की भावनात्मक समस्या नहीं है, वह देश के आर्थिक शोषण और दमन से गहरे जुड़ी है। यद्यपिइ न उपन्यासों में स्वाधीनता संग्राम कथा के समांतर नहीं चलता तथापि उन्होंने उपनिवेशवादी शासन के विरुद्ध अपने भीतर उठ रहे ज्वार को व्यक्त करने से नहीं रोका और न ही किसी प्रकार से उसे शमित करने की कोशिश की। वस्तुतः प्रेमचन्द की कथा व्यवहारिक दृष्टिकोण को लेकर चलती है और उसके निर्वाह में दत्तवित्त रहता है। वह यह भली–भांति झलका सके कि किसानों की निर्धनता, उनकी दयनीय दशा और अमानवीय परिस्थितियों में जीने की विवशता ब्रिटिश सरकार की दमननीतियों और शोषण विधियों के चलते है, उनकी उपज है।

'प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, गोद्यन आदि में किसान–जीवन की त्रासदियों का विशद चित्रण है जो यह दर्शाने में समर्थ है कि किसानों की दुर्दशा का प्रमुख कारण लगान का अत्यधिक होना है जिसके लिए उसने जमींदारों से दुरभिसंधि कर रखी है और इसके फलस्वरूप उन्हें किसानों पर अत्याचार करने की खुली छूट प्राप्त हो गई है। जमींदार के कारिन्दे और सरकारी कर्मचारी इसे वसूलने के लिए निर्दयता और क्रूरता की किसी भी हद तक जा सकते थे। परिणामस्वरूप किसान कर्ज लेने के लिए विवश होते और ऋणग्रस्तता का शिकार जीवन–पर्यन्त बने रहते। किसानों की सम्पत्ति घर और खेत क्रमशः जमींदारों, महाजनों और बड़े किसानों के होते चले जाते, वे निर्वासित होते और विवश होकर कृषि–मजदूर अथवा मिल मजदूर बन जाते। जमींदार लगान मात्र वसूल नहीं करते थे, लगान वसूली का कमीशन तो प्राप्त करते ही थे, किसानों से बेगारी, चन्दा, सगुन, डांड़ आदि भी वसूल करते थे। कहने का तात्पर्य यह कि उन्हें किसानों को हर तीरके से लूटने का अधिकार शासन से हस्तगत था। चूंकि वे सरकार की स्थिरता और मजबूती के लिए स्तंभ का काम करते थे, इसलिए उन पर सरकार किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं लगाती थी। स्पष्टता जमींदार और महाजनों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार बेरोकटोक किसानों और कृषक–मजदूरों का शोषण करती थे, जमींदार और महाजन तो करते ही थे। शोषण के इस यथार्थ को प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, कायाकल्प और गोदान में साफ–साफ गोचर देखा जा सकता है। सर्वज्ञात है कि लगानबन्दी आन्दोलन भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण आंदोलन था। किसानों के इस संघर्ष का प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में अच्छा चित्रण किया है। प्रेमाश्रय, कर्मभूमि और कायाकल्प के छोटे–छोट किसान और कृषक मजदूर जमींदारों द्वारा की गई लगान–वृद्धि, फसल न होने पर लगान वसूल का विरोध करते हैं। किसान और किसान–मजदूर सब एकजुह हैं किन्तु सरकार जमींदारों का साथ देती है। वह यथार्थ किसी से छिपा हुआ नहीं है। इतिहास इसका साक्षी है। किसानों और मजदूरों का नेतृत्व करने वाले गांधीवादी थे। गांधी का युग ही थ वह। फिर भी किसान बीच–बीच में हिंसा पर उतर आते थे। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इस यथार्थ को प्रेमचन्द के उपन्यासों में पूरी विश्वसनीयता से वर्णित किया गया है। इतना अवश्य है कि प्रेमचन्द के किसी भी उपन्यास में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम की यह लड़ाई खुलकर सामने नहीं आ सकी तो भी उनकी कुछेक कहानियों में असहयोग, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन, शराबबन्दी आदि आन्दोलन प्रखर हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में इनका चित्रण परोक्ष रूप से ही हो सका है। कारण स्पष्ट है कि प्रेमचन्द का उद्देश्य घटना–चित्रण नहीं, बल्कि मानवीय जीवन का उद्घाटन रहा है और इस कारण वह कार्य–व्यापार की जटिलता का वितान तानने में व्यस्त रहे हैं।

रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि में जो समितियां हैं, उनका उद्देश्य सरकार का तख्ता पलटना कदापि नहीं। इन सेवा समितियों का उद्देश्य जमींदारों और सरकारी कर्मचारियों में समझ विकसित कर किसानों की तकलीफ दूर करना है। वास्तविकता यह है कि प्रेमचन्द उनके सुप्त मानव और मानव में निहित देवत्व को जमाने का प्रयास करते रहे हैं ताकि वे अपने ही जैसे लोगों की तकलीफ समझ सकें। प्रेमचन्द ने सरकारी दमनचक्र का जो चित्र खींचा है वह यथार्थ और यार्थिक है। इसीलिए उन्होंने उस शिक्षित वर्ग को विशेष रूप से निशाना बनाया है जो अपने स्वार्थ के लिए अपनों की हानि और सरकार का समर्थन करते हैं और शोषण में बराबरी के भागीदार हैं।

कर्मभूमि में अछूतों के मन्दिर प्रवेश की समस्या को उठाया गया है। निम्न वर्ग की वसावट की समस्या इसी अस्पृश्यता के कारण विकराल है और इस समस्या को जन्मान्दोलन के रूप में चित्रित किया है। 'गोदान' में वह इससे आगे बढ़ जाते हैं और अनुभव करते हैं कि जब तक किसान संगठित नहीं होते तब तक वे सरकारी दमन और शोषण का मुकाबला नहीं कर सकते। अपने इस अनुभव और निष्पत्ति को व्यापक रूप से विवेचित करने के लिए औपन्यासिक तौर पर प्रस्तुत नहीं कर सके। उनमें ऐसा विचार आलोड़ित होता अवश्य प्रतीत होता है।

विहंगम दृष्टि से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द उपनिवेशवाद और औपनिवेशिक सरकार के प्रबल विरोधी थी। अन्ततोगत्वा रियासती राजाओं, तालुकेदारों, महाजनों, सूदखोर, साहूकारों, पूंजीपतियों, सरकारी कर्मचारियों, अंग्रेज परस्त बुद्धिजीवियों, अंग्रेजी शिक्षा पद्धति और न्याय पालिका का विरोध औपनिवेशिक शासन का विरोध है ही। किसानों, मजदूरों, शोषितों, वंचितों, स्त्रियों, साम्प्रदायिकता से पीड़ितजनों की मुक्ति स्वतंत्रता आन्दोलन का ही अंश है और इनके प्रति प्रेमचन्द की अंतरंग सहानुभूति है। यद्यपि उन्होंने स्वाधीनता को लेकर अपने को पूरी तरह मुकुबिल नहीं किया है तो भी वह उसके प्रति निरपेक्ष नहीं थे। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे पत्र में उन्होंने मनसा अभिव्यक्त की थी किवह अपने 'जीवन के बचे–खुचे वर्षों में' ऐसे साहित्य–सृजन की इरादा रखते हैं जिसका उद्देश्य देश की आजादी हो।

1921 में प्रेमचन्द सरकारी नौकरी में थे। नौकरी में रहते अपनी इच्छानुसार कुछ कर पाना संभव नहीं होता। सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने 'रंगभूमि' लिखा। रंगभूमि स्वतंत्रता आन्दोलन का विषय–प्रवेश और प्रवर्तन है। यद्यपि यह चित्रण सीधे–सीधे प्रत्यक्ष तौर पर दृश्य नहीं होता तथापि अप्रत्यक्ष हो सही, समस्याओं को उठाया तो गया ही है। कायाकल्प, गवन और कर्मभूमि में अनेक प्रसंग इस तरह अनुस्यूत हैं कि वे स्वाधीनता संग्राम से सीधे–सीधे लगे–पगे हैं। अप्रत्यक्ष रूप से ही सही प्रेमचन्द जो कभी कर सके, वह सरकारी कोप से अपनी रक्षा करते हुए ही किया जा सकता था। आजादी की लड़ाई उस समय की ज्वलन्ततम और कठिनाइयों से भरी लड़ाई थी। वह एकाकी रहकर और वह भी परिवार की गुजर–बसर की जीविका को संकटग्रस्त करके नहीं लड़ी जा सकती। फिर भी प्रेमचन्द ने पूरी ईमानदारी के साथ आजादी की लड़ाई का रूपायन किया।

प्रेमचन्दकालीन समकालीन मध्यवर्गीय समाज अनेक प्रकार के सामाजिक बंधनों से परंपरा के नाम पर जकड़े हुए थे; उसकी अपनी नैतिक धारणाएं जड़त्व का पर्याय बन चुकी थी, ऐसे समय में प्रेमचन्द ने उनके मनोजगत में आलोचनात्मक दृष्टि से प्रवेश किया, मनन किया, विश्लेषण किया। यही विश्लेषण, चिंतन और मनन उनके उपन्यासों में रूपायित है। अपने पहले उपन्यास सेवासदन से ही उन्होंने मध्यवर्गीय जीवन को विवेच्य बनाना शुरू कर दिया था। रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन आदि में इस मध्यवर्गीय चेतना को अधिक विस्तार एवं गहराई प्राप्त हो सकी। सेवासदन के कृष्णचन्द्र और पद्मसिंह शर्मा, रंगभूमि के ताहिर अली, निर्मल को उदयमानुलाल और मुंशी तोताराम, गबन के मुंशी दयानाथ और इन्दुभूषण आदि मध्यवर्गीय जटिलताओं से ही ग्रस्त हैं। सेवासदन के कृष्णचन्द्र ईमानदार दारोगा हैं और खा–पीकर अपनी आमदनी चट कर देते हैं। बेटी के विवाह के लिए उन्हें अपनी ईमानदारी छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं। मुकदमें में रिश्वत लेते हैं और पकड़े जाते हैं। निर्मला के वकील साहब भी अपनी आय से अधिक खर्च करते हैं जिससे निर्मला के विवाह की समस्या पैदा हो जाती है और अन्ततः उसका विवाह अधेड़ तोताराम से हो जाता है। मुंशी तोताराम स्वयं नैतिक–मूल्यों की विसंगतियों के आगार हैं। गबन की तो पूरी की पूरी संभव मध्यवर्गीय विरोधामासों से कढ़ी और बुनी गई है। प्राथमिक रूप से प्रेमचन्द मध्यवर्गीय समाज की फिजूलखर्ची से व्यथित हैं। यह समाज अपनी चादर देखकर पैर नहीं पसारता। मितव्ययिता का आवरण यदि वह कर सके तो जीवन की अनेक समस्याएं आसानी से सुलभ जाएँ।

मध्यवर्गीय समाज की एक अन्य विडम्बना चारित्रिक दृढ़ता का अभाव है। चारित्रिक दृढ़ता की इस कमजोरी के कारण वह स्वयं तो समस्या ग्रस्त होता ही है, पूरे समाज को समस्यागस्त करता है। सेवासदन में पं.

उमानाथ की पत्नी द्वारा कृष्णचन्द एवं परिवार की उपेक्षा, रंगभूमि में ताहिर अली के परिवार में सौतेली माताओं द्वारा कपट—व्यवहार, कायाकल्प में मुंशी वज्रधर की स्वार्थपरता और चाटुकास्वृत्ति, निर्मला में मुंशी तोताराम का अपने पुत्रों से ओछा व्यवहार करना, कर्मभूमि में अमरकान्त की चारित्रिक पतन आदि ऐसे प्रसंग तत्कालीन मध्यवर्गीय समाज की तस्वीरें हैं जो मध्यवर्गीय जीवन में रचे—बसे थोथेपन का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं और जिसके फलस्वरूप वह समस्याग्रस्त है।

समाज और परिवार में नारी भारतीय समाज की महत्वपूर्ण कड़ी है। उसकी स्थिति की शोचनीयता और अन्ध—श्रद्धा के साथ जीवन—यापन ने न जाने कितनों के जीवन में दुःख का सैलाब भर दिया है। उसकी परंपरागत और जड़ स्थिति में सुधार के लिए भारतीय नवजागरण का आन्दोलन संकल्पित है। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपनयसकारों ने भी नारी स्थिति को अपना वक्तव्य बनाया है और उनमें सुधार के लिए प्रतिबद्धता जताई है। हाँ, ये प्रबुद्ध उपन्यासकार नारी विषयक परम्परागत धारणाओं और संस्थिति में किसी प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन के पक्ष में नहीं दिखाई देते। वे नारी की तत्कालीन स्थिति, आचरण और व्यवहार के विरोध में खड़े होने की बजाए उससे संतुष्ट हैं, उनकी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति में किसी भी प्रकार सुधार की अपेक्षा नहीं रखते। प्रेमचन्दकालीन समाज में नारी, विशेष रूप से मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय नारी दोहरी दासता में जीने के लिए अभिशप्त थी। वह न तो अपनी जीविका अर्जित करने के लिए स्वतंत्र थी और न ही उसे पारिवारिक सम्पत्ति में भागीदारी का अधिकार था। शिक्षा से तो वे लगभग वंचित थीं। घर में होती तो गृहणी बनकर, घर के बाहर रहती तो वेश्या बनकर। लड़कियों के विवाह के लिए दहेज जुटाना एक समस्या था, उनका विवाह होना तो जरूरी था ही। सामाजिक बंधनों और परिपाटियों के अनुसार स्त्री की जिन्दगी गुलामी की पर्याय बन गई थी। तिलक—दहेज आदि देने की स्थिति न होने के कारण अपनी कन्याओं का आयोस्य, निर्धन या अधेड़ बूढ़ी से कर देते थे। लड़कियों की जिन्दगी नरक बन गई थी। सेवासदन और निर्मला में प्रेमचन्द ने इस यथार्थ का चित्रण किया है। गवन में पति की मृत्यु के बाद रतन की दुर्दशा विधवा की जीती—जागती तस्वीर है। रंगभूमि में अभिजात वर्ग की इन्दु की स्थिति भी दासता से जकड़ी हुई है। प्रेमचन्द के नारी—पात्र अपनी सामाजिक स्थिति से व्यग्र हैं किन्तु विद्रोह करने की मानसिकता में नहीं है। सेवासदन की सुमन तेजवान है, पुरुष समाज के प्रति विद्रोह की भावना से भरी हुई है किन्तु आदर्शों की बलि चढ़ जाती है। सेवासदन की शान्ती प्रेमाश्रम की श्रद्धा और विद्या, रंगभूमि की सोफिया, गबन की जालपा, कर्मभूमि की सुखदा और गोदान की यातनी जैसी विद्रोहणी भी अन्ततोगत्वा हार सी जाती है और पुरुष—समाज के षड्यंत्र का शिकार हो जाती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों को लेकर आलोचकों ने अनेक प्रश्न उठाए हैं। गोदान उन सभी प्रश्नों के उत्तर देता प्रतीत होता है। जनजीवन तथा समाज की धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियों के जितने वैविध्यपूर्ण चित्र गोदान में उपलब्ध हैं, उसने सम्पूर्ण उपन्यास साहितय में नहीं हैं। जीवन के उत्तरवर्ती कालखण्ड में प्रेमचन्द का विश्वास आन्दोलनों और विचारधाराओं से उगमगा सा गया था। क्या उसकी की यह परिणति नहीं है कि 'गोदान' का प्रधान नायक होरी शुरू से आखिर तक का नियति की चक्की में पिसता चला जाता है। ऐसा नहीं कि उसने अच्छे दिनों के लिए प्रयत्न नहीं किए या कम किए हैं। सच तो यह है िकइस उपन्यास तक आते—आते प्रेमचन्द अपने आपमें पूरी तरह आ गए थे। उपन्यास एकाधिक नहीं, समस्त पात्र इस बात की गवाही दे रहे हैं कि प्रेमचन्द स्वयं ही अत्यन्त ही सरल स्वभाव और चित्त के थे। जमाने की धूर्तता, मक्कारी, छल—कपट और बहुरूपिया चेहरों से अच्छी तरह अभिज्ञ थे। इस अभिज्ञता के कारण ही दुनिया की सारी जटिलताओं ने उन्हें इतना मथा िकवे निरीह हो गए। यही तो वह अनुभव है जिसे व्यक्त करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं कि 'दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता तो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'गोदान' का प्रत्येक पात्र एक विशेष वर्ग की प्रवृत्तियों का द्योतक और संवाहक है। इन्हीं वर्ग—गत चरित्रों को लेकर आलोचकों ने गोदान पर आक्षेप किए हैं। आलोचक यह समझने को

प्रस्तुत नहीं कि इस तरह का वर्गगत चरित्र–चित्रण मनोरंजन के रंगमहल से नहीं किसी विशेष–प्रयोजन की रंगभूमि से किए जाते हैं। गोदान में जिस तरह की कथा–श्रुति है वह व्यक्तिगत चरित्रों को लेकर अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। कांक्ष्व आकांक्षा को स्वरूपता प्रदान करने के लिए और उद्देश्य के प्रतिपादन के लिए वर्गशत चरित्र का अंकन अपरिहार्य हो जाता है। 'निर्धन से निर्धन किसान का भी हृदय मोम के समान कितना मुलायम होता है कि कर्ज से दबे होने पर भी सुख के दिनों में सब भूलकर और अधिक कर्ज लेने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, लेशमात्र नहीं हितकर्ता, संकोच तो करता ही नहीं। समाज की सभी वर्जनाओं, लोकनिन्दा, घृणा और कुत्सा को झेलते हुए भी सामाजिक बंधनों की उपेक्षा का परजाति की लड़की, बाल–विधवा झुनिया और मातादीन की हार्दिक चाहत सिलिया चमारिन को शरण देता है। उस समय उसका समय कितना विशाल और उदार होता है यह कोई मानवता का पुजारी ही समझ सकता है। उसकी पत्नी सिलिया को भी कम उदार हृदय वाली नहीं समझा जा सकता। झुनिया के घर आते ह ीवह रात को भयंकर सर्दी में खेत की रखवाली करने वाले होरी के छप्पर तक पहुँच जाती है। रास्ते भर उसे उत्तेजित करती हुई घर लाती है। घर आते ही धनिया की सिसकियों में दम्पत्ति का सारा क्रोध कपूर हो जाता है। झुनिया की पीठ पर जैसे ही होरी–धनिया के अभय–दान की थाप पड़ती है, मनुष्यता धन्य हो जाती है।

प्रेमचन्द के गोदान में ग्राम्य जीवन के और साथ ही साथ पनपती साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव के जो यथार्थ चित्र उकेरे हैं। वे भली प्रकार प्रतिपादित करते हैं कि जिस आदरविद और आदर्शन्मुख यथार्थवाद का उन्मुखीकरण हमें उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों में मिलता है वह गोदान में नहीं है। कुल मिलाकर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुखी और विकसोन्मुखी विचारधारा यहां आते–आते समाप्त हो गई। 'गोदान' का कोई एकोन्मुखी उद्देश्य, अभीष्ट अथवा प्रतिपाद्य प्रतीत नहीं होता। युग की परिस्थितियों और उनके यथार्थ स्वरूप की झाँकी, क्या पूरी वाटिका को समवेत रूप से एक ही स्थान पर एक ही दृष्टि से देखने के लिए कथासकार ने पूरे उपन्यास की योजना की है।

'गोदान' की बीसवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध का हिन्दी साहित्य के विकास का अग्रदूत कहा जाता है। वह साहित्य को मनोरंजन के रंगमहल से निकालकर जनता के जीवन के बीच प्रतिष्ठित करने की कहानी है। गोदान भारतीय संस्कृति और लोकपरंपरा को साथ लेकर चलने वाले भारतीय कृषक वर्ग के संघर्षरत जीवन की तपस्या का यथार्थ चित्र है, संस्कृति विरोधी शोषकों की महाजनी सभ्यता और काले–कारनामों का इतिहास है।

2.4 आलोचकों की दृष्टि में गोदान

अपनी कृति के संबंध में अपना वक्तव्य देने की परंपरा साहित्य में रही है। इसे कभी तो 'अपनी बात', कभी 'भूमिका' और कभी 'पुरोवाक्' आदि के श्शीर्षक के अन्तर्गत लेखक कहते हैं। इसके माध्यम से कृति से गुजरने में पर्याप्त सफलता मिलती है। कृति की राह से गुजरने के लिए कृति के विषय में कृतिकार का वक्तव्य महत्वपूर्ण होता है, भले ही वह भुलावे में डालने का उपक्रम हो; जैसा कि आलोचकों का मानना है, कामायनीकार 'प्रसाद' ने कामायनी के आमुख में किया कि उसके पात्र वेदकालीन अथवा ऐतिहासिक है। फलतः उसके अनेकविध निरूपण सम्पन्न हो सके किन्तु प्रेमचन्द ने ऐसी कोई बात कहीं नहीं कही फिर भी आलोचक ऐसा निष्कर्ष निकाल बैठे हैं कि गोदान होरी का गोदान नहीं, लेखक की आस्था का भी गोदान है। कदाचित् वह होरी के रूप में गोदान में अवतरित है तो उनका प्रतिरूप मेहता में प्रतिबिम्बित है।

यद्यपि उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि "रंगभूमि का बीजांकुर हमें एक अन्धे भिखारी से मिला जो गांव में रहता था।" एक अन्य स्थान पर कहा है कि "मैने सूफिया का चरित्र मिसेज एनीबेसेंट से लिया है, यह सच है।" रचनाकार के किन्ही पात्रों की प्रेरणा उन्हें जीवन जगत् और परिवेश से प्राप्त होती है और वे उनके जीवन और विचारों के प्रभाव में गठन करते हैं, किन्तु इससे यह अर्थ निकालना अति होगा कि उन चरित्रों के गढ़न के लिए ही सम्पूर्ण उपन्यास अथवा महाकाव्य की रचना की हो। ऐसे चरित्रों का सदाशय प्राप्त कर वह अपने युग–जीवन, तत्कालीन

समस्याओं और स्वप्नों को मूर्त रूप देने के संकल्पित होता है। अतः वह युग–जीवन को अपने जीवनानुभव से, अपने व्यक्तित्व से संपृक्त कर कृति की रचना करता है। प्रेमचन्द ने निश्चित रूप से अपने उपन्यासों के लिए युग–जीवन को प्रभावित करने वाले चरित्रों से लिए किन्तु उपन्यास में अपने व्यक्ति को अन्तर्विष्ट किंए बिना नहीं रह सके। कोई भी कलाकार ऐसा नहीं कर सकता। उपन्यास की परिभाषा देते हुए एक उपन्यासकार के धरातल से वह कहते हैं कि "उपन्यास उपन्यासकार के आस–पास के जीवन का प्रतिफल है और यह प्रतिफलन उपन्यासकार मानव–चरित्र के चित्रण द्वारा साधता है।" प्रेमचन्द के उपन्यास प्रमाण हैं कि उपन्यासकार ने उनमें अपने आस–पास जीते–भोगते–रगड़ते जीवन को चित्रित किया है। इस जीवन में युग में संचरित भौतिक संस्कृति ही नहीं, उसमें अवस्थित और पल्लवित होती मनोरचनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

प्रेमचन्द की मान्यताओं और युग की विचारधाराओं के अनुरूप "गोदान" से गुजरने पर आलोचकों को किसी बीज की अनुभूति नहीं हो सकी तो वे उनके व्यक्ति–जीवन की ओर मुड़े, पूर्व रचित कहानियों और उपन्यासों के सुर–से–सुर मिलाकर चलने पर भी उन्हें किसी लीक का अनुभव नहीं हुआ। परिणामस्वरूप आलोचना के क्षेत्र में 'गोदान' ने हलचल पैदा कर दी। विभिन्न आलोचना–दृष्टियों ने उसे अपने–अपने दृष्टिकोण से आलोचना करने की कोशिश की किन्तु उसके सम्यक् मूल्यांकन के लिए आधार बनने में अपर्याप्त रहीं। गोदान में चित्रित ग्राम जीवन, श्शहरी जीवन, सामाजिक जीवन, युग चेतना, सामन्ती चरित्र और पूँजीवादी मन आदि के चरित्र–चित्रण और विश्लेषण ने आलोचकों के विभिन्न सुर–तालों से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि 'गोदान' आलोचकों के लिए एक चुनौती है, उनके एकाधिक पक्ष और वातायन है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का अवलोकन है कि 'गोदान' निश्चय ही ग्रामीण जीवन का उपन्यास है। यदि उसमें नागरिक पात्र आते हैं तो उनका ग्रामीण पात्रों की गतिविधि से किसी–न–किसी प्रकार का घनिष्ठ संबंध होना ही चाहिए। ऐसा न होने पर उपन्यास के उद्देश्य या कार्य की एकरूपता में बाधा पड़ेगी। उपन्यास में दो या दो उद्देश्य नहीं हो सकते, दो स्वतंत्र जीवन चरित्र नहीं किए जा सकते अन्यथा उसकी अन्वति नष्ट हो जाएगी।... कहा जाता है कि 'गोदान' के ग्रामीण कथानक में कोई चमत्कारपूर्ण घटना–योजना नहीं है। अतएव नागरिक कथानक को जोड़कर उसे प्रभावशाली बनाना आवश्यक था; पर प्रश्न यह है कि उपन्यासकार ग्रामीण कथानक को ही अधिक प्रभावशाली और चमत्कारपूर्ण घटना से सुसज्जित क्यों नहीं करता? यदि ग्राम–कथा में निर्माण संबंधी कोई कमी है तो उसकी पूर्ति ग्राम–कथा को ही संवारकर की जा सकती थी। उसके लिए एक ऐसी कथा जोड़ने की आवश्यकता न थी, जिसका मूल आख्यान से कोई नैसर्गिक संबंध न हो।"

डॉ. राजेश्वर गुरु का इस संदर्भ में मत है कि 'गोदान' गांव और शहर को साथ–साथ लेकर आज के समय का (अपने समय के समाज का) अखण्ड चित्र है। इससे मिलते–जुलते विचार डॉ. गंगाप्रसाद विमल के हैं कि ' गोदान' सच्चे अर्थों में भारतीय ग्राम–इकाई और नगर–इकाई का महाकाव्य है। यह मानवीय संघर्ष की कथा है; ऐसी कथा जिसमें स्वाधीनता युग की क्रांति की स्वर–लहरी का ज्वार भी है तो सारी लड़ाई का परजयबोध भी। " जैनेन्द्र कुमार सेवासदन के आधार पर 'गोदान' को आलोचित करने का प्रयत्न करते हैं तो कहते हैं कि 'गोदान' चित्र की भाँति असमाप्त और काव्य–प्रवाह के समान थोड़ा बहुत अनिर्दिष्ट है। इसमें 'सेवा–सदन' की सम्पूर्णता और सम्बद्धता नहीं है।" इस दृष्टि में कृति पर कृति का अनुकृतित्व दर्शाने का प्रयत्न है। इसमें सन्देह नहीं कि हर परवर्ती रचना में पूर्ववर्ती रचना का प्रभाव आर्थिक सोच अथवा अवतरण होना स्वाभाविक है। तथापि डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव का यह कथ्य विचारणीय है कि ऐतिहासिक मोहभंग की भूमिका में इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि प्रेमचन्द का मोह गांध ीवाद में शेष नहीं रह गया। वे जान गए थे कि दुनिया, जो झूठ और शोषण पर टिकी हुई है, किसी चमत्कार से बदलने वाली नहीं है।" इस तथ्य के आलोक में मन्मथयनाथ गुप्त के इस अवलोकन को देखना पर्याप्त रोचक और दृष्टि–उन्मूलक हो सकता है कि "अब तक प्रेमचन्द जिन काल्पनिक डैनों के सहारे अपने आकाश में उड़ान भर रहे

थे, उन्होंने देख लिया है कि वे वहाँ ले जाने में समर्थ नहीं हैं। इसलिए वह गोदान में अपने वास्तविक जगत में लौटकर अपने पैरों पर खड़े होकर आकाश की ओर ताक रहे हैं।''

डॉ. रामविलास शर्मा जब गोदान को उसकी मूल समस्या के रूप में आंकते हैं तो वे उसे लेखक की आप बीती से जोड़कर देखते हैं। इसमें दो मत नहीं कि ऋणग्रस्तता का जाल गांव–शहर में कमोवेश हर वर्ग को अपने तानों–बानों में फँसाए हुए हैं। इसे प्रेमचन्द ने स्वयं धन की दुश्मनी की संज्ञा दी है। निःसन्देह इस समस्या ने मानवीय चेतना और मानवीय रिस्तों दोनों को प्रभावित किया है। गोदान की रचनात्मकता को विश्लेषित करते हुए वह कहते हैं कि ''गोदान की गति धीमी है, होरी के जीवन की तरह वहाँ सैलाव का वेग नहीं, लहरों के थपेड़े नहीं हैं। वहाँ ऊपर से शान्त दिखने वाली नदी की भँवरें हैं जो भीतर–ही–भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी से लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखाई देता है जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगे।''

डॉ. सुषमा धवन की धारणा है कि गोदान में लेखक किसी संस्था अथवा आश्रम की स्थापना नहीं करते; और न ही किसी वाद अथवा सिद्धांत की बात करते हैं, किन्तु यह निर्विवाद है कि उनकी उपन्यास कला का उद्देश्य मानव–कल्याण की भावना है, मानव–कल्याण की कामना है। पात्रों के चरित्रांकन में उनका उद्देश्य स्पष्ट परिलक्षित है। डॉ. सुषमा धवन की यह धारणा कमोवेश डॉ. इन्द्रनाथ मदान के विचार को ही शब्द देती प्रतीत होती हैं कि–गोदान केवल होरी का गोदान नहीं है, लेखक की सदन–आश्रमवादी आस्था का भी गोदान है। नलिन विलोचन श्शर्मा गोदान को कृषि–संस्कृति का शोकगीत न कहकर उसका करुण महाकाव्य कहते हैं तो गोपालकृष्ण उसे भारतीय जीवन का महाकाव्य तो मानते ही हैं, उसमें आने वाले युग की प्रसव–वेदना का भी अनुभव करते हैं।

'गोदान' पर समीक्षकों और रचनाकारों के जितने विविध दृष्टिकोण हैं, उनमें प्रवेश पाने के लिए आवश्यक हो जाता है कि उसके रचना–समय पर दृष्टिक्षेप किया जाए; साथ ही उनके रहन–सहन और जीवनानुभव से परिचय प्राप्त किया जा सके।

2.5 गोदान का रचना समय

प्रेमचन्द का जीवन ऋणग्रस्तता से कभी मुक्त नहीं हो सका। सौतेली माँ के कटु व्यवहार ने उन्हें प्रेम की पीर का अनुभव दिया तो गरीबी ने जीवन के कटु– अनुभव से संपृक्त किया। गरीबी ने तो उन्हें यहाँ तक त्रस्त किया कि जेब में कुछ न होने पर चक्रवर्ती गणित की कुंजी बुकसेलर निकलते ही एक स्कूल के हेडमास्टर से भेंट हो गई; अध्यापकी का प्रस्ताव मिला और अठारह रुपए माहवारी पर अध्यापक हो गए। कहाँ मन में साध थी एम.ए. पास करने और वकील बनने की और कहाँ बन गए अध्याप अठारह रुपए मासिकी वाली–विधि की विडम्बना–गोदान में इसी कचोट को तो वह शब्द देते हैं, जब कहते हैं कि ''जीवन की ट्रेजेडी इसके सिवा और क्या है कि आपकी आत्मा जो काम नहीं करना चाहती, वह आपको करना पड़े।'' अस्तु, अध्यापकी पर जमे रहकर 1901 में उन्होंने 'हम खुरमा, हम सबाव' उपन्यास लिखा। 1902 में ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवेश लिया। 1904 में उर्दू हिन्दी ओरियण्टल इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की वर्नाकुलर परीक्षा पास की। 1905 में अध्यापन की प्रमाण–पत्र परीक्षा पास की; साथ ही प्रमाण–पत्र में उल्लेख अर्जित किया– 'गणित पढ़ाने में सक्षम नहीं।' 1910 में जब गणित ऐच्छिक विषय के रूप में विकल्पित हुआ तो एफ. ए. कर लिया। अध्ययन में डूबना उनके स्वभाव में था। अध्यवसाय में जुटे रहे 1919 में बी.ए. किया। श्रम और साधना ने उन्हें अवसर ही नहीं दिया कि वे भोग–बिलास की ओर निहार सकें। परिणामस्वरूप आडम्बर से कोसों दूर 'सादा जीवनः उच्च विचार' का अंग–वस्त्र धारण किए रहे।

'फसान–ए–आजाद', 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और कथा कहानियाँ बड़े चाव से पढ़ते रहे हैं, लेखन का चाव तो था ही, अभ्यास शुरू कर दिया। साहित्य के क्षेत्र में पदर्पण कर लियाः 1901 में 'हम खुरमाः हम सबाव' और 1902 में 'कृष्णा' उपन्यास के रूप में प्रकाशित हो गए। हिन्दी में प्रकाशित उपन्यास 'प्रेमा' में लेखक का नाम प्रतापचन्द था।

1905 में उन्होंने पहली पत्नी का त्यागकर बाल–विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया। पहली पत्नी उन्हें स्वयं छोड़कर चली गई थी। 1906 में वह महोबा में सब–डिप्टी इंस्पेक्टर नियुक्त हुए। इसके पहले वह तीन साल कानपुर में रह चुके थे। कानपुर में ही उनका सम्पर्क दयानारायण निगम से हुआ जो 'जमाना' के सम्पादक थे। कानपुर में ही उनका साहित्यिक जीवन उत्तरोत्तर उत्कर्ष पर चढ़ा। 1906 में उनकी पहली कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रतन' उर्दू के 'जमाना' में प्रकाशित हुई।

इस समय विश्व–व्यापी मंदी का दौर था। आर्थिक संकट विकराल हो रहा था। काँग्रेस आन्दोलन पर थी। प्रेमचन्द की कहानियों में इसका प्रभाव स्वतंत्रता–प्रेम और देशभक्ति के रूप में प्रस्फुटित है। उर्दू में प्रकाशित उनके कहानी संग्रह 'सोजे वतन' के देश प्रेम ने तो अँग्रेजों को अर्चाम्भत कर दिया था। इस पुस्तक को जब्त कर लिया गया प्रेमचन्द को आदेश दिया गया कि वह जो भी लिखें, कलेक्टर को अवश्य दिखा दिया करें। अब तक वे 'नवाब राय' के नाम से रचना करते रहे हैं। नौकरी पर किसी प्रकार का आघात न पहुँचे इसलिए उन्होंने 'नवाब राय नाम त्याग दिया और 'प्रेमचन्द' नाम से लिखने लग। धनपत राय, प्रतापचन्द, नवाव राय से होते हुए प्रेमचन्द बन गए। यह नाम उन्हें दयानारायण निगम ने ही दिया था। नाम त्यागने का उन्हें बहुत खेद था। बनी–बनाई पहचान खोकर नई पहचान बनाना था। इसी समय 'पंच–परमेश्वर' प्रकाशित हुई। 1916 में 'बाजारे–हुश्न' का हिन्दी अनुवाद 'सेवा–सदन' के रूप में प्रकाशित हुआ। 1918 में 'प्रेमाश्रम' पूरा हुआ।

प्रथम विश्व–युद्ध समाप्त हो गया था। अँग्रेज सरकार दमन पर उतारू थी। उनकी क्रूरता के विरोध में देश आन्दोलित था। असहयोग आन्दोलन क्रियाशील था। उसका प्रभाव दिखाई देने लगा था। जलियाँवाला हत्याकाण्ड अँग्रेजों की दमन–नीति और क्रूरता की गाथा बन गया था। असन्तोष और आक्रोश चरम की ओर बढ़ रहा था। प्रेमचन्दकी आत्मा का देश–प्रेम उबल रहा था। सरकारी नौकर होकर भी शासक वर्ग का अनुयायी होना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। 1921 में उन्होंने सरकारी नौकरी से त्याग–पत्र दे दिया। प्रेमचन्द की सहानुभूति उस शिक्षित वर्ग के साथ कभी नहीं रही जो आम आदमी को मूर्ख, जाहिल और गवांर समझते हैं; उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं और प्रवंचित करते हैं। आम आदमी के निःस्वार्थ प्रेम, त्याग, सेवाभाव, कष्ट सहन करने और बलिदान हो जाने की प्रवृत्ति उनके मन–मस्तिष्क पर गहरे अंकित हो चुकी थी। 'सेवा–सदन' की सुधारवादी समझ 'प्रेमाश्रम' में विद्रोह का रूप धारण कर लेती हैं। अक्टूबर,1914 की रूसी–क्रांति के भावार्थ को वह समझने लगे थे। उनके मन में ऐसी ही क्रांति का उन्मेष देश में देखने की इच्छा बलवती हो उठी। सत्याग्रह से उनका मोहभंग हो चुका था। गांधीवाद के सुधार में जैसे उनका विश्वास ही डगमगा गया था।

सरकारी नौकरी से त्याग–पत्र देने के बाद उन्होंने काशी विद्यापीठ के विद्यालय विभाग में हेडमास्टरी की। देश–प्रेम और स्वाभिमान उनकी रग–रग में था। शासित हो रहना उनकी प्रकृति में नहीं था। अधिकारियों से मतभेद हुए। विद्यालय छोड़ दिया; अपने गांव लमही चले गए। 1914 में जब 'रंगभूमि' छप रहा था, अलवर नरेश ने उन्हें वाहन, आवास की सुविधा के साथ 400 रुपए मासिक पर आमंत्रित किया। उन्होंने उनका आमंत्रण अस्वीकार कर दिया। 1922–23 में बाबू सम्पूर्णानन्द जेल चले गए। बनारस से निकलने वाली उनकी पत्रिका 'मर्यादा' को सम्पादक की कमी हो गई। सम्पादकत्व का आग्रह मिला तो 'मर्यादा' के सम्पादन में जुट गए। बाबू सम्पूर्णानन्द जेल से छूटकर आए तो पत्रिका उन्हें सौंपकर सम्पादकत्व से मुक्त हो गए। 1929 में 'माधुरी' के सम्पादन का भार ग्रहण किया। इस समय तक उनके यश की पताका फहरा चुकी थी। सरकार ने इन्हें 'राय साहिब' की उपाधि से सम्मानित करना चाहा किन्तु अपने स्वाभिमान और स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए उन्होंने उसे लेने से मना कर दिया। 'रंगभूमि' (1924), निर्मला (1926), कायाकल्प (1928) और गबन (1931) में प्रकाशित हुए। सैकड़ों कहानियाँ माधुरी तथा अन्य पत्रिकाओं में छपीं।

1931 में वह लखनऊ से बनारस आ गए। वहाँ उन्होंने एक प्रेस खरीदा और 'हंस' (मासिक) तथा 'जागरण' (साप्ताहिक) का प्रकाशन करने लगे। इसी प्रेस से उनके अन्तिम उपन्यास 'कर्मभूमि' और 'गोदान' निकले। 'हंस' अपने जन्म से ही स्वतंत्रता का उद्बोधक और पोषक रहा है। इसे अनेक बार सरकार की क्रुद्ध–दृष्टि का शिकार होना पड़ा; बंद होने की नौबतें आईं। चालू रखने के लिए जमानतें देना पड़ा। अर्थ संकट गहराता गया। आर्थिक संकट ने 'हंस' का कभी पल्ला न छोड़ा और प्रेमचन्द ने उससे पल्ला न छुड़ाया। प्रेमचन्द ने अपने जीते–जी उसे बन्द नहीं होने दिया। अर्थ–संकट से उबरने के लिए यत्न–तत्पर रहे। 1934 में फिल्म कम्पनी से निमंत्रण मिला तो आठ हजार वार्षिक पर बम्बई चले गए। प्रोड्यूसर से वैचारिक सामंजस्य नहीं बैठ पाया जो बैठना ही नहीं था; अतः बम्बई से बनारस आ गए। अर्थ–संकट ने दबाव बढ़ाया तो लाचार होकर 1935 में 'हंस' का प्रकाशन सस्ता–साहित्य मण्डल को सौंप दिया। सस्ता–साहित्य मण्डल भारतीय साहित्य परिषद के तत्वाधान में संचालित था। जून 1936 में सेठ गोविन्ददास का एक लेख 'हंस' में प्रकाशित हुआ। सरकार ने उसे आपत्तिजनक घोषित कर दिया और जमानत मांगी। भारतीय साहित्य परिषद ने जमानत देने के स्थान पर 'हंस' का प्रकाशन बंद कर देने की घोषणा कर दी। प्रेमचन्द्र को इससे बहुत क्लेश हुआ। वे तिलमिला उठे। किसी तरह जमानत दी और 'हंस' को पुनः हस्तगत कर लिया। 'हंस' को वह अपनी संतान की भांति प्यार करते थे। अन्तिम क्षणों तक उनकी चिन्ता का केन्द्र–बिन्दु 'हंस' था। 'हंस कैसे चलेगा ?' उन्हें मथता रहा।

1936 में प्रेमचन्द का अन्तिम उपन्यास 'गोदान' प्रकाशित हुआ। 1936 में ही 25 जून को उनके पेट में दर्द उठा। पेचिश का रोग उनका पुराना रोग था। अनेक– विध चिकित्सा कराने पर भी शशमित न हो सका था। हालत बिगड़ी, बिगड़ती चली गई। इस हालत में भी लेखन जारी था। 'मंगलसूत्र' प्रारंभ कर चुके थे। विधाता उसे पूरा होते देखना नहीं चाहते थे। सितम्बर में हालत गंभीर हो गई; कै–दस्त ने शरीर शिथिल कर दिया; उदरपीड़ा और अनिद्रा ने जर्जर कर दिया। जीव का देह में रहना मुश्किल हो गया। 8 अक्टूबर,1936 को चल बसे। इसी महिने 'इस्मत' में उनकी अन्तिम कहानी 'दो बहनें' प्रकाशित हुई। इस कहानी का एक पात्र कहता है कि "जितने धनी हैं, सबके सब लुटेरे हैं, पक्के लुटेरे, डाकू। कल मेरे पास रुपए हो जाएँ और मैं धर्मशाला बनवा दूँ। फिर देखिए मेरी कितनी वाह–वाही होती है। कौन पूछता है, मुझे दौलत कहाँ से मिली।" इस कथन में प्रेमचन्द का साहित्य की पूँछ–परख और साहित्यकार के प्रति जन का उपेक्षा–भाव तो प्रकट है ही, भामाशाहों की विचार दरिद्रता की ओर कटाक्ष भी अभिव्यक्त है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द छायावाद के कालखण्ड में आते हैं। यह महावीर प्रसाद द्विवेदी की सुधारवादी प्रवृत्तियों का युग था। इस युग के लेखक–साहित्यकार स्वाभाव से साधु, प्रकृति से स्वाभिमानी, और चिन्तन में मनीषि और दृष्टि में युगदृष्टा, कर्म में परिविष्ठित कर्मयोगी, दायित्व पूर्ति हित बलिदानी व्यक्ति थे जिनमें युगदृष्टा का ऋषित्व फलीभूत था। प्रसाद, पंत, निराला, भगवती प्रसाद, जैनेन्द, पं. रामचन्द्र शुक्ल आदि की मनीषा से मण्डित काल है । यह स्वाभाविक है कि प्रेमचन्द में इन्हीं के अनुसार साधु–चरित्र, छल–छद्म रहित किसानी व्यक्ति और चरित्र अन्तर्मूत है। वे अपनी आत्मा के साथ कभी सौदा नहीं कर सके। एक निष्कलुष मानव की तरह जिए और इसीलिए कठोर यंत्रणाओं और अभावों के बीच अपनी आत्मा के प्रकाश को उन्होंने जाज्वल्यमान बनाया। यही कारण है कि परवर्ती आलोचकों को कहना पड़ा कि यदि 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' लेखक पं. रामचन्द्र शुक्ल के सम्मुख 'गोदान' प्रस्तुत हो सका होता तो उनका आकलन वह कदापि न होता, जो है अर्थात् "इनके (प्रेमचन्द) के उपन्यासों और कहानियों में सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों का आभास मात्र है। इनमें जहाँ राजनैतिक सुधार या समाज–सुधार का लक्ष्य स्पष्ट हो गया है, वहाँ उपन्यासकार का रूप छिप गया है और प्रचारक का रूप उभर आया है।"

प्रेमचन्द की उपन्यास सरणि पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट आभासित होता है कि 'वरदान' में गांव है, महाजन हैं, साहूकार हैं, जमींदार हैं, उनका शोषण है। 'सेवा–सदन' में दहेज–प्रथा है, नेताओं की कथनी–करनी है, पुलिस का अत्याचार है। 'प्रेमाश्रम' में किसान–जमींदार का संघर्ष है। 'प्रतिज्ञा' और 'निर्मला' में विवाह की समस्याएँ हैं, 'रंगभूमि'

में गांव की संस्कृति को औद्योगिक संस्कृति से बचाने की कथा है। एक संवेदनशील और महान् रचनाकार युगबोध के अनुसार अपना विकास करता है और यह विकास यात्रा उसके लेखकीय कर्म की विकास यात्रा में स्पष्ट प्रतिभासित होती है। प्रेमचन्द का उपन्यासकार मानव–मंगल की छवि मन में बसाए निरंतर अपने सोच और सृजन को गतिशील बनाए रहते हैं। जैसा कि कहा जाता है कि "मध्यमवर्गीय वर्ग (जिसका कि प्रेमचन्द प्रतिनिधित्व करते हैं) भले ही परास्तता और मुकाबले के बीच अनिश्चय की स्थिति में रहे, यह तय है कि पूँजीवाद के विरुद्ध दिखावे का कोई विरोध कोई अर्थ नहीं रखता और एक–न–एक दिन परिस्थितियों का दबाव उन्हें श्रमिकों के साथ सक्रिय सहयोग के लिए बाध्य करता है। प्रेमचन्द का प्रगतिशील मन उस दिशा मे अग्रसर है। 'प्रेमाश्रम' का उपन्यासकार किसान और मजदूरों के संघर्ष को जैसा देखता है, वैसा कह देता है। जहाँ तक उसकी सहानुभूति का प्रश्न है, वह किसानों के दुःख से दुःखी है तो उदारमन जमींदारों के सुख में भी दिखाई देता है। 'गोदान' में वह निर्लिप्त हो गया है। लगता है कि पं. रामचन्द शुक्ल का अवलोकन काम कर गया है और 'गोदान' में उपन्यासकार प्रेमचन्द का रूप ही उजागर हुआ है।

2.6 गोदान : कथासार

'कुछ विचार' में प्रेमचन्द विचार प्रकट करते हैं कि –उपन्यास में आप चाहे जितने स्थान लाएँ, चाहे जितने दृश्य दिखाएँ, चाहे जितने चरित्र खीचें, पर यह आवश्यक नहीं कि वे सब घटनाएँ और चरित्र एक ही केन्द्र पर आकर मिल जाएँ।" प्रेमचन्द की यह मान्यता भले ही शास्त्रीय निरूपण का आधार न बन सके तथापि 'गोदान' के कथा सूत्रों का बिखराव ही उसे 'बीसवीं' शताब्दी के पूर्वार्द्ध के हिन्दी साहित्य के विकास का अग्रदूत बनाता है। गोदान साहित्य को मनोरंजन के रंगमहल से निकालकर जनता के बीच में प्रतिष्ठित करने की कहानी है। गोदान भारतीय संस्कृति और लोक–परम्परा को साथ लेकर चलने वाले भारतीय कृषक वर्ग के संघर्षरत जीवन की तपस्या का चित्र है, संस्कृति विरोधी शोषकों की महाजनी–सभ्यता और काले कारनामों का इतिहास है।

'गोदान' का प्रारम्भ एक ग्रामीण निर्धन किसान होरी के दर्दनाक परन्तु यथार्थ जीवन से होता है– धनिया होरी की पत्नी है। चिन्तित है, "चाहे कितनी ही कतर–व्योत क्यों न करो, कितना पेट–तन काटो, चाहे एक–एक कौड़ी को दांत से पकड़ों, मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है।" छः सन्तानों में से केवल तीन सन्तानें बची है– गोबर, सोलह वर्षीय सोना और रूपा, कमशः बारह और आठ वर्षीय। दवादारू हो सकती तो वे बचपन में ही न चल बसते।

बेलारी गांव का होरी अपने इलाके के मालिक राय साहब अमरपाल सिंह के बुलावे पर सेमरी जा रहा है। रास्ते में पुरबे का ही भोला ग्वाला गायों को संग लिए आता दिखता है। एक पछाई गाय (कामधेनु) को देखकर उसकी बरसों की इच्छा जाग उठती है। बातों–ही–बातों में भोला से गाय का सौदा हो जाता है। पैसा होरी जब चाहे दे सकता है, थोड़ा भूसा दे दे; विशेष बात यह कि उस विधुर की दूसरी शादी का बन्दोबस्त करा दे।

सेमरी के लिए सुबह से निकला होरी शाम को घर लौटा। गोबर, सोना और रूपा खेत से ही उसके साथ हो लिए। गोबर को होरी की सिधाई अच्छी नहीं लगती। रास्ते भर वह आलोचना करता रहा। तीसरे पहर भोला भूसा लेने आ गया। होरी और गोबर भूसा लेकर भोला के घर गए। गोबर और भोला की विधवा पुत्री झुनिया का आमना–सामना हुआ। अगले ही दिन गोबर गाय लाने भोला के घर गया। गाय लेकर जब आने लगा तो झुनिया उसे आधे रास्ते तक छोड़ने आई। दोनों में प्रेम पगा और शशाम को मिलने का वायदा हुआ।

होरी के घर गाय आते ही गांव में चर्चा फैल गई। सारा गांव देखने आया। होरी के भाई हीरा–शोभा नहीं आए। होरी बुलाने गया तो उस पर दोष लगाया कि बॅटवारे से पहले जो रुपए दबाए थे, उन्हीं से गाय खरीदी गई है। धनिया को बरदास्त नहीं हुआ। झूठा–आरोप कैसे सह लेती। झगड़ा कर बैठी। भाइयों के बीच कलह का तमाशा सारे गांव ने देखा।

इसके पहले दमड़ी बसोर बॉस लेने आया था। होरी ने बीस रुपए से पेड़ पर सौदा किया किन्तु पन्द्रह रुपए ही जाहिर करने के लिए कहा। पन्द्रह रुपए के हिसाब के सौदे पर पहले पुनिया और दमड़ी में और फिर पुनिया और हीरा में खासी बाताखानी हुई। दमड़ी ने मौके का फायदा उठाया। पन्द्रह के हिसाब से पैसे दिए। पाँच रुपए दबा लेने का होरी का दॉव खाली गया।

असाढ़ का पहला झरा बरसा। किसान बोने के लिए निकले। जमींदार का हुकम आ गया–पहले बाकी चुकाओं, पीछे खेत जाओ। होरी ने बाकी चुकाने के लिए जमींदार के कारन्दा झिंगुरी सिंह को रात में गाय बेच देने का निश्चय किया। उसी रात हीरा ने गाय को माहुर दे दिया। गाय मर गई। हीरा भाग गया। पुलिस जॉच करने आई मरजाद बचाने के लिए कर्ज लेकर पुलिस की भाव–भगत की। कर्ज लेकर खेती शुरू की गई। होरी ने हीरा का खेत भी बोया।

गोबर–झुनिया का प्रेम रंग लाया। झुनिया गर्भवती हो गई। आपसी बात चीत में झुनिया को घर ले जाने और माँ–बाप से सब कुछ बताने। की बात हुई। रात के सन्नाटे में झुनिया को रास्ते में छोड़कर गोबर भाग गया। झुनिया को सारे रोष के बावजूद धनिया ने शरण दे दी। पंचायत बैठी। गोबर–झुनिया काण्ड में होरी पर सौ रुपए नगद और तीस मन अनाज का दण्ड लगाया गया। दण्ड चुकाने के लिए उधर होरी झिंगुरी सिंह के पास घर गिरवी रखने गया, इधर झुनिया ने पुत्र को जनम दिया। विषाद हर्ष में बदल गया। हीरा तो भाग ही गया था, पुनिया बेचारी क्या करे; विपत्ति की मारी को धनिया ने गले लगा लिया। बदला लेने की गरज से रुपए बसूलने के नाम पर भोला होरी के बैल ले गया। होरी ने दातादीन से सझिया खेती की। दातादीन बीज देगा, फसल आधी–आधी। ऊख सुगर मिल को बेचने के लिए झिंगुरी सिंह दलाली कर रहा था। होरी की सारी ऊख बिक गई। सारी बिक्री गांव के साहूकारों के हवाले हो गई।

गोबर भागकर लखनऊ पहुँचा। लखनऊ में गोबर का धन्धा चल गया। छोटे–मोटे होटल का मालिक बन गया। पत्नी–पुत्र को लेने बेलारी पहुँचा। सारे गांव पर गोबर का वैभव सर–चढ़कर बोला। भोला बड़े प्रेम से मिला। साथ में बैल जोड़ी लेते आया जिसे वह कभी खोलकर ले गया था।

गोबर चाहता है कि वह अपने पिता को साहूकारों के चंगुल से मुक्त करें। धर्म–भीरू होरी इसके लिए तैयार नहीं। झुनिया और अपने बेटे को लेकर लखनऊ चला जाता है। बड़ी बेटी सोना के विवाह का समय आ गया है। शादी के लिए रुपयों की जुगाड़ में है होरी। कर्ज की अदायगी के लिए होरी की खड़ी फसल कुर्क हो जाती है, भला हो भोला की दूसरी पत्नी नोहरी का। वह मदद के लिए आगे आई। सोना की शादी हो गई। मुसीबत कभी अकेले नहीं आती। इसी समय होरी का एक बैल बूढ़ा हो गया। पुनिया का एक बैल मर गया। होरी का एक बैल और पुनिया का एक बैल मिलकर काम लायक जोड़ी बनती है, कभी पुनिया के खेत जाती है, कभी होरी के। लाचारी : "किसान और किसान के बैल को जमराज ही पिसन दें, तो मिले।"

होरी को जीवन में हार के सिवा कभी कुछ नहीं मिला। अब हार उसे संघर्ष की शक्ति सदैव की भांति देने में असमर्थ हो गई। हारे हुए महीप की भांति तीन बीघा जमीन को प्राणों की तरह बचाने की कोशिश कर रहा था। तीन साल से लगान बाकी था। पंडित नोखेराम ने बेदखली का दावा कर दिया था। रुपयों की कहीं से कोई आशा नहीं थी। राय साहब को ही क्यों दोष दें ? असामियों से ही तो उनकी गुजर–बसर है। गांव के आधे से अधिक घरों पर बेदखली सवार है। औरों के साथ जो होगा, उसके साथ भी वही होगा। पण्डित दातादीन की धर्म–ध्वजा फिर फहरी। रुपए लेकर छोटी–बेटी रूपा का ब्याह दुहाजू से करा दिया। खेत बचाने के लिए छोटी बेटी रूपा का ब्याह दुहाजू से कर दिया। खेत बचाने के लिए रुपए जरूरी थे। होरी के जब ये रुपए हाथ आए तब " उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुंह से एक शब्द न निकला जैसे अपमान के गड्डे में गिर पड़ा है और गिरता चला जा रहा है। आज तीस साल तक लड़ते रहने के बाद वह जीवन में परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ कि मानो उसको नगर

द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है।"

उसका दुहाजू दामाद रामसेवक कहता है, "थाना कचहरी पुलिस, अदालत सब हैं– हमारी रक्षा के लिए लेकिन रक्षा कोई नहीं करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है, बेकस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं।... यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे तो गांव में रहना मुश्किल जमींदार के चपरासी और करिन्दों का पेट न भरे तो निबाह न हो। थानेदार और कॉस्टेबिल तो जैसे उसके दामाद है।"

रूपा की शादी में गोबर गांव आता है तो घर की दशा देखकर निस्तब्ध रह जाता है, "द्वार पर केवल एक बैल बंधा हुआ है, वह भी नीम जान अब... इस घर के सम्हलने की क्या आशा है। वह गुलामी करता है लेकिन पेट भर खाता तो है। केवल एक ही मालिक का तो नौकर है। तो जिसे देखो, वही रौब जमाता है। और यह दशा कुछ होरी ही की न थी; सारे गांव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक भी आदमी नहीं, जिसकी सूरत रोनी न हो,...जेठ के दिन हैं। अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है। मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहानों में ही तुलकर महाजनों और करिंदों की भेंट चढ़ चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अंधकार की भांति उनके सामने है। उसमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता।"

होरी बेदखल हो गया है। होरी ने कंकड की खुदाई में मजदूरी शुरू कर दी है। धनिया सुतली काटकर बेचती है। होरी के लिए काम बड़ा कठिन है। उसे लू लग जाती है। वह समझ गया– उसका समय आ गया। आँखों के सामने उसकी वर्षों की साध मूर्त हो उठी; फिर गाय का चित्र सामने आया, बिलकुल कामधेनु सी उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गई और...।" धनिया ने सुतली काटकर बचाए बीस आने पं. दातादीन के हाथ में रख दिए, "महाराज? घर में न गाय है, न बछिया, न पैसे। यही पैसे हैं, यही उनका गोदान है।"

बेटी रूपा जानती है, पिता को गाय की बहुत चाह थी। उसकी लालसा पूरी करने के लिए उसने गाय भेजी है। वह अभी रास्ते में है।

एक गौण कथा, जिसे नगर की कथा भी कहा गया है– सेमरा बेलारी के जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह मित्र मण्डली की है। उनकी मित्रमण्डली में 'बिजली' पत्र के सम्पादक पं. ओंकारनाथ हैं, श्यामबिहारी तन्खा, बीमा कम्पनी के एजेन्ट हैं, मि.वी. मेहता दर्शनशस्त्र के प्रोफेसर हैं, मिस मालती, लेडी डॉक्टर हैं और लखनऊ में जूतों की दुकान वाले मिर्जा खुर्शेद इरफन मौला हैं। रामलीला के अवसर पर सबकी भेंट होती है। इसमें मालती अपने तितलीत्व के दर्शन कराती है और शर्त के अनुसार पं. ओंकारनाथ को मद्यपान कराने में सफल होती है मेहता पठान का स्वांग रचते हैं।

फिर सब पिकनिक पर नजर आते हैं– रायसाहब और खन्ना साहब, मिर्जा और तन्खा, मेहता और मालती की टोलियाँ बनती हैं। यहाँ मेहता और मालती नर–नारी संबंधों पर विशद विमर्श करते हैं। रायसाहब और उनकी मण्डली के दर्शन फिर लखनऊ में होते हैं। मिर्जा साहब ने कबड्डी का आयोजन किया है। यहाँ भी सदैव की भांति शहरी लोगों के स्वार्थ–प्रवृत्तियों की चर्चा होती है। मालती–मेहता यहाँ भी नर–नारी विमर्श में जुटे हैं। नारी की सहानुभूति पुरुष के लिए महत्वपूर्ण बताई गई है। उससे पुरुष को प्रेरणा प्राप्त होती है।

मेहता गांव के पंचों से होरी पर लगाए गए दण्ड का प्रसंगानुकूल स्पष्टीकरण मांगते हैं। शाम तक सारी रकम उन तक पहुँचाने की मांग करते है। नोखेराम पटवारी को यह बात नहीं रुचती। 'बिजली' सम्पादक को गुमनाम पत्र लिखता है। उसमें रायसाहब की शिकायत है ओंकारनाथ 'बिजली' सम्पादक पत्र की प्रतिलिपि रायसाहब को भेजते हैं और उनसे स्पष्टीकरण मांगते हैं। रायसाहब उन्हें सौ ग्राहकों का चन्दा भेंट कर देते हैं। मामला रफा–दफा हो जाता है।

एक दृश्य में खन्ना और उनकी पत्नी गोविन्दी चित्रित हैं। खन्ना पैसे के पीछे इतने दीवाने हैं कि उन्हें परिवार की तो क्या, बच्चे की बीमारी तक की कोई चिन्ता नहीं। पति–पत्नी के बीच असन्तुलन को यहाँ भली प्रकार दर्शाया गया है।

रायसाहब के पारिवारिक संकटों का चित्र है, वकील और बीमा दलाल तन्खा की चतुराई के चित्र हैं। खन्ना की मील में आग लगती है। उन्हें चेत आता है मेहता–मालती निकट आते–आते इतने निकट आते हैं कि परिणय–सूत्र में बंधने की बजाय सेवा के द्वारा जीवन को सार्थक करने में जुट जाते हैं।

रायसाहब की पुत्री की शादी हो जाती है। उनका बेटा मालती की बहिन से शादी कर विलायत चला जाता है। लड़की दामाद एक–दूसरे के बैरी हो जाते हैं कर्ज बढ़ जाता है। चुनाव जीत जाते हैं। होम मेम्बर हो जाते हैं।

2.7 गोदान : शीर्षक की सार्थकता

गौ गांव की ही नहीं भारतीय संस्कृति की संरक्षिका और संवाहक है। गांव संस्कृति के पताका पुरुष हैं और इसीलिए गांव के गौ में प्राण बसते हैं। उससे ही किसानों को खेती के लिए बैल प्राप्त होते हैं और दूध से ही उसे तृप्ति प्राप्त होती है। किसानों में यह धारणा बद्धमूल है कि 'त्वं मातासर्वदेवानां त्वां च यज्ञस्य कारणम् त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे।' यही कारण है कि होरी उसकी उपासना भवसागर से पार उतरने के लिए कर रहा है। भले ही उसका जीवन दैन्य और विपत्तियों का अंगार है, फिर भी वह ही क्यों, सारा किसान परिवार उससे अपने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की कामना करता है। यह साथ किसान के मन में सदा बसी रहती है। भोला अहीर को गायों के साथ आता देखकर वह इसीलिए ललक उठता है और उसे प्राप्त करने के लिए वह कोई भी शर्त स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। गोबर झुनिका के साथ बातचीत में शेखी मारता है– सपना देखता है किवह पैसे कमाएगा और सबसे पहले एक पछाही गाय लाएगा जो चार–पाँच सेर दूध देगी और दादा से कहेगा, "तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक भी बनेगा ओर परलोक भी।" महत्वपूर्ण है उसकी भावना उसके जीवन की अंतिम घड़ी में स्वप्न चित्र के रूप में उसके नैनों के सन्मुख उभर आती है– "फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिलकुल कामधेनु सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय देवी बनी गई और...।"

जमीन की तरह गाय को डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने भले ही सामंती संस्कृति का अभिन्न अंग अपने आग्रह को पुष्ट करने के लिए मान लिया हो किन्तु इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि गाय कृषक–संस्कृति की शोभा और गौरव है। गाय उसका अर्थशास्त्र ही नहीं, उसका अध्यात्म भी है। हर एक गृहस्थ की भांति होरी के मन में भी अपने अर्थशास्त्र और आध्यात्मिक संसार को संजो लेने की लालसा है। उसे प्राप्त करने के लिए वह कर्ज लेता है। उसे उसके कारण कितने जंजाल में फंसना होगा, इसकी चिन्ता किए बिना गाय को संभार लेता है। एक जग–जीत लेने जैसा उल्लास बरस उठता है। गाय के घर में आते ही रूपा, सोना का हर्ष कुलांचे भर रहा है। होरी–धनिया के पैर ही कहाँ जमीन में पड़ रहे हैं। गाय जैसे धन को हस्तगत करने के बाद सांसारिक चिन्ता रह किसे जाती है। सारा गांव जैसे ईर्ष्या का शिकार हो जाता है। उसे देखने के लिए जब गांव इकट्ठा होता है तब लगता है कि सारा गांव होरी के भाग्य को सराहने पर उतर आया है। हीरा–शोभा देखने नहीं आए, इसका कलख उसे है। वह उन्हें बुलाने जाता है। दोनों को इससे ऐसा लगता है जैसे होरी उनके जले पर नमक छिड़कने आया है। यही कारण है कि दोनों सपत्नीक उसके मोह में सहभागी होने की बजाय झगड़ उठते हैं। यह 'अपने पास नहीं तो उसके पास क्यों' जैसे सोच की ही उपज है। अतः हीरा उसे मार डालता है।

कहीं–न–कहीं इससे पं. मातादीन और झिंगुरसिंह को भी इससे आघात पहुँचता है, भले ही वह इसे व्यक्त नहीं करते। अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं। संभवतः होरी के इस उपक्रम से चोट खाए की तरह वे उसका चैन छीन लेते हैं। जीवन में सुख–चैन तो नसीब नहीं हुआ किन्तु परलोक न नसाए इसीलिए "धनिया यंत्र की भांति उठी, आज

जो सुतली उसने बेची थी, उसके बीस अपने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथ में रखकर दातादीन से बोली–महाराज, घर में गाय है न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।'' गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार करने की जुगाड़ होरी नहीं कर पाया। उसके भाग्य में था ही नहीं। रूपा द्वारा भेजी गई गाय ही कहाँ उसके जीवलोक में रहते आ पाई।

'गोदान' में गौ का एक सामान्यतः प्रचलित भावार्थ भी प्रकट होता है जब रामसेवक महतों कहता है कि ''संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता, जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं... भगवान न करे, कोई बेईमानी करे। यह बड़ा पाप है, लेकिन हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है।'' हक और न्याय के लिए गाय ही नहीं लड़ पाती। किसान गौ है और होरी की तरह अन्याय की बलि चढ़ता है। उसकी संतान तक शोषण उत्पीड़न का शिकार होती है और वह कुछ नहीं कहता। सब कुछ मरजाद के नाम पर बरदास्त करता है।

रूपा का अपने पिता की लालसा की पूर्ति के लिए गाय भेजना क्या इस बात का प्रतीक नहीं हो सकती, उसका गोदान के रूप में उस जैसी गऊ को एक अधेड़ को ब्याह दिया गया। व्यंग्य तो उससे उभरता ही है कि गौ का जीवन जीते चरित्र को क्या धनिया, पुनिया और सिलिया में नहीं देखा जा सकता। शहराती कथा के गठन के माध्यम से प्रेमचन्द का क्या यह इंगित प्रकट नहीं होता कि अब नारी 'गौ' नहीं रह गई। फिर भी गोविन्दी का सेवा भाव और मालती का सेवार्पण क्या गाय के शुभत्व की, निश्छल सेवा भाव की प्रतीक नहीं हो सकता।

प्रेमचन्द जिस काल में रचना–सक्रिय थे, उस समय के साहित्यकार मन–प्राण से किसान थे ओर वही किसानी आचार–व्यवहार, संस्कार प्रेमचन्द ने मन–प्राण से भोगा और जिया। यही कारण है कि– उनमें भारतीय संस्कृति की अध्यात्मजीविता प्रखर है जो गोदान में प्रकट है और समीक्षकों को उद्‌घृत करने का अवसर हाथ लगा कि उनका गांधीवाद से तो मोह भंग हुआ ही, समाजवाद में आस्था नहीं रह गई। स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने भारतीय मनीषा को पूरी तरह आत्मसात् कर लिया और मानव में अन्तःस्थ देवत्व को वरेण्य मान लिया। तथैव उनका विचार है कि '' जीवन के हर एक व्यापार को अगर बुद्धिवाद की ऐनक लगाकर ही देखें तो श्शायद जीवन दूभर हो जाय। भावुकता को सीधे रास्ते पर रखने के लिए बुद्धि की नितान्त आवश्यकता है, नहीं तो आदमी संकटों में पड़ जाय। इसी तरह बुद्धि पर भी मनोभावों का नियंत्रण रखना जरूरी है, नहीं तो आदमी जानवर हो जाय, राक्षस हो जाय।''

गोदान में गोदान शीर्षक की सार्थकता देवत्व की उपासना में है जिसके लिए वह रायसाहब ही नहीं, खन्ना को भी बुद्धिवाद से परे खीचकर राक्षसत्व के विसर्जन के लिए तैयार करते हैं। मेहता तो बुद्धि पर मनोभावों के नियंत्रण की नींव ही रख रहा है। किसान को ही नहीं, मानव–मात्र को राक्षसत्व से उबारने के लिए वह मानव–मन के देवत्व को जगाने की प्रेरणा लेकर चले हैं। यही उनका गोदान है, उनकी आस्था का गोदान नहीं जैसा कि डॉ. इन्द्रनाथ मदान का अभिमत है अपितु राक्षसत्व का दान है, अनीति अत्याचार और शोषण का दान है।

गोदान के सांगोपांग अध्ययन से बात भली–भांति स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचन्द के तन–मन में गौ बसी हुई है। किसान का गौ से साम्य बैठाते हुए उनका कथन विशिष्ट अर्थ रखता है कि ''उसका (किसान का) सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेतों में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं; मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान है।''

गाय के मरते ही जैसे किसान की ही नहीं, उसके स्वभाव की मृत्यु हो जाती है, प्रेमचन्द कराह उठते हैं, ''मजूर बन जाय तो किसान हो जाता है; किसान बिगड़ जाय तो मजूर बन जाता है। मजूरी करना भाग्य में न होता तो यह सब बिपत्ति क्यों आती ? क्यों गाय मरती? क्यों लड़का नालायक निकल जाता।'' गोबर शहर की ओर

मुंह करता है तो झुनिया अपने को गाय की नियति के साथ जोड़ लेती है– "न तुम गाय लेने आते, न यह सब कुछ होता।"

लगता है कि जैसे गाय ही सब विपत्ति के भूल में हैं किन्तु लड़के के नालायक निकलने पर उसके सोच को जैसे उभार मिलता है और प्रेमचन्द मेहता के मुख से ग्राम–संस्कृति की रक्षार्थ अपने मौलिक चिन्तन पर उतर आते हैं; प्रो. मेहता के बहाने कहते हैं– " हम सभी मनुष्य हैं, पीछे और कुछ। हमारा जीवन, हमारा घर है। वही हमारी सृष्टि होती है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं, अगर वह क्षेत्र परिमित है तो अपरिमित कौन सा क्षेत्र है? क्या वह संघर्ष, जहाँ संगठित अपहरण होते हैं? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारखानों में जाना चाहती हैं जहाँ मनुष्य पीसा जाता है जहाँ उसका रक्त निकाला जाता है।"

स्पष्टतः युगवेत्ता प्रेमचन्द ने ग्राम को पलायित होते बहुत कष्ट के साथ देखा है और उसके साथ देखा है उजाड़ होती किसान संस्कृति, उसके साथ विलुप्त होता श्रृद्धा और विश्वास भरा जग का पालन हार देवता किसान जिसे पं. दातादीन जैसे धर्म के पण्डितों ने उजड़ने के लिए विवश किया है। धनिया की दातादीन की उक्ति कि "अगर यही हाल है तो भीख भी मांगोगी के विरोध में फटकार कि "भीख मांगों तुम जो भिखमंगों की जात हो। हम तो मजूर टहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पाएँगें।" प्रेमचन्द की ग्राम–संस्कृति के हरण की चिन्ता को ही स्वर नहीं देती। वह अपना दृष्टिकोण इस संस्कृति के औदात्य पर मेहता के बहाने कहते हैं कि– "सब कुछ पढ़ चुकने के बाद और आत्मवाद और अनात्मवाद की खूब छानबीन कर लेने पर इसी तत्व पर पहुँच जाते हैं कि प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच में जो सेवा मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है।" और वह मार्ग है किसान का मार्ग जो गौपालन मार्ग से गुजरता है। ग्राम से, जग से, जीवन से गौ का 'गोदान' मिस व अपहृत हो जाना ही तो मनुष्य के देवत्व का संकट है जिसे प्रेमचन्द ने बहुत ही करुणाई होकर अनुभव किया है।

2.8 इकाई सारांश

प्रेमचन्द का जीवन गरीबी और ऋणग्रस्तता से भरा हुआ था। इसके बावजूद उनकी कर्मठता पर कतई कहीं विराम नहीं लगा। वे जीवन में कठिनाइयों और विपत्तियों से बराबर जूझते रहे और जूझते हुए ही उन्होंने अपनी कथा यात्रा निरंतर रखी। निरंतरता का परिणाम है कि उनका जीवन–दर्शन ऐसे मुहाने पर जाकर अवस्थित हो गया जहाँ पर 'गोदान जैसी रचना प्रणीत हो सकी जिसने साहित्यिकों, पाठकों और आलोचकों के सम्मुख ऐसे प्रश्नचिह्न खड़े किए कि वे बिखर गए। किसी ने उसे असफल कृति के रूप में देखा तो किसी ने साहित्य के इतिहास में नए मोड़ के रूप में, किसी ने उसमें आदर्शवाद पाया तो किसी ने यथार्थवाद। उसकी थाह पाने के लिए आज भी चिन्तक बेचैन हैं।'

वह होरी किसान की कथा है। इस कथा में गौड़ कथा के रूप में शहर की कथा भी है जो गोबर के शहर लखनऊ में पलायन से जोड़कर देखी जा सकती है जिसमेंशहर की औद्योगिक और प्रजातांत्रिक परम्परा से जुड़े प्रतिष्ठा मूलक सोच को वाचाल बनाया गया है। शोषण की बिसात पर किसान और मजदूर दोनों हैं किन्तु एक के पास अपने घर में, देश में होने का सुख है तो दूसरे के पास शोषित होने पर भी बुद्धिवादी होने का सुख। सब ध नी बनने की होड़ में हैं, मनुष्य बनने की सोचते सब हैं, होड़ में कोई नहीं।

गोदान होरी की सांसों के साथ ग्राम्य–संस्कृति की निष्ठा गाय और उसके प्राण–पुरुष किसान के अध्यात्म की मृत्यु है जिसकी चिन्ता आज सब कर रहे हैं। ग्राम मिट जाएगा तो देश मिट जाएगा; किसान मर जाएगा तो मनुष्यता भी सिसकने लगेगी।

2.9 अपनी प्रगति जाँचिए

प्रश्न–1. गोदान पर विभिन्न आलोचकों की राय पर चर्चा कीजिए।

प्रश्न–2. प्रेमचन्द की औपन्यासिक विकास यात्रा पर विचार व्यक्त कीजिए।

प्रश्न–3. प्रेमचन्द की रचनात्मकता को प्रभावित करने वाली विचार–क्रान्तियों का विवरण दीजिए।

प्रश्न–4. होरी के जीवन पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न–5. गोदान शीर्षक की उपयुक्तता पर मंथन कीजिए।

2.10 नियत कार्य

– गौ के अर्थशास्त्रीय महत्व से संबंधित ग्रंथों का अध्ययन कीजिए।

– भारतीय ग्राम : दशा–दिशा, अतीत और वर्तमान पर ग्रंथों का अध्ययन कीजिए।

2.11 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

स्पष्टीकरण के बिन्दु

....

....

....

....

....

2.12 संदर्भ ग्रंथ

1. रामविलास शर्मा–प्रेमचन्द्र।
2. रामविलास शर्मा–प्रेमचन्द और उनका युग
3. अमृतराय : प्रेमचन्द : कलम का सिपाही
4. अमृतराय–विविध–प्रसंग (तीन खण्ड)
5. अमृतराय : चिट्ठी–पत्री (दो खण्ड)
6. पत्रिकाएँ–
   'उत्तरार्द्ध' का प्रेमचन्द अंक सं. सत्यसात्ती
   'उत्तरगाथा' प्रेमचन्द विशेषांक सं. सव्यसात्ती।

इकाई–तीन

गोदान में शोषण संस्कृति

इकाई की रूप रेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 किसानों का सामाजिक–आर्थिक शोषण

3.3 सामंती/जमींदारी शोषण

3.4 महाजनी शोषण

3.5 पूँजीवादी शोषण

3.6 नौकरशाही शोषण

3.7 पंचायती शोषण

3.8 धार्मिक आस्थाओं द्वारा शोषण

3.9 गोदान की ग्राम कृषक–नारी

3.10 सारांश

3.11 अपनी प्रगति जाँचिए

3.12 नियत कार्य

3.13 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दु

3.14 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय में चर्चा है–

- सामंती–जमींदारी शोषण की
- महाजनी शोषण की
- पूँजीवादी शोषण की
- नौकरशाही द्वारा शोषण की
- धार्मिक आस्थाओं के शोषण की
- और उससे प्रभावित किसान और मजदूर के जीवन की।

3.1 प्रस्तावना

गाँव और किसान एक दूसरे से इतने अभिन्न हैं कि एक के बिना दूसरे की कल्पना की ही नहीं जा सकती। किसान का उल्लास गाँव का उल्लास और किसान का विषाद गाँव का विषाव है। गाँ को विषाद में रहने की आदत है फिर भी वह विषाद को उल्लास की चुनरी ओढ़ाकर रंगीन बनाए रखता है। दुःख से सुख से जीना, विपक्ष को अतिथि समझकर उसका प्रफुल्ल–चित्ता से सत्कार करना उसके जीवन का वसन्त राग है। इसीलिए तो जब होली के अवसर पर क्रिया–करम के संवाद में ठाकुर–ठकुराइन सजीव हैं। उनका शोषण दबे पाँव है और जीवन का उल्लास उस पर चढ़कर बोल रहा है–

ठाकुर दस रुपए का दस्तावेज लिखाकर किसान को पाँच देता है तो वह चकरा जाता है– "यह तो पाँच रुपए हैं मालिक।

पाँच हनीं, दस हैं। घर जाकर गिनना।

नहीं सरकार, पाँच हैं।

एक रुपया बजराने का हुआ कि नहीं।

हाँ सरकार।

एक तहरीर का।

हाँ सरकार।

एक काराद का।

हाँ सरकार।

एक दस्तूरी का।

हाँ सरकार।

एक सूद का।

हाँ सरकार।

पाँच नगद। दस हुए कि नहीं।

हाँ सरकार। अब पाँचों भी मेरी ओर से रख लीजिए।

कैसा पागल है!

नहीं सरकार। एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने का। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया–करम के लिए।"

'जबरा मार, रोने न देय' की शोषण की इस क्रिया में शोषित इस तरह 'क्रिया–करम' के बहाने अभिशाप देने के सिखाकर ही क्या सकता। होली का अवसर है। बुरा न मानो, होली है। मन की कहने से कोई नहीं रोक सकता। वह भी राय साहब की उपस्थिति में जो स्वराज्य की लड़ाई में शामिल होकर लोक के रखवाले हो गए हैं, कोई कैसे रोक सकता। लोकतंत्र संवाद में विश्वास करता है और वे सदा संवाद का ही सम्मान करते हैं तभी तो सफाई देने के लिए आगे आ जाते हैं, "मैं उस वातावरण में पला हूँ जहाँ राजा ईश्वर है और जमींदार ईश्वर का मंत्री... मैं मानने लग गया हूँ कि जब तक किसानों को रियायतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी, केवल सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधर नहीं सकती। स्वेच्छा से अगर अपना स्वार्थ छोड़ दे तो अपवाद है। मैं खुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूँ कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर किया जाए। समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खरें, सुखद नहीं हो कसती। पूँजी और शिक्षा, जिसे मैं पूँजी का ही एक रूप समझता हूँ, इनका किया जितनी जल्दी टूट जाए उतना ही अच्छा।"

पुलिस से उरकर होरी रिश्वत देने के लिए कर्ज लेकर प्रबंध करता है तब धनिया उसके हाथ से रुपए छीन लेती है और दारोगा को टके सा जवाब देती है और होरी से कहती है, "जिसके रुपए हों, ले जाकर उसे दे दो। हमें किसी से उधार नहीं लेना है। मैं दगड़ी भी नहीं दूँगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चलना पड़े ।हम बाकी चुकाने को पचीस भौराते थे, किसी ने न दिया, आज अंजुरी भर रुपए उनाठन निकाल दिए। मैं सब जानती हूँ, यहाँ तो बाँट–बटरा होने वाला है। सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं या गरीबो का खून चूसने वाले। सूद–ब्याज, डेढ़ी–सवाई, नजर–नजरान्त, घूस–घास, जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा–धरम से, न्याय से।"

इस रूप में धनिया का गुस्सा फूटकर शोषण की सारी दिशाओं को उजागर कर देता है– खराज चाहने वाले जमींदार, पंच, नौकरशाह, महाजन आदि स्पष्ट नजर आते हैं। उसके ऊपर जनेऊधारियों का धर्म का दफोसला है जो भावना का शोषण करते हैं। इस दृष्टि से गोदान में शोषण के विविध आयाम लक्षित हैं जिन्हें जमींदारी–सामंती शोषण, महाजनी शोषण, पूँजीवादी शोषण, नौकरशाही शोषण, पंचों द्वारा शोषण और धार्मिक आस्था का शोषण के अन्तर्गत विवंचित किया जा सकता है।

किसान के जीवन को जकड़े हुए ये शोषण उसके व्यक्ति को ही नहीं, व्यक्तिगत सोच को भी पंगु बनाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उसका पारिवारिक और सामाजिक जीवन प्रभावित हो और उसमें से एक जीवन–दर्शन उभरकर आता है जो शोषित और पीड़ित का जीवन–दर्शन होता है। इसके विपरीत दबंगों का जीवन–दर्शन होता है जो शोषक की मानसिकता को प्रकाशित करता है। दोनों के जीवन–दर्शन अन्ततोरात्वा आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होता है जिसे शोषित पूरी निष्ठा से जीता है और दर्बरा पाखड़ से।

3.2 किसानों का सामाजिक–आर्थिक शोषण

ळोरी के मन में गाय पालने की लालसा है– पहले तो उसकी इच्छा है कि गोबर को दूध मिले। संभवतः कन्याओं के विवाह में गोदान की व्यवस्था और अंतिम समय में गोदान कर वैतरणी पार होने की कामना हो सकती है। भारतीय परंपरा में जीनेवाले किसान की यह महती आकांक्षा होती है। बस इसीलिए होरी–धनिया :मरजाद' के साथ रहना चाहते हैं। ग्राम की मर्यादा है, ग्राम–पंचायत की मर्यादा है, पारिवारिक और कौटुम्बिक मर्यादाएँ हैं, साहूकार के सामने मर्यादा है, जमींदार के सामने मर्यादा है। होरी किसान और गृहणी धनिया के सन्मुख कुल की मर्यादा है। वे मर्यादाओं के पालन में चूक नहीं करना चाहते। धर्ममार्ग पर चलकर इसकी पूर्ति हेतु जुटे रहते हैं, श्रमशील हैं, ईमानदार हैं, छल–कपट से दूर पारिवारिक भरण–पोषण का दायित्व निभा रहे हैं। वर्तमान व्यवस्था में मर्यादाओं में जीना 'जिमिदॉतन्ह मैह जीभ बिचारी' जैसो जीना है। झुककर चले बिना चल नहीं सकता अन्यथा किसानी और मर्यादा के बीच ताल–मेल नहीं हो सकता। मर्यादा बचाओ तो किसानी जाती है और किसानी बचाओ तो मर्यादा जाती है। अतः शोषण को अंगीकार कर लेने के सिवा उनके पास कोई चारा नहीं।

ळोरी की गाय की इस कामना ने एक ओर उसकी चरित्र में अपनों से ही छल करने की प्रवृत्ति को उजागर किया तो वहीं उसमें उसके लिए हर तरह का कष्ट झेलने की सामर्थ्य दी और गाय के लिए उधार लेने की प्रवृत्ति उसकी जीवन–चर्या बन गई। इसी गाय को देखने के लिए सारा गांव इकट्ठा हुआ, हीरा नजर बनी और मातादीन, नोहरी सिंह से उसका भाग्य सराहा न गया। इसी गाय के चलते गोबर–झुनिया का मिलन हुआ, भोला बैल खो गया, पंचों को दण्ड भरना पड़ा और अंत में इसी गाय के गोदान करने की लालसा सा लिए परमधाम गया।

इसके पूर्व प्रेमचन्द जमींदारों के विरोधी थे। उनके चाल–चलन और क्रिया–व्यापारों को शब्द देकर साम्राज्यवाद के विरोधी हो गए थे। गोदान में लोकतंत्र की प्रक्रिया में चुने गए जमींदार से आत्मावलोकन भी कराते हैं, उनमें मानववादी सोच भी भरते हैं, किन्तु उनकी तृष्णा का लोप शासन के हस्तक्षेप से ही कराते हैं। जमींदारी का सरकार द्वारा उन्मूलन जब तक नहीं होता, तब तक उनके शोषण, अन्याय का विसर्जन तो हो ही नहीं, उनमें श्रम की महत्ता का बीजारोपण भी संभव नहीं।

गोदान में स्पष्टतः जमींदार को अंग्रेजीराज का पोषक बताया गया है तो दूसरी ओर राज्य कर्मचारियों का संरक्षक और प्रेरक बनकर सामने आया है। राज्य कर्मचारी उन्हीं की तरह उनकी रिमाया का शोषण कर रहे हैं किन्तु वह मौन–दर्शक बने हुए हैं बल्कि जैसे भ्रष्टाचार के औचित्य का समर्थन कर रहे हैं। तभी तो गांव का पटवारी पटेश्वरी धमकी भरे लहजे में कहता है, ''मैं जमींदार या महाजन का नौकर नहीं, सरकार बहादुर का नौकर हूँ जिसका दुनिया भर में राज है और जो तुम्हारे जमींदार और महाजन दोनों का मालिक है।''

स्पष्ट है कि अंग्रेजी राज ने महाजनों और जमींदारों के खामियाना, सम्मान को गहन रख लिया है। तभी तो सरकारी कर्मचारी निर्भीक होकर शोषण और अत्याचार में संलग्न हैं। प्रेमचन्द जमींदारों की अंग्रेजी राज से दुर्राभ–संधि ा की इसी पोल का उद्घाटन किया है यह कहकर कि ''अफसरों को दावतें कहां से दूँ? सरकारी चन्दे कहाँ से दूँ?. .. आएगा तो आसामियों के घर से ही। आप समझते होंगे, जमींदार और ताल्लुकेदार सारे संसार का सुख भोग रहे हैं। उनकी असली हालत का आपको दान नहीं, अगर वह धर्मात्मा बन रहें तो उनका जिन्दा रहना मुश्किल हो जाए। अफसरों को गालियां न दें तो जेलखाना हो जाए।''

प्रेमचन्द ने संकेत से अच्छी तरह दर्शा दिया है कि होरी–धनिया की सबसे बड़ी पीड़ा लगान है जो इतना अधिक है कि हजूर के सामने दण्डवर्त् और मिन्नत किए बिना किसान का क्षण भर जीना संभव नहीं। धनिया के सोच में तो प्रेमचन्द ने डाल ही दिया यह तथ्य कि 'कितना ही पेट–तन काटो, चाहे एक–एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो मगर लगान से बेबाक होना मुश्किल है।'' जमींदार के कारिन्दे किसी गुप्त साजिस की तहत लगान प्राप्ति की पावती नहीं देता। इस कारण जमींदार के पास अधिकार सुरक्षित रहता है कि जब भी कोई किसान सिर उठाए अथवा कुछ न्यासंगत बोलने के लिए उकसे, उस पर बकाया लगान का दबाव बनाओ, नोटिस दो, दावा करो और जमीन से बेदखल कर दो। स्थिति और प्रक्रिया साफ है कि दो–तीन बार लगान देने के बाद भी बकाया लगान इतना अधिक हो जाता है कि किसान अपना घर–बार बेच देने पर भी इतना रुपया नहीं जुटा पाता कि लगान की भरपाई कर सके। लाचार अपने खेते से बेदखल कर दिया जाता है, जिसकी लाठी उसकी भैंस। गरीब किसानों की जीविका छीन लेते हैं, पेट पर लात मार देते हैं। शहर लखनऊ से समझदारी प्राप्त कर जब गोबर गांव आता है तब चीख–चीखकर कहता है, 'मैं अदालत में तुमसे गंगाजली उठवाकर रुपए दूँगा, इसी गांव में एक सौ सहादतें दिलाकर साबित कर दूंगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे–सादे किसान हैं, कुछ बोलते नही तो तुमने समझ लिया कि सब काठ के उल्लू हैं।''

आश्चर्य की बात तो यह है कि वह अपनी क्रूरता का नंगा–नाच तब करते हैं जब किसान के शरीर पर कपड़े ही नहीं होते। वे हर समय ताक में रहते हैं कि किसान कब ऐसे गंभीर संकट में फंस गया है कि पूरी तरह किंकर्त्तर्व्यविमूढ़ हो गया है। जब किसान ऐसे संकट में होता है कि उसका अर्थ संकट उसका पूरी तरह धर्मसंकट बन गया है, तभी वह उस पर आघात करता है और किसान टूट जाता है। रायसाहब होरी से लगान की मांग ही तब करते हैं जब पहली–पहली बरसात हुई है और वह खेत बोने के लिए जाने वाला होता है। ऐसे अवसर पर महाजन वराहावतार बनकर प्रकट होते हैं। ऋण देने के लिए उनके अलावा कोई प्रस्तुत ही नहीं होता। विवश होकर किसान जमींदार के फंदे से टूटने के लिए महाजन के फंदे में फंस जाता है। किसान महाजन के फंदे में क्या फंसता है, फंसता ही चला जाता है। कर्ज वह मेहमान है जो एक बार जिस घर में आता है, जाने का नाम ही नहीं लेता। ऋण की इस सुसाहबी का बखान करने के लिए प्रेमचन्द दृष्टान्त देते हैं, होरी ने 'मैगरूशाह से आज पांच साल हुए, बैल के लिए साठ रुपये लिए थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ रुपये ज्यों के त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से तीस रुपये लेकर आलू बोए थे। आलू तो चोर खोद ले गए और उसके तीन बरसों में सौ हो गए थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गांव में नोन, तेल, तमाखू की दुकान रखे हुए थी। बंटवारे के समय उससे चालीस रुपये लिए थे, माइयों को देना पड़े थे। उसके भी लगभग सौ रुपये हो गए थे, क्योंकि आने रुपये का ब्याज था।'' साहूकारी का धंधा जल्दी से जल्दी बिना किसी श्रम के अमीर बन जाने सबसे सरल साधन है, जरूरत आदमी को पहचानने की है– कौन लेकर मागेगा नहीं, कौन ईमानदारी से चुकाने का स्वभाव वाला है, किसमें कितनी नैतिकता, उसूल, प्रियता, वचन–बद्धता और दयनीयता है। शोभा एक बार मंगार से पूछ बैठता है, ''अच्छा, ईमान से बताओ साह, कितने रुपये दिए थे जिसके अब तीन सौ रुपये हो गए हैं।'' मगर साहू बडे उसके से जवाब देता है, ''जब तुम साले के साल सूद न दोगे, तो आप ही बढ़ेंगे।''

आगे उस सच का प्रकाशन होता है जो सूरखोरों की अमानुषिक वृत्ति का दर्शन कराता है। सत्य और ईमान के साथ कितना बर्बर व्यवहार करते हैं कि उनके आदमी होने पर से विश्वास उठ जाता है। योग कहता है– "पहले–पहल कितने रुपये दिए थे दुमने? पचास ही तो?" बस इसी तरह तीस रुपये का कागद लिखने पर पचीस रुपये मिलेंगे और तीन–चार साल तक न दिए तो पूरे सौ हो जाएंगे।

जमींदार ने किसान के खून–पसीने को लूटने के लिए तरह–तरह के व्यवहारिक असूल बना रखे हैं, लगान तो लेना ही है, अपने मालिक होने का नजराना भी लेना है, समय–समय पर भेंट पहुंचते रहना चाहिए। धर्मात्मा के रूप में जब–तब प्रकट होने के लिए कथा–वार्ता, लीला आदि करवाना होती है, इनमें किसान की रियासा के रूप में भागीदारी उनकी नैतिकता की परख बन जाता है अतः अच्छा से अच्छा शोभादायक पत्र पुष्प के रूप उपस्थित होना हर किसान के लिए अनिवार्य हो जाता है।

एक ओर जमींदार मालिक के रूप में आव–भगत, आदर–सत्कार के नाम पर रियाया के ऊपर लोकाचारी बंधन लगाए हुए हैं तो दूसरी ओर महाजन अपने बात–व्यवहार, घड़ियाली आंसू और श्रृगाली धूर्त आचरण के बल पर किसानों में अपनी पैठ बनाए हुए हैं। व्यवहार की दुनिया के इस छल ने जमींदार और महाजन के जबड़ों में लकड़बग्घों का जबड़ा पुनरारोपित कर दिया है, जिससे वह उसका रक्तपान तो करते ही हैं, उसकी हड्डियां तक चूस लेते हैं। प्रेमचन्द किसानों की इस दशा से बुरी तरह आहत हैं और निर्मल मन से हूक उठते हैं कि उनके जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हैं और सारी हरियाली मुरझा गई है। जेठ के दिन हैं, अभीतक खलिहानों में अनाज मौजूद है, मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों ओर कारिन्दों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अंधकार की भांति उनके सामने है।"

सूद और लगान के अलावा भी जमींदारों, महाजनों, पंचों और धर्म–ध्वजों ने किसानों के शोषण के अनेक तरीके प्रचलन में डाल रखे हैं। वे तरीके, औपचारिक सद्भाव और सदाचार की मांग पर टिके दस्तूर साम्राज्यवादियों के दिमाग की तन्दूरी खोज का परिणाम है।। बेगार, नजराना, डांड, दस्तूरी, शगुन आदि लोक–व्यवहार की दुनिया के आदान–प्रदान और सद्भाव प्रसार के माध्यम हैं किन्तु शोषकों और उत्पीड़कों की दुनिया में केवल लेना ही लेना होता है, यहां मानवीय समझ का लेने के बहिले में कुछ देना नहीं होता। इस दुनिया में अमीर लेता है और गरीब सदैव देता ही रहता है। इन सौगातों को वसूलने का अधिकार जमींदार, जमींदार के कारिन्दों, महाजन, सरकारी कर्मचारियों, पटवारी, पुलिस, दरोगा और अदालत सभी के पास होता है। सबका एक मात्र 'नरमचारा' होता है किसान। प्रेमचन्द का कथाकार जब भी अवसर आता है उसे पीड़ा कसकती हुई नजर आती है, वह इन हथकण्डों पर पूरे साहस, निर्भयता से कलम चलाता है जिससे पाठक संवेदित हुए बिना नहीं रहता। प्रेमचन्द ने इस विषय पर गंभीरता से दीर्घकालीन चिन्तन किया हैं इसीलिए वह इस निष्कर्ष पर पहुंच सके हैं कि जमींदार के अच्छे अथवा भले होनेसे इस समस्या का कोई संबंध नहीं। सच तो यह है कि मालिक और रियाया, पट्टाईदार और खेतिहर, राजा और प्रजा के बीच का संबंध ा ही कुए ऐसा होता है कि एक ओर प्रजा में भय, अविश्वास और आत्महीनता के भावों को पुष्ट करता है और दूसरी ओर जमींदारों के अभिभावी, निर्दयी और निरंकुश बना देता है।"

शोषण की इस व्यवस्था में जमींदार और महाजन तो एक–दूसरेके गले में हाथ डाले अपना अस्तित्व बनाए हुए चलते हैं तो दूसरी ओर महाजन ने धर्म और अध्यात्म को अपना कण्ठहार बना लिया है। कोई भी असामी कर्ज अथवा सूद अदायगी में ननुगच करता तो वे तत्काल उसके लोक–परलोक नसावन धार्मिक भावनाओं पर प्रहार करने लगते हैं। दातादीन ने होरी को तीस रुपये दिए थे, ये तीस रुपये अब दो सौ हो गए हैं। गोबर न्यायसंगत सत्तर रुपये देना चाहता है। पण्डित दातादीन इसे कैसे स्वीकार लेते। उनका ब्राह्मणत्व चोटी में आ बसा। आंखें तरेर उठा, 'सुनते हो होरी गोबर का फैसला मैं अपने दो सौ छोड़कर सत्तर रुपये ले लूं, नही तो अदालत करूँ। इस तरह का व्यवहार हुआ तो कै दिन संसार चलेगा? और तुम बैठे सुन रहे हो, मगर यह समझ लो मैं ब्राह्मण हूँ। मेरे रुपये हजम करके तुम चैन पाओगे। मैंने ये सत्तर रुपये भी छोड़े, अदालत भी न जाऊँगा, जाओ। अगर मैं ब्राह्मण हूं तो दो सौ रुपये पूरे लेकर दिखा दूंगा। और तुम मेरे द्वार पर आओगे और हाथ बांधकर दोंगे।"

इस धमकी का धर्मप्रवण परमात्मा के भरोसे जीवन भरण करने वाले पर गहरा असर हुआ। वह सहम गया। उसे अपना परलोक जाता हुआ नजर आया। वह भावुक हो उठा। उसका स्वर भंग हुआ, अनुनय–विनय करता हुआ सा दो सौ रुपये चुकाने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो गया। पण्डित दातादीन मात्र सूदखोर महाजन ही नहीं, गांव भर के पुरोहित भी हैं। उनकी जनमानी का प्रभाव भी कम नहीं है। इसी जजमानी के बल पर तो उनका ब्रह्मदण्ड सरोष है। जजमानी के गौरव का बखान करते हुए वह कहते है।, "जमींदारी मिट जाए, बैंकघर टूट जाए लेकिन जजमानी अन्त तक बनी रहेगी। सहायता में मजे से घर बैठे सौ–दौ सौ फटकार लेते हैं। कभी भाग लड़ गया तो चार–पांच सौ मार लिया। कपड़े, बरतन, भोजन अलग। कहीं न कहीं नित ही कार–परोजन पड़ा ही रहता है। कुछ न मिले तब भी दो थाल और दो–चार आने दक्षिणा मिल ही जाती है।"

किसान की दुखस्था के लिए धर्मधुरीन सदाचरण ही उत्तरदायी नहीं है, उसका अपनी बिरादरी का भी कुरीति प्रधान आचरण है। गोबर ने झुनिया से विवाह क्या कर लिया, बिरादरी की नाक कट गयी। नाक बनाने के लिए पंचों ने होरी पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज की डांड लगा दी। होरी क्या करता। बिरादरी में रहने अपनी 'मरजाद' की रक्षा के लिए उसने अपना घर गिरवी रख दिया। पंदा हुआ अनाज डांड में दे दिया। प्रेमचन्द होरी की इस दारुण दशा से कैसे करुण न होते, कह उठे, "बिरादरी का वह आतंक था कि अपनेसिर पर लादकर अनाज ढो रहा था, मानो अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहा हो। जमींदार, साहूकार, सरकार किसका इतना रौब था। कल बाल–बच्चे क्या खाएंगे, इसकी चिन्ता प्राणों को सोख लेती थी, पर बिरादरी का भय पिशाव की भांति सिर पर सवार अंकुश दिए जा रहा था।"

पंच होते कौन हैं? गांव के वही सब तो पंच बनते हैं जो धर्माधिकारी होते हैं, विरादरी के सरुखदार होते हैं, जमींदार और उनके कारिन्दे होते हैं, सरकारी मुलाजिम होते हैं। वही समाज के कर्ता–धर्ता होते हैं, वही जमींदार, सरकार के कारिन्दे होते हैं। कोई महाजन होता है, कोई पुजारी, सबकी अलग–अलग भूमिकाएं हैं और सब मिलकर किसान को कसने पर तुले रहते हैं। कोई किसी से कम नहीं। किसान को लूटने के लिए सबकी अच्छी सग्गा–भित्ती है। सबके शोषण उत्पीड़न के तरीके अलग हैं किन्तु मौके पर शोषण के समय एक–दूसरे की सहायता के लिए बिना फीस लिए वकील की भांति आगे आ जाते हैं। पुजारी धार्मिकता का शोषण करता है, दरोगा डण्डा चमकाकर दण्ड वसूलता है, बिरादरी जाति–बाहर कर देने के दबाव से और जमींदार अनेका अनेक हथकण्डों से शोषण करता है। ध ानिया जब कलख उठती है तब इन सबको 'हत्यारा' कहने से नहीं चूकती। हत्यारों की इस जमात को प्रेमचन्द ने अकारण ही नहीं इकट्ठा किया है। विशेष प्रयोजन से हव इन शोषकों को एक जगह इकट्ठा कर बेनकाब करते हैं।

समय है होरी का गाय के मरण का। हीरा ने जहर देकर मार डाला है। सारे गांव में चर्चा है। गांव वाले आ जुड़े हैं। राय साहब का कारिन्दा नोखेराम आ गया है। पण्डित दातादीन आए हैं, महाजन झिंसुरी सिंह पधारे हैं। सरकार बहादुर के पटवारी पटेश्वरी भी आ धमके हैं। पुलिस को तो आना ही था, वह आई। पण्डित जी धर्म–दण्ड का बल बखान किया, पुलिस हीरा के घर की तलाशी लेने के लिए तैयार हुई। होरी की पारिवारिक मर्यादा बचाए रखने की भावना जाग उठी। अपने रहते वह अपने भाई हीरा के घर की तलाशी कैसे होने दे सकता है! व्ह दया के लिए गिड़गिड़ा उठा। सबने मिलकर थानेदार से, दारोगा से बात की और रिश्वत की रकम तय कर ली। पंचों ने बिचौलिया की भूमिका अख्तियार कर ली। झिंगुरी सिंह महाजन बन गए। उन्होंने झट तीस रुपये होरी को उधार दे दिए। तय हुआ था कि इनमें से आधे रुपये दारोगा को मिलेंगे और आधे पंचों के हिस्से में पड़ेंगे। इस प्रपंच की कलई खोलने के लिए प्रेमचन्द अच्छे नाटकीय कौशल का प्रयोग किया है। रिश्वत के पैसे तो बचा ही लिए, पंचों के मुंह भी लटकवा दिए हैं। धनिया का आकस्मिक रूप से क्षत्राणी हो उठना इस शोषण संस्कृति के रहस्य को खोलने के लिए सुचिन्तित योजना के रूप में बुना प्रेमचन्द का कथा कौशल है। होरी तो सर्वत्र लुटता ही रहा है किन्तु इस मौके पर यदि धनिया से उसने चारित्रिक दृढ़ता का पाठ सीख लिया होता तो वह कुछ और होता।

इस घटना संयोजन से एक बात सुस्पष्ट है कि प्रेमचन्द दीनहीनों और सर्वहारा के शोषण के लिए किसी व्यक्ति अथवा संस्था के सिर ठीकरा नहीं फोड़ते। सम्पूर्ण तंत्र को ही इसमें उलझा अनुभव करते हैं। होरी की कथा कहते–कहते प्रेमचन्द अपने समय में घट रहे परिवर्तन पर बराबर नजर रखे हुए हैं। होरी को दुर्दम परिस्थितियों से

उवार तो नहीं सकते किनतु उसमें वह भाव भरने की जुगत तो कर ही सकते हैं जिससे वह अपने को इतना क्षीण दीन–हीन और निरुपाय अनुभव कर खुद को शोषण और उत्पीड़न के लिए खुल्ला न छोड़ दे। स्वयं–स्फूर्त और उर्जावान बने। कदाचित् इसीलिए वह झिंगुरी सिंह के मुंह से कहलवाते हैं कि "कानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करे। मगर होता क्या है? रोज ही देखते हो। जमींदार मुसक बंधवा के पिटवाता है, और महाजन लात और घूसे से बात करता है, जो किसान पोढ़ा है उससे न जमींदार बोलता है, न महाजन। ऐसे आदमियों से हम मिल जाते हैं और उसकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन हवाते हैं।"

3.3 सामंती अथवा जमींदारी शोषण

रायबहादुर अमरपाल सिंह का यह कथन किवह जिस वातावरण में पले हैं, उसमें राजा ईश्वर है और जमींदार ईश्वर का मंत्री' इस शोषण की मूल हैं जिसे सींचना रिवाया का परम कर्त्तव्य है। इसलिए उसने ऐसा आडम्बर रच रखा है कि उसका उदार मनतव पूज्य हो गया है जिसकी आड़ में उसका शोषक पूरी तरह फल–फूल रहा है। उसके इस फलने–फूलने में ही होरी के इस कथन की सार्थकता है जिसमें वह अपने को कृतार्थ समझने में ही गौरव का अनुभव करता है वह कहत्व है, "यह हमारे मिलते–जुलते रहने का ही परसाद है कि अब तक जान बची है, नहीं तो कहीं पता न चलता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई किस पर कुड़की नहीं आई।"

इस सन्दर्भ में दातादीन और झिंगुरी सिंह के बीच का संवाद अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें दातादीन झिंगुरी सिंह को सुनाकर कहता है कि "समय–समय की परथा है और वसा! थ्कसी में उतना तेज तो हो, बिस खाकर उसे पचाना तो चाहिए। सतयुग की बात थी, सतयुग के साथ गई! टब तो निवाह बिरादरी के साथ मिलकर रहने में है। मगर करै क्या! कोई लड़की वाला आता ही नहीं।... झिंगुरी सिंह कहता है– "तुम जजमानी को भीख समझो, मैं तो उसे जमींदारी समझता हूँ, बंफधर...।"

स्वार्थ ने सामाजिकों ने, समाज में ऐसी धारणा बाद मूल कर रखी है कि 'धर्म' के ठेके बेरोग–टोक चल रहे हैं। उसमें बुद्धिवाद कहीं काम आत्मा नज़र नहीं आता। होरी का राय साहब के प्रति सहृदयता दिखाना उनकी भक्ति और धार्मिकता की बिना पर गोबर को रास नहीं आती। वह चीख उठता है, यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान–ध र्म कना पड़ता है।... एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति मूल जाएँ।"

होरी को तो परलोक पर विश्वास है। पिछले जनम में राय साहब ने ऐसा कुछ किया होगा कि वह राय साहब बने और उन लोगों ने कुछ ऐसा किया होगा किवे दरिद्र बने। यह बात नहीं है बेटा, बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसा धर्म–कर्म किए थे, उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ संचा नहीं सो भोगे क्या!" वह गोबर को समझाता है।

जमींदार में जन–बल, धन–बल इतना है किवह कुल मिलाकर उसका बाहुबल बन गया है और उसके समक्ष गाँव बेशारी करने के लिए विवश है। कभी कोई न–नुकर करता है तो सीधे शिकायत पहुँच जाती है, "सरकार बेगारों ने काम करने से इंकार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे।" राय साहब की त्यौरियां रह जाती हैं," जब कभी खाने को नहीं दिया रावा तो आज यह नई बात क्यों! एक रुपया रोज के हिसाब से मजदूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है और इस मजूरी में पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े। चलो, अभी ठीक करते हैं दुष्टों को।

यही जमींदार अभी कुछ देर पहले होरी से कह रहा था और ये रुपये, जिनसे राय साहब का वैभव–विकास सजता है, तुमसे और तुम्हारे भाइयों से वसूल किए जाते हैं, भाले की नोक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता... लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा।

हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। वह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, तब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा। हम मानवता का वह पद न पा सकें, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

इन्हीं राय साहब का कारिन्दा है नोखेराम। भोला की त्नी नोदरी को रखैल बना रखा है। "वेतन तो उसका दस रुपए से ज्यादा न था, पर एक हजार साल की ऊपर की आमदनी थी, सैकड़ों आदमियों पर हुकूमत है चार–चार प्यादे हाजिर, बेगार में सारा काम हो जाता था। होरी से दोबारा लगान वसूल करना चाहता है, रसीद किसी को नहीं देता। होरी का स्वर असहाय हीनता से भर उठता है," मैंने पाई–पाई लगान चुका दिया। वह कहते हैं, तुम्हारे ऊपर दो साल की बाकी है

"तुम्हारे पास रसीद तो होगी! गेबर पूछता है!

"रसदी कहाँ देता है?"

"तो तुम बिना रसीद लिए रुपए देते ही क्यों हो?"

गेबर के इस क्यों का होरी के पास कोई जवाब नहीं। आदमी के ईमान पर प्रश्नचिह्न लगाकर उसे देखना उसने सीखा ही नहीं। शोषण में जीना जैसे उसने अपनी नियति मान रखी है।

3.4 महाजनी शोषण

गोबर के लखनऊ से गाँव लौटने पर होली पर जो प्रहसन होता है, उसमें महाजनी स्वरूप स्पष्ट उभरकर आया है। ठाकुर दस रुपए का दस्तावेज लिख जाता है। किसान को मात्र पाँच रुपए देता है। किसान का मुंह खुला का खुला रह जाता है। उसके मुंह से बरबस फूट पड़ता है– "यह तो पाँच हैं मालिक पाँच का पूरा हिसाब नजराना, तहरीर, काराद, वसूरी और रसूद में हिसाब हो जाता है। किसान शेष पाँच भी छोटी ठकुराइन, बड़ी ठकुराइन के नजराने–पान और क्रिया–करम के खाते चढ़ जाते हैं। स्पष्ट इंगित है कि किसान कर्ज लेकर अपना क्रिया–करम ही लिखवा लेता है। ये महाजन सूदखोरी कर धन्धा करते हैं और हर–हाल में एक–जुट होकर गरीब किसान की साँसों पर वसूल करते हैं। इसमें दया–धर्म, मनुष्यता कहीं आड़े नहीं आती। भले ही धर्म का टीका धारण करनेवाले दातादीन ही क्यों न हो।

गोबर दातादीन के इस व्यापार को भली–भाँति समझता है और दातादीन के उसके किंचित सम्पन्न और साझदार होकर बेलारी लौटने पर व्यंग्य का जवाब देता है, "गर्मी उन्हें होती है एक के दस लेते हैं। ठग तो मंजूर है। हमारी गर्मी पसीने के रास्ते बह जाती है। मुझे याद है, तुमने बैल के लिए तीस रुपए दिए थे। उसके सौ हुए और अब सौ के दो सौ हो गए। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों ने किसानों को लूट–लूटकर मजूर बना डाला ओर आप उसके मालिक बन बैठे। यही वह द्यतादीन है जो होरी को अधेड़ रामसेवक से रूपा के विवाह का प्रस्ताव लेकर आता है।

मृत्यु–संकट से गुजरने के पहले होरी इतने जबर्दस्त संकट से गुजरता है कि उसका अस्तित्व ही संकटापन्न हो जाता है। तीन साल से लगान नहीं चुका पाया। नोखेराम बेदखली का दावा लेकर आ डटा है। वह बेलारी गाँव में ही जीना–मरना चाहता है। उसे अपनी जमीन की रक्षा करना है। धर्मस्व जी द्यातादीन सहातया के लिए आ टपके हैं। होरो को इस निष्कर्ष पर पहुँचा देता है कि अब "यह कुल–प्रतिष्ठा पालने का समय नहीं, अपनी जान बचाने का समय है।" होरी दो सौ रुपये में लड़की बेचने के लिए तैयार हो जाता है। रूपा अधेड़ राम सेवक को ब्याह दी जाती है। होरी वहीं आत्मिक रूप से भर चुका है, केवल चोला बच रहा है होरी के नाम का!

पंडित दातादीन अपने लड़के मातादीन को सिलिया को घर में रखने से नहीं रोक पाते किन्तु गोबर–झुनियश प्रसंग पर होरी को धर्मच्युत कराते हैं, बिरादरी वालों से बहिष्कार करवाते हैं। फिर भी होरी उसे ब्राह्मण मानता है। "उसके पेट में धर्मक्रान्ति मची हुई है। अगर ठाकुर या बनिए के रुपए होते तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती। लेकिन ब्राह्मण के रुपए उसकी एक पाई भी दब गई तो हड्डी तोड़कर निकलेगी। भगवान न करे कि ब्राह्मण का कोप किसी

पर गिरे। वंस में कोई चुल्लू भर पानी देने वाला, घर में दिए जलाने वाला भी न रहेगा। उसका धर्म भी मन त्रस्त हो उठा। उसने दौड़कर पण्डित जी के चरण पकड़ लिए और आले स्वरों में बोला, "महाराज, जब तक मैं जीता हूँ, मैं तुम्हारी एक–एक पाई चुका दूँगा।"

होरी का तो जीवन ही साहूकारों की मर्जी से चला है। समस्याएँ उसके सामने सदा मुंह बाए खड़ी रहीं। आशा कागुनगुनापन उसे गुनगुना बनाए रखता है और हर फसल पर सब कुछ खलिहान पर तुल जाता है। उस पर भी बाकी रहता है तीन सौ का कर्ज जिस पर कोई सौ रुपए सूद के बढ़ते जाते थे।" भगार साह से आज कोई पाँच साल हुए, बैल के लिए साठ रुपए लिए थे। उसमें साठ दे चुका है, पर यह साठ ज्यों के त्स्यों बने हुए थे। द्यातादीन पण्डित से तीन रुपए लेकर आलू बोए। आलू तो चोर खोद ले गए और उन तीन के इन तीन बरसों में सौ हो गए थे। दुलारी विधवा साहु आइन थी जो गाँव में नोन, तेल, तम्बाकू की दुकान रखे थी। बँटवारे के समय उससे चालीस रुपए लेकर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ हो गए थे। क्योंकि अपने रुपए का ब्याज था। लगान के भी अभी पचीस रुपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपयों का भी कोई प्रबन्ध करना था। जिन्दगी के दो बड़े–बड़े काम सिर पर सवार थे, गोबर और सोना का विवाह।"

शोभा बुरी तरह हताश है, पूछता है– इन महाजनों से कभी पीछा छूटेगा भी कि नहीं। होरी ही कहां उसे ढाढ़स बँधा पाता है, "इस जनम में तो कोई आशा नहीं है भाई। हम राज नहीं चाहते, योग–विलास नहीं चाहते खाली मोट–झोंटा पहनना और मोटा–झोंटा खाना और गरजाद के साथ रहना चाहते हैं, वह भी नहीं सधता।"

3.5 पूँजीवादी शोषण

औद्योगिक क्रान्ति में पूँजीवादी प्रवृत्तियों को बल दिया। व्यक्ति घोर व्यक्तिवादी होता गया। धन की भूख अपरिमित हो गई। मन की कोमल वृत्तियों का लगभग संहार सा हो रहा है। गरीब और अमीर सब इसके व्यामोह में जकड़ गए हैं। गरीब दिनों दिन गरीब अमीर दिनों दिन अमीर होता जा रहा है।

खन्ना एक बैंक के डायरेक्टर हैं। 'बिजनेस इस बिजनेस' उनका ध्येय वाक्य है। वे मित्रों के साथ भी कोई नरमी नहीं बरतना चाहते। उनकी शक्कर की दो मिले हैं। उन्हें असामियों का शिकार करने से ही फुरसत नहीं। वे तो सिर्फ येन–केन–प्रकारेण हल से लोगां पर एहसान लादना और एहसान लादकर काम निकालना जानते हैं। वे मानवता से पूरी तरह विमुख हैं और अर्थ–पिशाच बन गए हैं। शोषण से कमाए हुए धन पर विलासी हो गए हैं। उन्हें घर–परिवार से कुछ लेना–देना नहीं। पारिवारिक दायित्व उनकी दिनचर्या से गायब है।

मिल में हड़ताल होती है। खन्ना के मिल में हड़ताल मिल मालिकों के स्वार्थ के कारण होती है। हड़ताल भिजी खुर्शेद और आंकारनाथ की मदद मिल रही है। हड़ताल को शान्तिपूर्ण के अमल देने की सावधानी के बावजूद हिंसा घुस ही जाती है। हड़ताल का कोई परिणाम नजर नहीं आता। नौसिखिए मजदूर पुराने पर भारी पड़ते हैं। खन्ना के मिल में मीग लग जाती है। खन्ना बावले हो जाते हैं, "मैं एक घण्टा नहीं, आधा–घण्टा पहले दस लाख का आदमी था। जां हां, दस लाख का। मगर इसवक्त फाकेमस्त हूँ। नहीं, दिवालिया... जिस खन्ना को देखकर लोग जब्ते हैं, हव खन्ना अब धूल में मिल गया है। समाज में मेरा कोई स्थान नहीं है। मेरे मित्र मुझे अपने विश्वास का पात्र नहीं दया का पात्र समझेंगे। मेरे शत्रु मुझसे जलेंगे नहीं, मुझ पर हँसेंगे। आप नहीं जानते मिस्टर मेहता, मैंने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं, कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नकली बॉट रखे।"

पूँजीवादी सोच ने जीवन को बरबस जीवन को जटिलय से भर दिया है। उसका सोच ही पंगु हो गया है। तभी तो खन्ना को पूरा विश्वास है कि ज बवह (मालती) उनसे बराबर रुपये उधार लेती है और हजम कर जाती है तो अवश्य ही उन्हें दिल से चाहती है' तो दूसरी ओर श्रीमती खन्ना का मन मैला हो गया है मेरी समझ में वह वेश्याओं से भी गई–बीती है क्योंकि वह परदे के आड़ में शिकार करती है।" यह रूढ़ीवादी सोच पूँजीवादी आई में पलते विलास–भाव की उपज है। किसी को उसके यथार्थ व्यवहार और चलन की निहाई पर यह सोच आंक ही नही सकता।

मालती के पिता मिस्टर कौल इन पूँजीवादी रस्मों में पूरी तरह रचे–बसे थे। मालती को ये गुण पिता से विरासत में मिले थे और वह अपने डाक्टरी पेशे में उनका उपयोग करती थी। बिजली के संपादक ओंकारनाथ बनते तो आदर्शवादी थे लेकिन व्यवहार में पूँजीवादी ही थे। रामसाहब से सौ ग्राहकों का चंदा पाकर आदर्श को धता बता बैठे थे।

वकील और एल.आई.सी. एजेण्ट तंखा का जीवन ही दाँव–पेंच का आगार है। "सौदा पटाने में, मुकामला सुलझाने में, अंगूठा लगाने में, बालू से तेल निकालने में, गला दबाने में, दुम आड़कर निकल जाने में बड़े सिद्धहस्त। रेत पर नाव चला दें, पत्थर पर दूब उगा दें। ताल्लकेदारों को महाजनों से कर्ज दिलाना, नयी कंपनियां खोलना, चुनाव के असर पर उम्मेदवार खड़े करना– यही उनका व्यवसाय था। खासकर चुनाव के समय उनकी तकदीर चमकती थी। किसी पढ़े उम्मीदवार को खड़ा करते, दिलोजान से उसका काम करते और दस–बीस हजार बना लेते। जब कांग्रेज का जोर था तो कांग्रेस के उम्मीदवारों के सहायक थे। जब साम्प्रदायिक दल का जोर हुआ, तो हिन्दू सभा की ओर काम करने लगे। इस उलट–फेर के समर्थन के लिए उनके पास ऐसी दलीलें थी कि कोई ऊँगली न दिखा सकता था। सहर के सभी रईस, सभी हुक्कमा, सभी अमीरों से उनका याराना था।"

यद्यपि हम गोबर के शहरी मजदूर के रूप जीवन व्यतीत करते पाते है। तथापि उसमें धन की लालसा तो थी। अतः पूँजीपति बनने की लालसा से उसने भी ब्याज धन्धा किया। उसमें उसके अनुसार चतुराई के भी दर्शन होते हैं। वह आदमी को देखकर व्यवहार करने लगा। उसने मिजी खुर्शेद को पाँच रुपए उधार देने से इंकार कर दिया। यद्यपि उसके पास पैसे थे किन्तु उसे आभास था कि रुपए मिलने ाले नहीं, किन्तु उसके तुरन्त बाद ही उसने अलादीन को रुपए दे दिए। अलादीन ने रुपए ब्याज पर जो मांगे थे। औद्योगिक शोषण का प्रभाव गोबर पर स्पष्ट है। उसके कारण ही उसमें औद्योगिक संस्कृति की, यंत्र सभ्यता की बुराई ने घर कर लिया है। इतनी चालाकी, समझदारी और उद्यमशीलता के बावजूद वह औद्योगिक शोषण से मुक्त नहीं रह सका और लगता है कि मिल जाने के बाद जैसे खन्ना धरातल पर आ गिरा वैसे ही वह भी अपनी निरीहता पर आ गिरा। स्पष्टतः इस शोषण के चलते पुरुषार्थ और साहस के बावजूद, अत्याचार के विरोध और अन्धविश्वासों और रूढ़ियों के विरोध के बावजूद अपना जीवन आर्थिक और सामाजिक संकटों में काटने को अभिशप्त हो गया।

3.6 नौकरशाही शोषण

हीरा ने रात में उसाने में बँधी होरी की गाय को जहर दे दिया। पुलिस गाँव तहकीकात करने आई। होरी के सामने भरजाद की समस्या फिर आ खड़ी हुई। जब–जब भरजाद का प्रश्न आ खड़ा होता है, होरी किंकर्त्तव्यविभूढ़ हो जाता है। इस अवसर पर गाँ के मुखियों के सलाह से दारोगा को रिश्वत देने के लिए ऋण लेकर आता है। धनिया आवेश में आ जाता है। औगोछा झरकती है।। गाँठ खुल जाती है और जमीन पनटनाकर बिखर जाते हैं। धनिया फुफकार उठती है; कहाँ लिए जा रहे है रुपए। बता–घर के प्राणी रात–दिन भरें और दाने–दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को भयस्सर नहीं और अँजुरी भर रुपए लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत।"

धनिया के आवेश ने दारोगा के सामने प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया। उसने ऐसी लताड़ आज तक न खाई थी। उसका चेहरा तमक उठा। उसने हार मानना तो सीखा ही नहीं था। लमलमा उठा, "मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने ही हीरा को फँसाने के लिए जहर दे दिया।"

धनिया कहाँ हेरी खाने वाली थी। हाथ फटकार कर बोली, "हाँ, दे दिया; अपनी गाय थी, मार डाला; फिर किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा। तुम्हारी जाँच में यही निकलता है तो यही लिखो, पहना दो हाथ में हथकड़ी। देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारी अवकल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है; दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।"

इस मौके पर धनिया का जुझारूपन अपने उफान पर है वह दारोगा पर ही आघात कर शान्त नहीं होती, मुखिया पर भी निशाना साधती है; "हम बाकी चुकाने के लए रुपए मांगते थे, किसी ने न दिए। आज अंजुरी भर रुपए

आठन निकल दिए। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट–बखरा होने वाला था। सभी के मुंह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले।''

ब्रिट्रिश नौकरशाही के हाकिम हुक्कात्र अप्रतयक्ष रूप से किसानों का सोषण करते हैं। बेदखली आदि की जो कार्रवाइयां जमींदार अपने अस्पमियों के विरुद्ध करते हैं। ये हाकिम रिश्वत लेकर, उलियां लेकर किसानों के खिलाफ डिकियां देते हैं।'' कब दावा दायर हुआ, कब डिग्री हुई, उसे (होरी को) बिलकुल पता नहीं। कुर्क जमीन उसकी उस ऊख नीलमा करने आया, तब उसे मालूम हुआ।

होरी का दुहाजू दामाद रामसेवक ने नौकरशाही के इस शोषण को सही बयान किया है, ''थानेदार और कानिस्टिबल तो जैसे दामाद हैं। जब उनका दौरा गाँव में हो जाए, किसानों का धरम है कि वह उनका आदर–सत्कार करें, नजर–न्याब दें, नही तो रिपोर्ट में गाँका गाँव बँध जाए। कभी कानूनगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी, कभी जंट, कीाी कलक्टर, कभी कमिश्नर। किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर होना चाहिए। उनके लिए रसद चारे, अण्डे–मुर्गी, दूध–घी का इंतजाम करना चाहिए।''

3.7 पंचों द्वारा शोषण

गाँव के गरीब किसानों को पंचों और बिरादरी वालों की मनमानी का बेवजह शिकार होना पड़ता है। इनके आगे वह बेबस है। समाज और बिरादरी की सड़ी–गली परंपराओं, और अन्धविश्वास ने उसे मर्यादाओं में जकड़ रखा है और वह अपनी मर्यादा बचाए रखने के लिए अपनी मर्यादा मे रहता है और मूक–पक्षु की भांति शोषण के लिए प्रस्तुत रहता है।

होरी के पुत्र ने भोला अहीर की बाल–विधवा से संजोग कर लिया। वह उसे घर जाने के लिए रास्ते में पर छोड़ रायगी होरी ने उसे आसरा दे दिया। समाज की आँखों में खटक गया। बिराबरी की प्रतिष्ठा पर आँच आ गई। समाज अच्छी तरह जानता है कि झिंगुरी सिंह पचास साल के हैं, फिर भी घर में दो–दो जवान बीवियों के शौहर हैं; पटेश्वरी पटवारी विधवा कहारिन को पर्दे में रखे हुए हैं, दातादीन ने अपनी जवानी में जमकर जवानी का मजा लूटा, उनका बेटा मातादीन सिलिया चमारिन को फाँसे हुए है; झिंगुरी सिंह ने ब्राह्मणी को रख लिया है; इस सबसे गाँव के माथे पर कोई कलंक नहीं लगा, पंचों और बिरादरी वालों की इज्जत पर कोई बट्टा नहीं लगा किन्तु होरी न तो पैसे वाला है, न पंचों में से कुछ है और न उच्च वर्ण का है, उससे गाँव की नाक कट गई। उसे बचाने के लिए उस पर सौ रुपए नकद और तीस मन अनाज का दण्ड लगाया गया।''

धनिया का क्षोम भड़क उठता है, ''पंचों, गरीबों को सताकर सुख न पाओगे, समझ लेना।... मेरा सराय तुमको जरूर से जरूर लगेगा।'' धनिया शोषक सक्तियों के विरुद्ध खड़े होने को तैयार है, आवाज भी उठाती है। गाँव–वालों की आत्मा नहीं जागती, पंचों और बिरादरी वालों ने तो आत्मा का हनन ही कर डाला है। होरी क्या करे? पचों के अत्याचारों को सहन करता चला जा रहा है, धनिया को समझाता है, ''पंच में परमेश्वर रहते हैं। उनका जो न्याय है, सिर आँखों पर। अगर मरखान की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़कर भाग जाएँ तो तुम्हारा क्या बस?''

धनिया का मन नहीं माता, वह पंचों के मुख पर ही उनके चेहरे अनावृत करती है, ''यह पंच नहीं, राक्षस है, पक्के राक्षस। यह सब हमारी जगह जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डॉड़ तो बहाना है। समझती जाती हूँ पर तुम्हारी आँखें नहीं खुलती। तुम इन पिशाचों से दया की आशा रखते हो।''

खेती का धंधा इन किसानों के लिए सदैव ही घाटे का सौदा रहा है। फिर भी वे न गाँव छोड़ सकते हैं और न खेती। होरी का कथन इस शोषण के लिए पैदा की हुई जमीन को पर्याप्त मुखर करता है कि ''हमीं को खेतों से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजदूरी थी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपए महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता–पहनता है, लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जा सकता। खेती छोड़ दी तो और करें क्या? नौकरी कहीं मिलती है। फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेतों में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है।

प्चों के धंधें को दारोगा प्रसंग खासा उजागर करता है। हीरा गाय के माहुर देकर मारा गया है। पुलिस तो ऐसे मौकों की तलाश में रहती ही है। खबर लगते ही होरी के द्वारे आ धमके। उन्हें जाँच–पड़ताल से क्या लेना! उन्हें तो माल खाने से मतलब है। दारोगा गेंडासिंह होरी से पैसा ऐंठना चाहता है। दरोगाई पर उतर आता है, तलाशी लेने की धमकी देता है। गाँव के पंच लूट खसोट में दारोगा से हाथ मिलाते हैं। वे होरी से कहते हैं, "निकालो, जो कुछ देना हो, यों गला न छूटेगा।

ळोरी दे तो दे कहां से! ज्हर खाने के लिए तक तो पैसा नहीं है। असहाय है। कुछ कहते नहीं बनता। पंचों में सलाह होती है। दारोगा को देने के लिए बीस रुपए होरी को उधार दे दिए जाते हैं। इनमें आधा हिस्सा चार पंचों का ठहरा। होरी अँगोछे में रखकर दारोगा को देने चला तो धनिया झपट पड़ी। एक ही झटके में अँगोछी उसके हाथ से छीन ली। सारे रुपए जमीन पर बिखर गए, "ये रुपए कहां लिए जा रहा है, बता! भला चाहता है तो सब रुपए लौटा दे।"

"सारा समूह थर्रा उठा। नेताओं के सिर झुग गए और दरोगा का मुंह जरा सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी।... मगर दारोगा जी इतनी जल्दी हार मानने वाले न थे। खिसियाकर बोले, मुझे ऐसा मालूम होता है िकइस सैतान को खाला ने हीरा को फँसाने के लिए खुद गाय को जहर दे दिया।"

"धनिया हाथ मटकाकर बोली, "हाँ, दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली फिर?..

नेताओं ने रुपए चुनकर उठा लिए थे और दारोगा जी को वहां से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और लगाई, "जिसके हों, ले जाकरउसे दे दो! ळमें किसी से उधार नहीं लेना है।... मैं, दमड़ी भी न दूंगी।"

3.8 धार्मिक आस्थाओं द्वारा शोषण

धर्म प्राण भारतीय संस्कृति सबसे बड़ी छलना यह है जो कुकर्मी है, अत्याचारी है, अन्यायी है, शोषण और उत्पीड़न के बल पर ऐश्वर्यवान, सामर्थ्यवान और सुष्टु बना हुआ है, वह निरंतर पूजा–पाठ के आडंबर में जीता है। ईश्वर की आराधना में वह रमा–भीगा नहीं है, रमना–भीगना भी नहीं चाहता किन्तु ऐसा दिखना जरूर चाहता है जिससे भाग्य–भरोसे जीवन–यापन करते समाज में यह संदेश जाए कि वे भी भाग्य–भरोसे ही हैं। शोषण के लिए इससे अच्छी भावभूमि हो ही नहीं सकती।

होरी गोबर से कहता है कि मालिक चार घण्टे भगवान का भजन करते हैं। भगवान की उन पर दया क्यों न हो तो गोबर व्यंग्य करता है, "यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान–धर्म करना पड़ता है। भूखे–नंगे रहकर भगवान का भजन करें तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने का दे तो हम आठों पहर भगावन का जाप ही करते रहें।"

परम्परागत ब्राह्मण धर्म भी कितना विचित्र है जो आज भी अपने छापा–तिलक की छाप बनाए हुए है। गोदान के पंडितों की तो मान्यता है कि हमारा धर्म है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे फिर हमारे धर्म पर कोई आँच नहीं आ सकती। रोटियां दाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती है।"

सारा गाँव जातना है, दातादीन का पुत्र मातादीन सिलिया चमारिन से फँसा हुआ है फिर भी वह तिलक लगाता था, पोथी–पत्रे बांचता था, कथा–भगवत कहता था, धर्म संस्कार करता था, उसकी प्रतिष्ठा में जरा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान पूजा कर अपने पापों का प्रायश्चित कर लेता था।"

नोखेराम अनोखे बगुला भरात हैं, "प्रातःकाल पूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे–बैठे राम–राम लिखा करते थे, मगर भगवान के सामने से उठते ही उनकी भान्खता विकृत होकरउनके मन–वन और कर्म को विषाक्त कर देती थी।

धर्म सदाचार की रक्षा और समाज के हित के लिए होता है किन्तु भारतीय समाचार मे वह दुराचार का पोषण बना हुआ है। यदि पैसा हो तो बड़े से बड़े पाप का समाधान है अन्यथा बड़ा से बड़ा धर्मात्मा भी पापी सिद्ध किया जा सकता है। होरी की कसमकश क्या बयान कर रही है! वह ध्यानसिंह के यहाँ पूजा मे जाना चाहता है, उसके पास बस एक तांबे का पैसा नहीं है। वह आरती ले भी ले कैसे ले? "आरती के पुण्य और महात्म्य का उसे विलकुल ध्यान न था। बात थी केवल व्यवहार की। ठाकुर आरती तो वह श्रद्धा की भेंट देकर भी ले सकता था, लेकिन मर्यादा कैसे तोड़े? सबकी आँखों में हेटा कैसे बने।

3.9 गोदान की ग्रामीण–कृषक नारी

प्रेमचन्द गांव की नारी को अत्यन्त ही आदर से देखते हैं। उसमें उन्हें एक समर्पित पतिव्रता नारी का दर्शन किया जो हर सुखःदुख, स्थिति–परिस्थिति में पति के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है। वह श्रमशील तो है ही ममता की स्वकार प्रतिभा है, नारी की प्रकृति, स्वभाव और पीड़ा से परिचित है और उसकी पीड़ा से पूरी तरह सहानुभूति रखती है। त्याग के लिए किसी भी तक प्रस्तुत है, ऐसे जीती है जैसे उसका कुछ भी नहीं। पुरुष के अनांछित व्यवहार के लिए वह सरोष तो है किन्तु विद्रोह कर एकाकी पड़ रहने की कभी नहीं सोच सकती। उसके फेरे सात जनम के फेरे हैं और वह उनके लिए भली प्रकार जीवन भर संग निभाने के लिए प्रस्तुत है। परोपकार की भावना ओर कृतज्ञता से उसका रग–रग फूला रहता है।

होरी के धर में अन्न नहीं है। धनिया पुनिया से अन्न मांगकर लाती है। अभाव के इस पीड़ा में होरी–धनिया, दोनों को आहत किया है। होरी अत्यधिक आहत है किन्तु धनिया कृतज्ञता के मार से अन्दर–अन्दर दबी जा रही है। ऐसा दिन उसे कभी देखना नहीं पड़ा। पुनिया को तो उसने सहारा दिया है। इसका उसे लोशमास गुमान नहीं, उल्टे उपकार का मान मर्मा तक पीड़ा दे रहा है।

होरी अक्सर लुटकर आता है, उस पर या खेत–खलिहान पर। होरी की मलमनसाहत और सीधेपन पर वह बहुत खीझती है, बरसती है, कोसती है फिर उसके अनुभव को बांट लेती है। कोई भी चूक अथवा क्षति केवल होरी की गति–भति की उपज न होकर उसकी अपनी भी उपज बन जाती है। संभवतः वह अच्छी तरह फूट–फफक लेने के बाद अपने को होरी की स्थिति में रखकर देखती है तो पाती है, उस समय, उस स्थिति में वह भी उसी तरह मौन सब सह लेती, लुटकर आती। उस समय उसे यह सब विकार–विचार नहीं सूझता जो होरी के लुटकर आने पर सूझा है। आखिर है तो वह भी उसी किसान की माटी की बनी, उसमें पली–बढ़ी। वह कष्ट सहन उसे ऐसा बना दिया ि कवह होरी पर सिर्फ होरी पर बहस उठती है। धनिया का यह उसकी सिधाई और भोलेपन पर फट पड़ने वाला रूप होरी के चरित्र का वह अंश है जो पूर्ति की अपेक्षा रखता है। प्रेमचन्द धनिया को वह रूप रंग देते हैं जिसकी ऐसे भोलेनाथ को सबसे अधिक आवश्यकता है। शोषण, अन्याय, अत्याचार, भुखमरी और अभाव की छाया में होरी की तो जैसे जीने की आदत हो गई है किन्तु घर में माता होने के नाते झेलना तो उसे ही पड़ता है। होरी–धनिया का झगड़ा, मारपीट बस दोनों के अंतःसंघर्ष के टकराव का प्रतिफल है। इसे होरी भी समझता है है और धनिया भी। धनिया की भोगमानी हीरा की समझ में है और होरी की भोगभावी धनिया की समझ में। इसी का यह सुफल है कि झगड़ा, वाद–विवाद, मारपीट परिवार के टूटने–बिखरने तक नहीं खिंचता। हो सकता है, कुछ दिन तक कोई ऐंठा रहे, संवाद न करे लेकिन पहल की अपेक्षा दोनों एक–दूसरे से सदा करते हैं और किसी न किसी बहाने पुनः दामपत्य में रस जाते हैं।

परेशानी, विषमता, बेमेल विवाद अथवा बाल–विवाह की समझ के बची किसान परिवारों में कलह और मारपीठ स्वाभाविक है। इसे विघटनकारी संघर्ष का रूप प्रेमचन्द कभी नह दे सके। दाम्पत्य की मोहक छटा प्रेमचन्द इन्हीं में देखकर प्रफुल्लित हैं। इसके चित्रण के लिए किसान नर–नारी के परस्पर समूरक होने के इस भाव को बखनाने के लिए उन्होंने अवसर निकाल ही लिया– 'गोबर गांव से शहर जा रहा है। रास्ते में पति–पत्नी युगल झगड़ रहे हैं। पति पत्नी से घर चलने का आग्रह कर रहा है। पत्नी इसके लिए तैयार नहीं। काफी देर तक आरजू–मिन्नत, मान–मनौबल के बाद भी जब पत्नी ने सकारात्मक उत्तर नहीं दिया तो पति को क्रोध आ गया। पति उसे घसीटने लगा। गोबर को

अच्छा नहीं लगा। वह बीच में बोल पड़ा। अब विवाद गोबर और पति के बीच में होने लगा। विवाद मारपीट की नौबत तक आ गया। गोबर कर तो पत्नी की तरफदारी ही रहा था किन्तु जब मारपीट होने ही वाली थी कि युवती से न रहा गया, बोल पड़ी, "तुम क्यों लड़ाई करने पर उतारू हो जी, अपनी राह क्यों नहीं जाते? यहां कोई तमाशा हो रहा है। यह हमारा आपस का झगड़ा है कभी वह मुझे मारता है, कभी मैं उसे डांटती हूं। तुमसे मतलब? फिर थोडत्री देर बाद वह युवती गृहणी बन गई। गृहणी होने की यही कलह प्रियता और लड़—झगड़ उस भारतीय दाम्पत्य जीवन की झांकी प्रस्तुत करती है जिसमें दोनों एक—दूजे के लिए बने हैं। उस पर पत्नी कभी नहीं चाहती कि उसके पति पर कोई लांछन, कोई झंझट, कोई अप्रत्याशित अथवा अवांछित घात—आघात हो। इसके लिए वह फौरन वीरांगना की तरह तैयार होकर आगे आती है, ढाल बनने को आगे आ जाती है। महत्वपूर्ण यह है कि वह पति के दूषण तो गिनन और सुनना ही नहीं चाहती, खुद चाहे जितना कहले।

हीरा—पुनिया के बीच कुछ कम मारपीट नहीं हुई। अभी हाल ही उसने उसे इतना पीटा ि कवह कई दिनों तक खाट ही पकड़े हरी। वह घर की मालकिन थी। उसी के कारण घर फूटा, बंटवारा हुआ। धनिया को उसने लड़ने—झगड़ने में परास्त कर दिया। वह अब शेर हो गई थी। दमड़ी बसोर द्वारा बॉस—व्यापार को लेकर ध ानिया—पुनिया, में जो बड़—झगड़ हुई, उसे पूरे गांव ने देखा। वह शेर हो गई थी। हीरा स`जल—तक पिटती किन्तु अपना अधिकार न छोड़ती। हीरा क्रोध से भर उठता तो उसे मारता—पीटता किन्तु चलता उसी के इशारों पर, उस थोड़े की भांति जो कभी—कभी स्वामी को लात मारकर भी उसी के आसन के नीचे चलता है। गोबर—झुनिया के बीच झगड़ा हुआ। सीधा—सादा गमखोर होरी तक धनिया को मारने—पीटने पर उतर आया। कुछ दिनों तक दोनों के बीच मौन—पसरा रहा। ऐसा नहीं लगता कि मौन—संवाद हीन होता हो। यह मौन, अबोलापन बहुत दिनों तक कभी नहीं चला। किसी न किसी दैवी आपदा अथवा दुर्धटना ने इसका पटाक्षेप कराया।

गोबर—झुनिया का झगड़ा हुआ। दोनों ने एक—दूसरे से कभी न बोलने का मन बना लिया। सांवदहीनता बहुत दिनों न चल सकी। मिल में मजदूरों की हड़ताल हुई, झगड़ा हुआ, गोबर बुरी तरह धावत्व हुआ। धावत्व अवस्था में घर पहुंचा। झुनिया ने उसकी चेष्टाहीन लोभ देखी तो उसके अन्दर की स्त्री जाग उठी। तन—मन से गोबर की तब तक सेवा की जब तक वह ठीक नहीं हो गया।

होरी—धनिया के बीच तीखी नोंक—झोंक हुई। बस क्या था, संवादहीनता ने पैर जमा लिए। भीला हो प्रकृति का। होरी को ज्वर ने आ घेरा। उसे इस दशा में धनिया कैसे देख सकती थी। आखिर पत्नी थी उसकी! पत्नीत्व ने जोर मारा, अपने साथ हुआ सब ऊँच—नीच भूल गयी, जुट गयी सेवा में, 'लाख बुरा हो, पर उसी के साथ जीवन के पचीस साल कटे हैं, सुख किया है तो उसी के साथ दुःख भोगा है तो उसी के साथ। अब तो चाहे वह अच्छा है, बुरा, अपना है। दाढ़ीजार ने मुझे सबके सामने मारा, सारे गांव के सामने पानी उतार लिया, लेकिन तब से किना लज्जित है कि सीधे ताकता नहीं। खाने आता है तो सिर झुकाए खाकर उठ जाता है, डरता रहता है कि मैं कुछ कह न बैठूं।" यह ीवह परदुःाख का तकसा का भाव है जो सामने वाले जैसे होने पर आत्मबोध ही नहीं होता, अपनी अति का भी ज्ञान हो जाता है। परिणामस्वरूप कितनी ही चौड़ी दरार क्यों न हो, दाम्पत्य में क्षण भर में भर जाती है।

गांव में चूंकि बड़े भी होते हैं, छोटे भी। बड़े छोटों पर बराबर छाव बनाए रहते हैं। सरकार बहादुर के नौकरों का कहना ही क्या, उनके हाथ में सरकार रहती है और वह जमींदारों के मालक ओर महाजनों के मालहार होने की प्रभुता से भी प्रबल होती है। ये तीनों प्रेम प्रसंगों और रखैल रखने में अपनी शान का अनुभव करते हैं। इनका रसिया मन दलित महिलाओं की देहयष्टि का कायल रहा है। समाज में हो रहा है, है, उसे कोई भी रचनाकार अनदेखी नहीं कर सकता। बड़े घरों के लाड़ले अपने पुरखों से जो सीखेंगे, वही तो करेंगे। नोखेराम ने भोला की दूसरी बीबी नोहरी को अपने घर रख लिया, पटेश्वरी बाबू अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए हैं, उनके बेटे जब गांव आते हैं छुट्टियों में होरी के द्वार की ओर ताकते हैं। सोना भी उसी समय किसी न किसी काम से दरवाजे पर आकर खड़ी हो जाती है। चढ़ती उयर की उमंग और बंकि—बौकियों को ताकने—झांकने का खेल युवक—युवतियों में सदा से रहा है, रहेगा। होरी जैसे इज्जत घर गृहस्थों को यह सब अवांछित लगता है, उसे इसमें गंदगी की बू आती है किन्तु अपने जमाने में उसने रसियापन न दिखाया हो ऐसा नहीं हो सकता। आज भी वह विधवा सहुआइन दुलागी से रसियाता है ही।

प्रेमचन्द ने इसी बहाने दलित महिलाओं के यौन–शोषणपर कलम चलाई है फिर भी नारी की भावना की विघटनकारी होने से बचाने का यत्न किया है और इसी के साथ पुरुष में दाम्पत्य भाव की समझ विकसित करने की पहल की है। सिलिया–भातादीन का प्रसंग इसी धरातत्व पर खड़ा किया गया प्रतीत होता है। मातादीन ब्राह्मण है, सिलिया चमारिन। मातादीन सिलिया को पत्नी के रूप भले ही घर में रखे हुए है किन्तु उसका प्रेम सिर्फ यौन–शोषण तक सीमित है। ब्राह्मण होने के कारण उसका धर्म है उसका भोजन। इसीलिए वह अपना भोजन खुद पकाता है, सिलिया द्वारा छुआं खाना नहीं खाता। उसकी सम्पत्ति पर सिलिया का कोई अधिकार नहीं। यदि सिलिया उससे बिना पूछे दो मुट्ठी अनाज भी उठा लेती है तो उसे उसकी सही जगह, धर्म और अधिकार तरह समझा दिया जाता है। अपमानित किया जाता है और घर से निकाल दिया जाता है। सिलिया सोचती है कि वह ब्यहिता न होकर भी संस्कार, व्यवहार और मनसा ब्याहता की ही है, भले ही यातादीन उसे मारे या काटे।

कतिपय समीक्षक इस प्रसंग में आरोप लगाते हैं कि प्रेमचन्द सिलिया के शोषण व्यवस्था का विरोध करते नहीं दिखाते अपितु शोषण के आगे समर्पण करते नजर आते हैं। ये आलोचक यह भूल जाते हैं कि प्रेमचन्द निरन्तर मानवता में निखार लाते चलते हैं। मातादीन से जनेऊ उतखा कर फिंकवा देते हैं, पुरोहिती का गंगा में विसर्जन करवाते हैं। वह सिलिया को सदा के लिए अपनाकर अपना घर बसाकर कहता है, "मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूं। जो अपना धरम पाले, वही ब्राह्मण है, जो धरम से मुंह तोड़े, वही चमार है।

आपत्ति होरी की राव पर भी है। वह कहता है, "एक यह नोहरी है और एक यह चमारिन सिलिया। देखने सुनने में उससे लाख दरजे अच्छी। चाहे दो को खिलाकर खाए और राधिका बनी घूमे लेकिन मजदूरी करती है, भूखों मरती है और मतई के नाम पर बैठी है और वह निर्दयी बात भी नहीं पूछता।"

स्पष्टतः यहां नारी के श्रमशील और स्वावलंबी होने की बात है। यही वह मान है जिसे पत्नी कैसी हो? के प्रश्न पर प्रेमचन्द मेहता ये कहलवाते हैं कि मैं ऐसी बीवी नहीं चाहता जिससे मैं आइन्स्टीन के सिद्धान्तों पर बहस कर सकूँ या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी पत्नी चाहता हूं जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्जवल बना दे अपने प्रेम और प्यार से।"

प्रेमचन्द ही क्यों, आम जीवन में श्रमजीवी ही क्यों, आभिजाले परिवारों में भी कलह होती है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसके समन के लिए यत्न ही न किया जाए। यह यत्न तभी सफल होता है जब दम्पत्ति यह अच्छी तरह समझ लें कि "प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप लेता है, तभी ब्याह है, उसके पहले ऐसा नहीं है।" और यह विवाह को फिर सामाजिक बंधन मान लेने में ही संभव है जहां शनैः शनैः प्रेम आत्मसमर्पण का परिपाक प्राप्त करताहै। रूद्रपाल सिंह की इच्छानुसार मालती की बहिन सरोज से विवाह अन्तर्जातीय विवाह भी है और प्रेम की समझ भी तो दूसरी ओर मीनाक्षी का दिग्विजय सेसंबंध विच्छेद, विवाह के पूर्व जो मीनाक्षी बेजुवान थी, पति से गुजारे की डिग्री पाने के बाद हंटर लेकर उसके बंगले पर पहुंचना और कुंवर साहब समेत शोहदों को हंटर लगाना नारी को स्वयं को पहचानने की महत्वपूर्ण कड़ी है, काश! दिग्विजय सिंह ऐयाश और शराबी न होतातो स्थिति यहां तक न पहुंचती। आभिजात्य, संभ्रान्त और समर्थ परिवार की नारी तो यह सब कर सकती है, किन्तु श्रमशील किसान और मध्यवर्गीय परिवार में तो यही चरितार्थ होता पाया गया है कि 'मनुष्य के लिए क्षमा, दया, प्यार, अहिंसा जीव के उच्चक्षम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, परन्तु सफलता नहीं पा सका।"

3.10 इकाई सारांश

भारतीय किसान का जीवन साहूकारों, सूदखोरों, पण्डितों के ढकोसलों और पंचों की दुरमिसंधि का शिकार है। गाँव के तथाकथित धनी और उच्चवर्गीय व्यक्तियों ने नेतागिरी संभाल रखी है और वे जमींदारों से ही नहीं, उनके फारिन्दों और सरकारी मुलाजिमों से साठ–गांठ रखते हैं और इस सांठ–गांठ के बल पर शोषण करते हैं और शोषण में भागीदार बनते हैं। इसमें बेचारा किसान करुणा विगलित है, विपन्न है। वह चाहकर भी इनकी इच्छा के विरुद्ध

जाकर गांव में नही रह सकता और न खेती कर सकता है। चैन से तो रह ही नहीं सकता। किसी न किसी बहाने वह आर्थिक कशाघात का शिकार होता रहता है और उसकी कराह किसी अपने किंचित सहानुभूति पाकर बह निकलती है– जमींदार को सगुन के रुपए देने हैं। होरी की जान सांसत में है। भोला अहीर सामने पड़ जाता है तो व्यथा उजागर कर बैठता है– "उसकी की चिन्ता (जमींदार को सगुन के रुपए देने की) तो उसे मारे डालती है। अनाज तो सबका सब खलिहान में तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पाँच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातोंरात ढोकर लिया दिया था, नही तो तिनका भी न बचता। जमींदार तो एक ही है। मगर महाजन तीन–तीन हैं, सहुआइन अलग, मंगर अलग, दातादीन पंडित अलग। किसी का भी ब्याज पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपए बाकी पड़ गए। सहुआइन से फिर रुपए उधार लिए तो काम चला। सब तरह की किफावत करके देख लिया, भैया कुछ नहीं होता। हमारा जनम इसीलिए हुआ है कि हम अपना रक्त बहाएं और बड़ों वर्ग घर भरें। मूल का दुगना सूद भर चुका, पर मूलज्यिों का त्यों सिर पर सवार है।... कौन कहता है, हम तुम आदमी हैं, इसमें आदमियत है कहां? आदमी वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इलभ है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकता। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे कहे, परेम तो संसार से उठ गया।"

गेदान की प्रमुख समस्या शोषक और शोषित वर्ग के बीच वैचारिक और सामाजिक संबंधों के बीच चौड़ी होती जाती खाई के दिग्दर्शन और उसे पाटने की है। गोदान में शोषक और शोषित दोनों वर्गों के पात्रों की मनोदशा उभरकर प्रत्यक्ष होती है। जमींदार, राय साहब, मिल मालिक खन्ना, सूद खोर इसुरीसिंह, पटवारी पटेश्वरी, नोखेराम तो हैं ही, धर्म के नाम पर शोषण का भवन खड़ा करने वाले पंडित दातादीन और मातादीन भी हैं। होरी, हीरा, शोया शोषित किसान हैं तो गोबर मजदूर। भारत का किसान अथवा मजदूर अकर्मण्य नहीं है, फिर भी दरिद्रता हैं वे ऐसे समाज के तानों–बानों में गसे हुए हैं जो शोषक वर्ग के पुस्तैनी मकड़ जाल में अपनी मिथ्या भरजाद, धार्मिक आस्था और आस्था के विवाद के वशीभूत होकर दीन मक्खी की तरह फँसा हुआ है। होरी के पसीने की कमाई गांव के पंचों, महाजनों, सूदखोरों और सरकारी हाकिम–हुक्कायों के हवाले हो जाती है। घर के दरवाजे पर गाय बांधने की उसकी इच्छा न जीते जी पूरी हो सकी, न मरने के बाद। भारत का किसान ईमान, धर्म और आचरण की नैतिकता में विरला व्यक्तित्व है, फिर भी फाँका मस्त है। इसके कारण में जाने के लिए उपन्यासकार का मतह ी प्रमाण है। वह समाज के वर्तमान ढाँचे को इसका कारण मानता है। गोबर जैसा परिश्रमी मजदूर मजदूरी के बल पर अपने बच्चों को दूध तक नहीं पिला पाता और वे अकाल मृत्यु के शिकार होते हैं इसके भूल में है आज का पूंजीपति। मिल मालिक खन्ना अपने अंशधारियों के लाभ के लिए मजदूरों का ही गला रेतता है।

शोषित वर्ग तो विपन्न है ही, शोषक वर्ग ही कहां सदाबहार प्रफल्लचित्त है। किसानों की कमाई पर अपने ऐश्वर्य का लाभ–आम बिखेरे राय साहब हों अथवा रंगीन तवियत के आदमी खुमा, जागीरदार हो अथवा पूंजीपति सुखी नहीं हैं। वे किसानों से भी अधिक मनस्थ पीड़ित है।। परिश्रम करने पर भी कमाई का पराई हो जाना और पराई कमाई का बिना श्रम के अपनी हो जाना विपति के कारण हैं। यह सब शोषक वर्ग अध्यात्म के अभाव के कारण है तो दूसरी ओर शोषित वर्ग में अध्यात्म के स्वभाव का प्राचुर्य है। धन का अभाव उतना ही दुखदायी होता है जितना धन का अनपेक्षित, अप्रत्याशित भण्डार।

3.11 अपनी प्रगति जाँचिए

1. ब्रिटिश नौकरशाही की शोषण–प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।
2. दिवालिया होते ही आदमी आदमियत के महत्व को समझता है? खन्ना के सोच के आधार पर विवेचन कीजिए।
3. धर्म के नाम पर शोषण और अत्याचार की चर्चा दातादीन के हवाले से कीजिए।
4. होरी मूर्ख नहीं है, साधु है, इसलिए शोषित है– अपने विचार व्यक्त कीजिए।

5. पंचों की कारगुजारियां पंच परेमश्वर का हनन है, पंचों की रीति–नीति के आधार पर विश्लेषण कीजिए।

3.12 नियत कार्य

– ब्रिटिश शासन की शोषण की राजनीति से संबंधित ग्रंथ पढ़िए और चर्चा कीजिए।

– पंचायतीराज व्यवस्था में भ्रष्टाचार पर परिचर्चा कीजिए।

– भारत में नौकरशाही और भ्रष्टाचार पर बहस कीजिए।

3.13 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्पष्टीकरण के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.14 संदर्भ ग्रन्थ

– नया हिन्दी साहित्य–एक भूमिक : प्रकाशचन्द्र गुप्त।

म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल

एम. ए. उत्तरार्द्ध : हिन्दी

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक

द्वितीय खण्ड : प्रेमचन्द्र और गोदान

इकाई–4 गोदान : चरित्र चित्रण एवं प्रमुख पात्र

इकाई–5 गोदान : भाषा–शैली एवं पाठक

इकाई–6 गोदान के महत्वपूर्ण अवतरणों की व्याख्या

लेखक

डॉ. लोकेश खरे

पूर्व सहायक प्राध्यापक–हिन्दी

शासकीय स्नातकोत्तर कॉलेज, टीकमगढ़ (म.प्र.)

सम्पादक

डॉ. प्रेम भारती

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्रः **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

द्वतीय खण्ड : **प्रेमचन्द्र और गोदान**

खण्ड परिचय–

एम.ए. उत्तरार्द्ध (हिन्दी) का षष्ठम् प्रश्न–पत्र 'आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक' का खण्ड दो उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र की अमर कृति 'गोदान' के पात्रों के चरित्र–चित्रण एवं शिल्पकला पर आधारित है। इसका कथानक भारतीय किसान की व्यथा–कथा पर आधारित है। सरल–सुगम भाषा में लिखित यह उपन्यास तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों पर प्रकाश डालता है एवं समाज सुधार की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत खण्ड में तीन इकाइयां हैं :–

प्रथम इकाई 'गोदान : चरित्र–चित्रण एवं प्रमुख पात्र' में गोदान उपन्यास की चरित्र–चित्रण कला से अवगत कराया गया है तथा उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण किया गया है।

द्वितीय इकाई में 'गोदान की भाषा–शैली' से परिचय कराया गया है। भाषा–शैली कृति को रोचक, बौधगम्य और प्रभावोत्पादक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी से कथाकार का व्यक्तित्व उभरकर प्रत्यक्ष होता है।

तृतीय इकाई में 'गोदान के महत्वपूर्ण अवतरणों की व्याख्या' की गई है। यह व्याख्या उपन्यास के रसास्वादन में तो सहायक है ही, उपन्यासकार के व्यक्ति और मानस को समझने के लिए महत्वपूर्ण चिन्तन के द्वारा खोलता है।

इकाइयों में बोध प्रश्न दिए गए हैं। अध्ययन के पश्चात उनका सही उत्तर देने का प्रयास कीजिए।

इकाइयों के अंत में संदर्भ–ग्रंथों की सूची भी प्रस्तुत की गई है, जिनका अध्ययन विषयों की विस्तृत विश्लेषण के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

इकाई–4

'गोदान' : चरित्र चित्रण एवं प्रमुख पात्र

सरंचना –

4. उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 गोदान, चरित्र–चित्रण की विधाएँ

4.3 होरी

4.4 धनिया

4.5 गोबर

4.6 मेहता

4.7 मालती

4.8 इकाई सारांश

4.9 अपनी प्रगति जाँचिए

4.10 नियत कार्य/गतिविधियाँ

4.11 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

4.12 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे गोदान के प्रमुख पात्रों के विषय में जिनके पायों पर उपन्यास का भवन खड़ा है, साथ ही उनके मानसिक, चारित्रिक और पारिवारिक विज्ञान से परिचय प्राप्त हो सकेगा। ये पात्र हैं–

1. होरी
2. धनिया
3. गोबर
4. मालती
5. मेहता

4.1 प्रस्तावना

उपन्यास मानव चरित्र का अध्ययन भी है और आकलन भी। उपन्यास अपने युग को जीता है और उस जिए हुए के आधार पर नए जीवन–स्वप्न का सृजन करता है। इसके लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हैं कि उसकी नींव में ऐसे पात्र को नींवस्थ किया जाए जिस पर एकाधिक पात्रों के स्तंभ खड़े कर एक जीवन का,संसार का एक भव्य–भवन तैयार किया जा सके। पात्रों के स्तंभों के सभी समीकृत सृजन के रूप में जो जीवन प्रकाशित होता है, वही

उनकी अनेकता में एकता का समुच्चय बनता है। प्रेमचन्द इसी तथ्य को शब्द देते हैं जब कहते हैं कि "मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है... चरित्र संबंधी समानता और भिन्नता, अभिन्नत्व में भिन्नत्व और भिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना ही उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है।" इस कर्त्तव्य के निर्वाह के लिए ही प्रमुख पात्रों के सद्गुणों और अवगुणों के बीच उसकी चारित्रिक गरिमा बनाए रखने के लिए उसके परितः असत् लोक का सृजन आवश्यक होता है। इस असत लोक के वासी अपने दुर्दभ अनाचार, अत्याचार और व्यभिचार से उसके आभा मण्डल को ढँकने की कोशिश करते हैं जिसके कारण वह और अधिक दीप्त होकर प्रकट होता है। स्पष्टतः अन्धकार जितना घना होता है, प्रकाश की नन्हीं सी किरण उतनी ही अधिक प्रखर जाज्वल्यमान और विराट स्वरूप में उजागर होगी। यही हाल मानव–चरित्र का है, वह अपने सत्तस्वरूप की वाचकता असत् के घटाटोप में प्राप्त करती हैं।

अतः पात्रों के चरित्र–चित्रण पर उपन्यास की रोचकता, प्रभावोत्पादकता और विराट्ता निर्भर करती है।चरित्र–चित्रण के लिए कथाकार या तो पात्र के विषय में उसके रूप–स्वरूप, प्रकृति और प्रवृत्ति पर अपने विचार खुद होकर प्रकट करता है या फिर कथोपकथन के माध्यम से उसके चरित्र की उद्भावना करता है। घटनाक्रम में फँसा पात्र बाहर निकलने के लिए जब व्याकुल होता है, तब पात्रों के बीच अपने मनोभावों को व्यक्त कर अपने चरित्र को उद्भास प्रदान करता है, वहीं दूसरे पात्र अन्य पात्रों के विषय से अपने राग–रोष अभिव्यक्त कर उसके चरित्र का निर्माण करते हैं। ये चरित्र मानव–स्वभाव के रहस्यों की पड़ताल तो करते ही हैं, अपेक्षित जीने की कला का निदर्शन भी करते हैं।

बहुधा कथाकार यथा नाम–तथा गुण के आधार पर पात्रों का नामकरण कर लेते हैं ताकि उसके पूंजीभूत गुण यथावत उसमें समोए जा सकें। पात्र के नाम की सार्थकत्ता उसके कर्म में, आचरण में सहजता से अनुभव की जा सकती है। जहां कथाकार अप्रत्याशित, असोचे और उत्खननीय नामों की अवतारणा करता है, वहां वह उसके साथ पूरा जीवन जीने में असमर्थ रहता है और उस पात्र को अंधेरे में गुम होने के लिए अभिशप्त कर देता है। उपन्यास में ये अजनबी पात्र जटिल रहस्यमय लोक का सृजन करते हैं जो न तो तिलिस्मी बन पाते हैं और न ही लौकिकी।

प्रेमचन्द के पात्रों के नाम उनके गुणा व गुणों में प्रवेश पाने के लिए पर्याप्त है और यही कारण है कि वे जीवन्त, मुखर और मर्मस्पर्शी हैं। होरी हो या भोला हो, धनिया हो या झुनिया हो, दातादीन हो या मातादीन, अपने नाम से ही अपने स्वयं को ध्वनित करने लगते है। यही कारण है कि प्रेमचन्द 'किसी चरित्र की रूपरेखा बनाते समय हुलिया नवीसी की जरूरत नहीं समझते। दो चार वाक्यों में ही मुख्य–मुख्य बातें कह देने के पक्षधर है। यदि पात्र–परिचय में कथाकार मुखर हो उठता है तो लगता है कि जैसे वह उसके प्रति पूर्वाग्रह ग्रस्त हैं और ऐसे ही उसके चरित्र को उसके वास्तव में देखने की दृष्टि बाधित हो जाती है।

आने वाली परिस्थिति को और उसमें होने वाली पात्र की स्थिति, परिस्थिति और मनस्थिति को चमकाने के लिए वातावरण का निर्माण कथाकार से विशेष दक्षता के गौर की मांग करता है तो दूसरी ओर उसके मनोवेगों का सहज स्फालन और भाव–भंगिमाओं का सूक्ष्म अंकन उसकी प्रतिमूर्ति बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। पात्रों के परस्वर संवाद, वाणी के आदान–प्रदान के समय उसके भीतरी आशय को सम्यक रूप से अभिव्यक्त होना चाहिए। इस उद्देश्य से वाणी–संयम के साथ ही प्रभावोत्पादक शब्द चयन और भाषा–संगठन बहुत ही महत्वपूर्ण होता है।

गोदान के पात्रों का जीवन निरंतर ऐसी परिस्थितियों से गुजरता है जिसमें उसके मन में घोर संघर्ष उत्पन्न होता हैं, ऐसे में उसके भीतर का द्वन्द्व कहीं तो वाग्विस्फोट के रूप में प्रगट होता है तो कहीं आन्तरिक स्वगत आत्महनन, पश्चाताप और संताप में प्रगट होता है। शोषकों की मनोवृत्ति और शोषित की कराह तब तक अपने यथार्थ में नहीं उभरती जब तक पात्र अपने स्वभाविक आवेश में प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते। भौतिक जीवन में हम परस्पर

एक दूसरे के ऐसे रहस्यों से अवगतश्होते हैं जिनके खुलने पर अनर्थ की संभावना बन जाती है। इन रहस्यों और भेदों को प्रकट करने के लिए अवसर का सृजन कथा में अप्रत्याशित मोड़ का सृजन करता है। इस दृष्टि से पात्रों का अध्ययन कथा के सर्वांग आस्वाद के लिए समीचीन है। इसमें दो मत नहीं कि उपन्यास में कथावस्तु का प्राथमिक महत्व होता है किन्तु उसके पात्रों का चरित्र–चित्रण उससे कदापि कम महत्वपूर्ण नहीं होता। वास्तविकता यह है कि पात्रों के सम्यक् चरित्र–चित्रण से ही उपन्यास की कथावस्तु को आधार और सुख–स्वरूपता प्राप्त होती है। यही कारण है कि उपन्यासकार के कौशल की परख उसके पात्रों के चरित्र–चित्रण से होती है।

4.2 चरित्र–चित्रण की प्रणाली

लेखनी से निसृत होते ही कथा पाठक की हो जाती है। पाठक उससे गुजरता ही नहीं, उपन्यासकार, कथाकार के अनुभव से साक्षात्कार भी करता है, वह पात्रों में उस छवि को देखने के लिए आतुर रहता है जिससे वह समय–सयम उन सन्दर्भों, परिस्थितियों और समय में रू–ब–रू होता रहा है। स्पष्टतः पाठक पात्रों को अपने जैसा होकर उनमें निहारता है। उसे आनंद की अनुभूति तभी होती है, जब वह पात्र के मर्म से एकात्म हो जाता है! प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट इसलिए नहीं है कि उन्होंने प्रचुर मात्रा में उपन्यास रचे हैं, बल्कि इसलिए हैं कि उन्होंने उपन्यासों में सभी वर्ग के पात्रों को समोया है। इन पात्रों में ऐसे पात्र पाठक को मिल ही जाते हैं जो आत्मीयता से झकझोर देते हैं। पाठक को सतत् यह अनुभव होता रहता कि पात्र के चरित्र की सफलताएं, विफलताएं, सुख–दुःख, ईर्ष्या और अभर्ष उसके जैसा ही नहीं, उसका अपना जिया और भोगा है। पात्र के चरित्र–चित्रण की प्रक्रिया ही उपन्यास को प्राणवान बनाती है। वह किन–किन पक्षों से होकर की जा सकती है, यह भी महत्वपूर्ण है।

पात्र चयन–

प्रेमचन्द ने मनुष्य की प्रकृति और उसके समय की प्रवृत्तियों का भली प्रकार अध्ययन–मनन और आकलन किया है; स्वस्थ मानव–मूल्यों के प्रेरक चरित्र को आगे बढ़ाया, प्रोत्साहित किया, उसे संवारा और संजोया है तो दूसरी ओर अमानवीय, पाशविक अस्वस्थ प्रवृत्तियों को जुगुप्सा से भर देने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उपन्यासों में उनकी यह दृष्टि सर्वत्र दृष्टव्य है। उनके उपन्यास भारतीय जन जीव का, विशेषकर कृषक वर्ग, चूंकि भारत कृषि प्रधान है और कृषक कृषि का प्राण है, पूरे मनोयोग से चित्रण किया। उनकी समस्याओं को उजागर किया। इसके लिए उन्होंने पात्रों का जाल बिछाया जो अपने स्वार्थ की पूर्ति अन्य पात्रों का उपयोग तो करते ही हैं, उत्पीड़न और शोषण की समस्याओं को अभिवृद्ध करते हैं। इसके ठीक विपरीत उन्होंने ऐसे पात्रों का भी सृजन किया जो शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध सामने आते हैं और शोषित और वंचितों से सहानुभूति रखते हैं। उनके उपन्यासों में शोषक, शोषित और सुधारक बरबस चरभाण देखे जा सकते हैं।

गोदान में होरी, हीरा, शोभा, गोबर, धनिया, पुनिया, झुनिया, सिलिया, प्रभृति पात्र शोषित वर्ग का प्रतिनिधि ात्व करते हैं तो वहीं रायबहादुर अमरपाल सिंह, खन्ना, तंखा, झिंगुरी साह, नोहरी सिंह, दातादीन, मातादीन शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। डॉ. मेहता, मियां खुर्शेद, मालती आदि ऐसे पात्र हैं जिनकी सहानुभूति शोषितों के साथ है, यद्यपि शोषितों के उद्धार के लिए समर्पित रक्तस्नात पुरुष गोदान में दिखाई नहीं देता। शोषित, उत्पीड़ित और वंचितों को उनके भाग्य पर ही जीने के लिए छोड़ दिया गया है।

प्रेमचन्द ने अपने जीवन में शोषण के विभिन्न रूप, शैलियों और सामर्थों का सामना किया है। अतः उनके हृदय में उनके प्रति गहरी सहृदयता है और इसीलिए नारी और किसान की निरीह, असहाय और सोचनीय स्थिति–परिस्थितियों का चित्रण मार्मिक ढंग से कर सके और उसके पाठकों के मन में करुणा जगाने का, उन्हें आगे आने के लिए प्रेरित करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहे। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम सम्मेलन में अध्यक्ष पद से

भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि 'जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उनकी हिमायत और वकालत करना साहित्यकार का फर्ज है। उसकी अदालत समाज है, उसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगासा पेश करता है।''

यही कारण है कि प्रेमचन्द अपने पात्रों के चरित्र–विकास के लिए उन्हें अपेक्षित रूपाकार तो देते ही हैं, अच्छी तरह से प्रसाधित कर भूमिका निर्वाह के लिए तैयार करते हैं। वह पात्रों को प्राकृतिक अभिनय करने का अवसर तो देते हैं किन्तु प्राम्टर की तरह उसके क्रिया कलाप पर पैनी नजर रखते हैं। उनसे वही करवाते हैं जो सामाजिक अनुभव करते हैं और जिसकी उन्हें अपेक्षा है। पाठकों को पात्र के अभिनय पर अपना मत बनाने की छूट वह कदाचित ही देते हैं अपितु जहां पाठक के लिए कुछ अपना अर्थ लगाने का अवसर आता है, पात्र की स्थिति, परिस्थितियों और मनोदशा पर स्वयं आगे आकर वक्तव्य देने लगते हैं। यही कारण है कि कतिपय पात्र उनके मत के संवाहक बने हुए हैं। पात्रों और पाठकों पर प्रेमचन्द पूरी तरह अपने तक सीमित रहने का दवाब बनाए रखते हैं, उनका अनुशासन और नियंत्रण बेजोड़ है। इस दृष्टि से पात्रों के चरित्र चित्रण के लिए प्रेमचन्द ने गोदान में प्रमुखतः निम्न प्रथाओं को अपनाया है।

पात्रों का नामकरण –

पात्रों के नाम कभी–कभार ही उसके चरित्र के अनुरूप होते हैं। बच्चों के नाम जन्मतः पण्डित जन्म राशि और नक्षत्र के अनुकूल रखते हैं। बड़े होकर उन नामों की सार्थकता पर प्रश्न–चिह्न लगता है। अब तो पाठशाला में प्रवेश लेते वक्त पालक और शिक्षक शोभनीय और समयानुकूल प्रचलित नाम रख लेते हैं। उपन्यासकार को अपने पात्रों के नाम रखने की छूट रहती है। प्रेमचन्द जिस परिवेश में पात्र का सृजन करते हैं उसी परिवेश से उसका नाम भी रखते हैं जो स्पष्टतः आभास देते हैं कि वह अमुक भूमि, जाति वर्ग आदि का है। इसीलिए वह उनके नख–शिख से ही नहीं, उनके स्वभाव और नियति से परिचित रहते हैं और उन्हें जीवन के प्रवाह में सहजता से वहां ले जाते हैं।

गोदान का भोला स्वभाव से भोला है और होरी की बातों में आ जाता है। उसका भोलापन उधार न मिलने पर अपनी बेटी झुनिया के गोबर के हो जाने पर बैल खोल ले जाता है। गोबर के लौटकर आने पर जब वह बैल खोल ले जाता है तो टूकता रह जाता है। गांव में होरी, हीरा, धनिया, झुनिया, दातादीन, मातादीन नाम बहुतायत से प्रचलित हैं और ग्राम–चरित्र का बोध कराते हैं। वहीं शहरी पात्रों में मेहता, भारती, गोविन्दी, प्रबुद्ध नाम हैं तो बुद्धिजीवियों में पं. ओंकारनाथ उपयुक्त है, जो अपने शालीन होने की छाप छोड़ते हैं। रायबहादुर के नाम का तो कहना ही क्या, धन, ऐश्वर्य, शोषण के बल पर अमर होने की चाह वाले अमरनाथ नही तो और क्या हो सकते हैं। इन पात्रों के नाम किसी व्याकरण के मोहताज नहीं, वे परिवेश और प्रकृति के अनुरूप गढ़े गए हैं।

पात्र परिचय–

'गोदान' में प्रेमचन्द पात्रों की जन में उभरी छबि के अनुरूप परिचय प्रदान करते हैं। भले ही इसे कथाकार का पात्र के प्रति आरंभ में पूर्वाग्रह समझ लिया जाता है किन्तु पात्र के चरित्र विकास के लिए इस तरह का परिचय उसमें आकर्षण बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण होता है। डॉ. मालती का परिचय कराते हुए जैसे वह भोले–भगत बन जाते हैं और चटखारे लेते हुए कहते हैं, ''दूसरी महिला जो ऊँची ऐड़ी का जूता पहने हुए है, मिस मालती है। आप इंग्लैण्ड से डाक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रेक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के मोहल्लों में इनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा हैं। गात कोयल, पर चपलता कूट–कूटकर भरी है। शिक्षक या संकोच का कहीं नाम नहीं है। मेकअप में प्रवीण, बला की हाजिरनवाब, पुरुष विज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद–प्रमोद को जीवन का तत्व समझने वाली, लुभाने और रिझाने की कला में प्रवीण...।

पात्र का परिचय उपन्यासकार स्वयं कुछ शब्दों में देता है। इस परिचय पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रथम परिचय के समय पात्र के समस्त गुणों और अबगुणों, स्वभावगत और चारित्रिक विशेषताओं को पूरा–पूरा प्रकट होने का अवसर प्राप्त ही नहीं होता। पात्र का विकास कथा में उसकी भूमिका के अनन्तर होता है, प्रथम परिचय प्रयोजनमूलक ही होता है, पूरी तरह अनौपचारिक और काम चलाऊ। यह उसके चरित्र–विकास में उजास भरने और पाठक को उसके चरित्र विकास के साथ चुमाचुम करते रहने का उपक्रम भी है और उपन्यासकार की उपन्यास में सर्वथा अप्रत्याशित योजित करने की योजना भी हो सकती है।

उपन्यासकार स्वयं होकर पत्र का प्रथम परिचय दे, इसके अतिरिक्त पात्र प्रथम–मिलन पर अपना परिचय भी दे सकते और कोई तीसरा भी परिचित अथवा अपरिचित अकस्मात् प्रकट हुआ पात्र भी दे सकता है। गोदान ऐसा कम ही हुआ है। प्रेमचन्द पात्र का परिचय देते हुए ही उसे किसी विशिष्ट परिस्थिति में फँसाकर उसके मनोगत को आंख, नाक, मुंह, हाथ और आदि की विभिन्न भंगिमाओं, चलने–फिरने और उठने–बैठने की विचित्रताओं का काव्यात्मक किन्तु अभिनय संयुत विवरण देकर पाठक में रचेकता भर देते हैं।

वातावरण और परिवेश चित्रण–

प्रेमचन्द वातावरण निर्माण के प्रति बहुत ही सजग रहते हैं। पात्र की भौतिक अथवा आध्यात्मिक स्थिति के अंकन के लिए ऐसा वातावरण रखते हैं कि उसके पात्र के व्यक्ति का सहज ही पाठक को अनुमान हो जाता है। होरी का परिचय देने के लिए वह स्वयं होकर कुछ नहीं कहते अपितु ऐसा वातावरण रचते हैं कि पाठक को उसकी कद–काठी का ही नहीं, उसके गँवई और किसान होने का और मन का ज्ञान तो हो ही जाता है, उसकी हैसियत का भी ज्ञान हो जाता है। यथा– "होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर उसके पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा– भगवान कहीं द्यौ से बरखा कर दे और डांडी भी सुगीते से रहे तो एक गाय जरूर लेगा। देशी गाय न तो दूध दे और न उनके बछड़े किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चलें। नहीं, वह पछाई गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नही तो चार–पाँच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस–तरस जाता है।

गोदान के अन्त को ही लीजिए, वातावरण में इतना अवसाद भर देते है कि पाठक होरी की आसन्न–मृत्यु के अनुमान से संवेदित हो उठता है, "आज सबेरे से ही लू चलने लगी। दोपहर होते–होते तो आग बरस रही थी। होरी कंकड़ के झाले उठा–उठाकर सड़क पर लाता था और गाड़ी पर लादता था। जब दोपहर की छुट्टी हुई थी, वह बेदम हो गया था। ऐसी थकान उसे कभी न हुई थी। उसके पांव तक न उठते थे। देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्नान ही किया, न चबेना ही लिया। उसी थकान में अपना अंगौछा बिछाकर एक पेड़ के नीचे सो रहा,"

अंग–प्रत्यंग बनक–प्रदर्शन –

होरी रायसाहब से मिलने जा रहा है। धनिया रस–पानी लेने के लिए कहती है तो होरी अपने झुर्रियों से भरे माथे को सिकोड़कर उत्तर देता है। जब धनिया पांचों पोसाक लाकर पटकती है तब सालियों और सलहजों पर व्यंग्य करते समय उसके गहरे, सांवले, पिचके हुए चेहरे पर हास गमक उठता है। रूपा सोना को ऊँगली भटकाकर चिढ़ाती है। पंडित दातादीन का घनी–सफेद भौहों के नीचे छिपी हुई आंखों में जवानी की उमंग भरे पोपले मुख से गाय की प्रशंसा करना, झिंगुरी सिंह का कभी सहानुभूति का रंग मुंह पर पोतकर और कभी फूले हुए गालों में धंसी हुई आंखें निकालकर बातचीत करना। इन पात्रों के चरित्र पर बरबस अनोखी और बिरल छाप छोड़ते हैं। वस्तुतः अंग–संचालन और भ्रू–भंगिमाएं पात्र का अन्तदर्शन कराती हैं। प्रेमचन्द ने जिस बारीकी से वार्तालाप के

अनन्तर मुख–मुद्राओं और अंग–प्रसारण का चित्रण किया है, उससे पात्र के चरित्र की प्रकृति और प्रतिष्ठा का सहज ही स्फालन हो जाता है।

घात–प्रतिघात चित्रण–

अपने व्यवहारिक जीवन में हम सभी एक–दूसरे के लुके–छिपे रहस्यों, छल–छद्मों, पीड़ाओं और अनैतिक कार्य–व्यापारों से अवगत होते हैं किन्तु हम कभी उन पर उंगली नहीं उठाते और न ही चर्चा का विषय बनाते हैं किन्तु जब हमारे ऊपर इन्हीं लोगों द्वारा अनुचित व्यापार करने अथवा समर्थन करने के लिए अनुचित दबाव बढ़ाया जाता है, तब हम पीड़ा से कसमसा उठते हैं। ऐसे अवसर हमारे अन्दर का आवेश ज्वालामुखी बनकर फूट पड़ता है और हम उन चरित्रों का भण्डाफोड़ चाहते हुए भी कर बैठते है।, शोषितों को अपने शोषकों के कुत्सित चरित्रों, हथकण्डों और दुरभिसन्धियों का ज्ञान होता ही है किन्तु वह उनके आड़े आकर अपने और अपने परिवार के अहित की आशंका में जीने के लिए प्रस्तुत नहीं होता। अतः मौन साधे रहता है, शोषण का शिकार होता रहता है उसे उनको बेनकाब करने में उनकी कम, अपनी अधिक हानि लक्षित होती है। परिणामस्वरूप वह अनीति, अत्याचार और अपशब्द को बरदास्त करता चला जाता है। "जब दूसरों के पांवों तले अपनी गर्दन दबी हुई है तो उन पांवों के सहलाने में ही कुशल है।"

गोदान में हीरा द्वारा होरी की गाय को दिए जाने के सन्दर्भ में जब गांव में पुलिस आती है तब पंचों की सलाह पर दारोगा की सेवा करने के लिए होरी ऋण लेता है। जब वह दारोगा की सेवा करने के लिए रकम लेकर आगे बढ़ता है तो धनिया आगे बढ़कर अंगोछा झटक लेती है। उसमें बंधे रुपये जमीन पर गिर पड़ते हैं। धनिया का उत्पीड़ित और शोषित चित्त एकदम भभक उठता है, "रुपये कहां लिए जा रहा है, बता–घर के प्राणी रात–दिन मरें और दाने–दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो, और अंजुरी भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत।"

अपनी इज्जत मरजाद बचाए रखने के लिए होरी निरन्तर शोषण का शिकार हो रहा है, उसके पीछे उसका परिवार भी दुःखी और संतप्त हो रहा है। चाहकर भी धनिया समय पर कुछ नहीं कर पाई किन्तु आज जब अति हो ही गई है तब उसका वर्षों से संचित गुबार निकल ही पड़ा। यह सिर्फ होरी पर ही फटकार नहीं है अपितु वहां उपस्थित अनाचारियों पर भी जबर्दस्त लानत थी। इससे उनके अहं को ठेस पहुंचना स्वाभाविक था। धनिया के इस आवेश, ललकार और फटकार ने उनके मुंह पर ताला जड़ दिया हो, दारोगा का रौब और प्रतिष्ठा कैसे होरी खा सकता था, वह रौबदार आवाज में धमकाते हुए सा बोला, "मुझे मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फंसाने के लिए खुद गाय को जहर दे दिया है।" धनिया फट तो पड़ी ही थी, निर्भीकतापूर्वक आगे आ गई, "तुम्हारी तहकीकात में यही निकलता है तो यही लिखो, पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ी। देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारी अकल की दौड़।" वह दारोगा पर आरोप कर ही चुप नहीं रहती, वहां उपस्थित नेताओं और पंचों तक को नहीं छोड़ती, "हम बाकी चुकाने के लिए पचीस रुपये मांगते थे, किसी ने न दिए। आज अंजुरी भर रुपये ठनाठन निकल आए। मैं सब जानती हूं। यहां तो बांट–बखरा होने वाला था, सभी के मुंह मीठे होते। ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले।"

धनिया ने जिस तरह आवेश में वह सब कह डाला और दम ठोंककर अड़ी रही, सामान्य स्थिति में ऐसा न कर पाती। इस तरह परिस्थितियों के दबाव में असहाय होकर पात्र जो उगलता है, वह उसके और उसके आरोपियों के चरित्र पर खास वक्तव्य होता है। ऐसे ही चरित्रोद्‌घाटन के तथ्य पात्रों के अपने अन्दर्द्वन्द्वों के स्वगत वक्तव्य के माध्यम से भी सामने आते हैं। ऐसा ही आत्मकथन है होरी का जो होरी के मन की धातु को उजागर करने में समर्थ है, "दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देखकर राम–राम कहते और सम्मान भाव से चिलम पीने का

निमंत्रण देते थे। पर होरी को अवकाश कहां था। उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान–लालसा ऐसा आधार पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी–मालिकों से मिलते–जुलते रहने का ही यह परसाद है कि सब उसका आदर करते हैं। नही तो कौन पूछता। पाँच बीघे के किसान की विसात क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन–तीन, चास्चार हलवाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।''

वह आगे बढ़ता है और एक चरागाह के निकट पहुँचता है जहाँ थोड़ी तरावट थी। उसके जी में आया, वहां कुछ देर बैठ जाए– 'दिन भर तो लू–लपट में मरा है ही। कई किसान इस गढ़े का पट्टा लिखने को तैयार थे। अच्छी खाग देते थे, पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया कि यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर न उठाई जावेगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता तो कहता– गायें जायें भाड़ में, हमें तो रुपये मिलते हैं, क्यों छोड़ें। पर रायसाहब अपनी पुरानी मान–मर्यादा निभाते आए हैं।''

चूंकि प्रेमचन्द सदैव अपने पात्रों को सकारात्मक पक्ष का राही बनाए रखते हैं इसलिए उनमें पाप पुण्य, कर्तव्य और अकर्तव्य, श्लाघां और निन्दा के बीच कसमकस में कम ही झूलते हैं। यही कारण है कि ऐसे अवसर आए हैं जिन पर रायसाहब, मेहता, मालती आदि घोर अन्तर्द्वन्द्व में जी सकते थे किन्तु चूंकि सामाजिक, राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक मूल्यों की उनकी सोच तह में है, इसलिए वे अनिश्चय के वात्याचक्र में नहीं फँसते और उनके पास अन्तर्द्वन्द्व के लिए कहीं कोई अवकाश ही नहीं रहता। यही कारण है कि गोदान में अन्तर्द्वन्द्वों का लगभग अभाव परिलक्षित है।

घटनाओं के माध्यम से चरित्र–चित्रण–

घटनाएं पात्र के चरित्र के बारे अनजाने ही बहुत कुछ कह जाती हैं। अतः उपन्यासकार घटना का संयोज़न बड़ी कुशलता से करता है। ये घटनाएं उपन्यासकार के उद्देश्य की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भले ही उपन्यासकार का लक्ष्य घटनाओं द्वारा चरित्र चित्रण न रहा हो, फिर भी वे इसका निमित्त बन ही जाती हैं। गोदान में दमड़ी बसोर से बांस का सौदा और हीरा के घर की तलाशी वाली घटनाएं होरी के चरित्र का अनायास ही उल्छार कर बैठती है। होरी बाँस के सौदे में पाँच रुपये अधिक लेकर हीरा को ठग लेना चाहता है किन्तु जब हीरा घर छोड़कर भाग जाता है तब वही उसकी और घर की आबरू बचाने के लिए उधार लेकर दारोगा को घूस देने के लिए तत्पर हो जाता है। इतना ही नहीं हीरा के न रहने पर उसकी खेती–बाड़ी का काम भी करता है।

यह घटना स्पष्टतः होरी के उस स्वभाव को रेखांकित करती है जिसमें कहा गया है कि 'होरी की कृषक–प्रवृत्ति झगड़े से भागती थी, तो दूसरी ओर आनाकानी करते रहने के बावजूद दो सौ रुपये में रूपा के अपनी उम्र के रामसेवक से विवाह के लिए तैयार हो जाता है, होरी के चरित्र पर विशेष प्रभाव डालती है। मेहता और मालती को दूर वन–प्रान्तर ले जाकर बनवाला को उपस्थित करने की घटना मेहता के बोध और मालती के नारी के अमर्षशील होने का गुण प्रकट करती है।

कथोपकथन–

कथोपकथन का महत्व प्रतिपादित करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं कि "उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना कम लिखा जाए, उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा।... प्रत्येक वाक्य जो किसी चरित्र के मुंह से निकले, उसे पात्र के मनोभावों और चरित्र पर कुछ न कुछ प्रकाश डालना चाहिए।''

अपने विचार के अनुरूप प्रेमचन्द गोदान में संवादों की इस तरह संरचना की है कि उससे पात्र के अन्तःकरण समेत गुण–अवगुण उभरकर सामने आ जाते हैं। लीजिए, होरी रायबहादुर से मिलने जा रहा है। धनिया रस–पानी के लिए कहती है। इसमें उसे कोई सार नजर नहीं आता, अड़ंगा सा प्रतीत होता है। धनिया लाकर भिरजई पटक

देती है तो होरी आंखें तरेर बैठता है, "पाँचों पोसाक लाई हो। ससुराल में भी तो कोई जवान साली सरहज नहीं।" इतना कहकर वह मुस्कान क्या बिखेरता है, धनिया के झुरियों भरे गात में लज्जा मचल उठती है। वह भी उसे परिहास में तुनक जवाब देती है, "ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली सलहज देखकर रीझ जाएगी।

4.3 होरी

गोदान का होरी भारतीय जनमानस में भूमिका पुरूष के रूप में पैठ बना चुका है उसका चरित्र इतना गहमा गहमी में रचा बसा है कि वह कालजयी बन गया है जो कभी व्यतीत नहीं होता। वह प्रमुख पात्र होते हुए भी गोदान में गौदान की इच्छावश गौ न पाल पाने और गौदान न कर पाने की विवशता को झेलते हुए भी गोदान का नायक बनता प्रतीत नहीं होता।

होरी की जीविका का एक मात्र साधन है– उसकी पांच बीघा जमीन। इसी से वह अपनी पत्नी धनिया रूपा और सोना, दो पुत्रियों और गोबर पुत्र का पालन–पोषण करता है। गोबर के भाग जाने के बाद पुनिया का भार की उस पर आ पड़ता है। शोभा और हीरा दो भाई है। पूर्वजों की जमीन का बँटवारा हो चुका है। तीनों अपनी गृहस्थी उसी पर खेती कर चलाते हैं। हीरा के चले जाने पर उसकी पत्नी पुनिया का भी सहारा वही है। अपनी खेती करने के साथ वह पुनिया की खेती भी संहालता है।

होरी अपनी जिम्मेदारियों को कर्ज ले–लेकर पूरा करता है। उसका सम्पूर्ण जीवन कर्जमय है। होरी को परिस्थितियों ने भाग्यवादी बना दिया है। वह गोबर को समझाते हुए कहता है," छोटे–बड़े सब भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसा धर्म–कर्म किए थे, उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ संचा नहीं तो भोगें क्या ?"

होरी की दरिद्रता का कारण उसके पास थोड़ी सी जमीन का होना ही नहीं है, बल्कि मरयादा के नाम पर उसकी अपनी मानसिकता भी है। इस थोथी मरयादा की रक्षा के लिए वह खुशी–खुशी बड़े उत्साह से कर्ज लेने दौड़ पड़ता है। एक बार जो कर्ज लेता है, 20 के भले 200 हो जाये, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता; वह पुनः कर्ज लेने पहुँच जाता है। कर्ज लेकर सारे जीवन उसका कई गुना चुकाने में वह जीवन भर असफल प्रयत्न करता हैं। सीधा और निश्छल इतना है कि बिना सोचे समझे विपत्ति को सिर पर बुला लेता हैं। ईमानदारी का तो जैसे उसने ठेका ले लिया किन्तु बईमानी करने में भी प्रवृत्त हो जाता हैं।दमड़ी बसोर से बीस रुपये हिसाब से सौदा करता हैं।उसकी ये चालाकी चलती नहीं।स्पष्टतः उसमें दैवी गुणों के साथ–साथ राक्षसी वृत्ति का सम्मिश्रण हैं किन्तु भाग्य में जो लिखा नहीं, वह कहाँ से मिलेगा। दैव उसे ईमान से च्युत होने नहीं देता। अपने किए पर सुनने और अपने कर्म पर झेंपने के लिए छोड़ जाता है। पूर्वजों की जायदाद ,घर और गाँव किसी भी हालत में छोड़ने को तैयार नहीं। वह भी खूँटे से बँधा है।फिर खेती में मालिक होने का बोध जो है,वह नौकरी को इसके सामने हेटा समझता है।

होरी के चरित्र में उत्तरदायित्व की भावना कूट–कूटकर भरी है। कितनी भी विषम परिस्थितियाँ क्यों न हो ,अपने परिवार और पड़ोसियों के प्रति अपने दायित्व को समझता और उसकी पूर्ति हेतु तत्पर रहता है। होरी में सीधे –सच्चे भारतीय किसान की आत्मा वास करती है तभी तो प्रेमचन्द कहते है होरी की कृषक वृत्ति झगड़े से भागती है। चार बातें सुनकर गम खा जाना इससे कही अच्छा हैं कि आपस में तनाजा हो; कहीं मारपीट हो जाए तो थाना पुलिस हो,बँधे–बँधे फिरो। अदालत की घूल फाँको, खेती–बारी जहन्नुम में जाए।

होरी के जीवन में पग–पग पर आपत्तियाँ, अभाव तो जैसे घर जमाई है। इसके बावजूद वह विरोध के स्वर को स्वर नहीं देता और न ही उनसे छुटकारे के लिए पुरुषार्थ करता है। "होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत में मेड़ पर लेटा था चाहता था शीत को भूल जाए और सो रहे; लेकिन तारतार फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंको से गीली पुआल! इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तमाखू भी नहीं मिला कि

उसी में मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था शीत में वह भी बुझ गया। विवाई फटे पैरों को पेट में उठाकर हाथों को जाघो के बीच में दबाकर और कम्बल में मुंह छिपाकर अपनी गर्म सांसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। कम्बल उसके जन्म से भी पहले का था। बचपन में अपने बाप के साथ इसी कंबल में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कंबल में उसने जाड़े काटे थे और बुढ़ापे में आज वहीं कंबल उसका साथी है।''

अधर्मियों के अत्याचार बराबर सहते जा रहा है, उसे भय हैं– कहीं उससे कोई पाप न हो जाए। वह मैली चादर लेकर मरना नहीं चाहता, ''ठाकुर या बनिये के रूपए होते तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती लेकिन ब्राह्मण के रूपए, उसकी एक पाई भी दब गई तो हड्डी तोड़कर निकलेगी।''

परंपरा और रूढ़ियों ने उसे इतना धार्मिक बना दिया है कि वह संत्रस्त हो उठता है। अधीर होकर दौड़ता है, पंडित दातादीन के चरण पकड़ लेता हैं, दयनीय हो जाता है–

''महाराज, जब तक मैं जीता हूँ तुम्हारी एक–एक पाई चुकाऊँगा पाई–पाई चुकाने के इसी अभिमान में वह किसान से मजदूर बन गया है। दातादीन के यहां मजदूरी कर रहा है। दातादीन जली कटी सुनाते हैं'' हाथ फुरती से चलाओ होरी। इस तरह तो तुम दिनभर में भी न काट सकोगे।''

होरी का अभिमान बुरी तरह आहत होता हैं, ''कर ही तो रहा हूं महाराज! बैठा तो नहीं हूं।''

तीन दिनों का भूखा होरी विष का घूंट पीता है।

'' होरी उन्मत की भांति सिर से ऊपर गँड़ासा उठाकर ऊख के टुकड़ों का ढेर करता जा रहा था। उसके भीतर आग लगी हुई थी उसमें अलौकिक शक्ति आ गई थी। उसमें जो पीढ़ियों का संचित पानी था, वह इस समय जैसे भाप बनकर उसे मंत्र की सी शक्ति प्रदान कर रहा था। उसकी आंखों के आगे अंधेरा होने लगा सिर में फिरकी सी चलने लगी फिर भी उसके हाथ यंत्र की गति से बिना थके, बिना रूके उठ रहे थे। उसकी देह से पसीने की धार निकल रही थी। मुंह से फिचकुर छूट रहा था और सिर में धम–धम सा शब्द हो रहा था पर उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया था।''

हाथ से औजार छूट गया और वह औधें मुँह जमीन पर गिर पड़ा। होरी ने अपने अन्तःकरण की प्रेरणा वश जो प्रचण्ड रुप दिखलाया;यद्यपि यह मालिक की चुभन का परिणाम हैं, तथापि आज्ञापालन की यह त्वरा, अपने को पूरी तरह झोंक देने का आवेश संभवतः जीवन भर के शोषित और पीड़ित होने के सोच की अभिव्यक्ति है जो बराबर अपने को मिटा देने की संकल्पात्मकता की ओर इशारा करती है। भले ही लगे कि होरी को मार डाला गया लेकिन वह आत्महनन के आरोप से भी मुक्त नहीं किया जा सकता।

होरी के जीवन की यह कितनी बड़ी बिडम्बना है कि वह सोना की शादी तो बड़े ठाठ–बाट से करता है किन्तु बेदखली से बचने के लिए अपनी छोटी बेटी रूपा को अपनी उम्र के बूढ़े से ब्याहने के लिए विवश है। एक ओर वह गाय प्राप्त करने के लोभ में भोला को विवाह करा देने का लालच देता है तो दूसरी और बाँस के सौदे में अपने ही भाइयों से बेईमानी करने का प्रयास करता है और फिर निःस्वार्थ भाव से हीरा और उसकी असहाय पत्नी पुनिया की सहायता में जुट जाता है ।

होरी के जीवन के ये विरोधाभास उसके स्वार्थ और परमार्थ के बीच का आन्तरिक संघर्ष है जिसमें वह संघर्षरत रहता है किन्तु स्वार्थ कभी उसका पूरा नहीं होता। परमार्थ करते करते ही वह होम हो जाता है। भारतीय किसान का परमार्थ परायण चित्त सदैव परमार्थ को ही ऊपर रखता है। बेईमानी उसके जीवन का कभी अंग नहीं रहा। स्वार्थ–साधन उससे हो ही नहीं सकता। इसीलिए परिवार और समाज की मर्यादा को वह संस्कारों की तरह जीता और भोगता है। झुनिया के मामले में इसीलिए तीस मन अनाज और सौ रूपए नकद दण्ड देकर बिरादरी में

बने रहने का उपक्रम करता है। वह खाली हाथ ध्यानसिंह ठाकुर के यहाँ पूजा में जाने से डरता है। भीतर ही भीतर वह आलोड़ित होता है'' क्यों मर्यादा की गुलामी करे! मर्यादा के पीछे आरती का पूण्य क्यों छोड़े? लोग हँसेंगे, हंस लेंगे। उसे परवाह नहीं। भगवान उसे कुकर्म करने से बचाए।''

4.4 धनिया

धनिया होरी की सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी है। उसका जीवन उसके साथ उसके जीवन संघर्ष में पूरी तरह समर्पित है। तथैव उसका जीवन भी धर्म और कर्म के बीच के द्वन्द्व का मंचन है। मर्यादा में वह भी पूरी तरह अपने को विभाजित किए हुए है। तभी तो वह अपनी हैसियत से ऊपर उठकर बड़बोली हो उठती है सोना की शादी के प्रसंग में। चाहे कैसी भी परिस्थिति हो और कैसे ही विपत्ति को गले लगाना पड़ें, वह होरी द्वारा गौरी महत्तो को वाग्दत्त दहेज को कर्ज से दबे होने पर भी देकर रहेगी। '' रूपया हाथ का मैल है। उसके लिए कुल– मरजाद नही छोड़ा जाता। जो कुछ हमसे हो सकेगा हम देंगे और गौरी महतों को लेना पडेगा।''

दमड़ी बसोर से बॉस के सौदे में वह होरी, पुनिया, शोभा से अच्छी तरह भिड़ चुकी थी। गाय आने पर भी जब होरी हीरा शोभा को बुलाने जाता है तब भी बँटवारे में पैसे दबा लेने के मिथ्या आरोप से आग–बबूला हुई थी। सारे गांव ने पारिवारिक कलह का तमाशा देखा था। धनिया को जब बात लगती है तब वह अपने को रोक नहीं पाती है। आवेश से भर उठती है। उसके मन में गहरा विषाद है, भाइयों के प्रति मनभेद तो है ही। इसके बाबजूद जब हीरा गाय को माहुर देकर भाग जाता है और सजा भुगतता है तब वह पुनिया का सारे प्रहारों और मतभेदों को भुलाकर सहारा बनती है। कथाकार को कहने का अवसर मिल जाता है कि ''विपत्ति ने दोनों को एक कर दिया।''

इसी पुनिया से एक बार जब वह अनाज मांगती है जब जैसे उसकी अस्मिता पर कुठाराघात हो गया ''वह अपमानित और लज्जित हो रही थी। यह दिनों का फेर है कि आज उसे इस प्रकार नीचा देखना पड़ा।'' कृतज्ञता का भाव ऑसू बनकर उसकी आंखों से छलक उठता है। उस पर किए अपने उपकार का बोध उसे तनिक भी नहीं रहता और न ही वह यह बोध उस पर गालिव करती है। सृहदयता और मन की निर्मलता इतनी अगाध है उसमें कि एक ओर तो वह पॉच महिने का गर्भ लिए द्वार पर आ खड़ी हुई। झुनिया को विपत्ति समझकर भुनभुना उठती है और होरी को चेतावनी सी ही दे डालती है, ''मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नहीं है और अगर तुम बोले तो फिर या तो तुम्हीं रहोगे या मैं ही रहूंगी।'' किन्तु अगले ही पल उसका नारी हृदय करुणा से भर उठता है। गर्भवती के असहाय हो रहने की वेदना उसे दयार्द्र कर देती है। वह अब क्रोध और रोष से भरे हुए होरी को समझाने और शान्त करने पर आ जाती है,'' इतनी रात गए घर से निकालना उचित नहीं। पांव भारी है कहीं डर–डरा जाय तो और आफत हो। ऐसी दशा में कुछ करते–धरते नहीं बनता।

इस अवसर पर नारी के मन प्राण में बसी दैवी दया और करुणा का दृश्य कथाकार को भी भाव–विभोर कर देता है और वह भरे हृदय से अपना विनम्र आदर व्यक्त करते हुए कह उठता है, ''वही साध्वी जिसने होरी के सिवा किसी पुरुष को आँख भरकर न देखा था, इस पापिष्ठा को गले लगाए उसके आंसू पोंछ रही थी, उसके त्रस्त हृदय को अपने कोमल शब्दों से शान्त कर रही थी, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चों को परों में छिपाए बैठी है।''

होरी के साथ कष्ट सहते सहते वह दुनियादार और समझदार तो हो ही गई हैं, उसमें मानवता भी अपने नैसर्गिक रूप में प्रकट है। कुछ ही समय के लिए वह रौद्र रूप धारण करती है। उल्टा–सीधा बक लेने के बाद जैसे उसका आत्माराम उसके मनीराम को डपट देता है, उसका स्वार्थ चिन्तन हवा हो जाता है और वह स्व–पर से ऊपर उठ जाती है। उसे केवल मानवता की पूजा ही साध्य नजर आती हैं और वह फिर उसकी सेवा में जुट जाती है और इसके लिए कोई भी जोखिम उठाने के लिए प्रस्तुत हो जाती है। वह झुनिया के पक्ष में पूरी निष्ठा से खड़ी हो जाती हैं। दातादीन तो जैसे तैयार ही रहते हैं उन पर उबलने और बरसने लिए; धर्म के ठेकेदार जो हैं। अशरण

झुनिया को शरण देना उन्हें रास नहीं आता। होरी के दरवाजे जा डटते हैं " तुम्हें इस दुष्टा को घर में नहीं रखना चाहिए था।" यह धनिया के किए को एक प्रकार से चुनौती थी? वह अपनी न्यायप्रियता को तुरंत औचित्य का जामा पहुंचाती है और पंडित दातादीन की धर्मभावना पर आक्षेप कर बैठती है, "हमको कुल प्रतिष्ठा इतनी प्यारी है महाराज कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते । ब्याहता न सही, उसकी बॉह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने। किस मुंह से निकाल देती।"

पंच होरी पर जुर्माना करते हैं तब उसकी नैसर्गिक न्याय भावना आहत होती है, वह कुछ कर तो नहीं सकती, पंचों के खिलाफ किन्तु उनके अमानुषिक शोषणवादी अत्याचारी न्याय भवना पर अवश्य सवाल खड़ा कर देती है।" मुझसे इतनी बड़ा जरीमाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा? क्यों उसको घर से निकाल कर सड़क की निवासी नहीं बना दिया।"

झुनिया के पक्ष में तो मान लिया जाय कि वह कुल प्रतिष्ठा और मर्यादा से जोड़कर देखती है किन्तु तब और उसका ऐसा करना उचित भी हो सकता है। किन्तु दातादीन के पुत्र मातादीन की प्रेयसी सिलिया को मातादीन द्वारा ठुकरा दिए जाने पर वह घर का रख लेती है। दातादीन का भय होरी को सता रहा है। वह उसके भय को कोई महत्व नहीं देती तुरंत तेजस्वी हो उठती है" बिगड़ेगे तो एक रोटी बेसी खा लेंगे और क्या करेंगे! कोई उनकी दबैल हूँ। उसकी इज्जत ली। बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं मेरा तुमसे कोई वास्ता नहीं। आदमी है कि कसाई यह उसी नियत का फल मिला है। जगह की कौन कमी है बेटी! तू चल मेरे घर रह! सिलिया तू मेरे घर चल।"

वह दबैल कतई नहीं है। जो न्याय संगत है जो सही है और जो अनाचार और अत्याचार से रहित है, ऐसा व्यवहार उसे पसंद है और उसकी पक्षघर है। झुनिया और सिलिया को किसी की परवाह किए बिना किसी दुराग्रह, पूर्वाग्रह के अंग लगाती है, यह नारी को दिया गया दया और करुणा का दैवी पारस स्पर्श है जो धनिया में है,

धनिया स्व–विवेक बखूबी इस्तेमाल करती है और उसके अनुसार सही गलत, न्याय–अन्याय का विवेक करती है। उसके अनुसार वह क्रियाशील होने के लिए तत्पर रहती है। दरोगा गाय की मृत्यु की पड़ताल करने आता है। होरी को लगता है, उसकी कुल मर्यादा पर ऑच आ गई– हीरा है तो उसका भाई ही, उसके परिवार का अंग। वह अकबकाया हुआ है कि पंच आ धमकते हैं और बचने के लिए दारोगा की सेवा करने की सलाह देते हैं। होरी के पास देने के लिए कुछ है ही नहीं। पंच उसे ऋण उपलब्ध कराते हैं। दारोगा की सेवा में उनका भी हिस्सा होता है यह बात उनके बीच तय हुई थी। इसका न होरी को ज्ञान है, न धनिया को। होरी अँगोछा में बंधे रुपए देने के लिए बढ़ता है तो वह झटक देती है पैसे जमीन पर गिरते हैं और वह दुर्गा बन जाती है।" ये रुपए कहॉ लिए जा रहा है, बता। अंजुरी भर रुपए लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसे बड़ी है तेरी इज्जत। जिसके रुपए हों ले जाकर दे दो। हमें किसी से उधार नहीं लेना है। मैं दमड़ी भी न दूंगी चाहे मुझे इजलास जाना पड़े। मैं सब जानती हूं। यहां तो बॉट–बखरा होने वाला था।.. ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं या गरीबों का खून चूसने वाले। सूद–ब्याज, डेढ़ी–सवाई नजर नजराना घूस–घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जहल जाने से सुराज नहीं मिलेगा।

धनिया के इस भभके में युग अभिव्यक्त हो गया है। स्पष्टतः उस समय स्वराज्य–आन्दोलन चल रहा था नेता जेल जा रहे थे। जेल जा रहे थे ताकि सुराज मिलते ही राजा बन जाय। ये नेता कैसे हैं, यह धनियां के कथन में स्पष्ट है " ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं।" स्वराज्य प्राप्त होते ही ये हत्यारे गरीबों का खून चूसने वाले और नौकरशाही के साथ दुरभिसंधि कर शोषण करने वाले जब लोकतंत्र की कुर्सी पर आसीन हो गए तब सुराज की जो कल्पना थी, वह सुराज आने से रहा और आया भी नहीं; आ भी नहीं सकता। धनियां के इस साहसपूर्ण कथन में प्रेमचन्द की समयानुसार उभरी सोच और सुराज के स्वरूप पर बेबाक चिन्तन है। स्पष्टतः धनिया की इस निर्भीकता

को कथाकार का समर्थन प्राप्त है। और इसीलिए वह दीन और असहाय होते हुए भी मुंहफट हो गई है। तभी तो अनुचित और अमानुषिक के विरुद्ध उठ खड़ी होती है। दातादीन के यहां मजदूरी कर रही धनिया से जब दातादीन कहता है, अगर यही हाल है तो भीख भी मांगोगी, तो वह फुफकार उठती है, ''भीख मांगो तुम जो भिखमंगों की जात हो। हम तो मजूर है, जहां काम करेंगे, वहीं चार पैसे पाएंगे।''

दातादीन जैसे ब्राह्मण को भिखमंगो की जात कहकर उसने समाज–विरादरी में उभर रहे अन्धविश्वास और धर्मान्धता के विरोध को ही शब्द दिया है। भले ही गांव उनसे मुक्त नहीं हो पाया है। आध्यात्मिकता गांव में इतनी बद्ध मूल हो गई है।

धनिया के चरित्र में मानवता का सदस्वरुप दीप्त है। फलस्वरुप वह सत्य भाषण करने से नहीं चूकती। अमानुषिक क्रिया कलापों से उसे घृणा है। झूठ फरेब और मिथ्याभिमान से सर्वथा मुक्त हैं। करुणा और दया उसके चरित्र का आधार है। सेवा, त्याग, सहनशीलता, साहस और संघर्षशीलता में वह पूरी तरह होरी की अर्धांगिनी है।

4.5 गोबर

होरी के पुत्र झुनिया के प्रेमी गोबर के साथ गांव बेलारी जैसे शहर लखनऊ में प्रवेश करता है। कृषि–सभ्यता ने यंत्र–युग में प्रवेश कर लिया है। औद्योगिक सभ्यता और पूंजीवादी शोषण का चक्र शुरु होता है जिसमें लोकतंत्र, समाजवाद और पूंजीवाद की विचार सरणियां जीवन को आन्दोलित कर रही है।

गोबर में किसान की सिधाई, सच्चाई धर्मभीरुता पर गुस्सा भरा हुआ है। उसने शकुन के नाम पर जमींदारों की शोषक प्रकृति, साहुकारों और महाजनों की सूद खोरी, सरकारी मुलाजिमों की रिश्वतखोरी, पण्डितों द्वारा ध र्मभावना का शोषकत्व और पंचों का स्वविवेक से परे जमींदारों और सरकारी मुलाजिमों की साठ–गांठ से किसानों पर अत्याचार खुली आंखों देखा है। उसका मन इन अनीतियों में जीने के लिए तैयार नहीं। वह सीधे–सीधे कहता है कि रायसाहब अपने पूर्वजन्म के पुण्य के कारण भाग्य के बल पर नहीं, किसानों की मेहनत के बल पर ऐश करते है। उसकी बुद्धि में यह नहीं बैठता कि भगवान आदमी को छोटा–बड़ा बनाते हैं। गोबर , होरी जिसे उसका करम मानता है, उसे अपना भ्रम नहीं मानता। वह अपने समझदारी के सच को व्यक्त किए बिना नहीं रहता, ''भगवान सबको बराबर बनाते हैं। यहां जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।''

वह दातादीन के कर्ज को बैंक की ब्याज दर से चुकाने की बात करता है किन्तु होरी के मन को यह नहीं रुचता। शहरी समझ उसकी गंवई समझ पर काबिज नहीं हो पाती ''वह जब तक जीता है, अपने ढ़ंग से जीना चाहता है!'' अन्धविश्वास उसका साथ नहीं छोड़ते और शोषण की चक्की उसे पीसना नहीं छोड़ती। उसकी धर्म की समझ के आगे गोबर की शहरी बौद्धिकता परास्त हो जाती है। वह खीझ उठता है, ''मेरा गदहापन था कि तुम्हारे बीच में बोला। तुमने खाया है, तुम भरो, मैं क्यों अपनी जान हूं।'' इस मनभेद और अरुचि के बाबजूद वह यह स्वीकार किए बिना नहीं रहता कि यह दादा की छाती है जो इतना सब सह लेती है।

गोबर–झुनिया का ब्याह नहीं हुआ है। यौवन का आवेग ही है कि वह बाल विधवा झुनिया की आंखों में चढ़ गया, प्रेम कर बैठा, प्रथम मिलन में आँखें चौधिया उठती हैं''

अच्छा बताओं अब कब आओगे? रात को मेरे द्वार पर अच्छी संगत होगी। चले आना, मै अपने पिछवाड़े मिलूँगी।

''और जो न मिली?

''तो लौट जाना।'

'तो फिर मैं न आऊंगा।

'आना पड़ेगा, नहीं कहे देती हूं।

'तुम भी वचन दो कि मिलोगी।

'मैं वचन नहीं देती।'

'तो मैं भी नहीं आता।

'मेरी बला से।'

और जब यह बला गले पड़ गई तो वह झुनिया को होरी के दरवाजे पर छोड़कर भाग गया। उसकी समझ में छल ने प्रवेश नहीं किया। झुनिया को उसके भाग्य पर छोड़ देने का विचार तक उसके मन में नहीं आया। वह निडर होकर घर आता है। पंचों, पंडितों और जाति–बिरादरी का भय और संकोच ताक पर रखकर प्रेयसी झुनिया को अपनाता है, अपने साथ शहर ले जाता है। चरित्र की यह सुदृढ़ता और बांह पकड़कर निभाने का निश्चय उसे मातादीन और सिलिया के प्रेम के विरुद्ध मिसाल बनकर सामने आता है जो नारी को खिलौना समझने की भूल का समूल उच्छेद करता है।

औद्योगिक सभ्यता के समस्त अवगुण अपनी इस चारित्रिक दृढ़ता के बाबजूद उसमें आ ही जाते हैं। वह सूद पर रुपये उठाता है और बड़ा आदमी बनते–बनते मजदूर बन जाता है। खन्ना की मिल में काम करता हैं। हड़ताल के प्रश्न पर मजदूरों में झगड़ा होता है। वह घायल हो जाता है और मालती के यहां सपत्नीक मजदूरी करता है।

उसने सर्वत्र शोषण देखा है। वह सजग भी है। धन की आकांक्षा के कारण वह उन कमजोरियों से ग्रस्त हो जाता है जिस से सूदखोर महाजन सदैव ग्रस्त रहते हैं। महाजनों की तरह रुपयों को सूद पर उठाता है किन्तु शोषित ही रहता है। औद्योगिक श्शोषण ने गोबर को सूद पर कमाई करने की मनोवृत्ति दी। कहने को तो कहा जा सकता है कि न वह शोषित होता और न ब्याज के बल पर धन कमाता, गरीबी मिटाने की चेष्टा करता; किन्तु जो गरीबी उसने देखी है उसने उसे जीवन का सूत्र दिया है कि समाज में प्रतिष्ठा उसी को प्राप्त है जिसके पास धन है। अतः येन–केन प्रकारेण जैसे भी हो धन अर्जित करें। श्रम से प्रभूत धन–अर्जन उस जैसे मजदूर के लिए संभव नहीं।

होरी के चरित्र में जो खुशामदवृत्ति है, कायरता है, कदराई है, भाग्यवादिता है, वह गोबर को बिल्कुल पसंद नहीं। उसने इन्हीं गुणों के कारण अपने पिता को भरपूर श्रम करने पर भी भूखों मरते देखा है और उसमें स्वभावतः विद्रोह बस गया है। वह पुरुषार्थी है, पुरुषार्थ से खाना–कमाना चाहता है। किसी की दया पर निर्भर रहना उसके स्वभाव में नहीं। अतः वह अपने पुरुषार्थ के बल पर बड़ों–बड़ों को फटकार देता है। यही कारण है कि जब वह शहर से कमाकर गांव लौटना है तो भोला को जो वैरभाव वश, कर्ज बसूलने के बहाने होरी के बैल खोल ले गया था, बातों बातों में ही ठीक कर देता है। भोला के द्वार से भोला के देखते–देखते बैल खोल लाता है और भोला देखता रह जाता है।

श्शहर में विकसित बुद्धिवाद को वह भली प्रकार आत्मसात करता है। हर प्रकार के आडम्बर और ऐश्वर्य प्रदर्शन में उसे शोषण की बू आती है। मालिक की चिन्ता में दुबले होते होरी के ज्ञान कपाट खोलने के लिए वह कहता है " तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते । हम अपना खेत, हल, बैल, कुदाल, सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला! यह सब धूर्तता है निरी मोटमर्दी। जिसे दुख होता है वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा–पुरी नहीं खाता और न नाचरंग में लिप्त रहता है। मजे से राज के सुख भोग रहे हैं, उस पर दुःखी हैं।"

राज का सुख भोगने वाली बात महत्वपूर्ण है और तत्कालीन ही नहीं, भावी पार्लिया मेण्टेरियनों की कथनी–करनी पर खासा प्रकाश डालती है। स्पष्टतः गोबर निरंतर चेतन है। अत्याचार का विरोध करने की उसमें उत्कृष्टता है। रूढ़ियों, परंपराओं और अन्धविश्वासों के गर्भ में पल रही लिजलिजी भावुकता और उसकी आड़ में शोषकों के मानस को वह मली प्रकार पहचानता है और उसके विरोध में खड़ा है। यद्यपि वह अपना जीवन आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक संकटों के बीच बिताता है तो भी वह आने वाले समय में युवकों की नियति को तो परिभाषित करता ही है।

4.6 मेहता

मेहता दर्शन के प्रोफेसर हैं। वे चिन्तनशील हैं। सामाजिक आर्थिक समस्या पर अपना निजी दृष्किोण और चिन्तन रखते हैं। उनके विचारों को आलोचक प्रेमचन्द के विचार के रूप में ग्रहण करते हैं और लगता है कि मेहता जैसे प्रेमचन्द के वैचारिक प्रतिनिधि के रूप में अवतरित है। मेहता की विचार अभिव्यक्ति की भाषा अवसर के अनुकूल विषय केन्द्रित, सटीक और सुस्पष्ट होती है। मेहता के विषय में प्रेमचन्द कहते हैं कि वह किसी प्रश्न अपना मत प्रकट करते थे तो जैसे अपनी सारी आत्मा उसमें डाल देते थे। मेहता का भाषण उपमा–उत्प्रेक्षाओं से परिपूर्ण प्रश्नों, मुहावरों और छोटे–छोटे वाक्यों से परिपूर्ण होते हैं। व्याख्यान में विचारों की सटीक सादृश्यपूर्ण अभिव्यक्ति इतनी प्रभावपूर्ण होती है कि श्रोता उससे मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। वह कहते हैं "वोट नए युग का मायाजाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है, उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर की होगी, न उधर की। कौन कहता है कि आपका क्षेत्र संकुचित है, और उसमें आपको अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता।"

मेहता राजनीति को सेवा के लिए ग्रहण करने की इच्छुक मालती को निवारित करते हैं। प्रेमचन्द्र भली–भांति समझ चुके थे कि राजनीति सात्विक रूप में सेवा का माध्यम तो हो ही नहीं सकता, मानव सेवा तो उससे हो ही नहीं सकती। वोट की राजनीति जो अमरीका की राज्य क्रांति के माध्यम से जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन वास्तव में एक भ्रमजाल है जिसमें इस समझ का सत्ता –सुख के संघर्ष की बिना पर पूरी तरह लोप हो जाता है जिसका मेहता कथन करता है कि" हम सब पहले मनुष्य हैं, पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है, वही हमारी सृष्टि होती है और वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे लोग होते हैं, अगर वह क्षेत्र परिमित है तो अपरिमित कौन सा क्षेत्र हैं।"

मेहता का चिन्तन स्पष्टतः लोकमंगलवादी है। वह अपरिमित की संभावना में घर छोड़कर देश छोड़कर अन्यत्र जाने को मृग मरीचिका से अतिरिक्त कुछ नहीं मानते। हमारे घर और घर के आसपास सेवा के लिए इतना अपरिमित क्षेत्र है कि यदि हम पूरा जीवन समर्पित कर दें तो कम है और फिर जिसमें हम पैदा हुए, जिए, पले–बढ़े उसमें हम अधिक आदर के पात्र बन सकते हैं वहां उत्साह निरंतर अभिबृद्ध होता रह सकता है ।

मार्क्सवाद के अम्युदय ने और इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति की लक–दक ने बौद्धिक वर्ग को ही नहीं, जन सामान्य तक को आकर्षित किया है। वह उसके अन्तर में प्रवेश किए बिना, उसके सच को समझे बिना संघर्ष के नाम पर अमानवीय शोषण के जाल में फंस जाता है। मेहता इसे भली–भांति जानता है और एक प्रकार से इस संस्कृति के सच से अवगत कराकर उसके मकड़जाल से विरत होने की प्रेरणा देता है। जो इस औद्योगिक संस्कृति में अपरिमित सेवाकर्म की संभावना संजोए हुए है, उन्हें निराश होना पड़ेगा क्योंकि वहां मानवता की पूछ परख समझ और सूझ लगभग मृतप्राण है। मेहता का कथन महत्वपूर्ण है कि " अपरिमित कौन–सा क्षेत्र है? क्या वह संघर्ष जहां संगठित अपहरण है? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य पीसा जाता है, जहां उसका रक्त निकाला जाता है।"

स्पष्टतः मेहता में भावुकता का अतिशय नहीं है जो किसी भी कार्य को आतुरता से और किसी भी विचार को अधीरता से अंजाम दे। उसमें क्रिया–शक्ति का, कर्म का अनुभव बोलता है और तदनुसार विवेकी है, ज्ञान और विवेक के समन्वय में समर्थ है। दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक होने के बाबजूद वह आध्यात्मिक चिन्तन में खोए नहीं रहते अपितु तार्किक दृष्टि से ही किन्ही निर्णय पर पहुंचते हैं। वह कथनी और करनी की एकता के पक्षधर हैं वह स्पष्ट कहते हैं कि " मैं चाहता हूं कि जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हों, मुझे उन लोगों से जरा भी हमदर्दी नहीं जो बातें करते हैं कम्युनिस्टों की सी मगर जीवन है रईसों का सा, उतना ही बिलासमय उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।"

भारतीय जीवन में, ग्रामीण संस्कृति में आध्यात्मिक चेतना का जो स्वरूप है, वह शोषण और उत्पीड़न का स्वभावतः वाचक बन गया है। उसकी सही समझ के विकास के बिना ऊंच नीच में एकता, शोषक और शोषित में मानवता और पीड़ित और उत्पीड़क में नैतिक समझ का विस्तार संभव नहीं। फलतः मनुष्यता के सास्वतरूप का प्रकाश विकीर्ण होना कठिन दिखता है। अतएव अध्यात्म दर्शन की सत्वपरक व्याख्या आवश्यक है ताकि हरदम आध्यात्मिकता से पोषित धर्मान्धता, अन्धविश्वास और रूढ़ियों पर अंकुश लगाया जा सके। प्रेमचन्द्र इसीलिए मेहता के माध्यम से अध्यात्म को समीचीन परिभाषा प्रदान करने हुए कहते हैं "मैं प्रकृति का पुजारी हूं और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूं जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुःखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हॅसने को हलकापन समझते है, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनन्दमय समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीडा है, सरल स्वच्छन्द वहां कुण्ठा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं हैं।"

प्रेमप्रसंग में भी उनकी सोच निराली है । मालती उन्हें पाने के लिए यत्नशील है। वह प्रेम करना चाहती है किन्तु वह अपने बौद्धिक कौशल से यह कहकर पराजित कर देते है कि प्रेम जब आत्मसमर्पण का रूप ले लेता है तभी ब्याह है। वह नारी के प्रति अपनी आदर–भावना व्यक्त करते हुए कहते हैं कि " मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इन आदर्शों को प्राप्त कर चुकी है। और जब वह मालती में इन आदर्शों का पुष्पन अनुभव करते हैं तब उसका प्रणय निवेदन स्वीकार करने के लिए तत्पर होते हैं। स्पष्टतः उन्हीं की तरह लोकसेवा को अपना जीवन व्रत बना लेने पर वह मेहता के संसर्ग में इस तरह बदल जाती है कि उसे मेहता में नारी को बदल डालने वाले पारस स्पर्श का अनुभव होता है और वह कह उठती है कि " तुम्हारे जैसे विचारवान्, प्रतिमाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस करागार में बंद नही करना चाहती।"

मेहता और मालती निकट आते–आते इतने निकट आ जाते हैं कि प्रेम के अंकुर फूटने लगते हैं। इसी प्रसंग में जब बात छिड़ती है तब प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि दाम्पत्य में यदि कोई भी दम्पत्ति बेवफाई करता है तो क्या किया जाना चाहिए इस पर मालती के सोच के विपरीत मेहता दो टूक बयान करते हैं" नहीं मालती, इस विषय में मैं पूरा पशु हूं। आध्यात्मिक प्रेम, त्यागमय प्रेम, और निःस्वार्थ प्रेम मेरे लिए निरर्थक शब्द है। प्रेम सीधी–सादी गऊ नहीं, खूँख्वार शेर है जो अपने शिकार पर किसी और की आंख भी पड़ने नहीं देता।"

सच तो यह है कि प्रेमचन्द ने अपने औपन्यासिक रचनाकर्म के अनन्त प्रेम को अनेकों लोकप्रिय और लोक प्रचलित रूपों में देखा है। किन्तु लोकचित में उसकी क्या छबि उभरती है और विलीन हो जाती है,इसका रूपायन संभव नहीं हो सकता। लोकमानस को पढ़ने और लोकचित्त की अपेक्षा के अनुरुप प्रेम का स्वरुप गठन करने के लिए ही वह कहते हैं,"मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना करते हैं, उसे श्रृद्धा ने और भी गहरा और स्फूर्तिमय बना दिया है। प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ महत्व भी। श्रृद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार चाहता है। श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समर्पण है जिसमें अहमन्यता का ध्वंस हो जाता है।

4.7 मालती

मालती के मनोभावों का विश्लेषण करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं, "मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी–ही–हँसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है और जिए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं!" इस चित्रण ने मालती के चरित्र को विरोधाभासों से भर दिया हैं कहना तो यह चाहिए कि उसके चरित्र के वास्तव को पूरी तरह ढँका दिया। इंग्लैण्ड से डॉक्टरी पास करके वहाँ के संस्कारों को पर्याप्त मात्रा में अपनाए हुए होने के कारण लोगो में उसके तितलीत्व के दर्शन महत्वपूर्ण हो गए और भ्रान्त धारणाओं ने उसे आवृत्त करने की कोशिश की। एक तरफ खन्ना कहता है कि "आपका एक–एक अंग फिलासाफी में डूबा हुआ है" तो दूसरी ओर गोविन्दी मिसेज खन्ना कहती है कि मेरी समझ में वह वेश्याओं से भी गयी–बीती है क्योंकि वह परदे की आड़ में शिकार खेलती है।"मियाँ खुर्शेद और ओंकरनाथ के भी विचार ऐसे हैं। जैसे वह खन्ना, खुर्शेद, ओंकारनाथ, रायसाहब, मिर्जासाहब, मालती और मेहता की बहस में कभी तितलियों का विरोध है तो कभी देवियों की पूजा है,कभी सेवा की बात है तो कभी अंहिसा की। अपनी तकरीर के बारे में मेहता जब मिर्जा की राय जानना चाहते हैं तब मिर्जा कहता है, "तकरीर तो जैसी थी, वैसी थी मगर कामयाब खूब रही। आपने परी को शीशे में उतार दिया।अपनी तकरीर सराहिए कि जिसने आज तक किसी को मुँह नहीं लगाया, वह आपका कलमा पढ़ रही है।"

यहीं से मालती के नारीत्व को मातृत्व के साँचे में ढालने और कार्यक्षेत्र में उतारने के लिए साँचे में ढालना आरम्भ हो जाता है।मालती मेहता को देवता समझने लगती है। हरेक बात में आदमी की सलाह लेने की सोचती है। उसके चरणों में पलकें बिछाने और उसके इशारे पर आग में कूद जाने का दावा करती है। यद्यपि उसे कोई वासना का शिकार नही बना सका फिर भी उसमें मेहता के प्रति वासनामूलक लगाव ,पैदा हो उसके संस्कार के लिए ही जैसे मेहता उसे दूर ले जाकर वन महिला से सम्पर्क कराता है जहाँ वह एकाधिकार वादी परिणीता की तरह नारी सुलभ ईर्ष्या का शिकार भी होती है किन्तु जब मेहता उसके बारे में अपनी राय देता है कि "मैं विश्व–बन्धुत्व पर भाषण और विश्व प्रेम पर लिख सकता हूं, वह उस प्रेम और न्याय का व्यवहार कर सकती है।" और इसीलिए प्रेमचन्द सादृश्य देते हुए कह गए कि "एक वन पुष्प की भांति घूप में खिली हुई दूसरी गमले के फूल की भाँति धूप में मुरझाई और निर्जीव।" आरंभ में मेहता भी उसे ऐसा हो समझता है। दोनों की दृष्टि और सोच का वह प्रतिवाद नहीं कर पाता और कहता है, "क्या आप सारी दुनिया को बेवकूफ समझती है। मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता।" खन्ना को पूरा विश्वास है कि मालती उसे अवश्य ही दिल से चाहती है क्योंकि वह उससे बराबर रुपए उधार लेती है और हम कर जाती है। मातृत्व सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूंगा–जीवन का, व्यक्तित्व का ओर नारीत्व का भी।

वास्तविकता यह है कि स्त्री की विद्वत्ता, निडरता संवादप्रियता और सज–सँवर को समाज ने कभी अच्छी नजर से नहीं देता। उसे उसमें स्त्री की माया ही झलकती नजर आई और उसमें उसने चंचला को ही देखा। समाज में स्त्री में तितलीपन देखने का नेत्ररोग बसा हुआ है। वह उसमें छिपी मधुमक्खी के दर्शन करने में सर्वथा असमर्थ रहा। प्रेमचन्द इसी को शब्द देते हुए जैसे उसके व्यक्तित्व की गरिमा का पोषण करते हैं कि उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने और चमकने को ही जीवन समझती है या उसने निजत्व को अपनी आंखों में इतना बढ़ा लिया हैं कि वह जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का कुछ भार हलका हो।"

उसकी पारिवारिक दायित्व निर्वहन तत्परता को कदाचित ही आलोचकों ने आकलन में महत्व दिया हो। फिर उसका डाक्टरी पेशा जिसमें दीन, मलीन, उतरे हुए खेदसिक्त चेहरों और कराहते स्वरों के बीच यदि जीवन

रहना है तो उसे चहक महक को तो अपना स्वभाव बनाना ही होगा। यह उसके कर्त्तव्य की बांछा है और यह उसमें है जिसे कभी भी गर्हणीय दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। मेहता जब उसके चरित्र की गहराई में उतरता है, तब कहे बिना नहीं रहता "मालती को आपने जाना नहीं और न जानने की परवाह की है। वह आग में पड़कर चमकने वाली सच्ची धातु है। वह उन वीरों में है जो अवसर पड़ने पर अपने जौहर दिखाते हैं, तलवार घुमाते नहीं चलते हैं।"

वस्तुतः प्रेमचन्द की दृढ़ धारणा है कि मैं समझता हूं कि नारी केवल माता है और उसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र मातृत्व की सबसे बड़ी साधना। इस मातृत्व को वह अत्यन्त ही व्यापक अर्थ में लेते हैं। इस मातृर्त्व को प्रसूता–बोध में कदाचित ही वह लेते हैं। वह मातृत्व को उसके सेवा प्रकल्प रूप में ग्रहण करते है। यही कारण है कि वे मालती को मेहता से विवाह के लिए प्रेरित नही कर पाते अपितु मेहता को तो समुत्सुक प्रस्तुत करते है किन्तु मालती को विरत कर देते हैं क्योंकि उसे मातृत्व का वास्तव बोध मिल जाता है–"गाँव के किसानों के सीधे–सादे जीवन का भी कुछ कम प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। इनके बीच मालती में नये बोध का उदय होता है–उनका (गाँव की स्त्रियों का)अपनापन,अपने लड़को में ,अपने संबंधियों में है इस भावना की रक्षा करते हुए इसी भावना का क्षेत्र बढ़ाकर भावी नारीत्व का आदर्श निर्माण करना होगा। जाग्रत देवियों में इसकी जगह आत्मसेवन का जो भाव आ बैठा है, सब कुछ अपने लिए अपने भोग–विलास के लिए। उससे तो यह सुप्तावस्था ही अच्छी। पुरुष निर्दयी है, माना। लेकिन है तो इन्ही माताओं का बेटा! क्यों माता ने पुत्र को ऐसी शिक्षा नहीं दी कि वह माता की स्त्री जाति की पूजा करता, इसलिए कि माता को यह शिक्षा देना नहीं आया। इसीलिए कि उसने अपने को इतना गिराया कि उसका अस्तित्व ही नष्ट हो गया। नहीं, अपने को मिटाने से काम नहीं चलेगा। नारी को समाज के कल्याण के लिए अपने अधिकारों की रक्षा करनी पड़ेगी।"

4.8 इकाई सारांश

गोदान के पात्र एक दूसरे से इतने ग्रंथिल हैं कि उनके बिना उपन्यास पूरी तरह मुखर नहीं होता। यद्यपि आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इसके कथानक को ग्रामीण और शहरी कथानक दो पृथक कथानकों के रूप में देखा और तथैव ग्रामीण और शहरी पात्रों में विभाजित करके देखा जाता है। इस तर्क के आधार पर शहरी पात्रों की स्वतंत्र सत्ता मानी गई है तथापि जिस तरह गोबर शहर में जाकर इस मण्डली से एकाकार होता है और अन्ततोगत्वा मालती के यहाँ सपत्नीक मजदूरी करता है। उससे इन पात्रों के चरित्र फलन में भी प्रभाव पड़ता है मालती का बेलारी में सेवा में जुटना मायने रखता है।

होरी का रायसाहब से जुड़ाव एक प्रकार से रायसाहब मण्डली से जुड़ाव हो सकता है भले ही उसका रायसाहब को छोड़कर अन्य किसी से व्यवहार नहीं हुआ तो भी उसकी समस्या मेहता के विचार,चिन्तन और भाषण का आधार तो बनती ही है।

होरी भारतीय किसान का प्रतिनिधि है,गोबर औद्योगिक संस्कृति के मजदूर का प्रतिनिधि;मेहता प्रेमचन्द के प्रतिनिधि हैं तो मालती पश्चिम में शिक्षित नारी के भारतीय–नारी के सत्व–वरण की प्रतीक है।

होरी का त्रास, धनिया का त्रास है, पत्नी होने के कारण भीतर से संतप्त होते हुए भी पति के मूक–पशुवत् बन जाने के कारण विरोधी उदगार अभिव्यत करने के बाद भी मौन रहकर सब सहंती है। मेहता में चारित्रिक दृढ़ता है और वह अपने संपर्क में आने वालों को प्रभावित कर बदलने की सामर्थ्य रखता है। वह मालती का चरित्र गढ़ता है प्रथम इष्टया केवल रुप–लावण्य, देख–दिखावे के आधार पर नारी के विषय में धारणा बनाने का पक्षधर नहीं।किसी के कर्म ही उसके व्यक्तिव की वाचकता हो सकते हैं।

4.9 अपनी प्रगति जाँचिए

प्र.1 प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास का मूल तत्व और कर्तव्य क्या है?

– उपन्यास का मूल तत्व मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना है, मानव चरित्र के रहस्यों को खोलना उसका मूल तत्व है। चरित्र संबंधी समानता और भिन्नता पकट होना चाहिए ताकि भिन्नता में अभिन्नता और अभिन्नता में एकता के दर्शन कराना उसका कर्तव्य है।

प्र.2 कथा में पात्रों का नामकरण किस आधार पर किया जाता है?

– पात्रों के नाम उनके गुणों के आधार पर।

– उनकी माली हालत के आधार पर

– उनके स्वभाव के आधार पर

– चरित्र के आधार पर

प्र.3 पात्रों के नामकरण की योजना एवं महत्व पर प्रकाश डालिए

– कथाकार पात्रों के नामकरण कथा में उसके सहज निर्वाह एवं चरित्रांकन की सुविधा से करता है जो उसे उत्तरोत्तर स्फूर्त और अग्रसर करते हैं।

– कथाकार के पात्र सवयं में एक आचरण की सभ्यता वहन करते हैं। अतः कथाकार के अनुभव को सरलता से उतार लेते हैं।

– अब असोचे, अप्रत्याशित और विलष्ट कल्पना से प्रसूत पात्र सिरज रहे हैं जो कथाकार को ऊर्जा प्रदान नहीं करते और छूंछे रह जाते हैं।

4.10 नियत कार्य/गतिविधियाँ

आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन कर उनके कृषक और कृषक परिवार के पात्रों के चरित्र–चित्रण कला से परिचय प्राप्त कीजिए।

4.11 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. रामविलास शर्मा–प्रेमचन्द।
2. रामविलास शर्मा–प्रेमचन्द और उनका युग
3. अमृतराय : प्रेमचन्द : कलम का सिपाही
4. अमृतराय–विविध–प्रसंग (तीन खण्ड)
5. अमृतराय : चिट्ठी–पत्री (दो खण्ड)
6. पत्रिकाएँ–

   'उत्तरार्द्ध' का प्रेमचन्द अंक सं. सत्यसात्ती

   'उत्तरगाथा' प्रेमचन्द विशेषांक सं. सव्यसात्ती।

प्रेमचन्द्र के उपन्यास 'गोदान' की भाषा–शैली एवं पाठक

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 प्रेमचन्द्र की भाषा–शैली
5.4 गोदान की भाषा
5.5 गोदान की शैली
5.6 गोदान के पाठक
5.7 इकाई सारांश
5.8 अपनी प्रगति जाँचिए
5.9 नियत कार्य/गतिविधि
5.10 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु
5.11 संदर्भ ग्रन्थ

5.1 उद्देश्य

दिए जा रहे अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप प्रेमचन्द्र की भाषा शैली के विषय में निम्नांकित ज्ञानार्जन कर पाएँगे–

1. प्रेमचन्द्र के उपन्यासों की भाषा का महत्व।
2. प्रेमचन्द्र के उपन्यासों पर शैली का महत्व।
3. प्रेमचन्द्र की भाषा में प्रयुक्त भावात्मक एवं काव्यात्मक भाषा को समझना।
4. 'गोदान' की भाषा का पात्रानुकूल होना।
5. 'गोदान' की भाषा की अभिव्यंजना।

5.2 प्रस्तावना

प्रेमचन्द्र न तो 'आदर्शवादी' हैं और न ही 'यथार्थवादी' बल्कि वास्त में प्रेमचन्द्र आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं और सम्भवतः यही कारण है कि 'गोदान' की रचना में प्रेमचन्द्र ने ग्राम्य व नगरीय संस्कृतियों को आधार बनाकर दोनों ही संस्कृतियों पर कुठादा घात करने का कोई अवसर नहीं छोड़ा है।

'गोदान' में होरी के गौदान की इच्छा का, सेठ साहुकारों के शोषण, अंधविश्वास और जादू टोनों आदि में यथार्थता है।

वहीं स्त्री जाति की स्वतंत्रता का विरोध प्रेमचन्द्र की आदर्शपरकता का स्वरूप है।

'गोदान' उपन्यास में प्रेमचन्द्र ने भारतीय किसान की मनोव्यथ का बहुत ही बारीक और यथार्थ चित्रण किया है। ग्राम्य संस्कृति बर्दास्त करने की है जबकि नगरीय संस्कृति स्वार्थ और भोग की है।

प्रेमचन्द्र ने 'गोदान' उपन्यास की भाषा सरल, सहज व भावामुकूल होने के साथ–साथ व्यात्मक भी है। प्रेमचन्द्र की भाषा में शब्दों का चयन पात्रों के देशकाल वातावरण व उनके परिवेश पर आधारित है। ग्राम्य जीवन के पात्र की भाषा देशज होते हुए भी उर्दू–अंग्रेजी, फारसी के आम प्रचलित शब्दों का प्रयोग हुआ है। वहीं नगरीय क्षेत्र के पात्र जो शिक्षित हैं कि भाषा विलष्टता व दुरूहता से कोसों दूर होते हुए भी यह आभास अवश्य कराती है कि यह शिक्षित वर्ग की भाषा है लेकिन उसमें चयनित किए गए शब्द भी आम व्यक्ति के समझ में आने वाले हैं।

पात्रों की भाषा भी समय के साथ, विभिन्न पात्रों के संवाद के समय बदलती रहती है, जो उनके भावों के अनुकूल है।

मुहावरे/लोकोक्ति का प्रयोग प्रेमचन्द्र की भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रेमचन्द्र के गोदान उपन्यास में सत्य का उद्‌घाटन उनके अनेक सूक्ति वाक्य में देखने को मिलता है।

प्रेमचन्द्र की भाषा वास्तव में आमजन की भाषा है और इसीलिए प्रेमचन्द्र के उपन्यासों के पाठक शिक्षित/अशिक्षित दोनों हैं।

5.3 प्रेमचन्द्र की भाषा–शैली

अपने साहित्य द्वारा प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा–साहित्य को तो उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचाया ही था परन्तु साथ ही उन्होंने इससे भी बड़ा एक काम यह किया था कि हिन्दी को एक सजीव, सरल एवं सशक्त गद्य–शैली भी प्रदान की थी। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि किस प्रकार हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी के झगड़े से दूर रहते हुए, भाषा का बिना सांस्कृतीकरण या फारसीकरण किए स्वाभाविक, शक्तिशाली और विचार पूर्ण गद्य लिखा जा सकता है। अपनी सरल, प्रवाहपूर्ण और सजीव भाषा–शैली के कारण ही उन्हें इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई थी।

जिस समय प्रेमचन्द ने लिखना प्रारंभ किया था उस समय तक हिन्दी गद्य काफी परिमार्जित हो चुका था लेकिन फिर भी उसमें दो कमियां रह गईं थीं। एक ओर तो उसमें संस्कृत के तत्सम् शब्दों की बहुलता थी तो दूसरी ओर अबरी फारसी के क्लिष्ट शब्दों की भरमार और दो प्रकार की इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हो रहा था कि भाषा की स्वाभाविकता और ग्राहिका शक्ति कम होती जा रही थी जिससे भाषा जनता से दूर हट गई थी। दूसरी बात यह थी की उसमें परिष्कार और प्रवाह की–गंगा के समान उन्मुक्त प्रवाह की–आवश्यकता थी जिससे वह जन–मन के तटों को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती रहे। प्रेमचन्द ने इन दोनों बातों का ध्यान रखते हुए अपनी गद्य–शैली द्वारा उपरोक्त दोनों कमियों को दूर किया था।

हिन्दी साहित्य की लम्बी परम्परा में तुलसीदास और भारतेन्दु हरिश्चन्द को जो इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई वह उनकी सरल, सुबोध एवं सरस भाषा–शैली में अभिव्यक्त विचारों के ही कारण। इन दोनों ने जनता की बात जनता की भाषा में कही। इसी से वे प्रभावित करते हैं। भारतेन्दु के उपरान्त भाषा विषयक यह विशेषता केवल प्रेमचन्द में ही आकर मिलती है। प्रेमचन्द के समय में हिन्दी गद्य पर बंगला, मराठी एवं अंग्रेजी भाषा–शैली का प्रभव पड़ रहा था। "भाषा में बंगला का अनुकरण केवल शब्दों और मुहावरों में ही नहीं, नामों और विचारों तक में किया जा रहा था। प्रेमचन्द ने पहले पहल इन काल्पनिक घरौंदों को ठोकर मार कर तोड़ दिया। उन्होंने हिन्दी को हर प्रकार से हिन्दी किया।... उन्होंने उर्दू हिन्दी के भेद को कम कर दिया और भाषा में नई प्राणशक्ति फूंक दी।"

प्रेमचंद हिन्दी और उर्दू दोनों के ही सम्मिलित लेखक थे। वे यह मानते थे कि हिन्दी और उर्दू दो भाषाएँ न होकर एक ही हैं। इसी भावना के कारण उनकी भाषा में दोनों ही प्रकार की शैलियों का बड़ा सुन्दर एवं सशक्त सम्मिश्रण हुआ है। यह सम्मिश्रण अनायास ही नहीं हुआा था बल्कि इसकी पृष्ठभूमि में उनकी भाषा–विषयक धारणा प्रमुख कार्य कर रही थी। इसलिए पहले प्रेमचंद के भाषा–विषयक विचारों को जान लेना आवश्यक है।

प्रेमचंद साहित्य के निर्माण में भाषा को बहुत महत्व देते थे। उन्होंने साहित्य की व्याख्या करते हुए लिखा है कि– "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।" ऐसी भाषा काउनका आदर्श उस भाषा से या जिसे उर्दू और हिन्दी वाले दोनों ही समझ सकें क्योंकि इस पारस्परिक आदान–प्रदान से एक मिली–जुली साहित्यिक शैली का विकास हो सकता है। और इस मिली–जुली भाषा को उन्होंने 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया था। इस भाषा का स्वरूप उन्हीं के शब्दों में ऐसा था– "वह ऐसी भाषा हो, जो उर्दू और हिन्दी दोनों ही के संगम की सूरत में हो, जो सुबोध हो और आम बोल–चाल की हो।"

वे यह मानते थे कि उर्दू और हिन्दी में भेद तभी होता है जब भाषा में संस्कृत का फारसी के शब्दों की बहुलता होने लगती है। इस बहुलता को दूर कर देने पर दोनों भाषाओं में कोई अन्तर नहीं रह जाता। उस समय कुछ लोग इस बात पर जोर दे रहे थे कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें संस्कृत शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग हो जिससे अन्य प्रान्त वाले उसे आसानी से समझ सकें। इसका उत्तर देते हुए प्रेमचन्द ने लिखा था कि– "ऐसा करने से दूसरे सूत्रों के लोग चाहे आपकी भाषा समझ लें, लेकिन खुद हिन्दी बोलने वाले न समझ सकेंगे।" डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में– "वह हिन्दी–उर्दू को उच्च वर्गों के हाथ से छीनकर जन–साधारण के काम–काज में डालकर उसे एक कर देना चाहते ाि जो वह वास्तव में पहले से ही थी, सिर्फ साहित्य में उसकी यह एकता पनप न पाई थी।" हिन्दू–उर्दू की एकता का उनका सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि– "बोलचाल की हिन्दी समझने में न तो साधारण मुसलमानों को ही कोई कठिनता होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने में साधारण हिंदुओं को ही। बोलचाल की हिन्दी और उर्दू प्रायः एक सी ही हैं।"

हिन्दी–उर्दू के इस समन्वय द्वारा वे भारतीय जनता में अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न करना चाहते थे जिससे कि वे इस भाषा द्वारा उसमें राष्ट्रीयता के भावों को भर सकें। भाषा अपने विचारों के प्रचार का सबसे बड़ा साधन होती है। आप जनता की बात जनता की ही भाषा में कह कर उसे समझा सकते हैं। जनता उच्च वर्ग की भाषा को समझने में असमर्थ रहती है। उस समय हिन्दी उर्दू के क्षेत्र में तीन प्रकार के व्यक्ति थे जो उच्चवर्गी होने के कारण अपने वर्ग–स्वार्थों के संरक्षण में लिप्त थे। दो वर्ग तो उन लोगों के थे जो भाषा को संस्कृत मय और फारसीमय बनाकर भेद की खाई को चौड़ा बना रहे थे। इन्हें जनता या उसकी समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं था। तीसरा वर्ग वह था जो अंग्रेजी के मोह में पड़कर पूर्णरूपेण विदेशी बन चुका था। वह अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी पोशाक, अंग्रेजी संस्कृति एवं अंग्रेजी साहित्य का अनन्य उपासक था और फिर भी भारत की आजादी की मांग उठाता था। इस वर्ग पर व्यंग्य कसते हुए प्रेमचंद ने लिखा था कि– "अंग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का, हमारे

ऊपर जैसा आतंक है, उससे कहीं ज्यादा अंग्रेजी भाषा का है। अंग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से तो आप बगावत करते हैं, लेकिन अंग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक की तरह गर्दन में डाले हुए हैं।'' प्रेमचंद इस गुलामी के तौक को हटाकर जनभाषा हिन्दी के हार को उनके गले में पहनाना चाहते थे। क्योंकि ये अंग्रेजी–भक्त जनता से दूर रहते थे। इस तरह भाषा के जनवादी रूप का समर्थन करने में प्रेमचंद का उद्देश्य सामाजिक होने के साथ–साथ राजनीतिक भी था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि इस जनभाषा में ही साहित्य की रचना कर जनता को जाग्रत कर सकेंगे।

अपने इस प्रयत्न के लिए प्रेमचन्द को हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषा के लेखकों की तरफ से लांछना सहनी पड़ी थी। आलोचक प्रेमचंद के असली उद्देश्य को समझने में असमर्थ रहे थे इस कारण उन्होंने लांछन लगाया था कि– ''प्रेमचंद जी दो रूखी चालें चलते हैं, दोनों तरफ मिले रहना चाहते हैं और दोनों तरफ से अच्छे बने रहना चाहते हैं।'' मगर इसके लिए हमें कोई अफसोस नहीं क्योंकि महापुरुषों की बातों को उनके समय में कम ही समझा जाता है। यही प्रेमचंद के साथ हुआ था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज हिन्दी के जागरुक विद्वान हिन्दी–उर्दू की एकता की जरूरत महसूस कर रहे हैं। उनका नारा है कि इन दोनों भाषाओं के साहित्य के अलगाव को दूर कर उन्हें एक कर देना चाहिए।

उपरोक्त विवेचन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद ने हिन्दी–उर्दू के सम्मिश्रण का प्रयत्न अकारथ ही नहीं किया था। इस प्रयत्न में उनका एक जबर्दस्त उद्देश्य था और उसकी पूर्णता के लिए वे आजीवन प्रयत्न करते रहे। आज एक स्वर से यह मांग उठाई जा रही है कि हमारी राष्ट्रभाषा का रूप 'प्रेमचंदी हिन्दी' होना चाहिए क्योंकि वही एकमात्र ऐसी भाषा है जिसे जनता समझती और बोलती है। राष्ट्रीय जागरण के लिए आज इसी भाषा की जरूरत है। प्रेमचंद के उपरोक्त भाषा विषयक दृष्टिकोण के विरोध में कुछ लोगों ने यह तर्क उठाया कि बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अंतर होता है। प्रेमचंद ने इसका जवाब देते हुए कहा था कि– ''यह जरूर सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अंतर अवश्य रहता है। लेकिन लिखित भाषा सदैव बोलचाल की भाषा से मिलते–जुलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की खूबी यही है िकवह बोलचाल की भाषा से मिले। इस आदर्श से वह जितनी दूर हो जाती है उतनी ही अस्वाभाविक हो जाती है।''

अब हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि प्रेमचंद ने अपने इस भाषा विषयक प्रयत्न को किस प्रकार विकसित किया था।

प्रेमचंद ने लिखना पहले उर्दू में प्रारंभ किया था। हिन्दी में वह बाद में आए थे। इसलिए उनकी हिन्दी की प्रारंभिक रचनाओं पर उर्दू शैली, उर्दू मुहावरे, उर्दू वाक्य–विन्यास का प्रभाव पड़ा। साथ ही जैसा कि नौसिखिये लेखक के साथ होता है िकवह प्रारंभ में शब्दाडम्बर के मोह में उलझा रहता है, यह बात प्रेमचंद के भी साथ थी। इस कारण उनकी पहली रचनाओं में भारी–भरकम शब्द, असम्बद्ध वाक्य–विन्यास आदि दोष मिलते हैं। उनकी रचनाओं पर उर्दू मुहावरों का प्रभाव देखिए–

''फाल्गुन का महीना था। अबीर और गुलाल से जमीन लाल हो रही थी। कामदेव का प्रभाव लोगों को भड़का रहा था। रबी ने खेती में सुनहला फर्श बिछा रक्खा था और खलिहानों ने सुनहले महल उठा लिए थे। संतोष इस सुनहले फर्श पर इठलाता फिरता था और निश्चिन्तता इस सुनहले फर्श पर तानें अलाप रही थी।'' इसमें सुनहले शब्द का बारबार प्रयोग उर्दू का प्रभाव है। हिन्दी में सुनहले शब्द का इस प्रकार प्रयोग नहीं किया जाता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद उर्दू की भाव–व्यंजना को हिन्दी में लाने की कोशिश कर रहे थे। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने उर्दू भाषा के ज्ञान को प्रदर्शित करने का भी मोह रहता था। ''अमावस्या की रात्रि'' कहानी में एक हकीम के विज्ञापन को देखिए–

"नाजरीन आप जानते हैं मैं कौन हूं? आपका जर्द चेहरा, तने–लागर, आपका जरा सी मेहनत में बेदम हो जाना, आपका लजाते दुनियां में महरूम रहना, आपकी खाना–तरीकी–यह सब इस सवाल की नफी में जबाव देते हैं।"

इसी प्रकार कहीं–कहीं संस्कृत शब्दों का भी मोह दिखाई पड़ता है, जैसे– "जैसे चाँदनी के प्रकाश में तारागण की ज्योति मलीन पड़ गई थी, उसी प्रकार उसके हृदय में चन्द्ररूपी सुविचारों ने विकार रूपी तारागण को ज्योतिहीन कर दिया था।"

परन्तु जैसे–जैसे प्रेमचंद का जीवन–अनुभव बढ़ता गया, उनकी संवेदना अधिक गहरी होती गई, वैसे–वैसे उनका यह मोह छूटता गया और भाषा एवं शैली में निखार आता गया। प्रारंभ में उनकी भाषा में क्लिष्टता और शैली में बोझीलापन होने का एक कारण यह भी था कि वे उस समय अपने पूर्ववर्ती लेखकों की भाषा एवं शैली का अनुकरण करने के मोह में पड़े हुए थे। वाक्य–विन्यास की चतुरता और कला–कौशल दिखाने का मोह अधिक था। और इस मोह का कारण आत्म–विश्वास की कमी का होना था। प्रेमचन्द स्वयं इसे स्वीकार कर इसे अपनी कमजोरी मानते थे। लेकिन बहुत शीघ्र वे सम्हल गए और 'सेवासदन' तक आते–आते उनकी भाषा एवं शैली में पर्याप्त निखार आ गया। उर्दू एवं संस्कृत का प्रयोग केवल आवश्यकतानुसार ही होने लगा। मुहावरों एवं कहावतों के प्रयोग में अधिकतर परिष्कार आ गया। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इस समय तक प्रेमचंद ने अपनी एक पृथक सशक्त भाषा एवं शैली का निर्माण कर लिया था जिसे वे अंत तक और भी निखारते चले गए।

'सेवासदन' में जब सुमन होली की रात को मुजरे से लौटकर यह देखती हैं कि उसका पति गजाधर प्रतीक्षा करते–करते सो गया है, उस समय का चित्रण देखिए–

"सुमन जब अपने द्वार पर पहुँची तो उसके कान में एक बनजे की आवाज आई। वह आवाज उसकी नस–नस में गूंज उठी। वह अभी तक दस–ग्यारह के धोखे में थी। प्राण सूख गए। उसने किवाड़ की दरारों से झांका, डेबरी चल रही थी, उसके धुंए से कोठरी भरी हुई थी और गजाधर हाथ में डंडा लिए चित्त पड़ा जोर से खर्राटे ले रहा था। सुमन का हृदय कांप उठा, किवाड़ खटखटाने का साहस नहीं हुआ।" इस सीधी–सादी भाषा द्वारा प्रेमचंद ने सच्चा मनौवैज्ञानिक चित्र खींच दिया है।

भाषा का परिष्कृत, प्रौढ़, संस्कृत पदावली से शुभ्र और उर्दू से चंचल उच्च भावों को पूर्णतः व्यक्त करने में समर्थ रूप 'शतरंज के खिलाड़ी' नामक कहानी में देखिए–

"दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी जमाना था, सभी तलवार, पेशकब्ज, कटार बगैरा बांधते थे। दोनों विलासी थे; पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का पतन हो गया था– बादशाह के लिए, बादशाहत के लिए क्यों मरें; पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैंतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाजें आईं। दोनों जख्म खाकर गिरे और दोनों ने वहीं तड़प–तड़प कर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आंखों से एक बूंद आंसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरंज के वजीर की रक्षा में प्राण दे दिए।

अंधेरा हो चला था। बाजी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने–अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानो इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।"

उपरोक्त वर्णन आंखों के सम्मुख एक सजीव चित्र उपस्थित कर देता है। छोटे–छोटे वाक्य, चुभते हुए सरल शब्द, गहरी भाव–व्यंजना इस शैली के प्राण–तत्व हैं। ऐसी भाषा प्रेमचंद ही लिख सकते थे। भाषा पर ऐसा अबाधा अधिकार हिन्दी में अन्य किसी की भी रचना में नहीं मिलता।

'कर्मभमि' तक आते-आते प्रेमचंद की भाषा एवं शैली में कितनी संक्षिप्तता, कितना ओज, कितना सौंदर्य एवं कितना प्रवाह आ गया है यह नीचे के उद्धरण से स्पष्ट हो जाएगा-

"सकीना घबरा गई। जहां उसने एक चुटकी आटे का सवाल किया था वहां दाता ने ज्यौनार का एक भरा थाल लेकर उसके समाने रख दिया। उसके छोटे से थाल में इतनी जगह कहां है? उसकी समझ में नहीं आता कि इस विभूति को कैसे समेटे। अंचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी।" (कर्मभूमि)

प्रेमचंद इस प्रकार की भाषा गढ़ने में जान-बूझकर प्रयत्न नहीं करते। यह तो अनायास ही उनकी लेखनी से निकलती चली जाती है। छोटे-छोटे वाक्यों में भावों, विचरों एवं परिस्थितियों का सजीव चित्रण होता रहता है। इसीलिए यह इतनी स्वाभाविक होती है। अत्यन्त सरल, प्रवाहपूर्ण, भावों को व्यक्त करने वाली भाषा का एक और उदाहरण देखिए-

"गाड़ी चल दी, उस वक्त रमा को अपनी दशा पर रोना आ गया। हाय, न जाने उसे कभी लौटना नसीब भी होगा या नहीं। फिर यह सुख के दिन कहां मिलेंगे? यह दिन तो गए, महेशा के लिए गए! इसी तरह सारी दुनियां में मुंह छिपाए, वह एक दिन मर जाएगी। कोई उसकी लाश पर आंसू बहाने वाला भी न होगा। घर वाले भी रो-ध ोकर चुप हो रहेंगे।" (गबन)

प्रेमचंद की भाषा की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वह वस्तु, पात्र और देशकाल के साथ रूप बदलती हुई चलती है। 'कर्मभूमि' में डॉक्टर शांतिकुमार जब उर्दू भाषी पात्रों के साथ बातचीत करते हैं तब उनकी भाषा में उर्दूपन आ जाता है। सलीम से उनके वार्तालाप का एक उदाहरण देखिए-

"क्यों, हरज क्या है? मेरे ख्यालात तुम्हें मालूम हैं। यह किराये की तालीम हमारे कैरेक्टर को तबाह किए डालती है। हमने तालीम को भी एक व्यापार बना लिया है। व्यापार में ज्यादा पूंजी लगाओ, ज्यादा नफा होगा तालीम में भी ज्यादा खर्च करो, ज्यादा ओहदा पाओगे।" (कर्मभूमि)

यही शांतिकुमार जब सुखदा से बात करते हैं तब उनकी भाषा अधिक कोमल एवं संस्कृतमय हो उठती है। देखिए - "पुरुष में थोड़ी सी पशुता होती है। वही पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है। जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुँचेगा, वह भी स्त्री हो जाएगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आध ारों पर यह सृष्टि थमी हुई है। और यह स्त्रियों के गुण हैं।" (कर्मभूमि)

इनके पात्र जिस वर्ग और भाषा के बोलने वाले होते हैं, उनकी भाषा भी वैसी ही हो जाती है। हिन्दू और मुसलमान पात्रों की भाषा भिन्न होती है। बंगाली पात्र बंगला हिन्दी बोलते हैं। अफसरों की भाषा बिल्कुल दूसरी होती है। अपढ़ एवं ग्रामीण पात्रों की भाषा अपनी अलग छटा दिखाती रहती है। बंगाली पात्र गांगुली बाबू की भाषा देखिए- "हम समझा था, अब आप निर्द्वन्द्व हो गया होगा। पर देखता है, तो वह बेड़ी ज्यों का त्यों आपका पैरों में पड़ा हुआ है।" (रंगभूमि)। एक देहाती की भाषा देखिए- "अरे सरकार, जो ई होत तो का पूछे का रहा। मेहरिया अस गुनन की पूरी मिली है कि बात पीछू करत है, झाड़ पहले चलावत है।" (प्रतिज्ञा)

मुसलमान पात्रों की भाषा में कहीं-कहीं ऐसे क्लिष्ट फारसी के शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिसे हिन्दी जानने वाले नहीं समझते। यद्यपि यह सत्य है कि पढ़े-लिखे मुसलमान दैनिक वार्तालाप में ऐसी ही भाषा का प्रयोग करते हैं लेकिन उपन्यास में ऐसी भाषा का प्रयोग दुरूह हो उठता है। एक उदाहरण देखिए- "जब से हुजूर तशरीफ ले गए मैंने भी नौकरी को सलाम किया। जिन्दगी शिकम-पर्वरी में गुजरी जाती थी। इरादा हुआ कुछ दिन कौम की खिदमत करूं। इसी इसी गरज में 'अंजुमन इत्तहाद' खोल रखी है।... आप दोनों साहब अगर अंजुमन को अपने कदमों से मुमताज फरमाएं तो मेरी खुशनसीबी है।" (प्रेमाश्रम)

प्रेमचंद की भाषा में एक विशेषता यह भी है कि कथावस्तु के विषय के अनुसार ही वह गंभीर और चंचल हो उठती हैं। इसका विवेचन करते हुए पं. जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' ने लिखा है कि– "'रंगभूमि' और 'कायाकल्प' की भाषा में जो गंभीरता है, 'गवन' और 'कर्मभूमि' में उसका स्थान चंचलता ने ले लिया है। 'रंगभूमि' के भाषा–गांभीर्य का संरक्षक है सूरदास का आध्यात्मिक संग्राम, 'कर्मभूमि' की भाषा का अनुशासन करने वाला है अमर का उग्र आदर्शवाद। 'कायाकल्प' की भाषा 'रानी देवप्रिया' के जन्म–जन्मान्तर से सम्बन्ध राखने वाले रहस्यों की व्याख्या करती चलती है, 'गवन' की भाषा का काम है जीवन के साधारण स्थिति–चित्रों का चित्रण करना। 'सेवासदन', 'निर्मला' और 'प्रतिज्ञा' की भाषा जिस गंभीर वेदना को व्यक्त करने वाली है, उसका अनुभव प्रेमाश्रम की भाषा नहीं करा सकती। 'गोदान' की भाषा–शैली में भी अनेकरूपता का सुन्दर समावेश है। जिस कथा–वस्तु के भीतर जितनी ही गंभीरता और कोमलता रहती है, उसकी व्यंजना ये उतनी ही गंभीर और कोमल भाषा में करते हैं। जहां उग्र भावों की व्यंजना करनी पड़ती है वहां इनकी भाषा आप से आप ओजमयी हो उठती है। ओज, माधुर्य और प्रसाद ये तीनों ही गुण इनकी भाषा में सर्वत्र पाये जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन प्रेमचंद के भाषा सौंदर्य का पूर्णरूप स्पष्ट कर देता है। इस भाषा–सौंदग्र का सबसे बड़ा रहस्य है लेखक की तीव्र अनुभूति। वह जो कुछ लिखता है वह उसके जीवन–अनुभव का व्यक्तीकरण होता है। जीवन अनुभव के अभाव में भाषा कृत्रिम हो उठती है। ऐसे लेखक को यह पता ही नहीं होता कि अमुक परिस्थिति में हृदय में या मस्तिष्क में किस प्रकार के भाव या विचार उठते हैं। इसलिए उसका चित्रण अस्वाभाविक और कृत्रिम हो जाता है। प्रेमचंद का जीवन अनुभव जैसे–जैसे विस्तृत होता गया उनकी भाषा–शैली में भी निखार आता गया। कुछ आलोचकों ने प्रेमचंद को 'घृणा का प्रचारक' कहा था। यदि प्रेमचंद यथार्थ में ऐसे होते तो उनकी भाषा सर्वत्र कटु, उग्र एवं कठोर होती। उसमें कोमल भावों का प्रकाशन असम्भव था। लेकिन प्रेमचंद का कलाकार जहां भावुक हो उठता है, प्रकृति के रूप को देखकर आनंद में विभोर हो उठता हे, वहां उनकी भाषा का कोमल सौंदय दर्शनीय होता है। शैली कवित्वपूर्ण हो उठती है। एक उदाहरण देखिए– "श्यामल क्षितिज के गर्भ से निकलने वाली बाल ज्योति की भांति अमरकान्त को अपने अंतःकरण की सारी क्षुद्रता, सारी कलुषता के भीतर एक प्रकाश सा निकलता हुआ जान पड़ा, जिसने उसके जीवन को रजत–शोभा प्रदान कर दी। दीपकों के प्रकाश में, संगीत के स्वरों में, गगन की तारिकाओं में, उसी शिशु की छवि थी, उसी का माधुर्य था, उसी का नृत्य थ।" (कर्मभूमि)

इस भाषा में काव्य–सौंदर्य है, अलंकारों की छटा है, सादगी है और सरलता है। क्या 'घृणा का प्रचारक' ऐसी सुंदर भाषा लिख सकता था।

इनकी उपमाएं बड़ी आकर्षक और नवीन होती है। उनमें परम्परा का मोह नहीं होता। 'वह बड़ी–बड़ी पलकों से आंखें छिपाए हुए, इस तरह निकल गई, जैसे स्वप्न–चित्र एक झलक दिखाकर मिट गया हो।" तथा– "प्रभात के रक्त रंजित मर्मस्थल में सूर्य यों मुंह छिपाए बैठे थे जैसे शोक–मंडित नेत्र में अश्रु बिन्दु।"

इसके अतिरिक्त प्रेमचंद के सम्पूर्ण साहित्य में सुंदर मुहावरे, लोकोक्तियां और अमर उक्तियों की अदभुत छटा बिखरी हुई मिलती है। उनमें काव्यगत सौंदर्य भी रहता है और जीवन के गम्भीर अनुमान भी भरे रहते हैं। कुछ उक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।"

"विचारोत्कर्ष ही सौंदर्य का वास्तविक श्रृंगार है।"

"कायरता भी वीरता की भांति संक्रामक होती है।"

"सच्चा प्रेम,संयोग में भी वियोग की मधुर वेदना का अनुभव करता है।"

"निराशा में प्रतिज्ञा अंधे की लाठी है।"

"पराश्रय से बड़ी विपत्ति दुर्भाग्य के कोष में नहीं है।"

"जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बराबर बनती रहती है?"

"सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता।"

"बुढ़ापे में पत्नी का मरना, बरसात मे घर का गिरना है।"

"मन एक भीरू शत्रु है, जो सदा ही पीठ के पीछे से वार करता है।"

प्रेमचंद को इतनी सुंदर, सरल, स्वाभाविक भाषा लिखने में इतनी सफलता इसलिए मिली थी कि उनका आदर्श व्यापक था। इस सम्बन्ध में प्रेमचंद के स्वयं के कथन से इसकी पुष्टि हो जाती है। उन्होंने लिखा है कि– "आदर्श व्यापक होने से भाषा अपने आप सरल हो जाती है। भाव–सौंदर्य बनाव–श्रृंगार से बेपरवाही दिखा सकता है। जो साहित्यकार अमीरों का मुंह जोहने वाला है, वह रईसी रचना–शैली स्वीकार करता है, जो जन–साधारण का है, वह जन–साधारण की भाषा में लिखता है।" (साहित्य का स्वरूप–प्रेमचंद)

बोध प्रश्न–

1. प्रेमचन्द की भाषा की कोई पाँच विशेषताएँ बताइए।
2. प्रेमचन्द की शैली की कोई पाँच विशेषताएँ लिखिए।

5.4 'गोदान' की भाषा

प्रेमचन्द्र के किसी भी उपन्यास की भाषा–शैली पर विचार करने के पूर्व अनायास ही उनके उपन्यासों के कथानक हमारा ध्यान अपनी ओर खींचते हैं फिर यदि 'गोदान' की भाषा–शैली का विश्लेषण करना हो तो स्वतः ही कथानक की चर्चा स्वाभाविक हो जाती है। 'गोदान' की भाषा में सादगी के साथ संजीदगी है और उसमें अपूर्व प्रवाहम्यता भी दिखलाई देती है। इसीलिए उनकी भाषा एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करने में सफल होती है। एक उदाहरण देखिए–

"धनिया सन्नाटे में आ गई। एक ही क्षण में उसके जीवन का मृदु स्वप्न जैसे टूट गया। अब तक वह मन में प्रसन्न थी कि उसका दुःख दरिद्र सब दूर हो गया। जब से गोबर घर में आया उसके मुख पर हास की एक छटा खिली रहती थी। उसकी वाणी में मृदुता और व्यवहारों में उदारता आ गई। भगवान् ने उस पर दया की है तो उसे सिर झुकाकर चलना चाहिए। भीतर की शांति बाहर सौजन्य बन गई है। ये शब्द तपते हुए बालू की तरह ह्रदय पर पड़े और चने की भाँति सारे अरमान झुलस गए। उसका सारा घमण्ड चूर–चूर हो गया। इतना झूम लेने के बाद जीवन में क्या रह गया। जिस नौका पर बैठकर इस जीवन को पार करना चाहती थी वही टूट गई। तो किस सुख के लिए जिए।"

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि उनकी भाषा भी जन–साधारण की भाषा थी। प्रतिदिन बोल–चाल में प्रयोग होने वाली चलती भाषा को ही लेखन में अपने उपन्यास में अपनाया है। प्रेमचन्द्र आम व्यक्ति को संदेश देना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने उस भाषा को अपनाया है, जो उस आम आदमी की अपनी भाषा हो। कुछ प्रमुख आलोचकों का मत है कि बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अंतर होना आवश्यक है। प्रेमचन्द्र उनके इस तर्क को भी इन शब्दों में खण्डन करते हैं, "यह जरूर सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अंतर होता अवश्य है लेकिन लिखित भाषा सदैव बोल–चाल की भाषा से मिलते–जुलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की खूबी यही है कि वह बोलचाल की भाषा से मिले। इस आदर्श से वह जितनी दूर हो जाती है उतनी ही वह अस्वाभाविक हो जाती है।"

प्रेमचन्द्र ने इसी आदर्श को अपनी रचनाओं में रखा। उनकी भाषा में बोलचाल की भाषा से मिलने का प्रयत्न स्पष्ट दिखलाई देता है। वरन् यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कहीं–कहीं तो उनकी भाषा बिलकुल बोलचाल की ही भाषा का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। प्रेमचन्द्र भाषा के गढ़ने के पक्षधर नहीं थे। वह तो आम जन–जीवन में प्रचलित भाषा को अपनाते हुए उसे एक सच्चा और जन–प्रिय रूप देने में लगे थे।

'गोदान' की सम्पूर्ण कथा ग्रामीण परिवेश के चित्र को अंकित करती है। इसका कथानक किसानों की दयनीय दशा को प्रदर्शित करता है अतः हमें भाषा का विश्लेषण करते हुए यह देखना आवश्यक होगा कि 'गोदान' की भाषा आम बोल–चाल की भाषा है या नहीं। यह आम भाषा ग्रामीण परिवेश में प्रतिदिन बोली जाने वाली भाषा सरलता और स्वाभाविकता के कितने करीब है और इसकी पुष्टि 'गोदान' के पात्रों के कथोप कथन से स्पष्ट हो जाती है। प्रारम्भ में ही भाषा ने जिस सरलता के साथ होरी और धनिया के संवाद का चित्रण हुआ है वह सम्पूर्ण उपन्यास की एक प्रस्तुति यहां प्रस्तुत कर देती है। होरी और धनिया का संवाद यहां प्रस्तुत है–

"होरी ने अपने झुर्रियों से भरे माथे को सिकोड़ कर कहा तुझे रस–पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान–पूज़ा करने लगेंगे, तो घण्टों बैठे बीत जाएगा।

इसी से तो कहती हूं कि कुछ जलपान कर लो और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा।"

उपर्युक्त उदाहरण में भाषा ग्रामीण परिवेश के किसान की भाषा है। इसमें कोई शब्द पांडित्य का प्रदर्शन नहीं है। आम किसान के परिवार का सजीव चित्रण इस कथानक में हमें देखने को मिलता है। प्रेमचन्द्र ने अनेक शब्दों को ग्रामीण रूप देने का प्रयास किया है, जैसे–अबेर, असनान, हरज आदि। इन शब्दों के सहज प्रयोग ने भाषा को स्वाभाविक बना दिया है। प्रेमचन्द्र के उपन्यासों की यही विशेषता है कि उनके उपन्यासों मे भाषा का वही प्रयोग देखने को मिलता है जो शब्द कुछ अर्थों को प्रकट करने के लिए विशेष रूप से प्रयोग किए जाते हैं। उनके द्वारा किए गए यह प्रयोग ही ग्रामीण परिवेश के संभाषण में स्पष्ट रूप से दिखलाई देते हैं। भोला और होरी के यह संभाषण में सत्य के दर्शन होते हैं–

"होरी ने आगे वाली गाय के पुट्ट पर हाथ रखकर कहा– दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली?

भोला ने शालजमाई अब के बजार बड़ा तेज था महतो, इसके अस्सी रूप्ये देने पड़े। आखें निकल गईं। तीस तीस रुपये तो दोनों कलोरों के दिए। जिस पर ग्राहक रुपये का आठ सेर दूध मांगता है।

बड़ा कलेजा है भाई तुम्हारा लेकिन फिर लाएगी तो वह माल कि यहां दस पांच गाँव में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।

भोला पर नशा चढ़ने लगा– बोला राय साहब इसके सौ रुपये देते थे। दोनों कलोरों के पचास–पचास रुपये, लेकिन हमने न दिए। भगवान ने चाहा तो सौ रुपये इसी व्यान में पीट लूँगा।

ठसमें क्या संदेह है भाई। मालिक क्या खा के लेंगे।... यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चहता है कि इसके दरसन करता रहूं। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गउओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मयस्यर हीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, कितनी लज्जा की बात है।... तुम्हारे सुझाव से बड़ी परसन रहती है।"

इस उदाहरण में प्रेमचन्द्र ने अपनी भाषा को जो सरलता और स्वाभविकता प्रदान की है वह अद्वितीय है। प्रेमचन्द्र की भाषा की यही विशेषता है कि वह अपने उपन्यासों में प्रचलित शब्दों को अवश्य रखते हैं। फिर वह शब्द शुद्ध देशज के हों अथवा उर्दू–फारसी या अंग्रेजी के। उपर्युक्त उदाहरण में सुधार, कलोदे, परसन आदि गांव के

प्रचलित शब्दों के द्वारा तो लेखक ने भाषा को स्वाभाविकता प्रदान की है। 'ब्यान' शब्द विशुद्ध ग्रामीण शब्द है लेकिन शिक्षित वर्ग के लिए भी यह शब्द अपारंगित नहीं है। 'गृहस्थ' के स्थान पर 'गिरस्त' शब्द का व्यवहारिक प्रयोग लेखक द्वारा ग्रामीण भाषा की स्वाभाविकता को प्रकट करता है। प्रेमचन्द्र जहां देशज शब्दों का प्रयोग करते हैं वही उर्दू के 'भयस्सर' को ज्यों–का–त्यों रख देते हैं। संस्कृत के क्लिष्ट शब्द सुझाव और परसन भी प्रेमचन्द्र ने अपनी भाषा में स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है। गुर्दा और अंजुली शब्द भी भाषा में भावों को प्रकट करने की शक्ति प्रदान करते हैं। ग्रामीण परिवेश में आम किसान जिस प्रकार संस्कृत के शब्दों को बिगाड़ कर प्रयोग करते हैं वह भी प्रेमचन्द्र की भाषा की विशेषता है।

यह स्वाभाविकता और सरलता केवल किसान और ग्रामीण लोगों के कथोप कथनों में ही नहीं है। शिक्षित और उच्च वर्ग के मनुष्यों के कथोपकथनों में भी प्रेमचन्द्र की भाषा इसी प्रकार की है। इन शिक्षित माने जाने वाले पात्रों के संवादों में अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत के शब्द अवश्य डाले गए हैं। परन्तु यह वही शब्द है जो सरल व प्रचलित हैं। राय साहब और खन्ना की बातचीत जिस सरल और स्वाभाविकता में है वह इस बात का प्रमाण है कि लेखक भाषा में सरलता लाने की ओर जागरुक है।

खन्ना जी बोले–"आप संन्यासी बन सकते हैं, मैं तो नहीं बन सकता। मैं तो समझता हूं कि जो भोगी नहीं है, वह संग्राम में भी पूरे उत्साह से नहीं जा सकता। जो रमणी से प्रेम नहीं कर सकता। उसके देश–प्रेम में मुझे विश्वास नहीं। राय साहब मुस्कराए आप मुझी पर आवाजें कसने लगे।

आवाज नहीं तत्व की बात है।

शायद हो।"

संवाद में कहीं भी अस्वाभाविकता व क्लिष्टता नहीं है। यह आम बोलचाल की प्रतिदिन प्रयोग होने वाली भाषा है। यदि रमणी, संग्राम, तत्व आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है तो कुछ फारसी जैसे–कसरत, इलाकेदार जैसे शब्दों का भी प्रयोग खुलकर किया गया है। वहीं अंग्रेजी के शब्द पालसी, कम्पनी, बैंक जैसे प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। यह वे शब्द हैं जो शिक्षित और अशिक्षित दोनों समान रूप से समझते हैं।

'गोदान' में हमें दो संस्कृतियां स्पष्ट रूप से दिखलाई देती हैं–

1. ग्राम्य संस्कृति,
2. नगरीय संस्कृति

ग्राम्य संस्कृति के प्रेमचन्द्र भोगता है और उन्होंने ग्राम्य संस्कृति को स्वयं जिया है। होरी वास्तव में उनकी जिंदगी का प्रतिरूप या पर्याय माना जा सकता है। ग्राम्य जीवन के पात्र मुख्य रूप से होरी, धनिया, झुनुआ, मातादीन, गोबर आदि हैं। इन पात्रों के माध्यम से हम 'गोदान' को ग्राम्य परिवेश का अनुभूतिपरक दस्तावेज मान सकते हैं।

नगरीय संस्कृति के पात्रों के रूप में उपन्यास के जिन पात्रों को रखा जा सकता है उसमें मालती, मेहता, राय साहब, तनखा, खन्ना साहब, मिर्जा साहब आदि हैं। नगरीय संस्कृति के रूप में लखनऊ का चित्रण है। नगरीय संस्कृति के माध्यम से लेखक विघटित मूल्यों का रेखांकन करना चाहते हैं। नगरीय संस्कृति स्वार्थ और अविश्वास पर कायम है। निजी हित सर्वोपरि हैं। सद्भावों का मानो तिरोहण हो गया है और मानवीय मूल्यों की दुर्गति हो रही है। इसीलिए राय साहब अपनी सह–पाठनी से शादी कर लेते हैं और उनकी लड़की अपने पति के चरित्रहीन होने पर उसे छोड़ देती है। नगरीय संस्कृति चारित्रिक ह्रास और नैतिक अवमूल्यन की कथा को रेखांकित करती है यही वजह है कि खन्ना साहब सदैव मालती की ओर आकर्षित रहते हैं।

'गोदान' उपन्यास में ग्राम्य एवं नगरीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों की भाषा में उसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचन्द्र की भाषा में पात्रानुकूलता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। यदि शिक्षित और सभ्य नगरीय संस्कृति का व्यक्ति बात करता है तो उसकी भाषा में उसी प्रकार के शब्दों का व्यवहार होता है जो शिक्षित व्यक्ति अक्सर प्रयोग करते हैं। हिन्दू पात्रों के संवादों में संस्कृत के शब्दों का प्रयोग और मुस्लिम पात्रों की भाषा में फारसी शब्दों का प्रयोग किया गया है। जमींदार के रूप में राय साहब की भाषा उनके अनुकूल है– होरी से वे कहते हैं– "हममें से किसी पर डिग्री हो जाया कुर्की आ जाए; बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाए।" राय साहब की इस शब्दावली से स्पष्ट पता चलता है कि यह भाषा एक जमींदार की ही हो सकती है। यहां कुछ पात्रों की भाषा को दिया जा रहा है।

राय साहब–

मैं उसी वातावरण में पला हूं और मुझे गर्व है कि मैं व्यवहार में चाहे जो कुछ करूं विचारों में उनसे आगे बढ़ गया हूं और यह मानने लगा हूं कि जब तक किसानों को ये रियायतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी केवल सद्‌भावना के आधार पर उनकी दशा सुधर नहीं सकती। स्वेच्छा से यदि अपना स्वार्थ छोड़ दे तो अपवाद हैं।"

मेहता–

"देवियों! मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो कहते हैं स्त्री और पुरुष में समान शक्तियां हैं, समान प्रवृत्तियां हैं और उनमें कोई विषमता नहीं है। इस भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता। यह वह असत्य है जो युग–युगान्तर से संचित अनुभव को उसी तरह ढक लेना चाहता है जैसे बादल का टुकड़ा सूर्य को ढक लेता है।"

मेहता की यह भाषा आम नागरिक की भाषा का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखलाई देती है। समस्त नगरीय पात्र इसी प्रकार की भाषा बोलते हैं।

होरी–

"अब तुमसे बहस कौन करे? बाई जै जात किसी से छोड़ी नहीं जाती है िकवह छोड़ देंगे। हमीं को खेती में क्या मिलता है। एक आने नकदी की मजदूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस–रुपये महीने का नौकर है वह भी हमसे अच्छा खाता–पीता पहनता है लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दे तो और क्या करें।

होरी जहां ग्रामीण परिवेश की पत्नि के पात्र के रूप में है वहां वह क्रोध की अवस्था में तत्काल आम ग्रामीण पत्नि की तरह तत्काल ही आदर सूचक शब्द न बोलकर तू–तड़ाक पर आ जाती है। जब होरी घूस देने के लिए जाने लगता है तब होरी का संवाद–क्रोध से भरा होता है। संवाद देखिए– "नागिन की तरह फुंकार कर बोली– ये रुपये कहां लिए जा रहा है, बता। भला चाहता है तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूं। घर के परानी रात–दिन मरें और दाने–दाने को तरसें। लत्ता भी पहिनने को भयस्सर न हो और अंजुली भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने।"

उपर्युक्त कथन ग्रामीण स्त्री की ऐसी स्थिति में जो भाषा होनी चाहिए उसका यथार्थ रूप है।

धनिया–

"पंचों, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। कौन जाने इस गांव में रहे या न रहे। लेकिन मेरा सराप तुमको जरूर–जरूर लगेगा, मुझसे इतना बड़ा जरी माना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहु को क्यों अपने घर में रखा।"

पुलिस दरोगा–

जब दरोगा जी धनिया के ऊपर क्रोधित होते हैं तब– "खिसिया कर बोले– मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फंसाने के लिए खुद गाय को जहर दिया है।"

पुलिस की भाषा के अनुरुप ही पुलिस का दलाल 'पटेश्वरी' भी दलाल वाली भाषा ही बोलता दिखलाई देता है। पटेश्वरी कहता है–

पटेश्वरी–

"आगे बढ़कर दरोगा जी के कान में कहा– तलाशी लेकर क्या करोगे हुजूर, उसका भाई आप की तावेदारी के लिए हाजिर है।"

दातादीन–

"दातादीन गांव के पंडित हैं अतः उनके कथोपकथन में पंडिताऊपन का स्वरूप दिखलाई देना स्वाभाविक है जो उनके संवादों में भी परिलक्षित होता है– "कोई हमारी तरह ने भी बनतो ले। कितनों को जानता हूं जो कभी सन्ध्या–बन्दन नहीं करते, न उन्हें धरम से मतलब और न करम से; न कथा से मतलब न पुरान से; हमारे ऊपर हँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकादसी भी नागा नहीं की, कभी बिना स्नान–पूजा किए मुख में पानी तक नहीं डाला।"

मिर्जा साहब–

"मिर्जा की भाषा में उस भाषा का प्रयोग है जो एक मुसलमान अक्सर बोलता है, किन्तु उस भाषा में भी क्लिष्टता या दुरुहता को नहीं आने दिया गया है मिर्जा और तंखा के कथोपकथन में एक बड़ा अंतर है कि उनकी भाषा से यह स्पष्ट पता चलता है कि मिर्जा साहब अंग्रेजी भी जानते हैं।

केवल संवाद पढ़कर ही पाठक यह अनुमान आसानी से लगा सकता है कि पात्र मुस्लिम है। मिर्जा साहब का कथापकथन कुछ इस प्रकार से है–

"जी नहीं, मुझे यह मंजूर नहीं है। मैं कई कम्पनियों का डायरेक्टर, कई का मैनेजिंग ऐजेंट और कई का चेयरमैन था। दौलत मेरे पांव चूमती थी, मैं जानता हूं, दौलत से आराम और तकल्लुफ के कितने सामान जमा किए जा सकते हैं, मगर यह भी जानता हूं कि दौलत इन्सान को कितना खुद–गरज बना देती है। कितना ऐश–पसन्द, कितना मक्कार, कितना बेगैरत।"

नगरीय संस्कृति के पात्रों की भाषा की विशेषता है कि उनके शिक्षित पात्रों की भाषा में अवसर विशेष और पात्र–विशेष से बातें करते समय कुछ परिवर्तन हो जाता है। जैसे यदि शिक्षित पात्र किसी ग्रामीण से बात करेगा तो उसकी भाषा भी उतनी ही सरल होगी कि वह ग्रामीण आसानी से समझ सके और यदि किसी मुस्लिम पात्र से बात करेगा तो उसकी भाषा प्रचलित फारसी के शब्द भी आ जाएँगे। यह वास्तव में लेखक के मनौवैज्ञानिक दृष्टिकोण का फल है। इस प्रकार के परिवर्तन को हम मेहता की भाषा में पाते हैं।

मेहता–

राय साहब, खन्ना और तंखा आदि के बीच में उनकी भाषा एक बुद्धिजीवी की विचार प्रधान भाषा है। उनकी शैली में गंभीरता है–

"मिस्टर मेहता उसी ठण्डे मन से बोले– नहीं; नहीं मैं इसे बुरा नहीं समझता। समाज से ही बनता है, और व्यक्ति को भूलकर हम किसी व्यवस्था पर विचार नहीं कर सकते। मैं इसीलिए इतना वेतन लेता हूं कि मेरा इस व्यवस्था पर विश्वास नहीं है।"

यही मेहता जब मिर्जा साहब से बातें करते हैं तो उनका भाषा में परिवर्तन दिखलाई देता है। उनकी भाषा मिर्जा साहब से बात करते हुए उर्दू एवं फारसी के शब्दों का आधिक्य हो जाता है–

"आपका कयास बिलकुल गलत है मिर्जा जी! थ्मस मालती हसीन हैं। खुश मिजाज हैं, समझदार हैं, रोशन खयाल हैं और भी उनमें कितनी खूबियां हैं।"

यही मेहता जब पठान का रूप धारण करके आते हैं तो उनकी भाषा पठान की हिन्दी मिश्रित भाषा होती है– "अम यौं से किसी को नहीं जाने देगा। तुम अमारा एक हजार रुपयो लूट लिया। अमारा रुपया नवी देगा, तो अम किसी को जिन्दा नवी छोड़ेगा।"

अतः स्पष्ट है कि प्रेमचन्द्र जी की भाषा पात्रों के अनुसार परिवर्तन करने की प्रवृत्ति की विशेषता लिए हुए है। उनकी भाषा में सरलता, सहजता, स्वाभाविकता और पात्रों के अनुकूल होने के कारण आम पाठक को भी बांध ो रखती है।

बोध प्रश्न–

1. 'गोदान' की भाषा की विशेषता पात्रों के माध्यम से स्पष्ट कीजिए।
2. 'गोदान' में चित्रित ग्राम्य संस्कृति और नगरीय संस्कृति की भाषा में आप क्या–क्या अंतर पाते हैं, स्पष्ट कीजिए।

5.5 गोदान की शैली

भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसका भावानुकूल होना है और प्रेमचन्द्र के साहित्य में विशेषता सर्वत्र दिखलाई देती है। उनके पात्र भावों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग करते दिखलाई पड़ते हैं। भाषा में अलंकारिकता का गुण भी विद्यमान है तो सूक्ति कथाओं की भरमार भी हमें मिलती है। भाषा में मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग जिस सहजता के साथ हुआ है वह पाठकों को बांधें रखने में सफल हुई है।

प्रेमचन्द्र की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी भावानुकूलता है। लेखक अपने भावों को जिस प्रकार प्रदर्शित करेगा उसी प्रकार उसकी शैली भी हो जाएगी। प्रेमचन्द्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह भाषा की सरलता व सहजता को सदैव बनाए रखते हैं।

प्रेमचन्द्र की शैली की विशषता है कि उनके भावों में सघनता है और इस सघनता में भी वह भाषा की सरलता को बनाए रखते हैं। यदि कहीं हास्य और मनौविनोद की बातें हैं तो शैली भी उसी प्रकार की चटकीली हो जाएगी।

'गोदान' की शैली में विविधता है। संस्कृति गर्भित शैली साधारण पाठक के लिए दुरुह हो गई है। मेहता के भाषण का निम्न अंश इस शैली का उदाहरण है–

"तुम जिसे प्रेम कहते हो वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप, उसी तरह जैसे संन्यासी केवल भीख मांगने का संस्कृत रूप है।... सेवा ही वह सीमेन्ट है जो दम्पति को जीवन पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रह सकता है।"

एक अन्य स्थान पर जहाँ मातादीन ने सिलिया के साथ अन्याय किया, उसको धोखा दिया। उसके ब्राह्मणत्व के ढोंग ने उसकी मानवता को दूर कर दिया। लेकिन एक दिन ज बवह सिलिया के प्रेम की एकनिष्ठता के सन्मुख पराजित होता है तो उनके ह्रदय के दैन्य–भाव को लेखक उसी के अनुकूल भाषा में व्यक्त करता है–

"अपनी करनी का फल बहुत भोग चुका। इस ब्राह्मनई का बोझ अब उठाए नहीं उठता।"

प्रेमचन्द्र की शैली की सबसे बड़ी विशेषता उनकी भावात्मकता और काव्यात्मकता का गुण है। यह गुण केवल 'गोदान' तक सीमित न होकर उनके अन्य समस्त साहित्य में भी देखने को मिलती है। 'गोदान' उपन्यास में अनेक घटनाएँ, स्थल ऐसे हैं जहां भावपूर्ण और काव्यमय चित्रण हुआ है। आरम्भ में ही लेखक के द्वारा इस भावात्मक शैली का प्रयोग नारी के उस भाव को प्रदर्शित करते समय दिखलाया गया है। जब एक पत्नी के ह्रदय में अपने पति के विषय में अशुभ बात सुनकर किस प्रकार की भावनाएँ उठती है।

वास्तव में प्रेमचन्द्र ऐसे उपन्यासकार हैं जो भाषा को साधन बनाकर चलते हैं साध्य बनाकर नहीं। भाषा को भावों के अनुसार रखने की क्षमता उनके अतिरिक्त अभी बहुत कम हिन्दी के उपन्यासकारों में पाई जाती है।

प्रेमचन्द्र की भाषा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण करने में भी समर्थ हैं। जहां–कहीं भी वे पात्रों को मनोविज्ञान भी कसौटी पर आंकते हैं वहां भाषा उनके अनुरूप ही होती है।

भावुक व काव्यमय भाषा का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है यहां गोबर के ह्रदय में झुनिया को छोड़कर भागते समय जो भावनाओं का संघर्ष हुआ, उसको भी उपन्यासकार अपनी भावुकता से ओत–प्रोत करके काव्यमय भाषा में इस प्रकार प्रकट करता है कि उसको पढ़कर प्रत्येक पाठक गोबर की अन्तर्दशा से परिचित हो जाता है–

गोबर–

"वह अभिसार की मीठी स्मृतियां याद आईं; ज बवह अपने उन्मत्त उसासों में अपनी नशीली चितवनों में मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने घोंसले में दिन काट रही थी। वहां नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें, मग बहेलिए का जाल और छल भी तो वहां न था।"

1. मुहावरे और लोकोक्तियाँ–

मुहावरों का प्रयोग प्रेमचन्द्र की शैली की प्रमुख विशेषता है। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा में अनूठा प्रवाह आ गया है। और भाषा को जन–साधारण के लिए सुलभ और सरल तभी बनाया जा सकता है जब कि उसमें भावों को प्रकट करने की क्षमता हो। मुहावरों का प्रयोग भाषा में भावों और विचारों की स्पष्टता के लिए किया जाता है। प्रेमचन्द्र ने इन लोकोक्तियों को ग्रामीण भाषा के कथोपकथन में उसी प्रकार रखा है जिस प्रकार कि गांवों में लोग बात–चीत करते समय प्रयोग करते हैं। कुछ संवादों में आए मुहावरे/लोकोक्ति इस प्रकार हैं–

"मगर चौधरी 'कच्ची गोलियां' न खेला था, अब उसे किसका डर। होरी के 'मुंह में ताला पड़ा हुआ था'। 'माथा ठोककर रह गया'। बस इतना बोला– यह अच्छी बात नहीं है, चौधरी, 'दो रुपये दबाकर राजा न हो जाओगे।'

"पुरानी मसल झूंठी थोड़े हैं– बिना धरनी पर भूत का डेरा।"

"मन भाय मुड़िया हिलाय वाले भाव' से बोली मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूं।

"यह तो अच्छी दिल्लगी है कि अपना माल भी दो और उसे घर तक पहुंचा भी दो–लाद दे, लदाने वाला संग कर दे।"

अन्य मुहावरे/लोकोक्ति के रूप में– "काजी के घर चूहे भी सयाने, बाहर से तितली, भीतर से मधु मख्खी, धोबी का कुत्ता घर का न घाट का, फर्जी हो गया है टेड़े तो चलेगा ही, पांवों में बेड़ियां डालना, जुलाहे का गुस्सा डाढ़ी पर आदि का भी प्रयोग हुआ है।

2. 'गोदान' में सूक्ति कथाएँ–

प्रेमचन्द्र की रचनाओं में सूक्ति–कथाओं की प्रचूरता भी देखने को मिलती है। 'गोदान' उपन्यास में भी ये सूक्ति कथन जीवन के अनुभवों से भरे हुए हैं–

1. "सम्पत्ति और सह्रदयता में बैर है।"
2. "आश्चर्य अज्ञान का दूसरा नाम है।"
3. "आसक्ति में आदमी अपने काबू में नहीं रहता।"
4. "संकटों में हमारी आत्मा को जागृति मिलती है।"
5. "कर्ज वह मेहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।".
6. "सत्य की एक चिनगारी असत्य के एक पहाड़ को भस्म कर सकती है।"

उक्त सूक्तियां मौलिकता का अनुभव कराती हैं। अपने जीवन अनुभव को ऐसा सत्य रूप दिया किवे अपने अनुभवों से सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं।

3. आलंकारिक भाषा–

प्रेमचन्द्र के उपन्यासों की भाषा में जब काव्यात्मकता का गुण आता है तो स्वाभाविक है कि उसमें आलंकारिकता का गुण भी निश्चित ही समावेश होता है। और यही अलंकारिता प्रेमचन्द्र की भाषा की विशेषता है। 'गोदान' उपन्यास में उपमा, रूपक आदि क्षमता मूलक अलंकारों का सफल और सुन्दर प्रयोग किया गया है–

1. "मेहता से जो उसे श्रद्धा थी, उसे एक धक्का–सा लगा। मानो कोई शिष्य अपने गुरु को नीच कर्म करते देख ले।" – उत्प्रेक्षा
2. "धीरे से चले गए जैसे कोई चोर कुत्ता मालिक के अन्दर आ जाने पर दब कर निकल जाता है।" – उपमा
3. "विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी।" – सांगरूपक

प्रेमचन्द्र के 'गोदान' उपन्यास भाषा–शैली की दृष्टि से अत्यन्त सफल उपन्यास है। पात्र, देशकाल और भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग गोदान के भाषा की विशेषता है। भाषा में सरलता और स्वाभाविकता की सर्वत्र रक्षा हुई है।

बोध प्रश्न–

1. 'गोदान' की शैली की सबसे बड़ी विशेषता उनकी भावानात्मकता और काव्यात्कता का गुण है। इस कथन से आप कहां तक सहमत हैं।

2. 'गोदान' की भाषा–शैली में प्रेमचन्द्र कहाँ तक सफल रहे हैं सप्रमाण लिखिए।

5.6 गोदान के पाठक

अब 'गोदान' को इस रूप में देखना भी आपके लिए महत्वपूर्ण है कि उसका संभावित पाठक वर्ग कौन है? प्रेमचन्द ने इसमें किसको संबोधित किया है? लेखक किसानों के दुःख–दर्द की करुण कहानी किसको सुनाना चाहता है? वैसे तो लिखी जाने के बाद कोई भी रचना लेखक से छूट कर न मालूम किस–किस पाठक समुदाय के पास पहुँच जाती है? इसका अनुमान लेखक को नहीं रहता, न उस पर लेखक का कोई नियंत्रण रहता है। तब भी, किसी रचना के स्वरूप निर्धारण में उसके तात्कालिक पाठक की भूमिका होती है।

प्रेमचन्द का 'गोदान' किसानां को सम्बोधित रचना नहीं है। उन्होंने अपढ़ किसानों के बारे में लिखा है। इसी तरह उन्होंने जमींदारों–ताल्लुकेदारों–अधिकारियों के लिए भी इसे नहीं लिखा। उनके हृदय परिवर्तन की आशा लेखक को नहीं है। दरअसल यह मध्य वर्ग के शिक्षित पाठकों को सम्बोधित रचना है। इस वर्ग को किसान जीवन से परिचित करवाना तथा इसे किसानों के पक्ष में करना लेखक का उद्देश्य रहा है। इसलिए उन्होंने अपने किसान पात्रों को इस रूप में चित्रित किया है, जिससे पाठक को यह महसूस हो सके कि किसान भी आप–हम जैसे ही मनुष्य हैं। उनमें भी हर्ष, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा जैसे मानवीय भाव विद्यमान हैं। किसान किसी विचित्र लोक का विचित्र प्राणी नहीं है, परन्तु वह मध्य वर्ग से कुछ मामलों में थोड़ा–सा अलग है। उनमें कुछ कमियाँ हैं तो कुद अच्छाइयाँ भी हैं।

इस तरह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द का साहित्य शिक्षित मध्य वर्ग को किसानों के पक्ष में करने के लिए लिखा गया है। उन्हें अपने गाँव की कहानी पढ़े–लिखे, देहात से अनभिज्ञ पाठक को सुनानी है। इसमें एक तरफ तो यह ध्यान रखा गया है कि पाठक के मानस पर गाँव का नक्शा उतर आए, जो न इतना अपरिचित ही हो कि पाठक उससे तादात्म्य ही न कर पाए और न इतना परिचित ही हो कि शहरी जीवन से अलग उसकी कोई पहचान ही न बन पाए। साथ ही यह नक्शा गाँव के गतिशील यथार्थ के करीब भी हो। (प्रेमचन्द और भारतीय किसान, पृ. 89 ले. डॉ. रामबक्ष, वाणी प्रकाशन, दिल्ली–1982)।

इसी कारण प्रेमचंद ने कई बार गाँव एवं शहर के पात्रों को आपस में मिला दिया है। राय साहब की शिकार–पार्टी में मालती और जंगली युवती की तुलना कर दी, तंखा के किसान से होड़ करवा दी, जो मरे हुए हरिण को लेकर दौड़ा जा रहा था या कि धनुष यज्ञ के पठान से होरी को भिड़ा दिया। मेहता–मालती को होरी–धनिया के घर भेजकर भी लेखक ने यही किया है। ये सामान्य से दिखाई पड़ने वाले प्रसंग उपन्यासकार ने इसी कारण प्रस्तुत किए हैं।

रचना के स्तर पर यहाँ प्रेमचंद को भाषिक समस्या से भी जूझना पड़ा है। यहाँ लेखक उन किसानों को लिखित भाषा में बाँधकर प्रस्तुत करता है जो स्वयं साक्षर नहीं हैं। अपढ़ किसानों की अभिव्यंजना के मूल भाव को बनाए रखते हुए उनकी भाषा को पठनीय बनाना प्रेमचंद के लिए बड़ी भारी चुनौती थी, जिसे प्रेमचंद ने बहुत कुशलतापूर्वक हल कर लिया। इस दृष्टि से होरी की भाषा में जबर्दस्त अभिव्यंजना–क्षमता विद्यमान है।

बोध प्रश्न–

1. प्रेमचंद ने गोदान की रचना किस प्रकार के पाठक वर्ग के लिए की है।
2. रचना के स्तर पर प्रेमचंद की भाषा समस्या क्या है?

5.7 इकाई सारांश

भाषा भावों की अभिव्यक्ति की रीढ़ होती है। यदि भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है तो अभिव्यक्ति का ढंग 'शैली' है।

उपन्यास लेखन में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भाषा जितनी सरल, भावाभिव्यंजक एवं बोध गम्य होती है, वह उतनी ही प्रभावशाली होती है। यदि उपन्यास में भाषा अपना प्रभाव डालने में सक्षम नहीं है तो वह बोधिगम्यता के स्थान पर पांडित्य प्रदर्शन का भाव अधिक रखती है।

प्रेमचन्द्र की भाषा भावात्मक एवं काव्यात्मक को लिए हुए है। वह पात्रों के अनुकूल होने के साथ–साथ सरलता, सहजता व भावानुकूल गुण धारण किए हुए है। प्रेमचन्द्र की भाषा की विशेषता है कि उनके पात्र देशकाल और वातावरण के अनुरूप ही अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं। यही विशेषता के कारण प्रेमचन्द्र की भाषा आम जीवन से जुड़ी दिखलाई पड़ती है।

मुंशी प्रेमचन्द्र के उपन्यास साधारण–से–साधारण पाठकों तक इसीलिए पहुँच सके कि उनकी भाषा अत्यन्त सरल एवं सरस थी। हिन्दी साहित्य के अनेक उपन्यास अपनी गम्भीरता के कारण साधारण पाठकों की पहुँच से बाहर हो गए। उन उपन्यासों का पहुँच से बाहर होना उनकी भाषा–सम्बन्धी दुरूहता भी है। भाषा की महत्वपूर्ण आवश्यकता उसकी स्वाभाविकता की रक्षा है, जो प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में हमें सहज ही देखने को मिलती है।

मुंशी प्रेमचन्द्र यथार्थ भाषा का उपयोग करने के समर्थक थे, यही कारण है कि वर्ग विशेष तक सीमित न रहकर अधिक–से–अधिक लोगों तक पढ़ी और समझी जाती है। मुंशी प्रेमचन्द्र की भाषा के सम्बन्ध में डॉरु धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है कि, "शैलीकार की दृष्टि से प्रेमचन्द्र जी का स्थान हिन्दी–साहित्य में असाधारण है। सरस; सुबोध I, मुहावरेदार; सजीव गद्य शैली का अभ्यास उर्दू–लेखक के रूप में वह पहले ही कर चुके थे। अपने इस अभ्यास को वह अपने साथ हिन्दी के क्षेत्र में लेते आए। हिन्दी शैली की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वह प्रायः नुकीली और खुरदरी है। अभी वह काफी मंज नहीं पाई है। मुहावरों से तो लोगों को जैसे चिढ़–सी है। बोलचाल की भाषा को भी यथा सम्भव बचाने का उद्योग किया जाता है।... इन बाधाओं के रहने पर भी प्रेमचन्द्र जी ने अपना रास्ता निकाला और दूसरों को उस पर चलने के लिए आमंत्रित किया।"

मुंशी प्रेमचन्द्र हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं पर क़माल की पकड़ रखते थे और यही कारण है कि उनके उपन्यासों में परिस्थितियों के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग हुआ है। हिन्दी के सुन्दर शब्दों का सार्थक प्रयोग करने में वे अत्यन्त पदु थे। हिन्दी–उर्दू मिश्रित जनवादी यथार्थ भाषा का चित्रण भी प्रेमचन्द्र के उपन्यास की विशेषता है।

कथानक जिस काल का हो भाषा उसी के अनुरूप होनी चाहिए।

"भाषा के अनुसार शैली का भी महत्व उपन्यास रचना में प्रमुख होता है। उपन्यासकार कथानक के अनुरूप ही शैली का प्रयोग करता है। मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने वाले उपन्यासकारों के लिए आत्मकथात्मक शैली अथवा संस्मरणात्मक शैली अधिक सहायक हुई है। मसूचे युग जीवन को अपने उपन्यासों में समेटने वाले लेखकों की प्रिय शैली वर्णनात्मक ही रही है। 'गोदान' में वर्णनात्मक शैली का ही प्रयोग मुंशी प्रेमचन्द्र ने अत्यन्त सफलता से किया

है।''

प्रेमचन्द्र की भाषा–शैली के विश्लेषण में देखेंगे कि प्रेमचन्द्र के उपन्यासों की भाषा–शैली सरलता, सहजता व भावानुकूल होने के साथ–साथ पात्रों द्वारा प्रयुक्त होने वाली आम जीवन की भाषा है उसमें मनोविनोद, दुःख, बोध, हास्य अनेक प्रसंगों के माध्यम से रोचकता लाई गई है। भाषा–शैली में काव्यत्मकता से लेकर आलंकारिकता तक के गुण विद्यमान है। जीवन के सत्य को सूक्ति कथाओं के रूप में समायोजित किया गया है। 'गोदान' के सभी पात्र ग्राम्य अथवा नगरीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनकी भाषा–शैली में संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखलाई देती है।

5.8 अपनी प्रगति जाँचिए–

1. प्रेमचन्द्र के उपन्यास 'गोदान' की भाषा भावानुकूल है। कुछ उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।
2. ''प्रेमचंद की भाषा में शब्द और अर्थ का सर्वोत्तम सामंजस्य है।'' कथन को स्पष्ट कीजिए।
3. ''प्रेमचंद ने अपनी शैलीय उपकरणों का सार्थक प्रयोग किया।'' इस कथन पर विचार कीजिए।
4. गोदान की शैली काव्यात्मकता एवं आलंकारिक गुण को धारण किए है। स्पष्ट कीजिए।
5. ''प्रेमचंद की भाषा–शैली पात्रों द्वारा प्रयुक्त होने वाली आम जीवन की भाषा है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

5.9 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1. आंचलिक उपन्यासों का अध्ययन कर उनके कृषक और कृषक परिवार के पात्रों की भाषा–गते कला से परिचय प्राप्त कीजिए।
2. प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों को पढ़कर उनकी भाषा–शैली का अध्ययन कीजिए।
3. भाषा–शैली के आधार पर 'संवाद' किस प्रकार सजीव हो उठते हैं, इस बिन्दु पर प्रेमचंद के उपन्यासों का अध्ययन कीजिए।

5.10 चर्चा एवं स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

4.11 संदर्भ/अतिरिक्त पठन सामग्री

1. प्रेमचन्द्र और गोदान–राम वाशिष्ठ।
2. गोदान एक विवेचन–डॉरु सुरेश सिनहा।
3. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा – दरश मिश्र।
4. प्रेमचंद और उनका युग–डॉ. रामविलाश शर्मा।
5. साहित्य का उद्देश्य–प्रेमचंद।
6. कलम का मजदूर प्रेमचंद–मदन गोपाल।
7. कलम का सिपाही – अमृत राय।
8. प्रेमचंद घर में – शिवरानी देवी।
9. साहित्य तत्व और आलोचना।
10. आस्था के चरण–डॉ. नगेन्द्र।

गोदान के महत्वपूर्ण अवतरणों की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 अवतरण और व्याख्या
6.4 इकाई सारांश
6.5 अपनी प्रगति जाँचिए
6.6 नियत कार्य/गतिविधियाँ
6.7 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु
6.8 संदर्भ ग्रन्थ

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत गोदान में आए कठिन, गूढ़ और भाव सिद्ध अंशों की व्याख्या है जो उपन्यास की भावभूमि और पात्र को चेतन बनाती है।

6.2 प्रस्तावना

कथाकार ने कथा के अनन्तर विभिन्न पात्रों की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक चिन्तन को समय–समय पर अभिव्यक्ति दी है। यह अभिव्यक्ति कथाकार के मानस को ही नहीं, समय के करवट लेने के कारण आए सोच में बदलाव को रेखांकित करती है। भावुकता और कभी–कभी समाधि के क्षणों में रचनाकार गंभीर चिन्तन कर बैठता है जो कभी तो सूत्रात्मक होती है और कभी वाणी–विस्फोट के रूप में। उल्लास, अवसाद और विषाद के क्षण इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि उनमें भावावेश में अथवा भावोद्वेग में आए बिना उनसे मुक्ति नहीं मिलती। दीर्घ चिन्तन से प्राप्त निचोड़ के रूप में अभिव्यक्ति इन अवतरणों में कथा का सार भी है और सार का पुरस्कार जिनके बिना पात्र अपनी सत्ता और महत्ता प्रतिपादित नहीं कर सकता।

6.3 अवतरण और व्याख्या

(1)

"विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इस असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना शक्ति आ गई थी।

काना कहने से काने को जो दुख होता है, वह क्या दो आँख वाले आदमी को हो सकता है!"

प्रसंग–

परिस्थितियों के चित्रण के द्वारा कथाकार चरित्र का स्वरूप गठन करता है। वह हुलियानवीसी करने की बजाय अपने कौशल से उनके चरित्र को उद्‌भासित करता है

होरी चालीस वर्ष का भी नहीं हुआ था, और गरीबी ने उसे बूढ़ा सा बना दिया था। अपनी पत्नी धनिया से हास परिहास करते हुए वह कहता है कि मर्द तो साठे पर पाठे होते हैं, किन्तु वास्तविकता यह थी कि दूध–घी खाने को नही मिलता स्वास्थ्य अच्छा भी हो तो कैसे!

होरी ने बातो ही बातों में धनिया से कह दिया कि वह तो साठ वर्ष के पहले ही दुनिया से कूच कर जाएगा। होरी के इन शब्दों से धनिया के हृदय में हलचल मच गई। होरी जमींदार रायसाहब से मिलने उनके घर की ओर चल पड़ता है तो स्निग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई वह जैसे मंगलकामना कर रही थी।

व्याख्या–

(गरीबी) और विपत्ति के इस अथाह सागर को धनिया अपने सोहाग (पति) रूपी तिनके का सहारा पाकर पार करने का प्रयास कर रही थी। भाव यह है कि यद्यपि उसके जीवन में गरीबी के कारण कष्ट थे, तथापि संन्तोष की बात यह है कि वह सौभाग्वती है, उसे पति का आसरा है। दोनों दीनहीन एवं गरीब होने पर भी किसी तरह अपनी जिन्दगी काट रहे हैं।

होरी ने आज यह कहकर कि मैं तो साठ साल का होने से पहले ही इस संसार से विदा हो जाऊँगा, धनिया के हृदय में हलचल उत्पन्न कर दी थी। उसे लगा कि कोई उसके हाथ से वह तिनके का सहारा भी छीन ले रहा है जो इस गरीबी में उसके साथ था। सच तो यह है कि होरी का स्वास्थ्य वास्तव में खराब था इसलिए उसके कहे शब्द यथार्थ के निकट थे। यदि होरी का स्वास्थ्य अच्छा होता; और तब उसने अपने मरने की बात कही होती तो धनिया को ये शब्द न खलते परन्तु वास्तविकता को कोई कैसे झुठला सकता है। यथार्थ के निकट होने के कारण ही इन शब्दों में इतनी पीड़ा पहुंचाने की शक्ति आ गई थी।

काने व्यक्ति को कोई काना कहे तो उसे दुख होता है, किन्तु दो आंख वाले को कोई काना कहे तो दुःख नहीं होता। ठीक यही बात यहां लागू हो रही थी । पाठे की शक्ति न होने पर भी पाठा कहकर वह अपनी असलियत बता ही देता है। वह साठ साल का नहीं है। पट्ठा कैसे हो सकता है। साठा का पाठा जैसे बेरी ने काने को काना कह दिया हो।

विशेष–

1. होरी इस उपन्यास का नायक एवं धनिया उसकी पत्नी है।
2. होरी की अवस्था 40 वर्ष एवं धनिया की अवस्था 36 वर्ष है, किन्तु इस अवस्था में ही वे दोनों वृद्ध से हो गए है।
3. विपन्नता के इस अथाह सागर में रूपक अलंकार है।
4. सोहाग ही तृण था– उत्प्रेक्षा अलंकार है।
5. भाषा का प्रवाह और सरल वाक्य मय अभिव्यक्ति प्रभावित करती है।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव–ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाए वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है, वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान है?

सन्दर्भ–

प्रस्तुत पंक्तियाँ उपन्यास सम्राट "मुंशी प्रेचन्द' द्वारा लिखे गए महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान' से ली गई है।

प्रसंग–

भोला गाय लिए आ रहा है। पछाया गाय देखकर उसकी गाय पालने की लालसा अंकुरा उठी है। भोला भूसे के लिए गाय बेच रहा है। होरी उसकी जरूरत मन्दी का फायदा नहीं उठाना चाहता। अतः न कर देता है। प्रेमचन्द को उसकी वह वृत्ति नहीं लगती है।

व्याख्या–

प्रेमचन्द जी का कहना है कि किसान मूर्ख एवं सीधा सरल भोला इंसान नहीं होता अपितु चतुर, अपने लाभ पर दृष्टि रखने वाला स्वार्थी व्यक्ति होता है। रिश्वत के पैसे बड़ी कठिनाई से ही वह देता है भाव–ताव में भी सावधान रहता है। महाजन से लिए गए कर्ज पर ब्याज वह देता तो है, किन्तु ब्याज कम करने के लिए घण्टों तक अनुनय–विनय करता है। वह सरलता से किसी के बहकावे में नहीं आता।

ऐसा होने पर भी यह छल–छदम, झूठ–फरेब प्रवृत्तियों से दूर रहता है। कारण यह है कि वह जिस प्रकृति के सान्निध्य में रहता है और जीवनयापन करता है, वह प्रकृति परोपकारी प्रवृत्ति की है। वृक्षों में लगे फल जनता खाती है, खेतों में उत्पन्न अन्न सबके खाने के काम आता है, गाय का दूध लोग पीते हैं, वह खुद नहीं पी जाती। बादल वर्षा करके पृथ्वी की प्यास बुझाते हैं। प्रकृति के ये सब उपादान परोपकारी प्रवृत्ति के हैं अतः इनके साथ रहने वाला किसान भला कुत्सित स्वार्थ से युक्त कैसे हो सकता है? उसमें स्वार्थ की वह प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं होती जिसमें लोग दूसरों की मजबूरी का फायदा उठाकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। होरी में भी ऐसी स्वार्थ प्रवृत्ति का अभाव था।

विशेष–

1. होरी के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। वह कुत्सित स्वार्थ से परे रहने वाला ऐसा व्यक्ति है जिसे किसी की मजबूरी से लाभ उठाना कतई पसन्द नहीं।
2. गोदाम का होरी 'कृषक' वर्ग का प्रतिनिध पात्र है। होरी की चारित्रिक निष्कपट का गुण हर कृषक में देखा जा सकता है।
3. भाषा सरल सहज एवं प्रवाहपूर्ण है।

4. विवरणात्मक शैली का प्रयोग है।

5. प्रकृति की परोपकारी वृत्ति से साम्य बैठाया गया है।

(3)

"सम्पति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर के लोगों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार है। हममें से किसी पर डिग्री हो जाए, कुर्की आ जाए, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाए, किसी के घर में आग लग जाए, कोई किसी वैश्य के हाथों उल्लू बन जाए, अपने आदमियों से पिट जाए तो उसके और सभी भाई उस पर हंसेगे, बगलें बजाएगे, मानों सारे संसार की सम्पदा मिल गई है और मिलेंगे तो इतने प्रेम से जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं।"

प्रसंग–

रायसाहब के बारे में होरी ने बड़े ऊंचे विचार रखता था। वे सहृदय है, उदार है, दयावान और दानवीर है, वह उनके प्रति कृतज्ञ सा अनुभव करता है किन्तु राय साहब उसकी इस धारणा को निर्मूल करते हुए जैसे उसकी नजर में और ऊंचे उठ जाते है। अपनी विनम्रता का बखान करते हैं।

व्याख्या–

रायसाहब होरी को सम्बोधित करते हुए उसे बड़े आदमी की मनोवृत्ति से परिचित कराते हुए कहते हैं कि ये तथाकथित बड़े आदमी नाम के ही बड़े होते हैं इनके क्रियाकलाप अत्यन्त तुच्छ होते हैं। जिसके पास सम्पति होती है, उसमें सहृदयता नहीं होती।

सच तो यह है कि हम लोग दया के वशीभूत होकर दान–धर्म नहीं करते अपितु अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए दान देते हैं। हमारे क्रियाकलाप प्रदर्शन मात्र होते है। यदि हमारे ही किसी जमींदार भाई के यहां कुर्की हो जाए, डिक्री हो जाए या बकाया माल गुजारी न चुका पाने से वह हवालात में बन्द हो जाए तो हमें ऐसी प्रसन्नता होती है मानो हमें सारे संसार की सम्पति मिल गई हो। यही नहीं अपितु किसी पर कोई मुसीबत आ जाए, उसका जवान बेटा मर जाए या विधवा बहू घर से चली जाए, किसी के घर में आग लग जाए या कोई किसी के हाथों धोंखा खा जाए तो भी हमें महान प्रसन्नता होती है हमारी खुशी का ठिकाना नहीं होता। उस पर भी जब हम उस व्यक्ति से मिलते है तो हम उससे इतने प्रेम से मिलते है जैसे हम उसके लिए बलिदान होने के लिए तैयार है। हमारा व्यवहार बनावटी एवं दिखावटी होता है। हम अपने मन के भाव को छिपाने में कुशल हैं। हम जो दिखते हैं, वैसे हैं नहीं।

विशेष–

1. प्रेमचंद की भाषा मुहावरेदार है। इस अवतरण में कई मुहावरे प्रयुक्त हैं यथा– नीचा दिखाना बगलें बजाना, उल्लू बन जाना, आदि। लगता है जैसे रायसाहब स्वयं पर व्यंग्य कर रहे हैं।

2. प्रेमचन्द ने रायसाहब के बहाने जमींदारों के चरित्र पर विशद प्रकाश डाला है।

3. जमींदार किस तरह किसानों पर अपने धर्मात्मा और दानी होने का रूप–स्वरूप जमाते हैं, रायसाहब का वक्तव्य उसका प्रमाण है।

4. गोदान कृषक जीवन की व्यथा–कथा है, ग्रामों पर मजीदारों का अधिकार है। वे अपने क्षेत्र से किसानों का शोषण करते है। उनकी मानसिकता को अनावृत किए बिना व्यथा को वाचकता प्रदान नहीं की जा सकती।

5. रायसाहब जमींदार वर्ग के और शहराती कथा के प्रतिनिधि पात्र हैं।

6. प्रेमचंद की भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग इसमें किया गया है। भाषा में मुहावरों का प्रयोग होने से लाक्षणिकता का समावेश भी हो गया है।

7. मानो सारे संसार की सम्पत्ति मिल गई हो – में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

8. संभाषण की प्रकृति का यह अंश प्रेमचन्द की वक्तृता प्रवीण होने का प्रमाण है।

(4)

लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, तब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

प्रसंग–

यह वह समय है जब स्वतंत्रता का आंदोलन जोर पर था, गांधी जी की अगुवाई में राजनैतिक स्तर पर बार्ताएँ चल रही थीं। अँग्रेज की कानून दर कानून बनाकर सुशासन को बहाल करने का स्वाँग रच रहे थे। उसमें सबसे अधिक कष्ट जमींदारों को हो रहा था जो अँग्रेजों के पक्षधर थे। उन्हें स्पष्ट नजर आने लगा था कि अँग्रेज टिक नही सकते, भारत में लोकतंत्र बहाल होने से रोका नहीं जा सकता। लोकतंत्र की स्थापना के साथ ही उनकी जमींदारी और जमींदार का रुतबा समाप्त हो जाएगा। उसी सम्भावना को व्यक्त करते हुए वे अपने अन्दर के सुप्त मानव को टोहने की कोशिश कर रहे थे। स्मरण कर रहे थे अपने किए अत्याचार को।

वह मानते हैं कि जमींदारों को किसानों का शोषण नहीं करना चाहिए तथा जमींदारी प्रथा को समाप्त हो जाना चाहिए। स्वेच्छा से कोई अपनी जमींदारी नहीं छोड़ेगा किन्तु साफ दिखाई दे रहा है कि आने वाले समय में जमींदारी प्रथा समाप्त हो जाएगी सरकार का स्वार्थ अब जमींदारों से नहीं सध रहा है। अतः अब इस व्यवस्था का समापन निकट ही है।

व्याख्या–

रायसाहब होरी को सम्बोधित कर रहे हैं कि लक्षण दिखाई देने लगे हैं कि जमींदारी बहुत शीघ्र समाप्त हो जाएगी। मैं स्वयं चाहता हूँ कि शोषण और दमन की। यह व्यवस्था शीघ्र ही समाप्त हो जाए। मुझे विश्वास है कि जिस दिन जमींदारी प्रथा समाप्त होगी। उस दिन हम समझेंगे हमारी मुक्ति हो गई। हम परिस्थितियोंवश ही जमींदार बने हुए हैं तथा परिस्थितियाँ ही हमें विवश करती हैं कि हम किसानों के साथ, ज्यादतियाँ करें, उनका शोषण करें इत्यादि। जब तक हम इस जमींदारी व्यवस्था के बन्धन में बँधे रहेंगे तब तक इन समस्त पाप कृत्यों को करने के लिए विवश रहेंगे; और मानव कहलाने के अधिकारी न बन सकेंगे। जब तक यह धन हमारे पास रहेगा तब तक, हम सच्चे अर्थों में मानव न बन सकेंगे, यह सम्पत्ति रूपी बेड़ी हमारे पैरों में पड़ी है अर्थात् सम्पत्ति एक ऐसा अभिशाप

हमारे लिए बन गई है जो हमें अकर्मण्य एवं पतित बना रही है। हम स्वयं इससे मुक्ति पाने के इच्छुक हैं। दूसरों की मेहनत श्रम पर जीवित रहना मानवता के विरुद्ध है। इसे हम अच्छी तरह जानते हैं अतः स्वयं इस व्यवस्था के विरोधी हैं।

विशेष–

1. प्रेमचन्द ने सन् 1936 में ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि जमीदारी व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। अन्ततः सन् 1952 में स्वतंत्र भारत में जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई।
2. प्रेमचन्द जमींदारी प्रथा के विरोधी थे क्योंकि यह कृषकों का शोषण करने वाली व्यवस्था थी।
3. एक जमींदार के मुख से ही जमींदारी प्रथा की बुराइयों को कहलवाकर उन्होंने जमींदारी उन्मूलन की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है।
4. भाषा चलती हुई एवं सजीव है। लगता है कि जैसे रायसाहब ने होरी की नम्रता में जन–मन की बात पकड़ ली है और उसको प्रभावित करने के लिए उसके ही मन की बात कह दी है।

(5)

" वैवाहिक जीवन के प्रभाव में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्यान्ह का प्रखर ताप आता है, क्षण–क्षण पर बगूले उठते और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है, शीतल और शांत जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिनभर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहाँ नीचे का जन–रव हम तक नहीं पहुँचता" रचनाकार का जीवन उतार–चढ़ाव का संगम होता है। अपने जीवन में उसे ऐसे अवसरों से गुजरता है जहाँ उसे जीवन सत्यों का अनुभव होता है। इन अनुभवों को भोगते–भोगते वह अनेक बार उच्छ्वसित हो उठता है और इस उच्छ्वास में उसके मौलिक सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक चिन्तन को पंख लग जाते हैं, ऐसे अवसर पर उसका चिन्तक भावुक और काव्यत्मक हो उठता है। यही वह अभिव्यक्ति है जिसे डॉ. मेहता के मुख से विवाह के विषय में अभिव्यक्त करते हैं। यह प्रेमचन्द की भाषा–शैली का ही नहीं, उनकी भाषण कला का भी परिचायक है।

प्रसंग–

प्रस्तुत पंक्तियों में प्रेमचन्द जी वैवाहिक जीवन की तुलना दिन के प्रातः मध्यान्ह और संध्या से करते हुए उसका विश्लेषण करते हैं। दिन के तीन चरण होते हैं– प्रभात काल, मध्यान्ह काल एवं सायंकाल। उसी प्रकार वैवाहिक जीवन के भी तीन चरण हैं। वस्तुतः यह दाम्पत्य के सम्पूर्ण जीवन को समेटे हुए है।

व्याख्या–

वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ उषा काल के समान अनेक प्रकार से इच्छा, आक्षांओं और स्वप्नों के सुख की लालसा जगाता है। प्रातः काल के समय उदीयमान सूर्य समस्त वातावरण को सुनहरी किरणों से रंजित कर देता है; उसी प्रकार वैवाहिक जीवन का आरम्भ काल एक प्रकार की मस्ती भर देने वाला होता है तथा जीवन विविध ा सुखों से पूरित प्रतीत होता है। हृदय रूपी आकाश गुलाबी मादकता से भरा होता है। नाना प्रकार की मधुर इच्छाएँ नवदम्पति के हृदय में रहती हैं।

प्रेम से परिपूर्ण हृदय, जब आपस में मिलते हैं, तब सारी चिन्ताओं को भूल आनन्द भोग में लीन हो जाते हैं। परन्तु बाल–सूर्य जब ऊपर उठता हुआ आकाश के मध्य में आकर मध्यान्ह का सूर्य बन जाता है तब उसकी वे सुखद रंगीन किरणें अग्निबाणों के समान दाहक हो उठती हैं। वात्याचक्र क्षण–क्षण पर उठते हैं और खिन्न करते हैं। लू चलने लगती है और पैरों के नीचे से जमीन खिसकती प्रतीत होती है। यह मध्याह्न जीवन–संग्राम में प्रवेश का सूचक है।

विवाह के उपरांत जब गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ सामने आती हैं तो उसकी आकांक्षा–आकाक्षाओं का कल्पनालोक हवा हो जाता है। उसे आनन्द भोग के उस मनोहर एवं मादक वातावरण से बाहर निकलकर जीवन के संघर्षपूर्ण क्षेत्र में जुटना पड़ता है और यह क्षेत्र संकटों से परिपूर्ण रहता है। उसे अथक परिश्रम करते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। क्षण–क्षण पर संघर्ष करना पड़ता है। जैसे तेज गर्मी में हवा के बगूले उठते हैं, धैर्य डगमगाने लगता है, वही दशा दम्पति की तब होती है जब अनेक पारिवारिक दायित्व उसे उठाने पड़ते हैं। वह प्रौढ़ होने की प्रक्रिया में होता है।

वैवाहिक जीवन का तीसरा चरण विश्राममय संध्या की भाँति है। तब वह एक थके हुए क्लांत पथिक की भाँति विश्राम करना चाहता है। उसके वैवाहिक जीवन का यह भाग विश्रामदायिनी सन्ध्या के समान होता है। संघर्ष की ज्वाला शान्त हो जाती है और व्यक्ति शांत का अनुभव करता है तथा अपने विगत जीवन की बातों की चर्चा करने में यह बताने में कि उसने किन–किन विघ्न–बाधाओं पर किस प्रकार विजय प्राप्त की है, आनन्द का अनुभव करता है। उस समय वह उस व्यक्ति के समान होता है जो किसी पर्वत के बहुत ऊँचे शिखर पर बैठा हो तथा एक तटस्थ द्रष्टा की भांति नीचे घटित होने वाली घटनाओं को देख रहा है तथा उसे नीचे संसार में जग–जंजाल में उठता शोर सुनाई ही नहीं देता। यह अवस्था गार्हस्थ्य जीवन से निपट लेने की अवस्था है, जहां वह वार्धक्य में प्रवेश कर जाता है।

विशेष–

1. सामान्य जन के जीवन सत्य का कथन है।
2. दिवस के साथ सांगरूपक द्वारा वैवाहिक जीवन की समता बहुत ही सार्थक एवं सटीक है।
3. भाषा अलंकारिक है। छायावादी शैली का प्रभाव है। प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी, नाटक में तथा मैथिलीशरण गुप्त ने पंचवटी में इसी प्रकार सन्ध्या को विश्रामदायिनी कहा है। भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक चिन्तन के दर्शन होता है।
4. प्रेमचन्द्र उच्छ्रवसित हैं और काव्यात्मक हो उठे हैं।
5. हृदय के आकाश में रूपक अलंकार।
6. मानो हम किसी ऊँचे पर्वत पर... उत्प्रेक्षा अलंकार।
7. अलंकारिक एवं लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया गया है। प्रेमचन्द ने यह अनुभव निश्चित रूप से अपनी पहली शादी के विफल होने पर अनुभव किया होगा।

(6)

"मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणिमात्र का धर्म है। समाज की ऐसी

व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें कभी सुखद नहीं हो सकती। पूँजी और शिक्षा, जिसे मैं पूँजी का ही एक रूप समझता हूँ, इनका किला जितनी जल्द टूट जाए, उतना ही अच्छा है। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं उनके अफसर और नियोजक दस–दस, पाँच–पाँच हजार फटकारें यह हास्यास्पद भी हैं और लज्जास्पद भी।"

प्रसंग–

रायसाहब अमरपाल सिंह के यहाँ दशहरे के अवसर पर आयोजित उत्सव में शहर में रहने वाले मित्र एकत्र हुए। इनमें प्रो. मेहता, सम्पादक ओकारनाथ जी आदि लोग हैं। मित्रों में परस्पर वार्तालाप होने लगा। प्रोफेसर मेहता का विचार है कि यदि रायसाहब किसानों के शुभेच्छु हैं तो उन्हें स्वतः किसानों के साथ रियायत करनी चाहिए। रायसाहब का विचार है कि हम लोग इच्छा हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकते। शासन चाहे तो जमींदारी समाप्त कर दे तभी किसानों का शोषण बन्द हो सकेगा।

व्याख्या–

रायसाहब कहने लगे कि मैं मानता हूँ कि किसी भी व्यक्ति को दूसरे के परिश्रम पर जीने का कोई अधिकार नहीं। जो दूसरे के श्रम पर अपना पोषण करता है, वह तिरस्करणीय है। प्रत्येक मनुष्य के लिए कर्म करना, परिश्रम करके अपनी जीविका उपार्जित करना अपेक्षित है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था टिक नहीं सकती जिसमें कुछ लोग मौज करें तथा गरीब मरते–खपते रहें। शोषण पर आधारित यह व्यवस्था अधिक समय तक नहीं चल सकती।

कुछ लोग पूँजी के बल पर शोषण करते हैं तो कुछ दूसरे लोग शिक्षा के बल पर। शिक्षा भी पूँजी का ही एक रूप है। अतः इनका किला जितनी जल्दी टूट जाए उतना ही अच्छा है। जो लोग मेहनत करने पर भी भरपेट रोटी नहीं जुटा पाते और उनके अफसर एवं मालिक स्वयं दस–दस हजार या पाँच– पाँच हजार वेतन पावें; यह हमारे लिए लज्जाजनक है।

विशेष–

1. रायसाहब की कथनी और करनी में पर्याप्त अन्तर है। वे कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। मेहता की स्पष्टवादिता आहत तो हैं, ही, प्रतिवाद करते हुए प्रत्याक्रमण की मुद्रा में है।
2. रायसाहब जमींदार वर्ग के प्रतिनिधि हैं।
3. किसानों का शोषण रायसाहब जैसे जमींदार करते थे, पर उनकी बातो से पता चलता है कि वे कम्यूनिस्ट विचारधार के कतई नहीं हैं, किन्तु शोषण उनकी मजबूरी है, स्वभाव भी। इसी को मेहता जैसे बुद्धिजीवी धूर्तता मानते हैं। प्रेमचन्द जी इसीलिए रायसाहब को रंगा सियार कहते हैं।
4. भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है। शिक्षा को पूँजी मानकर जैसे वह मेहता को पूँजीपति करार रहे हैं।

(7)

"मुझमें और आपमें अन्तर इतना ही है कि मैं जो कुछ मानता हूँ उस पर चलता हूँ। आप लोग मानते कुछ हैं, करते कुछ हैं। धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं, लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फेलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे–बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैंने बड़े–बड़े धन कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है और आपने भी देखा होगा। रूप के चौखट पर बड़े–बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है?"

प्रसंग–

रायसाहब के यहाँ दशहरे पर आयोजित उत्सव में उनके मित्र सम्मिलित हुए हैं। रायसाहब एवं मेहता के बीच बहस हो रही थी। उठा–पटक के बीच सम्पादक जी एवं मेहता में वाद–विवाद प्रारम्भ हो गया। सम्पादक जी को यह जानकर आश्चर्य हो रहा था कि मेहता जी के विचार में छोटे–बड़े सब रहे हैं और रहेंगे। मेहता जी अपनी बात को विस्तार से स्पष्ट करते हुए सम्पादक जी से कह रहे हैं प्रेमचन्द जी ने इस अवतरण में उसी तथ्य को प्रस्तुत किया है। यह अवतरण में स्पष्टतः मेहता रोष में है और जबर्दस्त रूप से रायसाहब और अन्यों के उनके प्रोफेसर होने अथवा अच्छा वेतन पाने पर शिक्षा के पूँजी रूप आरोप पर प्रत्याख्यान कर रहे हैं। यह प्रत्याख्यान प्रेमचन्द के बुद्धिजीवियों के पक्ष में भी एक दलील है।

व्याख्या–

मेहता जी कहते हैं कि मुझमें और आपमें मोटा अन्तर यह है कि मेरी कथनी एवं करनी में फर्क नहीं है। आपकी कथनी तो कुछ है और करनी कुछ और हैं। संसार में छोटे–बड़े का भेद केवल धन से नहीं होता है।

धन को तो आप किसी अनुचित विधि से बराबर–बराबर बाँट सकते हैं किन्तु और चीजों को बाँटना सम्भव नहीं है। प्रतिभा, रूप, बल, चरित्र को बराबर बाँट पाना हमारी शक्ति से बाहर है। कोई छोटा–बड़ा केवल धन से ही नहीं होता प्रतिभा, रूप, बल, चरित्र आदि से भी छोटा–बड़ा होता है बड़े–बड़े सम्पत्ति वान भी भिखारी के सामने हाथ फेलाते देखे जाते हैं राजे–महाराजे भी रूप लावण्य के सामने हाथ जोड़े देखा गया है। छोटे–बड़े का अन्तर धन से ही नहीं होता, अपितु इनसे भी होता है।

विशेष–

(1) मेहता जी गोदान में प्रेमचन्द के प्रवक्ता हैं।

(2) मेहता जी की कथनी–करनी में एकरूपता है।

(3) मेहता जी की मान्यता है कि छोटे–बड़े का भेद धन से ही नहीं, अतः बातों से भी होता है।

(4) नाक रगड़ना मुहावरा है। प्रेमचन्द्र ने अपनी भाषा में मुहावरों का सटीक प्रयोग किया है। इसमें ओंकारनाथ की तथाकथित पत्राकारी पर लताड़ लक्षित है और उसका रायसाहब की पक्षधरता भी।

(8)

बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं, समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधुओं–महात्माओं के सामने इसलिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी सम्पत्ति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छु का डंक तोड़ देना चाहते हैं।

प्रसंग–

रायसाहब के यहाँ दशहरे के अवसर पर धनुष यज्ञ का आयोजन है। उनके शहर के मित्र पधारे हैं। इन्हीं में से एक हैं प्रो. मेहता हैं जो यूनीवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक हैं। रायसाहब और मेहता जी के बीच में जो बहस छिड़ी हुई थी। उसी का विवरण इन पंक्तियों में प्रस्तुत है। रायसाहब बुद्धिमान व्यक्तियों को समाज का नेतृत्व

देने के पक्ष में तो हैं किन्तु उन्हें सम्पत्ति नहीं देना चाहते, क्योंकि वह सम्पत्ति ही उन्हें बिगाड़ देती है। पूर्व में ही वह कह चुके हैं कि शिक्षा भी पूँजी है।

व्याख्या–

इन पंक्तियों में मेहता के पाण्डित्व से आहत–चित्त रायसाहब जैसे संयत होने का यत्न कर रहे हैं। वह कहते हैं कि समाज में बुद्धिमान व्यक्ति यदि निःस्वार्थ भाव से समाज को आगे बढ़ाने के लिए आगे आते हैं तो उनकी प्रभुता स्वीकार करने तथा उनको नेतृत्व देने के लिए हम तैयार हैं। समाजवाद का आदर्श है कि उसमें बुद्धिमान व्यक्तियों के नेतृत्व में सम्पूर्ण समाज का तथा सामाजिक व्यवस्थाओं का संचालन किया जाए। प्रत्येक समाज में बुद्धिमान व्यक्तियों को महत्व प्राप्त है और रहेगा किन्तु उन बुद्धिमान व्यक्तियों को अपना स्वार्थ त्यागना पड़ेगा। वे यदि बुद्धि का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करेंगे तो समाज को सही नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा।

अपने कथन के समर्थन में रायसाहब साधु महात्माओं का उदाहरण देते हैं कि हम लोग साधुओं एवं महात्माओं के सामने इसलिए सिर झुकाते हैं क्योंकि उन्होंने स्वार्थ त्याग दिया है, वे समाज के कल्याण में रत हैं। इसी प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति यदि स्वार्थ त्याग कर समाज को नेतृत्व देता है तो हम उसे नेतृत्व सौंपने को तैयार हैं; उसे सम्मान देने को भी तैयार हैं किन्तु हम उसे सम्पत्ति कदापि नहीं देना चाहते। बुद्धि का अधिकार और सम्मान तो व्यक्ति के मर जाने पर उसके साथ समाप्त हो जाता है लेकिन सम्पत्ति तो उसके उत्तराधिकारियों को मिल जाती है जिसके बल पर वे बुद्धिमान न होते हुए भी सम्मान, अधिकार और नेतृत्व प्राप्त कर लेते हैं जो उनके पिता को प्राप्त था। यह सम्पत्ति ही विष बनकर समाज में अपना प्रभाव डालती है। लोग सम्पत्ति के बल पर अपने अधिकार को सुरक्षित रखना चाहते हैं; जैसे बिच्छु का जहर उसके डंक में होता है और डंकतोड़ देने पर फिर वह खतरनाक नहीं रह जाता। उसी प्रकार हम बुद्धिरूपी बिच्छु के सम्पत्ति रूपी डंक को तोड़ देना चाहते हैं जिससे वह समाज के लिए घातक न हो सके।

विशेष–

(1) सामाजिक विषमता पर प्रेमचन्द्र के अपने विचार व्यक्त हैं।

(2) रायसाहब विचारवान और समझदार व्यक्ति हैं।

(3) बुद्धिमान व्यक्ति को धन देने का विरोध किया गया है क्योंकि धन उसे भ्रष्ट कर देता है।

(4) बिच्छु और डंक क्रमशः बुद्धिमान एवं उसके धन के प्रतीक हैं। प्रतीकात्मक शैली में रायबहादुर की कटुता शिष्ट अपशब्द की वाचक बन गई है।

(5) भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है।

(6) गांधी जी की इच्छा थी कि निस्वार्थ एवं प्रबुद्ध व्यक्ति शासन सूत्र सम्हालें एवं धनार्जन से दूर रहें। उन्हीं के सोच शब्द दिए गए हैं।

(9)

"जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े–बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी मार ले जाता है, जिसके पास रुपए हैं। रुपए के जोर से उसके लिए सभी सुविधाएँ तैयार हो जाती है। बड़े–बड़े पण्डित, बड़े–बड़े मौलवी, बड़े–बड़े लिखने और बोलने वाले जो अपनी जवान और कलम से पब्लिक को जिस तरफ चाहे फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं।"

प्रसंग–

रायसाबह के यहाँ आयोजित उत्सव में शहरी मित्र मेहता, मौलवी, मियाँ, खुर्शेद, खन्ना, तंखा पत्रकार औकारनाथ आदि थे। उत्सव के बाद शिकार पाटी का आयोजन किया गया जिसमें दो–दो व्यक्तियों की टोली बना दी गई, मिर्जा खुर्शेद और मिस्टर तंखा की एक टोली बनाई गई। मिस्टर तंखा एक प्रकार के दलाल थे जो चुनाव के समय हर तरफ से फायदा उठाते थे जबकि मिर्जा खुर्शेद कौंसिल के मेम्बर थे। दोनों में चुनाव की बाते होने लगीं। मिस्टर तंखा ने कहा कि इस बार तो चुनाव आपके लिए भी मुश्किल होगा; यह सुनकर मिर्जा ने विरक्त मन से कहा कि मैं अबकी बार चुनाव में खड़ा न होऊँगा, क्योंकि इस डेमोक्रेसी (लोकतन्त्र) से मेरा विश्वास उठ गया है। डेमोक्रेसी की बुराइयों का उल्लेख करते हुए मिर्जा खुर्शीद मिस्टर तंखा से कहते हैं–

व्याख्या–

इस लोकतन्त्र (डेमोक्रेसी) में मेरा विश्वास ही नही है। मैं तो इस डेमोक्रेसी को जनता की आँखों में धूल झोंकने वाला एक नाटक समझता हूँ।

वस्तविकता यह है कि डेमोक्रेसी कहने को ही प्रजातन्त्र है, चलन में, व्यवहार में, वह व्यापारियों एवं जमींदारों का ही राज्य है। इस पद्धति में चुनाव वही जीतता है, जिसके पास रुपए होते हैं। पैसे के बल पर वह सभी सुविधाएँ जुटा लेता है। पण्डित, मौलवी, भाषण लिखने वाले, भाषण देने वाले सब पैसे से खरीद कर ऐसी व्यवस्था की जाती है जिससे जनता को अपनी ओर मोड़ लिया जाए। सच तो यह है कि सभी धन के आगे अपना मस्तक झुकाते हैं।

विशेष –

(1) प्रेमचन्द ने इन पंक्तियों में डेमोक्रेसी के रूप–स्वरूप का चित्रण किया है। जैसा वह अनुभव कर रहे थे।

(2) प्रजातन्त्र में चुनाव धन के बल से जीते जाते हैं, प्रेमचन्द का यह कथन वर्तमान चुनाव व्यवस्था पर भी तीखी टिप्पणी है।

(3) भाषा सरल सहज प्रवाहपूर्ण है जिसमें उर्दू एवं अँग्रेजी के प्रचलित शब्द प्रयुक्त हैं।

(10)

धनिया का वह मातृस्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस बीत यौवना में भी वही कोमल हृदय बालिका नजर आई जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सज्य था जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेट लेता था।

प्रसंग–

होरी का पुत्र गोबर भोला की विधवा पुत्री झुनिया से प्रेम कर बैठा। झुनिया पाँच माह की गर्भवती है। गोबर झुनिया को रात में धनिया के पास भेजकर भाग गया। उस समय होरी खेत पर पड़ी मड़ैया में सर्दी से ठिठुर रहा था कि धनिया उसके पास आई और उसे सारा हाल बताया। पहले तो होरी ने कहा कि मैं झुनिया को घसीटकर बाहर निकाल दूँगा, किन्तु जब धनिया ने उसे ऊँच–नीच समझाई और कहा कि उसका पांव भारी है– कहीं कुछ और आफत न आ जाए। यह कहकर होरी के गले में हाथ डालकर धनिया ने उसे अपनी सौगन्ध देते हुए कहा कि तुम्हें मेरी सौंह उस पर हाथ मत उठाना।

व्याख्या–

धनिया ने होरी को मनाने के लिए ही जैसे उसके गले में बांहें डालकर उसके क्रोध को शान्त कर स्नेहित बनाने का प्रयास किया था। धनिया बाहर से कितनी ही कठोर भले हो, उसका हृदय मक्खन की तरह स्निग्ध एवं कोमल है। आज वह झुनिया को इसी मातृस्नेह के कारण अपने घर में आश्रय दे रही थी और अपने पति होरी को भी इस बात के लिए तैयार कर रही थी कि वह झुनिया से कुछ न कहे और घर में आश्रय दे दे। भले ही धनिया शरीर से जर्जर थी, किन्तु उसके हृदय में जो मातृस्नेह का दीपक जल रहा था उसका अलौकिक प्रकाश उसके मुख पर आभा एवं तेज बनकर फेल रहा था। माँ होने का बोध ममता बनकर झलक उठा।

होरी का विगत यौवन भी धनिया के साथ ही सचेत हो उठा और उसे उस धनिया में जिसका यौवन बीत चुका था, आज भी वही कोमल बालिका नजर आई जो पच्चीस वर्ष पहले उसके जीवन में आई थी। धनिया का यह आलिंगन अपरिमेय वात्सल्य से युक्त था जो सारे कलंक बाधाओं एवं परम्पराओं को अपने अन्दर समेटे हुए था।

विशेष–

1. प्रेमचंद ग्रामवधू के प्रणय निवेदन का छुककर पान कर रहे हैं। ऐसे अवसरों पर कलाकार को जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वही ब्रह्मानन्द है।
2. नारी हृदय की कोमलता मातृ–स्नेह वंचित प्रेमचन्द भली प्रकार करते हैं।
3. प्रेमचंद का ही कथन है कि स्त्री सबसे पहले माता है और उसके बाद कुछ और है, और वह भव यहां व्यक्त है।
4. धनिया का आलिंगन वाम्सल्य से प्रेरित था। झुनिया को आश्रय देने के लिए मानो धनिया ने होरी पर खुद को वार दिया हो। यहीं लगता है कि वात्सल्य रति का ही एक अंश है।
5. भाषा सरल सहज प्रवाहपूर्ण है।

(11)

"वह अभिसार की मीठी स्मृतियां याद आई जब वह अपने उन्मत्त उसांसों में, अपनी नशीली चितवनों में मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे से घोंसले में एकान्त जीवन काट रही थी। वहां नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें, मगर बहेलिए का जाल और छल भी तो वहां न था। गोबर ने उसके एकान्त घोंसले में जाकर उसे कुछ आनन्द पहुंचाया था या नहीं, कौन जाने, पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह संभल गया। भागता हुआ कोई सिपाही मानों अपने एक साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।"

प्रसंग–

झुनिया के गर्भवती हो जाने पर गोबर उसे लेकर अपने घर तो आ गया किन्तु माता–पिता के डर से स्वयं घर नहीं गया। झुनिया को घर भेजकर छिप गया और जब उसने देखा कि झुनिया को धनिया का आसरा मिल गया, तब एक–एक कर उसे झुनिया के साथ बिताए पल याद आने लगे। इन पक्तियों में उपन्यासकार भावुकता से भर उठा है।

व्याख्या–

गोबर को झुनिया के साथ किए गए मधुर मिलन की मीठी बातें याद आ रही थीं जब वह उन्मत्त सांसों से तथा नशीली चितवन से झुनिया की ओर देखता हुआ मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। यौवन योग की उन्मत्तता कितनी मादक है, यहां रचनाकार अनुभव कर रहा है।

अपने पति की मृत्यु के उपरान्त विधवा झुनिया एकान्त जीवन बिता रही थी। वह एकान्त घोंसले में वियोगी पक्षी की भांति व्यतीत जीवन था। वहां न कोई उन्मत्त नर आग्रह करता था और न वहां वह प्रसन्नता थी जो पक्षिशावकों के कलरव (सन्तान) से होती है। उसे अपने प्रेमजाल में फंसाने वाला कोई शिकारी भी वहां न था। वह जैसे–तैसे अपना एकान्त जीवन (वैधव्य) व्यतीत कर रही थी। अब गोबर ने उसके जीवन में आकर उस एकान्त को भंग कर दिया। उसे पता नहीं कि गोबर ने उसके जीवन में आकर उसे कुछ आनन्द प्रदान किया था या नहीं, किन्तु इतना वह अवश्य कह सकती है कि गर्भवती बनाकर उसे गोबर ने विपत्ति में अवश्य डाल दिया था। कौमार्य हरण का सुख और उसका प्रतिफल रूपी जीवधारण के बीच युवती का द्वन्द्व मार्मिक है।

गोबर अनुभव करता है कि उसने झुनिया को जिस विपत्ति में डाल दिया है, उसमें सहायता करना उसका कर्तव्य है। वह झुनिया को उसके भाग्य पर छोड़ने के लिए तैयार नहीं। इस प्रकार झुनिया को अकेला छोड़ जाना ठीक नहीं है। अतः वह वापस भी लौट आया और द्वार की झिरी से यह देखने लगा कि क्या धनिया ने उसे घर में आश्रय दिया है या नहीं, किन्तु जब धनिया ने झुनिया को पूरी तरह ठीक तरह घर में रख लिया तो वह निश्चिन्त होकर शहर चला गया।

विशेष–

1. गोबर के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से प्रेमचन्द ने गोबर को अपराधबोध से बचा लिया। गोबर के चरित्र में प्रेमचंद ने इस बहाने दाम्पत्य का शील और उत्तरदायित्व की भावना भर दी है।
2. मानसिकता को उभारने का प्रेमचन्द का कवित्वमय हो उठना मोहक बन पड़ा है। इसी में और ऐसे कथनों में उनके कलम की सफलता को देख जा सकता है।
3. झुनिया को विपत्ति में डालने का अनुभव गोबर के चरित्र की संवेदनशीलता दर्शाता है।

(12)

मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजुबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है।" देह पुरुष की रहती है पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत ही से क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटाएगा, तो शून्य हो जाएगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा।" वह तेज प्रधान जीव है और अंधकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांतिसम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण हो जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुल्टा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है उस स्त्री की ओर जो सर्वांश में स्त्री हो।"

प्रसंग–

मिर्जा खुर्शद द्वारा आयोजित कबड्डी को देखने के लिए प्रो. मेहता एवं मिस मालती भी पधारी हैं। उन दोनों की निकटता को देखकर जब मिर्जा जी ने यह पूछा कि आप मालती से विवाह कब कर रहे हैं, तब मेहता

जी कहने लगे कि मैंने अपनी कल्पना में स्त्री के जिन गुणों की कल्पना कर रखी है, उनमें से एक भी गुण मालती में नहीं है। जब मुझे अपनी कल्पना के अनुरूप स्त्री मिल जाएगी तब मैं विवाह अवश्य कर लूंगा। इसी सन्दर्भ में वे आदर्श नारी की अपनी परिकल्पना पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि।

व्याख्या–

मेरी कल्पना में नारी त्याग और बफादारी की प्रतिमा है। मैं मानता हूं कि स्त्री को पुरुष के लिए अपना सर्वस्व त्यागने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। एक सच्ची पत्नी अपने अहंभाव को पूरी तरह मिटाकर पति की आत्मा का अंश बन जाती है, पति में लय हो जाती है; अपनी अस्मिता को पूर्णतः विलीन कर देती है। पति–पत्नी का सम्बन्ध ा इतना गहन एवं अन्तरंग होता है कि वे दो शरीर एक प्राण हो जाते हैं। शरीर पुरुष का रहता है पर आत्मा स्त्री की होती है। वस्तुतः पत्नी अपने सर्वस्व को पति पर लुटाकर पति की आत्मा पर शासन करती है।

सहज ही प्रश्न है कि खुर्शीद को प्रश्न करने का अवसर न देकर, मेहता कहते हैं कि प्रश्न पूछा जा सकता है कि पुरुष अपने को क्यों नहीं मिटाता, स्त्री से ही ऐसी आशा क्यों करती है? सच यह है कि अपने को मिटा सकने की सामर्थ्य पुरुष में होती ही नहीं, यह सामर्थ्य केवल स्त्री में होती है। वह पति के लिए अपने को मिटा देगी किन्तु पुरुष जब अपने को मिटाएगा तो शून्य में विलीन हो जाएगा क्योंकि इस प्रक्रिया में वह वैराग्य लेकर किसी गुफा में बैठकर एकान्त साधना करता हुआ स्वयं को परमात्मा में विलीन करने का प्रयास करेगा।

पुरुष तेज प्रधान जीव है, अपने अज्ञान के कारण वह स्वयं को ज्ञानी मानता है। जब वह अपने को मिटाने का संकन्प लेता है तो सीधा ईश्वर में विलीन होने की कल्पना करता है। सच तो यह है कि स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति सम्पन्न है, सहनशील है। क्षमा, दया, करुणा, धैर्य, सहिष्णुता, शांति जैसे गुण नारी के स्वाभाविक गुण हैं। यदि नारी के ये गुण किसी पुरुष में आ जाते हैं तो लोग उसे महात्मा कहने लगते है जबकि नारी में पुरुष के गुण (अवगुण) अर्थात क्रोध, निर्दयता, निष्ठुरता, असहनशीलता, अहंकार, कठोरता आदि आ जाए तो वह नारीत्व का पतन माना जाता है तथा ऐसी नारी को लोग कुलटा तक कहने लगते हैं।

मेहता कहते हैं कि पुरुष उसी नारी की ओर आकृष्ट होता है, जिसमें नारी सुलभ गुण दया, क्षमा, करुणा, स्नेह, ममत्व, त्याग, बफादारी, सहनशीलता, धैर्य आदि होते है।

विशेष–

1. प्रेमचंद के नारी सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति है।
2. उपन्यास में पात्र की मनोवृत्ति के अनुकूल दृष्टिकोण अपनाया जाता है, उपन्यासकार को इसकी छूट है तथापि मेहता के विचारों को प्रेमचन्द का मत मान लिया गया है।
3. नारी के लिए प्रेमचन्द जी कहते है कि त्याग, बफादारी, क्षमा, सहनशीलता, करुणा, धैर्य, स्नेह आदि गुण आवश्यक मानते हैं।
4. ये विचार आदर्श भारतीय रमणी के गुणों को व्यक्त करते हैं। जरूरी नहीं कि मेहता के विचार प्रेमचन्द के विचार हों। उपन्यासकार की परिस्थिति के अनुकूल ही नहीं, व्यक्ति की तत्कालीन सामाजिक स्थिति की यह मांग हो सकती है। स्पष्टतः यह मालती के शील, स्वभाव के नकार में यह बात कही गई हो जो अन्ततोगत्वा मालती के परिष्कार में निमित्त बना।
5. माना जाता है कि मेहता जी प्रेमचन्द के प्रवक्ता है। प्रेमचन्द ने अपने विचार उन्हीं के माध्यम से अभिव्यक्त किए हैं।

6. भाषा, सरल सहज एवं प्रवाहपूर्ण है।

(25)

"मैं आपसे पूछता हूं, क्या बाज को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देता है कि वह मानसरोवर की आनन्दमयी शांति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे। और अगर वह शिकारी बन जाए तो आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतने तेज चंगुल नहीं हैं, उतनी तेज आंखे नहीं है, उतने तेज पंख नहीं हैं और उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियां लग जाएगी, फिर भी वह बाज बन सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है मगर बाज बने या न बने, वह हंस न रहेगा। हंस जो मोती चुगता है।"

प्रसंग–

'वीमेंस–लीग' नामक संस्था में नारियों की स्थिति पर वीगेन्स लीग में प्रो. मेहता भाषण दे रहे है। अपने भाषण में वह नारी को पुरुष से श्रेष्ठ निरूपित करते है। नारी की स्वना पुरुष की स्वना से भिन्न है। उसका कार्यक्षेत्र भी उससे भिन्न है और दायित्व भी भिन्न है।

फिर भी यदि वह पुरुष का अनुकरपा करने का प्रयास करेगी तो इसमें अपने स्त्रियोचित गुणों से हाथ ध ाो बैठेगी। वह अपने कथन को हंस एवं बाज के प्रतीकों का सहारा लेकर वे स्पष्ट कर रहे हैं।

व्याख्या–

नारी हंस के समान सात्विक प्रवृत्ति वाली है जबकि बाज एक शिकारी पक्षी है और उसकी प्रवृत्ति पुरुष समान हिंसक है। मेहता जी नारियों से प्रश्न करते हैं कि क्या बाज को चिड़ियों का शिकार करते हुए देखकर हंस को भी चिड़ियों का शिकार करने लग जाना चाहिए? ऐसा करने के लिए उसे मानसरोवर की अपनी शांति त्यागनी पड़ेगी। बाज बनने के लिए सक्षम पंजों, नुकीली चोंच एवं हिंसक प्रवृत्ति आवश्यक होती है। बाज को ये सब हथियार परमात्मा ने दिए हैं क्योंकि वह एक शिकारी पक्षी है किन्तु हंस के पास न तो नुकीले पंजे हैं, न पैनी चोंच है, न उतनी तेज आंखे हैं, न उतना तेज उड़ सकने योग्य पंख हैं और न उसमें हिंसक प्रवृत्ति है। इन औजारों का संचय करने में उसे संदिया लग जाएगी फिर भी इस बात में सेदेह है कि वह बाज बन भी पाएगा या नहीं। इतना अवश्य है कि वह हंस भी नहीं रहेगा उसकी मूल प्रवृत्तियां एवं मूल स्वभाव नष्ट हो जाएगा। स्पष्टतः मेहता स्त्री में पुरुष की आक्रामक और हिंसक प्रवृत्ति का निषेध करता है। इसी तरह पुरुष में भी उस जैसी शांति नहीं आ सकती।

प्रतीक शैली में लेखक यह कहना चाहता है कि विधाता ने स्त्री और पुरुष को अलग–अलग बनाया है। यदि स्त्री पुरुष का स्वभाव अंगीकार कर लेगी और आचरण करने का प्रयास करेगी तो अपनी शांति खो देगी। इस प्रयास में वह अपने उन गुणों को खो देगी जिनके कारण समाज में उसे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। पुरुष की तामसी वृत्ति स्त्री में नहीं आ सकती। अतः स्त्रियों को पुरुष का अंधानुकरण करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

विशेष–

1. प्रतीकात्मक शैली में नारी पुरुष की प्रकृति में भेद बतलाया गया है। हंस स्त्री का प्रतीक है जबकि बाज पुरुष का प्रतीक है। हंस की भांति नारी में शांति, धैर्य और विवके होता है।
2. नारी के गुण पुरुष से अलग हैं। शारीरिक रचना की विभिन्नता के कारण ही नारी भावनात्मक रूप से मृदुल और पुरुष कठोर होता है।

3. प्रेमचंद के विचार से नारी और पुरुष के कार्य क्षेत्र उनकी शरीरिक और मानसिक प्रकृति के कारण भिन्न–भिन्न है।

4. भावावेश में वक्तृता कौशल के चमत्कार में प्रतीक की संगति से श्रोता का ध्यान हट जाता है किन्तु ध्यान से देखने पर लगता है हंस और बाज के प्रतीक तो क्रमशः नारी और पुरुष के लिए ग्रहण कर लिए जाते हैं किन्तु चिड़ियों के लिए कोई उपमेय स्पष्ट नहीं होता। बाज (पुरुष) तो स्त्री का शिकार कर सकता है किन्तु हंस (स्त्री) पुरुष का शिकार कर सकती है, ऐसा इंगित प्रतीत नहीं होता तथापि चिड़ियों के रूप में भोली स्त्री और भोले पुरुष दोनों को उपमेय बनाया जा सकता है।

5. प्रेमचंद के नारी सम्बन्धी विचार आदर्शोन्मुखी हैं। वे नारी द्वारा कर्तव्य से अधिकार प्राप्ति के समर्थक थे। नारी– पुरुष समानता जैसी कोई कल्पना उनके मन में नहीं थी।

6. भाषा अलंकारिक है। अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(14)

"कौन कहता है कि आपका कार्य–क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता है। हम सभी पहले मनुष्य हैं; पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है। वहीं हमारी सृष्टि होती है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं। अगर वह क्षेत्र परिमित है तो अपरिमित कौन सा क्षेत्र है? क्या वह संघर्ष, जहां संगठित अपहरण है? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उस कारखानों में जाना चाहती हैं, जहां मनुष्य पीसा जाता है, जहां उसका रक्त निकाला जाता है?

प्रसंग–

मेहता जी वीमेंस लीग में भाषण देते हुए यह बताने लगे कि महिला समाज की उन्नति पुरुषों के कार्यक्षेत्र में पदार्पण करने से नहीं होगी। उनका कार्यक्षेत्र सीमित है। वे जननी हैं, बच्चे को जन्म देती हैं, उसका पालन पोषण करती हैं, उन्हें संस्कार देती हैं। उनका कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है और उनका दायित्व भी बहुत बड़ा है। अपने इस कार्यक्षेत्र को छोड़कर उन्हें कारखानों में पुरुषों के साथ काम करने की सोचना भी नहीं चाहिए।

व्याख्या–

मेहता जी कहते हैं कि जो लोग यह कहते हैं कि नारी का कार्यक्षेत्र संकुचित है, वे वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। सच तो यह है कि नारी का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और उसमें उसे अपनी अभिव्यक्ति का अपनी क्रियात्मक भूमिका प्रदर्शन का पूरा–पूरा अवसर प्राप्त है। हम सब मानव पहले हैं, उसके बाद कुछ और हैं। हमारे जीवन का बहुत बड़ा भाग घर में व्यतीत होता है। इतना ही नहीं, जीवन के अन्य सारे क्रिया व्यापार भी घर में ही सम्पन्न होते है। यदि इतना व्यापक क्षेत्र होते हुए भी कोई घर को सीमित क्षेत्र कहता है तो फिर उससे पूछना चाहिए कि अपरिमित क्षेत्र कौन सा है? स्त्रियां यदि अपने इस कार्यक्षेत्र (घर) को छोड़कर कारखानों में काम करने जाना चाहती हैं, तो क्या वे समझती है कि उन्हें वहां अपने को अभिव्यक्त करने का भरा–पूरा अवसर प्राप्त होगा? कारखानों में अधिकारों का अपहरण होता है, वहां सृजनात्मक भूमिका के लिए कोई स्थान नहीं; अवसर तो है ही नही।

मेहता जी का विचार है कि स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर है। उसी के कारण उन्हें गृहणी की संज्ञा दी गई है। उनका यह कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है। उन्हें कारखानों, कार्यालयों में काम करने की बात नहीं सोचनी चाहिए। वहां उन्हें उनके अधिकारों का शोषण होगा। घर तो वह कारखाना है जहां मानवों का निर्माण होता है, ऐसे कारखाने

(रूपी घर) को छोड़कर यदि वे उन कारखानों में जहां शोषण एवं उत्पीड़न है, जाना चाहती हैं, तो कुछ अच्छा करने नहीं जा रही है। वहां मनुष्य बनाए नहीं जाते, मनुष्य पीसे चूसे और मिटाए जाते हैं।

विशेष

1. प्रेमचंद जी की मान्यता है कि नारी और पुरुष का कार्यक्षेत्र अलग–अलग है। स्त्री जीवन निर्मात्री है। उसका कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक नहीं है।
2. स्त्री का कार्यक्षेत्र घर है तथा उसे चौका–चूल्हा तक सीमित समझना अज्ञान है। मानवीय मूल्यों और संस्कार रोपण का क्षेत्र बहुत व्यापक है।
3. घर को प्रेमचंद एक ऐसा कारखाना मानते हैं जहां मानवों का निर्माण होता है। इसलिए यह उन कारखानों से बेहतर है, जहां वस्तुओं का उत्पादन होता है।
4. वक्रोक्ति अलंकार है।
5. विदेशी शिक्षा के प्रसार और संस्कार ने नारी के सोच को प्रभावित किया है जो नैतिक, सांस्कृतिक और कौटुबिक जीवन के अनुकूल नहीं पाया जाता।
6. भाषा सरल सहज प्रवाहपूर्ण है। इस अवतरण में संस्कृत शब्दों की बहुलता है।

(15)

"सच्चा आनन्द, सच्ची शांति केवल सेवा–व्रत में है, वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्‌गम है। सेवा ही वह सीमेंट है जो दम्पति को जीवन पर्यनत स्नेह और साहचर्य से जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े–बड़े आघातों का कोई असर नहीं होता है। जहां सेवा का अभाव है, वहीं विवाह–विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है। और आपके ऊपर पुरुष जीवन की नौका की कर्णधार होने के कारण जिम्मेदारी ज्यादा है। आप चाहें तो नौका को आंधी और तूफानों में भी पार लगा सकती हैं और यदि आपने असावधानी की तो नौका डूब जायेगी और उसके साथ आप भी डूब जाएगीं।

प्रसंग–

मेहता जी वीमेंस लीग में भाषण देते हुए निरुपित करते हैं कि सच्चा प्रेम वैवाहिक जीवन में ही प्राप्त होता है। नारियां सेवा और त्याग के बल पर ही सारे अधिकार प्राप्त करती हैं। विवाह विच्छेद, परित्याग वहीं देखा जाता है जहां सेवा का अभाव है। नारी को वे पुरुष की जीवन रूपी नौका का कर्णधार मानते हैं जिसकी असावधानी से दाम्पत्य जीवन नष्ट हो सकता हैं।

व्याख्या–

मेहता ने भाषण देते हुए कहा कि मेरे विचार से यदि कोई सच्चा आनन्द प्राप्त करना चाहता है और सच्ची शांति चाहता है तो उसे सेवाव्रत अपना लेना चाहिए। सेवा करने से ही स्त्रियों को सच्चा आनन्द एवं सच्ची शांति प्राप्त होती है। यही नहीं सेवा ही अधिकार का मूल स्रोत है; स्त्रियां परिवार के लिए अपनी सेवा के बल पर सबको इतना प्रभावी और अपरिहार्य हो जाती है। उन्हें स्वतः परिवार में महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त हो जाती है, अधिकार दर अधिकार उनके पास आते जाते हैं; वे शक्तिसम्पन्न हो ही जाती है। परिवार में एकता और विघटन का सूत्र उन्हें हस्तगत हो जाता है। स्वविवेक के प्रयोग की छूट मिल जाती है।

मेहता जी कहते हैं कि पति–पत्नी में स्नेह एवं साहचर्य का सम्बन्ध सेवा के सीमेन्ट से ही जुड़ता है। जैसे दो ईंटें सीमेंट से जुड़कर इतनी मजबूत हो जाती हैं कि उन पर बड़े–बड़े आघातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार पति–पत्नी परस्पर सेवा के सीमेंट से जुड़े होते हैं। उनके दाम्पत्य जीवन में न कभी दरार पड़ती है और न उन पर किसी आघात का कोई प्रभाव पड़ता है।

उन्हीं दम्पतियों में विवाह विच्छेद देखा गया है जहां सेवा का अभाव है जो पति–पत्नी सेवा के सीमेंट से जुड़े हैं, वहां न तो विवाह–विच्छेद है, न परित्याग है और न ही अविश्वास। मेहता जी का विचार है कि नारी वस्तुतः पुरुष के जीवन रूपी नौका की मल्लाह है। अतः उसका महत्व अनिवर्चनीय है। यदि मल्लाह असावधान होगा तो पूरी नौका डूब जाएगी, नौका डूबते ही मल्लाह भी डूब जाएगा। इसीलिए दाम्पत्य जीवन को पुख्ता टिकाऊ और निर्वहनीय बनाए रखने की जिम्मेदारी स्त्रियों पर उनकी सेवाधर्मिता के कारण अधिक है।

विशेष–

1. मेहता जी मालती की बहिन सरोज के उस कथन का उत्तर दे रहे हैं, जिसमें प्रेम विवाह को महत्व देने पर बल दिया गया है।
2. दाम्पत्य जीवन में सेवा का महत्व प्रतिपादित है।
3. सेवा की सीमेन्ट–रूपक अलंकार।
4. दाम्पत्य जीवन एक नौका है जिसमें पुरुष सवार है किन्तु पतवार स्त्री के हाथ में है।
5. दाम्पत्य जीवन मधुर, स्थाई एवं प्रभावी बनाने का दायित्व पुरुष की अपेक्षा स्त्री पर अधिक है– यही प्रेमचंद का कहना चाहते हैं।
6. स्त्री रूपी मल्लाह ही अपनी कुशलता से पुरुष की जीवन नौका पार लगा सकता है।
7. जीवन की नौका–रूपक अलंकार।
8. आंधी तूफान में लक्षणा शक्ति है, अर्थ है कष्ट एवं कठिनाइयों भरा जीवन।
9. भाषा सरल सहज प्रवाहपूर्ण है।
10. प्रेमचन्द प्रेम–विवाह के विरुद्ध नहीं हैं किन्तु विवाह–विच्छेद और परित्याग उनकी विशेष चिन्ता का विषय है। इसी संदर्भ में यह गूढ़ समाज–चिन्तन है।

(16)

"जिसे संसार दुःख कहता है, वह कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि– ये विभुतियाँ संसार को चाहे कितना ही मोहित कर ले, कवि के लिए यहाँ जरा भी आकर्षण नहीं है। उसके मोह और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन विभतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है।"

प्रसंग–

अपने पति खन्ना साहब के व्यवहार से खिन्न गोविंदी घर से निकलकर अपने बच्चे के साथ पार्क में आ गई। वहाँ उसकी भेंट प्रोफेसर मेहता से हो गई। मेहता गोहिवंदी के प्रति आदर भाव रखते हैं। वह उसे भारतीय नारी का आदर्श मानते हैं। मेहता ने गोविंदी की लाक्षणिक भाषा में प्रशंसा की तो गोविंदी भीतर से उल्लसित होकर

उनसे कहने लगी कि आपको तो कवि होना चाहिए था। मेहता के द्वारा यह कहने पर 'दर्शन तो कवित्व की सीढ़ी है,' गोविंदी कहने लगी कि मेरे विचार से तो कवियों को कभी सुख नहीं मिलता। तब मेहता प्रतिवाद सा करते हुए कवि के जीवन का रहस्य समझाने लगते हैं।

व्याख्या–

मेहता गोविंदी से कहते हैं कि संसार जिसे दुःख मानता है, कवि के लिए वही सुख है। सांसारिक लोग धन, ऐश्वर्य, रूप, विद्या, बल, बुद्धि आदि के प्रति आकृष्ट होते हैं किन्तु कवि का आकर्षण इन वस्तुओं के प्रति नहीं होता। उसके मोह और आकर्षण की वस्तुएँ हैं: टूटे हुए हृदय, बुझी हुई आशाएँ, मिटी हुई यादें और हृदय के वे दुख जो आँखों से आँसू बनकर बहते हैं। कवि इन्हीं विभूतियों से प्रेम करता है। कवि का हृदय करुणा और दया से भरा होता है, वह अत्यधिक संवेदनशील प्राणी है। इसलिए उसका आकर्षण पीड़ित, उपेक्षित, निराश, दुखी लोगों के प्रति होता है। इन्हीं को वह अपनी कविता में अभिव्यक्ति देता है। जिस दिन कवि का मन उनसे वितृष्ण हो जाएगा उस दिन वह कवि भी नहीं रह पाएगा। उसकी कवि की आत्मा विसर्जित हो जाएगी।

दार्शनिक एवं कवि का अन्तर बताते हुए मेहता स्पष्ट करते हैं कि दार्शनिक दूसरों के दुख, पीड़ा, निराशा को देखकर इनकी मीमांसा करता है; तटस्थ दृष्टि से इनका विवेचन करता है जबकि कवि दूसरों के दुख और निराशा में लीन हो जाता है। वह उन्हें संवेदना के बल पर स्वयं अनुभव करता है और कविता के रूप में इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि काव्य पढ़ने वाले के हृदय में भी वही अनुभूति पैदा हो जाए, मानवता का प्रकर्ष हो।

विशेष–

(1) कवि, लेखक, रचनाकार, चिन्तक के मन में समय–समय पर विभिन्न अवसरों और आयोजनों पर बड़े ही सुगठिन, सुष्टु और प्रशस्त शब्दावलि में स्फुट विचार आते हैं। ये विचार यथा समय संदर्भ पाकर रचना में अभिव्यक्ति पा जाते हैं। ऐसा ही प्रेमचन्द का यह स्फुट विचार है जो व्यक्त होने के लिए छट पटाता रहा है। गोविन्दी का कवि और मेहता का दर्शनशास्त्री बनना किंचित भी आकस्मिक नहीं लगता।

(2) आम आदमी में और कवि में जो विषयगत भेद है, उसे बखूबी व्यक्त किया गया है।

(3) भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है।

(4) लाक्षणिक भाषा का प्रयोग।

(17)

मैं तो प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ, जो प्रसन्न होकर हंसता है, दुःखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हंसने को लक्षणिक समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है। सरल, स्वाछन्द जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है।

प्रसंग–

मेहता को जब यह पता चला कि गोविंदी मालती के कारण दुःखी है तब उन्होंने उसे आश्वस्त किया कि वह मालती से बात करेगा। गोविंदी को लगता है कि मालती की ओर आकृष्ट होने के कारण उसके पति मिस्टर

खन्ना उससे ढंग का वर्ताव नहीं करते हैं। आज मेहता के समक्ष अपना दुःख प्रकट कर उसे लगा कि शायद मेहता की नजरों में वह गिर गई है। मेहता ने उसके मन के भाव को समझा और उसे हमराज बना लेने की ग्लानि से उबारने का यत्न किया। इसी यत्न–स्वरूप वह अपनी और उसकी सहज,सरल और अकृतिम सोच पर टिप्पणी करते हैं और बताना चाहते हैं कि उसने दुःख प्रकट करके कोई गलती नहीं की।

व्याख्या–

मेहता जी गोविंदी खन्ना से कहते हैं कि वह बनावटी जीवन एवं कृत्रिम व्यवहार का विरोधी है; और प्रकृति का पुजारी है। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य अपने स्वाभाविक रूप में, मेरे सामने आए। अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयास न करे। मानव का यह स्वभाव है कि वह प्रसन्न होकर हंसता है और दुःखी होकर रोता है, क्रोध आने पर मार भी डालता है। कुछ लोग यह उपदेश देते हैं कि हंसना हल्कापन है, रोना कमजोरी है। मैं ऐसे लोगों से कोई संबंध नहीं रखता।

आपने आज मेरे सम्मुख अपना दुःख व्यक्त करके कोई गलती नहीं की। इससे मेरी दृष्टि में आपकी इज्जत और भी बढ़ गई है। मेरे जीवन में सरलता, स्वच्छन्दता एवं शुचिता के लिए स्थान है, न कि कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए। मैं न तो अतीत का भार ढोता हूँ और न भविष्य की आशंकाओं से ग्रस्त रहता हूँ। मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। अतः मैं वर्तमान में ही जीता हूँ।

विशेष–

(1) मेहता पारखी दृष्टि रखता है; सहृदय इतना है कि किसी का भी त्रास देखकर संवेदनशील हो उठता है।

(2) भाषा सरल, सहज, प्रवाहपूर्ण है।

(3) जो भूतकाल से आक्रांत और भविष्य से चिन्तित रहता है, वह प्राकृतिक जीवन जीता ही नहीं। अतः सर्वदा सानन्द रह ही नहीं सकता। इन पंक्तियों में प्रेमचन्द स्वयं ही व्यक्तिरूप में उपस्थित हैं।

(18)

"भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलवे के नीचे दबे पड़े हैं, उठने का नाम ही नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति, मानव–धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी, सहयोग में, भाई–चारे में, वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप–दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है और यह जो ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हंसी आती है।"

प्रसंग–

गोविंदी ने जब मेहता जी को यह बताया कि मालती उसके पति को उससे विमुख कर रही है; अतः आप मालती से मेरे पति को बचाकर मेरे सौभाग्य की रक्षा करें, तब मेहता ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा कि आप निश्चिंत रहें। मैं भरसक प्रयास करूँगा। गोविंदी के द्वारा यह कहने पर कि आपको मेरी यह बात सुनकर न जाने कैसा लग रहा होगा, मेहता कहने लगे कि मैं तो प्रकृति का पूजारी हूँ और मानव को उसके प्राकृतिक रूप में प्रकृत भावनाओं के साथ देखने का अभ्यस्त हूँ। आपने जिस निष्कपट भाव से अपनी चिन्ता को व्यक्त किया, वह किसी स्व–भाव में जीने वाला आदमी ही कर सकता है। मुझे भला लगना कि आपने कोई दुराव–छिपाव नहीं रखा और निःसंकोच

अपने को अभिव्यक्त किया।

व्याख्या–

मेहता जी गोविंदी से कहते हैं कि मैं तो वर्तमान पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखता हूँ क्योंकि भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है और बीती हुई बातों का बोझ अपने ऊपर लादे रहने से हमारी सहन शक्ति क्षीण हो जाती है। हमारी जीवन शक्ति सीमित है, यदि हम उसे भूत और भविष्य में फैला देंगे तो वह इतनी दुर्बल हो जाएगी कि हमारा वर्तमान बिगड़ जाएगा। व्यक्ति को अपना ध्यान वर्तमान पर केन्द्रित रखना चाहिए। उसे न तो भविष्य की आशंकाओं से ग्रस्त रहना चाहिए; और न ही अतीत कीयादों में उस शक्ति को क्षीण करना चाहिए।

हमारी जो शक्ति मानव जाति के सेवा और सम्मान में लगनी चाहिए, परस्पर सहयोग एवं भाईचारे की भावना में लगनी चाहिए, उसे हम पुराने बैर एवं दुश्मनी निकालने में लगा देते हैं। कभी–कभी ऐसा देखा गया है कि लोग इस जन्म की चिन्ता छोड़कर परलोक सुधारने या मोक्ष पाने के प्रयास में रूढ़ियों में फंसकर शोषण और उत्पीड़न का शिकार होते हैं और अभिशाप बने रहते हैं। लोगों को देखकर मुझे हंसी आती है उन्होंने अपना वर्तमान तो बिगाड़ ही लिया है, भविष्य भी चौपट कर रहे हैं

विशेष–

(1) चिन्तक का चिन्तक स्फुट स्वर्ण–किरण अथवा बोध वाक्य बन गया है।

(2) मनुष्य की दुश्चिन्ताओं को लेकर प्रेमचन्द का यह चिन्तन पार्थिव धरातल के सच पर खड़ा है। हमारी दुश्चिन्ताएँ भविष्य को लेकर होती हैं अथवा बीते हुए कल के कुफल से आक्रान्त जबकि हम वर्तमान में कर्मरत होकर सुधरने, सुधारने और सँवरने के उपक्रम से सर्वथा विरत रहते हैं।

(3) परलोक, ईश्वर, मोक्ष जैसे विषयों में फंसकर अपनी, आदमी तेजस्क्रियता और चेतस्क्रियता दोनों को नष्ट करता है

(4) भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है।

(5) कमर तोड़ देना मुहावरा है; अर्थ है– शक्ति क्षीण हो जाना।

(6) प्रेमचन्द की भाषा में मुहावरों का सटीक प्रयोग है। मुहावरों ने कथन में प्रभविष्णुता का समावेश कर दिया है।

(19)

"अज्ञान की भाँति ज्ञान भी निष्कपट और सुनहरे स्वप्न देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़ इतना सजीव होता है कि वह इसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जबाव सदैव पंजों और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध, कितनी अप्राकृतिक है, उसका विचार करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।"

प्रसंग–

मेहता की प्रेरणा से मालती में सेवा भाव विकसित हो गया। वह गांव में जाकर स्त्रियों और बच्चों को स्वास्थ्य की बातें बताया करती है। ऐसे ही वह एक बार मेहता जी के साथ गांव गई और बच्चों एवं स्त्रियों के स्वास्थ्य

की परीक्षा करने लगी। मेहता जी खाट पर बैठे किसानों की कुश्ती देखने लगे। उनके मन में यह बात कौंधने लगी की ऐसे निरीह एवं निर्दोष प्राणियों के प्रति लोग निर्दयता का व्यवहार क्यों करते हैं।

व्याख्या–

मेहता गांव वालों की कुश्ती देख रहे थे। गांव वालों की भोली–भाली और सीधी सच्ची शकलें देखकर उनके मन में विचार आता है कि ऐसे निर्दोष गांव वालों के साथ शिक्षित एवं सभ्य कहे जाने वाले लोग इतना नृशंस व्यवहार क्यों करते हैं। वह दर्शन के प्रोफेसर तो हैं ही, दार्शनिक की भाँति ज्ञान और अज्ञान की प्रकृति और प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने लगते हैं। वह कहते हैं कि अज्ञान निष्कपट और निश्छल होता ही है, सुनहले स्वप्न भी देखता है। ठीक इसी तरह ज्ञान भी निष्कपट और स्वर्णिम स्वप्न देखने का आदी होता है। ज्ञान की मानवता में आस्था अटूट होती है और इसीलिए वह विपरीत आचरण को अमानुषिक करार देता है।

अज्ञानी के स्वप्न यथार्थ जीवन पर आधारित होते हैं, ज्ञानी केवल आदर्शवादी होता है। वह अपने आदर्श की चकाचौंध में यथार्थ की भयंकारता को नहीं देख पाता और जब किसी को अपने आदर्श के प्रतिकूल व्यवहार करते हुए देखता है तो उसको अमानुषीय यानी पाशविक करार देता है। मानवता के प्रति उसकी गहरी आस्था होती है। वह भूल जाता है कि बर्बर निर्बलों पर अपनी बर्बरता बरपाते हैं। उसमें जीवों जीवस्य भोजनम् अथवा जिसकी लाठी उसकी भैंस का नियम चलता है। भेड़ किसी को भी नहीं सताती। भेड़िया का कुछ नहीं बिगाड़ती, परन्तु भेड़िया मौका लगते ही उनको अपने पंजों से फाड़कर और दांतों से काट कर खा जाता है। ज्ञानी अपनी कल्पना के मानवतावाद में समझ ही नहीं पाता कि यथार्थ वास्तविक्ता सदैव तर्कातीत। समझ से परे रही है। वह कभी भी अपने वास्तव में नहीं रही। सदैव कृत्रिम और ओढ़ी हुई रही है। यथार्थ जीवन आदर्श से कोसों दूर रहता है। वह सर्वथा कठिन, समझ में न आ सकने वाला तथा उनके आदर्शवाद से सर्वथा दूर रहने वाला है। आदर्शवादी लोग सम्भवतः यथार्थ की कठोरता को बहुत कठिनाई के साथ समझ पाते हैं।

विशेष–

(1) आदर्श और यथार्थ के बीच रेखा खींची गई है।

(2) चिन्तन के प्रवाह में वक्वृत्ता का पुट स्पष्ट है।

(3) भेड़िया शोषक वर्ग का प्रतीक है तथा भेड़ निरीह शोषित प्राणी का।

(4) भाषा में लाक्षणिकता एवं प्रतीकात्मकता का समावेश है।

(5) ज्ञान का मानवीकरण किया गया है।

(20)

"क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि नारी परीक्षा नहीं चाहती, प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुन्दर को असुन्दर बनाने वाली चीज है, प्रेम अवगुणों को गुण बनाता है, असुन्दर को सुन्दर। मैंने तुमसे प्रेम किया, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुममें कोई बुराई भी है। मगर तुमने मेरी परीक्षा की और तुम मुझे अस्थिर, चंचल और जाने क्या–क्या समझकर मुझसे दूर भागते रहे। नहीं, मैं जो कुछ कहना चाहती हूँ, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूँ, इसलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता है।"

प्रसंग–

प्रो. मेहता मालती के परिवर्तित व्यक्तित्व से बेहद प्रभावित हैं, और अब उससे विवाह के इच्छुक हैं। मालती को मेहता से यह शिकायत है कि उसने उसे सदैव परीक्षा की दृष्टि से देखा है प्रेम की दृष्टि से नहीं। प्रेम में और परीक्षा में बहुत अन्तर है।

व्याख्या–

मालती प्रो.मेहता से शिकायत भरे लहजे में कहने लगी कि क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि कोई भी स्त्री अपनी परीक्षा पसन्द नहीं करती, अपितु प्रेम चाहती है। वह यह कभी नहीं चाहती कि उसके गुण–अवगुण की परीक्षा करे। प्रेमी की दृष्टि परीक्षक की दृष्टि से नितान्त भिन्न होती है। परीक्षक गुणों को भी अवगुण समझ लेता है जबकि प्रेमी को अपनी प्रेमिका के अवगुण भी गुण प्रतीत होंते हैं। उसकी दृष्टि प्रशंसक की दृष्टि होती है। प्रेमी को अपने प्रिय में कोई बुराई नजर ही नहीं आती। मालती मेहता से कहती है कि मैंने आपसे प्रेम किया है। अतः मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकती कि आप में कोई बुराई भी हो सकती है। दूसरी ओर आपने मुझे सदैव परीक्षक की दृष्टि से देखा। मेरी परीक्षा करते रहे और मुझे अस्थिर, चंचल और जाने क्या–क्या समझते रहे। परिणामस्वरूप मुझसे दूर भागते रहे। मैं अस्थिर और चंचल हूं तो इसलिए कि आपसे मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो प्रिया को स्थिर एवं अचंचल बना देता है।

विशेष–

1. प्रेमी एवं परीक्षक की दृष्टि का अन्तर स्पष्ट किया गया है।
2. प्रेमी को अपने प्रिय की बुराई भी अच्छाई–सी लगती है।
3. ग्राम–सेवा में मालती को जो जीवन–दृष्टि प्राप्त हुई, इससे वह स्वयं को और मेहता को अच्छी तरह समझ सकी। इसलिए प्रेम पाकर ही प्रेम का अर्थ समझने लगी है।
4. मेहता की आग्रही दृष्टि को कमजोरी की संज्ञा दी सकती है। मालती का चरित्र सकारात्मक हो सका है।

(21)

संसार को तुम जैसे साधकों की जरूरत है, जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाए, संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है, अन्धविश्वास का, कपट धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त प्रकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहाँ से आएंगे? और अज्ञ प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बन्द कर सकते। तुम्हें वह भोजन भार हो जाएगा। अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ।

प्रसंग–

मालती नहीं चाहती कि मेहता जैसे साधक किसी बन्धन में बंधकर अपने को सीमित कर लें। वह मेहता से कहती है कि विवाह करने से बेहतर है कि हम जीवन पर्यन्त मित्र बनकर रहें और एक साथ मिलकर मानव जाति की सेवा करें।

मेहता मालती की ओर आकृष्ट नहीं थे जब मालती उन पर आकृष्ट थी। अब जब मालती को सेवा का मंत्र मिल गया है तो वह मेहता से विवाह की इच्छुक नहीं, प्रशंसक अब भी है। मेहता अब उससे परिणय के लिए प्रस्तुत

है क्योंकि मालती में उन्होंने अपने विचारानुकूल स्त्री दिखने लगी है।

व्याख्या–

मालती प्रो. मेहता को सम्बोधित करती हुई कहती है कि आप जैसे साधकों, विचारकों एवं चिन्तकों की आज संसार को महती आवश्यकता है। आपके विचार जब संसार में फेलेंगे तो अपनेपन की भावना भी प्रसारित होगी और जब अपनापन फेलेगा तो सारा संसार अपना लगने लगेगा। आज संसार में सर्वत्र अन्याय एवं आतंक की डुंडी पिट रही है। यहां सर्वत्र अन्धविश्वास, कपट, अधर्म, स्वार्थ का बोलबाला है। लोग दुखी हैं और दीन भाव से अपनी रक्षा के लिए पुकार रहे हैं। यदि आप जैसे लोग भी उस पुकार को नहीं सुनेंगे या सुनकर भी अनसुना कर देंगे तो इस संसार का तथा यहां के दीन–दुखियों का क्या होगा? जैसे दुनिया के अन्य लोग उनकी पुकार को अनसुना कर रहे हैं? यदि आप भी उस ओर से अपने कान बन्द कर लेंगे तो आपको स्वयं अपना जीवन बोझ लगने लगेगा। मेरा तो मत है कि आपने जो विद्या–बुद्धि पाई है और जो मानवता आपके हृदय में जाग्रत है, उसे दुगने उत्साह से मानव जाति की सेवा में लगाइए तभी मानव जाति का कल्याण हो सकेगा, आपको भी आत्मिक शान्ति प्राप्त होगी। विवाह करके हम जिस सीमित दायरे में बंध जाएंगे उसमें सेवा और त्याग की ये वृत्तियां उत्कर्ष प्राप्त नहीं कर सकेगी। हम एक दूसरे के लिए भले अर्पित हो जाए, मानवता के लिए अर्पित नहीं हो सकेंगे।

विशेष–

1. प्रेमचन्द का विचार है कि बुद्धिजीवियों को अपनी विद्या–बुद्धि का उपयोग मानव जाति की सेवा एवं लोक कल्याण में करना चाहिए।
2. सरिता के सुस्थिर जल प्रवाह की तरह वक्तृत्व में प्रवाह उसे मर्मस्पर्शी बनाता है।
3. मालती गोदान का एक गतिशील चरित्र है। वह युग सन्धि की प्रतीक है जिसमें पीर्वात्य और पाश्चात्य का समन्वय है। प्रारम्भ में वह तितली जैसी दिखाई गई है किन्तु मेहता के सम्पर्क में आकर उसका जीवन सेवा एवं त्याग से ओत–प्रोत हो गया।

6.4 इकाई सारांश

महत्वपूर्ण अवतरण सामान्यतः वे विशिष्ट अवतरण हैं जो कथाकार के गूढ़ चिन्तन के परिणाम हैं जिन्हें उसने पात्रां को विशिष्ट परिस्थितियों में डालकर यथास्थान संजो दिया है। कालान्तर में यही सूक्ति की तुल्यता प्राप्त कर लेते हैं। ये अवतरण होरी, धनिया, मेहता, मालती, रायबहादुर आदि के व्यक्ति को मुखर करते हैं। ये लेखक का पूर्व–चिन्तन है जिसे उसने विभिन्न अवसरों पर विभिन्न स्थितियों में अर्जित किया है और कथा–संयोजन के संयोजन के दौरान कथा में विनिविष्ट कर दिया है। स्वतंत्र–चिन्तन होने के कारण ही ये आवेशमय हैं, गंभीर हैं और गूढ़ भी।

6.5 अपनी प्रगति जाँचिए

प्र.1 किसान पक्का स्वार्थी होता है' इस होरी के चरित्र पर बताइए–

– भोला गाय लिए आ रहा है। होरी को बछिया गाय भा गई। उसकी गाय पालने की अभिलाषा जाग उठी है। उसने तुरन्त भोला को आदर–भाव से राम–रहीम की और फिर गाय की बात छेड़ दी। भोला के मन की बात जानकर उसे पूरा करने का आश्वासन दे डाला। ऋण चुकाने की सामर्थ्य न होने पर भी गाया का सौदा कर डाला।

प्र.2 किसान की सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है, प्रेमचन्द द्वारा वर्णित रूपक के आध ार पर विवरण कीजिए–

– जैसे वृक्ष फल देते हैं खद नहीं खाते, उन्हें जनता खाती है, खेती होती है, अनाज होता है, खेत नहीं खाते गाय दूध देती है, खुद नहीं पीती, जनता पीती है। मेघ वर्षा करते हैं, पृथ्वी तृत्त होती है, उसमें उनका कोई स्वार्थ नहीं होता। प्रकृति का समस्त व्यापार परार्थ होता है। किसान का जीवन भी उसी की तरह परार्थ होता है। प्रकृति के संग–संग जीने में किसान में स्वार्थ वृत्ति आ ही नही सकती।

प्र.3 रायसाहब की कथनी–करनी में अन्तर बताइए।

– राससाहब एक ओर कहते हैं कि दूसरों के श्रम पर होने का किसी को कोई अधिकार नहीं जबकि वह स्वयं किसानों के श्रम पर मोटे हो रहे हैं। वे पूँज और शिक्षा के किले ध्वस्त करने के पक्षपाती हैं किन्तु स्वयं स्वार्थवश उसे तोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं। चाहते हैं कि सरकार ही उनसे जमींदारी छीनकर उन्हें श्रमजीवी बनने के लिए बाध्य करे।

प्र.4 समाजवाद का आदर्श क्या है?

– समाजवाद का आदर्श है कि हमारी बुद्धि स्वार्थ से मुक्त हो और तब हम बुद्धि की प्रभुसत्ता स्वीका करें। बुद्धि की प्रभुता उसके स्वाथ से मुक्त होकर आचरण में हो।

प्र.5 बुद्धि के हाथ में प्रेमचन्द सम्पत्ति देने के पक्ष में क्यों नहीं हैं?

– बुद्धि के हाथ में प्रेमचन्द सम्पत्ति देने के पक्ष में इसलिए नहीं हैं क्योंकि बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है किन्तु उसके बाद भी उत्तराधिकारियों के हाथों विष होने का अत्याचार, अनाचार को प्रबल बनाए रखने का काम करती है।

प्र.6 प्रेमचन्द के अनुसार डेमोक्रेसी व्यवहार में बड़े–बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है? स्पष्ट कीजिए।

– डेमोक्रेसी में व्यापारी और जमींदार बाजी माए लेते हैं क्योंकि उनके पास धन है। धन के बल पर वह सुविधाएँ जुटा लेते हैं। पण्डित, मौलवी, लेखक, कलाकार सबको फीतासाह बना लेते हैं। वस्तुतः सोने के देवता के सम्मुख सभी नतमस्तक हैं।

प्र.7 प्रेम और परीक्षा में भेद स्पष्ट कीजिए–

1. प्रेम अवगुण को गुण, परीक्षा गुण को अवगुण बना देती है।
2. प्रेम असुन्दर को सुन्दर और परीक्षा सुन्दर को असुन्दर बना डालती है।
3. प्रेम प्रिय को स्थिर और अचंचल चित्त बनाता हे। जबकि परीक्षा उसे अस्थिर और चंचल बनाती है।
4. प्रेम प्रिय में बुराई की कल्पना कर ही नहीं सकता परीक्षा खोट निकाले बिना रह नहीं सकती।

6.6 नियत कार्य/गतिविधियाँ

यहाँ जो पद व्याख्या हेतु पद दिए गए हैं, उसी प्रकार पाठ्यपुस्तक में दिए गए अन्य पदों की व्याख्या करने का प्रयत्न करें।

म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

तृतीय खण्ड : **उपन्यास : अनामदास का पोथा**

इकाई–7 **हजारी प्रसाद द्विवेदी : परिचय व्यक्ति तथा कृति**

इकाई–8 **अनामदास का पोथा : एक आलोचनात्मक अध्ययन**

इकाई–9 **अनामदास का पोथा : व्याख्या खण्ड**

लेखक

प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल

निदेशक–साहित्य अकादमी

भोपाल

सम्पादक

डॉ. प्रेम भारती

एम. ए. उत्तरार्द्ध : हिन्दी

षष्ठम् प्रश्न–पत्रः **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

तृतीय खण्ड : **उपन्यास : अनामदास का पोथा**

खण्ड परिचय–

एम.ए. उत्तरार्द्ध (हिन्दी) का षष्ठम् प्रश्न–पत्र उपन्यास के अन्तर्गत दो उपन्यासों का आपको अध्ययन करना है। एक गोदान–प्रेमचन्द और दूसरा अनामदास का पोथा–हजारी प्रसाद द्विवेदी। खण्ड एक और दो में आप गोदान के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। खण्ड तृतीय अनामदास का पोथा उपन्यास पर विषय आधारित है। इस उपन्यास का कथानक भारतीय चिंतन मनन के विविध आयामों पर आधारित है। अतः विषय वस्तु की दृष्टि से अन्य उपन्यासों में इस कृति ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। यह खण्ड तीन इकाइयों में है, जिनके शीर्षक तथा उनमें दी गई विषयवस्तु की जानकारी निम्नलिखित अनुसार है :–

इकाई सात में हजारी प्रासद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में जानकारी दी गई है। केवल चार उपन्यासों के रचनाकार होने पर भी उनका अपना उपन्यास साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। अतः इस इकाई में उनकी उपन्यास कला की सामान्य प्रवृत्तियों की चर्चा भी की गई है।

इकाई आठ में अनामदास के पोथे का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। जिसके अन्तर्गत उपन्यास का कथानक, केन्द्रीय भाव, सांस्कृतिक वातावरण दर्शन, प्रमुख चरित्र, संवाद, भोषा एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य से परिचय कराया गया है।

इकाई नौ व्याख्या खण्ड से सम्बन्धित है। जिसमें अनामदास का पोथा उपन्यास के महत्वपूर्ण अवतरणों की व्याख्या की गई है। जिससे आप उपन्यास में आने वाले गूणार्थ को समझ सकेंगे। साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं भाषा की दृष्टि से यह इकाई अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इकाइयों में बोध प्रश्न दिए गए हैं। अध्ययन के पश्चात उनका सही उत्तर देने का प्रयास कीजिए।

इकाइयों के अंत में संदर्भ–ग्रंथों की सूची भी प्रस्तुत की गई है, जिनका अध्ययन विषयों की विस्तृत विश्लेषण के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : परिचय व्यक्ति तथा कृति

सरंचना –

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी : व्यक्ति–परिचय

7.4 हजारी प्रसाद द्विवेदी : कृति परिचय

7.5 हजारी प्रसाद द्विवेदी की उपन्यास कला सामान्य प्रवृत्तियाँ

7.6 इकाई सारांश

7.7 अपनी प्रगति जाँचिए

7.8 नियत कार्य/गतिविधियाँ

7.9 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

7.10 बोध प्रश्नों की उत्तरमाला

7.11 संदर्भ ग्रन्थ

7.1 उद्देश्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : व्यक्ति तथा कृति के संदर्भ में इस इकाई की विषय–वस्तु से अध्येता को–

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त होगा
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी की कृति से संबंधित जानकारी मिलेगी।
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी की उपन्यास कला की सामान्य प्रवृत्तियों की जानकारी उपलब्ध हो सकेगी।
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को संदर्भित ग्रंथों से विस्तृत जानकारी मिल सकेगी।

7.2 प्रस्तावना

हिन्दी जगत में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं मे लिखी गयीं उनकी पुस्तकें भारतीयता के उन्मेष में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्हीं रचनाओं में उनकी औपन्यासिक कृति 'अनामदास का पोथा' का विशिष्ट स्थान है। हिन्दी के उपन्यासों में यह कृति अपनी

विशिष्ट विधा और विषय–वस्तु की दृष्टि अपूर्व है। इस कृति में भारतीय मनन–चिंतन के जिन आयामों को दर्शाया गया है, वह श्लाध्य है।

7.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्ति–चित्र

7.1 जन्म परिवार–

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म श्रावण शुक्ल एकादशी संवत् 1964 विक्रमी, ईसवी सन् 1907 में हुआ था। ओझवलिया ग्राम का उपग्राम आरत दुबे का छपरा, जिला बलिया उत्तर प्रदेश इनका जन्म–स्थान था। इनके प्रपितामह आरत दुबे बिहार प्रान्त के छपरा जिले से आकर यहाँ बसे थे। अपने ज्योतिष–ज्ञान के बल पर उन्होंने ओझवलिया ग्राम में और उसके पास–पड़ोस के क्षेत्र में पर्याप्त धन–मान अर्जित किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का सहपाठी नगीना हरिजन बताता है कि– ''एक बार उनके घर पर गिद्ध बैठ गया था, इस कारण उन लोगों ने नया घर बनवाया था।'' यही निवास 'आरत दुबे का छपरा' नाम से अभिहित हुआ, जो बाद में 'आरत दुबे का छपरा' नाम में बदल गया। इन आरत दुबे की मृत्यु के बाद इस परिवार की आर्थिक दशा निरन्तर बिगड़ती चली गई।

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के नामकरण की भी रहस्ययुक्त कहा है। उन्होंने स्वयं नाम की चर्चा करते हुए लिखा है–'मेरा जन्म तुलसीदास की भाँति मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ था। उसका सांकेतिक अक्षर 'ये' है। संस्कृत में 'ये' से बनने वाले शब्द कम ही है। मेरी पत्री बनाने वाले पण्डित अवश्य चक्कर में पड़ गए होंगे। बहुत बुद्धि लगाकर उन्होंने नाम रखा था– 'येन नाथ' यह 'येन नाथ' नाम वैद्यनाथ में बदल गया। परन्तु इनके जन्म के बाद अर्थ–संकट–ग्रस्त परिवार को अप्रत्याशित रूप से एक हजार रूपयों की प्राप्ति हुई थी। जमीन के मुकदमें में उलझे उनके पिता श्री अनमोल द्विवेदी को इस राशि से बहुत राहत मिली। घर–गाँव के लोगों ने इस आकस्मिक अनपेक्षित लाभ को नवजात बालक वैद्यनाथ के भाग्य का सुफल माना और इनके पूर्वनाम वैद्यनाथ को बदलकर नया नाम हजारी प्रसाद रख दिया गया। नक्षत्र–नाम के स्थान पर विरूद्ध नाम विख्यात हो गया। इस विरूद्ध नाम का अर्थ है– सहजावस्था देने वाली शक्ति का ही नाम हजारी है। सहज शब्द गुण परह है। 'ह' हठयोग और 'ज' जय योग का समन्वित रूप है। हजारी क्रिया परक है। 'ह' और 'ज' का समन्वय करने वाली देवी का नाम हजारी है। हजारी प्रसाद अर्थात् देवी का प्रसाद। इस नामार्थ का स्पष्टीकरण देते हुए श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–'' यह नाम इसलिए नहीं पड़ा है कि यह किसी तन्त्र–शक्ति देवी के साथ सम्बद्ध था बल्कि इसलिए कि गांव–घर के लोग प्रसन्न थे कि मेरे जन्म के समय एक विषम संकट ही नहीं टला था कुछ हजार रूपये की आमदनी भी हो गई थी। मुझे यह नाम 'विरूद्ध' के रूप में मिला और अब तो यह गले पड़ गया है। पण्डितों से तो सिर्फ इतना मालूम हुआ कि इसका अर्थ भी है– काफी अच्छा अर्थ जो शक्त मत की त्रिपुरा है, वैष्णव मत की राधा है और योगियों की भाषा में हजारी है, मैं उन्हीं देवी का प्रसाद हूँ।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के पिता का नाम श्री अनमोल दुबे और माता का श्रीमती ज्योतिष्मती देवी था। उनके पिता दो भाई थे–अनमोल दुबे और जगन दुबे। अनमोल दुबे के चार पुत्र हुए– हजारी प्रसाद, रमानाथ, पृथ्वीनाथ और रवीन्द्रनाथ। जगन दुबे के दो पुत्र हुए– विश्वनाथ और नवनाथ। गॉव में आजकल नवनाथ दुबे का परिवार रहता है और हजारी प्रसाद द्विवेदी का परिवार काशी–वासी है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का विवाह सन् 1927 में श्रीमती भगवती देवी के साथ हुआ था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आठ सन्तानों ने जन्म लिया था। चार पुत्र और चार पुत्रियाँ। उनकी एक छोटी पुत्री की मृत्यु बाल्यवस्था में हो गई थी। उन्होंने श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखा था– ''बीच में एक छोटी लड़की की मृत्यु हो जाने के कारण अशान्त हो गया था।'' इनके परिवार का विवरण निम्नानुकूल है–

(1) ज्येष्ठ पुत्र श्री जगदीश द्विवेदी (बबूआ) मिर्जापुर में इन्जीनियर है।

(2) पुत्री इन्दुमती (पुतुल) प्रख्यात विद्वान डॉ. दशरथ ओझा की पुत्र वधु हैं।

(3) पुत्री मालती (तितिल) अपने पति के साथ शिक्षण–संस्थान हैदराबाद में कार्यरत हैं।

(4) पुत्री भारती मिश्रा (मुन्नु) के पति कलकत्ता में उच्च पद पर कार्यरत हैं।

(5) पुत्र मुकुन्द द्विवेदी (लालजी) को पिता का साहित्यिक दाय प्राप्त है। वे दिल्ली के एक कालेज में अध्यापन कर रहे हैं।

(6) पुत्र सिद्धार्थ द्विवेदी शिक्षक हैं।

(7) पुत्र आनन्द द्विवेदी विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके व्यापार करते हैं।

पत्नी, पुत्रों, पुत्रियों, वधुओं, पौत्रों और पौत्रियों से भरा–पूरा परिवार श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का आनन्द–वन है। उनके परिवार जैसा जीवन का सुख, संतोष और माधुर्य कम ही परिवारों में हो सकता है। उनका सुखद पारिवारिक जीवन उनकी साहित्य सेवा में सदैव सहयोगी रहा है।

7.2 सामाजिक परिवेश–

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रपितामह श्री आरत दुबे प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। उन्होंने अपने ज्योतिष–ज्ञान के माध्यम से पर्याप्त धन–मान अर्जित किया था। परन्तु उनके अवसान के बाद इस परिवार की आर्थिक दशा खराब हो गयी थी। ज्योतिष–ज्ञान इस परिवार की सम्पन्नता का आधार था इसलिए श्री हजारी प्रसाद के पितामह ने कामना की थी–''इस लड़के (हजारी प्रसाद) को ज्योतिष पढ़ाओ तो शायद रूठी लक्ष्मी प्रसन्न हो।'' श्री द्विवेदी जी एक ऐसे परम्परावादी और कट्टर सनातनी परिवार में जन्मे थे, जिसे रूढ़िवादी कहा जाना अनुचित न होगा। ऐसी कट्टरता का सामाजिक खान–पान की विशेष सीमाओं में रहना अनिवार्य था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान को एक भेंट में बताया था–''हमारे विद्यालय के एक छात्र ने कुर्ता पहन कर खाना खा लिया, उसे भ्रष्ट घोतिष कर दिया गया।'' इस सामाजिक कट्टरता का प्रभाव आचार्य द्विवेदी के जीवन पर बहुत समय तक बना रहा। वे शांति–निकेतन में भी स्वयं–पाकी थे।

आचार्य हजारी द्विवेदी को अपने जन्म–स्थान से बहुत ममत्व था। उन्होंने ग्राम के आस–पास के स्थानों को पुनर्नवा में चित्रित करके अमरता प्रदान की है। परन्तु वे ग्राम के वातावरण को प्रपंच–युक्त मानते थे। धर्मयुग को दी गई एक भेंट में उनके ग्राम–प्रधान रामप्रीति पाण्डेय के अनुसार वे गाँव का हाल–चाल पूछते रहते थे। मैं जब भी उनसे मिला हूँ, उन्होंने भोजपुरी में ही बातें की हैं। ऐसी ठेठ भोजपुरी को सुनकर हम दंग रह जातें–''का जाई सोसाइटी ठीक नई रबे आज कल गाँव के'' मगर गाँव के प्रति उनका अनुराग सदैव बना रहता था। गाँव के एक–एक व्यक्ति का कुशल–क्षेम पूछते।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत खरीब थी। उन्होंने अपने अर्दली बहादुर को बताया था–''उन दिनों मेरी माली हालत बेहद खराब थी। मैं छठी कक्षा में पढ़ता था। स्कूल–मास्टर को चन्दा देने के लिए मैंने बाबा से रूपए माँगे, तो वे डण्डा लेकर दौड़े थे। मैं बनारस आ गया और सगरा–स्थित स्कूल में पढ़ने लगा। मेरी पढ़ाई, आवास और भोजन की व्यवस्था उसी स्कूल के द्वारा होने लगी।'' उनका सम्पूर्ण छात्र–जीवन अर्थ–संकट से जूझते हुए बीता पर उन्होंने कभी–भी थकना, निराश होना नहीं जाना। वे वीरता से संकटों से जूझते रहे और विजयी भी हुए। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को उन्होंने अपनी आर्थिक विपत्ति के बारे में लिखा था–''थोड़ी अँग्रेजी सीखकर और एडमीशन परीक्षा करके बड़े उत्साह से मैं हिन्दू विश्वविद्यालय के सेन्ट्रल कॉलेज में

इण्टरमीडिएट में पढ़ने लगा। मेरे घर की आर्थिक अवस्था की बात न कहना ही ठीक है। मुझे याद आता है कि पिताजी ने बड़ी कठिनाई के बाद गाँव के एक व्यक्ति से चालीस रूपए उधार लिए थे। यह मेरी इण्टमीडिएट की भर्ती कराई की प्रथम बलि थी। मैं उसके बाद केवल क्लाश में बैठता और फीस नहीं देता था। संस्कृत कॉलेज से 15 रूपए वृत्ति मिलती थी और पाँच रूपए का एक ट्यूशन करता था। कुछ खाता था कुछ बचाकर घर भेज देता। घर की दशा बड़ी दयनीय थी।'' आर्थिक अभाव के कारण उन्हें इण्टर की पढ़ाई छोड़नी पड़ी थी। बाद में उन्होंने इण्टर–बी. ए. की परीक्षाएँ ओरियन्टल रूप में दी थी। उनका छात्र–जीवन अर्थ–संकट का जीवन रहा है। उन्हें इण्टर की प्रायवेट परीक्षा के लिए फ़ार्म फीस जुटाने के लिए सात दिन की कथा बाँचनी पड़ी थी।

शिक्षा पूर्ण करके शांति–निकेतन में शिक्षण–कार्य के मध्य भी उन्हें अर्थाभाव बना रहा था। उन्होंने श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को एक मार्मिक पत्र में लिखा–''मैं अपने जीवन को क्या कहूँ ? केवल किसी प्रकार पेट पालने में ही तो सारी शक्ति खर्च हो गयी। .... दिन–रात इसी उधेड़–बुन में लगा रहता हूँ कि इस भयंकर मँहगी के दिनों में अपना और अपने कहे जाने वालों का पेट कैसे भरूँ।'' युवावस्था में भी उन्हें पारिवारिक खर्च चलाने के लिए कठोर श्रम करना पड़ता था। वे शांति–निकेतन में शिक्षण कार्य करते हुए और आँखें खराब होने के बावजूद लेख लिखने में लगे रहते थे फिर भी 'ज्येष्ठ पूर्णिमा' को ऋण की किस्त न दे सके और अवधि व्यतीत होने पर खेद को ढोते हुए आषाढ़ में चुकाने को तत्पर हैं। बच्चों के पौष्टिक भोजन की कमी को वे सौहृद्र से स्नेह से पूरा करते थे। उन्होंने श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को शांति–निकेतन से लिखा–''यद्यपि दो छोटे–छोटे बच्चों को ही दूध मिल पाता हैं, पर वे हैं स्वस्थ्य और प्रसन्न।'' परन्तु अर्थ–संकोच में भी वे लोभजयी रहे और प्रसन्न और तुष्ट भी। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी द्वारा नियन्त्रण पाकर वे काशी जाने को तो प्रस्तुत हुए परन्तु विश्व–भारती के प्रतिनिधि के रू॰ में नहीं और उनसे मार्ग–व्यय हेतु रूपए न भेजने की प्रार्थना करते हैं। सन्तोष उन्हें सदैव आल्हादित किए रहता था। सन् 49 से उन्हें विश्व–भारती की ओर से सवा सात सौ रूपए मासिक वेतन मिलने लगा था। उन्होंने श्री सुमन जी को लिखा था–''यह वेतन विश्व–भारती में सबसे अधिक है।'' कैसा आत्म संतोष है और कैसा निर्लोभ–भाव।

7.3 शिक्षा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम रैपुरा के प्राइमरी स्कूल में हुई थी। अपने चाचा श्री बांके बिहारी दुबे की देख–रेख में उन्होंने ग्राम बसरिकापुर मिडिल स्कूल से सन् 1920 में मिडिल परीक्षा, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और 15–16 वर्ष की आयु में वे काशी आ गए। उनके चाचा ने उन्हें लघु सिद्धांत कौमुदी रटा दी थी। वे नियमित रामचरित मानस का भी पाठ किया करते थे। उन्होंने कच्ची उम्र में ही उपनिषदों और महाभारत की हिन्दी–टीकाओं को पढ़ा था। श्री बांके बिहारी दुबे मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य से प्रभावित थे। उन्होंने श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी को बचपन में ही 'भारत–भारती' और 'जयद्रथ वध' कण्ठस्थ करा दिया था। उनके पिता श्री अनमोल द्विवेदी उन्हें ज्योतिषी और वकील बनाने के इच्छुक थे। ज्योतिषी सम्भवतः इसलिए कि उन्हें अपने पितामह श्री आरत दुबे के समय की, ज्योतिष के द्वारा आर्जित सम्पत्ति–ख्यात की वापिसी की चाह थी। रूठी लक्ष्मी को वे मनाना जो चाहते थे और वकील शायद इसलिए कि उन्हें जमीन सम्बन्धी मुकदमों में पर्याप्त धन और समय नष्ट करना पड़ा था तथा कई कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा था।

श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी की संस्कृत–शिक्षा पहले जन्म–ग्राम के निकट स्थित 'पाराशर आश्रम' में प्रारम्भ करा दी गई थी। बाद में रणवीर संस्कृत पाठशाला काशी से उन्होंने प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की थी। सन् 1929 में काशी हिन्दू–विद्यालय से साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की और सन् 1930 में ज्योतिषाचार्य की।

श्री द्विवेदी को सबसे अधिक कठिनाई अँग्रेजी के अध्ययन में, आर्थिक संकीर्णता के कारण उठानी पड़ी। वे अँग्रेजी की पढ़ाई को नियमित बनाए नहीं रख सके। किसी प्रकार से फीस की व्यवस्था करके उन्होंने अँग्रेजी की एडमिशन (हाईस्कूल) परीक्षा पास की थी। इण्टर मीडिएट की भर्ती की फीस की व्यवस्था तो पिता ने ग्राम के

किसी व्यक्ति से 40 रूपए उधार लेकर कर दी परन्तु वे मासिक फीस न जुटा सके। श्री द्विवेदी अन्य गरीब छात्रों की भाँति कक्षा में बैठते और फीस नहीं देते थे। साल के अन्त में उनका नाम कट गया। वे प्रिंसिपल ध्रुव जी के कमरे में फीस माँफी के लिए निवेदन करने गए क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि ध्रुव जी के पास जाने से सब ठीक–ठाक हो जाता है। उन्होंने लिखा है– "मैं डरते–डरते प्रिंसिपल ध्रुव के कमरे में गया। वे कुछ झल्लाए हुए थे। शायद मेरे जैसे लक्ष्मी के त्यक्त पुत्र उनकी सेवा में हाजिरी दे चुके थे। मैंने अपनी कहानी सुनाई। वे बीच में झल्लााकर बोल उठे–" जाओ मैं नहीं सुनना चाहता यूनिवर्सिटी गरीबों के लिए नहीं है। जाओ ईंटा ढोओ।".... मैं संस्कृत कॉलेज के हास्टल में लौट आया और खूब रोया। मेरी पढ़ाई वहीं रुक गई। ..... बाद में केवल अँग्रेजी लेकर परीक्षा दी।

स्कूल और कॉलेज की शिक्षा समाप्त करके श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी शांति–निकेतन में हिन्दी–शिक्षक हो गए। यहाँ के वातावरण में उनके चित्त की उदारता का विपुल विकास हुआ। अध्ययन–चिन्तन–लेखन में वे निरन्तर निमग्न रहे। यहीं उनका संस्कार हुआ। वे शांति–निकेतन को द्विजत्व–प्राप्ति का स्थान मानते हैं। उनके जीवन में, चरित्र–निर्माण में और ज्ञान–वर्द्धन में इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने सुमन जी को लिखे पत्र में प्रकट किया है– माँ–बाप की कृपा से थोड़ा पढ़ गया और पढ़ भी क्या गया ? न हिन्दी, न संस्कृत, न अँग्रेजी, न ज्ञान, न विज्ञान। संयोग–वश महापुरूषों के दर्शन हो गए। मैंने अपना आदर्श अच्छा चुना था और भगवत्कृपा से अच्छे आदमियों के बीच पहुँच गया।

श्री द्विवेदी जी को अनेक महापुरूषों का, विद्वानों का, सन्तों का आशीर्वाद पाने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। इनमें से गांधी जी, मालवीय जी, रवीन्द्र नाथ और एण्ड्यूज मुख्य थे। प्रसिद्ध पत्रकार और हिन्दी–विद्वान श्री बनारसी दास चतुर्वेदी का सामीप्य –सम्पर्क और अनुकम्पा उन्हें प्राप्त रही थी। वे श्री चतुर्वेदी को अपना साहित्य–गुरु मानते थे। शांति–निकेतन के श्शान्त, प्राकृतिक और भावना–सम्पन्न वातावरण में उनके जीवन का बीस वर्ष का महत्वपूर्ण समय व्यतीत हुआ था। यह समय उनके ज्ञान–यज्ञ का, संयम–साधना का, तप–त्याग का समय था। इस वातावरण में रहकर द्विवेदी जी सही अर्थ में सन्त हो गए। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के उपदेश " पुरूष वचन अति दुसह स्त्रवन सुन तेहि पावक न दहौगो।" को स्वभावस्थ कर लिया था। काशी विश्व–विद्यालय के ईर्ष्यालु शिक्षकों को अनभल–ताकना तो दूर उन्होंने एक भी शब्द विरोधियों के विरूद्ध नहीं कहा। उनकी इसी श्शांति और श्शीतलता को इंगित कर कुछ आलोचकों ने उनके स्वभाव में भीरूता की झलक पाई। यथा– "किसी से भी न डरना" का मूल देने वाले की वाणी मन्द क्यों? जिसने लोक से भी, निडर होने की बात कही थी, वह पिछले कितने वर्षों से ज्वलन्त समस्याओं पर या तो चुप हैं, या जब वह बोलता है तब कुछ ऐसा जिसमें किसी को भी नाराज न करने की वर्तुलता होती है। न लोक नाराज हो, न वेद नाराज हो, न गुरु नाराज हो, न मंत्र।"

परन्तु यह द्विवेदी जी की भीरूता नहीं वरन् धीरता है उनके मानव प्रेम का परिणाम और अव्यक्त शक्ति के रचना–विधान में अडिग आस्था की उपज है। प्रत्युत यह सम–शीतलता उनके आत्म–शोधन का, शिक्षा का और संस्कारों का सुपरिणाम है।

7.4 पद पुरस्कार

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृत के विद्वान तथा हिन्दी के कुशल शिक्षक, प्रभावी लेखक और आलोचक थे। वे सन् 1930 में हिन्दी–शिक्षक के पद पर, शांति–निकेतन में नियुक्त हुए थे। बाद में उन्होंने शिक्षा–विभाग के अनेक पदों को भूषित किया था। उनकी संप्राप्तियों के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्हें जो कुछ प्राप्त हुआ, अथक श्रम साधना के बाद ही मिला वरन् उनकी उपलब्धियाँ उनके श्रम और योग्यता की तुलना में कम ही थी। वे विभागाध्यक्ष, रैक्टर आदि प्रशासनिक पदों पर कार्यरत रहे किन्तु उनका शिक्षक कभी सुप्त नहीं हुआ। उन्हें शिक्षण–कार्य

में आत्मिक आनन्द आता था। वे छात्रों के आगे अपने ज्ञानागार को लुटाने को उत्कण्ठित रहते थे। वे वास्तव में ऋषि–पम्परा के त्यागी व्यक्ति थे, पदलिप्सा उनमें नहीं थी। उनके शिवमंगल सिंह सुमन को लिखे पत्र से स्पष्ट होता है कि वे काशी हिन्दू विश्व–विद्यालय में रहना तो चाहते थे, उन्हें अपनी मातृ संस्था से मोह तो था, परन्तु वे अध्यक्ष पद पाकर अन्य शिक्षकों की ईर्ष्या के पात्र नहीं बनना चाहते थे। "जो लोग अध्यक्ष पद चाहते हैं, वे अध्यक्ष हो जाएँ और मुझे चुपचाप पढ़ने–लिखने का ही काम दिया जाए। मेरा काम सीधा वाइस चांसलर के अधीन रहे। ... मैं चाहता हूँ कि मेरा सम्बन्ध केवल विद्या, विद्वानों और विद्यार्थियों से मित्रता का सम्बन्ध रहे, प्रतिद्वन्द्विता का नहीं।"

उनका प्रथम और सर्वाधिक महत्व का पद श्शांति–निकेतन में हिन्दी शिक्षक का था। यहाँ उन्हें गुरुदेव और गुरुवर (रवीन्द्रनाथ और एंडयूज) का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। शांति–निकेतन का शिक्षक–पद पाना आचार्य द्विवेदी के लिए एक सुयोग और संयोग था। शांति–निकेत में एक हिन्दी–शिक्षक की आवश्यकता थी। श्री रामचन्द्र शुक्ल ने कहा–"हजारी प्रसाद, तुम इस पद के लिए आवेदन कर दो।" श्री द्विवेदी ने अपनी डिग्रियों में हिन्दी विषय न होने की कमी उन्हें बताई। उन्होंने उनके ज्ञान के कारण हिन्दी–शिक्षण की क्षमता के आधार पर उन्हें प्रोत्साहित किया। "उधर उन दिनों शांति–निकेतन में श्रीमती आशा आर्य नायक रेक्टर थी। वे अच्छे हिन्दी–अध्यापक की खोज में थीं। हरिऔध जी ने उन्हें द्विवेदी जी का परिचय इतने प्रभावपूर्ण श्शब्दों में दिया कि आशा देवी जी बहुत प्रसन्न हुई और उनकी शांति–निकेतन ले गई।" सन् 1930 से 1950 तक द्विवेदी जी शांति–निकेतन में हिन्दी शिक्षक रहे।

सन् 1950 में उनकी नियुक्ति बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष पद पर हुई। यहाँ के ईर्ष्या–दूषित वातावरण में उनका शांति–निकेतन में चित्त नहीं रमा। सन् 1960–67 में वे पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में हिन्दी के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष रहे । सन् 1967 के बाद पुनः काशी लौट आए, जहाँ कुछ समय तक रेक्टर के पद पर कार्य किया। जीवन के अन्तिम दिनों में वे उत्तर–प्रदेश हिन्दी–संस्थान के उपाध्यक्ष पद पर आसीन थे। सन् 1955 में उन्हें राष्ट्रपति के द्वारा राजभाषा–आयोग का सदस्य मनोनीत किया गया। सन् 1945 से 50 तक वे हिन्दी–भवन विश्व–भारती के संचालक रहे और विश्व–भारती विश्व–विद्यालय की एक्जीक्युटिव काउंसिल के सदस्य रहे। सन् 1950–53 तक काशी नागरी–प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष सन् 1950–53 में साहित्य–अकादमी दिल्ली की साधारण–सभा और प्रबन्ध–समिति के सदस्य, नागरी प्रचारिणी सभा के हस्तलेखों की खोज तथा अकादमी से प्रकाशित नेशनल बिब्लियाग्राफी के निरीक्षक सन् 1954 में रहे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को सन् 1949 में उनकी रचना 'कबीर' पर डी. लिट् की मानक उपाधि से भूषित किया, लखनऊ विश्व–विद्यालय ने सन् 1957 में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा 'परम–भूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया। सन् 1962 में पश्चिम बंग–साहित्य–अकादमी द्वारा टैगोर–पुरस्कार से सम्मानित किया गया सन् 1973 से केन्द्रीय साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ। उनके विषय में मनोहर श्याम जोशी का कथन– "अपने जीवन में जो भी उन्होंने पाया है, अपनी योग्यता के अनुपात से कम ही पाया है" पूर्णतया सत्य है।

7.5 संघर्ष

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का बाल्यकाल–छात्रकाल गरीबी में व्यतीत हुआ था। उन्हें विद्याध्ययन में भीषण अर्थ–संकट सहना पड़ा था परन्तु उनका अदम्य उत्साह, असीम आत्मबल हारना तो दूर की बात, झुकना, मुड़ना तक नहीं जानता था। अभावपूर्ण वातवरण की चुनौतियों ने उनकी श्रम–शीलता को, लगन को पूरी तरह निखारा था। विद्यार्थी जीवन में पाँच रूपए मासिक ट्यूशन करके खर्च चलाना और इण्टरमीडिएट की फार्म–फीस भरने हेतु कथा बाँचना उनके श्रम संकल्प के उदाहरण हैं। उन्होंने सन्तत्व का निर्धारण करके रुकावटों को रौंदा है। वे श्रम और लगन के बल पर सच्चे पारस–मणि हो गए थे, जो भी उनके समीप आया, श्रम–शीलता की झलक

मिलती है। "मैं इन दिनों विषम चिन्ता का शिकार बन गया था। सौभाग्यवश मुझे एक काम मिल गया। मेरी आँखें जहाँ तक काम दे सकती थीं, मैं इसी में चिपटा रहा। पत्र लिखना बन्द कर दिया था। कल पूरे सौ रुपए का काम कर चुका हूँ। अगले सप्ताह में भगवान की कृपा होगी तो बीस रुपए का काम और कर लूँगा।"

शिक्षक–जीवन में उन्होंने बड़े पारिश्रम से शिक्षण–कार्य सम्पन्न किया। प्रति सप्ताह 30–35 पीरिएड पढ़ाने के बावजूद परिवार के उदर–पोषण के लिए उन्हें अनेक चिकर तथा यांत्रिक कार्य करने पड़ते थे। उन्होंने एक पत्र में अपने साहित्य–गुरु श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को अपने व्यस्त जीवन का विवरण दिया है–" जो क्लास मैं लेता हूँ उनमें ग्यारह घण्टे संस्कृत के दो घण्टे स्तोत्र के और छः घण्टे गणित पढ़ाने सम्मिलित हैं। हिन्दी का कार्य कुल दस–ग्यारह घण्टे करता हूँ।"

उनके लिए आसन्न कार्य पूजा का महत्व रखता था। कर्त्तव्य–निष्ठा का वे मूर्तिमान स्वरूप थ; उनके सामने जो भी कार्य होता उसे वे पूर्ण मनोयोग से करते थे। शिक्षण के साथ लेखन–सम्पादन का कार्य भी समानान्तर चलता रहता था। शांति–निकेतन से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका विश्व–भारती के लिए भी उन्होंने अथक परिश्रम किया था। प्रथम अंक तो लगभग पूरा ही उनके हाथ का लिख प्रकाशित हुआ। वे विश्व–भारती के माध्यम से बंगाल के हृदय में हिन्दी के प्रति सम्मान बढ़ाना चाहते थे पर हिन्दी–लेखक उन्हें सहयोग नहीं कर रहे थे उनके श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र से उनकी यह पीड़ा प्रकट होती है–" आजकल मैं विश्व–भारती का सम्पादक, लेखक, मैनेजर, क्लर्क, प्रूफरीडर सब हूँ।"

जहाँ तक उनकी संघर्ष–शीलता का प्रश्न है वे शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक आदि कठिनाइयों के समक्ष तो अडिग बने रहे। परन्तु व्यक्ति–संघर्ष को उन्होंने सदैव टाला है। व्यक्ति–विरोध को को टालने की उनकी यह वृत्ति उनके मानवता–वाद की उपज थी। कबीर के अध्येता–घट–घट में वे सांई रमता के मानने वाले द्विवेदी जी प्रतिरोध या प्रतिकार कैसे स्वीकार कर सकते थे। काशी हिन्दू–विद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद पर नियुक्त होने के बाद वहाँ के हिन्दी–शिक्षकों ने द्विवेदी जी का स्तरहीन विरोध किया था। निंदा, प्रवाद गाली–गलौज, ध मकियों का वातावरण उपस्थित हो गया था। द्विवेदी जी ने विरोधियों के प्रति सम्मान–भाव व्यक्त किया तो विरोधि यों पर और भी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। यही उनकी समस्या थी। उनके शुभ–चिंतक उन्हें 'संघर्ष ही जीवन है' का परामर्श देते तो वे कहते–"संघर्ष किस वास्ते ? और बड़ी सिद्धि मिलती हो तो संघर्ष अच्छा है, पर जहाँ कोई बड़ी सिद्धि नहीं है, वहाँ यह संघर्ष अच्छा है, पर जहाँ कोई बड़ी सिद्धि नहीं है, वहाँ यह संघर्ष क्रमशः पतन की ओर खींचता है।" उन्होंने इस पतन–कारी संघर्ष को टालने के लिए काशी विश्व–विद्यालय ही छोड़ दिया। काशी हिन्दू–विश्व–विद्यालय से उनका हटना शायद उनके जीवन का सबसे बड़ा संत्रास और संकट था।" परन्तु इस संकट और संत्रास को द्विवेदी जी ने महादेव के हलाहल–सा हँस कर पान किया, उसे अपने किसी अज्ञात पाप का परिणाम मानकर सहज आस्तिक भाव से और पूर्ण निर्वैरता से सह लिया।

7.6 चिंतन एवं सिद्धांत

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी विचारशील और सिद्धांतवादी व्यक्ति थे। प्रत्येक विषय पर उनके निर्णय सुचिंतित और स्पष्ट हुआ करते थे। साहित्य, धर्म, देश–प्रेम, राजनीति आदि किसी भी क्षेत्र में उनके विचार में द्वन्द्व या अंतर्विरोध नहीं था। वे मानवता के पुजारी थे। उनका साहित्य मानव–महिमा का, मानवोत्थान का लेखा–जोखा है और उसकी प्रगति का साधन भी। उन्होंने शांति–निकेतन से सन् 1936 में श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखा था– " एक ही अंक में विशाल भारत के क्रोपाटकिन और शास्त्री जी के विषय में लिखकर यह सिद्ध किया है कि आपकी दृष्टि में मनुष्यता बड़ी चीज है कोई वाद नहीं।" इसी मानव प्रेम की उपज उनका निर्वैर भाव था। वे अपने अकल्याण–कमियों का भी विरोध नहीं करते थे। "पण्डित जी ध्वंश और उत्सृजन की बात सोच ही नहीं सकते थे। ... अनभल ताकने वाले का भी कोई नुकसान या हानि नहीं कर सकते। उनके साथ जिन लोगों ने बुरा से बुरा व्यवहार

किया, उनके व्यक्तित्व पर कीचड़ उछाल उनकी जीविका पर लात मारी, उनके विकास के सारे रास्ते काँटों से रूंधे उनके विरोध में कुछ करना तो दूर, कुछ कहने का भी उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। काशी हिन्दू–विश्व–विद्यालय से विदा होते समय जाँच समिति के अध्यक्ष के बार–बार पूछने पर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा।

आचार्य द्विवेदी सच्चे देश–भक्त थे। उन्होंने श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को भेजे एक पत्र में इस बात पर दुख प्रकट किया था कि –"यह कैसा अन्धेर है कि अपने देश के विषय में भी हमें अंग्रेजों की लिखी पुस्तकें पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना पड़े।" उन्होंने देश को सम्पन्न संस्कृति का तुमुल गान किया है। वे देश के विखण्डन की संभावना मात्र से व्यथित हो जाते हैं। उन्होंने सन् 1967 में अपने प्रिय छात्र शिव प्रसाद सिंह को लिखे पन्ना में–"आशंका हो रही है कि देश ही खण्ड–खण्ड न हो जाये; देश कहीं वियतनाम के रास्ते तो नहीं जा रहा है।" आचार्य द्विवेदी ने बाणभट्ट की आत्मकथा में भट्टिनी के माध्यम से देश की एकता और संगठन के कार्य के प्रयास का वर्णन किया है। 'चारु चन्द्र लेख' में सात वाहन के चकवर्तित्व की चन्द्र लेखा की कामना और तदनुकूल प्रेरणा में आचार्य द्विवेदी का देश–प्रेम अंतर्निहित है। पुनर्नवा का 'आर्थक' समुद्र गुप्त के राष्ट्रीय–एकता–अभियान का आधार–स्तम्भ है।

हिन्दी भाषा से आचार्य द्विवेदी को बहुत लगाव था। यद्यपि वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा नहीं, मातृभाषा कहने में गर्व का अनुभव करते थे। वे हिन्दी के प्रभाव को, महत्व को, स्वीकार करते हुये उसे उत्तरोत्तर शक्ति–सम्पन्न बनाने की लालसा रखते थे। वे हिन्दी को हास और अश्र प्रेम और रोष, भक्ति और श्रद्धा का रूप देने वाली भाषा मानते थे। वे विदेशी भाषा के विरोधी नहीं थे वरन् उसके वर्चस्व के विरोधी थे। उन्होंने तत्कालीन शिक्षा–मन्त्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद की ढुलमुल भाषा नीति की आलोचना की थी और सांसद श्री शंकर दयाल सिंह को पन्ना लिखा था–"अभी तक देश के प्रभावशाली लोगों ने हिन्दी को मन से स्वीकर नहीं किया है, ऐसा लगता है। ...... एक दिन तीसरे विश्व की भाषा के रूप में हिन्दी आने वाली हैं, आ रही है। आप संसद के प्रभावशाली सदस्य है। आप और अन्य हिन्दी–प्रेमी ऐसा प्रयत्न करे कि देश में हिन्दी को उचित स्थान प्राप्त हो।"

धर्म के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की स्पष्ट मान्यता थी कि धर्म वह है जिससे मानव का आत्यन्तिक कल्याण हो। उन्हें किसी सम्प्रदाय विशेष से घृणा नहीं थी और न वे किसी सम्प्रदाय के अन्धानुयायी थे। उन्होंने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में भट्टिनी के माध्यम से इस्लाम की सरल समाज–व्यवस्था की प्रशंसा की है। वे स्वयं भागवत धर्मानुयायी थे और श्री कृष्णावतार के परम भक्त। पुनर्नवा में 'तपस्विनी' के माध्यम से उन्होंने इस मान्यता को प्रकट किया है।

राजनीति के क्षेत्र में श्री द्विवेदी जी श्रीमती इन्दिरा गाँधी के प्रति सम्मान–भाव रखते और लोहिया जी की नाम पर मुँह बिचकाते हैं। परन्तु प्रजातंत्र के वर्तमान स्वरूप से वे संतुष्ट नहीं थे। राजनीति के द्वारा धर्म को दवा देने के कारण वे क्षुब्ध थे। वे ईमानदारी के ह्रास और तिकड़म के प्रसार को विकृत राजनीति की संज्ञा देते थे। उन्होंने सन् 69 में पं.द्वारिका प्रसाद मिश्र को एक पत्र में लिखा था–"प्रजातंत्र का जो रूप हमारे सामने आ रहा है, सचमुच क्या वही है जिसके लिए पिछली पीढ़ी ने संघर्ष किया था? .... राजनीति के किसी प्रकार के कर्म करे अब दुष्कर्म नहीं माना जाता।

निष्क्षता और न्याय–प्रियता आचार्य के सिद्धान्त थे। वे निर्णय लेने के पूर्व पर्याप्त विचार करते थे परन्तु लेने के बाद अडिग–अटल रहना उनका सिद्धान्त था उन्होंने श्रीं बनारसी दास चतुर्वेदी को एक व्यक्तिगत पत्र में लिखा था–निर्णायक के आसन पर बैठकर, मैं किसी भी व्यक्ति के प्रति संकोच और पक्षपात को पाप मानता हूँ। त्याग को वे मानव गुण कहते हैं। दलितद्राक्षा की भाँति निचोड़ कर सबके लिये निछावर करके परमप्रेयान् को समर्पित हो जाना ही मनुष्य–धर्म है, यह उनकी दृढ़ धारणा है। निष्क्षता और निस्वार्थ–भावना को वे महत्वपूर्ण मानव–गुण मानते है–"अपने आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़ कर, सबके लिए निछावर नहीं कर दिया जाता, तब तक स्वार्थ खण्ड सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता हैं, तृष्णा को उत्पन्न करता है और मनुष्य को दयनीय तथा कृपण बनाता है।"

निर्भयता उनका मूल मंत्र है, अविरोध उनका मानव–प्रेम और ईश्वर भक्ति तथा गुरुदेव–लिखित–"शाबार ऊपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई।" उनका जीवन–दर्शन है।

7.7 स्वभाव–प्रभाव

"स्वभाव अर्थात् अपना–भाव। संसार चक्र में पड़े नाना मनुष्य नाना कारणों से स्व–भावकों तो पहिचान ही नहीं पाते, या पहचान कर भी उपेक्षा कर देते हैं।" परन्तु श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने स्वभाव को पहिचाना था तथा उसे संभाला भी था। उनके स्वभाव की कुछ अपनी विशेषताएँ थीं–विनोद–प्रियता, सरलता, उदारता दृढ़ता, निर्भयता आदि उनके स्वभाव की मुख्य विशषताएँ थीं। विनोदी तो वे इतने अधिक थे कि चिन्ता और विषाद की दशा में भी हास्य के रसायन का उपयोग करते रहते थे। उनका मत था कि – "जो हँस नहीं सकता वह मनुष्य हो नहीं सकता। अपने सब उपन्यासों में उन्होंने हास्य रस की शिष्ट हास्य की सृष्टि की है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में स्थाणीश्वर का वृद्ध पुजारी, बाण की नाटक मण्डली का जटिल वटु और निउनिया का प्रसंग चारूचन्द्र लेख का अलहना बघेल और मैना का प्रसंग, हास्योत्पादक है और पुनर्नवा के माढ्व्य शर्मा हास्य के जीवन पात्र हैं। 'अनामदास का पोथा' जैसी दार्शनिक रचना में भी उन्होंने जाबाला–अरून्धती प्रसंग में हास्य–रस को समाविष्ट किया है। श्री द्विवेदी जी अपने दैनिक जीवन में परिवार–समाज में हास्य के फूल बिखेरते रहते थे। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी जी के विशिष्ट भारत के 'महिला अंक' हेतु माँगे सुझाव के उत्तर में उन्होंने लिखा था–" इस उम्र में महिला–अंक से आपको किसी प्रकार का सम्बन्ध आशंका का कारण है।... पत्थरों के शहर में भी बसन्त का प्रभाव कम नहीं है। " एक बार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी शान्ति–निकेतन आए और अपना पायजामा छोड़ गए। श्री द्विवेदी को उन्होंने पत्र लिखा तो उसमें इस पायजामा को "भागते भूत की लंगोटी" लिखा भला ये हिन्दी के कालिदास कब चूकने वाले थे उन्होंने भी 'किसी की लंगोटी का ढीली होना अच्छी बात नहीं का चुटीला मुहावरा उत्तर में जड़ दिया। कही वे ब्रह्मचारी' श्री सुमित्रानन्दन पंत के सभा के पति होने की स्वीकृति में विनोद–मोद पाते हैं तो कहीं किसी साहित्य मित्र के दांत निकलवाने पर उसे 'वे दाँत मार्गी हो जाने की बधाई का आनन्द लेते देते हैं। रोग मृत्यु से संघर्ष करते हुए दिल्ली के आयुर्विज्ञान संस्थान में भी उनकी विनोदी वृत्ति विराम नहीं करती। वे शरीर में लगाए जाने वाले इंजेक्शनों के प्रसंग में अर्दली बहादुर से कहते हैं–" बहादुर आखिर ये भौंका–भौंका कब ले चली। हम तो उबिया गयिल बानी।"

विनोदी श्री द्विवेदी जितने हैं विनयी भी उससे कम नहीं। कृतज्ञता की तो वे मानो मूर्ति हैं। श्री बनारसी दास को उन्होंने एक पत्र में लिखा था–" आपने मुझे जिस प्रकार सम्मान देकर स्मरण किया वह मुझे अत्यन्त लज्जित करता है ऐसा न लिखा करें। मैं तो आपका सिखाया हुआ ही साहित्य क्षेत्र में आया हूँ।" लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त डी.लिट की मानद उपाधि की बधाई के उत्तर में श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी ने चतुर्वेदी जी को लिखा था– "आपसे लेखक जीवन के आरम्भ में जो शिक्षा मिली थी, वह मेरे जीवन की सबसे बड़ी निधि रही है। वह मेरा ध्रुव–नक्षत्र बनी रही।" इसी प्रकार भारतीय संस्कृति–ज्ञान के सन्दर्भ में, एक बार श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम राहुल सांस्कृत्यायन और वासुदेव शरण अग्रवाल के साथ जोड़ दिया, जो सर्वथा उचित था। इस गौरव गान पर द्विवेदी जी ने संकोच भाव से लिखा– "आप ऐसा कभी न लिखें। यदि मैं कुछ अच्छा कर सका हूँ तो विश्वास मानिए वह मेरे कृपालु गुरुजनों और मित्रों की कृपा का फल है।"

उनकी विनम्रता तथा उदारता दृढ़ता की संगिनी थी। निर्भयता और निर्णय दृढ़ता उनके स्वभाव का अंग थी। निर्लोभता और फक्कड़पन उनकी परम सत्ता में अडिग आस्थ की देन थी। काशी विश्वविद्यालय के ईर्ष्या पूर्ण वातावरण का विवरण उन्होंने श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को दिया अवश्य परन्तु पत्र के अन्त में परम संतोष भी प्रकट किया– "खैर मेरा तो बराबर" यही विश्वास है कि मेरे करते कुछ नहीं होता। सब कुछ कराने वाला पर्दे के भीतर है। सो अभी समझ में नहीं आ रहा कि आगे मेरे लिए क्या विधान है।" वे सब गलत फहमियों, असुविधाओं और

त्रुटियों को भगवान का प्रसाद समझकर ही स्वीकार कर लेते थे। पर्दे के पीछे वाली सत्ता को ही वे कार्य की प्रेरिका मानते थे। "मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, कोई और ही करा रहा है।" यही उनकी मान्यता उन्हें सम्बल प्रदान करती थी।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पर संस्कृत–हिन्दी के अनेक कवियों का विद्वानों का और महापुरूषों का परोक्ष–प्रत्यक्ष प्रभाव था। कवि कालिदास का भाव विधान और बाण का शब्द विन्यास समीप आकर संयुक्त हो गया था तो कबीर की मस्ती को उन्होंने जीवन में संजोया था। उन्होंने अपने को, अच्छे लोगों के सम्पर्क में आने तथा उनका आशीर्वाद अर्जित करने के प्रति भाग्यवान माना है। श्री रामचन्द्र शुक्ल की प्रेरणा से यह बिना हिन्दी पढ़ा विद्वान शान्ति–निकेतन के हिन्दी–शिक्षक पद के लिए प्रार्थना–पत्र प्रस्तुत करता है और हरिऔध के द्वारा प्रभावी परिचय देने के आधार पर इस स्थान पर सुगमता से पहुँच जाता है। श्री मैथिली शरण की भारत भारती को इन्होंने किशोर–काल में ही कण्ठस्थ कर लिया था। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी उनके साहित्य–गुरु थे। शान्ति–निकेतन में गुरुवर {रवीन्द्र नाथ और एंड्रयूज} जैसे सन्तों का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा था तो महात्मा गांधी और मालवीय जी के उच्च आदर्श–समन्वित जीवन ने भी उन्हें प्रेरणा दी।" आधुनिक भारतीय साहित्य में इन्होंने रवीन्द्र नाथ तथा प्रेमचन्द को बहुत महत्व दिया है।" आचार्य बनारसीदास के सन् 1933 में उनके लिए लिखे गये पत्र ने उन्हें लेखन के लिए इतना अधिक प्रोत्साहित किया था कि उन्होंने उसे "सर्टिफिकेट के बण्डल में डाल दिया था।"

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने काशी विश्वविद्यालय न जाने के निर्णय के स्पष्टीकरण में श्री सुमन जी को लिखा था–"मैंने सब समझकर ही काशी न जाने का निश्चय किया है क्योंकि इससे नुकसान होने पर भी एक लाभ हैं जिस कार्य को मैं कर रहा हूँ, उसके लिए मुझे भारतवर्ष के तीन और बाहर के एक ऐसे महापुरुष के आशीर्वाद प्राप्त हैं, जिनकी तुलना में सब लाभ फीके पड़ जाते हैं–रवीन्द्र नाथ, गांधी जी, मालवीय जी और एण्ड्यूज। इसके सामने में संसार के और किसी लाभ को नहीं देख पाता।"

'कबीर' रचना पर 'मंगला प्रसाद' पारितोषक की प्राप्ति के अवसर पर आचार्य के कृतज्ञ हृदय ने स्वीकार किया था कबीर–साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा उन्हें स्वर्गीय गुरुदेव और आचार्य क्षिति मोहन सेन से प्राप्त हुई थी। इन सभी विद्वानों, मनीषियों, कवियों, साहित्यकारों के साहचर्य, सम्पर्क और आशीर्वाद ने उनके जीवन को निखार कर गंगाजल सा निर्मल–पावन बना दिया था। वे सच्चे अर्थ में, चरित्र और कृतित्व से, ऋषि थे। शान्ति–निकेतन में उन्होंने द्विजत्व पाया और ऋषित्व की ऊँचाई तक जा पहुँचे। उनकी उच्चता का महत्व प्रेरक–प्ररित दोनों को प्राप्त है।

7.8 व्यक्तित्व–महत्व

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे गम्भीर विद्वान का बाह्य व्यक्तित्व अत्यन्त सरल और सहज–प्राप्त था। उनको समझने में प्रथम भेंटकर्ता को भी कोई जटिलता नहीं होती थी। उनका देश व्यापी और उनका रूप उनके अन्तर को पूर्णतया प्रकट कर देता था। यदि रूढ़ भाषा में कहें तो उनका जीवन खुली पुस्तक था। श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा ने आचार्य द्विवेदी के व्यक्तित्व का खाका इस प्रकार प्रस्तुत किया है–"गौर वर्ण, दीर्घकाय और भरे शरीर के एक वृद्ध धवल वेश, श्वेत शुभ प्रज्ञोज्वल आंखें, प्रशस्त ललाट और गंभीर मुख–मुद्रा। सबके साथ जब मुक्त अट्टहास जुड़ जाता है, उसका नाम होता है–हजारी प्रसाद द्विवेदी। संस्कृत और हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित गम्भीर चिन्तक और अपने सहज–सरल अट्टहास से दिशाओं को प्रकम्पित करने वाले।" आचार्य जी युवावस्था से ही खादी धारण करते थे। धीरेन्द्र जी भेजा हुआ बलिया का दुबला–पतला बालक शान्ति–निकेतन पहुँचा तब भी शुभ्र खादी के धोती–कुर्ते और दुपट्ट वाले वेश में था। श्री बलराज साहनी ने आचार्य के भोले चित्त की ढीली वेश–भूषा की झाँकी प्रस्तुत की है–"ढीलम–ढालम रहते हैं, हजामत हफ्ते में एक बार से अधिक नहीं बनाते, कई महानुभाव शान्ति–निकेतन से यह धारणा लेकर लौटते हैं कि द्विवेदी वैरागी आदमी हैं। ..... अट्टहास मील के घेरे में कान

चीरता है। गाड़ी {ट्रेन} देखने के अधिक शौकीन है। जीवन से अधिक प्रेम करते हैं। ज्ञान और अनुभव के लिए अतोषणीय भूख है। सुई से लेकर सोसलिज्म तक सभी वस्तुओं का अनुसंधान करने के लिए उत्सुक रहते हैं। बोलने के बजाय सुनना अधिक पसन्द करते हैं।...... प्रशंसात्क पत्रों को फाड़कर फेकी देते हैं।...... रूपये पैसे की परवाह नहीं करते। संस्कृत के समृद्ध साहित्य के अगाध पक्षपात के कारण उन्हें आधुनिक हिन्दी–साहित्य में अनेक त्रुटियाँ नजर आती हैं। कहानी बहुत कम पढ़ते हैं। ज्योतिष व नक्षत्र विद्या के मास्टर हैं।''

उपर्युक्त व्यक्ति–चित्र श्री द्विवेदी जी के व्यक्तित्व का विस्तृत चित्र है। इसके आगे बहुत थोड़ा ही कहने को शेष रह जाता है। उनके अर्दली बहादुर के अनुसार पंडित जी भुलक्कड़ भी कम नहीं थे। वे चश्मा, घड़ी नहीं, मुंह जवानी (दांत) भी घर छोड़कर कालेज चले जाते थे। उनकी पुत्री श्रीमती भारती मिश्रा के अनुसार ''पढ़ने–लिखने के वक्त उनके बगल में पनडब्बा होता और घर में रहकर घर की हलचल से दूर अपने में मगन।''

आचार्य जी को देशाटन, बागवानी, भोजन बनाने, गाने आदि के अनेक शौक थे। श्री मनोहर श्याम जोशी ने एक भेंट–वार्ता के आधार पर उनके व्यक्ति–चित्र का प्रस्तुतीकरण निम्नानुसार किया।–''द्विदेदी जी ज्योतिषाचार्य, धर्मशात्री, साहित्यज्ञ, इतिहासज्ञ, सम्पादक, प्राध्यापक, शोधकर्त्ता, चिर जिज्ञासु सब कुछ हैं और ये सब उनकी बात–चीत से झलकता रहता है।'' रवीन्द्र नाथ ठाकुर उन्हें महान विद्वान मानते थे। कविवर रामधारी सिंह दिनकर ने उनके व्यक्तित्व के विषय में लिखा था–''विद्वान और लेखन वे आज बे–जोड़ हैं, किन्तु मनुष्यता की दृष्टि से भी उनके समकक्ष पहुँचने वाले लोग देश में कम होंगे।'' श्री दिनकर जी का यह कथन आचार्य के महत्व की पूर्ण मीमांसा कर देता है। प्रसिद्ध विद्वान और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य गुरु श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके व्यक्तित्व का सत्य चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है–''जितने बढ़िया वह साहित्यिक थे उससे कहीं आगे बढ़कर वह सहृदय मनुष्य थे। यही सहृदयता या मानव–प्रेम द्विवेदी जी के व्यक्तित्व को महानता देने वाली विशेषता है।

कालिदास, कबीर और रवीन्द्र की मस्ती अपने में समेटे हुए यह बीसवीं सदी का ऋषि–'रजनी–दिन, नित्य चला ही किया' 19 मई 1979 को अनन्तलीन हो गया। पर यह अलबेला हिन्दी–साहित्य को इतना दे गया जितना एक जीवन में देना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का सा निश्छल व्यक्तित्व सहज व्यक्तित्व और प्रकाण्ड पाडित्य एकत्र होना दुर्लभ है। कबीर के व्याख्याता द्विवेदी जी अमर हैं और कबीर को बाणी में ही उनका कृतित्व कह रहा है– हम न मरें, मरिहै संसारा।

7.9 हजारी प्रसाद द्विवेदी : कृति परिचय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य विपुल, विविध और विशिष्ट हैं कविता, साहित्येतिहास, निबन्ध, उपन्यास और आलोचना–क्षेत्र में ही नहीं उन्होंने जीवनी, सम्पादन और अनुवाद के क्षेत्र में भी कार्य किया है, वे सच्चे अर्थ में कृती और सुकृती व्यक्ति थे। उनका कृतित्व विपुल होकर भी गम्भीर है। उनकी रचना–धार्मिता के सम्बन्ध में विजयेन्द्र स्नातक का निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है–

''बीसवीं शाताब्दी के भारतीय इतिहास में पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी का उल्लेख केवल हिन्द–साहित्य के संदर्भ में न होकर भारतीय धर्म, संस्कृति साहित्य और परम्परा के पुनराख्याता के रूप में होगा।..........आचार्य द्विवेदी इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और परमपरा के समवेत प्रीााव से रूढ़ि मुक्त होकर सृजन करते रहें अतः उनका व्यक्तित्व और कृतित्व सर्वथा नयी भूमि पर अवस्थित दिखाई देत है।''

7.9.1 हिन्दी–साहित्य का इतिहास

आचार्य हजारी प्रसाद साहित्यज्ञ दोनों थें उनहोंने हिन्दी साहित्य के इतिहास को नवीन और मौलिक रूप प्रदान किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद हिन्दी–साहित्य के इतिहास पर महत्वपूर्ण कार्य करने वाले श्री

हजारी प्रसाद द्विवेदी ही है। द्विवेदी जी की दो कृतियाँ साहित्येतिहास से सम्बन्धित मानी जाती है–

1. 'हिन्दी–साहित्य की भूमिका' और 2. 'हिन्दी–साहित्य'।

7.9.2 निबन्ध–साहित्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की कल्पना साहित्य और समाज पर समान प्रकाश डालती है। विस्तृत अध्ययन, गम्भीर चिन्तन और लोकहितैषता की प्रकृति के कारण उनके निबन्धों में एक विेष प्रकार की गरिता मिलती है। संस्कृत–सहित्य क प्रकाण्ड पडिण्त की आधुनिकता और प्रगतिशीलता वास्वत में आश्चर्योत्पादक है।

उनकी निबन्ध–रचना विपुल है। अशोक के फूल, विचारओं वितर्क, विचाार–प्रवाह, हमारी साहित्यिक समस्यायें, कल्पलता साहित्य का मर्म कुटज और आलोक पर्व उनके निबन्ध संग्रह हैं।

उपर्युक्त निबन्ध–संग्रह यह प्रमाणित करते हैं कि निबन्ध–साहित्य की रचना द्विवेदी जी ने बहुत की ह। उन्होंने अपने सभी निबन्धों के माध्यम से सिद्ध किय है कि "भारतीय साहित्य एक जीवित जाति की साधना हैं।

7.9.3 अनुवाद–साहित्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कुछ बंगला और संस्कृत ग्रन्थे का हिन्दी अनुवाद भी किया है। इनकी अनूदित रचनायें कुछ प्रकाशित हैं और कुछ अप्रकाशित इसी प्राकर कुछ रचनाओं का उन्होंने अनुवाद किया है और कुछ का छायानुवाद। समस्त साहित्य का विवरण निम्नानुसार है–

(1) अप्रकाशित अनूदित रचनायें–'चंचला', 'लाल कनेर' और मेरा बचपन रवीन्द्र नाथ की रचनाओं का इन्होंने अनुवाद किया है। इन अनूदित रचनाओं की भाषा–शैली इतनी ललित हैं कि उनमें मौलिक रचनाओं जैसी रोचकता विद्यमान है। 'प्रबन्ध–चिंतामणि का भी अनुवाद श्री द्विवेदी जी ने किया है।

(2) अप्रकाशित अनुवाद–साहित्य–आचार्य द्विवेदी जी की दो अनूदित रचनायें 'पुरातन प्रबन्ध–संग्रह और 'प्रबन्ध–कोश' अप्रकाशित हैं।

7.9.4 सम्पादन–साहित्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की बहु–आयामी साहित्यिक प्रतिभा ने कोई क्षेत्र अछूता नहीं छोड़ा है। कुछ ग्रंथों और पत्रिकाओं का भी उन्होंने सम्पादन सफलता पूर्वक किया है। उनके सम्पादित कार्य का विवरण निम्नांकित है–

(1) सम्पादित ग्रंथ–

(क) 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो।' इसके सह सम्पादक डॉ. नामवर सिंह हैं। इसका संक्षिप्त संस्करण सन् 1957 में प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका श्री हाजरी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखी है। इसमें दो परिशिष्ट सहित ग्यारह अध्याय हैं।

(ख) नाथ–सिद्धों की बाँनियाँ–इस पुस्तक का सम्पादन आचार्य द्विवेदी ने सन् 1957 में किया था।

(ग) संदेश राशक–अब्दुल–रहमान–कृत 'संदेश रासक' का सम्पादन आचार्य द्विवेदी ने डॉ. विश्वनाथ के सह सम्पादन में किया हैं। इसकी भूमिका श्री द्विवेदी जी ने लिखी है। श्री द्विवेदी जी ने इस ग्रंथ को

अपभ्रंश–साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रंथ माना है। इसके सम्पादन में अन्य ग्रंथों से सहायता ली गयी है। इसका सम्पादन समय सन् 1960 है।

(2) सम्पादित पत्र–पत्रिकायें–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1941 तक 'विश्वभारती' का कलकत्ता से सम्पादन किया था। और साहित्य अकादमी से प्रकाशित 'नेशनल बिब्ल्योग्राफी' के सम्पादन निरीक्षण का कार्य उन्होंने सन् 1954 में सम्पन्न किया था।

7.9.5 जीवनी–साहित्य

मृत्युन्जय रवीन्द्र–सन् 1963 में प्रकाशित यह कृति श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

इस जीवनी और संस्मरण–साहित्य के अतिरिक्त अन्य अनेक संस्मरण आचार्य द्विवेदी ने लिखे हैं। 'पत्र' नामक प्रकाशन मं उनके अनेक संस्मरण संग्रहीत हैं उनहेंने अपने परिजनों के नाम, भ्रमण करते समय, सागर तट और शैल–शिखरों के सुन्दर संस्मरण पत्र लिखे हैं। राजकोट से, परणाकुलम से, त्रिवेन्द्रम से और श्रीनगर से लिखे गये पत्र उनकी संस्मरण लेखन–कला को उजागर करते हैं।

7.9.6 समीक्षा–साहित्य

साहित्येतिहास–लेखक मूल रूप से समालेचक होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विव्रेदी के इतिहास–ग्रंथों में नेक समीक्षा सिद्धान्त स्थापित हो चुके थे परन्तु उन्होंने स्वतन्त्र समीक्षा ग्रन्थ भी लिखे हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का समीक्षा–साहित्य निम्न प्रकार है–

(1) सूर–साहित्य–सन् 1934 में प्रकाशित इस ग्रंथ के सात अध्यायों में सूरदास के साहित्य का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

(2) साहित्य का साथी–सन् 1949 में प्रकाशित इस पुस्तक का पुनर्प्रकाशन 'साहित्य–सहचर' के नाम से सन् 1965 में हुआ था। इसमें साहित्यांगों और साहित्यवादों पर गम्भीरता से विचार किया गया है।

(3) कबीर–ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ था इस रचना में द्विवेदी जी की अनुसंधान–वृत्ति और विद्वता का रूप प्रकट हुआ है। कबीर की भक्ति–भावना इस पुस्तक की महत्वपूर्ण बात है।

(4) नाथ–सम्प्रदाय–सन् 1950 में प्रकाशित रचना हें इस रचना में द्विवेदी जी ने गोरखनाथ को सांस्कृतिक स्त्रोत माना है। वे उन्हें केवल सन्त नहीं मानते वरन् बौद्ध–सिद्ध और परवर्ती काल के सन्तों के मध्य की कड़ी कहते हैं। इस रचना में आचार्य द्विवेदी ने साहित्य–समीक्षक के लिए कवि ार उसके काव्य को समझने के लिए लोकजीवन की रूढ़ियों, रीति–रिवाजों, धार्मिक परम्पराओं आदि का अध्ययन आवश्यक बताया है।

(5) मध्यकालीन धर्म–साधना–का प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था। इस रचना में द्विवेदी जी ने सिद्ध किया है कि मध्यकालीन काव्य की प्रत्येक प्रवृत्ति पूर्वकालीन प्रवृत्ति का विकसित रूप है।

(6) सहज साधना–सन् 1954 में प्रकाशित समीक्षा–कृति है। इसमें आचार्य द्विवेदी ने शैव, बौद्ध और शाक्त साधकों का केन्द्र 'श्रीशेल का बताया है। इस ग्रंथ में माध्युगीन सन्तों की मानवतावादी भावना का विवेचन है।

(7) मध्यकालीन बोध का स्वरूप–कृति सन् 1960 में प्रकाशित हुई थी। इस समीक्षा–ग्रंथ में आठवीं शताब्दी तक की रचनाओं की चर्चा की गई है।

(8) कालिदास की लालित्य–योजना–इसका प्रथम संस्करण सन् 1965 मं प्रकाशित हुआ था। इस रचना में द्विवेदी जी ने कालिदास के काव्य की व्याख्यात्मक आलोचना प्रस्तुत की है। सृष्टि–रचना–सिद्धान्त की व्याख्या के साथ–साथ इसमें नारी–सौन्दर्य, भवानुप्रवेश आदि विषयों पर भी विचार व्यक्त किय गये हैं।

(9) साहित्य का मर्म–तीन व्याख्यानों के संकलित इस ग्रंथ रूप का प्रकाशन सन् 1950 में हुआ था। इसमें समीक्षा के लिए सामाजिक मूल्यों को समझने का आग्रह किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गद्य की प्रत्येक विधा का साधिकार विवेचन किया है। वे सच्चे सर्जक थे। उनका विपुल सृजन, विशाल ज्ञान और गम्भीर चिन्तन पर आधारित है। उन जैसा श्रेष्ठ सर्जक हिन्दी–साहित्य में दूसरा नहीं हुआ है।

7.9.7 उपन्यास–साहित्य

आचार्य हजारी प्रसाद जी अपने उपन्यासों को 'गप्प' कहते हैं परन्तु है उनके चारों उपन्यास ऐतिहासिक ही। इन चारों उपन्यासों में उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण निहित हें उनकी इन औपन्यासिक कृतियों को हम सांस्कृतिक इतिहास सम्बन्धी रचनाओं की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चारों उपन्यासों का विवरण निम्नप्रकार हैं–

(1) बाणभट्ट की आत्म कथा–का रचनाकाल सनृ 1947 है। इसमें बीस उच्छवास हैं। औपन्यासिक कौशल के साधन रूप में कथामुख और उपसंहार लिखा है। डायरी शैली में लिखित यह रचना ऐतिहासिक परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

निष्कर्ष रूप मं कहा जा सकता है कि बाणभट्ट की आत्मकथा एक ऐ उपन्यास है जिसे ऐतिहासिक भूमिका के परिवेश में लिखा गया है। यह रचना उपन्यास–कला को समेटते हुए मानवीयता की, रस की, सृष्टि करती है। "यह हर्ष–चरित के अन्त में बाणभट्ट ने रात्रि के आगमन के समय हर्ष के लिए शुभ्र चन्द्रोदय ला दिया है, तो द्विवेदी जी ने हिन्दी–साहित्य में उसकी ज्योत्सना बिखेर दी।

(2) चारू चन्द्रलेख–उपनयास का रचना–काल सन् 1963 है। पहले यह उपन्यास 'कल्पना' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। इसमें बत्तीस प्रकरण हैं। इस वृहत कृति को श्री नवल किशोर पात्र–बहुल कहते हैं और उसमें घटनाओं का घटाटोप पाते हैं साथ ही वे इसे "तान्त्रिक साधनाओं को लेकर लिखा गया प्रथम मौलिक उपन्यास है" ऐसा स्वीकार करते हैं। इस रचना में बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी के भारत की शासन–व्यवस्था और समाज के पतन की कहानी कही गयी है। द्विवेदी जी ने इस पतन विडम्बना को भी रोचक रूप में प्रकद किया हैं उसमें आशा–उत्साह का मन्त्र फूंका है।

इस रचना में आचार्य द्विवेदी जी ने भारती संस्कृति की गरिमा का गान किया है और दश को ऊँचा उठाने की लालसा को जगाया है। इस प्रकार यह रचना अद्भुत है। इसको कुँअर नारायण सिंह भले ही कल्पित–कथा–संग्रह की संज्ञा दें पर वास्तव में यह ऐतिहासिक उपन्यास से अधि सांस्कृतिक इतिहास है और साहित्य की अक्षय निधि है।

(3) पुनर्नवा–का प्रकाशन 1973 में हुआ था। इस रचना के एक नवीन शिल्प के साथ उपन्यास–जगत में प्रवेश

किया है। इसमें विवाह, प्रेम, सामाजिक विधि–विधान और उनका विरोध–शोध प्रकट हुआ है। इसमें चतुर्थ शताब्दी का वातावरण प्रस्तुत हुआ है।

(4) अनामदास का पौथा–का प्रकाशन सन् 1976 में हुआ था। आचार्य द्विवेदी ने सन् 1940 के करीब छान्दोग्योपनिषद के रेक्य–आख्यान पर एक कहानी लिखी थी, इस कहानी का शीर्षक 'सब हवा है' था। इसका नवीन रूप यह उपन्यास है। इस कथा–सूत्र औपनिषदिक आधार पर चुना गया है। छान्दोग और वृहदारण्यक उपनिषदों से इसकी कथा ली गयी है। लेखक क्रमशः सातवीं, बारहवीं, चौथी शताब्दी के सांस्कृतिक चित्र प्रस्तुत करने के बाद ई. पू. 1500 के के काल में प्रवेश करता है।

आचार्य द्विवेदी ने 'अनामदास का पौथा' मं जाबाला के प्रेम और रेक्व के अभिलाषा–भाव की व्यंजना बड़ी कुशलता से की है, इस कृति में प्राचीन आश्रमों और गुरूकुलों के प्रति आसथा और सम्मान प्रकट हुआ हें परार्थभवना का सरलीकृत करके, दर्शनशास्त्र को व्यावहारिकता का रूप प्रदान किया गया है। परम वेश्वानर–साधना का अर्थ संसार के पीड़ित जीवों को पीड़ा–मुक्त करना इस रचना का एक ध्येय है।

समग्र रूप से इस रचना के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह उपन्यास–क्षेत्र की अनूठी कृति हैं धर्म और संस्कृति को इसके माध्यम से साहित्य का स्वरूप दिया गया है।

7.10 हजारी प्रसाद द्विवेदी की उपन्यास कला सामान्य प्रवृत्तियाँ

जनवादी–मानववादी साहित्यकार श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी बीसवीं सदी के विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। उनहोंने अपने साहित्य के माध्यम से सर्वहारा मानव को सम्मानीनीय पंक्ति में लाने का भरसक प्रयास किया है। उनका साहित्य चन्द बुद्धि विलासियों की सीमा से निकल कर जन–जन की संवेदना का संवाहक है। अपने निबन्ध, शोध और उपन्यासों के माध्यम से रचनाकार ने पगे–पगे मानव मूल्यों को स्थापित किया है। उनके उपन्यास–बाणभट्ट की आत्मकथा, चारू–चन्द्रलेख, पुनर्नवा तथा अनामदास का पोथा ब्रह्माण्डीय मानव–चेतना तथा मानव–उन्नति के उद्घोषक है। प्रेमचन्द को जनवाद का सबसे बड़ा समर्थक बताया जाता है, किन्तु यदि हजारी प्रसाद जी के उपन्यासों का गम्भीर अनुशीलन किया जाय तो वे प्रेमचन्द जी से कहीं आगे बढ़ गये हैं। उनकी अन्तिम कृति अनामदास का पोथा जनवाद का मुकम्मिल दस्तावेज ही कहा जायगा। केवल चार उपन्यासों के रचनाकर द्विवेदीजी हिन्दी–उपन्यास–कला में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा के प्रकाशन के साथ ही द्विवेदी जी उपन्यासकारों की कतार में खड़े होने का प्रार्थना पत्र दिये बिना ही लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासकार घोषित हो गये। इस उपन्यास से उन्होंने उपन्यास विधा में एक नयी शैली का सूत्रपात किया, जिसे अपने अन्तिम उपन्यास तक निभाया। वस्तुगत तथा शिल्पगत विशेषताओं के कारण द्विवेदी जी की उपन्यास–कला लासानी है। उनकी उपन्यास कला की विशेषता निम्नलिखित हैं:–

1. आत्मविज्ञापन रहित रचना

प्रायः लेखकों को आत्म प्रकाशन की चिन्ता रहती है। आत्म विज्ञापन का यह भूत कभी–कभी रचना पर इतना हावी हो जाता है कि रचना और लेखक दोनों ही समाप्त हो जाते हैं। द्विवेदीजी ने अपने उपन्यास साहित्य में कबीर, सूर तथा तुलसीदास की शैली अपना कर रचना को रचना के हवाले कर दिया। अब रचना जाने और पाठक जाने। जिस प्रकार कबीर, सूर और तुलसी की रचनाओं ने इन रचनाकारों को ढूँढ़ लिया उसी प्रकार इन उपन्यासों को दूसरे की रचना बताने पर भी रचना के माध्यम से पाठकों ने द्विवेदी जी के रचनाकार को "तलाश कर ही लिया। हिन्दी साहित्य में द्विवेदी जी की इस विशिष्टता को 'अभिनव' प्रयोग माना जाता है। अपने उपन्यासों को द्विवेदी जी अपना बताते ही नहीं है। उन्हें तो किसी ने पाण्डुलिपियाँ दे दी और उन्होंने छपवा दी। इससे बड़ा साहित्यकार का गौरव क्या होगा कि वह कृति को विशेष भाव से पाठक के हवाले कर दे। 'बाणभट्ट की आम्म कथा' की

पाण्डुलिपि उन्हें मिसकैथराइन दीदी ने दी, चारूचन्द्रलेख की पाण्डुलिपि चन्द्र–मुट्टा पर उट्टकित वृत्त को पढ कर अघोरनाथ नायक औघड़ साुधु ने स्वयं लिख कर पण्डित जी को प्रकाशन के लिए दी, पुनर्नवा तो आमुख–विहीन रचना है ही। अनामदास का पोथा एक ऐसे व्यक्ति ने दिया जिसने बार–बार पूछने पर भी अपना नाम नहीं बताया। चूँकि नाम नहीं बताया, इसलिए द्विवेदी जी ने उसका नाम अनामदास रख दिया। पाण्डुलिपि अनामदास से प्रकाशन हेतु मिली अतः पाण्डुलिपि का नाम 'अनामदास का पोथा' रख दिया गया।

2 मानव की स्थापना

द्विवेदी जी के प्रत्येक उपन्यास में मानव को मानव के रूप में स्थापित किया गया है। राजा और प्रजा जैसे सम्बोधन से उन्हें अरूचि है। उनके अनुसार राजा कुछ नहीं कर सकता, करती तो प्रजा है। जब प्रजा ही कर्ता धर्ता है तो मनुष्य को हीन–भावना का परित्याग करके निर्भर भाव से कार्य करने का संकल्प करना चाहिए। राजा से आशा न करने स्वयं को सक्षम बनाना चाहिए। बाणभट्ट की आत्मकथा में महामाया देश के समस्त तरूणों को सम्बोधित कर रही हैं– राजाओं का भरोसा करना प्रमाद है, राजपुत्राों की सेना का मुँह ताकना कायरता है,'' आत्म रक्षा का भार किसी एक जाति पर छोड़ना मूर्खता है।

3 जन–सेवा ही ईख्वर की सेवा है।

आत्मकथा में महामाया देश के समस्त युवकों को प्रत्यन्त दस्युओं का प्रतिरोध करने के लिए उद्बोधित करती है। उन्हें भय है कि यदि प्रत्यन्त दस्यु आ गये तो बालक अनाथ हो जायेंगे, स्त्रियाँ विधवा हो जायेंगी, वृद्ध–वृद्धा बेसहारा हो जायेंगे, सर्वत्र त्राहि–त्राहि मच जायेगी। इसलिए अमृत के पुत्रों जन सेवा और राष्ट्र सेवा तथा रक्षा के लिए उठो। चारू चन्द्रलेख में नागनाथ चन्द्र लेखा की सहायता से कोटिबेधी रस समस्त संसार के मनुष्यों का दुःख, रोग, शोक दरिद्रता और मोह को दूर करने के लिए बनाना चाहता है। वह समस्त संसार का दुःख दूर करने के लिए बनाना चाहता है। वह समस्त संसार का दुःख दूर करने के लिए अनन्तकाल तक नरक भोगने के लिए तैयार है। अनामदास का पोथा की वैश्वानर उपासना जन–सेवा का अप्रतिम उदाहरण है– ''समूचा विश्व एक पुरूषोत्तम का रूप है। यह जड़ धरित्री, सप्राण वनस्पित, जीवन्त जन्तु और बुद्धिमान मनुष्य उस एक ही की विभिन्न अभिव्यक्ति है–तुम भी, प्राण भी, आकाश भी, सूर्य भी, चन्द्र भी। जो ऐसा समझ कर सेवा में प्राप्त होता है उसमें अहंकार नहीं होता। अतः लोकताप से तृप्त होना अखिलात्मा पुरुष की परमाराधना है। यही वैश्वानर उपासना है। दीन–दुखियों, पीड़ितों और शोषितों के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़ कर दे देना सबसे बड़ा तप है।

4 प्राचीन एवं मध्यकालीन संस्कृति का चित्रण

इनके उपन्यासों में बाणभट्ट की आत्मकक्षा में हर्षकालीन सातवीं शताब्दी की संस्कृति, चारूचन्द्र लेख में बारवीं–तेरहवीं शताब्दी तथा पुनर्नवा में ईस की चौथी शताब्दी तथा अनामदास का पोथा में ईसापूर्व की भारतीय संस्कृति का चित्रण किया गया है।

5 नारी महिमा–

समस्त उपन्यासों में नारी महिमा का गुणगान किया गया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की चन्द्र दीधिति (भट्टिनी), 'चारू चन्द्र लेख' की चन्द्रलेखा 'पुनर्नवा' की मृणामंजरी तथा 'अनामदास का पोथ' की महिमामयी नारियाँ हैं। ये सभी उपन्यास इन्हीं महिमामयी नारियों के गुणगान हैं। इनके अतिरिक्त द्विवेदीजी के उपन्यासों की एक और विशेषता है कि इनके उपन्यासों का कथा सूत्र भी नारियों के ही हाथ में रहता हैं निपुणिका, महामाय, चन्द्रा, नारी माता, मैंना (मैंनसिंह) तथा माता ऋतम्भरा सूत्र धारिणी नारियाँ हैं।

6 अदृप्तम प्रेम की अभिव्यक्ति–

द्विवेदी जी के उपन्यासों में सर्वत्र शालीन और संयत प्रेम की व्यंजना है। बाणभट्ट के प्रति भट्टिनी का, निपुणिका, राजा सातवाहन, चन्द्रलेखा–नागनाथ; मंजुला–देवरात, मृणाल मंजरी–आर्यक तथा जाबाला और रैक्व। पुनर्नवा उपन्यास में चन्द्रा का प्रेम दृप्त रूप में वित्रित हुआ है किन्तु उसका प्रभाव अदृप्त ही है। चन्द्रा आर्यक की बाल–सखी थी। उसका विवाह जबरदस्ती एक नपुसंक व्यक्ति के साथ कर दिया गया था। वह अपना अधिकार चाहती थी किन्तु समाज उसे पाप और अपराध मानता था। अन्तिम निर्णयानुसार चन्द्रा का प्रेम सामाजिक मान्यता पा गया, चन्द्रा संयत हो गयी और उसने अपना सम्पूर्ण प्रेम मृणाल की झोली में उड़ेल दिया।

7 प्रेम–स्वातंत्र्य की अभिव्यक्ति–

महामाया–अघोर भैरव (बाणभट्ट की आत्मकथा), मैंना–सातवाहन तथा चन्द्रलेखा–नागनाथ (चारू चन्द लेख) चन्द्र–आर्यक, मंजुला–देवरात (पुनर्नवा) तथा जाबाला–रैक्व आदि पात्रों के माध्यम से प्रेम–स्वातन्त्रय की ही अभिव्यक्ति हुई है। इन सभी पात्रों का प्रेम स्वाभाविक तथा सहज है। द्विवेदी जी ने स्पष्ट किया है कि प्रेम किसी के कहने या समाज के बन्धनों में बँधकर नहीं होता, यह तो नैसर्गिक है, इसमें जाति–पाँति, वर्ग, स्तर आदि गौण हो जाते हैं।

8 आधुनिक किन्तु जनोपयोगी मूल्यों की स्थापना–

यद्यपि द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति के प्रवल समर्थक तथा प्रतिष्ठापक है तथापि उन्होंने रूढ़ि और आडम्बर को कहीं ग्रहण नहीं किया हैं। उन्होंने प्राचीन में से स्वस्थ अंश को वर्तमान के लिए उपयोगी मानकर स्थापित किया हे। उदाहरणार्थ–नारी–स्वातंत्र्य आधुनिक युग की विशिष्ट प्रवृत्ति है। द्विवेदी जी के समस्त उपन्यासों में नारी–स्वातंत्र्य सर्वत्र विद्यमान है। जनचेतना उनके उपन्यासों की रीढ़ हैं जाति–पाँति का भेदभाव मिटाने के आधुनिक प्रयास को रचनाकार ने अपने समस्त उपन्यासों में वित्रित किया है। निम्न–वर्गीय जाबाला–उच्च वर्गीय ब्राह्मण रैक्व के साथ उर्द्वाह करती है, पवन बाला भट्टिनी तथा अछूत निदुनिर्बा बाणभट्ट जैसे ब्राह्मण के साथ रहती है। उनसे प्रेम करती हैं। चन्द्रलेखा और सात वाहन का विवाह इसी भावना का पोषक है। अपने उपन्यासों के माध्यम से धर्म, सम्प्रदायों को बेनकाब करके मानव धर्म की स्थापना की है। उनके पात्रों में हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, नाथ सिद्ध, देशी–विदेशी सभी का घोल मेल है वे विश्व बन्धुत्व की भावना में विश्वास करते हैं। बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं होते। इस नर लोक से किन्नर लोक तक एक ही रागात्मक ह्रदय व्याप्त है।

9 प्रेम का त्रिकोणात्मक स्वरूप–

द्विवेदी जी उपन्यासों का प्रेम सपाट या पारस्परिक न होकर त्रिकोणात्मक है। कहीं एक स्त्री दो पुरूषों को प्रेम करती है तो कहीं दो पुरूष एक स्त्री को प्रेम करते हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा में भट्टिनी–भट्ट, निपुणिका, अघोर भैरव–महामाया हर्ष का त्रिकोण है, चारूचन्द्र लेख में चन्द्रलेखा–सातवाहन –मैना, तथा सातवाहन–चन्द्रलेखा–नागनाथ, का त्रिकोण, पुनर्नवा में मृणालमंजरी आर्यक–चन्द्रा का त्रिकोण तो अनामदास का पोथा में रैक्व–जाबाला तथा आश्वलायन का त्रिकोण प्रेम की इसी त्रिवेणी का परिचायक है।

10 दर्शन की व्यावहारिक व्याख्या

रचनाकार ने अपनी समस्त कृतियों में दर्शन जैसे गूढ़ विषय की, अध्यात्म जैसे आलौलिक चिन्तन की व्यावहारिक एवं जागतिक व्याख्या की है। आत्मा, परमात्मा, जब तप, साधना, समाधि, सत्य आदि समस्त उपकरण, नाम जीवन के लिए है। जो शरीर में आत्मा है ब्रह्ममाण्ड में वही ब्रह्म है, जो ब्रह्ममाण्ड है ब्रह्म है वही शरीर में आत्मा है। मुझ में तुम में और समस्त प्राणियों में उसी परम तत्व की भिन्न–भिन्न अभिव्यक्ति हैं इसलिए अपने आपको दूसरों

के सुख के लिए दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर दे देना ही सबसे बड़ा तप है, यह ब्रह्मोपासना है, यही वैश्वानर उपासना है।

11 राष्ट्रीय संगठन की भावना

बाणभट्ट की आत्मकथा के रचना काल में भारत परतंत्र था। यहाँ की जनता पर अंग्रेजों के द्वारा तरह–तरह से अत्याचार किया जाते थे। अंग्रेजों की दमननीति का विरोध बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रत्यन्त दस्युओं के आसन्न आक्रमण के प्रतिरोध हेतु जनता को संगठित करने के रूप में किया गया है। चारूचन्द्र लेख में भी सातवाहन और चन्द्रलेखा के द्वारा विदेशी आक्रान्ताओं के विरोध में राष्ट्र की जनता का संगठित किया गया है। इसी प्रकार समुद्रगुप्त की विशाल वाहिनी के द्वारा विदेशियों का समूल नाश करके उखात नीति के माध्यम से राष्ट्र संगठन किया गया है।

12 ऐतिहासिक एवं पौराणिक पात्र

द्विवेदी ने अपनी समस्त उपन्यासों में प्रमुख पात्र ऐतिहासिक या पौराणिक की लिये है। ''बाणभट्ट की आत्मकथा'' में स्वयं बाणभट्ट श्री हर्ष, तुवरमिलिन्द, कुमार कृष्ण वर्द्धन, आदि तथा लौरिकदेव ''चारूचन्द्र लेख'' की चन्द्रलेखा, सातवाहन नागनाथ (नागराज) 'पुनर्नवा का आर्यहक, शार्विलक धूता, वसंत सेना, समुद्रगुप्त तथा ''अनामदास का पोथा'' में रैक्व, औषस्ति, आश्वलायन, जानश्रृति आदि ऐतिहासिक तथा पौराणिक पात्र है। पात्रों के अतिरिक्त लेखक ने अपने उपयासों में वर्णित स्थानों को भी ऐतिहासिक मान्यता के अनुरूप ही चित्रित किया है।

13 सिद्धों की अवतारणा

प्रत्येक उपन्यास में किसी न किसी प्रकार एक सिद्ध बाबा को अवतारणा अवश्य मिलती है। ऐसा प्रतीत होता हे कि पण्डित जी इन सिद्धों से कहीं बहुत गहराई में प्रभावित थे। ये सिद्ध दार्शनिक, भविष्यवत्त, अनुभवी तथा मनोवैज्ञानिक हैं। इनकी साधना विचित्र है इनकी सिद्धियाँ विचित्र हैं और इनकी उक्तियाँ विचित्र हैं। ये साफ कहते हैं किन्तु कहते बन्दूक की गोली की तरह हैं। ये सिद्ध उपन्यास के निर्देशक का काम करते हैं। उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र जो भी इनके सम्पर्क में आते हैं, प्रभावित होना उनकी मजबूरी है। बाणभट्ट की आत्मकथा में अघोर भैरव और महामाया इसी प्रकार के तांत्रिक सिद्ध हैं। बाणभट्ट की कुल कुण्डलिनी जागृत करने वाले, कौल अवधूत का प्रसाद देने वाले और माथा छूकर चमत्कार दिखाने वाले अघोर भैरव ही है। इनकी दार्शनिक व्याख्याएँ व्यावहारिक है। भैरवी महामाया निपुणिका और भट्टिनी दोनों का मार्ग निर्देशन करती हैं 'चारू चन्द्रलेख में नागनाथ चन्द्रलेख को तो सातवाहन से छीन ही लेता है, सातवाहन और विद्याधर भट्ट को परदुःख हारक रस मर्दन के नाम पर अपनी अँगुली पर नचाता हैं 'पुनर्नवा' में सिद्ध बाबा मृणाल मंजरी और चन्द्रा को चमत्कार दिखाते है। सुमेरू काका स्वतः ही चमत्कृत हो जाते हैं। सिद्ध बाबा की बात मानकर ही सुमेरू काका बटेसर पर पटवास गढ़वा देते हैं। अनामदास का पोथा में ऋषि औषरित्त औघड़ तांत्रिक तो नहीं हैं किन्तु सिद्ध अवश्य है। स्वयं रैक्व सिद्ध है। वे जमीन से एक हाथ ऊपर उठ कर तपस्या करते हैं, मन्त्रों के बल पर रोग–शोक से मुक्त कर देते हैं।

14 सामन्ती प्रथा या राजतंत्र का विरोधात्मक चित्रण

द्विवेदी जी जनवादी लेखक थे और जनतंत्र में आस्था रखते थे। वे राजा को जनता का प्रतिनिधि और उसका सेवक मानते थे। जहाँ भी राजा ने जनता का शोषण किया है या प्रजा का पालन सही ढंग से नहीं किया है उन्होंने राजा के राजतंत्र का खुलकर विरोध किया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में छोटे राजकुल का भाण्डा फोड़ कर रख दिया है। कुमार कृष्ण वर्द्धन, श्रीहर्ष, लौरिक देव किसी पर भी बाणभट्ट को पूरा भरोसा नहीं है।

महामाया श्री हर्ष का खुला विरोध करती है और जनता को जागरूक होने के लिए प्रेरित करती है। 'चारुचन्द्र लेख' में नागनाथ कोटिबेधी रस मर्दन के माध्यम से राजा सातवाहन को निर्वीर्य कर देता हैं पुनर्नवा में ग्वाला आर्यक हलद्वीप एवं उज्जयिनी के शासक को अपदस्थ कर देता है। 'अनामदास का पोथा' में माता ऋतम्भरा अकाल पीड़ित प्रजा के लिए अकाल राहत कार्य न करने पर राजा जानश्रुति को आड़े हाथों लेती हैं।

15 लोक संस्कृति का चित्रण

संस्कृति की दो धाराएँ प्रवाहित होती हैं–अभिजात संस्कृति और लोक संस्कृति। आचार्य द्विवेदी 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्रामों से नहीं प्रत्युत नगरों तथा ग्रामों में रची–बसी समूची जनता से लेते हैं जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। इनके उपन्यासों में लोग संस्कृति के अन्तर्गत जन–जीवन से सम्बन्धित समस्त आचार–विचार विधि–निषेध विश्वास आस्था, मान्यताएँ, परम्परा, धार्मिक अनुष्ठान, मनोरंजन, उत्सव, त्यौहार आदि समस्त उपादानों एवं तत्वों का चित्रण है। तत्कानीन व्यवस्था समाज, राजनीति, धर्म एवं दर्शन, कला, साहित्य तथा शिक्षा व्यवस्था का समुचित चित्रण मिलता है। इनके चारों उपन्यास इस विशेषता के पोषक हैं।

16 सामाजिक यर्था से संम्पृक्त

लेखक की दृढ़ धारणा है कि सामाजिक यथार्थ से असम्पृक्त साहित्य सशक्त हो ही नहीं सकता, यह हामारे प्राणों को आन्दोलित नहीं कर सकता। भार योगियों, साधुओं और माहत्माओं वाला अध्यात्मिक देश है यह अध्यात्मिक साधना व्यक्ति प्रधान या आत्म–प्रधान होने के कारण सम्पूर्ण देश की सुरक्षा औंर उन्नति के विषय में सोच ही नहीं सकी। परिणामतः देश विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त होता रहा इस सत्य को लेखक ने भोगा है इसलिए उसने अपने पात्रों के माध्यम से स्थान–स्थान पर उभारा है। मैंनसिंह (मैंना) सीदी मौंला से बतियाते हुए विद्याधर भट्ट की फटकारते हुए कहता है– "उठो आर्य धीर शर्मा की रक्षा करने का भार मुझ पर छोड़ो। इन बकवादी निठल्ले सिद्धों के चक्कर में मत पड़ो। ये बिगाड़ना जानते हैं, संवारना नहीं जानते। जगत प्रवाह से विच्छिन्न होकर व्यक्तिगत साधना के कंचुक से निरन्तर संकुचित होते रहने वाले इन सिद्धों ने सत्य को खण्डित किया है। वे वे क्या जानते हैं कि देश–रक्षा का अर्थ है व्यक्ति का बलिदान।..............ये सिद्ध इस वीर–साधना को नहीं समझ सकते।" बाणभट्ट की आत्मकथा' में तांत्रिक सिद्धि और सिद्ध दोनों का ही लेखक ने विद्रूप रूप प्रस्तुत किया है।

17 हास्य की अवतारणा

गम्भीर चिंन्तन के साथ साथ द्विवेदीजी हास्य का पुट भी अपने उपन्यासों में देते जाते हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा में चण्डी–मण्डप का पुजारी, पुनर्नवा में माढव्यशर्मा और सुमेरु काका तथा अनामदास का पोथा में माया का प्रसंग हास्य अवतारणा में उदाहरण है। जितना जीवन के लिए हास्य आवश्यक और अपरिहार्य है, उतना ही उपन्यास में भी लेखक मानता है।

18 संस्कृतनिष्ठ जनभाषा–हिन्दी का प्रयोग

संस्कृत के पण्डित होने के कारण, प्राचीन विषय वस्तु के चयन के कारण तथा हिन्दी के प्रचारक और प्रसारक होने के कारण द्विवेदी जी की हिन्दी में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। इन्हीं तत्सम शब्दों के साथ–साथ हिन्दी के टकसाली प्रयोग का भी उन्होंने ध्यान रखा हें अरबी–फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके अपनी प्रगति–शीलता एवं समन्वयवादी विचारधारा का परिचय दिया है।

19 शब्दों की भाषा वैज्ञानिक व्युत्पत्तिपरक शैली

अपने प्रत्येक उपन्यास में लेखक ने अपने अज्ञात शब्दों की व्युत्पत्ति बताकर पाठकों को चमत्कृत करने का प्रयास किया है। यह व्युत्पत्ति निश्चय ही लेखक के गहन भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन की सूचक है।

यथा–बण्ड बाण, लौरिक ग्वालारिक गोपाल आर्यक, निउनियाँ निपुणिका, छबीला शार्विलक, मधौआ माढव्य, मांदी मदनिका, मैनामाँजरदेई मृणालमंजरी, गन्धर्व कंदर्प, उजुआ ऋजुका आदि।

20 शब्दों की अर्थ परक–शैली

लेखक उपन्यास में शब्द–सृजन करने के पश्चात् उसके अर्थ के प्रचलन पर क्यों और कैसे संदर्भों पर प्रकाश डालता है। कभी–कभी तो वे प्रयुक्त शब्द का पूरा इतिहास ही बता देता हैं। यथाबुल्ला अर्थात् बड़ा। बलराम को बुल्लावीर कहा जाता हैं उज्जयिनी अर्थात् ऊपर की ओर जीतने की अभिलाषा रखने वाली गणिका =सारे गण की चुनी हुई रानी, आज्य=अजा (बकरी) का घी, रैक्व.रयि (सम्पत्ति) क्व (की ओर) अर्थात् रैक्व की ओर सम्पत्ति का जाना।

7.11 इकाई सारांश

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बीसवीं शताब्दी के श्रेष्ठतम उपन्यासकार हैं। वाणभट्ट की आत्म कथा, चारुचन्द्र लेख, पुनर्नवा तथा अनामदास का पोथा– ये चारों कृतियां उपन्यास साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। अनामदास का पोथा का जहां तक संबंध है, यह कृति हमें बताती है।

1. जनसेवा ही ईश्वर सेवा है
2. भारतीय संस्कृति विश्व की महानतम संस्कृतियों में से एक है।
3. यहां नारी को जो सम्मान दिया गया है, वह विश्व की अन्य संस्कृतियों में दुर्लभ है।
4. प्रेम का सारतत्व अहश्य है, वह अनुभूति का विषय है। वह भाषा रहित अन्तरतम की वह संवेदना है, जो हमें सदैव उर्जा प्रदान करती है।
5. इसमें राष्ट्रीय एकात्म की भावना पर जोर दिया गया है।
6. ऐतिहासिकता इसका वजीभाव है और पौराणिकता इसकी जीवनी शक्ति है।
7. हास्य की अवतारण इसका औपन्यासिक रस है।
8. भाषा की दृष्टि से यह उपन्यास एक नया प्रयोग है।
9. उपन्यास का पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक परिवेश उत्तम है।
10. इसमें रचनाकार की शिक्षा, संस्कार, संघर्ष, चिंतन, स्वभाव और व्यक्तित्व को रेखांकित किया गया है।

7.12 अपनी प्रगति जाँचिए

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के अति लघुउत्तरीय–

1. अनामदास का पोथा उपन्यास का नायक कौन है।
2. इसकी भाषा तत्सम है अथवा तदभव अथवा देशज।
3. इसके किसी एक स्त्री पात्र का नाम लिखिए।

4. यह आचार्य हजारी प्रसाद की द्विवेदी की कौन सी औन्यासिक कृति है? पहली, दूसरी, तीसर या चौथी।
5. इसकी कथा का स्रोत क्या है?
6. ऋषि कुमार कौन है?

निम्नलिखित प्रश्नों के लघु उत्तर दीजिए–

1. अनामदास का पोथाा का मूल कथ्य क्या है?
2. इस उपन्यास में प्राण की क्या परिभाषा दी गई है?
3. यह उपन्यास आत्मा को किस प्रकार से परिभाषित करता है।
4. यह उपन्यास जल को किस रूप में माना है।
5. इसके प्राकृतिक चित्रण के दो उदाहरण दीजिए।
6. इसकी भाषा के दो उदाहरण दीजिए।

7.13 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1. उपन्यास के स्त्री पात्रों की सूची तैयार कीजिए।
2. उपन्यास के पुरुष पात्रों की सूची बनाइए।
3. तत्सम शब्दों की सूची तैयार कीजिए।
4. तद्भव शब्दों की सूची बनाइए।

7.14 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्पष्टीकरण के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

7.15 बोध प्रश्नों की उत्तरमाला

1. ऋषिकुमार
2. तत्सम
3. शुभे
4. चौथी
5. उपनिषद
6. रिक्व का पुत्र रैक्व

7.16 संदर्भ ग्रन्थ

1. अनामदास का पोथा
2. पुनर्नवा
3. चारुचन्द्र लेख
4. वाणभट्ट की आत्मकथा

अनामदास का पोथा एक आलोचनात्मक अध्ययन

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 कथानक
8.4 केन्द्रीय भाव
8.5 सांस्कृतिक वातावरण और दर्शन
8.6 प्रमुख चरित्र
8.7 संवाद
8.8 भाषा एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य
8.9 इकाई सारांश
8.10 अपनी प्रगति जाँचिए
8.11 नियत कार्य/गतिविधियाँ
8.12 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु
8.13 बोध प्रश्नों की उत्तरमाला
8.14 संदर्भ ग्रन्थ

8.1 उद्देश्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के चौथे उपन्यास 'अनामदास का पोथा' एक आलोचनात्मक अध्ययन इकाई का उद्देश्य है–

1. उपन्यास के केन्द्रीय भाव से परिचय कराना।
2. उपन्यास में वर्णित सांस्कृतिक वातावरण और उसमें निहित दर्शन को स्पष्ट करना।
3. प्रमुख चरित्रों के विषय में और उनकी उपन्यास में क्या भूमिका है, से पाठकों को अवगत कराना।
4. उपन्यास के भाषा एवं शिल्पगत पक्षों पर प्रकाश डालना।
5. उपन्यास की संवाद योजना और उसके साहित्यिक महतव को स्पष्ट करना।

8.2 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के परिचय तथा कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में उसका आलोचनात्मक परिचय दिया गया है। उपन्यास में आलोचनात्म्क दृष्टि से विचार करते समय उसके कथानक, उसके केंद्रीय पक्ष, प्रमुख पात्रों, संवाद, भाषा, शैली और उसके कथ्य को विश्लेषित किया गया है। वस्तुतः उपन्यास की पूरी पीठिका इसी पर आधारित होती है। यही उपन्यास के विवेचन का प्रमुख पक्ष होता है। इसी का विवेचन करना इस इकाई का लक्ष्य है।

8.3 कथानक

सन् 1976 में प्रकाशित 'अनामदास का पोथा' कालक्रम से द्विवेदी जी का चौथा उपन्यास है। यह उपन्यास लेखक के जीवनानुभव गौरव, महिमा, बुद्धि, वयस, सामाजिक स्तर, साहित्यक चेतना, दार्शनिक चिंतन, संस्कृति तथा संस्कृत ज्ञान का व्यावहारिक सार है। पुनर्नवा के अतिरिक्त अन्य पूर्ववर्ती उपन्यासों की शैली के अनुसार ही पण्डित जी ने इस उपन्यास का भी प्रस्तुतीकरण किया है। अन्य उपन्यासों की उपलब्ध पाण्डुलिपियों में अनामदास और उनका पोथा अन्यतम हैं।

मूल रूप में छांदोग्य और प्रासंगिक रूप से वृहदारण्यक उपनिषदों से बीज लेकर लौकिक युवा–युवती की प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक समझे जाने वाले अध्यात्म की व्यावहारिक व्याख्या का वट वृक्ष प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास प्रेम, अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान और वैश्वानर उपासना का अद्‌भुत संगम है। छांदोग्य उपनिषद के चतुर्थ अध्याय प्रथम तथा द्वितीय अध्याय में शरीर खुजाने वाला ज्ञानी रैक्व इतना महान है कि हंस भी उसकी महानता की प्रशंसा करते नहीं अघाते। छांदोग्य उपनिषद का कथा सूत्र इस प्रकार है–"प्रसिद्ध जानश्रुति राजा के पुत्र का पौत्र श्रद्धापूर्वक दान करने वाला था, जिसके घर में बहुत सा अन्न पकाया जाता था। उसने अपने राज्य में इस आशय से विराम गृह बनवा दिये थे कि उनमें ठहर कर लोग उसका अन्न ग्रहण करें। फिर एक दिन राजा ने दो हंस रात्रि में उड़ते देखे। उनमें से एक ने दूसरे से कहा–हे मन्द दृष्टि! जानश्रुति राजा के पौत्रायण का तेज दिवस के समान व्याप्त हो रहा है; उसे तू स्पर्श न कर, वह कहीं तुझे जला न दे दूसरे हन्स ने कहा–अरे तू किस दृष्टि से इस राजा की ऐसी महानता का बखान कर रहा है। क्या यह गाड़ी वाले रैक्व के समान है ? पहले हंस ने पूछा–गाड़ी वाला रैक्व कैसा है ? इस पर उसने उत्तर दिया–"जैसे विजय पाने वाले कृत पासे से और सब नीचे हो जाते हैं, वैसे ही प्रजा जो कुछ शुभ कर्म करती है, उस सबका फल इस रैक्व के पुण्यफल के अन्तर्गत हो जाता है। वह रैक्व जिसको जानता है, उसे और कोई नहीं जानता, ऐसा उसके विषय में मुझे यह कहा गया है। हंसों की बात को जनश्रुति पौत्रायण सुन रहा था। प्रातःकाल उठते ही उसने स्तुति करने वाले सेवकों से कहा–"अरे इस स्तुति को गाड़ी वाले रैक्व से कहो।" सेवकों ने कहा–"गाड़ी वाला रैक्व कैसा है ? जैसे विजय पाने वाले कृत पासे में सब नीचे पासे अन्तर्भूत हो जाते हैं, जैसे ही प्रजा जो शुभ कर्म करती है व सब रैक्व के पुण्यफल में अन्तर्भूत हो जाता है। जो विषय रैक्व जानता है, उसे और कोई नहीं जानता। ऐसा उसके विषय में मुझ से कहा गया है। वे सेवक ढूँढ़ने से रैक्व को न पा सके और वापस लौट आये। तब राजा ने उनसे कहा–अरे जहाँ ब्रह्मवेत्ता को ढूँढ़ना चाहिए, ऐसे एकान्त स्थान में उनको ढूँढों वे सेवक जब निर्जन प्रदेश में गये तो उन्होंने गाड़ी के नीचे बैठे खुजाते हुए रैक्व को देखा और समीप जाकर विनय पूर्वक पूछा–हे भगवन ! गाड़ी वाले रैक्व आप ही हो ? उसने कहा–मैं ही हूं। यह जानकर सेवक वापस चला आया।

तब जानश्रुति के पुत्र का पौत्र छः सौ गायें, हार, खच्चरों युक्त रथ लेकर रैक्व के पास गया। और उससे कहने लगा–हे रैक्व ये छः सौ गायें, यह हार और यह खच्चरों युक्त रथ मैं आपके लिए लाया हूँ, इनको ग्रहण कीजिए और हे भगवन ! जिस देव की आप उपासना करते हैं, उसका मुझे उपदेश दीजिए इस पर रैक्व ने कहा–हे शूद्र

! गाय, हार और रथ को तू ही रख, मुझे इनकी जरूरत नहीं है। इस पर जानश्रुति पौत्रायण फिर एक सहस्र गायें, हार, खच्चरों युक्त रथ और अपनी कन्या लेकर रैक्व के पास आया और कहने लगा–हे रैक्व ! ये सहस्र गायें, यह रथ और यह पत्नी रूप मेरी पुत्री और यह गाँव, जिसमें आप रहते हों मैं आपको भेंट करता हूँ। अब आप मुझे उपदेश करें उस राजकन्या को विद्या ग्रहण का साधन समझकर रैक्व ने कहा–हे शूद्र तू जो यह धन लाया वह ठीक है।

उपर्युक्त कथा सूत्र के अतिरिक्त भी छोदोग्य उपनिषद के दार्शनिक प्रसंगों को उपन्यास के कथानक में प्रयोग किया गया है किन्तु उनकी दार्शनिक प्रस्तुति ही हुई है। वे कहीं कथा का अंग नहीं बन पाये हैं। याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी–जनक के प्रसंग बृहदारण्यक के उपनिषद से लिये हैं। इन दोनों उपनिषदों के अतिरिक्त भी लेखक ने दार्शनिक अभिव्यक्ति के लिए अन्य उपनिषदों का भी उपयोग किया है। विभिन्न उपनिषदों के पात्र और उनके चिन्तन को प्रस्तुत कृति में बड़े तरीके से कथांश बनाने का उपक्रम किया गया है।

छांदोग्य उपनिषद में रैक्व गाड़ी वाला है, वह शरीर खुजाता है। गाड़ी उसके पास कहाँ से आयी वह शरीर क्यों खुजाता है, इन प्रश्नों का उत्तर उपनिषद के पास नहीं है। राजा जानश्रुति के पौत्रायण को क्या उपदेश दिया यह सब छांदोग्य उपनिषद में उल्लखित नहीं है। जो कुछ उल्लखित है, उसकी चर्चा व्यर्थ है किन्तु जो नहीं है, विचारणीय वही है। उपनिषदों में वर्णित नामों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त उपन्यास में जो कुछ भी है, वह लेखक की मौलिकता है। उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक ''गाड़ी वाला रैक्व और शरीर खुजाने वाला रैक्व'' अर्थात् गाड़ी और शरीर की खुजली केवल दो शब्दों पर खड़ा किया गया है। उपर्युक्त दोनों शब्दों को उपन्यासकार ने बड़ी सावधानी, कल्पनाशीलता, मनो–वैज्ञानिकता तथा दार्शनिकता के माध्यम से प्रभूत रुचिकर बनाया। दर्शन जैसे रूखे विषय को उपन्यास रूप में प्रस्तुत करना लेखक के उपन्यास–शिल्प का अनूठा उदाहरण है।

शुभा की गाड़ी से रैक्व का लगाव और उनकी पीठ में सन–सनाहट दोनों ही मानसिक प्रतिक्रियाएँ है।

गाड़ी के पास बैठकर तपस्यारत रैक्व का बीच–बीच में पीठ खुजलाना उपन्यास का कारण तथा जाबाला के माध्यम से ज्ञान की, अध्यात्म की प्राप्ति कथानक का उद्योग है। लेखक ने अनुसार जाबाला के रूप में रैक्व ने किसी स्त्री को प्रथम बार देखा था। उसे वह शास्त्रों में वर्णित स्वर्ग लोक की अप्सरा जान पड़ी। निश्चय ही वह बुद्धि से स्त्रीतत्व को नहीं जानता था किन्तु उसका मन स्त्री को बहुत अच्छी तरह पहचानता था। यही मन दे बैठा रैक्व शुभा को। फ्रायड के काम सिद्धान्त के अनुसार हम अपनी कामवासना से ही परिचालित होते हैं। अतः शुभा के न होने पर भी रैक्व का अन्तर्मन गाड़ी से जुड़ गया। प्रिय के वियोग में प्रिय का चित्र यद्यपि बढ़ता है तथापि वह तपन आनन्दमयी होती है। रैक्व के पास चित्र भी नहीं है शुभा उसके अन्तर्मन की अतल गहराइयों में उतर चुकी है। अतः उसकी गाड़ी सदैव रैक्व को शुभा की निकटता का आभास कराती है। उसे वहाँ बैठकर चैन मिलता है वहीं उसकी समाधि लग जाती है।

छांदोग्य उपनिषद की रैक्व के शरीर की खुजली द्विवेदी जी ने रैक्व की पीठ की सनसनाहट में बदल दी है। इस सनसनाहट की भी मनोवैज्ञानिक भूमिका है। शास्त्रज्ञ किन्तु अनुभवहीन रैक्व नहीं जानता कि अपरिचित युवक और युवती का पारस्परिक व्यवहार कैसा होना चाहिए। वह तूफान से पीड़ित भुमूर्ष जाबाला को जी भर कर देखता है। उसके अंग–अंग का परीक्षण करता है। स्पर्श करता है जब जाबाला की चेतना लौट आती है, तब भी वह उसे अपलक देखता रहता है। गाड़ीवान की मृत्यु हो जाने पर वह किसी प्रकार अपने पिता के पास पहुंचने की रैक्व से सहायता मांगती है। उस स्वर्ग के मनुष्य ने रैक्व से सम्भाषण किया, उससे कुछ करने के लिए शुभा के निकट आने का इससे उत्तम और कौन सा अवसर हो सकता था वह इतना त्रभिभूत हो गया कि उसमें कुछ अतिरिक्त सोचने की क्षमता नहीं रही। भावावेश में कह बैठा कि मैं तुम्हें अपनी पीठ पर बैठाकर तुम्हारे पिता के यहाँ पहुंचा दूँगा। शुभा को बिठाने के लिए अपनी पीठ प्रस्तुत भी कर दी। जैसे किसी गर्म–शलाका को हाथ में या अन्य

किसी भाग पर स्पर्श करने से पूर्व ही हमें उसकी अनुभूति होने लगती है, जैसे आने वाली लाठी या लगने वाला चाकू हमें लगने से पहले ही उसकी पीड़ा की अनुभूति करा देता है लगने वाले स्थान पर लगने से पहले ही एक विशेषतानवात्मक अनुभूति होने लगती है, ठीक वैसे ही रैक्व की पीठ में शुभा के बैठने से पूर्व ही बैठने की अनुभूति होने लगी। उनकी पीठ में एक तनाव, एक सनसनाहट, शुभा के कोमल और गुदगुदे शरीर के स्पर्श की ललक उनकी पीठ में होने लगी। सांसारिक व्यवहार से परिचित शुभा रैक्व की पीठ पर नहीं बैठी । रैक्व को एक झटका लगा। उन्होंने शुभा के स्पर्श से प्राप्त होने वाले सुख से वंचित होना पड़ा। शुभा के न रहने पर भी उन्हें शुभा का स्मरण आता था और रह रह कर प्रस्तुत की गयी पीठ पर, शुभा को प्राप्त करने की अदम्भ लालसा सनसनी पैदा करने लगी। यही सनसनी, यही लालसा पीठ की सनसनाहट के रूप में उपन्यास में स्थान–स्थान पर आकर उपन्यास के मेरूदण्ड के रूप में रमणीयता प्रदान करती रही है। इस सनसनाहट की परिकल्पना द्विवेदी जी के कलाकार का कौशल है।

शास्त्रज्ञ धर्म भीरू रैक्व नहीं जान पाता है कि यह पीठ की सनसनाहट क्यों हैं? वह तो मानता है कि उस रात ऐसा हुआ कि शुभा को चोट आ गयी थी। मैंने कहा कि वे मेरी पीठ पर बैठ जायें। यह तो धर्म ही था। लेकिन शुभा ने कहा कि नहीं, यह ठीक नहीं होगा। ऐसा किसी युवा का सोचना भी पाप है। मैं नहीं माना। मैंने अपनी पीठ उनके सामने कर दी। वे हट गयी। उन्होंने कहा कि यह अनुचित है, पाप है। सचमुच पाप था। मेरी पीठ की सनसनाहट वैसी ही बनी रह गयी। पाप का फल तो मिलता ही है। माता ऋतम्भरा के माध्यम से पीठ की सनसनाहट की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करके लेखक ने कथानक में अन्यतम साहित्यिक प्रस्तुति की है रैक्व की बात सुनकर माता कहती है– पर यह जो सनसनाहट है, वह पाप के कारण नहीं है, मन के कोने में छिपीं हुई किसी दर्द में अभिलाष भावना की देन है इसे तो शुभा ही ठीक कर सकती है............तू समझ नहीं पा रहा है। कि तेरे मन में कहीं बहुत गहराई में शुभा को पाने की अभिलाषा है। वही सनसनाहट के रूप में अनुभूत हो रही है। यह ठीक हो जाएगा।

हुआ भी यही। शुभा के प्रथम दर्शन के पश्चात् जिस रैक्व को शुभा को पाने का अभिलाष भाव बेचैन कर रहा था। उसकी समाधि नहीं लगती थी, पीठ बराबर सनसनाती रहती थी, माता ऋतम्भरा के आश्रम में शुभा के दर्शन के पाश्चात् भोलेभाले रैक्व की सनसनाहट भी कम हो गयी और समाधि भी लग गयी। शुभा को पाकर उन्होंने वैश्वानर उपासना आरम्भ कर दी। अपना अधिकाधिक समय दीन–दुखियों की सेवा में व्यतीत करने लगे, शेष बचे समय में आत्म दर्शन हेतु समाधि लगाने लगे। शुभा की गाड़ी में जन–सेवार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर सामान ढोकर पहुँचाने लगे। जो मन समस्त संसार से हटकर शुभा को पाने में लगा था, वहीं मन शुभा से उद्वाह के पश्चात् समस्त संसार में रम गया। यह वैश्वानर उपासना है, द्विवेदी जी के अनुसार यही अध्यात्म है। फ्रायड, जुंग तथा आचार्य रजनीश के सिद्धान्त से द्विवेदी जी की मान्यता अधिक भिन्न नहीं है।

कथानक को रूपायित करने के लिए लेखक ने रैक्व के मन में उत्पन्न प्रेम और उसकी उन्मादावस्था का इस उस और सबसे बखान करके बार–बार जाबाला तक 'शुभा' प्रसंग को पहुँचाकर चाहे वह औदुम्बरायण हो, या ऋतम्भरा का माध्यम हो लगता है कि जाबाला के मन में रैक्व के प्रति जबरदस्ती प्रेम को अंकुरित किया है। गंधर्व द्वारा जाबाला के रक्त का शोषण यद्यपि द्विवेदी जी की विद्वतापूर्ण मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, किन्तु जाबाला का रैक्व के प्रति इस प्रकार पीड़ित होना बिहारी के दोहों की अत्मकथा के समकक्ष ही प्रतीत होता है। जाबाला जैसी विदुषी कुमारी के लिए इस प्रकार का आचरण शोभा नहीं देता है। राजाश्रुति तथा आचार्य औदुम्बरायण दोनों ही अनुभवी और विद्वान है फिर भी मदन–पीड़ा का वास्तविक उपचार न कर कोहलियों के नृत्य के माध्यम से रूढ़ियों के अनुसरण उनके चरित्र के प्रतिकूल है। इस सबके होते हुए भी उस नृत्य के जाबाला को कोई उपलब्धि नहीं हो पाती हे। रोचक होते हुए भी गंधर्व–पूजन प्रसंग अनावश्यक ही कहा जाएगा। अरून्धती की अवतारणा स्वाभाविकता की वृद्धि में सहायक है।

कथानक में राजा जानश्रुति को एक ओर सामान्य खाते–पीते घर का गाँव का मुखिया कहा है, उसके यहाँ मात्र सौ बैलों की खेती होती थी, आसपास के गाँवों में वह धनी समझा जाता था जबकि दूसरी ओर उसे महादानी, विशाल भूभाग एवं असंख्य जनता का स्वामी बताया गया है उपन्यास में तीन स्थलों पर जानश्रुति की आर्थिक स्थिति तीन प्रकार से चित्रित करना कथानक दोष में ही परिगणित किया जा सकता है। ऐसा लगता है कि लेखक जिस धरातल का चित्रण करना चाहता है, भावना के आवेग में बहक कर कुछ और चित्रित कर जाता है।

मामा का प्रसंग कथा में रोचकता और जीवन्तता उत्पन्न करने वाला है। ऋषि औषस्ति, माता ऋतम्भरा, जटिल मुनि तथा आश्वलायन जैसे पात्रों के द्वारा आत्मा, परमात्मा, सत्य, धर्म, तप, पुरुषार्थ जैसे गूढ़ तत्वों की बहुत रुचिकर व्यावहारिक व्याख्या की गयी है। व्यावहारिक होते हुए भी ये प्रसंग कथा प्रवाह में बाधक है। स्थान–स्थान पर इन प्रसंगों की आवतारणा कथानक की रोचकता और गत्यात्मकता को आहत किया है।

कथा–तन्तुओं को जोड़ने में लेखक ने विशेष सफलता पायी है। पीठ की सनसनाहट से लेकर रैक्व और जाबाला की अनुभूतियों तथा माता ऋतम्भरा और औषस्तिपाद, औदुम्बरायण–जानश्रुति आदि सभी लेखक के कथा तन्तुओं को जोड़ने वाले पात्र हैं। किसी अध्याय के बीज प्रसंग को आगामी अध्याय में पल्लवित, पुष्पित तथा फलित करना रचनाकार कहीं नहीं भूला है।

8.4 केन्द्रीयभाव

1. रैक्व और जाबाला के हृदय में प्रस्फुटित प्रेम की सफलता के रूप में उद्वाहिक परिणति।

2. व्यक्ति अपने स्वभावानुसार सत्य का साक्षात्कार करता है। रैक्व का स्वभाव प्रेम है। अतः उसने प्रेम (शुभा) के माध्यम से ही सत्य का साक्षात्कार किया। उसने प्राण के सूत्र को पकड़ कर, अपने परम सत्य की प्रिया के रूप में पाया।

उपर्युक्त उद्देश्य अथवा केन्द्रीय भाव की सिद्धि के लिए लेखक ने विभिन्न उनिमयों और उद्धरणों का सहारा लिया है। कथानक का ताना–वाना इसी केन्द्रीय भाव की पूर्ति का माध्यम है। लेखक की मान्यता है कि हर आदमी के लिए सत्य का रास्ता अलग–अलग होता है। आवश्यक नहीं कि सब एक ही मार्ग से चलकर परम तत्व तक पहुंचे। सच्चाई से अगर अपने स्वभाव के अनुरूप चलो तो किसी पक्ष को पकड़ कर सत्य तक पहुँच सकते हो। वायु का चुनना तो रैक्व के विशिष्ट स्वभाव का सूचक है। ऋषि औषस्ति के अनुसार रैक्व का झुकाव प्राण तत्व की ओर अधिक है और वह ब्रह्म के 'प्रिय रूप' को अपनाने में अधिक समर्थ है। प्राण की उपासना करने वाला 'प्रिय ब्रह्म' का अधिकारी होता है। यही प्रिय रूप ब्रह्म जो आकाश की तरह सर्वत्र प्रतिष्ठित है, प्राण में जाकर बैठा हुआ है। इसी ब्रह्म के कारण प्राण से प्रियता उत्पन्न होती है और 'प्राणप्रिये' जैसे सम्बोधन का जन्म होता है..........जो यह मानता है कि प्राण ही परम ब्रह्म है उसका साथ प्राण नहीं छोड़ता। सब प्राण उसकी रक्षा करते हैं, वह स्वयं देव होकर देवों में जा विराजता है।

निरन्तर आगे बढ़ने की प्रक्रिया प्राणोपासना है। सत्य तक पहुँचने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान मनन के बिना नहीं होता, मनन श्रद्धा के बिना असंभव है, श्रद्धा निष्ठा के बिना नहीं रह सकती और निष्ठा केवल सोचते रहने वाले के वश की नहीं। जो कर्मण्य नहीं वह निष्ठा का भी नहीं। कर्म किसी सुख की आशा के बिना नहीं किया जाता। प्राणोपासना का पर्यवसना परम सत्य वैश्वानर की उपासना में हें जो ब्रह्माण्ड में ब्रह्म है, वहीं पिण्ड में आत्मा है, वहीं अन्तरतर का देवता है। वह स्वभाव का प्रेरक है। प्रत्येक का अपना–अपना अलग स्वभाव है। उसी अलग–अलग स्वभाव से आत्मा–ब्रह्म–परमवेश्वानर मनुष्य में, जीव में 'प्रियता' उत्पन्न करते हैं। हम जिसे प्रिय समझते हैं, वह हमारे स्वभाव की प्रवृत्ति है। जो हमें प्रिय है, वही सब कुछ नहीं है। सब कुछ तो अन्तरतर

का देवता है, जिसने यह दृष्टि दी है। संसार चक्र में पड़े मनुष्य नाना करणों से 'स्वभाव' को या तो पहचान ही नहीं पाते या पहचान कर भी उपेक्षा कर देते हैं। अतः मनुष्य की दृष्टि अंतरतर के देवता पर रहनी चाहिए, बाहर दिखाई देने वाले माध्यम पदार्थ पर नहीं। परमात्मा का निरन्तर ध्यान रखने एवं उनसे प्रार्थना करते रहने पर यह आत्मदर्शन संभव हैं।

जो मनुष्य भाव है 'प्रेम है, मैत्री है, चाह है, अभिलाष है, तप है, व्याकुलता है–यह मनुष्य भाव की सब प्राणियों की मधु समान प्रिय है। इस मानुष भाव में जो तेजोमय है, अमृतमय पुरुष है, वह समष्टि रूप ब्रह्माण्ड का आत्मा है, भिन्न व्यक्तियों में जो तेजोमय पुरुष है, वह समष्टि पिण्ड का आत्मा है आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही सब कुछ है अतः जो मानुष भाव सबसे अधिक मधुर है, वहीं से सत्य की खोज शुरू करनी चाहिए।

आत्मदर्शन ही ब्रह्मदर्शन है। आत्मा ही 'अहं ब्रह्मम' का उद्घोषक है। उस ब्रह्म या आत्मा का साक्षात्कार किसी रूप का आधार लेने पर ही संभव है क्योंकि अपने आप में ब्रह्म रूप–रेख गुण विहीन है। अतः क्यों न ऐसे रूप को आधार बनाया जाय, जो प्रिय हो। ब्रह्म साक्षात्कार की पहली सीढ़ी प्रिय का ध्यान होना चाहिए। यह लक्ष्य नहीं है, इसको आधार बनाकर परम सत्य परम वैश्वानर तक पहुंचा जा सकता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति का सत्य अलग होता है किन्तु जब तक व्यक्ति सत्य परम वैश्वानर सत्य को समर्पित नहीं हो जाता, तब तक अधूरा रहता है, अवरोध उपस्थित करता है, अनन्त सम्भावनाओं के द्वार को बन्द कर देता है। व्यक्ति सत्य प्रेम, परम वैश्वानर प्रेम की पहली सीढ़ी है। न वह उपेक्षणीय है, न लक्ष्य है। वह भगवान की भेजी हुई एक ज्योति किरण है, वह परम वैश्वानर का अंगुलि–निर्देश है, जिससे अनन्त सम्भावनाओं के द्वार तक मार्ग साफ दिखाई दे जाता है।

अतः वैश्वानर–रूपे–रूपे प्रतिरूपं बभूव। रैक्व के लिए रूप में सर्वश्रेष्ठ रूप है शुभा का। शुभा ही परम वैश्वानर की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है। मनुष्य प्रिय को देवता बना लेता है, या फिर देवता को प्रिय बना लेता है। रैक्व के लिए एक बार शुभा परमवैश्वानर बन रही है। दूसरी बार वैश्वानर शुभा बन रहे हैं। अल्प भूमी बन रहा है, भूमा अल्प बन रहा है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने उपन्यास 'अनामदास का पोथा' के माध्यम से एक मनोवैज्ञानिक उद्देश्य की भी अभिव्यक्ति की है। उनके अनुसार मनुष्य अपने स्वभावानुसार ही पूर्णता को प्राप्त होता है। मनुष्य का मानसिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास आदि स्वभावानुसार ही होता हैं स्वभावानुसार उपलब्धि न होने पर कर्निम में कुण्ठा जन्म ले लेती है। यही कुण्ठा मनुष्य की असफलता है, उसके लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा है। रैक्व का स्वभाव प्रेम है, अर्थात् परम सत्य को प्राप्त करने की उनकी शैली है। अपने स्वभावानुसार रैक्व ने जाबाला को प्राप्त करके, उसे माध्यम बनाकर पूर्णता को प्राप्त किया। उन्होंने अपने व्यक्ति सत्य के माध्यम से परम सत्य की उपलब्धि की। उन्हें जाबाला का प्रियमुख शक्ति–स्रोत प्रतीत होता था प्रथम दर्शन के बाद जब–जब रैक्व ने जाबाला को भुलाने का प्रयत्न किया, अपने स्वभाव को दबाने का प्रयत्न किया, जाबाला उनके मस्तिष्क में बरबस आती रही। न उन्हें संतुष्टि मिली और न उनकी समाधि लगी। जाबाला के स्पर्श हेतु प्रस्तुत की गयी पीठ निरन्तर सनसनाती रही। वे बेचैन रहे। किसी से बात करना या हँसना बोलना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। जैसे ही उन्होंने माता ऋतम्भरा के यहाँ जाबाला को देखा, उनकी समाधि लग गयी।

जाबाला रैक्व के हृदय के अन्तरतम कोर में समा गयी। उसे प्राप्त करने की दुर्दमनीय आकांक्षा उन्हें निरनन्तर बेचैन किये रही। प्राप्त करने के पश्चात् रैक्व को शान्ति मिली। उन्होंने उससे उद्धाह किया। उनका मन समाधि में रमने लगा, परमवैश्वानर–विश्व की नर रूप में उपासना में रमने लगा। वे दीन दुखियों की सेवा करने लग। अपनी आत्मा की छाया समस्त प्राणियों में देखने लगे। उन्हें समस्त चराचर उसी परमवैश्वानर का विग्रह प्रतीत होने लगा, जिसका एक अंश उनके अन्तर में भी प्रकाशित हो रहा था। उनकी पीठ की सनसनाहट समाप्त हो गयी।

8.5 सांस्कृतिक वातावरण और दर्शन

उन दिनों देश का अधिकांश भाग जंगलों से घिरा हुआ था। इन जंगलों में जहाँ अनेक हिंसक जन्तु फैले हुए थे, वहाँ ज्ञान के स्रोत कुछ तपस्वी भी यत्र–तत्र अपनी कुटिया बनाकर रहा करते थे। कुछ तपस्वी तो केवल तपश्चर्या में ही सारा समय लगा देते थे, लेकिन कुछ ऐसे भी थे। जो अध्ययन किया करते थे। उनके यहाँ जिज्ञासु विद्यार्थियों की उपस्थिति बराबर बनी रहती थी। वे ऋषि कहलाते थे और गृहस्थ रूप में रहा करते थे। ये ब्रह्म या वेद को चरम और परम मानने वाले ब्राह्मण थे। जो ब्राह्मण नहीं होते थे, वेद और ब्रह्म को नहीं मानते थे, वे मुनि कहलाते थे। ऋषियों के अपने बाल--बच्चों के अतिरिक्त गायें भी हुआ करती थीं। किसी–किसी के यहां बकरियाँ भी रहती थीं। आज्य का हवन आवश्यक माना जाता था। यज्ञादि के अतिरिक्त आध्यात्मिक चिन्तन इनका दैनिक कार्य था। ऋषियों के आश्रम सरिता अथवा जलाशय के रमणीय तट पर हुआ करते थे जहाँ वे शिष्यों को वेद विद्या के अतिरिक्त गणित विज्ञान, पित्रय शास्त्र, दैव विद्या, निधि शास्त्र, वाकोवाक्य, एकायन (नीति शास्त्र), निरुक्त, भूतविद्या, नक्षत्र विद्या, सर्व विद्या ललित कला तथा धनुर्विद्या की शिक्षा दिया करते थे। विशेष ज्ञानार्थी को अन्य आश्रमों से विशेषज्ञों के पास भी शिक्षा हेतु भेजा जाता था। इन आश्रमों में विद्यार्थी को स्वस्थ रखने के लिए उससे कठिन शारीरिक श्रम भी कराया जाता था।

वैदिक अध्ययन की उन दिनों धूम थीं ऋग्वेद, यजुर्वेद; सामवेद तथा अथर्ववेद अध्ययन के आधारभूत ग्रन्थ माने जाते थे। वेदों का वेद समझाने वाला इतिहास–पुराण वैदिक ज्ञान की कुन्जी माना जाता था। जो इतिहास–पुराण नहीं जानता था, उसे "अल्पश्रुति" माना जाता था और ऐसा विश्वास किया जाता था कि ऐसे अल्पश्रुत व्यक्ति से वेद डरते हैं कि यह हमारे ऊपर ही प्रहार कर बैठेगा। जो इतिहास–पुराण का वेत्ता होता था, उसे बहुश्रुत कहा जाता था।

तपस्वी लोग "अकृष्टपच्च" (बना जोती हुई जमीन में स्वतः आने वाले पौधों से स्वयं पक कर झड़ जाने वाले दानों से ही भोजन का काम चलाते थे) का उपयोग करते थे। दूध--दही के साथ मुधु का भी प्रयोग होता था।

आचरण की शिष्टता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आसन तथा प्रणिपात करके वृद्धों का सम्मान किया जाता था। विद्वानों को भगवन या भगवः सम्बोधन किया जाता था। स्त्रियों को भवति कहा जाता था। जब कोई विद्यार्थी गुरु के पास जाया करता था तो हाथ में कुछ न कुछ समिधा लेकर जाता था। समिधा यज्ञ का उपकरण है, उसको हाथ में ले जाने का आशय है कि यज्ञ पूरा नहीं हुआ। ब्रह्मचारी की जिज्ञासा शेष है। गुरुपूर्णिमा के दिन शिष्य गुरु की पूजा करके उनका सम्मान किया करते थे। शिष्यों में वृद्ध शिष्य धनी मानी तथा राजा हुआ करते थे। इस दिन शिष्य गुरु को उपहार भी भेंट किया करते थे। गुरु पत्नी शिष्य तथा आगन्तुक के खान--पान तथा सुविधा का ध्यान रखती थीं।

उन दिनों यात्रा के साधन के रुप में बैलगाड़ी का प्रयोग किया जाता था, जिसे 'रथ' कहा जाता था। साबुन के स्थान पर इंगुदी तेल में जौ पीसकर उबटन का प्रयोग होता था। इससे शरीर स्वच्छ तथा कान्तिमान हो जाता था। युवक–युवती स्वतन्त्र रूप से वार्तालाप नहीं कर सकते थे। प्रभंजन–पीड़ित असहाय जाबाला अपने पिता के द्वारा उसकी तलाश भेजे गये आदमियों की पदचाप सुनकर पुरस्कार देने के स्थान पर सहायक रैक्व को कहीं दूर छिप जाने के लिए बाध्य करती है। समाज में अनेक रूढ़ियाँ तथा आडम्बर विद्यमान थे। युवतियों की मनोवांछा को जानने के लिए गंधर्व पूजन किया जाता था। गंधर्व पूजन के लिए नाट्य–आयोजन होता था। रंगमंच का निर्माण बड़े ही आडम्बर और अन्धविश्वासों के साथ होता था। आरम्भ में भूमि को हाथ से जोत कर नरम किया जाता था। तदनन्तर उसमें से ईंट–पत्थर रोड़ा, घास आदि बीनकर प्रेक्षा गृह का नाप किया जाता था। नाप के समय सूत्र मजबूत बनाया जाता था। ऐसा समझा जाता था कि यदि सूत्र आधे से टूट जाता था तो स्वामी की मृत्यु, तिहाई

टूट जाने से राजकोष की आशंका, चौथाई टूटने पर प्रयोक्ता का नाश तथा हाथ भर से टूटने पर कुछ सामग्री घटने की आशंका रहती थी। तिथि नक्षत्र आदि की शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया जाता था। रंगमंच निर्माण के समय काषाय वस्त्र धारी, हीन–वपु या विकलांग को अशुभ मानकर आने नहीं दिया जाता था। खम्भा गाड़ने में बड़ी सावधानी का ध्यान रखा जाता था। खम्भ का उखड़ जाना या हिल जाना अशुभ फल दायक समझा जाता था। पद–पद पर पूजा–प्रायश्चित और ब्राह्मण भोजन की आवश्यकता पड़ती थी। नाटक की सफलता का दारोमदार सूत्रधार पर होता था। वेदिक क्रिया न होने के कारण ब्राह्मण इसमें भाग नहीं लेते थे।

विवाह तीन प्रकार का होता था–(1) काम–विवाह या गंधर्व विवाह। यह धर्म सम्मत नहीं होता था। (2) धर्म विवाह यह शास्त्र सम्मत होने के कारण सामाजिक मान्यता प्राप्त होता था। (3) उ,ाह इस विवाह में पाणिग्रहण के स्थान पर उपोदग्रहण होता था। यह मानसिक विवाह था, जिसमें पत्नी आध्यात्मिक चेतना को परिष्कृत करती थी। विवाह सम्पन्न युवकों का ही होता था। किन्तु ज्ञानी ब्राह्मणों के साथ यह प्रतिबन्ध नहीं था।

राजा प्रजा को कर्मचारियों की आँखों से देखता था। वह अपनी प्रजा को सन्तान मानता था। अपनी व्यक्तिगत परेशानी के कारण प्रजा के प्रति किया गया राजा का प्रमाद पाप माना जाता था। प्रजा में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति थी। राजा प्रजा की आर्थिक सहायता के बदले में किसी न किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक श्रम लिया करता था ताकि प्रजा भिक्षा–जीवी न बन पाये। राजा लोग ऋषि आश्रम में कुलपति के आदेश के बिना प्रवेश नहीं कर सकते थे। तपस्या और स्वाध्याय के क्षेत्र राजा का किसी प्रकार का दबाव धर्म संगत नहीं था। आश्रम में प्रवेश करते समय राजा को राजवेश का परित्याग करना पड़ता था। राजा यज्ञ करता था। यज्ञ कराने वाले व्यक्ति को अपनी कन्या–दान में दिया करता था। राजा द्वारा कराया गया इस प्रकार विवाह दैवे विवाह कहलाता था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'अनामदास का पोथा' उपन्यास में पारलौकिक समझे जाने वाले दर्शन को जीवन से जोड़ा है। उनकी दृष्टि में जीव–जगत का सम्बन्ध सबसे बड़ा है। आत्मा से भिन्न कोई परमात्मा नहीं है और संसार से इतर परमात्मा की कल्पना व्यर्थ है। दर्शन जीवन के लिए है, तत्व चिन्तन जीवन के लिए है। जिस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान जीवन को सुखमय बनाता है, उसी प्रकार तात्विक चिंतन से भी जीवन को जीने में सहायता प्राप्त होती है। जनसेवा को लेखक ने अध्यात्म मानकर जीवन के प्रति नये और परिवर्तित दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

अलौकिक और अदृश्य पदार्थों को चिन्तन का विषय बनाये जाने के कारण दर्शन सामान्य जन की पकड़ में नहीं आ पाता। इसलिए जहाँ भी दार्शनिक चर्चा होती है, लोग ऊबने लगते हैं। यह दर्शन वैयक्तिक अनुभूतियों का सार है, हमने जिसे प्रत्यक्ष देखकर भोगा है, उसका परिणाम है। लेखक अपने भोगे हुए सत्य का उद्घाटन ही दर्शन मानता है। भिन्न–भिन्न पदार्थों, नामों तथा मान्यताओं से सम्बन्धित लेखक के दार्शनिक विचार निम्नलिखित हैं:–

आध्यात्मिक साधना

दुखियों का दुःख दूर करना ही सच्ची अध्यात्मिक साधना है यही तप है, यही मोक्ष है।

तप दूसरों के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोड़ कर दे देना, इससे बड़ा तप मुझे मालूम नहीं हैं। दूसरों के दुख का भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न सबसे बड़ा तप है।

वैश्वानर साधना

समूचा विश्व एक पुरुषोत्तम का रूप है। यह जड़ धरित्री, सप्राण वनस्पति, जीवन्त जन्तु और बुद्धिमान मनुष्य उस एक को ही विभिन्न अभिव्यक्ति है–तुम भी, प्राण भी, आकाश भी, सूर्य भी चन्द्र भी। लोक ताप से तप्त होना अखिलात्मा पुरुष की परमा–राधना है। यही वैश्वानर उपासना है।

आत्मा–

भरण धर्मा शरीर उस अमृत रूप अशरीर आत्मा का अधिष्ठान है, उसके रहने का स्थान हैं। आत्मा स्वभाव से अशरीर है, परन्तु जब तक इस शरीर के साथ अपने को एक समझकर रहता है, तब तक उसे भी सुख–दुःख लगा ही रहता है क्योंकि सुख–दुःख तो शरीर का धर्म ही है। जब तक शरीर के साथ यह अपनी एकता बनाये रखेगा, सुख–दुःख से नहीं छूट सकेगा। जब उसका परमज्योति ब्रह्म के साथ सम्पर्क हो जाता है, तब वह भी अपने असली रूप को धारण कर लेता है।...........असली रूप को प्राप्त करने के पश्चात् यह शरीर में रहता हुआ भी, अपने को अशरीरी अनुभव करने लगता है। जब मनुष्य इस अवस्था में पहुंच जाता है तो वह स्पष्ट देख लेता है कि जैसे रथ के साथ घोड़ा जुता होता है, वैसे ही उसका प्राण, उसका आत्मा इस शरीर रूपी रथ के साथ जुता हुआ है। वह स्वयं शरीर नहीं है। न शरीर तथा आत्मा का कोई मूलगत सम्बन्ध ही है। आकाश में जहाँ आँख जड़ी हुई है, वही चाक्षुष पुरुष, वह 'आत्मा' बैठा है और इस विशाल जगत को मानो झरोखों में बैठा झाँक रहा है। आँख क्या है ? यह कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। उसी को देख्ने का साधन हैं–जो देख रहा है। नासिका गंध ग्रहण करने के लिए है–यह साधन है, जो गंध ग्रहण करता है, वही आत्मा है। कान सुनने के लिए है। यह साधन है, जो सुनता है, वही आत्मा है।................जो मन के द्वारा मनन करता है, वही आत्मा है।

मन

मन आत्मा का दैव चक्षु है, दिव्य नेत्र है। इससे यह आगे–पीछे, भूत–भविष्य सब देखता हैं इसी दिव्य चक्षु द्वारा, मन में, ही रमण करता हैं, परन्तु यह भी आत्मा का साधन है।

ब्रह्म

पिण्ड में, शरीर में, जो आत्मा है, वही ब्रह्माण्ड में ब्रह्म है। वह सदा विद्यमान अखण्ड, चैतन्य स्वरूप, अनाबिल, आनन्द रूप–सच्चिदानन्द। ब्रह्म और आत्मा अभिन्न तत्व है।

ब्रह्म प्राप्ति का उपाय–

तप और स्वाध्याय से मनन और निदिध्यासन से, ध्यान और समाधि से वह परम तत्व अनुभव का विषय बनता हे। सतसंग और सदाचार से स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य से ही मनुष्य का शरीर इसके भीतर देखने वाला अन्तःकरण वह पवित्र अधिष्ठान बनता है, जिसमें आत्मानुभूति स्थिर और अचंचल होकर निवास करती है।

परम सत्य–

जिसे वाणी व्यक्त नहीं कर सकती, किन्तु जो वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान करती है, उसी को परम सत्य समझो, उसे नहीं जिसकी लोग व्यर्थ उपासना कारते हैं। जिसकी कल्पना करने में मन असमर्थ है, किन्तु जो मन की कल्पना करता है। उसी को परम सत्य समझो। जिसे देखने में नेत्र असमर्थ हैं, किन्तु जिसके द्वारा हम नेत्रों को देखते हैं, वही परम सत्य है। जिसे श्रवण सुन नहीं सकते, किन्तु जो श्रवण की शक्ति प्रदान करता है, वही परम सत्य है। जिसे प्राण श्वस्ति अथवा उच्छ्वसित करने की शक्ति नहीं रखते, किन्तु जो प्राणों को श्वासोच्छवास की शक्ति प्रदान करता है, उसी को परम तत्व समझो।

अमरता–

अमरता अपनी ओर देखने से मिलती है। कोई भी वस्तु या प्राणी इसलिए प्रिय नहीं है कि वह अपने आप में प्रियता रखता है। वस्तुतः सचराचर रूपराशि भगवन्त अर्थात् परमवैश्वानर रूप–रूप में अपने को अभिव्यक्त कर रहे हैं। वे आत्मा रूप में हर व्यक्ति में विराजमान हैं। प्रत्येक का अपना अलग–अलग स्वभाव है, पर सभी परम

वैश्वानर की ही अभिव्यक्ति।.........यह केवल बोध बना रहना चाहिए कि मैं जिसे प्रिय दृष्टि से देख रहा हूँ, वह उसके कारण नहीं बल्कि अपने अन्तरतर के देवता के कारण, वह देवता ही स्वभाव का प्रेरक है। स्वभाव की उपेक्षा से उसी का अपमान होता है। जो हमको प्रिय है, उसे ही सब कुछ नहीं समझना चाहिए, प्रिय को साधन बनाकर, सब कुछ परमब्रह्म की तलाश जारी रखना चाहिए। परमब्रह्म ही अमरता है।

धर्म

सज्जनों का संग, सदग्रन्थों का अध्ययन सत्य पर दृढ़ आस्था और दुःखी जनों की सेवा ही परम धर्म हे। जानी हुई बात को ठीक–ठीक आचरण में ले आना वास्तविक धर्म है।

पुरुषार्थ

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इनमें से पहले तीन साधन हैं, अन्तिम साध्य है। पहले तीन में धर्म सबसे बड़ा है। उसके अनुकूल रह कर अर्थ का उपार्जन करना चाहिए। अर्थ प्रधान नहीं है–धर्म का अविरोधी रहकर ही पुरुषार्थ है। धर्म के विरुद्ध जाने पर त्याज्य है। काम, धर्म और अर्थ का अविरोधी रह कर ही पुरुषार्थ कहलाता है। धर्म और अर्थ के विरुद्ध जाने पर आचरणीय नहीं रहता।

तपस्या

दूसरों के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोड़ कर दे देना, इससे बड़ा तप मुझे मालूम नहीं है। एकान्त का तप बड़ा तप नहीं है। सर्वत्र एक ही आत्मा विद्यमान है। अतः दूसरों के दुःख का भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न सबसे बड़ा तप है।

पाप

जिस कार्य से किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट होता है, वह पाप कार्य है।

पुण्य

जिससे किसी का दुःख दूर हो, उसका इहि लोक और परलोक सुधर जाये, रोगी निरोग हो जाये, दुखिया सुखी हो जायें, भूखा अन्न पाये, प्यासा जल पाये, कमजोर लोग आश्वासन पायें–ये सब पुण्य हैं क्योंकि इनसे अन्तःकरण में विराजमान परम देवता प्रसन्न होते हैं।

वैराग्य

गलत चीज का त्याग वैराग्य है। वैराग्य से असत्य के परित्याग की शक्ति मिलती है।

संस्कृति

प्रकृति को सुनियंत्रित रूप में चलाने का नाम ही संस्कृति है।

विवाह

पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए विवाह किया जाता है। विवाह के माध्यम से ही पुरुष और स्त्री पूर्णता प्राप्त करते हैं, संसार के सबसे बड़े लक्ष्य प्रेम को प्राप्त करते हैं। विवाह से जो बच्चे पैदा होते हैं वे धर्म संगत होते हैं, उनसे समाज को बल मिलता है।

जिसके सामने जाने पर व्यक्तित्व के सर्वोत्तम का पक्ष उजागर हो, जो भीतर सोये देवत्व को जगा दे।

राजा

प्रजा का शब्द अर्थ संतान है। राजा के लिए समस्त प्रजा उसकी संतान है। राजा को प्रजा का ध्यान अपनी ओर से संतान की ही भाँति रखना चाहिए। जिस राजा को राज्य में बच्चे और स्त्रियाँ भूख–प्यास से व्याकुल होती हैं उसका सत्यानाश हो जाता है और राजा नरक का अधिकारी होता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपर्युक्त दार्शनिक चिन्तन से इतना अवश्य स्पष्ट हो गया है कि पण्डित जी साहित्य का चरम लक्ष्य मनुष्य को मानते हैं। उनका ब्रह्म, उनका आत्मा, उनका वैश्वानर, तप, साधना तथा परम सत्य मानव के आस–पास ही है। दूसरे के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़ कर दे देना वे सबसे बड़ी तपस्या मानते हैं। आत्मा–परमात्मा का चिन्तन अध्यात्म कहलाता है, किन्तु लेखक इस अध्यात्म को भी जन–सेवा ही मानता है। इस दृष्टि से पण्डित जी का यह उपन्यास साहित्यक सृष्टि मात्र न होकर सामाजिक व्यवस्था का दस्तावेज है। इस उपन्यास में पण्डित जी का मानवतावादी, मानववादी, समाज सेवी और विश्व प्रेमी न जाने कितने मानव कल्याणवादियों के रूप में उभर कर आये हैं।

8.6 प्रमुख चरित्र

रैक्व–सामवेद के प्रख्यात पण्डित रिक्व का पुत्र रैक्व मातृ–पितृ विहीन अनिकेत है। अपने पिता से संस्कार पाकर वह प्रकाण्ड विद्वान तो बन गया है किन्तु समाज से दूर रहने के कारण व्यावहारिकता से शून्य है। संसार के मूल को जानने की चिन्तन में वह इतना तल्लीन है कि उसे दीन–दुनिया का कुछ पता ही नहीं है। अपनी जिज्ञासु वृत्ति के कारण संसार के नानामूलों की परिकल्पना करता हुआ वायु को अन्तिम मूल मान लेता है। कन्दमूल आदि से क्षुधा पूर्ति करके अपना अधिकाधिक समय चिन्तन और मनन में व्यतीत करने के कारण पद–पदार्थ तथा स्त्री–पुरुष के अन्तर से अनभिज्ञ है। लोक में ऐसा विश्वास किया जाने लगा कि वह निष्क्रिय निष्काम तरुण–तापस समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर चुका था। लोगों के आने जाने से भी उसकी समाधि निर्विघ्न बनी रहती थी। उसकी तपस्या की प्रसिद्धि से लोग उसके पास खान–पान की वस्तुएं रख जाया करने थे।

स्वभाव से रैक्व इतना भोला है कि उसे पागल की श्रेणी के निकट रखा जा सकता है। तूफान से पीड़ित जाबाला को वह प्रथम देखता है तो देखता ही रह जाता है। उसे विश्वास नहीं होता कि वह क्या देख रहा है, जो कुछ देख रहा है वह सत्य है। वह सोचता है–ऐसी आँखें तो मनुष्य की नहीं होती, ये तो विल्कुल मृग की आँखें हैं। अवश्य ही इस प्राणी ने कहीं से मृग को आँखें लेकर अपने चहरे पर बैठा ली हैं। वे धीरे–धीरे आँखों के चारों ओर उंगली फिराकर देखने लगे कि कहीं जोड़ के चिन्ह हैं या नहीं। नहीं थे।

युवक का युवती के प्रति आकृष्ट होना नैसर्गिक है। इस आकर्षण को समाज नहीं सिखाता। समाज तो सम्बन्धों को मर्यादित करता है। समाज तथा स्त्री पदार्थ से अनभिज्ञ रैक्व जाबाला के पूछने पर अपना अनुभव बताते हुए भोलापन की अभिव्यक्ति करता है–"अनुभव जानती हो शुभे सब कुछ वायु से उत्पन्न होता है, वायु में विलीन हो जाती है। मेरे भीतर तुम्हारे भीतर और समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में वायु ही सब कुछ करा रहा है। मेरे भीतर जो प्राण वायु है, वह तुम्हें देखकर बहुत चंचल हो गया है। तुम्हें दिखाई नहीं देता, पर मेरे भीतर भयंकर आँधी बह रही है............वह मेरे अन्तर्वर्ती प्राणवायु को तुम्हारे भीतर ठेलकर घुसा देना चाहती है। अपने भेलेपन के कारण ही वह साधन विहीन शुभा को उसके पिता के घर पहुँचाने के लिए अपनी पीठ प्रस्तुत कर देता हैं तथा शुभा से उद्वार तक पीठ के अनुताप को सनसनी के रूप में सहता रहता है।

आदिम कामभावना से रैक्व इतना पीड़ित है कि शुभा के अभाव में उसका रथ ही उसकी समाधि तथा आवास का स्थल और आधार बन गया है। उन्हें स्वप्न में भी शुभा ही दिखाई देती है। आचार्य औदुम्बरायण से स्वप्न की बात बताते हुए कहते हैं–कल मैंने स्वप्न में अपने गुरु को देखा। गुरु, महाभागा। वे तो दिव्य लोक निवासिनी है। स्वप्न में आ गयी। आचार्य क्या बताऊँ कि उनका रूप–रंग कैसा सुन्दर है ?

रैक्व की शुभा अनुपमेय है। उसको शुभा से इतना लगाव है कि माता ऋतम्भरा के कहने पर वह उपने केस तथा दाढ़ी इसलिए नहीं मुड़वाना चाहता कि शुभा उसे पहचान नहीं पायेगी। वह स्वयं शुभा से कहता है कि तुम जानती नहीं, अब मैं तुम्हारे बिना जी नहीं सकूँगा। पता नहीं मुझे क्या हो गया है। ? ध्यान नहीं कर सकता, समाधि नहीं लगा पाता, जप–तप भूल जाता हूँ। तुम्हीं मेरी आराध्या हो, परब्रह्म स्वरूपिणी। वह रैक्व का सत्य है। शुभा को माता ऋतम्भरा के आश्रम में देखकर रैक्व का चैतन्य प्रसारित होने लगता है। वे औषस्ति ऋषि का आदेश मानकर शुभा के प्रेम को परमब्रह्म का अंगुलि निर्देश मानने लगे है। उन्होंने शुभा को ब्रम्ह का परम वैश्वानर का स्वरूप मानकर उसे परब्रह्म की प्राप्ति का माध्यम बनाया है। उसी निमित्त उन्होंने शुभा से उद्वाह किया।

रैक्व पर दुखकातर है। वह आँधी में फँसी जाबाला भूख–प्यास से तड़पती अचेत बालक के साथ जाबाल के मृत सारथी की पत्नी, अनेक रोगी–पीड़ित और अकाल से पीड़ित व्यक्तियों की स्थान–स्थान पर घूम–घूम कर अथक सहायता करता है। वह शुभा की गाड़ी भी जन सेवा के लिए ही प्राप्त करता है।

रैक्व अपने सत्य को ही सत्य मानता है। व्यर्थ की बात करने वालों का तिरस्कार कर देता है। उसकी सिद्धियाँ सत्य हैं। वह महाफक्कड़ है। वह अपने प्राणों को विरुद्ध करके हवा में उड़ सकता है। उनका ऐसा संक्रमण कर सकता है कि लोग रोग मुक्त हो सकते हैं। हजारों की संख्या में लोग उसकी सिद्धियों से लाभान्वित हुए है। उसके गुणों का बखान हंस जैसे पक्षी भी करते हैं।

रैक्व अल्प भाषी किन्तु जिज्ञासु है। ऋषि औषस्ति, माता ऋतम्भरा, जटिल मुनि तथा आश्वलायन के विचारों को वे ध्यान से सुनते हैं। वे परम सत्य, मन, वायु, ब्रह्म जगत अवस्था आदि के प्रश्नों के उत्तर पाकर तत्सम्बधित आचरण भी करने लगते हैं। उपर्युक्त समस्त महानुभावों से परम वैश्वानर की उपासना का स्वरूप जानकर वह सच्ची तपस्या जन–सेवा को मानने लगा है। उसकी दृष्टि में गाड़ी के नीचे बैठकर तपस्या करना ढोंग है। सच्ची तपस्या तो गाड़ी चलाकर ही की जा सकती है। वह उस टूटी गाड़ी को ठीक करके स्वयं खीचकर जन–जन के पास कुछ खाद्य–सामग्री ढोकर पहुंचाना चाहता है। इसे ही वह तप, साधना, समाधि अध्यात्म तथा वेंश्वानर उपासना मानता है।

जाबाला (शुभा)

राजा जानश्रुति की एक मात्र सतित कन्या जाबाला परम सौंन्दयवती और विदुषी है। यौवन–वयस के कारण उसका हृदय सरोवर प्रेम से परिपूर्ण है। योग्य एवं अनुकूल वर प्राप्त न होने के कारण अब तक उसका विवाह नहीं हो सका। लाड़–प्यार में उसका लालन–पालन हुआ था। राजा जानश्रुति ने उपयुक्त अध्यापक लगाकर उसे पढ़ने–लिखने में चतुर बनाया था। यद्यपि राजा वैभवशाली था–उसके यहाँ सौ बैलों की खेती होती थी, अनेक दास–दासी सेवा में नियुक्त थे, जाबाला को कुछ करने की आवश्यकता नहीं थी तथापि वह खेतों में जाती, कर्मकारों के साथ खेंतीवारी का काम देखती और अपने हाथों से गाय बैलों की सेवा भी किया करती थीं। गुणवती जाबाला को प्राप्त करने के लिए अड़ौस–पड़ौस के अनेक राजकुमार प्रयत्नशील थे, परन्तु जाबाला कुछ विचित्र स्वभाव की थी। उसे अपनी विद्यां और ज्ञान पर गर्व था। वह ऐसे किसी से विवाह नहीं करना चाहती थी, जो ज्ञान और विद्या में उसके समकक्ष न हो। पठन–पाठन और शास्त्र चिन्तन में उसे आनन्द अनुभव होता था।

जाबाला प्रजावत्सला तथा परदुखकातर है। अकाल से पीड़ित प्रजा के कष्ट दूर करने के लिए वह आचार्य औदुम्बरायण के समक्ष जनपद में घूम–घूम कर जन–सेवा करने का संकल्प व्यक्त करती है। मृत गाड़ीवान की विधवा स्त्री तथा अनाथ बच्चे की तलाश में व्यस्त रहती है। उसकी मान्यता है कि समस्त मनोविकारों की औषधि परसेवा है। शिष्टता, शालीनता और गरिमामय व्यवहार उसकी विशेषता है। अपने सम्पर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति को सम्मानित करना अपना कर्तव्य समझती है।

सामाजिक व्यवहार और मर्यादा से पूर्ण परिचित शुभा समय–समय पर उच्छृंखल व्यवहार के लिए रैक्व को रोकती–टोकती और आँखों ही आँखों में बरजती रहती है।

युवती विदुषी तथा पारखी होने के कारण प्रथम दृष्टि में ही रैक्व से प्रभावित हो जाती है। उसका मन डाँवाडोल है रैक्व का ज्ञान और व्यवहार शून्यता उसे मोहक लगती है। घर लौटने पर भी रैक्व के प्रति उसका मन चंचल बना हुआ था। बार–बार रैक्व का स्मरण करके उसका हृदय मसोस उठता था। छाती में कहीं बुरी तरह हलचल है।...........जाबाला के हृदय में एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी अनुभूति हुई। रैक्व के प्रति उसका आकर्षण है किन्तु लज्जावश तात पाद औदुम्बरायण से नहीं कह सकती।

रैक्व के वियोग में इतनी पीड़ित है कि अनेक वैद्य बुलाये जाने पर भी रोग का निदान नहीं होता। जब रैक्व का पता लग गया तो वह स्वतः ही ठीक हो गयी। रैक्व की चर्चा मात्र से ही उसका मन रैक्व को देखने और मिलने के लिए तड़प उठता है। उसकी छाती को बिजली चीर जाती है। बार–बार अपने को प्रियारूप में सोचने में उसे एक अद्भुत गुदगुदी अनुभव होती है। वह रैक्व को जितना भुलाने का प्रयास करती है, उसे उतना ही अधिक याद आता है। रैक्व उसे अपने विवाह योग्य तापस दृष्टिगत हुआ है। इसलिए निरन्तर रैक्व से विवाह के सम्बन्ध में सोचती रहती है।

शिष्टता शालीनता और गरिमा की साक्षात प्रतिमा होते हुए भी विचार स्वातंत्र्य को अपना अधिकार समझती हुई कन्या की इच्छा जाने बिना माता–पिता द्वारा किये गये विवाह का विरोध करती है। इस संदर्भ में उसे आचार्य औदुम्बरायण से भी झगड़ने में संकोच नहीं होता।

माता ऋतम्भरा

उषस्त ऋषि के पुत्र परम ज्ञानी तथा दार्शनिक औषस्ति की विदुषी पत्नी है। संतान–विहीन माताजी समस्त संसार को ही अपनी संतति मानती हैं। संतान को अपनी कोख से जन्म देने की इच्छा पूर्ण न होने पर वे दूसरों को द्वारा किये गये माँ सम्बोधन से ही परम आनन्दित होती है। माता जननी तो न बन सकीं किन्तु रैक्व और जाबाला को पाकर वे माँ अवश्य बन गयीं। इन दोनों द्वारा किये गये माँ सम्बोधन से उनका हृदय जुड़ जाता है। माताजी अनुभव सम्पृक्ता इतनी हैं कि दूसरे मन की अन्तरतम परतों में लिखी रहस्य–ग्रन्थि का उद्घाटन सरलता से करा लेती हैं।

माताजी की सम्प्रेषण शैली अद्वितीय हैं। वे जिससे भी वार्तालाप करती हैं वह संन्तुष्ट हुए बिना नहीं रहता। वे रैक्व को समझाती हैं, जानश्रुति की शंका का समाधान करती हैं, आचार्य औदुम्बरायण को सन्तुष्ट करती हैं और जाबाला को प्रश्न रहित बनाती हैं। उनकी शैली इतनी आकर्षक और स्नेह युक्त है कि प्रश्नकर्ता उनका आज्ञाकारी अनुचर बन जाता है।

माताजी वैश्वानर उपासना का अन्यतम उदाहरण है। अकाल पीड़ित जनता के मध्य रैक्व के साथ तीन–तीन दिन तक अवतरण और निराहार घूम–घूम कर सहायता कार्य करती हैं। पीड़ित जनता के प्रति राजा जानश्रुति की उदासीनता के कारण वे राजा तथा आचार्य औदुम्बरायण दोनों को ही फटकारती हैं और उन्हें जनसेवा के लिए प्रेरित

करती हैं। जनपद में माताजी को लोग आशा की मूर्ति समझते और देवी की तरह पूजते थे। स्त्रियां अपनी विपत्ति की बातें रो-रो कर सुनातीं, वे धैर्य के साथ सुनतीं, प्यार से बातें करती और दुखी बच्चों के सिर पर हाथ फरे कर शीघ्र रोग मुक्त होने का आशीर्वाद देती। माताजी अपनी वाणी से कम किन्तु व्यवहार से अधिक प्रभावित करती हैं। लोक व्यवहार की सैकड़ों बातें बिना उपदेश दिये ही वे रैक्व के मन में बिठा देती हैं। उनकी मान्यता है कि जहाँ दुःख है अभाव है, वहाँ प्रभु प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। वह अन्धकार में प्रकाश बिखेरते हैं। आँधी-तूफान के भीतर शान्त-प्रसन्न भाव से विराजमान रहते हैं। परम प्रेमिक हैं।

शालीनता की प्रति मूर्ति, भारतीय संस्कृति की आदर्श नारी की महिमा, स्नेह की निर्झरिणी माता ऋतम्भरा कुशल गायिका के रूप में साक्षात वारि देवता माँ हैं। विदुषी माता दर्शन की गुत्थियों की व्यावहारिक व्याख्या करना बहुत अच्छी तरह जानती हैं। उनकी दृष्टि में पर दुःख निवृत्ति ही सबसे बड़ा धर्म है, दीन दुखियों की सेवा ही सबसे बड़ी तपस्या है वे रैक्व और गाड़ीवान की विधवा को उसके बच्चे सहित आश्रय देती है।

माता ऋतम्भरा पति सेवा के साथ-साथ अतिथि सेवा के लिए भी सदैव तत्पर रहती है। अकाल पीड़ित क्षेत्र में जन-सेवा कार्य करते हुए उन्हें आगामी गुरुपूर्णिमा के दिन आने वाले औषस्ति के शिष्यों के आतिथ्य की चिन्ता सताती रहती है। शेष कार्य जानश्रुति आचार्य तथा रैक्व पर छोड़कर वे गुरुपूर्णिमा के दिन आश्रम में आने वाले अतिथियों की सेवा के लिए चल देती हैं। राजा जानश्रुति को आश्रम की सीमा पर आया जानकर सेवकों को अतिथि सेवा के यथोचित निर्देश देकर स्वयं उनके स्वागतार्थ आश्रम द्वार पर पहुँचकर उन्हें ससम्मान आश्रम में आतिथ्य प्रदान करती हैं।

औषस्ति

ऋषि उषस्त के महान तपस्वी पुत्र ऋषि औषस्ति दार्शनिक और चिन्तक हैं। वे माता ऋतम्भरा के पति और अनके शिष्यों के श्रद्धेय गुरु हैं। उनका दर्शन व्यवहार से आरम्भ होकर व्यवहार में ही पर्यवसित होता है। ऋषि ने सृष्टि के रहस्य को समझा है, अपने महान पूर्वज उषस्त के चिन्तन-मनन का परिष्कार किया है तथा तप और स्वाध्याय के द्वारा याज्ञवल्क्य के अध्यात्म ज्ञान को और भी उज्ज्वल बनाया है। परम ज्ञानी और परम सामाजिक औषस्ति प्रत्येक तत्व चिन्तन को व्यावहारिक कसौटी पर कसते हैं। जो चिन्तन दैनिक जीवन से इतर है, काल्पनिक ईश्वर के साम्राज्य का नागरिक है, लोकोत्तर सोच है, वे उनकी दृष्टि में वह चिन्तन से इतर कुछ भी हो सकता है। जनसेवा को ही वे अध्यात्म मानते हैं। आत्मा, परमात्मा, जप-तप, धर्म, पुरुषार्थ तथा विवाह आदि सभी अध्यात्म के अंग हैं। उनके अनुसार समूचा विश्व एक पुरुषोत्तम का रूप है। यह जड़ धरित्री, सप्राण वनस्पति, जीवन्त जन्तु और बुद्धिमान मनुष्य उस एक ही ही विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं-तुम भी, प्राण भी, आकाश भी, सूर्य भी, चन्द्र भी। जो ऐसा समझकर सेवा में प्रवृत्त होता है, उसमें अहंकार नहीं होता। अतः लोक ताप से तृप्त होना अखिलात्मा पुरुष की परमाराधना है। यही वैश्वानर उपासना है।

आचार्य औदुम्बरायण-

बृद्ध आचार्य औदुम्बरायण जाबाला तथा उसके पिता राजा जानश्रुति के गुरु थे। जाबाला ममत्व तो उन्होंने गोद में खिलाया था। लड़की के प्रति उनका स्नेह और ममला बहुत अधिक था। जाबाला की माँ जब नहीं रही, तो आचार्य ने ही माता के समान उसका लालन-पालन किया। वे जाबाला को शिक्षा भी देते थे और उसके बालहठ को पूरा किया करते थे। उनके अतिशय स्नेह के कारण वह ढीठ भी हो गयी थीं जाबाला के उपर्युक्त वर ढूँढ़ने का कार्य भी आचार्य पर ही था।

व्यवहार कुशल आचार्य समयोचित बात करना अच्छी तरह जानते थे। वे गये तो थे जाबाला के उपयुक्त वर की तलाश में किन्तु उचित अवसर न जानकर जाबाला को कुछ और ही बात बताते हैं। उपयुक्त अवसर के बिना

जानश्रुति को आश्वलायन के विषय में भी नहीं बता पाते। संभवतः उनको किसी कोने में यह आशा थी कि जाबाला अपने इच्छित वर के विषय में स्वतः ही बता देगी।

स्वाभिमानी आचार्य स्वयं शिष्ट और शालीन होने के कारण दूसरों से भी शिष्टता और शालीनता की अपेक्षा रखते हैं। रैक्व द्वारा किये गये अशिष्ट व्यवहार से वे क्षुब्ध हुए किन्तु समयोचित न समझकर चुप रह गये।

आचार्यवर कर्तव्यपरायण हैं। जाबाला की सुरक्षा शिक्षा तथा उसके स्वास्थ्य का पूरा–पूरा ध्यान रखने के साथ–साथ जनपद में घूम–घूम कर पीड़ित प्रजा को अन्न बँटवाने का कार्य करते हैं। आचार्य के द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य स्थिर बुद्धि से सोचा तथा समझा होता है। उनके अनुसार आवेश में किया गया कार्य क्षणस्थायी होता है वे इतने अनुभवी और मनोवैज्ञानिक है कि जाबाला के पाण्डुर कपोल मण्डल पर अचानक खेलने वाली लालिमा की तरंग से उसकी मनोव्यथा का कारण समझ गये।

राजा जानश्रुतिः–

राजा जानश्रुति ऊँची जाति के आदमी नहीं थे। वे किसी छोटे–मोटे गाँव के खाते पीते मुखिया थे। उनके पास दास–दासी, सोना–चाँदी तथा गाय–बैल थे। उनके यहाँ सौ बैलों की खेती होती थी। आस–पास के गांवों में सर्वाधिक सम्पन्न थे। वे अपनी एक मात्र संतति जाबाला को बहुत प्यार करते थे। उसकी तनिक सी अन्यमनस्कता से वे इतने चिन्तित हो गये थे कि बेटी के उपचार हेतु वैद्यों की भीड़ लगा देते थे। यह भी देखा गया कि दानी और जनप्रिय होने के साथ–साथ पारम्परित जमींदारों की भाँति वे अपने सेवकों का शोषण भी किया करते थें उनमें से किसी की मृत्यु हो आने पर वे उसे असहाय अवस्था में ही छोड़ दिया करते थे। कदाचित इसका कारण उनकी ज्ञान–पिपासा तथा कल्पना–विहारी प्रवृत्ति थी। तत्व ज्ञान के पीछे हाथ धोकर पड़े हुए थे। जब किसी तत्व ज्ञानी से उनका साक्षात्कार हो जाता था तो घण्टों बैठकर तात्विक विचार विमर्श किया करते थे।

वे महादानी थे। जब उन्हें माता ऋतम्भरा से ज्ञान हुआ कि अकाल के कारण जनता त्राहि–त्राहि कर रही है तो उन्होंने अन्न के भण्डार–ग्रह जनसेवा के लिए खुलवा दिये। जनता को स्वाबलम्वी बानना चाहते थे। इसलिए राजकीय सहायता के बदले किसी न किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक श्रम का प्रतिदान भी लिया करते थे। उनका यह विश्वास था कि ऐसा करने से जनता अकर्मण्य तथा प्रमादी नहीं बनेगी।

8.7 संवाद

दार्शनिक ग्रन्थि सुलझाने या तत्व चिन्तनाभिव्यक्ति के स्थलों पर संवाद बहुत लम्बे तथा बोझिल हो गये हैं। महर्षि उषस्त की उदगीय विद्या का चित्रण संवादों की दृष्टि से उपन्यास का कमजोर पक्ष है। यद्यपि इस प्रसंग को द्विवेदी जी ने छांदोग्य उपनिषद से भिन्न रूप में चित्रित किया है तथापि प्रभावात्मकता नहीं आ सकी है। ऋषि आषस्ति माता ऋतम्भरा, आश्वलायन तथा अटिलमुनि के कथन दार्शनिक चिन्तन से बोझिल है तो भी व्यवहारिकता के कारण इनमें बोधगम्यता बनी रही है। आदुम्बरायण जानश्रति, जाबाला औदुम्बरायण, जाबाला–आरूधती तथा रैक्व जाबाला, रैक्व–ऋतम्भरा के संवाद प्रभावपूर्ण, संक्षिप्त चरित्र प्रकाशक तथा कथानक को गति प्रदान करने वाले हे। रैक्व का किसी भी पात्र से वार्तालाप उपन्यास का अन्यत्र मर्मस्पर्शी स्थल हैं। राजा जानश्रुति की आज्ञा से रैक्व की तलाश में निकले आचार्य औदुम्बरायण रैक्व के पास पहुँच कर अपने आने का कारण बताते हैं–

"ज्ञान की चर्चा करना चाहते हैं ? आप उनके कौन हैं ? "

"मैं उनका आचार्य हूं।"

"तो ज्ञान की चर्चा आप से ही क्यों नहीं कर लेते?"

"यहाँ मुझे विव्रत करने को क्यों आना चाहते हैं ?"

"मैं उनकी सब जिज्ञासा शान्त नहीं कर सकता। वे बहुत जिज्ञासु हैं।"

"मैं अल्पज्ञ हूँ।"

माता ऋतम्भरा रैक्व के व्यवहार ज्ञान बताते हुए कहती हैं–

"तुझे एक बड़े तत्व ज्ञानी से मिला दूँगी।"

"वे भी क्या स्त्री पदार्थ हैं माँ ?"

"नहीं रे, वे तेरे पिता के समान हैं मेरे पति। माँ का पति कौन होता है, जानता है ?"

"जानता हूँ–पिता।"

"तो उन्हें अपना पिता मानकर जो पूछना हो, पूछना।"

"वे शुभा के समान ही ज्ञानी होंगे माँ !"

"अभी तो उठकर स्नान कर। पहले मैं तेरी शुभा के बारे में जान लूं, फिर बताऊँगी कि वे शुभा के समान हैं या उससे बड़े। उठ बेटा, स्नान कर।"

उपर्युक्त समस्त संवाद स्वाभाविक, चरित्र–प्रकाशक प्रभावात्मक तथा कथानक को गति प्रदान करने वाले हैं।

8.8 भाषा एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य

द्विवेदी जी ने 'अनामदास का पोथा' में अधिकांशतः उपनिषद युग से मेल खाने वाली भाषा का प्रयोग किया है किन्तु युग सापेक्षता से लेखक बच नहीं पाया है। खड़ी बोली को आधार बनाकर तत्सम, तद्भव विदेशी तथा संकर शब्दों का प्रभूत प्रयोग किया है। तत्सम शब्दों से युक्त भाषा उपन्यास में विश्वसनीयता उत्पन्न करने में पूर्ण सक्षम हैं। उपनिषद संस्कृति में प्रचलित शब्दों का प्रयोग, रचनाकार के भाषा वैज्ञानिक गहन ज्ञान का परिचायक है। लेखक ने ऐसे अनेक शब्दों का व्युत्पत्तिपरक अर्थ दिया है जो आज तो आश्चर्यजनक लगता हें, किन्तु उपनिषद काल में सामान्य था। उदाहरणार्थ–आज्य–अजा का घृत कालान्त में अर्थ विस्तार के कारण गाय–भैस का घी भी आज कहा जाने लगा।

गन्धर्भ

कन्दर्प–कपिश–गन्धार के लोग कोमल वर्णों के स्थान पर पुरुष वर्णों का प्रयोग करते हैं। वे 'गगनत्' को 'ककनम्' कहते हैं। उसी प्रकार गन्धर्भ को वे लोग कन्दर्प कहते हैं।

दध्यङ–दधीचि

रैक्व रयिक्व–सम्पत्ति कहाँ जाती है।

अकृष्ट पच्च–बिना जीती हुई भूमि से उत्पन्न पौधों से प्राप्त दाने या अन्न।

तज्जलान–जिसे देखा नहीं जा सकता, जो किसी इन्द्रिय का विषय नहीं हो सकता।

भ्रंकुश–भ्रू अभिनय करने वाले किशोर।

वीर–वी–अन्न, र–रमण अर्थात् प्राण और अन्न का सामाजस्य ही वीर है।

वैश्वानर–सम्पूर्ण विश्व का रूप, नर रूप में आराध्य।

सहज–सहज–ह (हठयोग), ज (जययोग), स–ह और जक समन्वय करने वाली देवी।

हजारी प्रसाद सहस्रार प्रसाद (सहस्र) शब्द में वद्यमान 'हस्र' ही फारसी का हजार उच्चारण है।

लेखक द्वारा व्युत्पत्तिपरक अर्थ यद्यपि उनके भाषा वैज्ञानिक ज्ञान के परिचायक हैं किन्तु इन शब्दों की व्युत्पत्ति उपन्यास में ज्ञानदम्भ के अतिरिक्त अनावश्यक भी है। 'अशोक के फूल' निबन्ध के अन्तर्गत द्विवेदी जी गंधर्भ तथा कंदर्प की व्युत्पत्ति लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व ही बता चुके हैं। इस उपन्यास में पुनः इस शब्द के उल्लेख से गन्धर्भ की मिट्टी, ही पलीद की है। बीर, रैक्व सहज तथा हजार जैसे शब्दों की व्याख्या रचना में तनिक भी अपेक्षित नहीं है। दध्यङ; तज्जलान तथा आकृष्टपच्च जैसे शब्द पाठक के सामान्य ज्ञानवर्द्धन में सहयोगी हैं।

उपन्यास में प्रयुक्त विदेशी भाषा के शब्द झटका देने वाले हैं। उपनिषद काल में तो आपकी भाषा का प्रयोग हमारे यहाँ होता ही नहीं था। लेखक के पास हिन्दी का शब्द न होता तो विदेशी शब्द स्वाभाविक प्रतीत होते किन्तु ऐसे शब्दों का प्रयोग, जिनकी तुलना तें हिन्दी भाषा में अत्यन्त ललित शब्द हैं, द्विवेदी जी जैसे लेखक तथा उपनिषद कालीन विषय वस्तु की रचना के लिए शोभनींय नहीं है। मालूम हर (प्रत्येक), आदमी (मनुष्य), चेहरे (मुख), दस्तक आदि शब्द उपन्यास में खटकने वाले हैं।

भाषा वैज्ञानिक तथा वैयाकरण होते हुए भी लेखक ने हिन्दी के आदर्श रूप की अवहेलना करके मनमाने ढंग से वाक्य विन्यास किया है जो व्याकरण की दृष्टि से भदेस ही कहा जा सकता है–यथा–

1– सब मर जा सकता है।

2– थोड़ी त्रुटि हो जा सकती है माँ।

पूर्ववर्ती तीन उपन्यासों की अपेक्षा अनामदास की शैली गंभीर है। उपर्युक्त तीनों उपन्यास काव्यात्मक भाव–भूमि पर लिये गये हैं जबकि 'अनामदास का पोथा' तत्व चिन्तन परक भाषा की अपेक्षा के कारण कवित्वमय नहीं बन पाया है। इस उपन्यास में प्रलम्बमान वाक्याबलि का प्रयोग सामान्यतः नहीं किया गया है। वाक्य छोटे–छोटे तथा बोधगम्य हैं। इस उपन्यास में वर्णनात्मक, भावात्मक, विचारात्मक तथा दार्शनिक शैली का प्रयोग हुआ है। भावात्मक शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"मैंने क्या गड़बड़ कर दिया कि मुझे कवि कहती हो ?"

"गड़बड़ तो कर ही दिया ! जानती है, अनादि काल से तितली फूल के इर्द–गिर्द चक्कर काट रही है, लता वृक्ष को अच्छादित करके उल्लसित हो रही है, बिजली मेघ के साथ आँख मिचौनी खेल रही है कुमुदिनी चन्द्रमा की प्रतीक्षा में व्याकुल हैं किसी ने तो इन बातों की ओर ध्यान नहीं दिया, किसी ने इसका रहस्य समझने का दावा नहीं किया, सब कुछ तो चुपचाप अपनी–अपनी गति से चल रहा था। कहाँ से जाने एक कवि आ गया। उसने चिल्लाकर कहा, 'मुझे मालूम है, मैं इस गुप–चुप चल रही प्रेमवार्ता को पहचान गया हूँ। सुनो संसार के स्त्री–पुरुषों ! मैं आँखों की भाषा जानता हूँ, मैं भुजाओं की भाषा जानता हूँ, मैं सब जान गया हूँ, उसी दिन से सारा प्रकृति–व्यापार गड़बड़ा गया है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि 'अनामदास का पोथा' हिन्दी– उपन्यास–विधा का एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें आत्मा, परमात्मा, तप, योग, समाधि, परमसत्य, आदि अध्यात्मिक अलोकिक चिन्तन को मानव–जीवन के केन्द्र से जोड़ा गया है। यह उपन्यास द्विवेदी जी के जीवन का निष्कर्ष है भारतीय संस्कृति का सार है औपनिषदिक चिन्तन की व्यावहारिक मीमांसा है तथा मानव जीवन की आस्था है। उपन्यास का केन्द्र प्राणिमात्र और प्राणियों में श्रेष्ठ समझा जाने वाला मनुष्य है। ब्रह्म इसी मनुष्य की आत्मा है और इसकी आत्मा का विस्तार ही ब्रह्ममांड का

ब्रह्म है। समस्त प्राणी उसी निखिलात्मा की भिन्न–भिन्न अभिव्यक्ति हैं। इसलिए प्राणी मात्र की सेवा ही निखिलात्मा की सेवा है, यही आत्म विस्तार है।

8.9 इकाई सारांश

इसमें 'अनामदास का पोथा' की आलोचनात्मक पृष्ठीूमि पर प्रकाश डाला गया है। पूरा पाठ उपनिषद की पृष्ठीूमि पर खड़ा हुआ हैं इसके पात्र एक तत्त्वचिंतन की भाषा बोलते हैं। इसमें जीवन के गूढ़ रहस्यों को उद्‌घाटित किया गया है। सक्षेपतः इसमें है–

1. कथानक का पूरा ताना बाना। उसका बनावट। उसकी बुनावट, कथा का विस्तार। उसका विकास। उसकी अतः संरचना।
2. उपन्यास का केन्द्रीय भाव कौतूहल से भरा है। एक मनुष्य के जीवन में समस्त संसार की वे अनुभूतियां आती हैं, जिससे वह अपनी जीवन यात्रा को पूरा करता है। इसे ही केन्द्रीय भाव के अंतर्गत लिया गया है।
3. भाषा की दृष्टि से उपन्यास 60 प्रतिशत तत्सम शब्दावली को लेकर चलता है। शेष 40 प्रतिशत शब्दावली तद्‌भव और देशज शब्दों की है। फिर भी भाषा उलझी हुई नहीं लगती।
4. इसमें उपन्यास के उन सांस्कृतिक पक्षों का उद्‌घाटन किया गया है जो कथा को गति देते हैं।
5. संवाद में कहीं दर्शन के गूढ़ पक्ष आए हुए हैं, उन्हें भी इकाई में सरल ढंग से व्याख्यायित किया गया है।
6. पुरुष पात्रों की मानसिकता, ज्ञान, अनुभव और उनकी सांसारिक जीवन में आए हुए संदर्भों की व्याख्या की गई है।।
7. स्त्री पात्रों की संवेदनाओं पर प्रकाश डाला गया है।
8. संवाद के पक्षों में गूढ़ संदर्भों को सहज उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है।
9. भाषा की बानगी दी गई है।
10. शिल्पगत वैशिष्टय।

8.10 अपनी प्रगति जाँचिए

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के अति लघु उत्तर दीजिए

1. उपन्यास की कथा का स्रोत क्या है।
2. कथानक में प्रमुख पात्र कौन हैं।
3. इस उपन्यास का एक केन्द्रीय विशेषता बताइए।
4. क्या आप उपन्यास को प्रथम कोटि का मानते हैं।
5. डपन्यास का भाषागत पक्ष उत्तम है अथवा सामान्य?
6. संवाद उत्तम है या सामान्य?

निम्नलिखित प्रश्नों के लघु उत्तर दीजिए

1. 'अनामदास का पोथा' किस प्रकार का उपन्यास है?
2. उपन्यास की संवाद योजना किस कोटि की है।?
3. उपन्यास का शिल्प पक्ष कैसा है?
4. उपन्यास के पुरुष पात्र क्या भोले ज्ञानी नहीं लगते?
5. उपन्यास की भाषा क्या जटिल नहीं लगती?
6. उपन्यास की दृष्टि से क्या यह सफल प्रयोग है?

8.11 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1. उपन्यास के कथानक के विषय–बिन्दु की सूची बनाइए।
2. उपन्यास के संवाद में आए हुए शब्दों की सूची तैयार कीजिए।
3. उपन्यास के भावपक्ष संबंधी तत्वों की सूची बनाइए।
4. भाषा संबंधी नए प्रयोगों की सूची तैयार कीजिए।

8.12 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्पष्टीकरण के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8.13 बोध प्रश्नों की उत्तरमाला

1. उपनिषद
2. रैक्व
3. दर्शन
4. हाँ
5. उत्तम

8.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. अनामदास का पोथा – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी।

अनामदास को पोथा : व्याख्या खण्ड

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 व्याख्या पद
9.4 इकाई सारांश
9.5 अपनी प्रगति जाँचिए
9.6 नियत कार्य/गतिविधियाँ
9.7 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु
9.8 संदर्भ ग्रन्थ

9.1 उद्देश्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'अनामदास का पोथा' के प्रमुख उद्धरणीय अंशों की व्याख्या से परिचित करना इस इकाई का उद्देश्य है। इसका प्रमुख उद्देश्य है–

1. साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या।
2. सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या।
3. प्राकृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या।
4. संवाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या।
5. भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या।

9.2 प्रस्तावना

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की गणना भाषा के पंडित के रूप में की जाती है। उनके गद्य खण्डों की भाषा तत्सम प्रधान है, फिर भी भाषा में प्रवाह है। वाक्य छोटे होते हैं। उनमें गंभीर भावों की व्यंजना होती है। ऐसे विचार प्रधान गद्य खण्डों का चयन करके उनकी व्याख्या की गई है।

9.3 व्याख्या पद

(1)

संसार में जो नानात्व दिखायी दे रहा है वह वस्तुतः किसी एक ही मूल से विकसित हुआ है और फिर वे एक मूल में विलीन हो जाएंगे तो उनका बालक पुत्र आश्चर्य से चकित होता रहता था। उसमें सोचने–विचारने की प्रवृत्ति तीव्र रूप से विद्यमान थी और पिता की बातों को समझने के लिए वह विभिन्न मूलों की कल्पना करता था। बालक का कुछ ऐसा दुर्भाग्य था कि बहुत जल्दी ही उसके पिता स्वर्गवासी हो गए, माता तो उसके जन्म के साथ ही प्रस्थान कर गयी थी। कोई भाई भी नहीं था, बहिन भी नहीं थी। आश्रम उजड़ गया।बालक अनाथ हो गया। परन्तु उसमें सोचने की प्रवृत्ति बराबर बनी रही। कभी–कभी वह अन्य ऋषियों के आश्रमों में जाता, लोगों की बातें सुनता और स्वयं सोचने का प्रयत्न करता। जंगल में जो कुछ मिल जाए उससे वह पेट भर लेता था। किसी के द्वार भिक्षा माँगने नहीं गया। उसका अधिकांश समय चिन्तन–मनन में ही व्यतीत होता था।

व्याख्या–

प्रस्तुत गद्यांश रैक्व आख्यान एक से उद्धृत है। रिक्व ऋषि जो बड़े मेधावी तपस्वी थे, उनके यहां अध्ययन अध्यापन भी होता था, यज्ञ–योग के अनुष्ठान भी होते थे और दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिंतन भी हुआ करता था। उनका पुत्र छोटी उम्र से ही इन सब विधाओं में बड़े उत्साह से योग देता था और बड़े ध्यान से पिता की बातें सुना करता था। यहां रिक्व ऋषि अपने विद्यार्थियों को समझाते हुए कहते हैं–

संसार का नानत्व जैसा द्रष्टिगत होता है, वैसा है नहीं। इस नानत्व का मूल आधार एक ही है। अर्थात् पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड है। यह ब्रह्माण्ड हो विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है उसका मूल एक ही है। पिता की ये दार्शनिक एवं गूढ़ व्याख्याएं सुनकर वह उसके स्रोतों एवं आधारों को जानने की कल्पना में तल्लीन हो जाता था। मगर दुर्भाग्यवश पिता स्वर्गवासी हो गए और माता जन्म लेते ही परलोक सिधार गईं। उसके कोई भाई बहिन भी नहीं थे। उसका सबकुछ लुट चुका था। वह अनाथ हो गया। मगर उसके अंदर जिज्ञासा बनी रही। इसी भाव से ऋषियों के आश्रम में जाकर उनकी बातों को समझने का यत्न करता था। जंगल में उपलब्ध भोग्य पदार्थ से अपनी सुधा शांत कर लेता था। वह भिक्षा में प्रवृत्ति से दूर रहकर निरंतर चिंतन में लगा रहता था।

विशेष–

1. इसमें जगत के नानारूपों की चर्चा की गई है।
2. जगत के नाना रूपों का मूल स्रोत एक ही है।
3. दृष्टि भेद से सृष्टि भेद दिखाई देता है कि पुष्टि की गई है।
4. मनुष्य की जिज्ञासु वृत्ति ही उसके ज्ञान का आधार है कि सुंदर व्याख्या की गई है।
5. मनुष्य को स्वाभिमानी होकर निरंतर ज्ञान की साधना में लगे रहना चाहिए, इस बात की ओर संकेत किया गया है।

(2)

जिसे वाणी व्यक्त नहीं कर सकती, किन्तु जो वाणी को अभिव्यक्ति प्रदान करती है, उसी को परम सत्य समझो; उसे नहीं जिसकी लोग व्यर्थ उपासना करते हैं। जिसकी कल्पना करने में मन

असमर्थ है, किन्तु जो मन की कल्पना करती है, उसी को परम सत्य समझो। जिसे देखने में नेत्र असमर्थ है, किन्तु जिसके द्वारा हम नेत्रों से देखते हैं; वही परम सत्य है। जिसे श्रवण सुन नहीं सकते, किन्तु जो श्रवण–ज्ञान को शक्ति प्रदान करते हैं, वही परम सत्य है। जिसे प्राण श्वसित अथवा उच्छ्वसित करने की शक्ति नहीं रखते, किन्तु जो प्राणों को श्वासोच्छ्वास की शक्ति प्रदान करती है, उसी को परम सत्य समझो!

प्रसंग–

उपर्युक्त संदर्भानुसार उदंगऋषि द्वारा सत्य की व्याख्या के प्रसंग में जाबाला ने अपने पिता से महाराजा जनक के द्वारा सत्य की जो व्याख्या की गई थी, उस पर अपना विचार किया है।

व्याख्या–

सत्य वाणी के द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता किन्तु वह वाणी को अभिव्यक्त प्रदान करता है। परम सत्य वह नहीं है जो बाहर से दिखता है अपितु सत्य वह है जिसे अंतःकरण स्वीकार करता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण अंतःकरण है। जैसा कि कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम में लिखा है– सतां हि संदेह पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्रयो अर्थात् संदेहं की स्थिति में सज्जनों के अंतःकरण की प्रवृत्तियां ही प्रमाण होती हैं। सत्य मन के द्वारा कल्पित नहीं हो पाता, अपितु वह मन को कल्पित करता है, उसे ही परम सत्य के रूप में जाना जाता है। यह नेत्रों के द्वारा देखा नहीं जा सकता है, किन्तु इसके द्वारा हम नेत्रों को देखते हैं। यह कानों के द्वारा सुना नहीं जा सकता, मगर इसके द्वारा हमें श्रवण शक्ति प्राप्त होती है। इसे प्राणों द्वारा उच्छवसित नहीं किया जा सकता, परन्तु यह प्राणों को उच्छसित होने की शक्ति प्रदान करता है। इसीलिए इसे परम सत्य की संज्ञा प्राप्त हुई है।

विशेष–

1. इसमें सत्य की दार्शनिक व्याख्या की गई है।
2. सत्य को अंतःकरण का प्रमाण बताया गया है।
3. यह गद्यांश सत्य के प्रति हमारी जिज्ञासा बढ़ाता है।
4. इस अवतरण में सत्य को सबसे ऊपर बताया गया है।
5. ये पंक्तियाँ सत्य को उद्घाटित करती हैं।

(3)

मैं जिसे वायु कहता हूं। वह वही चीज है जिसे तत्त्वदर्शी लोग आत्मा कहते हैं। मन बीच में कहां से आ गया? फिर मेरी ओर देखकर बोले, 'मुझे ऐसा लगा है आचार्य, कि वायु भी शक्तिशाली है पर अलग स्तर पर। मन भी हो सकता है, दूसरे स्तर पर। इनमें विरोध नहीं है। महाभागा शुभा ने बताया था कि पद और पदार्थ को जोड़ने–वाला तत्व प्रत्यय है, वह आत्मा का धर्म है। यह प्रत्यय रहता तो मन में ही है। श्वास में तो निश्चय ही नहीं रहता। पर... नहीं आचार्य, मैं भटक गया हूं, मुझे ठीक सूझ नहीं रहा है, मैं गुरु की खोज में जा रहा हूं। आप नहीं जानते, मैं बहुत व्याकुल हूँ।

प्रसंग–

उपर्युक्त संदर्भानुसार आरुणि उद्दालक वार्ता प्रसंग में 'मन' और 'वायु' की प्रबलता के प्रसंग में चर्चा की गई है। प्रश्न उठाया गया है कि मन प्रबल है या वायु। इसे प्रश्न वार्ता की शैली में स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या–

ऋषि सोचने लगे। अपने आप से ही कहा शुभा ने कहा था– जिसे वायु के रूप में जाना जाता है। तत्वदर्शियों ने उसी को आत्मा कहा है। इस वायु आत्मा के बीच में मन की उपस्थिति कैसे हो गई। यह उसके चिंता एवं चिंतन की बीजभाव बन गया। वह कहता है कि आचार्य मेरी दृष्टि में वायु के शक्तिशाली होने का पक्ष प्रबल लगता है और दूसरे स्तर मन की प्रबलता भी दिखाई देती है। जैसा कि गीता में कहा गया है कि 'मनः एव मनुष्याणां कारण बंधन मोक्षयो' अर्थात् मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्षण का कारण है। वस्तुतः ये दोनों विरोधी न होकर परस्पर एक दूसरे पूरक हैं। शुभा ने आत्मा के धर्म की व्याख्या करते हुए बताया कि पद अर्थात् उसका बोधक शब्द और पदार्थ अर्थात् बोध में आने वाली वस्तु को जोड़ने वाला प्रत्यय अर्थात् तत्व है। इस प्रत्यय मूल अधिष्ठान अर्थात निवास है 'मन'। यह श्वास में नहीं रहता, वह तो स्पष्ट है। ऐसी संकल्प–विकल्प की स्थिति में डूबा हुआ वह कह बैठता है कि आचार्य मैं दिग्भ्रमित हो गया हूँ, मुझे कुछ उपाय नहीं सूझ रहा है। इसलिए मैं गुरु की खोज में जा रहा हूँ। मैं बहुत परेशान हूँ।

विशेष–

1. इसमें मन आत्मा और वायु के तात्विक व्याख्या की गई है।
2. मनुष्य ज्ञान के लिए कितना भटकता है यह ऋषि कुमार के संकल्प विकल्प से जाना जा सकता है।
3. गुरु के महत्व को स्पष्ट किया गया है।
4. जगत की मूल चेतना को स्पष्ट किया गया है।
5. पूरा गद्यांश मनुष्य की आध्यात्मिक सोच को आगे बढ़ाता है।

(4)

फिर एकाएक उठकर खड़े हो गये। बोले, 'मैं ही परीक्षा करूँगा। कहीं गुरु के दर्शन हो जाते!' फिर कुछ असमंजस में पड़े दिखायी दिये– 'आपने यह नहीं बताया कि मुझे किस प्रकार आपका सम्मान करना चाहिए। बताइए न!' मैं क्या बताता! उनके उद्विग्न भोले मुख की ओर ताकता रहा। फिर ऋषिकुमार ने नम्रता के साथ कहा, 'मैं आपको प्रणिपात निवेदन करता हूँ। मेरा किया हुआ यह सम्मान ग्रहण करें।' फिर एकदम चल पड़े, जान पड़ा जैसे उड़े जा रहे हैं। शायद गुरु की खोज में चल पड़े। मैं दूर तक उन्हें जाते देखता रहा। रह–रहकर वे अपनी पीठ पर हाथ फेर लेते थे।"

प्रसंग–

उपर्युक्त संदर्भानुसार ऋषि कुमार द्वारा वायु के बल पर प्रकाश डाला गया है। उसके इस प्रभाव का उल्लेख इस अवतरण में किया गया है।

व्याख्या–

वह एकाएक खड़े होकर इसके भौतिक सत्यापन के लिए अभिमुख हो गए और गुरु के दर्शन की जिज्ञासा प्रकट की। उसने आग्रहपूर्वक गुरु–सम्मान की प्रक्रिया पूछी और उनकी ओर आज्ञा प्राप्ति के भाव से निहारता रहा। उसके बाद ऋषि कुमार अत्यंत विनयी होकर अपने किए सम्मान को ग्रहण करने की प्रार्थना की। फिर उसने देखा कि वे गुरु की खोज में चल पड़े। वे चलते चलते अपनी पीठ स्पर्श करते रहते थे।

विशेष–

1. इसमें गुरु के महत्व को बताया गया है।
2. संवाद दार्शनिक भाव से युक्त है।
3. गुरु की खोज बहुत सोच समझकर की जानी चाहिए, यह संदेश मिलता है।
4. गुरु के प्रति की गई श्रद्धा फलवती होती है।
5. अवतरण की व्याख्या जटिल है।

(5)

ऋषिकुमार के आश्चर्य में मानो बाढ़ आ गयी। यह वाणी भी वैसी ही मधुर है, कानों में मानो अमृत घोलती हुई। वे क्या कहकर सम्बोधन करें, कुछ समझ में नहीं आया। 'शुभे' कहें? ना। शुभा तो बस एक ही है– अद्वितीय! ते फिर? व्याकरण और कोश में पढ़े हुए अनेक स्त्रीलिंग सम्बोधन उनके मन में आये, पर निश्चय कुछ भी नहीं कर सके। कौन जाने, ठीक से समझ पायें या नहीं। बहुत छुटपन में पिता से सुना था कि ब्रह्मचारी को यदि भिक्षा मांगने जाना हो तो गृहस्वामिनी को 'भवति' कहकर सम्बोधन करना चाहिए। व्याकरण की दृष्टि से गृहस्वामिनी भी तो स्त्री–पदार्थ है। भिक्षा मांगने का कभी अवसर ही नहीं मिला और आज भी नहीं मांग रहे हैं, फिर भी 'भवति' सम्बोधन बुरा तो नहीं है। उनके गले से आवाज नहीं निकल पा रही थी। रुक–रुककर बोले, "भवति, प्रणिपात स्वीकार करें। मैं रिक्व ऋषि का पुत्र हूँ, लोग मुझे रैक्व कहते हैं। पर पहले आप मुझे यह बताएं कि क्या कहकर मैं आपको सम्बोधित करूँ?"

प्रसंग–

उपर्युक्तानुसार ऋषिकुमार अर्ध्य देती हुई वृद्धा को कौतूहल की दृष्टि से देख रहा था। वह पूर्व की स्त्री के स्नेहिल दृष्टि से उसे निहार रहा था। क्योंकि अभी तक स्त्री क्या होती है। उसके प्रति कैसा आचरण करना चाहिए इससे वह अनभिज्ञ था।

व्याख्या–

उस वृद्धा स्त्री को देखकर ऋषिकुमार के मन में अनेक आश्चर्य के भाव पैदा हो उठे। उसकी अमृतमयी वाणी सुनकर वह यह नहीं समझ पा रहा था कि उसे क्या कहकर संबोधित करे। 'शुभे' कहना चाहता है। फिर उसके मन में विचार आया कि वह शुभा नहीं हो सकेगी। उसे पहचानने के लिए ऋषि कुमार ने अपने व्याकरण ज्ञान का सहारा लिया पर वह निश्चिय नहीं कर पाए। उसे अपने पिता की शिक्षा का स्मरण आया। उसने स्त्री को व्याकरणं की दृष्टि से जानने यत्न किया। उसे पदार्थ माना। इससे स्त्री जाति के प्रति उसकी अज्ञानता का पता चलता है। उसने अंत में विचार किया मुझे भिक्षा मांगने का अवसर तो नहीं मिला, आज भी उसकी आवश्यकता नहीं है। मगर इन्हें 'भवति' संबोधन करना उचित होगा। तथापि वह संकोच के कारण कह नहीं पा रहा था। फिर भी वह संकोच भाव से भवति संबोधन से अभिवादन कर डाला। उसने अपने परिचय में कहा कि मैं रिक्व ऋषि का पुत्र हूँ मुझे रैक्व कहते हैं। उसने पूछा कि आप ही बताएं कि मैं आपको किस नाम से संबोधित करूँ।

विशेष–

1. व्यावहरिक ज्ञान से शून्य ऋषि कुमार की भावनाओं का चित्रण है।
2. स्त्री मनोविज्ञान का वर्णन है।
3. रैक्व की विनयशीलता स्पष्ट की गई है।
4. रैक्व का शास्त्रीय ज्ञान वर्णित है।
5. रैक्व की मानवता का वर्णन है।

(6)

"देख बेटा, इसी शरीर में अन्न का बना अंश भी है, प्राण भी है, मन भी है, विज्ञान भी है, आत्मा भी है। इनमें सत्य सभी हैं पर उत्तरोत्तर बलवान हैं। मैंने सुना है कि भृगु ने अपने पिता वरुण से परम सत्य के स्वरुप के विषय में प्रश्न किया। वरुण ने उन्हें तपःसाधना द्वारा स्वयं ब्रह्म–ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश दिया। उन्होंने केवल इतना निर्देश–भर दिया कि परम सत्य अथवा ब्रह्म एक ही होना चाहिए। 'जिसमें समस्त पदार्थ–जगत् का उद्भव हो, जिसमें समस्त पदार्थ–जगत् की स्थिति हो।' तपःसाधन करने के बाद भृगु ने लौटकर पिता से कहा कि अन्न को परम सत्य माना जा सकता है। पिता को इससे संतोष न हुआ और पुनः तप करने को कहा। भृगु ने फिर आकर कहा कि प्राण को परम सत्य माना जा सकता है।' और शेष कई बार उन्होंने ऐसे ही उत्तर दिये। पिता को भृगु के इन उत्तरों से, कि प्राण मन और बुद्धि परम सत्य माने जा सकते हैं, संतोष न हुआ। अन्त में, भृगु ने यह उत्तर दिया कि 'आनंदमय आत्मानुभूति को समस्त जगत् का उद्गम माना जा सकता है।' यह ज्ञान रहस्यरूप से सदा 'भार्गवी–विद्या' के नाम से प्रसिद्ध है तथा यह 'परम स्वर्ग' में से प्रतिष्ठित है।"

प्रसंग–

प्राण मन में होता है, यह बात रैक्व को अचंभित करती है, तथा वह तत्काल प्रश्न करता है कि क्या मन प्राण वायु से अधिक शक्तिशाली है? इस प्रश्न के उत्तर में वृद्ध माँ ने स्पष्टीकरण के रूप में कह रही हैं।

व्याख्या–

यह शरीर वस्तुतः अन्न पोषित है, अतः इस शरीर में ही अन्न से बना अंश विद्यमान है, साथ ही प्राण एवं मन भी अवस्थित हैं और साथ में विज्ञान और आत्मा भी। ये सभी तत्व सत्य है तथापि क्रमशः स्थिति में एक दूसरे से अधिक पुष्ट तथा शक्तिशाली हैं। मुझे ज्ञात है कि महर्षि भृगु ने अपने पिता वरुण से परम सत्य के स्वरूप के संदर्भ में प्रश्न किया था, जिसके उत्तर में वरुण ने उन्हें तपस्या के माध्यम से ब्रह्म–ज्ञान आत्मसात करने का उपदेश दिया था, तथा यह अवश्य स्पष्ट किया था कि परम सत्य एवं ब्रह्म करके नहीं देखना चाहिए, वस्तुतः इसी परम सत्य स्वरूप ब्रह्म में ही समस्त पदार्थ–जन्म जगत का अविर्भाव, एवं स्थिति विद्यमान होती है। पिता के निर्देशानुसार भृगु तपः साधना में लीन हुए और लौटकर बताया कि अन्न को परम सत्य माना जा सकता है, भृगु इस आत्मबोध ा से संतुष्ट नहीं हुए। भृगु तपस्यालीन हुए इस बार उन्होंने प्राण, मन और बुद्धि को परम सत्य माना। इससे भी वरुण संतुष्ट नहीं हुए अंततः अंतिम बार भृगु ने आत्मसात किया कि "आनंदमय आत्मानुभूति को समस्त जगत की उद्गम माना जा सकता है।" यह ज्ञानानुभूति ही भार्गवी विद्या के रूप में विख्यात है तथा इसकी प्रतिष्ठा परम स्वर्ग में भी है। इस गद्य खण्ड की समीक्षा के उपरान्त हमारे सामने कुछ बिन्दु उभरकर सामने आते हैं। यह कि–

विशेष–

1. इसमें भारतीय विचारणा की सुसंबद्ध श्रृंखला है।
2. मनुष्य के शरीर में अन्न का अंश, प्राण, मन, विज्ञान और आत्मा प्रतिस्थापित हैं।
3. उपरोक्त पांचों तत्वों में सत्य का समावेश है तथापि सभी की अपनी इयत्ता है।
4. भृगु का अंतिम बोध 'आनंदमय आत्मानुभूति को समस्त जगत का उद्‌गम माना जा सकता है' इस समस्त प्रोक्ति का सार है।
5. इस बोध ज्ञान को भार्गवी विद्‌या के नाम से अभिहित किया गया, जिसका विस्तार 'परम स्वर्ग' तक है।

(7)

"भगवन् मैंने बहुत विचार के बाद सत्य पाया है कि वायु ही सबसे प्रबल तत्त्व है। वह ब्रह्माण्ड में वायु के रूप में और पिण्ड में प्राण के रूप में क्रियाशील है। ब्रह्माण्ड के चार देवता–अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल–वायु के अधीन हैं और पिण्ड के चार इन्द्रिय–वाणी, चक्षु, श्रोत और मन–प्राण के अधीन हैं। मैंने प्राणायाम की साधना की है। मैं अनुभव से जानता हूँ कि वायु सबसे प्रबल तत्व है। पर महाभागा शुभा ने पूछा था कि वायु क्या वही वस्तु है जिसे महर्षि याज्ञवल्क्य और राजर्षि जनक 'आत्मा' कहते हैं, तो मैं कुछ उत्तर नहीं दे सका। भगवन्, यह आत्मा क्या चीज है?

प्रसंग–

औषस्ति ऋषि ने रैक्व की शंकाओं का समाधान किए जाने हेतु आमंत्रित करने पर रैक्व ने कहा।

व्याख्या–

ऋषिवर समग्ररूप में विचार करने के उपरान्त मुझे सत्य स्वरूप आत्मबोध हुआ है कि वायु ही सर्वाधिक प्रबल तत्व है। इस ब्रह्माण्ड अर्थात सृष्टि के चार देवता–अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल वायु के अधीन क्षेत्र में तथा पिण्ड अर्थात इस शरीर की चार इन्द्रियों– वाणी, चक्षु, श्रोत और मन–ये सभी प्राण के अधीन है। रैक्व आगे व्यक्त कर रहे हैं कि मैंने प्राणायाम की साधना की है और इससे मुझे अनुभूतिजन्य सत्याभास हुआ है कि वायु सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न तत्व है। इस संदर्भ में रैक्व ने शुभा के द्वारा उठाए गए प्रश्न को सामने प्रस्तुत करते हैं कि 'आत्मा' है क्या? रैक्व अपनी शंका के समाधान हेतु जिस प्रश्न को रख रहे हैं वह –

विशेष–

1. भारतीय आत्मचिंतन का प्रबल तत्व है–आत्मा।
2. रैक्व वायु को सत्य स्वरूप मानते हैं।
3. ब्रह्माण्ड के चार अग्नि, सूर्य, चन्द्र और जल तथा पिण्ड अर्थात् शरीर का वाणी, चक्षु, श्रोत और मन प्राण के आधीन है।
4. आत्मा को व्याख्यायित किए जाने की अभिलाषा।
5. आत्मा को समझने की जिज्ञासा की निरंतरता।

(8)

यह जो आँख में पुरुष दीखता है, वह 'आत्मा' है। फिर कहा, यही 'अभय' है, यही 'ब्रह्म' है। उन दोनों ने पूछा, 'भगवन्! यह जो जल में दीखता है, जो दर्पण में दीखता है– यह कौन–सा आत्मा है?' प्रजापति ने उत्तर दिया, 'इनमें भी वही आत्मा दीख पड़ता है जो आँख में दिखायी देता है।' फिर प्रजापति ने उन दोनों से कहा, 'पानी के बर्तन में तुम दोनों अपने को देखे, और फिर 'आत्मा' के विषय में जो कुछ समझ न पड़े, वह मुझसे पूछो।' उन्होंने पानी के बर्तन में देखा। प्रजापति ने पूछा, 'क्या दीखता है?' उन्होंने कहा, 'भगवन्! हमें अपना पूर्ण रूप दीख रहा है, लोम से नख तक, अपना प्रतिरूप, अपनी छाया।' प्रजापति ने उन दोनों से फिर कहा, 'सुन्दर अलंकार और वस्त्र धारण करके, साफ–सुथरे होकर, पानी के बर्तन में देखो।' उन दोनों ने सुन्दर अलंकार और सुन्दर वस्त्र धारण किए, अपने को साफ–सुथरा किया, और पानी के बर्तन में देखने लगे। प्रजापति ने उनसे पूछा, 'क्या दीखता है?' उन्होंने कहा, 'भगवन्! जैसे हम सुन्दर अलंकार, सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए हैं, साफ–सुथरे हैं, इसी प्रकार हम दोनों के प्रतिबिम्ब अलंकार व सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए और साफ–सुथरे हैं।' प्रजापति ने कहा, 'जाग्रतावस्था' में जिसे तुम देखते हो, यह 'आत्मा' है, यह 'अमृत' है, 'अभय' है, यही 'ब्रह्म' है!' वे दोनों यह सुनकर शान्त–हृदय होकर चल दिए।

प्रसंग–

उपर्युक्त संदर्भानुसार सौम्य को आत्म के सत्य का ज्ञान के लिए सत्संग की सलाह दी गई। वह ब्रह्मा से सत्य के प्राप्ति के लए कितना समय लगाता है, यह प्रजापति से पूछता है।

व्याख्या–

तब प्रजापति ने उसे समझाते हुए कहा जो प्रत्यक्ष आंख से पुरुष दिखाई पड़ता है वही आत्मा है। यह भयरहित और निरंतर एकरस रहने वाला ब्रह्म है। फिर भी वह जिज्ञासा करता है कि जो प्रतिबिंब दर्पण में दिखाई पड़ता है और जो जल में दिखाई पड़ता है– यह आत्मा कौन–सी है। उस जिज्ञासा का समाधान करते हुए प्रजापति ने कहा जो आत्मा आंख से दिखाई पड़ती है वह वही आत्मा है जो अन्यत्र दिखाई पड़ती है। फिर ब्रह्मा ने उन दोनों को व्यवहारिक प्रक्रिया से समझाया कि पहले तुम दोनों अपनी परछाई को पानी के बर्तन में देखो। उससे जो भी अनुभव हो, जो कुछ भी न समझ में आए वह मुझसे पूछो। उन दोनों ने वैसा ही किया। फिर प्रजापति ने पूछा क्या दिखा। उन दोनों ने उत्तर दिया पूरा शरीर दिखाई पड़ा। फिर ब्रह्म ने कहा अब अच्छे से स्नान करके अच्छे वस्त्र पहन कर सज–धज कर पानी में देखो। उन दोनों ने वैसा ही किया। फिर पूछा क्या दिखा। उन दोनों ने कहा भगवन जैसे हम दोनों सजे–धजे हैं वैसे ही सजा–धजा हमारा प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। फिर प्रजापति ने कहा कि तुम जिसे जाग्रत अवस्था में देखते वही अमृत, अभय, ब्रह्म। इतना सुनकर उन दोनों की जिज्ञासाएं शांत हो गईं और शांत होकर प्रस्थान कर दिए।

विशेष–

1. आत्मा के पहचान की व्यवहारिक प्रक्रिया का वर्णन है।
2. गूढ़ दर्शनिक पक्ष को सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया।
3. सदा जाग्रत रहने की प्रेरणा मिलती है।
4. निर्मलता पर जोर दिया गया है।

5. गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता, यह सीख मिलती है।

(9)

जब मनुष्य इस अवस्था में पहुँच जाता है– शरीर में रहता हुआ भी अपने को अशरीरी अनुभव करने लगता है– तब वह खाता हुआ, खेलता हुआ, रमता हुआ, सैर करता हुआ, इस प्रकार विचरता है जैसे यह शरीर, ये बन्धु–बान्धव, ये आस–पास के लोग उसे कुछ याद ही नहीं। वह संसार के जो काम करता है, ऐसे करता है जैसे शरीर के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। परम ज्योति के सम्पर्क में आने के कारण यह अपने को शरीर से अलग देख लेता है। वह ऐसा स्पष्ट देख लेता है कि जैसे रथ के साथ थोड़ा जुता होता है वैसे ही उसका प्राण, उसका आत्मा इस शरीर–रूपी रथ के साथ जुता हुआ है; यह स्वयं शरीर नहीं है, न शरीर तथा आत्मा का कोई मूल–गत सम्बन्ध है। आकाश में जहां भी आंख जड़ी हुई है, वही 'चाक्षुष पुरुष' वह आत्मा, बैठा है और इस विशाल जगत् को मानो झरोखों में बैठा झांक रहा है। आंख क्या है? यह कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, उसी के देखने का साधन है– जो देख रहा है, वही, 'आत्मा' है।

प्रसंग–

उपर्युक्त संदर्भानुसार इस गद्यांश में प्रजापति ने इन्द्र की शरीर और आत्मा संबंधी जिज्ञासा का समाधान किया है। इन्द्र के द्वारा असली कथा का तात्पर्य पूछे जाने पर प्रजापति ने अपना मंतव्य प्रस्तुत किया है।

व्याख्या–

जब मनुष्य सिद्धावस्था में पहुँच जाता है, तब वह अपना नित्य कार्य करता हुआ भी शरीर से अलिप्त रहता है। वह अपने बंधु बांधवों के बीच में रहते हुए भी उनसे अपने को निरपेक्ष पाता है। वह संसार का सारा व्यावहारिक कार्य करता हुआ भी उनसे अपने को अलग पाता है। परम ज्योति का अनुभव हो जाने के बाद वह शरीर के सत्य को समझ लेता है। उससे वह अपने जुड़ा हुआ न मानकर अलग अनुभव करता है। वह अपने को रथ में जुते हुए घोड़ों की तरह अलिप्त पाता है। वह स्पष्ट अनुभव करता है कि शरीर का आत्मा से कोई संबंध नहीं है। वह पूरे संसार को झरोखें में बैठे हुए झांकता है। आंख की व्याख्या करता हुआ कहता है कि यह कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, यह केवल साधन है। जो देख रहा है वही आत्मा है।

विशेष–

1. शरीर के धर्म की बात कही गई है।
2. आत्मा के धर्म की बात कही गई है।
3. दोनों से संबंध की बात कही गई है।
4. मनुष्य जीवन के सत्य की बात कही गई है।
5. जीवन के सत्य की बात कही गई है।

(10)

मन आत्मा का दैव–चक्षु है, दिव्य नेत्र है। इससे यह आगे–पीछे, भूत–भविष्यत् सब देखता है। इसी दिव्य–चक्षु द्वारा मन में ही रमण करता है, परन्तु यह भी आत्मा का साधन है; जो मन के द्वारा मनन करता है वही 'आत्मा' है। जो देवगण इस संसार के साथ अधिक सम्पर्क न रखकर

ब्रह्म–लोक में विचरण करते हैं, ब्रह्म–ध्यान में लीन रहते हैं, वे इसी 'आत्मा' की उपासना किया करते हैं, इसीलिए सब लोक और सब कामनाएँ उनके वश में रहती हैं। जो उस आत्मा को ढूँढ़कर जान लेता है वह सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

प्रसंग–

उपर्युक्त संदर्भानुसार इन्द्र द्वारा मन के बारे में पूछे जाने पर प्रजापति द्वारा उसके स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या–

मन आत्मा के द्वारा दृश्य है। मगर तब इसे मन के द्वारा देखा जा सकता है, जब उसमें दैवी भाव हो। बिना दैवी भाव के उसे नहीं जाना जा सकता है। इसी अर्थ में उसे दिव्य चक्षु कहा गया है। इसी रूप में इसे दिव्यनेत्र भी माना जाता है। इसके द्वारा वह तीनों कालों को देख सकता है। वह अर्थात् मन इसी दिव्य चक्षु से अन्तरतम में रमण करता है। फिर भी यह साध्य नहीं साधन मात्र ही है। आत्मा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जो मन के द्वारा मनन करने पर ज्ञात होता है। यही कारण है कि देवतागण ब्रह्मलोक में रहते हुए भी सभी लोकों की लीलाओं को अपनी दिव्य चक्षु से देख लेते हैं। इसीलिए जो आत्मा को जान लेता है, वह सबको जान जाता है।

विशेष–

1. मन को परिभाषित किया गया है।
2. मन को साधन माना है।
3. आत्मा को साध्य माना है
4. आत्मा की अमरता की ओर संकेत है।
5. यही दिव्य चक्षु है जिससे सबकुछ देखा जा सकता है।

(11)

तप और स्वाध्याय से, मनन और निदिध्यासन से, ध्यान और समाधि से वह परम तत्व अनुभव का विषय बनता है। परन्तु यह अच्छी तरह जान लो वत्स, कि सत्संग और सदाचार से, स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य से ही यह मनुष्य का शरीर, इसके भीतर देखनेवाला अन्तःकरण वह पवित्र अधिष्ठान बनता है जिसमें आत्मानुभूति स्थिर और अचंचल होकर निवास करती है। सत्यवचन रथीतर सत्य को ही परम तप मानते थे, तपोनिष्ठ पौरुषनिष्ठ तपस्या और ब्रह्मचर्य को ही परम सद्गुण मानते थे और नाक मौद्गल्य स्वाध्याय को ही सर्वश्रेष्ठ साधन स्वीकार करते थे। वेदों के परम रहस्यज्ञ बादरायण व्यास पर–दुःख को दूर करने के सच्चे प्रयास को ही धर्म का मूल मानते थे। सत्य बड़ा गुण है, स्वाध्याय और सत्संग परम तप है, और पर–दुःख–कातरता सबसे बड़ा मानवीय गुण है। सर्वत्र आत्मानुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण है दूसरों के सुख के लिए अपने–आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर दे देना। इससे बड़ा तप मुझे मालूम नहीं है। मेरी बातें समझ रहे हो, सौम्य?

प्रसंग–

प्रस्तुत गद्यखण्ड आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास अनामदास का पोथा से उद्धृत है। इस गद्य खण्ड में रैक्व, औषस्ति मुनि से अपनी जिज्ञासाएं प्रकट करते हैं। रैक्व की चिंतन–प्रक्रिया में जो दोष दिखाई पड़ता है, औषस्ति उसका शमन करते हुए स्पष्ट करते हैं।

व्याख्या–

तप और स्वाध्याय, चिंतन और अभ्यासपूर्वक मनन से, ध्यान और आत्मबोध से वह परमतत्व अनुभूति का विषय बनता है। तथापि सज्जनों का सान्निध्य, सद्कार्यों में संलग्नता, स्वाध्याय और इन्द्रिय–निरोध द्वारा मनुष्य अपने शरीर व इसमें अंतस्थ तत्व के माध्यम से ऐसे स्थल का निर्माण होता है जिसमें आत्मानुभूति अचल तथा सुस्थिर होकर विद्यमान रहती है। विभिन्न विचारकों, तपस्वियों ने अपनी–अपनी अनुभूतियों के अनुसार ही तत्वों को प्रधानता दी है– जिनमें स्थीतर सत्य को, पौरुषष्ठि तपस्या और इन्द्रिय निग्रह को और मौदगल्प स्वाध्याय को ही श्रेष्ठ साधन माना है। दूसरी ओर वेदज्ञ बादरायण ने दूसरों के दुखों के दूर करने के प्रयत्नों को ही सद्धर्म मानते थे। सत्य श्रेष्ठ है, स्वाध्याय और सत्संग परम तप है और दूसरों के दुखों के प्रति सहानुभूति सर्वाधिक मानवीय गुण है। अपनी अनुभूति का प्रत्यक्ष रूप है दूसरों को सुख प्रदान करने हेतु स्वयं की सुख–सुविधाओं का परित्याग। औषस्ति ऋषि के इस कथन में कई विशेषताएं सन्निहित हैं–

विशेष–

1. तप, स्वाध्याय, चिंतन–मनन, ध्यान–धारणा से परम तत्व का बोध होना।
2. सत्संग, सदाचार, ब्रह्मचर्य से शरीर को पवित्र अधिष्ठान बनाना।
3. पर दुःख कातरता का भाव होना।
4. दूसरों के दुखों को दूर करने हेतु सतत् प्रयासरत रहना।
5. दूसरों के सुखों में वृद्धि हेतु अपने सुखों का परित्याग।

(12)

"एकान्त का तप बड़ा तप नहीं है, बेटा! देखो, संसार में कितना कष्ट है, रोग है, शोक है, दरिद्रता है, कुसंस्कार है। लोग दुःख से व्याकुल हैं। उनमें जाना चाहिए। उनके दुःख का भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न करो। यही वास्तविक तप है। जिसे यह सत्य प्रकट हो गया है कि सर्वत्र एक ही आत्मा विद्यमान है वह दुःख–कष्ट से जर्जर मानवता की कैसे उपेक्षा कर सकता है, वत्स? क्या समझते हो, कर सकता है?"

"चार पुरुषार्थ हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इनमें पहले तीन साधन हैं, अन्तिम साध्य है। पहले तीन में धर्म सबसे बड़ा है। उसके अनुकूल रहकर अर्थ का उपार्जन करना चाहिए। अर्थ प्रधान नहीं है– धर्म का अविरोधी रहकर ही पुरुषार्थ है। धर्म के विरुद्ध जाने पर त्याज्य है। इसी प्रकार, सौम्य, काम धर्म और अर्थ का अविरोधी रहकर ही पुरुषार्थ कहलाता है। धर्म और अर्थ के विरुद्ध जाने पर वह आचरणीय नहीं रहता। समझ रहे हो, वत्स?"

प्रसंग–

यह गद्य खण्ड आचार्य हजारी प्रसाद कृत उपन्यास अनामदास का पोथा से उद्धृत है। इसमें ऋषि औषस्ति तथा रैक्व के निरंतर वार्तालाप में ऐसी अनेक व्यावहारिक एवं सामाजिक क्रिया कलापों को स्थान मिला है, जो एक आदर्श सामाजिक व्यक्ति के लिए भी आवश्यक है।

व्याख्या–

रैक्व को समझाते हुए मुनि औषस्ति कह रहे हैं कि एकान्त साधना को कोई उल्लेखनीय तप के अन्तर्गत नहीं लेना चाहिए। चूँकि संसार में रह रहे सामाजिक रोग, शोक, कुसंस्कारों से ग्रस्त हैं। इनसे छुटकारा दिलाने के लिए हमें उनके समीप जाना चाहिए। उनके साथ सहभागिता आवश्यक है। ऋषि ने आगे स्पष्ट किया यदि परदुख कातरता का भाव उत्पन्न हो गया तथा उनके दुखों के दूर करने की सक्रियता आ गई तो समझो वही परम तप है। वे रैक्व से प्रश्न करते हैं कि 'क्या तुम इस दिशा में सक्रिय हो सकते हो? रैक्व द्वारा असमर्थता प्रकट करने पर ऋषि पुनः समझाते हैं कि तुम्हें एक पूर्ण मनुष्य बनना चाहिए। इस पूर्णत के लिए चार पुरुषार्थ हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें पहले तीन अर्थात् धर्म, अर्थ और काम ऐसे साधन हैं जो चौथे अर्थात साध्य स्वरूप मोक्ष की ओर ले जाते हैं। ऋषि स्पष्ट करते हैं कि इन तीनों साधनों में धर्म का स्थान प्रथम है। इसी का आश्रय लेकर अर्थोपार्जन करना चाहिए। काम भी धर्मानुसार होना चाहिए। काम, धर्म और अर्थ के अविरोधी रहकर ही पुरुषार्थ की संज्ञा पूर्ण होती है। धर्म और अर्थ के विरुद्ध रहकर वह आचरण योग्य नहीं रह जाता। ऋषि इस कथन के उपरान्त रैक्व से पूंछते हैं कि इसे समझ रहे हो? या नहीं?

विशेष–

1. इस खण्ड में ऋषि ने जिन मानवीय गुणों की ओर संकेत किया है, वे सभी के लिए आवश्यक हैं।
2. धर्म, अर्थ और काम साधन हैं और मोक्ष साध्य।
3. धर्म विरुद्ध आचरण के प्रति सतर्क रहना चाहिए।
4. समाज में रोग, शोक तथा कुसंस्कारों के कारण दुख प्राप्त लोगों के पास जाकर उनके दुखों का निवारण करना परम तप है।
5. पूर्ण मनुष्य बनने के लिए चार पुरुषार्थों – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए।

(13)

यह शरीर नाशमान् है, प्राण विनश्वर साधनमात्र है, मन भी नष्ट हो जानेवाला साधन है, अविनश्वर है केवल आत्मा। पिण्ड में जो आत्मा है वही ब्रह्माण्ड–व्यापी ब्रह्म है। उनके मन में बड़ी उथल–पुथल थी। माताजी से विवाह का अर्थ पूछना है, वृद्ध ऋषि कहते हैं कि विश्वास मनुष्य को पूर्ण बनाता है। क्या रहस्य है इन बातों का? उनकी तपस्या अधूरी है, क्योंकि सत्संग नहीं किया। बात ठीक लगी। अगर महाभागा शुभा न मिल गयी होती तो उनका ज्ञान बढ़ नहीं पाता। महाभागा शुभा! चम्पक पुष्प का–सा रंग है, मृगछौने की–सी आंखें, अमृत की–सी वाणी है। यह सब भी क्या विनश्वर तत्व है? जिन आंखों को देखकर उन्हें भ्रम हुआ था कि मृग की आंखें किसी प्रकार चिपका दी गयी है वह भी विनश्वर साधन–मात्र है।

प्रसंग–

इस गद्यावतरण का संबंध हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत उपन्यास 'अनामदास का पोथा' से है। पूर्व प्रसंगों में रैक्व लगातार ऋषि औषस्ति के सम्पर्क में रहकर आत्मज्ञान की बातें सुनते और कहते रहे हैं। स्त्री एवं स्त्रीत्व से पूर्ण अपरिचित होने के कारण भी उनके मन में अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह गए। इन सभी बातों से रैक्व का मन–मस्तिष्क थक सा गया। रैक्व की इसी स्थिति का रेखांकन इस गद्य खण्ड में है।

व्याख्या–

रैक्व विविध प्रकार के अनुत्तरित प्रश्नों के साथ माता जी के समीप चले। उनके मन में यह उद्‌भावना हुई कि आत्मा को छोड़कर अन्य सभी तत्व– शरीर, प्राण, मन– नष्ट होने वाले साधन है। इस शरीर में स्थित जो आत्मा है, वही ब्रह्माण्ड में भी व्याप्त है। इन सभी बातों से रैक्व बड़े उदि्‌ग्न थे। उन्हें माता जी से विवाह का अर्थ भी पूछना था। माता जी के अनुसार विवाह मनुष्य को पूर्णता प्रदान करता है। इसका रहस्य भी जानना था। रैक्व को यह आभास हुआ कि उनकी तपस्या अधूरी है क्योंकि ऋषि औषस्ति के द्वारा वर्णित पूर्ण मनुष्य की अवधारणा के अनुसार निर्धारित मापदंडों में नहीं आते। रैक्व ने यह माना कि यदि शुभा से न मिली होती तो उनका ज्ञान सीमित ही रहता। रैक्व ने अपने से ही प्रश्न किया कि शुभा का रूपरंग, उसकी चपल आंखे, मधुर वाणी, क्या ये सभी विनश्वर हैं? इतने आकर्षक तत्व नष्टप्राय कैसे हो सकते हैं?

विशेष–

1. रैक्व माता जी के द्वारा संकेतित विवाह के अर्थ को नहीं समझता।
2. दूसरी ओर ऋषि औषस्ति के द्वारा पूर्ण मनुष्य बनने की प्रक्रिया को आत्मसात नहीं करवाया।
3. इन्हीं कारणों से वह मन–मस्तिष्क से थक सा गया है।
4. उसे शुभा की अचानक याद आती है और
5. शुभा के रूप–रंग, आकृति तथा सुमधुर वार्तालाप आदि विनश्वर होने वाले तत्व हैं, इसे मानने में असमंजस में हैं।

(14)

धर्म कुछ कर्त्तव्यों और आचरणों से प्रकट होता है। सुना है बेटा, आजकल कुछ तत्त्वज्ञानी यह भी कहने लगे हैं कि ईश्वर या ब्रह्म की सत्ता माने बिना भी धर्म का आचरण किया जा सकता है। जो अपने–आपकी सुख–सुविधा का ध्यान न रखकर दूसरों के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करता है, सत्य से च्युत नहीं होता, दूसरों का कष्ट दूर करने के लिए अपना प्राण तक त्याग सकता है, वही धार्मिक है। यह परम या चरम तत्व के बारे में क्या मानता है, यह बड़ी बात नहीं। बड़ी बात है कि कैसा आचरण करता है, औरों के साथ कैसा व्यवहार करता है, उनके लिए कितना त्याग कर सकता है; यही तय करेगा कि वह, धर्म–परायण है या नहीं।"

प्रसंग–

रैक्व ऋषि जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। वे प्रत्येक तत्व के गूढ़ार्थ एवं मूलार्थ को जानने की जिज्ञासा रखते थे। न केवल जिज्ञासा रखते थे अपितु उस पर तब तक मनन करते थे जब तक उसकी धारणा स्पष्ट न हो जाए। यदि स्वयं के चिंतन और मनन से धारणा स्पष्ट नहीं होती थी, तब वे याचक के समान ज्ञानियों के पास जाते थे, और तब तक प्रश्न करते रहते थे जब तक उनकी जिज्ञासा शांत न हो जाए तथा अस्पष्ट तत्व का गूढ़ार्थ ज्ञात न हो जाए। रैक्व ऋषि, माँ से प्रश्न कर रहे हैं तथा अपनी जिज्ञासा को शांत करने का प्रयत्न करते हैं। रैक्व का प्रश्न धर्म के संदर्भ में है।

व्याख्या–

वस्तुतः धर्म की व्याख्या मनुष्य के आचरण में छिपी है। धर्म अपने आप में मनुष्य का आचरण ही है। धर्म का अर्थ–बुफ़ की सत्ता को माने बिना या जाने बिना भी धर्म का आचरण किया जा सकता है। क्या यह संभव है? इसी का उत्तर मां यह कहकर देती है कि धर्म का लक्ष्य किसी परम तत्व को जानना नहीं है, अपितु धर्म पालन का अर्थ है– सद् आचरण अथवा मनुष्यों के प्रति सद्व्यावहार।

जो व्यक्ति अपने दुख को मूल कर दूसरे की सहायता करता है– वही श्रेष्ठ है, उसी को धर्म का पालन करने वाला मानना चाहिए। तुलसी दास जी ने भी कहा है– 'परहित सरिस धरय नहिं भाई' दूसरों की सहायता करने के लिए जो अपने प्राण तक त्याग देता है, वही सच्चा धार्मित्व है। जैसे– दधीचि ऋषि। जिन्होंने देवों की सहायता के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया तथा देवों को अपनी अस्थियां प्रदान कर दीं।

ऐसा व्यक्ति यदि परम तत्व को कहीं मानता है या उसके बारे में नहीं जानता है तो इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। दूसरों के प्रति किया गया हमारा आचरण ही तय करेगा कि हम कितने धर्म–परायण हैं।

विशेष–

1. इसमें धर्म की केन्द्रीय विशेषता की स्थापना की गई है।
2. तत्वज्ञान की अपेक्षा मनुष्य के आचरण को वरीयता दी गई है।
3. दूसरों के दुख को दूर करने का प्रयत्न करना– यही श्रेष्ठ धर्म है।
4. सहायता करते हुए, प्राण तक त्याग देना– यह भारतीयता का बहुमूल्य गुण है।
5. धर्म की उचित, मनुष्योचित, वास्तविक तथा व्यावहारिक व्याख्या की गई है।

(15)

संसार का मूल तत्व क्या है, अगर वह ब्रह्म है तो निमित्त कारण है या उपादान कारण है? वह कौन–सी चीज है जिसमें समस्त चराचर जगत् उत्पन्न होता है, जीवित रहता है और फिर सबको अपने–आपमें समेट लेता है? मृत्यु के बाद आत्मा नाम की कोई चीज बनी रहती है या सब–कुछ खत्म हो जाता है; जागरण, स्वप्न और निद्रा से भिन्न कोई चतुर्थ अवस्था है या नहीं?– इन्हीं बातों की उधेड़बुन में वे लगे रहते थे। जब कभी किसी तत्वज्ञानी से उनका साक्षात्कार हो जाता था तो घण्टों बैठकर इन बातों पर विचार करते थे और बाद में अपनी प्यारी बिटिया से उनकी चर्चा करते थे। जाबाला उनके विचारों को सदा उत्साह–पूर्वक सुनती और अपनी शंकाएं बताती। पर जब से वह अस्वस्थ रहने लगी थी, उनके तत्वचिन्तन में भारी बाधा आ पड़ी। आचार्य औदुम्बरायण उनके पुरोहित भी थे और परिवार के संरक्षक भी। वे बार–बार उनसे चिरौरी करते कि वे जाबाला का कोई उपचार सुझाएँ। आचार्य भी कम परेशान नहीं थे। जाबाला के लिए वे माता, पिता, गुरु, सब थे। वैद्यों और ओझा लोगों से उपचार पूछते, जड़ी–बूटियाँ ले जाते, मन्त्र–जप करते और अनेक प्रकार के टोटकों का भी प्रयोग करते। कठिनाई यह थी कि जाबाला स्वयं इन बातों को अनावश्यक समझती थी। वह बराबर यही कहती कि वह बिल्कुल ठीक है। उसके लिए आचार्य को या पिताजी को परेशान होने की जरूरत नहीं है।

प्रसंग–

प्रस्तुत गद्यांश में दर्शन से सम्बन्धित मूलभूत प्रश्नों को उठाया गया है। दर्शनशास्त्र के मूलभूत प्रश्न हैं– जगत् क्या है? जीवन किससे संचालित है? परम तत्व क्या है? आदि। जाबाला और उसके पिता के बीच होने वाले संवाद में इन्हीं आधारभूत प्रश्नों को उठाया गया है। लेकिन उक्त दार्शनिक चिंतन करते–करते वह अस्वस्थ हो गई। और जाबाला के स्वास्थ्य की चिंता उसके पिता तथा आचार्य औटुम्बरायण को होने लगी।

व्याख्या–

मूल दार्शनिक प्रश्न है जो शताब्दियों से उठाया जाता रहा है– संसार का मूल तत्व क्या है? यदि कोई मूल तत्व है तो क्या वह निमित्त कारण है? अथवा वह मूल तत्व जगत का उपादान कारण है? दूसरा यह महत्वपूर्ण प्रश्न है– वह तत्व कौन है तथा वह कहां स्थित है जिसमें से इस चराचर जगत का उदय तथा विकास होता है? वह मूल उत्स क्या है जिसमें जाकर सम्पूर्ण चराचर जगत समा जाता है।

क्या मृत्यु के बाद कुछ शेष रहता है? अथवा शरीर के बाद सबकुछ नष्ट हो जाता है। शरीर पांच तत्वों से बना है– जल, वायु, मिट्टी, अग्नि और आकाश। मृत्यु के बाद क्या ये पांचों तत्व वापिस उन्हीं में समा जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं। क्या कुछ शेष बचता है? और जो शेष बचता है, क्या उसे आत्मा कहा जा सकता है? मनुष्यता तो जाग्रत है या निद्रा में रहता है। इन दोनों के बीच की स्थिति है–स्वप्न। क्या इन तीनों से अलग भी कोई स्थिति है? यदि है तो वह क्या है? जाबाला के पिता लगातार इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने में व्यस्त रहते थे। इसी दौरान जाबाला का स्वास्थ्य भी गिरने लगा, जिसे देख कर सब चिंतित हो गए।

विशेष–

1. उक्त गद्यांश में दर्शनशास्त्र के मूल प्रश्नों को उठाया गया है।
2. प्रश्न तो उठाए गए हैं, लेकिन उनका उत्तर यहां नहीं दिया गया है। उत्तर उपन्यास के दूसरे हिस्सों में है।
3. तत्व ज्ञानी के स्वरूप को बताया गया है? तत्व ज्ञानी इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोलता है।
4. पुरानी पीढ़ी एवं नई पीढ़ी के बीच भी संवाददाता धता को प्रदर्शित किया गया है।
5. प्राचीन भारत में स्त्रियों की तत्व दर्शन में भाग लेती थी इसका विवेचन है।

(16)

बार–बार अपने को प्रिया–रूप में सोचने में उसे एक अपूर्व गुदगुदी अनुभव होती। फिर थोड़ी हँसी भी आती। वह तो एकदम जंगल का जीव है। उसे क्या मालूम कि प्रिया किस चिड़िया का नाम है। पर वह बार–बार इसी रूप में अपने को क्यों सोचती है? उसे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। उड़ता पंछी कहां से आया, कहां गया! उसके बारे में सोचते रहना क्या उचित है? मगर मन मानता नहीं। जो कुछ उसने सुना है उससे लगता है कि शुभा उसके हृदय में बैठ गयी है, उसका नाम वह श्रद्धा से लेता है, गुरु–रूप में लेता है। यह क्या प्रिया के बारे में सोचना है? पर और हो भी क्या सकता है यह प्रेम के सिवा? जाबाला व्याकुल हो जाती है। उससे एक बार, सिर्फ एक बार, मिलने का अवसर किसी प्रकार मिल पाता! नन्हीं मिला, अब तो मिलेगा भी नहीं। हाय, किसे वह अपनी मनोव्यथा बताये! जो सुनेगा वह हँसी उड़ायेगा।

प्रसंग–

प्रस्तुत गद्यांश में जाबाला के हृदय में उठ रही प्रेम तरंगों के बारे में चर्चा की गई है। जाबाला किशोरी है और अपने पिता के साथ तत्वज्ञान की चर्चा में रत रहती है, लेकिन अनायास उसके मन में प्रेमांकुर फूटने लगा जिसके कारण उसका स्वास्थ्य भी खराब होने लगा। जिसे देखकर आचार्य औदुम्बरायण चिंतित थे।

व्याख्या–

जबाल अभी तक तत्वज्ञान में रुचि लेती थी और किशोरी होते ही उसके हृदय में प्रेमांकुर फूटने लगे। स्वयं को प्रिया' के रूप में देखने की कल्पना से ही उसे रोमांच हो आया। यह उसके जीवन में आया पहला और अनूठा अनुभव था। जिसे देख कर वह स्वयं चकित थी। प्रिया रूप में अपने को स्थापित करते ही वह चौंक उठती है तथा अनायास हंस पड़ती है।

इस प्रकार जाबाल भयभीत भी रहती है और चिंतित थी। वह प्रेम भाव की ओर बहते अपने मन को रोकने का प्रयत्न करती है। लेकिन समय साक्षी है कि मानव मन पर किसी का नियंत्रण नहीं हो सकता। दिन भर प्रेम भाव के बारे में सोचते रहने से वह दूसरे प्रसंगों से कटती जा रही है और अंतर्मुखी हो रही है, जिसे देखकर उसके शुभ चिंतक चिंतित है। वह लाख प्रयत्न करती है कि इस प्रकार के भाव उसके मन में न आएं लेकिन जितना वह संयम करने का प्रयास करती है, उतना ही उसका चंचल मन उसे और बांधता है।

विशेष–

1. इस गद्यांश में जाबाला के प्रेम भाव की चर्चा है।
2. जाबाला के हृदय की चंचलता का मिश्रण है।
3. किशोरी के हृदय में उठ रहे प्रेमांकुरों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।
4. तत्व चिंतन की शुष्कता और प्रेम की सरलता की तुलना है।
5. मन की निरंकुशता का चित्रण है।

(17)

मैं आवेश में नहीं कह रही हूँ तात, कर्त्तव्य–बुद्धि से कह रही हूँ। आप स्वयं देख आये हैं कि लोग कितने दुःखी हैं, फिर मेरा घर में बैठे रहना क्या उचित होगा? बहुत दिनों से सुनती आ रही हूँ कि आत्मा अजर है, अमर है, उसका अधिष्ठान यह शरीर विनाशमान है। यह क्या बात की बात है? मेरा अन्तरतर आज चिल्लाकर कह रहा है कि शरीर, मन, प्राण, सभी विनश्वर साधन तभी सार्थक होंगे जब उन्हें दुखियों का दुःख दूर करने में लगा दिया जाएगा।

प्रसंग–

प्रस्तुत गद्य में जाबाला मनुष्य जीवन के व्यावहारिक पक्ष का उदघाटन करती है। तत्व दर्शन पर किए जाने वाले विचार विमर्श की तुलना में मनुष्य जीवन का लक्ष्य है– दुखीजन की सेवा करना। जो मनुष्य शुष्क बौद्धिक जीवन में रत रहता है तथा साधारण जन के दुख–सुख से विरक्त हो जाता है, उस मनुष्य को प्रशंसनीय नहीं माना जाता।

व्याख्या–

जबाला के पिता ऋषि तुल्य हैं। वे स्वयं भी तत्व दर्शन में लीन रहते हैं तथा इस तत्व दर्शन की चर्चा अपनी बेटी से भी करते हैं। जाबाला पहले तत्वदर्शन में रुचि लेती रहीं लेकिन अब अनायास उसमें कर्त्तव्य बुद्धि का जागरण हो जाने से उसे बौद्धिक चर्वणा से विरक्ति सी हो गई है। वह स्पष्ट कहती हैं कि कर्त्तव्य बुद्धि के जागरण से उसे दुखी जनों के दुख का बोध हो रहा है। जब चारों ओर सामान्य जन दुखी हैं तब दूसरे मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे सक्रिय होकर दुखी मानवता की सेवा करें। घर के भीतर बैठकर तत्वज्ञान की शुष्क चर्चा करते रहने से कुछ भी सकारात्मक नहीं होगा। परिणाम तो तब निकलेगा जब शरीर को दुखियों के दुख दूर करने में लगा दिया जाए।

विशेष–

1. प्राचीनकाल में नारी की समाजोन्मुखता की चर्चा की गई है।
2. बौद्धिक चर्चा और व्यावहारिक कर्त्तव्यपरायणता की तुलना की गई है।
3. मनुष्य जीवन के उद्देश्य को बताया गया है।
4. कर्त्तव्य बुद्धि, सदैव व्यावहारिक होती है– इस तथ्य की प्रतिष्ठा की गई है।
5. जाबाला के अंतरतट की रुचि सिद्धान्त चर्चा में नहीं है, व्यावहारिक सेवा भाव में है।

(18)

जाबाला ने उत्तर नहीं दिया। उसके कपोल–मण्डल पर लालिमा की तरंग खेल गयी। आंखें अनायास नीची हो गयीं। क्या बतावे? कुछ बताने योग्य भी तो हो। वृद्ध आचार्य की अनुभवी आंखों से किशोरी के पाण्डुर कपोलों पर अचानक खेल जानेवाली यह लालिमा छिप नहीं सकी। वे असमंजस में पड़ गये।

प्रसंग–

प्रस्तुत गद्यांश में जाबाला के ह्रदय के प्रेमप्रसंग की चर्चा की गई है। वह एक ओर पिता की प्रेरणा से तत्वचिंतन में लीन रहती है। दूसरी ओर अपनी कर्त्तव्यपरायण बुद्धि से दीन दुखियों की सेवा करना चाहती है। तीसरी ओर उसका ह्रदय प्रेम में आबद्ध हो गया है। यह बात उसके पिता जान गए हैं।

व्याख्या–

अपने पिता से तत्वज्ञान करने वाली जाबाला, अपने ह्रदय की भावनाओं को अपने पिता से छिपा नहीं पाती। पिता भी उसके ह्रदय के भावों को जान लेते हैं और पढ़ लेते हैं। वे जाबाला के गिरते स्वास्थ्य से भी चिंतित हैं। इस चिंता के कारण वे जानना चाहते हैं कि जाबाला को क्या रोग है? जाबाला किशोरी है, जिज्ञासु तत्व ज्ञाता है। समाज सेविका है लेकिन ह्रदय में व्याप्त प्रेम को छिपा नहीं पाती है। पिता के द्वारा पूछे जाने प्र वह लज्जाशील हो जाती है। उसके कपोल लाल हो जाते हैं। लेकिन वृद्ध और अनुभवी पिता की चिंता और बढ़ जाती है– जब वे उसके भावों को पकड़ लेते हैं।

विशेष–

1. एक किशोरी के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

2. लज्जा के मनोभावों का चित्रण है।
3. किशोर मनोभाव और प्रौढ़ मनोभावों की तुलना है।
4. लज्जा का भाव लालिमा की तरंग के रूप में व्याप्त होता है। इस तथ्य की पुष्टि प्रभात जी ने अपनी कृति 'कामायनी' का लज्जा सर्ग में की है।
5. लज्जाशील युवती का चित्रण है।

(19)

उसके मन में रह–रहकर शुभा की दिव्य मूर्ति आ जाती। वही ठीक उपाय बता सकती है। वह परम ज्ञानी है, धर्म का रहस्य समझती हैं, उचित–अनुचित का विवके रखती है। शुभा ही बता सकती है कि इस समय क्या करना चाहिए। उसकी वाणी में अमृत है। आंखों में शामक तेज है, मुख पर दैवी क्रान्ति है। कितनी मनोश है शुभा, कितनी बुद्धिमती! इस समय वह मिल जाती तो कितना अच्छा होता! मगर यह पाप भी तो उसी से हुआ है। रैक्व का मन थोड़ी देर के लिए क्षोभ से व्याकुल हुआ। फिर समाधान भी मिल गया। जैसे मुझे इस घटना के पाप–पक्ष का भान नहीं हुआ, उसी प्रकार शुभा को भी भान न होने की सम्भावना भी तो है। बताना चाहिए। अवश्य शुभा को बताना ही होगा। वे व्याकुल भाव से माताजी के पास गये।

प्रसंग–

यह गद्य खण्ड आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास अनामदास का पोथा से उद्‌धृत है। इस गद्यांश में रैक्व की द्विविध मनःस्थिति का उद्‌घाटन किया गया है। एक ओर उसका मन समीपस्थ ग्रामवासियों की दुरावस्था से व्यथित है तो दूसरी ओर शुभा की आकर्षक छवि की याद पीड़ा दायक हो जाती है।

व्याख्या–

ग्रामवासियों की दुरावस्था की जानकारी से रैक्व का मन व्यथा से भर गया है। उस तात्कालिक दृष्टि से इस संकट से उबरने का कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ रहा। इस विषय स्थिति में कोई मार्गदर्शक नहीं है, ऐसी दशा में उसके मन में शुभा की छबि उभरती है जो इन विषय परिस्थितियों में उपाय बता सकती। रैक्व को विश्वास है कि वह परम ज्ञानवती, धर्म–निपुण, उचित–अनुचित विवके सम्पन्न है। उसकी वाणी में उत्साह जागृत की क्षमता, मुख में तेज, मनोज्ञा और बुद्धिमान है। रैक्व इस समय उसकी आवश्यकता को महसूस करता है। वह यह भी जानता है कि इस स्थिति का वह स्वयं जिम्मेदार है, किन्तु वह आश्वस्त है कि शुभा इस घटना के पाप पक्ष से अनभिज्ञ होगी। अतः उससे विचार करना होगा। इसी तर्क–वितर्क भाव से रैक्व व्याकुल मनःस्थिति में माता जी के समीप गए।

विशेष–

1. यहां रैक्व का पूर्व रूप कुछ बदला सा वर्णित हुआ है।
2. वह अब ग्रामीणों की दुर्दशा पर व्यथित होता प्रतीत हुआ ह।
3. ग्रामीणों को दुरावस्था से निजात दिलाने के लिए वह सन्नद्ध है।
4. इस समय रैक्व किसी का मार्गदर्शन चाहता है।
5. मार्गदर्शन के लिए उसे शुभा सबसे उपयुक्त दिखाई पड़ती है, जिसमें तमाम अच्छे गुण विद्यमान हैं।

(20)

साधु वत्स, तुम्हारा संकल्प महान् है। तुम अपनी माताजी के साथ अवश्य जाओ। सौम्य, राग–द्वेष और तृष्णा–लोभ से परे पहुँचे हुए द्वैपायन व्यास ने कहा है कि लोक–ताप से तप्त होना सबसे बड़ा तप है, क्योंकि वह अखिलात्मा पुरुष की परमाराधना है। यही वैश्वानर–उपासना भी है। मैं स्वयं तुम्हें वैश्वानर–साधना के बारे में बताने की सोच रहा था। अब तुम्हारे मन में यदि जिज्ञासा उठी है तो उत्तम अवसर भी मिल गया। पुत्र, जिज्ञासु को ही रहस्य समझाना चाहिए। वही चरितार्थ होता है। तुम सुनने के लिए उत्सुक हो न, वत्स?

प्रसंग–

प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की औपन्यासिक कृति 'अनामदास का पोथा' से लिया गया है। इसमें रैक्व की बदली हुई मनोदशा का दिग्दर्शन हुआ है।

व्याख्या–

औषस्ति मुनि के द्वारा दिए गए दिशा निर्देशानुसार रैक्व ग्रामीणों की सहायता करने तथा उनकी दुरावस्था से छुटकारा दिलाने हेतु सहर्ष प्रस्तुत हो जाते हैं। रैक्व के इस बदले हुए स्वरूप से ऋषि अत्यंत प्रसन्न प्रतीत होते हैं, तथा रैक्व की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि तुमने जो सदिच्छा प्रकट की वह प्रशंसनीय है। तुम्हें अपनी माँ के समीप अवश्य आओ। उन्होंने व्यास जी को उद्धृत करते हुए कहा कि लोक–ताप से तप्त हाना सर्वाधिक बड़ा तप है, क्योंकि यह तप उस परमसत्ता की आराधना से कम नहीं है। ऋषि कहते हैं कि रैक्व तुम्हें यह अवसर प्राप्त हुआ है कि तुम इस परम तप की साधना कर सकोगे। इसके साथ ही मैं तुम्हें वैश्वानर–साधना के संदर्भ में बताने के लिए सोच रहा था। अब उपयुक्त अवसर मिला है। क्या तुम जानना चाहते हो?

विशेष–

1. औषस्ति आज रैक्व के प्रति अत्यंत प्रसन्न हैं।
2. वे उन्हें माताजी के पास जाने के लिए सहमत हैं।
3. ऋषि लोक में व्याप्त दुखों से दुखी होने की भावना को तप की संज्ञा प्रदान करते हैं।
4. वे वैश्वानर–साधना पर बल देते हैं।
5. तथा वैश्वानर–साधना के रहस्य–को समझने के लिए आमंत्रित करते हैं।

(21)

आप किसे 'आत्मा' समझकर उसकी उपासना करते हैं? उसने उत्तर दिया, 'हे राजन्! मैं तो 'द्युलोक' को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ।' राजा ने कहा, 'ठीक है, 'वैश्वानर–आत्मा' का यह रूप तो है, परन्तु पूर्ण–रूप यह नहीं है, उसके विशाल रूपों में जो तेजोमय रूप है, आप उसकी उपासना करते हैं, आप वैश्वानर के सुतेजा रूप की आराधना करते हैं, इसलिए आपके घर में 'सुत' है, 'प्रसुत' है, 'आसुत' है, अर्थात् घर में सोम–रस की धाराएँ 'सुत' हो रही हैं, बह रही हैं। तभी परमेश्वर के आशीर्वाद से आपको भोजन मिलता है, प्रिय वस्तु दृष्टिगोचर होती है। जो इस प्रकार वैश्वानर–आत्मा के तेजोमय रूप की उपासना करता है। उसे उनके आशीर्वाद से भर–पेट

भोजन मिलता है, प्रिय वस्तुएं देखने को मिलती हैं, उसके कुल में ब्रह्मतेज दीख पड़ता है। यह तेजोमय द्यु–लोक, 'वैश्वानर–आत्मा' का, जिसे आप खोज रहे हैं, 'मूर्धा' है, एक अंश है। आपका मूर्धा गिर जाता। अगर ब्रह्म के पूर्ण–रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।

(22)

मैं तो 'वायु' को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ। राजा ने कहा, 'ठीक है, 'वैश्वानर–आत्मा' का यह रूप तो है ही, परन्तु पूर्णरूप यह नहीं है। इसके अनेक रूपों में जो 'पृथक्–वर्त्मा'– भिन्न–भिन्न भागों में बहने–वाला उसका रूप–है, उसकी उपासना करते हैं। वैश्वानर के अनुग्रह से आपके पास नाना भेंटें आती हैं, और नाना रथश्रेणियाँ पीछे–पीछे चलती हैं। उन्हीं के अनुग्रह से आप अन्न प्राप्त करते हैं, प्रिय–जनों को देखते हैं। जो इस प्रकार 'वैश्वानर–आत्मा' के नाना मार्गों में जानेवाले रूपों की उपासना करता है, उसे उनके आशीर्वाद से भर–पेट भोजन मिलता है, प्रिय वस्तुएं देखने को मिलती हैं, 'वैश्वानर–आत्मा' का 'प्राण' है। आपका प्राण निकल जाता, अगर आप ब्रह्म के पूर्ण–रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।

(23)

राजा ने कहा, 'वैश्वानर–आत्मा' का यह रूप तो है ही, परन्तु पूर्ण–रूप यह नहीं। इसके अनेक रूपों में जो 'बहुल'– अनन्त–रूप है, उसकी आप उपासना करते हैं। इसी कारण आपके पास बहुत प्रजा तथा धन है। उन्हीं के अनुग्रह से आप अन्न प्राप्त करते हैं, प्रियजनों को देखते हैं। जो इस प्रकार 'वैश्वानर–आत्मा' के बहुल–रूप की उपासना करता है, उसे उनके प्रसाद से भर–पेट भोजन मिलता है, प्रिय वस्तुएं देखने को मिलती हैं, उसके कुल में ब्रह्म–तेज दीख पड़ता है। यह अनन्त आकाश 'वैश्वानर–आत्मा' का मध्य–भाग है, धड़ है। आपका धड़ नष्ट हो जाता, अगर आप ब्रह्म के पूर्ण–रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।

(24)

मैं तो 'जल' को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ। राजा ने कहा, 'ठीक है, 'वैश्वानर–आत्मा' का यह रूप तो है ही, परन्तु पूर्ण–रूप यह नहीं है। इसके अनेक रूपों में जो 'रयि'– सम्पत्ति, ऐश्वर्य – रूप है, उसकी आप उपासना करते हैं। इसी कारण आप रयिमान् तथा पुष्टिवान् हैं। भगवान् वैश्वानर के अनुग्रह से मनुष्य अन्न खाता है, प्रिय देखता है। जो इस प्रकार 'वैश्वानर–आत्मा' के रयि–रूप की उपासना करता है, उसे प्रभु के प्रसाद से अन्न मिलता है, वह प्रिय–दर्शन होता है, उसके कुल में ब्रह्म–वर्चस्व दीख पड़ता है। यह रयि–रूप जल 'वैश्वानर–आत्मा' का बस्ति–प्रदेश– मूत्राशय –है। आपका बस्ति–प्रदेश नष्ट हो जाता, अगर आप ब्रह्म के पूर्ण–रूप को जानने के लिए मेरे पास न आते।"

(25)

मैं तो पृथिवी को आत्मा मानकर उसकी उपासना करता हूँ। राजा ने कहा, 'ठीक है। 'वैश्वानर–आत्मा' का यह रूप तो है ही, परन्तु पूर्ण–रूप यह नहीं है। इसके अनेक रूपों में जो 'प्रतिष्ठा'– सबको सम्भालनेवाला– रूप है, उसकी आप उपासना करते हैं। इसी कारण आप प्रजा और पशुओं से प्रतिष्ठित हो रहे हैं। उन्हीं के अनुग्रह से मनुष्य अन्न खाता है, प्रिय देखता है। जो

इस प्रकार 'वैश्वानर–आत्मा' के प्रतिष्ठा, अर्थात् स्थिरता के रूप की उपासना करता है, उसे प्रभु–प्रसाद से अन्न मिलता है, वह प्रिय–दर्शन होता है, उसके कुल में ब्रह्म–वर्चस्व दीख पड़ता है। यह पृथिवी की प्रतिष्ठा, 'वैश्वानर–आत्मा' के पाँव हैं। आपके पाँव सूख जाते, अगर आप ब्रह्म को जानने के लिए मेरे पास न आते।

(26)

आप लोग 'वैश्वानर–आत्मा' को भिन्न–भिन्न तौर से जानते रहे, उसके पृथक्–पृथक् रूप की उपासना करते रहे और अन्न खाकर जैसी तृप्ति होती है वैसी तृप्ति का जीवन व्यतीत करते रहे। आप लोग प्रादेश–मात्र 'वैश्वानर–आत्मा' की एक–एक अंश में उपासना करते रहे हैं। जो यह समझकर उपासना करता है कि वह एक प्रदेश में ही नहीं है, अपितु सर्वत्र विद्यमान है; वह सब लोकों में, सब भूतों में, सब आत्माओं में विद्यमान है, वैसी तृप्ति का अनुभव करता है जैसी बुभूक्षित व्यक्ति अन्न खाकर अनुभव करता है।...

(27)

इस कथा का अर्थ जो मेरी समझ में आया है वह यह है सौम्य, कि समूचा विश्व एक पुरुषोत्तम का रूप है। यह जड़ धरित्री, सप्राण वनस्पति, जीवन्त जन्तु और बुद्धिमान मनुष्य उस एक की ही विभिन्न अभिव्यक्ति हैं– तुम भी, प्राण भी, आकाश भी, सूर्य भी, चन्द्र भी। जो ऐसा समझकर सेवा में प्रवृत्त होता है उसमें 'अहंकार' नहीं होता। अहंकार सेवा की महिमा को ही कम नहीं करता, वह सेवा को सेवा ही नहीं रहने देता। सौम्य, तुमने वायु के स्तर पर निखिलात्मा वैश्वानर को पकड़ने का प्रयत्न किया था न? तुमने बताया था न, कि वायु ही पिण्ड में प्राण है?

(28)

मुझे लगता है कि हर आदमी के लिए सत्य का रास्ता अलग–अलग होता है, आवश्यक नहीं कि सब एक ही मार्ग से चलकर परम तत्व तक पहुँचें। सच्चाई से अगर अपने स्वभाव के अनुरूप चलो तो किसी पक्ष को पकड़कर सत्य तक पहुँच सकते हो। वायु का चुनना तो केवल तुम्हारे विशिष्ट स्व–भाव का सूचक–मात्र है। समझ रहे हो, वत्स!

(29)

'प्रियता' प्राण से ही हो तो प्रकट होती है– तभी तो कहते हैं 'प्राणप्रिये'!– इस लिए प्राण ही प्रियता है। प्राण के प्रेम के कारण ही तो याज्ञिक, जो व्यक्ति यश के योग्य नहीं उसे भी यज्ञ करा देते हैं। जो दान देने योग्य नहीं उससे भी दान ले लेते हैं। प्राण के प्रेम के कारण ही जहां जाते हैं वहीं यह भय भी बना ही रहता है कि कहीं कोई मार न डाले। याज्ञवल्क्य ने कहा, हे सम्राट! प्राण ही परम ब्रह्म है। जो इस रहस्य को जानता हुआ प्राण द्वारा 'प्रिय ब्रह्म' की उपासना करता है उसका साथ प्राण नहीं छोड़ता, सब प्राण उसकी रक्षा करते हैं, यह स्वयं देव होकर देवों में जा विराजता है। यह सुनकर विदेह–राज जनक ने कहा, "मैं आपके इस उपदेश के लिए एक सहस्र गायें और हाथी के समान बैल भेंट करता हूँ। याज्ञवल्क्य ने कहा, "नहीं मेरे पिता का यह आदेश है कि जब तक शिष्य को पूरा उपदेश न दे लेना, तब तक उससे कोई भेंट न लेना।"

(30)

भगवती ने हँसते हुए कहा, 'नहीं हुआ, तेरा स्वर सहज नहीं है। इसमें आदर और श्रद्धा अधिक है, ममता कम है। तू मुझे ब्रह्मवादिनी समझकर आदर दे रही है। जानती है बेटा, एक मातृ–पितृ–हीन किशोर मुझे रास्ते में मिल गया। बड़ा ही भोला। वन में रहकर तप करता रहा। उसे पता नहीं था कि पुरुष और स्त्री में क्या भेद है। विचारे ने कभी किसी स्त्री को देखा ही नहीं था। उसने जीवन में पहली बार एक लड़की को देखा था। उसी ने उसे बताया कि स्त्री पदार्थ क्या होता है। दूसरी स्त्री मैं मिल गयी। कहने लगा, 'आपको क्या कहकर सम्बोधित करूँ?' मैंने कहा, 'तेरी उमर के लड़के मेरी उमर की स्त्री को माँ कहकर पुकारते हैं।' उसने मान लिया। जब वह माँ कहकर पुकारता है तो हिया जुड़ा जाता है। अपने पेट का जाया भी उस सहज–भाव से माँ नहीं कहता होगा। हिया जुड़ा जाता है बिटिया, इतना बड़ा हो गया है, पर छोटे शिशु की तरह आज्ञा मानकर चलता है। भगवान् ने मुझे कोई सन्तति नहीं दी, पर जीवन–भर ब्रह्मवादियों के साथ आत्मतत्व की चर्चा करने के बाद भी मेरी यह लालसा नहीं गयी कि कोई माँ कहकर पुकारे। उसे भेजकर भगवान् ने मेरी यह लालसा पूरी कर दी है। स्त्री माँ बनकर ही चरितार्थ होती है, बेटी! तू भी उसी की तरह मुझे माँ कहकर पुकारेगी तो मुझे अपार सुख मिलेगा। मगर तू अभी उसके समान सहज नहीं हो पा रही।

(31)

पति की कामना के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए पति प्रिय होता है; पत्नी की कामना के लिए पत्नी प्रिय नहीं होती, अपने आत्मा की कामना के लिए पत्नी प्रिय होती है; पुत्रों की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए पुत्र प्रिय होते हैं; वित्त की कामना के लिए वित्त प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए वित्त प्रिय होता है; ब्रह्मशक्ति की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए ब्रह्म प्रिय होता है; क्षात्र शक्ति की कामना के लिए क्षत्र प्रिय होता, अपने आत्मा की कामना के लिए क्षत्र प्रिय होता है; लोकों की कामना के लिए लोक प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए लोक प्रिय होते हैं; देवों की कामना के लिए देव प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए देव प्रिय होते हैं; भूतों की कामना के लिए भूत प्रिय नहीं होते, अपने आत्मा की कामना के लिए भूत प्रिय होते हैं; इस सब–कुछ की कामना के लिए सब–कुछ प्रिय नहीं होता, अपने आत्मा की कामना के लिए यह सब–कुछ प्रिय होता है। जिस आत्मा के लिए यह सब–कुछ प्रिय होता है, वह आत्मा ही तो द्रष्टव्य है, श्रोतव्य है, मन्तव्य है, निदिध्यासितव्य है– उसी को देख, उसी को सुन, उसी को जान, उसी का ध्यान कर! मैत्रेयी! आत्मा के ही देखने से, सुनने से, समझने से और जानने से सब गांठें खुल जाती हैं।

(32)

आज सविता प्रसन्नोदय हैं। आहा, कैसी आनन्द–लहरी तुम्हारी द्रिव्य काया से फूट रही है! दिव्य प्राणी! तुम्हारा स्पर्श कितना मीठा है, तुम्हारी वाणी कितनी मनोहर है, दिव्य–आनन्द की स्रोतस्विनी, मेरा प्रणाम स्वीकार करो! सुवता ने ऋषि के चरणों को अपने काले मसृण केशों से पोंछ दिया। उसकी आंखों से अश्रुधारा फूट पड़ी– "हाय, ऋषि–कुमार, तुम्हारे मुंह से कैसी वाणी निकल रही है! ऐसी सत्य वाणी आज तक नहीं सुनी। चाटूक्तियाँ बहुत सुनी हैं। पर ऐसा सच्चा मोहन–स्तव

तो मेरे अन्तर्यामी ने कभी नहीं सुना। आज मेरा नारी–शरीर धन्य हुआ! मगर उधर मत देखो। हे ज्वलन्त अग्नि, इन पापीयसी स्त्रियों की विषाक्त दृष्टि की छवि तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं मरकर भस्म बनकर तुम्हारे ऊपर छा जाऊँगी, पर पापिनियों के कटाक्ष की हवि तुम पर नहीं पड़ने दूँगी। प्रभो, मैं धन्य हुई।

(33)

परन्तु जानना ही काफी नहीं है। आदमी बहुत–सी बातें जान जाता है। जानी हुई बात को ठीक–ठीक आचरणों में ले आना वास्तविक धर्म है, इसलिए बुद्धि का एक दूसरा और विकसित कार्य है वैराग्य। जो चीज गलत है उसका त्याग वैराग्य का लक्षण है। कई बार आदमी जानता है कि अमुक बात झूठ है और अमुक बात सच है, फिर भी वह झूठ को छोड़ नहीं पाता। विवेक उसे हो जाता है, लेकिन वैराग्य नहीं होता। विवेक से सत्य और असत्य का भेद खुल जाता है; वैराग्य से असत्य को परित्याग करने की शक्ति मिलती है। असत्य को छोड़ देने पर केवल सत्य ही बचता है; इसीलिए कभी–कभी पुराण–ऋषियों ने असत्य का त्याग करने का ही उपदेश दिया है। उनके मत से सत्य स्वयंसिद्ध है।

(34)

रैक्व को जान पड़ा कि उसे स्नेह–स्पर्श से वे एकदम नये प्रकाश–लोक में पहुँच गये हैं। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि विराट् जड़ पिण्ड के अन्धकार में रुद्ध चैतन्य धीरे–धीरे अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ रहा है। वह पहले प्राण–रूप में, फिर मन–रूप में, फिर, सूक्ष्म–से–सूक्ष्म रूपों की ओर विकसित होता चला जा रहा है। अन्धकार उसका मार्ग नहीं रोक पा रहा है। जड़ता उसे नीचे की ओर नहीं खींच सकी है, अवरुद्ध चेतना उसे पीछे की ओर नहीं धकेल पा रही है। अद्‌भुत प्रकाश की ओर वह निरन्तर बढ़ता चला जा रहा है। जिस प्रकार पौधा पहले अंकुर के रूप में, फिर शाखा व पत्र के रूप में निकलता है और अन्त में उसके मनोहर फल निकल आते हैं। कली की एक–एक पपड़ी फूट रही है– रूप, रस, गन्ध के रूप में, नाना वर्णों की छटा के रूप में। अपने विकास का कार्य साफ दिखायी दे रहा है। दूर तक उज्ज्वल प्रकाश ऊपर से नीचे की ओर और नीचे से ऊपर की ओर जा रहा है। फूल खिल रहा है, विकसित भी हो रहा है, पर मार्ग अवरुद्ध नहीं हुआ है।

(35)

ये महात्मा सब तरह से विचित्र हैं। ब्राह्मण नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्म या वेद किसी के कायल नहीं हैं। ब्रह्म या वेद को चरम और परम माननेवाले ब्राह्मण महात्मा 'ऋषि' कहे जाते हैं, लोग इन्हें 'मुनि' कहते हैं। न आश्रम के लोग इनकी विशेष परवा करते हैं, न ये आश्रमवालों की। ये अपने को अनेकान्तवादी बताते हैं। कहते हैं, हर आदमी का सत्य अपना और निजी होता है। किसी के भी बताये मार्ग पर आंख मूंदकर नहीं चला जा सकता है। हर व्यक्ति का अपना सत्य है, उसी की खोज करनी चाहिए। प्रत्येक आत्मा अपने सत्य पर अचल रहकर परमात्म–पद पा सकता है। वे अपने श्रम से उत्पन्न अन्न ही ग्रहण करते हैं, किसी का दिया कुछ नहीं लेते। महर्षि औषस्तिपाद पर इनकी अपार श्रद्धा है। उन्हीं से मिलने कभी–कभार आ जाते हैं। मिलने पर दोनों में कोई बातचीत नहीं होती। केवल हाथ जोड़ देते हैं और उनके जुड़े हाथों को महर्षि अपने हाथों में ले लेते हैं। दोनों चुपचाप घण्टों बैठे रहते हैं और फिर एकाएक उठकर चल देते हैं। अभी तक महर्षि से मिल नहीं पाये हैं। इसीलिए यहाँ बैठे हैं। रैक्व को कुतूहल हुआ। उत्सुकतापूर्वक बोले, "क्या मुझसे भी नहीं बोलेंगे?"

हे राजन्! 'अधिदैवत' अर्थात् 'ब्रह्माण्ड' की दृष्टि से वायु ही 'संवर्ग' है, सबको अपने भीतर समा लेनेवाली है। जब आग बुझती है तो वायु में ही लौट जाती है, जब सूर्य अस्त होता है तो वायु में ही लौट जाता है, जब चन्द्र अस्त होता है तो वह भी वायु में ही लौट जाता है। जब पानी सूखते हैं तो वायु में ही लौट जाते हैं, वायु ही इन सबका संवरण करता है, इन सबको ढाँप लेता है। यह अधि–दैवत, अर्थात् ब्रह्माण्ड की दृष्टि से वर्णन हुआ।

"अब 'अध्यात्म' अर्थात् 'पिण्ड' की दृष्टि से सुनो। पिण्ड, अर्थात् शरीर की दृष्टि से प्राण ही 'संवर्ग' है, वह सब इन्द्रियों को अपने भीतर समा लेनेवाला है, जब मनुष्य सोता है तो वाणी प्राण को ही लौट जाती है, प्राण को ही चक्षु, प्राण को ही श्रोत्र, प्राण को ही मन लौट जाता है, प्राण ही इन सबका संवरण करता है, इन सबको ढाँपता है। इसलिए 'संवर्ग' अर्थात् लय–स्थान दो ही हैं– ब्रह्माण्ड के देवों में 'वायु' तथा पिण्ड की इन्द्रियों में 'प्राण'।

9.4 इकाई सारांश

इसमें व्याख्या के अवतरणों को स्पष्ट किया गया है–

1. वे अवतरण लिए गए हैं, जो छात्रों के ज्ञान और पढ़न–पाठन में अभिरुचि पैदा करने वाले हैं।
2. व्याख्या अंश के अंतर्गत आने वाले गूढ़ संदर्भों को सरल भाषा में व्यक्त किया गया है।
3. व्याख्या की सरल रीति को अपनाया गया है।
4. अंत में विशेष दिया गया है।

9.5 अपनी प्रगति जाँचिए

गद्यांश 21 से 35 तक की व्याख्या दिए गए उदाहरणों (गंद्याश 1 से 20) के अनुसार कीजिए।

9.6 नियत कार्य / गतिविधियाँ

सम्पूर्ण उपन्यास का अध्ययन करिए और उसमें आए विशेष गद्यांशों को लिखकर व्याख्या करें।

9.7 चर्चा तथा स्पष्टीकरण के बिन्दु

चर्चा के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

स्पष्टीकरण के बिन्दु

....

....

....

....

....

....

....

....

....

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. अनामदास का पोथा – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी।

म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

चतुर्थ खण्ड : **'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक'**

इकाई	**1**	**–कफन**	: **प्रेमचन्द**
इकाई	**2**	**–पत्नी**	: **जैनेन्द्र कुमार**
इकाई	**3**	**–गैंग्रीन**	: **अज्ञेय**
इकाई	**4**	**–दिल्ली में मौत**	: **कमलेश्वर**

लेखक

डॉ. धीरेन्द्र शुक्ला

विभागाध्यक्ष – हिन्दी

शासकीय महात्मा गाँधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय

इटारसी, मध्यप्रदेश

सम्पादक

डॉ. प्रेम भारती

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

चतुर्थ खण्ड : **कथान्तर : सम्पादक– परमानन्द श्रीवास्तव**

खण्ड परिचय–

एम. ए. उत्तरार्ध हिन्दी के षष्ठम प्रश्न पत्र 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' का चतुर्थ खण्ड 'कथान्तर : सम्पादक– परमानन्द श्रीवास्तव' पर आधारित है।

इस खण्ड में निम्न कहानियाँ सम्मिलित है जिनका विभिन्न इकाई के अन्तर्गत सविस्तार अध्ययन करेंगे–

इकाई	1	–	कफन	:	प्रेमचन्द
इकाई	2	–	पत्नी	:	जैनेन्द्र कुमार
इकाई	3	–	गैंग्रीन	:	अज्ञेय
इकाई	4	–	दिल्ली में एक मौत	:	कमलेश्वर

इकाईयों के विस्तृत अध्ययन से पूर्व संक्षेप में यह स्पष्ट कर दें कि प्रत्येक इकाई में किन.किन महत्वपूर्ण मुद्दों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। कहानी से अभिप्राय, उसमें अभिव्यक्त समस्याएं, मानवीय प्रवृत्तियाँ, पति.पत्नि सम्बन्धों की जटिलता, पारिवारिक विघटन, सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक सरोकार, नारी की स्थिति, व्यक्तित्ववादी संघर्ष तथा कहानी कला के आधार पर कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत खण्ड में सम्मिलित कहनियाँ परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास किया गया है।

इकाई–1 प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' पर आधारित है। प्रेमचन्द को अपनी कहानियों के माध्यम से मुख्यतया ग्राम.जीवन का चितेरा माना जाता है। यह कहानी भी भारतीय ग्राम.जीवन की समग्र सांस्कृतिक और सहज मावनीय चेतना के धरातल पर लिखी गई है। इसको पढ़ने से युगों.युगों से सामन्ती परम्पराओं की विकराल छाया में पलने वाले ग्रामों और ग्रामजनों में अनवरत ढह रहे मावनीय मूल्यों, परिस्थितियों, अनवरत् वृद्धि पा रही हृदय.हीनता, जीवित मानव की उपेक्षा और मुर्दों के संस्कारों, जैसी स्थितियों का अत्यन्त हृदयहारी, प्रभावी और यथार्थ रूप हमारे सामने साकार हो उठता है। घीसू और माधव द्वारा प्रसव वेदना से तड़प रही घर की नारी की कुछ आलुओं के लिए उपेक्षा, बाद में कफन के लिए जुटाए पैसों से शराब पी जाना, उस दौर में किसी जमींदार द्वारा दी गई दावत की घीसू द्वारा चटखारे लेकर वर्णन करना आदि सभी बातें कहानी की मूल संवेदना की ओर संकेत करने वाली है।

इकाई–2 जैनेन्द्र की कहानी 'पत्नी' पर आधारित है। जैनेन्द्र की कहानियों का मुख्य स्वर है चिन्तन। मनोविश्लेषणशास्त्र के आधार पर इन्होंने स्त्री पुरूष के सम्बन्धों को नई दृष्टि से देखा। इनकी कहानियों का विषय पारिवारिक होता है। मानसिक संघर्ष में सामाजिक वातावरण बहुत क्षीण है तथा मानसिक संघर्ष को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार जैनेन्द्र ने व्यक्ति को सामाजिक सन्दर्भ में न देखकर उसे स्वतन्त्र वैयक्तिक सत्ता प्रदान कर उनके संक्रान्त मनः स्थिति, मानसिक संघर्ष, मनोविकारों, मनोभावों और सन्त्रास का विश्लेषण किया है। 'पत्नी' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है जिसमे एक भारतीय पत्नी के उलझे भाव को अभिव्यक्ति प्राप्त हुयी है। प्रस्तुत कहानी मे सुनन्दा और कालिन्दीचरण पति.पत्नी है। उनका एक बच्चा था जिसे वे खो चुके हैं। कालिन्दीचरण एक सच्चे देशभक्त हैं वे अहिंसा के मार्ग पर चलकर अपने देश को स्वतन्त्र कराना चाहते है और देश के प्रति अपने कर्तव्य निर्वहन में अपना सारा समय व्यतीत करते हैं परिणामस्वरूप वे अपने पारिवारिक कर्तव्यों तथा पत्नी के तरफ उदासीन हो जाते है। सुनन्दा अपने पति से अपने लिये समय चाहती, वह पति से बात करना चाहती है, परन्तु पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से वह खिन्न हो जाया करती है। कभी पति के लापरवाही के कारण बच्चा खोने की बात से दुखी हो जाती है, तो कभी अपने प्रति तथा कभी स्वयं के प्रति पति की उपेक्षा से नाराज हो जाती है। ऐसे में सुनन्दा कभी भी उग्र रूप धारण नहीं करती और मौन रहकर पति का विरोध करती है। पति से नाराज होने के बाद भी वह पति की चिन्ता करती है तथा एक पतिव्रता, संस्कारी पत्नी के कर्तव्यों का निर्वहन करने में अपना सौभाग्य समझती है। इस प्रकार 'पत्नी' कहानी में एक पत्नी के घुटन, सन्त्रास मानसिक संघर्षों, उसके मनोभावों की सशक्त प्रस्तुति की गयी है।

इकाई–3 अज्ञेय की कहानी 'गैंग्रीन' पर आधारित है। यह कहानी बाद में 'रोज' शीर्षक से प्रकाशित हुयी। अज्ञेय व्यक्तिमन के कथाकार है। 'गैंग्रीन' उनकी उत्कृष्ट रचना है जिसमें उन्होंने बाह्य एवम् मानसिक परिवेश को चित्रित किया है। 'गैग्रीन' शहर के चकाचौंध से दूर पहाड़ी प्रदेश के गांव में निवास करने वाले ऐसे परिवार की कहानी है जिसके सभी पात्रों के जीवन से उमंग गायब सा है। गाँव की धीमी सुस्त जीवन शैली, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं का अभाव, परिवेश का उबाउपन, लगातार एक जैसी जीवनशैली के कारण मालती एवम् उसके पति के जीवन में नीरसता छा जाती है लेकिन बचपन की चुलबुली मालती इस नीरसता को अपने जीवन में उतार लेती है और इसी कारण घरेलू कार्यो को समयानुसार निबटाने की कर्तव्य परायणता का निर्वाह करती नजर आती है। उसके अपने भाई का आना भी उसके ठहरे जीवन में कोई उत्साह नहीं ला सकता। एक जैसी दिनचर्या से उसकी भावनाएं इतनी खण्डित हो चुकी है कि बच्चे का रोना, सोते हुए पलंग से गिर पड़ना उसे दैनिक जीवन का हिस्सा लगने लगता है जिससे न तो वह विचलित होती है और न ही उत्तेजित। संज्ञाहीन सी निरन्तर अपने कार्य करते जाना और समय के कट जाने का यन्त्रवत् इन्तजार करते एक स्त्री के अन्तर्मन को समझाने का एक बहुत ही सशक्त प्रयास इस कहानी के माध्यम से अज्ञेय ने किया है।

इकाई–4 कमलेश्वर की कहानी 'दिल्ली में एक मौत' पर आधारित है कमलेश्वर की कहानियों में परिवर्तित सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण एवम् अनुभूति की सच्चाई बड़ी गहराई से व्यक्त हुयी है। समय के परिवर्तन के साथ.साथ समाज में और व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों में आए परिवर्तन को कमलेश्वर ने अनेक दृष्टिकोणों से देखा समझा और अपनी कहानियों में उद्घाटित किया है। नगरीय जीवन के सन्दर्भ में मानवीय सम्बन्धों का बिखराव, बनावटी जीवन, खोखलापन, स्वार्थपरकता, अवसरवादिता, सम्वेदनशून्यता और विवशता को कमलेश्वर ने बड़े सशक्त ढंग से 'दिल्ली में एक मौत' कहानी के माध्यम से चित्रित किया है। प्रस्तुत कहानी के पात्र महानगर के यान्त्रिकता और तेज भागती जिन्दगी में सम्वेदना रहित होकर बनावटी जीवन जीते व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। दिल्ली में एक व्यक्ति की मौत हो जाने पर उसके करीबी और परिचितों को उस मृत व्यक्ति से तथा उसके परिवार से किसी प्रकार की सम्वेदना नहीं होती और वे उसके अन्तिम यात्रा में शोकग्रस्त होकर नहीं बल्कि दिखावे के लिये शामिल होते हैं और इसलिये अन्तिम यात्रा में इस प्रकार की तैयारी से जाते हैं, जिससे कि वे वहीं से अपने दैनिक कार्यक्रमों के लिये जा सके। इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में महानगर की यान्त्रिक जीवन और अपने परिचित या करीबी के मौत से भी सम्वेदनहीनता, महानगर के जीवन की स्वार्थपरकता, सम्बन्धों में खोखलापन को कमलेश्वर ने व्यक्त किया है। सभी इकाईयों में बोध प्रश्न दिए गए है। अध्ययन के पश्चात् बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए और खण्ड के अन्त में दिए उत्तरों से उनका मिलान कीजिए। यदि आपके उत्तर सही ना हो तो इस अध्ययन सामग्री का पुनः ध्यानपूर्वक पठन करें और बोध प्रश्नों के सही उत्तर देने का प्रयास करें। इस खण्ड के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि आप इस खण्ड में शामिल कहानियों का अध्ययन अवश्य कर लें।

कफन :प्रेमचन्द

सरंचना –

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 कथा सम्राट प्रेमचन्द : संक्षिप्त परिचय

1.4 'कफन' का संक्षिप्त सारांश

1.5 'कफन' की मूल संवेदना

1.6 'कफन' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

1.6.1 कथानक

1.6.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण

1.6.3 वातावरण

1.6.4 भाषा शैली

1.6.5 कथोपकथन

1.6.6 उद्देश्य और संवेदना–

1.7 'कफन' का यथार्थवाद

1.8 सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह

1.9 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

1.10 मानवीय दुर्बलताओं का चित्रण

1.11 व्यापक जीवन की समावेश

1.12 व्याख्या खण्ड

1.13 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

1.14 सारांश

1.15 अपनी प्रगति जाँचिए

1.16 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1.17 स्पष्टीकरण के बिन्दु

1.18 चर्चा के बिन्दु

1.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की प्रथम इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- कहानीकार प्रेमचंद के कहानी कला को समझ पाएंगे।
- 'कफन' कहानी के मूल कथ्य को जान पाएंगे।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'कफन' कहानी की समीक्षा कर पाएंगे।
- 'कफन' कहानी में व्यक्त यथार्थ को जान पाएंगे।

1.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की प्रथम इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत कहानीकार प्रेमचन्द के जीवन, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

प्रेमचन्द को अपनी कहानियों के माध्यम से मुख्यतया ग्राम.जीवन का चितेरा माना जाता है। 'कफन' कहानी भी भारतीय ग्राम.जीवन की समग्र सांस्कृतिक और सहज मावनीय चेतना के धरातल पर लिखी गई है। इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'कफन' कहानी की समीक्षा, कफन कहानी के मूल कथ्य, एवम् कहानी में व्यक्त यथार्थ पर प्रकाश डाला गया है।

1.3 कथा सम्राट प्रेमचन्द : संक्षिप्त परिचय

प्रेमचन्द के उपनाम से लिखने वाले धनपत राय श्रीवास्तव हिन्दी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक हैं। उन्हें मुंशी प्रेमचन्द व नवाब राय नाम से भी जाना जाता है और उपन्यास सम्राट के नाम से सम्मानित किया जाता है। इस नाम से उन्हें सर्वप्रथम बंगाल के विख्यात उपन्यासकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने संबोधित किया था। प्रेमचन्द ने हिन्दी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परम्परा का विकास किया जिस पर पूरी सदी का साहित्य आगे चल सका। इसने आने वाली एक पूरी पीढ़ी को गहराई तक प्रभावित किया और साहित्य की यथार्थवादी परम्परा की नींव रखी। उनका लेखन हिन्दी साहित्य एक ऐसी विरासत है जिसके बिना हिन्दी का विकास संभव ही नहीं था। वे एक सफल लेखक, देशभक्त नागरिक, कुशल वक्ता, जिम्मेदार संपादक और संवेदनशील रचनाकार थे। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जब हिन्दी में काम करने की तकनीकी सुविधाएं नहीं थी इतना काम करने वाला लेखक उनके सिवा कोई दूसरा नहीं हुआ। प्रेमचन्द के बाद जिन लोगों ने साहित्य को सामाजिक सरोकारों और प्रगतिशील मूल्यों के साथ आगे बढ़ाने का काम किया, उनके साथ प्रेमचन्द की दी हुई विरासत और परम्परा ही काम कर रही थी। बाद की तमाम पीढ़ियों, जिसमें यशपाल से लेकर मुक्तिबोध तक शामिल है, को प्रेमचन्द के रचना कर्म ने दिशा प्रदान की।

प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के निकट लमही गांव में हुआ था। उनकी माता का नाम आनंदी देवी था तथा पिता मुंशी अजायबराय लमही में डाकमुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू, फारसी से हुआ और जीवन यापन का अध्यापन से। 1998 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी 1910 में इंटर पास किया और 1919 में बी. ए. पास करने के बाद स्कूलों के डिप्टी सब–इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहाँत हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। वे आर्य समाज से प्रभावित रहे, जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया और 1906 में दूसरा विवाह अपनी प्रगतिशील परम्परा के अनुरूप बाल–विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संताने हुई–श्रीमत राय, अमृतराय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1910 में उनकी रचना सोजे–वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने को आरोप लगाया। सोजे–वतन की सभी प्रतियां ज़ब्त कर नष्ट कर दी गई। कलेक्टर ने नवाबराय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचन्द, धनपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होने वाली ज़माना पत्रिका के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचन्द नाम से लिखने की सलाह दी। इसके बाद वे प्रेमचंद के नाम से लिखने लगे। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रूप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लंबी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया।

प्रेमचन्द आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह माने जाते हैं। यों तो उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ 1901 से हो चुका था पर उनकी पहली हिन्दी कहानी 'सरस्वती' पत्रिका के दिसंबर अंक में 1915 में 'सौत' नाम से प्रकाशित हुई और 1936 में अंतिम कहानी 'कफन' नाम से। बीस वर्षो की इस अवधि में उनकी कहानियों के अनेक रंग देखने को मिलते हैं। उनसे पहले हिन्दी में काल्पनिक और पौराणिक धार्मिक रचनाएं ही की जाती थी। प्रेमचन्द ने हिन्दी में यथार्थवाद की शुरूआत की। "भारतीय साहित्य का बहुत सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता से उभरा चाहे वह दलित साहित्य हो या नारी साहित्य उसकी जड़ें कहीं गहरे प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देती हैं।" अपूर्ण उपन्यास 'असरारे मआबिद' के बाद देशभक्ति से परिपूर्ण कथाओं का संग्रह 'सोजे–वतन' उनकी दूसरी कृति थी, जो 1908 में प्रकाशित हुई। इस पर अँग्रेजी सरकार की रोक और चेतावनी के कारण उन्हें नाम बदलकर लिखना पड़ा। प्रेमचन्द नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' ज़माना पत्रिका के दिसंबर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' के कई खंडों में प्रकाशित हुई। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाते हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। 1921 में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर अपनी नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने 'मर्यादा' पत्रिका का संपादन भार संभाला, छः साल तक 'माधुरी' नामक पत्रिका का संपादन किया, 1930 में बनारस से अपना मासिक पत्र 'हंस' शुरू किया और 1932 के आरंभ में 'जागरण' नामक एक साप्ताहिक और निकाला। उन्होंने लखनऊ में 1926 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कहानी – लेखक की नौकरी भी की।। 1934 में प्रदर्शित मजदूर नामक फिल्म की कथा लिखी और कंट्रेक्ट की साल भर की अवधि पूरी किये बिना ही दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये क्योंकि बंबई (आधुनिक मुंबई) का और उससे भी ज्यादा वहाँ की फिल्मी दुनिया का हवा–पानी उन्हें रास नही आया । प्रेमचन्द ने करीब तीन सौ कहानियाँ कई उपन्यास और कई लेख लिखे। उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे और कुछ अनुवाद कार्य भी किया। प्रेमचन्द के साहित्यिक कृतियों का अंग्रेजी, रूसी, जर्मन सहित अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। गोदान उनकी कालजयी रचना है। कफन उनकी अंतिम कहानी मानी जाती है। तैतीस वर्षो के रचनात्मक जीवन में साहित्य की ऐसी विरासत सौंप गए जो गुणों की दृष्टि

से अमूल्य है और आकार की दृष्टि से असिमित है।

कृतियाँ

प्रेमचन्द की रचना दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपों में, अभिव्यक्त हुई। वह बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्करण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की किन्तु प्रमुख रूप से वह कथाकार है। उन्हें अपने जीवन काल में ही 'उपन्यास सम्राट' की पदवी मिल गयी थी। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से कुछ अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल–पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हे उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई, वह अन्य विधाओं से प्राप्त न हो सकी। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू भाषा दोनों में समान रूप से दिखायी है। उन्होंने 'रंगभूमि' तक के सभी उपन्यास पहले उर्दू भाषा में लिखे थे और कायाकल्प से लेकर अपूर्ण उपन्यास 'मंगलसूत्र' तक सभी उपन्यास मूलतः हिन्दी में लिखे। प्रेमचन्द कथा– साहित्य में उनके उपन्यासकार का आरम्भ पहले होता है। उनका पहला उर्दू उपन्यास (अपूर्ण) अ' असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' उर्दू साप्ताहिक '' आवाज – ऐ– खल्क'' में 8 अक्टूबर , 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उनकी पहली उर्दू कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन कानपुर से प्रकाशित होने वाली जमाना नामक पत्रिका में 1908 में छपी। उनके कुल 15 उपन्यास है, जिनमें 2 अपूर्ण है। बाद में इन्हें अनुदित या रूपान्तरित किया गया। प्रेमचन्द की मुत्यु केबाद भी उनकी कहानियों के कई सम्पादित संस्करण निकले जिनमें 'कफन' और शेष रचनाएँ 1937 में तथा नारी जीवन की कहानियाँ 1938 में बनारस से प्रकाशित हुए। इसके बाद प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियाँ तथा प्रेमचंद की प्रेम संबंधी कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय साबित हुई। नीचे उनकी कृतियों की विस्तृत सूची है।

प्रेमचन्द उर्दू का संस्कार लेकर हिन्दी में आए थे और हिन्दी के महान लेखक बने। हिन्दी को अपना खास मुहावरा और खुलापन दिया। कहानी और उपन्यास दोनों में युगान्तरकारी परिवर्तन परिवर्तन पैदा किए। उन्होंने साहित्य में सामयिकता प्रबल आग्रह स्थापित किया। आम आदमी को उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया और उसकी समस्याओं पर खुलकर कलम चलाते हुए उन्हें साहित्य के नायकों के पद पर आसीन किया । प्रेमचन्द से पहले हिन्दी साहित्य राजा–रानी के किस्सों, रहस्य रोमांच में उलझा हुआ था। प्रेमचन्द ने साहित्य को सच्चाई के धरातल पर उतारा। उन्होंने जीवन और कालखंड की सच्चाई को पन्ने पर उतारा। वे सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जमींदारी, कर्जखोरी, गरीबी, उपनिवेशवाद पर आजीवन लिखते रहे। प्रेमचन्द की ज्यादातर रचनाएं उनकी ही गरीबी और दैन्यता की कहानी कहती है। ये भी गलत नहीं है कि वे आम भारतीय के रचनाकार थे। उनकी रचनाओं में वे नायक हुए, जिसे भारतीय समाज अछूत और घृणित समझा था. उन्होंने सरल, सहज और आम बोल–चाल की भाषा का उपयोग किया और अपने प्रगतिशील विचारों को दृढ़ता से तर्क देते हुए समाज के सामने प्रस्तुत किया। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कहा कि लेखक स्वभाव से प्रगतिशील होता है और जो ऐसा नहीं है। वह लेखक नहीं है। प्रेमचन्द साहित्य के युग प्रवर्तक है। उन्होंने हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की एक नई परम्परा शुरू की।

विरासत

प्रेमचन्द ने अपनी कला के शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग किए। जिस युग में प्रेमचन्द ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था सिवाय बांग्ला साहित्य के। उस समय बंकिम बाबू थे, शरतचंद्र थे और इसके अलावा टालस्टॉय जैसे रूसी साहित्यकार थे। लेकिन होते–होते उन्होंने 'गोदान' जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है। उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया। जब भारत का

स्वतन्त्रता आंदोलन चल रहा था तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिन्दी और उर्दू दोनो भाषाओं को जो अभिव्यक्ति दी उसने सियासी सरगर्मी को, जोश को और आंदोलन को सभी को उभारा और उसे ताकतवर बनाया और इससे उनका लेखन भी ताकतवर होता गया। प्रेमचंद इस अर्थ में निश्चित रूप से हिन्दी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं। 1936 में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप में संबोधित किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। प्रेमचन्द ने हिन्दी में कहानी की एक परम्परा को जन्म दिया और एक पूरी पीढ़ी उनके कदमों पर आगे बढ़ी 50–60 के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, वो एक तरह से प्रेमचन्द की पंरपरा के तारतम्य में आती हैं प्रेमचन्द एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनके कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों समक्ष रखा। उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्यायें थी उन सभी को चित्रित करने की शुरूआत कर दी थी। उसमें दलित भी आते हैं, नारी भी आती है ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े विमर्श बने। प्रेमचन्द हिन्दी सिनेमा के सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यकारों में से हैं सत्यजित राय ने उनकी दो कहानियों पर यादगार फिल्में बनाई। 1966 में 'शतरंज के खिलाड़ी' और 1989 में 'सद्गति'। उनके देहाँत के दो वर्षों बाद के सुब्रमण्यम ने 1938 में 'सेवासदन' उपन्यास पर फिल्म बनाई जिसमें सुब्बालक्ष्मी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। 1966 में मृणाल सेन ने प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' पर आधारित 'ओका ऊरी कथा' नाम से एक तेलगु फिल्म बनाई जिसको सर्वश्रेष्ठ तेलगु फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार की मिला। 1963 में 'गोदान' और 1966 में 'गबन' उपन्यास पर लोकप्रिय फिल्में बनीं। 1980 में उनके उपन्यास पर बना टीवी ध ाारावाहिक 'निर्मला' भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

उपन्यास :

गोदान, सेवासदन, निर्मला, कर्मभूमि, मनोरमा, प्रेमाश्रम, गबन, मानसरोवर, रंगभूमि, वरदान,

प्रसिद्ध कहानियाँ

अन्धेरा, अनाथ लड़की, अपनी करनी, अमृत, अलग्योझा, आखिरी तोहफा, आखिरी मंजिल, आत्म–संगीत, . आत्माराम, आधार, आल्हा, इज्जत का खून, इस्तीफा, ईदगाह, ईश्वरीय, उद्धार, एक आंच की कसर, एक्ट्रेस, कप्तान साहब, कर्मों का फल, क्रिकेट मैच, कवच,. कातिल, कोई दुख न हो तो बकरी खरीद ला कौशल, खुदी, गैरत की कटार, गुलली डंडा, घमंड का पुतला, ज्योति, जेल, जुलूस, झांकी, ठाकुर, तेंतर, त्रिया–चरित्र, तांगेवाले की बड़, तिरसूल, दण्ड, दुर्गा मंदिर, देवी, देवी–एक और कहानी, दूसरी शादी, दिल की रानी, दो सखियाँ, धिक्कार, ध िक्कार–एक और कहानी, नेउर, नेकी, नबी का नीति–निर्वाह, नरक का मार्ग, नैराश्य, नैराश्य लीला, नशा, नसीहतों का दतर, नाग–पूजा, नादान दोस्त, निर्वासन, पंच परमेश्वर, पत्नी से पति, पुत्र–प्रेम, पैपुजी, प्रतिशोध, प्रेम–सूत्र, पर्वत–यात्रा, प्रायश्यित, परीक्षा, पूसी की रात, बैंक का दिवाला, बेटोंवाली विधवा, बड़े घर की बेटी, बड़े बाबू, बड़े भाई साहब, बन्द दरवाजा, बाँका जमींदार, बोहनी, मैकू, मंत्र, मंदिर और मस्जिद, मनावन, मुबारक बीमारी, ममता, माँ, माता का हृदय, मिलाप, मोटेराम जी शास्त्री, स्वर्ग की देवी, राजहठ, राष्ट्र का सेवक, लैला, वफा का खजर, वासना की कड़ियाँ, विजय, विश्वास, शंखनाद, शूद्र, शराब की दुकान, शांति, शादी की वजह, शान्ति, स्त्री और पुरूष, स्वर्ग की देवी, स्वांग, सभ्यता का रहस्य, समर यात्रा, समस्या, सैलानी बंदर, सवामिनी, सिर्फ एक आवाज, सोहाग का शव, सौत, होली की छुट्टी।

1.4 'कफन' का संक्षिप्त सारांश

स्वर्गीय प्रेमचन्द ने लगभग साढ़े तीन सौ कहानियाँ रच कर हिन्दी कहानी के भण्डार की अभिवृद्धि में अपना अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया। अपनी रचना.प्रक्रिया में 'कफन' उनकी अन्तिम कहानी स्वीकार की जाती है। प्रेमचन्द

को अपनी कहानियों के माध्यम से मुख्यतया ग्राम.जीवन का चितेरा माना जाता है। यह कहानी भी भारतीय ग्राम. जीवन की समग्र सांस्कृतिक और सहज मावनीय चेतना के धरातल पर लिखी गई है। इसको पढ़ने से युगों.युगों से सामन्ती परम्पराओं की विकराल छाया में पलने वाले ग्रामों और ग्रामजनों में अनवरत ढह रहे मावनीय मूल्यों, परिस्थितियों, अनवरत वृद्धि पा रही हृदय.हीनता, जीवित मानव की उपेक्षा और मुर्दों के संस्कारों, जैसी स्थितियों का अत्यन्त हृदयहारी, प्रभावी और यथार्थ रूप हमारे सामने साकार हो उठता है। कहानी का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार अंकित किया जा सकता है।

संक्षिप्त सारांश – अनवरत अभावों और गरीबी की निम्नतम सीमा.रेखा के भी नीचे पलने वाले घीसू और माधव दोनों बाप बेटा, दो पीढ़ियों के प्रतिनिधि अपनी झोपड़ी के द्वार पर बैठे अलाव की निरन्तर मन्द पड़ रही आग ताप रहे होते हैं। झोपड़ी के भीतर माधव की पत्नी प्रसव.पीड़ा से आकुल निरन्तर कराह रही होती है। परन्तु चाह कर और एक.दूसरे को अनुप्राणित करके भी बाप.बेटा दोनों में से कोई भी उसे देखने भीतर इस कारण नहीं जाना चाहता कि किसी के खेत से चोरी कर लाए गए जो आलू अलाव की आग में भूने रहे हैं, एक के जाने के बाद दूसरा उन्हें निकाल कर अकेला ही न खा जाए। परन्तु इस प्रकार की हीनतम मानसिकता को छिपाने के लिए दोनों बहानेबाजी से काम लेकर टाल जाना चाहते हैं। पिता घीसू के उकसाने पर, पुत्र माधव की क्या स्थिति है? लेखक के शब्दों में –माधव को भय था कि वह कोठरी में गया तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा।'' अतः वह बहाना बनाते हुए बोलाः

''मुझे वहाँ जाते डर लगता है।''
''डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ।'' घीसू ने कहाँ

पर माधव नहीं जाता। घीसू भी औचित्य का प्रश्न उठाकर प्रसव.वेदना से चीख.चिल्ला रही पुत्रवधु को देखने नहीं जाता है। माधव की यह चिन्ता भी परिवेशगत यथार्थ के अनुरूप उचित ही प्रतीत होती है कि –''मैं सोचता हूँ कोई बाल.बच्चा हो गया तो क्या होगा? सोठ, गुड़, तेल कुछ भी तो नहीं घर में।'' इस पर घीसू उत्तर भी परिवेशगत यथार्थ के अनुरूप ही देता है कि सब कुछ आ जाएगा। भगवान दें तो जो लोग अभी तक पैसा नहीं दे रहे हैं वे ही कल बुलाकर रूपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए घर में कभी कुछ भी न था, मगर भगवान ने किसी तरह बेडा पार ही लगाया। ''

इस प्रकार चमारों के कुनबे में बदनाम घीसू और माधव की ही दोहरी मानसिकता सामने नहीं आ जाती, बल्कि ग्राम परिवेश की समूची मानसिकता को रूपाकार मिलने लगता है। कहानीकार ने इस मानसिकताओं का विश्लेषण करते हुए ठीक ही लिखा है कि जिस ''समाज में रात.दिन मेहनत करने वालों की हालत उसकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।'' अतः कोठरी के भीतर प्रसव वेदना से पीड़ित हो अन्तिम घड़ियाँ गिन रही माधव की पत्नी की बात भूल दोनों चसकोरे लेकर भुने और जीभ के साथ चिपक जाने की सीमा तक गर्म आलू इस कारण खाते रहे कि दूसरा कहीं अधिक न चट कर जाए। इसके साथ.साथ घीसू स्मृतियों के आधार पर पहले के ठाकुरों की बारात आदि के अवसर पर उड़ने. मिलने वाली दावतों का भी चसकोरे लेकर वर्णन करता रहा। इसी बीच रात बीत गई और कोठरी से आह.कराह का स्वर आना भी बन्द हो गया। अब ''सवेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा तो उसकी स्त्री ठण्डी हो गई थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थी पथराई हुई आँखें ऊपर टंगी हुई थी। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी उसके पेट में बच्चा मर गया था।''

इस भूमिका के बाद कहानी का नामकरण या शीर्षक के अनुरूप वास्तविक भाग आरम्भ होता है। घीसू और माधव के रोने.चिल्लाने के स्वर सुन गाँव वाले आ जुटे और 'पुरानी मर्यादाओं के अनुसार इन अभागों को समझाने

लगे।' अब प्रश्न था, मृतक के अन्तिम संस्कार का, जबकि उनके घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोसले से माँस।' परन्तु घीसू और माधव यह बात अच्छी तरह जानते थे कि अब लोगों की करूणा उन्हें उनकी सहायता करने से रोक न सकेंगी यही हुआ। अनुनय.विनय करने पर गाँव के जमींदार ने अन्तिम संस्कार के लिए घीसू को दो रूपये दिये और "जब जमींदार साहब ने दो रूपये दिये तो, गाँव के बनिये.महाजनों को इन्कार का साहस कैसे होता? किसी न दो आने दिए किसा चार आने। एक घन्टे में घीसू के पास पाँच रूपये की अच्छी रकम जमा हो गई। कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी और दोपहर को घीसू और माधव बाजार से कफन लाने चले। इधर लोग बाँस काटने लगे।"

इसके बाद वस्तु.योजना और उसकी विकास प्रक्रिया में एक नया और असम्भावित सा प्रतीत होने वाला मोड़ आता है। मृतक का कफन लेने बाजार में पहुँचे घीसू और माधव की युग.युगों में भूखी चेतना देशी ठर्रे (शराब) की एक दुकान के सामने से गुजरते हुए मानवता के निम्नतम धरातल से भी नीचे उतर आती है। वे लोग यह तो सोचते हैं कि कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढांकने को चीथड़ा भी न मिले, उस मरने पर नया कफन चाहिए।

पर साथ ही यह विचार कि कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है। उन्हें एक दम भटका देता है। वे दोनों कफन के लिए मांग कर जुटाए रूपयों से शराब खरीद कर जी भर कर पीते है। इस समय उनकी आलोचनात्मक तीसरी आंख भी खुल जाती है और वे अजीब.अजीब तरह की दार्शनिक बातें करते रहते हैं। यह चेतना जागने पर कि लोगों ने कफन लेने भेजा है, खाली जाने पर जब पूछेंगे, तो क्या उत्तर देंगे? तो अपनी बन गई हीनतम् मानसिकता और अनुभव के आधार पर घीसू ठीक कहता है कि अबे, कह देंगे कि रूपये कमर से खिसक गए। बहुत ढूंढा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास तो न आएगा, लेकिन फिर वहीं रूपये देंगे। इस भावना और विश्वास ने घीसू और माधव दोनों को निश्चित कर दिया और वे लोग शराब के दौर में और भी डूब गए। नशे में जन्म.जन्मान्तरों के उन भूखों को उदार विचारवान भी बना दिया। उन्होंने पूरियों की पत्तल उठाकर सामने खड़े हो उन्हीं की ओर देख रहे भिखारी को दे दी और लेखक के शब्दों में देने के गौरव, आनन्द और उल्लास का उसने अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

इस प्रकार अपने अंतिम चरण में पहुंचते हुए कहानी मानव–चरित्रों की आन्तरिक इच्छा, आकांक्षा, दुर्बलता–सबलता आदि सभी का सांकेतिक अहसास करा जाती हैं। कहानीकार ने स्यात् इस मान्यता का ध्यान भी रखा है कि नशा कई बार व्यक्ति की दार्शनिक चेतना को भी झकझोर कर जगा दिया करता है। तभी तो भिखारी को पूरियों की पत्तल देने के बाद घीसू जब मरने वाली आशीर्वाद देने की बात कहता है, तो माधन आसमान की तरफ देख कर उठता है– 'वह बैकुण्ठ में जाएगी, दादा वह बैकुण्ठ की रानी, बनेगी।' तब खड़े हो उल्लास की लहरों पर तेरते हुए घीसू ने कहा– 'हाँ बेटा बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नही। मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुण्ठ में जागएी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते और मंदिरो में जल चढ़ाते हैं।' पर नशे के गुण–स्वभाव के अनुरूप ही माधव का भाव बदला, निराशा जागी और मृतक पत्नी के पति सदस्य माधव यह कहकर रोने लगा– 'मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुख भोगा। कितना दुख झेल कर मरी।' इस पर बेटे को आश्वस्त करते हुए घीसू कहता है कि 'क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया–जाल से मुक्त हो गई। जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्दी माया–मोह के बंधन तोड़ दिये? और शमसान वैराग्य की इस जागृति के बाद बाप–बेटा दोनों खेड़े होकर गाने लगे।

"ठगिनी क्यों नैना झपकावे। ठगिनी"

गाते–गाते नशे के दौर में दोनों नाचते भी लगे। उछलने कूदने और मटकने–भटकने लगे। अन्त में कफन मृतक तथा सभी कुछ भूल नशे में धुत होकर वहीं गिर पड़े। उनके गिरने के साथ ही कहानी का अन्त हो जाता है। उनका गिरना वस्तुतः विवश, युग–युगों से मज्जा तक घर कर गई भूख व्यवस्था से प्रताड़ित मानवता के चरम पतन की कहानी है। कहानीकार ने बताया है कि व्यवस्था दोष के कारण आज का आम आदमी काम चोर, हाड़–हराम तो बनता ही जा रहा है। वह नितान्त हीन होता जा रहा है। उसकी मानवीय चेतना, ज्ञानात्मक बुलबुले सभी कुछ को चिरन्तन भूख की समस्या ने अतीत के किसी खण्डहर की ध्वस्त रागिनी बनाकर रख दिया है और बस। आज की मानवता को सोचना है कि आखिर वह किधर जा रही हैं ? उसे किधर जाना हैं ?

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1. अपनी रचना.प्रक्रिया में 'कफन' प्रेमचन्द की कहानी स्वीकार की जाती है

   अ– प्रथम

   ब– अन्तिम

   स– तृतीय

   द– इनमें से कोई नहीं

   उत्तर– ....

2. प्रेमचन्द्र को अपनी कहानियों के माध्यम से मुख्यतया किसका चितेरा माना जाता है–

   अ– महानगरीय जीवन

   ब– शहरी जीवन

   स– ग्राम्य जीवन

   द– इनमें से कोई नहीं

   उत्तर– ....

प्रश्न 2 – घीसू और माधव दोनो में से कोई भी झोपड़ी के भीतर प्रसव वेदना से तड़प रही बुधिया को देखने क्यों नहीं जाते?

उत्तर– ....

....

....

....

प्रश्न 3 – अन्त में घीसू और माधव कफन, मृतक तथा सभी कुछ भूल नशे में धुत होकर वहीं गिर पड़े। उनका गिरना किस बात कर ओर संकेत करता है।

उत्तर– ....

....

....

....

1.5 'कफन' की मूल संवेदना

'कफन' स्वर्गीय प्रेमचन्द द्वारा रचित अन्तिम कहानी है, जिसका सृजन उन्होंने अपने स्वर्गवास से कुछ ही पहले किया था। उनके सम्पूर्ण प्रकाशित उपन्यासो में से 'गोदान' अंतिम उपन्यास है। इस अंतिम उपन्यास के सम्बन्ध में जिस प्रकार कहा जाता है कि आजीवन अभावों से जूझने वाले प्रेमचन्द उपन्यास के नायक होरी की मृत्यु पर उसकी पत्नी की अंतिम अर्जित पूंजी सवा रूपये का दान करवा वस्तुतः अपना ही गोदान कर गये, उसी प्रकार 'कफन' कहानी रच कर वह अपने लिये ही कफन जुटा पाने के ढंग की व्यवस्था कर गए। जो हो, जीवन भर अनवरत संघर्षरत रहते हुए भी कहानीकार प्रेमचन्द ने जिन अभावों का अत्यान्तिक तीव्रता के साथ अनुभव किया, भूख–प्यास को झेला, अपने आस–पास के मजदूर–कृषको के जीवन में भी अनुभव किया उसी सब को 'कफन' कहानी के माध्यम से पूर्ण आंतरिकता के साथ रूपाकार देने का प्रयत्न उन्होंने किया है।

यह तथ्य भी विशेष ध्यातव्य है कि अपने अंतिम उपन्यास 'गोदान' और इस अंतिम कहानी 'कफन' की रचना से पहले तक प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सर्जक रहे। पर इन दोनों सर्जनाओं में उन्होंनें अपने युग–युगों से पाले आदर्शो को तिल–तिल कर के स्खलित, बल्कि विनष्ट करते हुए दिखाया है। इन रचनाओं तक पहुंचते–पहुंचते प्रेमचन्द जी की आदर्शवादी आस्थायें पूर्णतया खण्डित हो चुकी थी। वे अपने बार आदर्शो की प्रक्रिया का क्रमशः विवश विघटन स्वयं अपने जीवन और जीवन के आस–पास देख चुके थे। कफन उनकी यथार्थवादी चेतना की ही एक प्रमुख या अंतिम देन है। इन मूल तथ्यों के आलोक में ही इस कहानी की मूल संवेदना, कथ्य आदि पर विचार कर, उस सबकी तात्विक समीक्षा उचित ढंग से की जा सकती हैं।

कफन मूल संवेदना– 'कफन' एक यथार्थवादी कहानी है। मूल रूप से इस कहानी में प्रेमचन्द ने उस व्यवस्था दोष को उजागर करने का सशक्त प्रयास किया है जिसने संघर्षरत रहने पर भी युग–युगों के भूखे प्यासे कर्मठ व्यक्ति को पनपने नहीं दिया। उल्टे अपनी आन्तरिक व्यवस्थागत बुराइयों, शोषणों, उत्पीड़नों के कारण आमजन को निकम्मा, कामचोर तो बना ही दिया है, साथ ही उसकी समस्त आन्तरिक, सहज मानवीय संवेदनायें भी छीन ली हैं। युग–युगों की शोषक–उत्पीड़क व्यवस्था ने मानव के मानवत्व को इस सीमा तक अधोगामी बना दिया है कि वह अपनों की मृत्यु तक को अपनी मुक्ति या क्षणिक तृप्ति का साधन बना पाने को विवश होकर रह गया है। घीसू और माधव द्वारा प्रसव वेदना से तड़प रही घर की नारी की कुछ आलुओं के लिए उपेक्षा, बाद में कफन के लिए जुटाए पैसों से शराब पी जाना, उस दौर में किसी जमींदार द्वारा दी गई दावत की घीसू द्वारा चटखारे लेकर वर्णन करना आदि सभी बातें इसी मनोवृति एवम् कहानी की मूल संवेदना को संकेतित करने वाली है। इस प्रकार कहानी की मूल संवेदना उस व्यवस्था दोष को ही माना जा सकता है, जिसने अपनी ह्रदयहीनता, शोषक मनोवृत्ति से मानव को न केवल काम–चोर बल्कि अत्यधिक ह्रदयहीन भी बना दिया है। इस आलोक में कहानीकार प्रेमचन्द का अपना मन्तव्य, जो कहानी के बीच में व्यक्त किया गया है, वह भी विशेष रूप से दर्शनीय एवम् उल्लेख्य है।

"जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वाले की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग जो किसानों की दुर्बलताओं का लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। घीसू की व्यवस्था दोष के कारण बन गई

मनोवृत्ति का उल्लेख करते हुए कहानीकार ने लिखा है कि ''उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है, तो कम से कम उसे किसानों कि सी जी–तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग फायदा तो नहीं उठाते।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि कहानीकार व्यवस्था–दोष को ही मूल संवेद्य के रूप में, कफन कहानी में उजागर करना चाहता है। उस व्यवस्था–दोष को, जिसने आमजन या मजदूर किसान को यह सोचने के लिये विवश कर दिया है कि जब हाड़–तोड़ काम करके भी, खून–पसीना बहाकर भी भूख, प्यास और फटेहाली ही पल्ले पड़नी है, तो फिर काम क्यों और किसके लिए किया जाए? इस मनोवृत्ति ने घीसू माधव जैसे व्यक्तियों को कर्म–विमुख और कामचोर तो बना ही दिया, उनके अन्तर में अभाव अभियोग–जन्य अनवरत भूख भी भर दी। भूखा व्यक्ति स्वभावतः विवेक शून्य हो जाया करता है। तब स्वभावतः उसके समस्त सोचों के दायरे और क्रिया–कलाप मात्र भूख मिटाने तक ही सीमित होकर रह जाया करते हैं। उस स्थिति में कोई अत्यन्त निकट भी–मरे या जिए उसकी उसकी बला से। उस मृतक के अन्तिम संस्कार के लिए जुटाए गये पैसे भी यदि उनकी युग युगान्तरों की भूखी लालसाओं की भट्टी की आग से जलकर राख हो जाए तो यह कोई अनहोनी या बड़ी बात नहीं। हमारे विचार में 'कफन' कहानी का सृजन इसी लक्ष्य, कथ्य या मूल संवेदना को आधार बनाकर किया गया।

'हिन्दी की कालजयी कहानियां' के सम्पादक पहाड़ी ने संग्रह के लेखक तथा उसकी रचना का परिचय शीर्षक के अन्तर्गत 'कफन' कहानी के तथ्य के सम्बन्ध में लगभग हमारी मान्यता के अनुरूप ही अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि– ''कफन का कथानक मानवीय दुर्बलताओं का सजीव चित्रण ही नहीं, वातावरण में भी गहरी वेदना मिलती है। यह भावना उभरती है कि मानव अमर है। इस दृष्टि में कहानी श्रेष्ठ लगती है, फिर भी पाठक के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या मानव इतना ओछा भी हो सकता हैं? इसका समाधान वह अपने में ढूंढता सा लगता है। लेखक का यह पक्ष निर्बल हो गया है।'' इस कथन की अंतिम बातों के साथ सहमत हो पाना संभव नहीं। वह इस कारण कि विद्वान आलोचक का ध्यान उस व्यवस्था दोष की ओर नहीं गया, जिसने मानव को इतना ओछा बनने की विवशता ओढ़ा दी है और जिसके आलोक में मानव की दुर्बलताओं का सजीव चित्रण ही नहीं, कहानी के वातावरण में भी गहरी वेदना मिलती है। आवश्यकता इस बात की है कि कहानी का पाठक ओछेपन का समाधान अपने में ढूंढने का प्रयत्न उस व्यवस्था में करें, जिसने मानव को यह सब दिया है। बाद में व्यक्ति यह भी सोच–ढूंढ सकता है कि उस व्यवस्था में दोषपूर्ण हो जाने में उसका अपना हाथ कितना और कहाँ तक है। तभी कहानी के मर्म को समझ, उसके सम्बन्ध में कोई उचित विचार बनाया जा सकता है और बनाया जाना चाहिए।

मानव अमर है यह भावना भी तभी सार्थक हो सकती है कि जब व्यवस्था दोषों का निराकरण कर मानव को जान बूझ कर मरते रहने, ओछेपन पर उतरते रहने को विवश न होना पड़े। कहानीकार प्रेमचन्द वस्तुतः कफन के पात्रों की मानसिकता में उभर आए ओछेपन को समग्र शक्ति से उभार यही कहना चाहते हैं और इसी कारण कहानी श्रेष्ठ है। कहानी में उभारा गया ओछापन और उसके कारण लेखक का यह पक्ष निर्बल हो गया है स्वीकार नहीं किया जा सकता। कहानी के अन्त में घीसू माधव की जागृत चेतना यद्यपि शमशान वैराग्य की ही परिचायक है, पर वह मानवता के सहज अन्तर को भी रूपाकार देने वाले है– उस सहज मन को कि जो व्यवस्था दोष के परिणाम स्वरूप भूखा नंगा, भीतर तक छूछा होकर अपनी ही हीनता की मदिरा के नशे में धूत होकर अन्त में नीचे गिर कर विनष्ट हो जाना चाहता है।

कहानी की समूची प्रक्रिया इसी मूल संवेदना को व्यंजित करने वाली है। माधव पत्नी का प्रसव वेदना से छटपटाते रहने पर भी घीसू या माधव द्वारा उसकी दशा देखने इस कारण न जाना कि पीछे दूसरा कहीं अधिक आलू न खा जाए, पत्नी की मृत्यु के बाद उन्हीं लोगों द्वारा उनकी आर्थिक एवम् अन्य प्रकार की सहायता करना कि जो उन्हें काम तक देना पसंद नहीं करते बल्कि दुत्कारते ही रहते हैं, घीसू द्वारा युग–युगों की भूख का परिचय

देने वाली किसी जमींदार की दावत की चर्चा करना, कफन लेने जाकर बाप बेटा द्वारा दारू पीने में व्यस्त हो जाना–फिर यह विश्वास व्यक्त करना कि जिन्होंने अब पैसे दिए है वे मृतक की माटी को भी ठिकाने लगा ही देंगे आदि सभी बातें मूलतः हमारी परम्परागत सामंती, शोषक, उत्पीड़क अमानवीय व्यवस्था दोष को ही उजागर करने वाली है। वहीं वस्तुतः अनवरत कर्मरत रहने वालो को भी भूखा नंगा और विवश रखकर मानवता को ओछेपन की ओर ढकेलने वाली है। अतः कुल मिलाकर 'कफन' कहानी के मूल संवेद्य कथ्य आदि को इन्हीं तथ्यों में देखा, खोजा और परिभाषित किया जा सकता है। यही इस कहानी का आन्तरिक यथार्थ भी है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– कफन लेने जाकर बाप बेटा द्वारा दारू पीने में व्यस्त हो जाना–फिर यह विश्वास व्यक्त करना कि जिन्होंने अब पैसे दिए है वे मृतक की माटी को भी ठिकाने लगा ही देंगे आदि सभी बातें क्या उजागर करती हैं?

उत्तर– ....

....

....

....

प्रश्न 2– कहानीकार मूल संवेद्य के रूप में, कफन कहानी में क्या उजागर करना चाहता है?

उत्तर– ....

....

....

....

1.6 'कफन' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

'कफन' स्वर्गीय प्रेमचन्द जी की अंतिम रचना है। उदात्त मानवीय गुणों एवम् आदर्शो पर विश्वास करने वाले कहानीकार प्रेमचन्द ने अपनी पूर्ववर्ती प्रायः सभी कहानियां किसी न किसी विशिष्ट आदर्श को सामने रख कर रची है। पर 'कफन' की रचना करते समय उन्होंने आदर्शो को पास तक फटकने नहीं दिया। जीवन के जीवन्त अनुभवों ने जिन कटु सत्यों और घोर यथार्थ से उनका अन्तरंग परिचय कराया था, उसी सबके आलोक में उन्होंने इस पूर्ण यथार्थवादी कहानी 'कफन' का सृजन किया है।

1.6.1 कथानक

कहानी का कथानक कामचोरी, अपने आप से अपनी मानवीयता की चोरी आदि भावों–विचारों से सम्बद्ध है। कोठरी के भीतर प्रसव वेदना से कराह कर दम तोड़ रही पत्नी या पुत्रवधू को देखने जाने के लिए पति या ससुर जाने को तैयार नहीं। वह पति, जो उस वेदना का एक प्रत्यक्ष एवम् सबल कारण है, घीसू के शब्दों में–"तु बेदर्द है बे! साल भर जिसके साथ सुख–चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई! वह माधव भी प्रसव वेदना से कराहती छटपटती पत्नी को देखने नहीं जाना चाहता। क्यों? बाप–बेटे के मन में एक ही चोर–वहीं, जिसने उन्हें निकम्मा, निठल्ला और पूरे समाज में त्याज्य बना दिया है, वहीं चोर छिपा है कि उनके जाने के बाद दूसरा बुझ रहे अलाव

से में भून रहे सारे आलू खा जायेगा। बस, वह तड़पती–छटपटाती रहती है, ये दोनों अलाव से निकल कर जीभ पर चिपक जाने की सीमा तक गर्म आलू छील–छीलकर खाते रहते हैं। साथ ही युग–युगों से भूखा पर अनुभवी पिता घीसू बेटे माधव को मानवीयता, पत्नी के प्रति कर्त्तव्य–परायणता का मात्र उपदेश भी देता रहता, जिसका असर बेटे पर तनिक नहीं होता। कारण? वहीं मन में छिपा चोर कि उसे भेजकर बाप घीसू सभी आलू स्वयं चट कर जाना चाहता हैं। घीसू उसे चटखारे लेकर अतीत में घटित किसी जमींदार की दावत का भी वर्णन करता है जिसमें स्यात् पहली बार बढ़िया खाना उसने जी भरकर खाया था। वैसा खाना खाने की बलवती लालसा उसके मन को आज भी कचोटती रहती है। जो हो, इनकी बातों के साथ होने वाली सवेरा माधव की पत्नी की मृत्यु का भी सन्देशा लेकर आता है। इस प्रकार कथानक का आरम्भ सहज मानवीय दुर्बल प्रवृत्तियों के अन्तर्गत अत्यन्त सजीव रूप से सामने आता हैं। वह कहानी की मूल सम्वेदना के सर्वथा अनुरूप बन पड़ता हैं।

इसके बाद आरम्भ होती है कथानक के आरोह या विकास की प्रक्रिया। यह वहाँ देखी जा सकती है कि जहाँ तक अपनी विवशताओं का रोना रोकर घीसू और माधव मृतका के अन्तिम संस्कार के लिए अनाज, लड़कियों आदि एकत्र करतें हैं और जमींदार तथा गाँव के बनियों–महाजनो से पाँच रूपये नकद जमा कर कफन लेने के लिए चले नहीं जाते। विकास की इस प्रक्रिया में कहानीकार ने गाँव के जमींदार घीसू माधव और ग्रामीण–जनों के पारस्परिक सम्बन्धों–व्यवहारों, ग्राम्यजनों की उदार या धर्मभीरू मानसिकता का भी पूर्ण परिचय दे दिया है। वह कहानीकार के इन शब्दों में स्पष्ट रेखांकित किया जा सकता है–''जमींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया कह दे, चल दूर हो यहाँ से। यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब गरज पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा हैं। हरामखोर कहीं का, बदमाश! लेकिन यह क्रोध या दण्ड का अवसर न था। जी में कुढ़ते हूए दो रूपये निकाल कर फेंक दिए। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकला। उसकी तरफ ताका भी नहीं। जैसे सिर का बोझ उतरा हो।........ जब जमींदार साहब ने दो रूपये दिये तो गाँव के बनिये महाजनों को इन्कार का साहस कैसे होता?........किसी ने दो आने दिए, किसी ने चार.......कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी....गाँव की नर्म दिल स्त्रियाँ आकर लाश को देखती थी.....'' इस प्रकार कथानक के विकास की प्रक्रिया अग्रसर होती है। कहानीकार ने दिखाया है कि घीसू ग्राम–जनों की मानसिकता को भली प्रकार जानता है, उसका बेटा माधव भी बाप से कम नहीं, अतः बाजार में पहुँच बाप–बेटा दोनों संयम नहीं रख पाते। भीतर जाकर, शराब की बोतल खरीद खूब पीते–खाते हैं। नशे में धूत् घीसू दार्शनिक भाव से कह उठता हैं–

''हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है, तो क्या उसे पुत्र न होगा?''

माधव श्रद्धा से झूककर तसदीक करता है– ''जरूर से जरूर होगा। भगवान, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला, वह कभी उम्र भर न मिला था।''

इस प्रकार कथानक के विकास की प्रक्रिया इस सीमा तक पहुँच उसे यह चरम परिणति प्रदान करती है कि युग–युगों की भूखी–प्यासी लालसाएँ जो– व्यवस्था ने दी हैं, कफन के लिए जुटाये गये पैसे दोनों उनकी भेंट चढ़ा देते हैं। इसके बाद अवस्था– स्थिति माधव के इस प्रश्न के साथ आरम्भ होती है कि–

''क्यों दादा, हम लोग भी तो एक–न–एक दिन वहाँ जायेंगे ही।.......जो वहाँ वह हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफन क्यों नहीं दिया, तो क्या कहेंगें?––– अनुभवी घीसू उसे आश्वासन देता है कि मृतका को कफन अवश्य मिलेगा और ''वही लोग देंगे, जिन्होंने अब की दिया। हाँ, अब की रूपये हमारे हाथ न आयेंगे'' इस प्रकार कहानीकार ने स्पष्ट किया है कि हमारी व्यवस्था में जीते व्यक्ति को रोटी–कपड़ा चाहे मिले न मिले, मरने पर लोग कफन–दफन की व्यवस्था अवश्य कर देते हैं। यही कथनीय योजना की चरम परिणति और उसके बाद होने वाली अवरोह की स्थिति है। इस अवरोह की स्थिति में ही नशे में धुत घीसू की चेतना में शमशान–वैराग्य मृतका के माया बन्धन से

छूटने जैसी विरक्ति मूलक बातें और माधव की चेतना में पार्थिव कर्तव्य भावना का अहसास जागता है, परन्तु अब बहुत देर हो चुकी होती है, और कथानकीय योजना का उपसंहार होकर एक सहज मानवीय व्यथा–पीड़ा एवम् सम्वेदना को जगा जाता है। व्यक्ति सोचने को विवश हो जाता है कि इस प्रकार मानव को कर्तव्यच्युत एवम् हृदयहीन बना देने वाली व्यवस्था आखिर कब तक चलती रहेगी? मानव–कल्याण के नारे और बड़ी–बड़ी आदर्शात्मक बातें इस व्यवस्था के चलते नितान्त व्यर्थ ही है। इसको आमूल–चूल बदले बिना मानवता का कल्याण कतई सम्भव नहीं।

1.6.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण

'कफन' कहानी में प्रेमचन्द ने दुर्बलताओं का सफल एवम् यर्थाथ चित्रण किया है। इसके पात्र स्वाभाविक है और उनका आधार मनोवैज्ञानिक है। घीसू और माधव समाज की आर्थिक विषमता में शोषित वर्ग के प्रतिनिधि है। उनके चरित्रों में शोषितवर्ग की विपन्नता और उपजीविता साकार हो गई है। इसमें तीन पात्र हैं–घीसू, माधव और बुधिया। इसमें भी घीसू का चरित्र मुख्य है। घीसू और माधव का चरित्र विकासित करने के लिए बुधिया का पात्र कहानी में दिया गया है। क्योंकि उसके निधन से ही उनके चरित्र का निखार होता है।

प्रेमचन्द ने इस दोनों का चरित्र व्याख्यात्मक शैली में न देकर ध्वन्यात्मक रूप में दिया है। दोनों ही कफन के लिए मिले रूपयों से पहले पेट भर खाना चाहते है। पर एक–दूसरे से कह भी नहीं सकते। इसकी चित्रण–कुशलता देखिये–

माधव बोला–"लकड़ी तो बहुत है अब कफन लेना चाहिये।"

"तो चलो कोई हल्का–सा कफन ले लें।"

"हाँ और क्या लाश ढोते रात हो जायेगी, रात को कफन कौन देखता है।"

"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते–जी तन ढ़ंकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।"

दोनों एक–दुसरे के मन की बात ताड़ रहे थे बाजार में इधर–उधर घूमते रहे। कभी इस दूकान पर, कभी उस दुकान पर। मगर कुछ जंचा नही, यहाँ तक कि शाम हो गयी, दोनों न जाने किस प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे और जैसे किसी पूर्व निश्चित योजना में अन्दर चले गए।

पात्रों की मनः स्थिति की यह सूक्ष्म विवेचन प्रेमचन्द की कुशल लेखनकला का स्पष्ट उदाहरण है।

कहानी में इस बाप–बेटा दोनों की मानसिक गढ़न एक जैसी ही दिखाई देती है। दोनों व्यवस्था–दोष से पीड़ित होकर सहज मानवीय मूल्यों एवम् स्तर में पतित हो जाने वाले उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो यह मानने लगा है कि जब काम करके भी भूखों मरने जैसी स्थिति में ही रहना है, तो फिर जी हल्का क्यों हो? इस मानवीय नियति एवम् उसके संकट को पहचान कहानीकार प्रेमचन्द ने एक व्यापक सन्दर्भ में दोनों पात्रों के अन्तः बाह्य चरित्रों को बड़ी कुशलता एवम् कलात्मकता के साथ उभारा है। दोनों के चरित्रों का समान्तर चित्रण करते हुए कहानीकार ने उचित ही लिखा है कि– "घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम। माधव इतना काम चोर था कि आधा घण्टा काम करता तो घन्टे भर चिमल पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थीं। घर में मुठ्ठी भर अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। कर्ज से लदे हुए गालियाँ भी खाते, मगर कोई भी गम नहीं। दीन इतने की वसूली की बिल्कुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ–न–कुछ कर्ज दे देते. ...." इस प्रकार की मानसिकता इन लोगों की क्यों बन गई थी, कहानीकार ने उसे भी स्पष्ट किया है कि जिस समाज में काम करने पर भी लोगों को भूखों मरना पड़ता हो काम न करने वाले चुस्त–चालाकों के ही वारे–न्यारे

हों, उस समाज में ऐसी मनोवृत्तियों–मानसिकताओं का बन जाना स्वाभाविक ही कहा जाएगा। इन्हीं तथ्यों के आलोक में इन दोनों पात्रों का यथार्थ चरित्रांकन किया गया हैं।

1.6.3 वातावरण

देशकाल और वातावरण का परिवेश कहानी को एक अनिर्वाय विश्वसनीयता प्रदान करती है। दरअसल देशकाल और वातावरण का परिवेश में ही अन्तर्भाव हो जाता है। देशकाल और वातावरण की दृष्टि से कफन कहानी पूरी तरह से सार्थक है। लेखक ने वातावरण निर्माण पर विशेष ध्यान दिया है। मधुशाला का यह दृश्य देखिये– "ज्यों ज्यों अंधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी मधुशाला की रौनक भी बढ़ती थी कोई डींग मारता था, कोई खाता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था, कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्लड़ लगाये देता था। वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकार चुल्लू में मस्त हो जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं या न जीते हैं न मरते हैं"

कहानी में कथ्य–कथानक के, उसकी मूल सम्वेदनाओं के सर्वथा अनरूप वातावरण की सृष्टि की गई है। वस्तुतः कहानी का आरम्भ ही वातावरण–चित्रण के साथ हुआ है–"झोपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों का एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हैं और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव–वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह–रह कर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थें जाड़ो की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई। सारा गाँव अन्धकार लय हो जाता था।" इस उद्धरण से वातावरण–चित्रण के अन्तः बाह्य दोनों रूप वस्तुतः उजागर जाते है। बुझा अलाव कथा–नायकों और उन जैसे अनगिनत लोगों की अन्तः बाह्य स्थितियो का प्रतीक परिचायक भी कहा जा सकता है। प्रकृति का सन्नाटा और गाँव का अन्धेरे लय होना जैसी बातें भी कहानी की मूल सम्वेदना, कथानकीय–योजना के अनुरूप वातावरण चित्रण की सफलता को व्यंजित करने वाली है। कहा जा सकता है कि कथानक के विकास की गति–दिशा को रूपाकार प्रदान करने में वातावरण–सृष्टि ने विशेष सहायता पहुँचाई है। माधव की पत्नी बुधिया के मरने पर गाँव वालों की प्रतिक्रियाएँ और क्रियाएँ वहाँ की समूची अन्तः व्यवस्था को उजागर करने वाली हैं। इसी प्रकार कफन लेने के लिए घीसू और माध ाव तथा शहर के बाजार और फिर शराब खाने के वातावरण को भी पात्रों–कथ्य की मूल भावना या प्रवृत्तियों के अनुरूप ही उभारा गया है। ये पंक्तियाँ विशेष दृष्टव्य हैं–

"वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए वे यहाँ भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते। या न जीते हैं, न मरते हैं।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि कहानी में हुआ वातावरण का चित्रण उस की मूल सम्वेदना कथानक एवम् पात्रों की मानसिकता को उजागर करने में पूर्ण सफल रहा है।

कहानी का वातावरण सजीव और मार्मिक है। इसमें आद्योपान्त मार्मिक करूणा भरी पड़ी है। गरीबों की दुर्दशा और उनकी मानसिक व्यथा के सजीव आकलन से वातावरण भी कारूणिक– सा हो गया है। पियक्कड़ों की दशा और मदहोशी का भी अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है। आरम्भ में ही वातावरण की सजीवता ध्वनित हो रही है। जाड़े की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई सारा गाँव अन्धकार में लय हो रहा था।

इस मौन वातावरण में रह–रहकर उठने वाली बुधिया की प्रसव–पीड़ा और भी करूणापूर्ण दृश्य अंकित कर देती है, ऊपर से घीसू और माधव की अकर्मण्यता और स्वयं खाने की फिक्र एक गहरा व्यंग्य छोड़ती है।

इसी तरह गरीब की मृत्यु पर चित्रित वातावरण में अन्य ग्रामीण स्त्रियों की दशा का वर्णन दृष्टव्य है।

''गाँव की नर्मदिल स्त्रियाँ आ आकर लाश को देखती और उसकी बेकली पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थी।'' यहाँ 'बेकली' शब्द वातावरण को सजीव कर रहा है।

1.6.4 भाषा शैली

प्रत्येक साहित्य विधा अपनी भाषा का स्वयं निर्धारण करती है। दुसरे शब्दों में कहें तो प्रत्येक साहित्य विध ाा की भाषा का एक अपना मिजाज होता है। इसलिए यदि हम तुलना करें तो पायेंगे कि उपन्यास की भाषा मे जहाँ विस्तार और स्फीति होता है वहाँ कहानी की भाषा में घनत्व और गरिमा होती है। कहानी में कहानीकार को गागर में सागर भरना होता है जबकि उपन्यास मे रचनाकार को सघन अथवा विस्तृत करने का पूरा अवकाश रहता है। इसलिए भाषा के प्रयोग में कहानीकार को विशेष सावधानी बरतनी होती है।

'कफन' की भाषा ने पुरानी कहानी की भाषा में निहित आर्दशवादिता और रोमानीपर के मुलम्मे को उतार फेंका। 'कफन' की भाषा ने पहली बार यर्थाथपरकता की पथरीली भूमि पर अपने पैर जमाये। भाषा की पात्रानुकूलता, यथार्थपरकता, सम्प्रेषण–क्षमता 'कफन' कहानी में देखते ही बनती है। भाषा की व्यंग्यात्मकता का एक उदाहरण लीजिए– ''दोनों इस वक्त शान से बैठे पुड़िया खा रहे थे जैसे जंगल मे कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फिक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।'' यहाँ एक ओर घीसू और माधव के प्रति हमारा मन वितृष्णा से भर उठता है तो दूसरी ओर उनके अबाध शोषण से हम करूणाभिभूत हो जाते है। यह भाषा की सशक्तता का ही प्रमाण है।

'कफन' कहानी की भाषा प्रेमचन्द की अन्य कहानियों के तरह आम बोल चाल की सरल–सुघड़ भाषा ही है। उसमें यत्र–मत्र मुहावरों, लोकोक्तियों आदि का प्रयोग भी देखा जा सकता है। वर्ण्य वस्तु विषय आदि को समग्रतः उभार पाने की क्षमता भाषा में स्पष्ट देखी जा सकती हैं। यह भी दृष्टव्य है कि किसी विशेष प्रकार के शब्दों के प्रयोग का आग्रह उनकी प्रयुक्त भाषा में कतई नहीं है। भाषा में वर्ण्य वस्तु का चित्र–सा प्रस्तुत कर देने, भावों–विचारों को अपनी आन्तरिकता मे सम्प्रेषित कर सकने की विशेषता एवम् गुण भी विद्यमान हैं। इन्हीं सब कारणों से प्रेमचन्द को भाषा का विशिष्ट शिल्पी कहा–स्वीकारा जाता है।

भाषा के समान 'कफन' कहानी की शैली भी सरल–सुबोध, इस पर भी विशेष प्रभावी है। अपनी अधिकांश कहानियों के समान इस कहानी में भी उन्होंने प्रमुखतः ऐतिहासिक वर्णनात्मकता की शैली को ही अपनाया है, पर आवश्यकतानुसार काफी मात्रा में सम्वादों की योजना ने इस शैली को न तो कोरा वर्णन ही बनने दिया है और न शुष्क–नीरस ही होने दिया है। एक सरल, सरस प्रवाह, तारतम्य, उत्सुकता, कौतूहल और रोचकता का आयाम सर्वत्र बना रहा है। छोटे किन्तु सभी प्रकार की अभिव्यंजनाओं मे समर्थ वाक्य–गठन की कुशलता का परिचय इस कहानी में भी यथेष्ठ मिल जाता है। बीच में सामान्य स्तर पर पूर्व दीप्ति–पद्धति का भी आश्रय लिया गया है। इसी का आश्रय लेकर घीसू माध्सव को किसी ठाकुर के बारात के अवसर पर डट कर खाने–पीने की कहानी सुनाता है। इस पद्धति का आश्रय लेकर ही कहानीकार को अपने पात्रों के चारित्रिक विशेषताओं को उजागर करने में विशेष सफलता मिल पाई हैं।

प्रेमचन्द के कहानी–शिल्प का एक दोष माना जाता है कि कई बार वे स्वयं बीच में उपस्थित हो ब्यौरे प्रस्तुत करने का उपदेश देने लगते हैं। यह दोष सामान्य रूप से इस कहानी में भी विद्यमान है। इसी प्रणाली का आश्रय लेकर उन्होंने व्यवस्था दोष और उसके कारण घीसू आदि की बनने वाली मानसिकता को व्यंजित किया है। इस दृष्टि से यह दोष वस्तुतः मिट जाता है। जो हो, भाषा शैली–शिल्प के धनी प्रेमचन्द ने कथ्य के यथार्थ के समान शिल्पगत यथार्थ को भी अपना कर अपने मंतव्य की अभिव्यंजना में पूर्ण सफलता पाई है।

1.6.5 कथोपथन

'कफन' कहानी के संवाद एक लड़ी की भाँति है, जो पात्रों की मनः स्थिति का बोध कराने के साथ–साथ कथानक को भी गाति देते है। पाठकों में उत्सुकता उत्पन्न करते हैं और कहानीकार प्रेमचन्द की कलात्मकता, वाक्‌टुता, सुक्ष्मता तथा सम्बद्धता का परिचय देते है।

पात्रों की मनः स्थिति का चित्रण– 'कफन' कहानी के संवाद पात्रों की मानसिक स्थिति और उनके आन्तरिक विचारों का सम्यक् परिचय देते है। यह चित्रण केवल संवादों के माध्यम से ही हो सकता है। घीसू और माधव की मनोव्यथा और अकर्मण्यता पर प्रकाश डालने वाला निम्न संवाद देखिये–

घीसू ने कहा–''मालूम होता है, बचेगी नहीं, सारा दिन दौड़ते हो गया। जा देख तो आ।''

माधव चिढाकर बोला, ''मरना ही है तो जल्दी मर क्यों नही जाती, देखकर क्या करूँ।''

''तू बड़ा बेदर्द है वे! सालभर जिसके साथ सुख–चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई ।''

मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ–पांव पटकना नहीं देखा जाता।

कथानक की गति – कुछ संवाद ऐसे है जिनके कथानक आगे बढता है और पाठकों में उत्सुकता जागृत होती है। एक उदाहरण देखिए–

''तू कैसे जानता है। उसे कफन न मिलगा, तू मुझे ऐसा गधा समझाता है क्या साठ साल दुनिया में घास खोदता रहा हुँ? उसको कफन मिलेगा और इससे बहुत अच्छा मिलेगा।''

माधव को विश्वास न आया, बोला, ''कौन देगा ?''

''वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ अबकी रूपये हमारे हाथ न आयेंगे।''

वहाँ संवादों में पात्रों का व्यक्तित्व भी है कथानक की गति भी। साथ ही रोचकता और सम्बद्धता भी कम नहीं है।

कथोपथनों की दृष्टि से 'कफन' कहानी पूरी तरह से सफल है। यहाँ सम्वाद चरित्र रेखाओं को और उभारते हैं। संक्षिप्तता और प्रभावोत्पादकता दोनों दृष्टियों से सम्वाद कहानी की संवेदना को सघन और मार्मिक बनाते हैं। घीसू और माधव के चरित्र की निर्लज्जता उनके भीतर निहित अबाध शोषण की पीड़ा प्रस्तुत सम्वाद में कितने सुन्दर रूप में अभिव्यत्ति हुई है–

''दुनिया का दस्तुर है, नहीं तो लोग बामनों को हजारों रूपये क्यों दे देते हैं ? कौन देखता है परलोक में मिलता है या नहीं ''

''बडे आदमियों के पास धन है, फूँकें । हमारे पास फूँकने को क्या है ''

''लेकिन लोगों को क्या जबाब दोगे ? लोग पुछेगें नहीं कफन कहाँ है ?

घीसू हँसा –अब कह देगें की रूपये कमर से खिसक गये बहुत ढूँढा मिले नहीं । लोगो को विश्वास नहीं आयेगा लेकिन फिर वही रूपये देंगे ।

माधव भी हँसा – इस अपेक्षित सौभाग्य पर । बोला – बडी अच्छी थी बेचारी । मरी तो खूब खिला– खिला कर ।

यहाँ दोनों की निर्लज्जता और उसमें घुले पीड़ा के एहसास ने इस संवाद को अभूतपूर्व मार्मिकता प्रदान की है। इस प्रकार कथोपकथन की दृष्टि से कफन कहानी पूरी तरह सफल है और सम्वाद कहानी के समग्र रचना –विधान को पुर्णता प्रदान करते हैं।

1.6.6 उद्देश्य और संवेदना–

'कफन' कहानी उस अर्थ में उद्देश्यमूलक नहीं है जिस अर्थ में प्रेमचन्द की पूर्व की कहानियाँ उद्देश्यमूलक हुआ करती थी। प्रेमचन्द ने यहाँ यथार्थ को सर्जनात्मक रूप में ग्रहण किया है। कफन में विषमतामूलक समाज की विकृति पर प्रकाश डाला गया है। इस कहानी में सामाजिक व्यवस्था पर कहानीकार ने कटु और तीव्र व्यंग्य करना चाहा है। पूंजीवादी शोषण के नीचे दबा मनुष्य किस प्रकार अमानवीय हो जाता है। यही प्रस्तुत कहानी में प्रेमचन्द ने बताना चाहा है। डॉ. विजयपाल सिंह के शब्दों में– ''आधुनिक बोध, समष्टि–यथार्थ, अन्तर्निहित संकेत और पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश या सांकेतिक व्यंग्य से सम्पन्न यह कहानी मानव–हृदय के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण एवम् प्रतिक्रियाओं को अन्यन्त गहराई के साथ प्रस्तुत करने में समर्थ है।''

'कफन' कहानी का मूल उद्देश्य एवम् संवेद्य उस परम्परागत एवम् सामंती व्यवस्था दोष को उजागर करना प्रतीत होता है कि जिसनें अनवरत कर्म–रत, संघर्षशील और कर्मठ व्यक्ति को भी अपनी हीनताओं में कारण कामचोर, हृदयहीन एवम् ओछा बना दिया है। उसे यह सोचने के लिए विवश कर दिया है कि जब दिन–रात खटने और खून–पसीना बनाने पर भी भूखों ही मरना है, तो फिर काम किया ही क्यों जाये? क्यों न आकाशवृत्ति का ही आश्रय लेकर जीवन को ज्यों–त्यों बिता दिया जाए। कहानीकार ने भी कहानी में एक स्थान लिखा है रात–दिन मेहनत करने वालो की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानो के मुकाबले में वे लोग जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। उसे यह तसल्ली तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उन किसानों जैसी जी तोड मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते। स्पष्ट है कि व्यवस्था दोष के कारण बेजा फायदा उठाने की प्रवृत्ति ने ही समाज के इस एक शोषित–पीड़ित व्यक्ति को और भी अधिक निठल्ला बन जाने, कामचोर एवम् हृदयहीन बंन जाने को बाध्य किया। इसी सबको घीसू और माधव जैसे पात्रों के माध्यम से रूपायित करने के लिए स्वर्गीय प्रेमचन्द ने 'कफन' कहानी का सृजन किया है।

इस प्रकार, समूचे विवेचन–विश्लेषण के निष्कर्ष स्वरूप 'कफन' कहानी को तात्विक दृष्टि से प्रेमचन्द की न केवल सफलतम रचना कहा जा सकता है, बल्कि प्रतिनिधि और उनकी कथा–यात्रा का एक सफल सुखद पड़ाव कह कर भी रेखांकित किया जा सकता है।

'कफन' अपने गहन अर्थो में बुधिया के कफन की कहानी नहीं, मानवीयता और नैतिक– बोध के कफन की कहानी है, उस हताशा की कहानी है जो मनुष्य को अस्तित्व के आदिम स्तर पर ले जाती है और हर अच्छे–बुरे का लोप हो जाता है। बुझे हुये अलाव, मरती हुई बुधिया, और कफन बेचकर शराब पीते पिता–पुत्र पृष्ठभूमि में उस समाज–व्यवस्था जो इस सबके लिये उत्तरदायी है। प्रेमचन्द ने प्रस्तुत कहानी बड़े संयम, सहानुभूति, और सूक्ष्मता से लिखी है।

बोध प्रश्न

प्रश्न–सत्य/असत्य लिखिए

1. 'कफन' कहानी में प्रेमचन्द ने मानवीय दुर्बलताओं का यर्थाथ चित्रण किया है।

2. घीसू और माधव समाज की आर्थिक विषमता में शोषित वर्ग के प्रतिनिधि नहीं हैं।
3. प्रेमचन्द ने इस दोनों का चरित्र व्याख्यात्मक शैली में न देकर ध्वन्यात्मक रूप में दिया है।
4. 'कफन' कहानी में देशकाल और वातावरण का परिवेश कहानी को एक अनिर्वाय विश्वसनीयता प्रदान नहीं करती है।
5. कहानी में कथ्य–कथानक के, उसकी मूल सम्वेदनाओं के सर्वथा अनरूप वातावरण की सृष्टि की गई है।
6. भाषा की पात्रानुकूलता, यथार्थपरकता, सम्प्रेषण–क्षमता 'कफन' कहानी में देखते ही बनती है।
7. कफन अपने गहन अर्थो में बुधिया के कफन की कहानी नहीं, मानवीयता और नैतिक– बोध के कफन की कहानी है।

1.7 'कफन' का यथार्थवाद

प्रेमचन्द यर्थाथवादी कलाकार हैं और 'कफन' में यह यथार्थवाद अभिव्यक्त हुआ है। जब जमीन चली जाती है। तो किसान मजदूर बन जाता है और जब मजदूरी के मिलने में भी अनिश्चय रहता है। तो वह उपजीवी बन जाता है। घीसू और माधव इसी अनिश्चय की आशंका से अकर्मण्य हो गये हैं। 'कफन' कहानी, यदि देखा जाए तो बुधि ाया के कफन की कहानी न होकर मानवीयता और मृत नैतिक बोध की कहानी है। अतः घीसू और माधव की अकर्मण्यता व्यक्तिपरक न होकर समाजपरक है, जहाँ आजीविका की अनिश्चितता है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(समाजपरक, मृत नैतिक, यर्थाथवादी, मानवीयता , व्यक्तिपरक)

1. प्रेमचन्द.......................................कलाकार हैं।
2. घीसू और माधव की अकर्मण्यता .... न होकर .... है।
3. 'कफन' बुधिया के कफन की कहानी न होकर .... और .... बोध की कहानी है।

1.8 सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह

सामाजिक व्यवस्था के प्रति प्रेमचन्द का विद्रोह भी निम्न पंक्तियों में स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है–

"घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला – "हाँ बेटा, बैकुण्ठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं, मरते–मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुण्ठ में जायेगी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जायेंगे जो गरीबों को दोनो हाथों से लूटते हैं और पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते है।

1.9 मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' का आधार मनोवैज्ञानिक है। इसमें घीसू और माधव के अकर्मण्य मन की गुत्थियों और उनकी भावनाओं का सजीव चित्रण किया गया है। "मानसरोवर" की भूमिका में भी प्रेमचन्द इस

मनोवैज्ञानिक पृष्ठभमि को अंकित करते हुए लिखते हैं गल्प का आधार घटना नहीं, मनोवैज्ञानिक अनुभूति है। आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठता, उसका उद्देश्य स्थूल सौन्दर्य नहीं, वह तो ऐसी कोई प्रेरणा चाहता है। जिसमें सौन्दर्य की झलक हो और जिसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पष्ट कर सके।''

'कफन' कहानी का मनोवैज्ञानिक आधार यह अनुभूति है कि आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में सर्वहारावर्ग कितना पतित हो सकता है। घीसू और माधव दोनों ही सदा के भूखे है। मेहनत करने पर भी उन्हें भरपेट रोटी नहीं मिलती, दूसरों को भी परिश्रम करके भूखे मरते देखते है। इससे उनमें अकर्मण्यता आती है। पर साथ ही पेट, भोजन और जीभ स्वादिष्ट व्यंजन मांगती है इसीलिए वे कफन के लिए चंदा करके एकत्र रूपयों से पहले अपना पेट भरते हैं। तरह–तरह के स्वादिष्ट व्यंजन और शराबें पीते–खाते है। यही नहीं, अपने कृत्य की उपयुक्तता भी सिद्ध करते हैं।

''कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते–जी तन ढँकने को चिथडा भी न मिले उसे मरने पर नया कफन चाहिए।''

''जब कि कफन लाश के साथ ही जल जाता है।

1.10 मानवीय दुर्बलताओं का चित्रण

प्रेमचन्द के यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय इससे भी लगता है कि उन्होंने सामाजिक विषमता के साथ–साथ मानव मन की दुर्बलताओं का भी कुशलतापूर्वक चित्रण किया है। उनके चरित्र प्रतीक न होकर यथार्थ जीवन में पाये जाने वाले चरित्र हैं– वे सच्चे चरित्र हैं, इसीलिए उनकी दुर्बलताएँ और कुण्ठाएँ भी स्वाभाविक रूप में चित्रित हुई है। भूख मानव के उचितानुचित के विवेक पर परदा डाल देती है। घीसू और माधव भी भूखे पात्र हैं, अतः उनके चरित्र की दुर्बलताएँ उनमें बाप–बेटे में भी शक दिखाती है।–

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा–'' जाकर देख तो क्या दशा है उसकी ? चुड़ैल का फसाद होगा, और क्या ? यहाँ तो ओझा भी एक रूपया मांगता है।''

माधव को भय था कि वह कोठरी में गया तो घीसू आलुओं का एक बड़ा भाग साफ कर देगा । बोला, '' मुझे वहाँ जाते डर लगता है।''

1.11 व्यापक जीवन की समावेश

डॉ. छविलाल त्रिपाठी ने इनके सम्बन्ध में लिखा है– ''मध्यवर्गीय जनता का चित्रण और घरेलू जीवन में मनोविज्ञान की स्थापना सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने की। भारत गॉवों में बसता है। वहाँ के निवासी किसान, जमींदार, महाजन, पुलिस, और पटवारी आदि सबको उन्हौंने अपनी कहानियों का पात्र बनाया है।

'कफन' कहानी का सम्बन्ध भी ग्रामीण जीवन से है और इसमें चमारों के रहन–सहन पर विचार किया गया है, पर साथ ही ग्राम के अन्य मेहनतकश निवासियों, किसानों की भी दशा का इसमें परिचय मिलता है।''

साथ ही ग्रामवसियों की प्रवृति और उनकी सहृदयता का भी इसमें चित्रण है। यदि किसी से घृणा भी है। पर वह यदि माँगने के लिए द्वार पर आ जाता है तो देना कर्तव्य समझ कर वे कुछ–न–कुछ दे ही देते हैं।

1.12 व्याख्या खण्ड

1–सब कुछ आ जायेगा। भगवान दे तो? जो लोग अभी एक पैसा नही दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रूपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था, मगर भगवान ने किसी न किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'कफन' से उद्‌धृत किया गया है इस कहानी के लेखक कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में घीसू और माधव अपने घर के बाहर आलू पकाकर खा रहे हैं। घर के भीतर माधव की स्त्री प्रसव वेदना से चीख रही थी। घीसू और माधव एक दूसरे से उसे घर के भीतर जाकर देखने को कहते हैं परन्तु जाता कोई भी नहीं है। माधव सोचता है कि अगर कोई बाल–बच्चा हो गया तो उसका लालन–पालन कैसे होगा, इस पर घीसू उसे समझाता है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में घीसू माधव को समझाते हुए कहता है कि अगर तेरी स्त्री को बाल–बच्चा हो जायेगा तो सामान कहाँ से आयेगा इसकी फिक्र मत कर सब कुछ हो जायेगा। पहले भगवान हमारे यहाँ बाल–बच्चा पैदा तो करें। घीसू माधव से कहता है कि जो लोग हमें आज तक एक पैसा की देने को तैयार नहीं है वे लोग ही कल बाल–बच्चा पैदा हो जाने पर हमें बुलाकर रूपये देंगे। बच्चा पैदा हो जाने पर समाज के लोग दया भाव से ही उसके लालन–पालन के लिये रूपये दे देते हैं। वह माधव को बताता है कि इस घर में आरम्भ से ही कुछ भी न था, मेरे नौ–नौ बच्चे हुए और भगवान ने किसी न किसी तरह सभी इंतजाम कर दिया। इसी प्रकार इस बार भी भगवान कुछ न कुछ व्यवस्था अवश्य कर देंगे।

विशेष :

1. प्रस्तुत मंत्र में घीसू के माध्यम से अकर्मण्य और आलसी वृत्ति का प्रभावी चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में भाग्यवादी वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है।
3. प्रस्तुत अंश में भगवान की आड़ में समाज के सामने याचक बनकर जीवन जीने पर व्यंग्य किया गया है।

2–जिस समाज में रात–दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ–उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे। वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'कफन' से उद्‌धृत किया गया है इस कहानी के लेखक कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में ग्रामीण व्यवस्था में कर्म के आधार पर जो कार्य विभाजन है और उसके बाद किसानों, मजदूरों की जो दशा है उसका उल्लेख किया गया है। यह गाँव भारत में अकेला गाँव नहीं है इसी तरह अन्य गाँव में रहने वाले किसानों, मजदूरों का भी यही हाल है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में कहानीकार ग्रामीण परिवेश का वर्णन करते हुये भारत के गाँवों की दशा पर विचार व्यक्त करते हुये कहते हैं कि जिस समाज में कृषक दिन रात मेहनत करने के बाद जिस हाल में रह रहे हैं ठीक उसी हाल में घीसू और माधव की प्रवृत्ति के लोग भी हैं। अर्थात् काम करने वाला और न करने वाले की

एक ही तरह दुर्दशा हो रही है। कहानीकार कहते हैं कि जो लोग किसानों और मजदूरों की दुर्बलता का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं वे सेठ, साहूकार, और महाजन कहीं अधिक सम्पन्न हैं। अतः ऐसे वातावरण में घीसू और माधव की प्रवृत्ति के लोगों का पैदा हो जाना कोई आश्चर्य की बात न थी। व्यक्ति जब देखता है कि मेहनत करने पर उसे उसका प्रतिफल नहीं मिल रहा है तो वह अकर्मण्य होकर भाग्य के भरोसे जीने के लिये विवश हो जाता है।

विशेष :

1 प्रस्तुत अंश में भारत के गाँवों का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

2 प्रस्तुत अंश में किसानों और मजदूरों पर होने वाले शोषण का प्रभावी चित्रण किया गया है।

3 प्रस्तुत अंश में अकर्मण्यता को जन्म देने के कारण की ओर संकेत किया गया है।

3–उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुये थे उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जी तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग फायदा तो नहीं उठाते।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'कफन' से उद्धृत किया गया है इस कहानी के लेखक कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश मे कहानीकार ने यह चित्रित किया है कि देश के लगभग सभी गाँव में घीसू और माधव जैसे लोग जन्म लेते हैं। जब गाँव में मेहनत का सही प्रतिफल नहीं मिल पाता तो ये लोग यह तसल्ली कर अकर्मण्य हो जाते हैं कि कम–से–कम उनका शोषण तो नहीं हो रहा है और इसी में आनन्दित रहते हैं।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावरण में कहानीकार घीसू और माधव के चरित्र को विश्लेषित करते हुये कहते हैं कि–घीसू में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह बैठकों के नियम और नीति का पालन करता इसलिये चौपालों की बैठक में अगुवा बनकर नहीं बैठता था। शायद इसी कारण जहाँ इसी गाँव में उसकी बिरादरी के लोग गाँव के सरगना और मुखिया की कुर्सी पर बैठे थे और पूरा गाँव उसकी अकर्मण्य लालची और आलसी वृत्ति पर ऊंगली उठाता था। इतना सब होने के बाद घीसू को इस बात की तसल्ली थी कि अगर वह फटेहाल रह रहा है तो ठीक है, परन्तु वह उन किसानों की तरह तो नहीं हैं जो दिन–रात के मेहनत करते है और उसके बदले में गाँव के सेठ साहूकार से शोषित भी होते हैं। जो किसान और मजदूर सरलता और निरीहता के कारण शोषित हो रहे हैं उनसे तो घीसू अच्छा है कम–से–कम उसका शोषण तो नही हो रहा है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में देश के गाँवों में किसानों और मजदूरों के शोषण को चित्रांकित किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में अकर्मण्यता को जन्म देने वाली वृत्ति पर प्रकाश डाला गया है।

4–भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा उनकी और भूखी आँखों से देख रहा था और 'देने' के गौरव और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'कफन' से उद्धृत किया गया है इस कहानी के लेखक कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में घीसू और माधव दाह संस्कार के लिये एकत्रित रूपयों से जी भरकर शराब पीते हैं और पेट भर भोजन करते हैं। उसके बाद मदमस्त होकर शराब की दुकान के बाहर तरह–तरह के बातें करते हुए अपने में मस्त रहते हैं। इसी समय एक भिखारी जो उनकी तरफ देख रहा है, को बचा हुआ भोजन दे देते हैं।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में घीसू और माधव ने कफन के लिए इकट्ठा किये रूपये से जी भरकर शराब पी और पेट भर कर भोजन किया। अब वे उसे (बुधिया को) जी भरकर दुआयें दे रहे हैं। माधव ने पेट भर कर भोजन करने के बाद जो पूड़ियाँ शेष बच गई थीं उसे पास में बैठे एक भिखारी को दे दिया जो काफी देर से उन दोनों की तरफ भूखी नजरों से देख रहा था। माधव को जीवन में पहली बार देने का सुख मिला था। किसी को कुछ देने में जो गौरव, आनन्द और उल्लास मिलता है उसका अनुभव माधव को अपने जीवन् में पहली बार मिला था जिससे वह अत्यंत प्रसन्न हो रहा था। भिखारी को पूड़ियाँ देने के बाद वह अपनी स्त्री के लिये दुआ करने को भी कहता है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में गरीब व्यक्ति के द्वारा दिये गये दान से होने वाली प्रसन्नता विश्लेषित की गई है।
2. प्रस्तुत अंश में माधव की दानवृत्ति को अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में भिखारी को भोजन देकर प्राप्त होने वाली प्रसन्नता का सुन्दर चित्रण किया गया है।

5–जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला–हाँ बेटा बैकुण्ठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं, मरते–मरते हमारी जिन्दगी के सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुण्ठ में जायेगी तो क्या मे मोटे–मोटे लोग जायेंगे जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिये गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'कफन' से उद्धृत किया गया है इस कहानी के लेखक कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद है।

प्रसंग :– प्रस्तुत गद्यांश में घीसू और माधव ने कफन के लिये एकत्रित किये रूपयों से जी भरकर शराब पी और पेट भर कर भोजन किया और उसके बाद बचा–खुचा खाना भी भिखारियों को दान किया। अब उनका मन माधव की पत्नि को दुआयें दे रहा है कि उसने मरने के बाद भी जी भरकर भोजन और शराब उपलब्ध कराई।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यवतरण दे घीसू और माधव की जी भरकर शराब पीने और पेट भर कर भोजन करने के बाद मदमस्त होकर माधव की स्त्री को दुआयें दे रहे हैं। घीसू कहता है कि माधव तेरी स्त्री जरूर स्वर्ग जायेगी, ऐसा वह अपने आनंन्दित हृदय से कह रहा है। इस समय घीसू के उल्लास और आनन्द का ठिकाना नही है। वह माधव की स्त्री की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि तेरी स्त्री ने अपने जीवन में कभी किसी को सताया नही और नही दबाया है और मरने के बाद भी उसने हमारी सबसे बड़ी लालसा पूरी कर दी। हम दोनों ने आज जी भरकर शराब पी और पेट भरकर भोजन किया है जो हमें बरसों बाद मिला है। घीसू कहता है कि वह स्वर्ग में नहीं जायेगी तो क्या ये सेठ साहूकार जायेंगे जो दोनों हाथों से गरीबों का शोषण करते हैं और उसके बाद पुण्य कमाने के लिये गंगा में स्नान कर मंदिरों में पूजा–अर्चना कर स्वयं को परोपकारी सिद्ध करना चाहते हैं।

विशेषः—

1. प्रस्तुत अंश में घीसू के माध्यम से जीवन सत्य का चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में गाँवों में सेठ, साहूकारों द्वारा गरीबों पर किये जाने वाले शोषण को चित्रित किया गया है।

1.13 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

शब्दार्थ

बेवफाई – धोखेबाजी

कुनबा – बस्ती

नौबत – समय

आकाश वृत्ति – स्पष्ट आदत

इंतेजाम – व्यवस्था

बेगैरत – एहसान फरामोश

दोजख – पेट

निर्व्याज – बिना द्वेष के

मनोवृत्ति – आदत

कुत्सित – खराब

तसकीन– तसल्ली

हलक – जीभ का अंतिम हिस्सा

तृप्ति – संतोष

सुवासित – सुगंधित

दिल दरियाव – बड़े दिल वाला

किफायत – कंजूसी

तबाह – बर्बाद

खुशामद – प्रशंसा

कुढ़ते – चिढ़ते

ताका – देखा

बेकसी – लाचारी

कफन – शव पर डालने वाला कपड़ा

चिखोना – खाने की सामग्री

कुज्जिया – गिलास

दस्तूर – परम्परा

बामन – ब्राह्मण

अनपेक्षित – बिना किसी इच्छा के

कुल्हड़ – पानी पीने का मिट्‌टी का पात्र

सरूर – मस्ती

चुल्लू – हथेली में भरा हुआ जल

बैकुण्ठ – स्वर्ग

खासियत – विशेषता

बदमस्त – नशे में डूबकर

कहावतें / मुहावरे

कलेजा थाम देना – कठिनाई में धैर्य रखना

पथराई हुई आंखें– आघात लगना

चील के घोसले में मांस – भक्षक के यहाँ आहार

मिट्‌टी पार लगाना–उद्धार करना

काले कम्बल पर रंग चढ़ाना–प्रयास व्यर्थ जाना

ढिंढोरा पीटना–प्रचार करना

1.14 सारांश

'कफन' कहानी भारतीय ग्राम.जीवन की समग्र सांस्कृतिक और सहज मावनीय चेतना के धरातल पर लिखी गई है। इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'कफन' कहानी की समीक्षा, कफन कहानी के मूल कथ्य, एवम् कहानी में व्यक्त यथार्थ के अध्ययन के बाद आप –

- कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो चुके हैं।
- कहानीकार प्रेमचंद के कहानी कला को समझ सकते हैं।
- 'कफन' कहानी के मूल कथ्य को समझ सकते हैं।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'कफन' कहानी की समीक्षा कर सकते हैं।
- 'कफन' कहानी में व्यक्त यथार्थ को जान सकते हैं।

1.15 अपनी प्रगति जाँचिए

1. 'कफन' कहानी की मूल संवेदना क्या है?
2. 'कफन' एक यथार्थवादी कहानी है, स्पष्ट कीजिए।
3. 'कफन' कहानी की भाषा–शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

4. 'कफन' कहानी का वातावरण सजीव और मार्मिक है, स्पष्ट कीजिए।

5. 'कफन' कहानी में प्रेमचंद ने मानवीय दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण किया है, स्पष्ट कीजिए।

1.16 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1. कहानीकार प्रेमचन्द की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।

2 कहानी में प्रयुक्त कहावतों और मुहावरों को छांटकर उनका अर्थ लिखते हुए वाक्यों में उनका प्रयोग कीजिए।

3 कहानी में प्रयुक्त उर्दू शब्दों को छांटकर अर्थ लिखते हुए एक चार्ट तैयार कीजिए।

1.17 स्पष्टीकरण के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

1.18 चर्चा के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1– अमृत राय : कलम का सिपाही

2– निर्मल वर्मा, कमल किशोर गोयनका : प्रेमचन्द रचना संचयन

3– नन्द दुलारे बाजपेयी : प्रेमचन्द एक साहित्यिक विवेचन

4– शम्भुनाथ : प्रेमचन्द का पुनर्मूल्यांकन

5– सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : प्रेमचन्द

6– डा. शिवाजी सांगोले : कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना

इकाई : 2

पत्नी : जैनेन्द्र कुमार

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 कहानीकार जैनेन्द्र : संक्षिप्त परिचय

2.4 कहानी 'पत्नी' का मूल मन्तव्य

2.5 'पत्नी' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

2.5.1 कथानक.योजना

2.5.2 पात्र.योजना एवम् चरित्र.चित्रण

2.5.3 वातावरण

2.5.4 भाषा शैली

2.6 'पत्नी' एक मनोवैज्ञानिक कहानी।

2.7 सन्त्रस्त मौन की सशक्त अभिव्यक्ति

2.8 स्वतन्त्रता आन्दोलन के परिवेश का चित्रण

2.9 करूणा अपूरित मातृ.हृदय

2.10 विघटित दाम्पत्य जीवन

2.11 व्याख्या खण्ड

2.12 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

2.13 सारांश

2.14 अपनी प्रगति जाँचिए

2.15 नियत कार्य/गतिविधियाँ

2.16 स्पष्टीकरण के बिन्दु

2.17 चर्चा के बिन्दु

2.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की द्वितीय इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार जैनेन्द्र के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- जैनेन्द्र की कहानी कला को समझ पाएंगे।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'पत्नी' कहानी की समीक्षा कर पाएंगे।
- 'पत्नी' कहानी के मूल मंतव्य से परिचित हो पाएंगे।

2.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की द्वितीय इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत कहानीकार जैनेन्द्र के जीवन, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

जैनेन्द्र जी एक सफल मनौवैज्ञानिक, सशक्त कथाकार थे। 'पत्नी' कहानी का मूल मन्तव्य, संवेद्य या प्रतिपाद्य भारतीय नारी की अन्तःव्यथा को व्यंजित कर उसके विद्रोह को स्वरूपाकार प्रदान करना है। इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'पत्नी' कहानी की समीक्षा, 'पत्नी' कहानी के मूल कथ्य, एवम् कहानी में व्यक्त भारतीय नारी की अन्तःव्यथा पर प्रकाश डाला गया है।

2.3 कहानीकार जैनेन्द्र : संक्षिप्त परिचय

साहित्यकारों में शीर्ष स्थान प्राप्त करने वालों में से एक प्रमुख नाम जैनेन्द्र कुमार का है। जैनेन्द्र का जन्म सन् 1905 में हुआ था। मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि लेकर लिखने वाले उपन्यासकारों में जैनेन्द्र कुमार का विशिष्ट स्थान है। साहित्यिक रचनाएं तथा उनकी विविधता की दृष्टि से जैनेन्द्र की तुलना प्रेमचंद जी से की जा सकती है, लेकिन जहाँ प्रेमचन्द का साहित्यिक क्षेत्र ग्रामीण समाज तथा उसके शोषण से था, वहीं जैनेन्द्र ने आज के शहरी–समाज की मनौवैज्ञानिक गुत्थियों पर कलम चलाई है। इस क्षेत्र में श्रेष्ठ उपन्यासकार तथा कहानीकार जैनेन्द्र एक सशक्त प्रतिभा के धनी थे। उनका निधन 24 दिसम्बर 1988 को हुआ।

जैनेन्द्र जी एक सफल मनौवैज्ञानिक, सशक्त कथाकार थे। कहानी के मूलतत्वों की कसौटी के आधार पर इन्हें सहज ही उच्च कोटि के कथाकारों में रखा जा सकता है। जीवन के संघर्षो, वयःसंधि की कोमल भावनाओं तथा घटनाओं के यथातथ्य वर्णन के माध्यम से पात्रों का चरित्र चित्रण, देश–काल का संयोजन, अपनी भाषा शैली तथा सहज चुटीले कथोपकथन में इस प्रकार संजोते थे कि मानव–जीवन के संदर्भ में उनकी गहरी पैठ एवं उसे प्रकट करने का उनका शैली वैशिष्ट्य सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

जैनेन्द्र जी एक ऐसे दार्शनिक, मनौवैज्ञानिक साहित्यकार थे जो मन की कोमल भावनाओं के संवेदन से ओत–प्रोत हैं। उनका तर्कसंगत चितन तथा सरल सुबोध एवं प्रभावी अभिव्यक्ति इन्हें सहज ही उच्चकोटि के साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान दिलाने में समर्थ है।

प्रेमचंदजी के बाद हिन्दी कहानी साहित्य ने संक्रांति युग में प्रवेश किया। इस संक्रांति युग को कथा साहित्य में लाने का बहुत कुछ श्रेय जैनेन्द्र को दिया जाता है। आपने साहित्यक जगत में एक क्रांति उपस्थित कर दी। शिल्प–विधान की दृष्टि से आपकी प्रत्येक कहानी में नवीनता दृष्टिगोचर होती है। आप एक युग परिवर्तनकारी कहानीकार है। आपने अपनी कुछ कहानियों में दार्शनिक पृष्ठभूमि की भी प्राण प्रतिष्ठा की है।

कृतियाँ

कहानी संग्रह – फांसी, एक रात, स्पर्धा, पाजेब, वातायन, नीलम देश की राजकन्या, ध्रुवयात्रा, दो चिड़िया आदि। जैनेन्द्र की कहानिया नाम से दस भागों से आपकी कहानियां संग्रहीत है।

उपन्यास – सुनीता, त्याग–पत्र, परख, कल्याणी, जयवर्द्धन, विवर्त, सुखद, मुक्तिबोध आदि आपके प्रसिद्ध उपन्यास है।

निबंध संग्रह – प्रस्तुत प्रश्न, पूर्वोदय, जड़ की बात, साहित्य का श्रेय और प्रेम, मन्थन गांधी–नीति, काम–प्रेम और परिवार आदि।

संस्मरण – ये और वे।

अनुवाद – मन्दाकिनी (नाटक), पाप और प्रकाश (नाटक), प्रेम में भगवान (कहानी संग्रह)। इस तरह कहानी, उपन्यास, निबंध आदि विधाओं की श्रेष्ठ कृतियों से हिन्दी साहित्य को आपने और ज्यादा सम्पन्न बनाया।

2.3 कहानी 'पत्नी' का मूल मन्तव्य

कहानीकार जैनेन्द्र की गणना हिन्दी.कहानी के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक कहानी के प्रमुख प्रवर्तकों में की जाती है। उन्होंने प्रेमचन्द की प्रत्यक्ष एवम् व्यावहारिक चेतनावादी कहानी के स्थान पर अन्तश्चेतनाओं के उद्घाटन पर ही अपनी कहानी में अधिक बल दिया। परिणामस्वरूप इनकी कहानियों में कथानक का स्वरूप अत्यन्त स्वल्प. संक्षिप्त और कहीं.कहीं तो प्रायः विलुप्त सा ही हो गया। उसके स्थान पर मनोविश्लेषणवादी शिल्प को अधिक प्रश्रय मिला, यद्यपि जैनेन्द्र यह मानते है कि शिल्प से केवल किनारे बनते है, पानी या उन किनारों में बहने वाली धारा नही। जो हो, उनकी कहानियों के सुघड़ एवम् तराशे.खराशे हुए शिल्पगत किनारों में प्रवाहित कथ्यगत धारा अत्यन्त क्षीण है और इस कारण कहीं.कहीं अबूझ भी है। उससे प्रत्यक्ष कहानी.कला को ठेस भी पहुंची है, इस बात में तनिक भी सन्देह नही। उनकी कहानी.कला की अन्तचेतना गांधीवाद, फॉयडवाद और मार्क्सवाद जैसे अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों की खिचड़ी भी है। इससे कहानी के समग्र चित्रण में उलझाव, दुरूहता तो आ ही जाती है, वह कई बार अबूझ नहीं बन जाती है। कारण स्पष्ट है और वह है जैनेन्द्र का उपरोक्त सभी मतो के घपले से विनिर्मित अपनावाद या दुष्टिकोण, जो कथ्य, कथानक, पात्रों के वैयक्तिक एवम् सामूहिक चरित्रगत क्रियाकलापो को कई बार भोथरा भी कर दिया करता है। दिशा.निर्देश में स्पष्टतः या प्रत्यक्षतः असफल होकर मात्र पहेली बन कर रह जाया करता है। इस प्रकार के तथ्य एवम् तत्व उनकी आलोच्य कहानी पत्नी के अन्तः बाह्य व्यक्तित्व एवम् स्वरूप में भी विद्यमान है।

'पत्नी' कहानी का मूल मन्तव्य, संवेद्य या प्रतिपाद्य

'पत्नी' कहानी का मूल मन्तव्य, संवेद्य या प्रतिपाद्य भारतीय नारी की अन्तःव्यथा को व्यंजित कर उसके विद्रोह को स्वरूपाकार प्रदान करना है। परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि 'पत्नी' कहानी में सुनन्दा के रूप में नारी का यह विद्रोह इस कारण भोथरा होकर रह गया है कि अन्त तक पहुंचते.पहुंचते जैनेन्द्र ने पति की अनुदारता के प्रति भी उसे (नारी सुनन्दा को) भारतीय नारी के परम्परागत आदर्शो का जामा ओढ़ा दिया है। अतः मूल संवेद्य के सम्बन्ध

ा में हिन्दी की कालजयी कहानियों के सम्पादक पहाड़ी के शब्दों में उचित ही कहा जा सकता है कि– ''पति की अनुदारता के प्रति उन्होंने भारतीय नारी का आदर्श और उज्जवल व्यक्तित्व भले ही उभारा हो, वे उसकी घुटन और पीड़ा का समाधान करने में असफल रहे हैं।...... 'पत्नी' लेखक की प्रतीक मयी नारी मात्र बन गई है। परिवार की एक 'फर्नीचर'। इस प्रकार मूल संवेद्य के स्तर पर हमें यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि कहानीकार जैनेन्द्र चले तो थे नारी के विद्रोह को, पति की अनुदारता के प्रति मौन विद्रोह–मूलक प्रतिक्रिया को रूपाकार देने, पर अन्त तक पहुंचे, अपने मूल मन्तव्य से भटक कर वे उसे मात्र परम्परागत नारी ही रहने दे पाये– भारतीय परिवारों को जीवित रखने वाला फर्नीचर मात्र, वह फर्नीचर भी नया एवम् आधुनिक नहीं, बल्कि घिसा.पिटा, पुराना और परम्परागत।'' इन तथ्यों के आलोक में मूल प्रतिपाद्य की दृष्टि से कहानीकार को सफल नहीं कहा जा सकता। यदि सफल मानना, कहना और बताना ही किसी प्रकार की विवशता हो तो हमें प्रतिपाद्य नारी का विद्रोह न माकर उसका परम्परागत आदर्श.उज्जवल व्यक्तित्व उभार स्वीकार करना होगा। ऐसा करना स्यात् समीचीन नहीं होगा, पर ऐसा करके ही कहानी के प्रतिपाद्य को सफल.सार्थक कहा जा सकता है। नारी विद्रोह चित्रण के स्तर पर निश्चय ही कहानीकार असफल है। तब हमें पत्नी कहानी की नारी के सम्बन्ध में भी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के स्वर.शब्दों में कहना होगा कि– ''जैनेन्द्र के नारी पात्र मध्यमवर्गीय विवश और असफल व्यक्तित्व वाले पात्र ही है। उनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं है।''

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–'जैनेन्द्र की कहानी.कला किन दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव है?

उत्तर– ....

....

....

प्रश्न 2–'पत्नी' कहानी का मूल मन्तव्य क्या है?

उत्तर– ....

....

....

2.4 'पत्नी' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

कहानी के तत्वों के आधार पर 'पत्नी' कहानी की तात्विक समीक्षा प्रस्तुत है–.

2.4.1 कथानक.योजना

तात्विक दृष्टि से कथानक.योजना के स्तर पर आलोच्य कहानी 'पत्नी' को कथानक.हीन या फिर एकदम सामान्य साधारण कथानक वाली कहानी कहना होगा। कथानक का स्वरूप घटना या घटनाओं से बना करता है, जबकि कहानी में घटना और इस अर्थ में कथानक नाम से मात्र इतना ही है कि पति के अनुदार उपेक्षापूर्ण व्यवहार से भीतर.ही.भीतर सन्त्रस्त पत्नी (सुनन्दा) उसके लिए परम्परागत भारतीय नारी के रूप में सब कुछ करते हुए भी एक दिन पति कालिन्दीचरण की बातों का उत्तर न दे, अपना मौन विरोध या विद्रोह व्यक्त करती है। पर अन्त में सेवा को ही अपना मूल.मुख्य कर्तव्य मान, पति की अनुदारता.उपेक्षा को भुला, विद्रोह की अपनी आदर्शवादी चेतना

से भोथरा और व्यर्थ होने देकर उस (पति) की सेवा.सुश्रषा में जुट जाती है। इस सामान्य.साधारण सी घटना को ही कथानक के रूप में लेकर उसका प्राणवान ढंग से कहानीकार ने चरम विकास एवम् चरम परिणति दिखाई।

कथानक के क्रमशः विकास.प्रक्रिया और विभिन्न अवस्थाओं के आलोक में कहा जा सकता है कि आरम्भ किसी घटना या पात्र.परिचय आदि से न होकर स्थिति.वर्णन एवम् मनोविश्लेषण से हुआ है। वस्तुतः 'पत्नी' घटनाओं आदि की कहानी न होकर स्थितियों और चेतनाओं की कहानी है। अतः सामान्य वर्णन एवम् मनोविश्लेषण से वस्तु का आरम्भ उचित ही कहा जाएगा। मनोविश्लेषण के लिए पहले अंगीठी में ठण्डी पडती आग, उसमें फिर कोयले डालना और बुझ रहे अंगारों का फिर से लहक उठना जैसी बातों का वर्णन नारी.पात्र सुनन्दा की अन्तः बाह्य स्थितियों के अनुरूप बन पड़ा है। कहानीकार ने आरम्भ के रूप में सम्बद्ध पात्र सुनन्दा की मनः स्थितियों और क्रियाकलापो का उल्लेख भी उचित मनोवैज्ञानिक परिवेश में ही विश्लेषित किया है। आरम्भ की यह स्थिति उस समय तक बनी रहती है कि जब पति की प्रतीक्षा में रत सुनन्दा उब कर, अंगीठी पर तवा चढ़ा रोटी बेलने लगती है और उधर से उसे सीढ़ियों पर से पति के कदमों की आहट सुनाई देती है। तब क्षण भर को उसके चेहरे पर तल्लीनता की आभा आ फिर जाकर इस बात की सूचना दी जाती है कि उसका मन मौन विद्रोह के लिए प्रस्तुत है परिणामस्वरूप पहली अवस्था आरम्भ के बाद अब स्वल्प कथानक दूसरी अवथा, आरोह या विकास की अवस्था में पहुंच जाता है।

वस्तु.विधान की इस दूसरी अवस्था को विकास का बल मिलता है अपने पति तथा उसके मित्रों में होने वाली देशोद्धार की बातें सुनकर। एक ओर वह उनकी बातों से टपकने वाले अत्यधिक उत्साह को नहीं समझ पाती, दूसरी ओर उसकी अन्तश्चेतना को ठेस पहुंचती है कि उनका पति चाहने पर भी उनके साथ इस प्रकार की बातें क्यों नहीं करता। खैर उसने सोचा है कि उसका काम तो सेवा है – वह एक बात जान चुकी है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है घर का काम छोड दिया है, जानबूझ कर उखड़े–उखड़े और मारे.मारे जो फिरते है उसमें कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बात को पकड़कर वह आपत्तिशून्य भाव से पति के साथ विपदा पर विपदा उठती रही है। इस प्रकार की चेतना में भी अपने बच्चें की मृत्यु के प्रसंग को लेकर पति की उपेक्षा उसके मन.मस्तिष्क को सालती रहकर उसके मौन विद्रोह की भूमिका तैयार करती रहती है। यह विद्रोह तब सामने आता है, कि जब खाने की बात लेकर उसका पति कालिन्दीचरण उसके सामने आता है, वह उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं देती। उत्तर न देना उसके विद्रोह का प्रतीक.परिचायक तो है ही सही, कथानक के क्रमिक विकास की आरोह अवस्था का परिचायक भी है। इस अवस्था की सीमा का विस्तार वहाँ तक माना जा सकता है कि जब कालिन्दीचरण पत्नी सुनन्दा के मौन से चिढ़कर यह कहते हुए चला जाता है कि अच्छी बात है। खाना कोई भी नहीं खायेगा और फिर साथियों के पास जाकर कहता है कि आप लोगों को भूख नहीं लगी है क्या ? उनकी तबियत खराब है, इससे यहाँ तो खाना बना नहीं। बताओं, क्या किया जए। कहीं होटल चलें ?

कालिन्दीचरण का यह कथन पत्नी सुनन्दा के मौन.विद्रोह की प्रखरता को भी स्पष्ट करने वाला है और कथानक.विधान के विकास की प्रक्रिया को भी। इसके बाद कथानक विकास की अगली अवस्था.चरण परिणति, वहाँ से आरम्भ होती है कि जब सुनन्दा समस्त पका खाना एक थाली में सजाकर पति और उसके मित्रों के बीच रख सभी को चकित कर देती है। पति झेंपकर सफाई देने लगता है कि मेरा मतलब था कि– खाना काफी नही है और फिर कुछ और लाने के बहाने से भीतर जाकर सुनन्दा से कहता है कि "यह तुमसे किसने कहा था कि खाना यहाँ ले आओ ? चलो, उठाकर लाओ थाली। हम किसी को यहाँ नहीं खाना है।" इस पर भी जब सुनन्दा मौन रहती है, कि बस अब कुछ अघटित घट कर ही रहेगा। पर कुछ भी नहीं घटता। अपने में ही घुटती सुनन्दा के इस कथन से कि खाओगे नहीं? एक तो बज गया। वस्तु.विधान का चरम विकास होकर, अगली अवस्था अवरोही का आरम्भ हो जाता है। आचार लेने जाने की प्रक्रिया कथानक को अन्त या उपसंहार की ओर ले जाती दीख पडती है। फिर सुनन्दा का तथाकथित विद्रोही भाव भी अब अपने आप में ही पिघलने लगता है और हठात् यह उसके मन को लगता

है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी? और अगले ही क्षण छिः! सुनन्दा तुझे तो खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला। यह आदर्शवादी परम्परागत चेतना नारी (सुनन्दा) के समूचे विद्रोह पर बुरी तरह लिपट, विद्रोह को भोथरा और विफल बना, वस्तु योजना और विकास.प्रक्रिया को उपसंहार या अन्त की अंतिम अवस्था में ला देती है कि पति द्वारा पहले और आचार मांगने पर सुनन्दा आचार ला देती है, फिर पति की स्निग्ध वाणी से पिघल कर सुनन्दा ने पानी ला दिया और फिर बाहर द्वार से लग कर ओट में खड़ी हो गई जिससे कालिन्दी कुछ कुछ मांगे, तो जल्दी ला दे। नारी.विद्रोह के इस एक प्रकार से अप्रत्याशित से आदर्शीकरण के साथ वस्तु.विधान मध्यवर्गीय नारी की विवशता, विफलता का अहसास दे जाता है।

कहानी में एक दो ऐसे स्थल है, जहाँ जिज्ञासा के कान खड़े हो एक भावी परिणाम की कल्पना करने लगते है। पर कल्पना के अनुरूप कुछ नहीं हो पाता। अतः वस्तु विधान और उसकी चरम.परिणति या परिणाम के सम्बन्ध ा में स्यात् और कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

2.4.2 पात्र.योजना

मनोवैज्ञानिक एवम् मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में कथ्य.कथानक और उसके विकास की प्रक्रिया से बिलगाकर पात्रों एवम् उनके चरित्र.चित्रण को देख पाना सम्भव नहीं हुआ करता। वस्तुतः इस प्रकार की कहानियों का रूपाकार सम्बद्ध, विशिष्ट पात्रो, के चारित्रिक विश्लेषण से ही बना करता है। पात्र.योजना एवम् चरित्र.चित्रण के स्तर पर 'पत्नी' कहानी में भी यही प्रक्रिया अपनाई गई है, अतः पात्रों के सम्बद्ध में वही सब तथ्य पूर्ण है। जो वस्तु.विधान एवम् उसके विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत विवेचित.विश्लेषित किया गया है। यदि कहानी के दोनो सुनन्दा और कालिन्दीचरण पात्रों के सम्बन्ध में अलग से कुछ कहना ही चाहें तो कहा जा सकता है कि सुनन्दा उस मध्यवर्गीय नारी, व्यक्ति और वर्गगत चरित्र का प्रतिनिधित्व करती है जो नये की ओर बढ़ना चाहता है। पर पुराने को छोड़ नहीं पाता। इसी वर्गीय चेतना के कारण उसका आज तक का समूचा आक्रोश.विद्रोह भोथरा एवम् असफल ही प्रमाणित हुआ है। सुनन्दा के समान कालिन्दीचरण भी मध्यवर्गीय व्यक्ति, वर्गगत चरित्र वाला पात्र है। तभी तो घर में रहने वाले लोगों के व्यक्तित्व, स्वतन्त्रता की उसे चिन्ता नहीं, बाहर की अन्य प्रकार की स्वतन्त्रताओं की चिन्ताओं से वह ग्रस्त है। फिर अभी तक वह वर्ग.व्यक्ति दोनो रूपों में निश्चित मार्ग अपना पाने में भी समर्थ नहीं हो सका है। इस प्रकार नारी अभी तक घरेलू प्रसाधनात्मक उपकरण मात्र है, तो पुरुष अपनी परम्परा मे वैचारिक क्रांतियों का मजमूहा और व्यवहार के स्तर पर बुर्जआ।

2.4.3 वातावरण

कहानी में वातावरण के स्तर पर बाह्य नहीं आन्तरिकता का उदघाटन ही अधिक सम्भव हो सका है। आरम्भ में बहुत थोड़ा.सा बाह्य वातावरण का चित्रण मिलता है–"शहर के एक और एक तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अंगीठी सामने लिए बैठी है। अंगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है। उसकी अवस्था बीस.बाईस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली है और सम्भ्रान्त कुल की मालूम होती है।" बस इसके अतिरिक्त आन्तरिकता का उदघाटन ही अधिक सम्भव हुआ है। कहानी पढ़ने से स्वतन्त्रता.प्राप्ति के लिये किये जाने वाले हिंसक.अहिंसक प्रयत्नों, उसमें लगे.लोगों की मानसिकता की सांकेतिक झलक अवश्य मिल जाती है। स्वल्पता.सांकेतिकता क्योंकि जैनेन्द्र की कहानी.कला की एक विशेषता हैं, अतः इस दृष्टि से वातावरण. सृष्टि को अवश्य पूर्ण सफल कहा जा सकता है। युवकों की विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों की झलक भी कहानी में देखी जा सकती है और यह भी कि व्यक्ति या समूह के स्तर पर अभी तक सामन्तों और रूढिवादी जैसी परम्पराओं से मुक्त नहीं हो सके थे। मानसिक या आन्तरिक वातावरण चित्रण के स्तर पर कहानी का यथार्थ बस इतना.सा ही है।

2.4.4 भाषा शैली

जहाँ तक 'पत्नी' कहानी के सन्दर्भ में जैनेन्द्र की कहानियों के भाषा शैलीगत शिल्प का प्रश्न है। उसकी नवीनता सुघड़ता, एक स्तर पर अवश्य ही प्रभावी स्वीकार करनी पड़ती है। मंजी भाषा शैली में छोटे.छोटे ध्वन्यात्मक वाक्यों में मनोवैज्ञानिक स्तर पर मानव.हृदय का चित्रण करने में उन्हे कुशल माना जाता है। इस कुशलता का परिचय निश्चित ही उन्होंने आलोच्य कहानी में भी दिया है। मनोविश्लेषणात्मक शिल्प का प्रयोग होने के कारण उनकी कहानियों में प्रत्यक्ष एवम् नाटकीय सम्वाद योजनाः प्रायः नहीं रहा करती, आन्तरिक साम्वादिता ही अधिक रहा करती है। पर इस कहानी में आन्तरिक साम्वादिता के साथ बाह्य नाटकीय सम्वादों की भी कुछ मात्रा में योजना में विशेष दर्शनीय है। सूक्तियों का प्रयोग यहाँ उन्होंनें प्रायः नहीं किया है। मनोभावों के चित्रण की कुशलता यहाँ भी देखी जा सकती है। जैनेन्द्र की भाषा को यद्यपि कहानी के 'भाषा.सौष्ठव को क्षति' पहुँचने वाला माना जाता है। पर इस कहानी के सन्दर्भ में इस आरोप को सही नहीं माना जा सकता। भाषा.शैली शिल्प की आलोच्य कहानी के सन्दर्भ में विशेषता यह है कि कथानक के अभाव में भी प्राणवत्ता के साथ रूपाकार दे पाने में, मानव.मन की गहराइयाँ व्यंजित करने में सफल रहे हैं।

इस प्रकार कुछ मिलाकर मूल संवेद्य के स्तर पर अलोच्य कहानी को यद्यपि स्खलित कहा जाएगा, परन्तु कथ्य.योजना विकास, पात्रों के चरित्रांकन एवम् भाषा.शैली की सूक्ष्म शिल्पिक योजनाओं के स्तर पर कहानी को जैनेन्द्र की यादगार रचना रहा जाएगा।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– 'पत्नी' कहानी का आरम्भ किससे हुआ है?

उत्तर– ....

....

....

प्रश्न 2– नारी.पात्र सुनन्दा की अन्तः बाह्य स्थितियों को बताने के लिये कहानीकार ने किन बातों का सहारा लिया है?

उत्तर– ....

....

....

प्रश्न 3 – कालिन्दीचरण के प्रश्नों का उत्तर न देना सुनन्दा के किस बात का परिचायक है?

उत्तर– ....

....

....

2.5 'पत्नी' एक मनोवैज्ञानिक कहानी

पत्नी एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसमें सुनन्दा जो एक पत्नी है उसकी मानसिक अवस्था का वर्णन है चूंकि घर में सिर्फ दो ही प्राणी है पति और पत्नी एक बच्चा भी था जिसे दोनो खो चूके है। पति कालिन्दीचरण स्वतन्त्रता संग्राम में खुद को झोंक देते है ऐसे में वे अपनी पत्नी को समय नहीं दे पाते हैं।

पत्नी अपना बच्चा खो चुकी है और पति से समय चाहती है परन्तु ऐसा नहीं हो पाता है और वह इसे स्वीकार कर के अपना घरेलू कार्य निर्विकार रूप से करती रहती है।

वह भारत माता की स्वतन्त्रता को समझना चाहती है, पर उसको न भारत माता समझ में आती है न स्वतन्त्रता समझ में आती है।

जीवन क़ी इच्छा उसमें बुझती सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करे। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे–धीरे वह भी समझने लगेगी। सोचती है कम पढ़ी हूं तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है ? अब तों पढ़ने को मैं तैयार हूं, लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता हैं। खैर उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। बस यह मानकर जैसे कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उनकी राह के बीच में आने की नहीं सोचती वह एक बात जान चुकी है कि उसके पति ने अगर आराम छोड दिया है, घर का काम छोड दिया है जान बूझकर उखड़े.उखड़े और मारे.मारे जो फिरते है, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे।

वह पति के साथ–साथ चलती रहती है उसे अपने पति से एक विशेष स्नेह की आशा है जिसे नहीं पा कर वह अन्दर ही अन्दर घुटती रहती हैं।

कालिन्दी ने कहा सुनती हो तीन आदमी मेरे साथ और है। खाना बन सके तो कहों, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।

सुनन्दा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। वे उससे क्षभाप्रार्थी से क्यों बात कर रहे है हंसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूं। अच्छी बात है तो में भी गुलाम नहीं हूं कि इनके ही काम में लगी रहूं मैं कुछ नहीं जानती खाना.वाना और वह चुप रही।

ऐसे ही विचारों में उलझते.उलझते उसे लेट आने पर पति चिन्ता सताती है। ऐसे ही पति को गैरो की तरह बात करते देख उसकी चिन्ता गुस्से में बदल जाती हैं सुनन्दा के मन में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं हैं उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे.बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में भलाई की बातें सोच रही थी। इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से से घुटकर रह गयी।

एक लड़की जब विवाह के बाद पत्नी की भूमिका का निर्वहन वह संस्कार वश अपने आप करने लगती है। उसे अपने परिवार घर की चिंता घेरे रहती है। जब घर में ऐसा होता है कि पति, बच्चे भूखे है तो वह इस विषय को ही चिंता का विषय बना कर सोचना प्रारंभ कर देती है और आगे.पीछे की घटनाओं को मोतियों की तरह पिरोना शुरू कर उस स्थिति पर विजय प्राप्त करना चाहती है और विरोध क़रती है। वह मौन रह कर अपने गुस्से का प्रदर्शन करती है।

सुनन्दा अपने बच्चों को खो चुकी है जिसके लिए वह अपने पति को ही दोषी समझती है। पति की लापरवाही और स्वयं पर ध्यान नहीं देने से और बच्चे की मौत दोनों को आपस में जोड़ देती है और स्वयं अन्दर की अन्दर पति से गुस्सा हो जाती है। परन्तु पति इस स्थिति से अंजान उससे खाने की मांग करते है और वो भी चार लोगों की, जिसका वह मौन रह कर विरोध करती है – 'उन्हें न खाने की फिक्र न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर

कुछ नहीं पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी बेपरवाही से तो वह बच्चा चला गया।' उसका मन कितना भी इधर.उधर डोले, पर अकेली जब होती है तब भटक.भटककर उसका मन अन्त में उसी बच्चें के अभाव पर आ पहुंचता है। तब उसे बच्चे की बातें याद आती है– वे बड़ी प्यारी आंखे अंगुलियां और नन्हें.नन्हें होठ यांद आते है अंठखेलियां याद आती है सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है ओह!

स्वयं को अकेला महसूस करने के पश्चात् वह उग्र होना चाहती है परन्तु वह चुप रह कर पति की इस लापरवाही का विरोध करती है। सुनन्दा एक भारतीय नारी होने के साथ.साथ एक संभ्रान्त कुल से भी सम्बन्ध रखती है उसके संस्कार उसके साथ जुडे हुये है इसीलिये जब पति द्वारा होटल में खाना खाने की बात पर वह खाना स्वयं लेकर पहुंच जाती है।

यहाँ उसका उद्देश्य पति को अपमानित करना नहीं था क्योंकि वह तो पति की लापरवाह आदत से परेशान होकर अपना गुस्सा मौन स्वरूप प्रकट करती है वह खाना पूरा का पूरा पति और उनके मित्रों को खिला देती है अपने लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखती है। पर वह स्वयं को अपमानित महसूस करती है जब उसके मस्तिष्क में यह विचार आता है कि कालिन्दी ने उससे एक बार की यह नहीं पूछा कि तुम क्या खाना खाओगी। पति से वह कुंठित हो बहुत सी व्यवहारगत अपेक्षा लगाये रहती है जब वह पूरी नहीं होती है तो स्वयं बार–बार अपमानित सा महसूस करती है पर वह भारतीय संस्कार वश इस अपमान से मुक्ति पा लेती है कि पति के लिए एक रोज भूखे रहने पर पुण्य मिला और स्वयं को ही समझाती है कि अब वह पति को नाराज नहीं करेगी और पति के मित्रों को भोजन करवाने के लिए पूर्व रूप से समर्पित हो जाती है।

2.6 सन्त्रस्त मौन की सशक्त अभिव्यक्ति

भारतीय नारी अनेकों कष्ट सहन करने के बाद भी पतिव्रता बनी रहती है। वह पति को परमेश्वर के रूप में देखती है। उसके प्रति अपना सर्वत्र न्योछावर करने को सदैव तैयार रहती है। 'पत्नी' कहानी की सुनन्दा अपने पति कलिन्दीचरण से बहुत प्रेम करती है। उसके लिये अपना सर्वत्र न्योछावार करने के लिये तैयार है। वह कम पढ़ी लिखी भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व कर रही है। उसका पति कालिन्दी राष्ट्रप्रेम की भावना से ओतप्रोत है। वह राष्ट्रोद्धार की भावना रखने वाला नायक है।

सुनन्दा को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी किन्तु कालिन्दी की लापरवाही से वह उसे खो चुकी है। जिसका उसे सदैव दुःख रहता है। उसका पति अपने मित्रों के साथ राष्ट्र कल्याण और राष्ट्र प्रेम की चर्चाये किया करता है। सुनन्दा उन सब बातों को सुनती रहती है। समझती रहती है। परन्तु वह चाहती है कि उसका पति उसके साथ की सभी तरह से बातचीत करें। उसका सुख दुख सुने, उसे अपनत्व के भावों से परिचित करावे किन्तु कालिदी का व्यवहार इसके ठीक विपरीत है।

पति की उपेक्षा और पुत्र की कमी सुनन्दा को सदैव दुःख के आगोश मे आबध्द किये रहता है। उसी कारण उसके अर्न्तद्वन्द कभी स्वयं के लिये, तो कभी पति की उपेक्षा के लिये तो कभी पुत्र की कमी को लेकर उद्वेलित हुआ करता है। सुनन्दा मन.ही.मन अपने पति को उलाहना दिया करती है। वह उससे मन.ही.मन बातें किया करती है। वह हमेशा यह विचार करती है कि उसका पति कालिन्दी उससे अपनत्व के भावों से बातचीत करें। उसको अपनी बातें बताये तथा उसके साथ पति के तरह व्यवहार करें जबकि कालिन्दी ठीक इसके विपरीत सुनन्दा से प्रश्नसुचक मुद्रा में वार्तालाप करता है या तो एक निश्चित दूरी रखता हुआ अपनी बात कहता है जिससे सुनन्दा स्वयं को उपेक्षित महसुस करती है। वह सोचती है कि मेरा पति मुझसे पत्नी की तरह क्यों बातचीत नही करता है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है– "कालिन्दी ने कहा –सुनती हो तीन आदमी मेरे साथ और है। खाना बन सके तो कहो नही तो इतने में ही काम चला लेगें।

सुनन्दा कुछ भी नही बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। वे उससे क्षमाप्रार्थी से क्यों बात कर रहे हैं। हँसकर क्यों नही कह देते कि कुछ और खाना बना लो। जैसे के मै गैर हुँ अच्छी बात है, तो में भी गुलाम नही हुं कि इनके ही काम मे लगी रहुँ कुछ नही जानती खाना.वाना। और वह चुप रही" इस प्रकार सुनन्दा कालिन्दी के व्यवहार में अपनत्व चाहती है परन्तु अपनत्व की कमी पाकर वह उदास और दुखी रहती है।

किन्तु सुनन्दा अपने पति से अनन्य प्रेम रखती है। मन ही मन उससे प्रेम करती है। किन्तु पति के उपेक्षा पूर्ण व्यवहार के कारण उसके मन में खीझ का भाव सदा विचरण करता रहता है। किन्तु उस खीझ से उसका प्रेम कभी कम नही होता इसलिये पति के मित्रों को भोजन कराने की बात पर कोई भी उत्तर न देने के बाद भी घर में बनाया गया समस्त भोजन एक थाली मे निकालकर कालिन्दी और उसके मित्रों के सम्मुख रख आती है और स्वयं के लिये जरा सा भी भोजन नहीं बचाती है। उदाहरण है–

"सुन्नदा ने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा था। उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है। अब कालिन्दी के लौटने पर उसे जैसे मालूम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है। वह अपने से रूष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ, इसलिए नही कि उसने खाना क्यों नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता था।"

इसी प्रकार दौड़कर उनके लिये पानी लाकर देना, आचार लाकर देना और दरवाजे के पास खड़ा रहना कि उसके पति यदि कुछ मांगते है तो वह तुरन्त वह चीज ला सके। इसकी कोशिश करती है। उदाहरण दृष्टव्य है – " उसे सुनाई पड़ा कि वे लोग फिर जोर.जोर से बहस करने में लग गये है। बीच.बीच में हंसी के कहकहे भी उसे सुनाई दिये। ओह! सहसा उसे ख्याल हुआ बर्तन तो पीछे मल सकती हूँ, लेकिन उन्हें कुछ जरूरत हुई तो? तो यह सोच, झटपट हाथ धोकर वह कमरे के दरवाजे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो गयी।"

इस प्रकार सुनन्दा अपने पति से कुछ कह नहीं पाती किन्तु मन.ही.मन वह कालिन्दी से बहुत प्रेम करती है। किन्तु अपने मन की भावनाओं को कभी अभिव्यक्त नहीं कर पाती और अंदर ही अंदर घुटती रहती है।

2.7 स्वतन्त्रता आन्दोलन के परिवेश का चित्रण

'पत्नी' कहानी में स्वतन्त्रता आन्दोलन का परिवेश है इसका नायक कालिन्दीचरण भारतमाता को आजाद कराना चाहता है। इसके लिए वह अपने परिवार की भी परवाह नहीं करता है वह उदार चरित्र का है और उसके मित्र आतंक के द्वारा सरकार का विरोध करना चाहते है परन्तु कालिन्दीचरण उनके आक्रोश का दमन करके उदारता, अहिंसा के साथ स्वतन्त्रता आंदोलन को सफल करना चाहता है। चारो व्यक्ति देशोद्धार के सम्बन्ध में बहुत कटिबद्ध है। चर्चा उसी सिलसिले में चल रही है। भारत माता को स्वतन्त्र कराना होगा और नीति अनीति, अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुंह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ का मारना ही एक इलाज है। आतंक हां आतंक। हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा? लोग है जो कहते है, आतंकवादी मूर्ख है वे बच्चे है। हां वे है बच्चे और मूर्ख। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल बच्चों का, हमे नहीं गर्ज धन दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नही। जुल्म होगा ही। उससे वे डरे जो डरते है। डर हम जवानों के लिए नहीं है, फिर वे चारो आदमी निश्चय करने में लगे कि उन्हें खुद क्या करना चाहिए।

यह कहानी उद्घारित करती है की स्वतन्त्रता आन्दोलन में कि न जाने कितने लोगो ने अपनी जान गवांई बल्कि उनके परिवार वालो ने जो त्रासदी झेली है उसकी सशक्त अभिव्यक्ति पत्नी कहानी के माध्यम से परिलक्षित होती है ।

2.8 करूणा आपूरित मातृ.हृदय

'पत्नी' कहानी की नायिका सुनन्दा एक माँ है जो अपना बच्चा खो चुकी। जिसके लिए वह अपने पति कालिन्दी को दोषी मानती है कालिन्दी जो एक स्वतन्त्रता प्राति के लिए प्रयासरत् देश भक्त है और इसी कारण वह अपनी पत्नी और बच्चे से मोह त्याग कर भारत माता से प्रेम करने लगता है। इस कारण उसके बच्चे की मृत्यृ हो जाती है जिसकी स्मृति सुनन्दा को हमेशा आ जाती है जिसके पीडा वह अकेले ही झेलती है। जब अकेली होती है तब उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुचता है। तब उसे बच्चे की वही बाते याद आती है। वे बडी प्यारी आखे अगुलियॉ और नन्हें.नन्हें होंठ याद आते है। अठखेलियॉ याद आती है। ओह ! यह मरना क्या है। इस मरने की तरफ उसे देखा नही जाता यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है उसको मारना है उसके पति का मरना है पर उस तरफ भूल से छण.भर देखती है तो भय से भर जाती है। यह उससे सहा नही जाता बच्चे की याद उसे मथ उठती है वह विह्व्ल होकर ऑख पोछती है और हठात् इधर.उधर के किसी काम मे अपने को उलझा लेना चाहती है। पर अकेले में रह रहकर वही मरने की बात उसके सामने ही रहती है और उसका चित बेबस हो जाता है।

2.9 विघटित दाम्पत्य जीवन

'पत्नी' कहानी विघटित दाम्पत्य जीवन को प्रदर्शित करती है। पति का देशभक्त होना और परिवार से मोह त्याग करने के कारण दाम्पत्य जीवन को क्षति पहुचती है। पति सिर्फ पत्नी से सेवा श्रुति ही करवाता दिखाई पडता है। वह पत्नी की भावनाओं को महत्व नही देता है। बाल्कि पत्नी को अकेला और कुंठित होने के लिए छोड कर स्वतन्त्रता आन्दोलन में कुद पड़ा है।

विविध सामाजिक दायित्वों के पूर्ण करने के लिये सम्बद्ध रहने के बावजूद मनुष्य को पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करना आवश्यक होता है जीवन की सार्थकता इसी तरह से उजागर होती है। जब हम पारिवारिक कर्त्तव्य पूर्ण कर समाज के काम कर सकें और सामाजिक जनजागरण में अपना अमूल्य योगदान दे सकें। 'पत्नी' कहानी का नायक कालिन्द्री राष्ट्रप्रेम और स्वतन्त्रता आन्दोलन की भावना से ओतप्रोत होकर पारिवारिक दायित्वों को भूल जाता है। उसकी पत्नी सुनन्दा कम पढ़ी लिखी पारिवारिक स्त्री है।

कालिन्दी राष्ट्र के प्रति समर्पित व्यक्ति है अतएव वह परिवार के प्रति उदासीन रहता है। उसने तो सुनन्दा को यहाँ तक कह दिया कि – " तुम मेरे साथ क्यों दुख उठाती हो? "परन्तु इसके बाद ही सुनन्दा पतिव्रता स्त्री होने का परिचय देते हुए घर चलाना चाहती है। कालिन्दी की लापरवाही के कारण ही उसके पुत्र की मृत्यु हो गयी थी। सुनन्दा कहती है– "ऐसी लापरवाही से तो वह बच्चा चला गया। उसका मन कितना भी इधर उधर डोले, पर जब अकेली होती है तब से भटक.भटककर उसका मन उसी बच्चे के अभाव में आ पहुंचता है।" सुनन्दा पुत्र अभाव का स्मरण कर सदैव बेबस हो जाया करती है।

कालिन्दी सदा अपने मित्रों के साथ ही चर्चा और विमर्श करता रहता है। इसीलिये वह अपनी पत्नी को समय नहीं दे पाता। उसकी दृष्टि में वह कम पढ़ी.लिखी है इसीलिये वह उसके साथ विचार विमर्श ही नहीं करता। जबकि सुनन्दा चाहती है कि उसका पति उससे भी राष्ट्र प्रेम और स्वन्तत्रता आन्दोलन की बातें करे। धीरे–धीरे वह इस सब चीजों को समझ जायेगी। वह स्वयं यह सोचती है – उसने बहुत चाहा कि पति उससे भी ऐसे हीं बात करें। उसमें बुद्धि तो जरा कम है पर धीरे.धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी?" पर उसका पति सुनन्दा के इन भावों को कभी समझ नहीं पाता और दोनों में दूरियाँ बढ़ती चली जाती है।

सुनन्दा की अपेक्षा कालिन्दी से है किन्तु वह पारिवारिक दायित्वों से विमुख राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्बद्ध रहता है। उसके घर आने और जाने का भी कोई समय निर्धारित नहीं है, जिससे सुनन्दा से हमेशा उसकी प्रतीक्षा करती रहती है और जब वह घर जाता है तो उसके दो.चार मित्र भी उसके साथ घर चले आते है जिसके कारण पति.

पत्नी के बीच किसी प्रकार का संवाद ही नहीं हो पाता। सुनन्दा मन.ही.मन उसे प्रेम करती है पर उलाहना का स्वर इतना मुखर हो जाता है कि दोनों में वार्तालाप भी नहीं हो पाता इसी कारण दोनों कि मध्य अन्तराल की स्थिति बनती चली जाती है। इसी कारण पारिवारिक जीवन दुःखमय बना रहता है। पति.पत्नी के विघटित जीवन को कहानीकार से अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से विश्लेषित किया है।

2.10 व्याख्या खण्ड

1– भारत माता को स्वतन्त्र कराना होगा नीति–अनीति, हिंसा–अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत देखा। मीठी बातों से बाघ के मुँह से सिर नहीं निकाला जा सकता है। उस वक्त बाघ का मारना ही एक इलाज है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'पत्नी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रसिद्ध मनौवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र कुमार हैं।

प्रसंग : कालिन्दीचरण और उसके साथी हिंसा और अहिंसा के सिद्धांतो पर चर्चा करते हुए किसी भी कीमत कर भारत माता को स्वतन्त्रता दिलाने के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर रहे है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यांश में कालिन्दीचरण और उसके चारो साथी यह चर्चा कर रहे हैं कि किसी भी कीमत पर भारत माता को स्वतन्त्रता दिलानी होगी। यह समय नीति–अनीति, हिंसा–अहिंसा देखने का नहीं हैं। उनका मत है कि हमारा उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिये और उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रशस्त किया गया मार्ग कोई भी हो सकता है वह चाहे सत्य का हो या असत्य का। चाहे वह हिंसा का रास्ता हो या अहिंसा का। उद्देश्य है कि भारत माता को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए वे अपने तर्क को और अधिक पुष्ट करने के लिये उदाहरण देते हुए कहते है कि मीठी–मीठी बातें करके बाघ के मुँह से बचकर नहीं निकला जा सकता, वहाँ अपना जीवन बचाने के लिये शक्ति और कौशल की जरूरत होती है। अपनी शक्ति और कौशल से बाघ का वध करना ही श्रेयस्कर होता है। तभी हम अपनी जान बचा पायेंगे। इसलिये समयानुसार और परिस्थिति के अनुसार मार्ग तय करते हुए भारत माता को स्वतन्त्रता दिलानी होगी।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश मे राष्ट्र प्रेम की भावना को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये किसी भी मार्ग का चयन करना श्रेयस्कर बताया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में उद्देश्य निर्धारित करने पर बल दिया गया है।

2– वह भारत माता की स्वतन्त्रता को समझना चाहती है। पर न उसको भारत माता समझ में आती है न स्वतन्त्रता समझ में आती है। उसे इन लोगों की इस जोरो की बातचीत का मतलब ही समझ में नही आता। फिर भी, उत्साह की उसमें बड़ी भूख है। जीवन की हौंस उसमें बुझती–सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करे।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'पत्नी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रसिद्ध मनौवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र कुमार हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में कालिन्दीचरण की पत्नी सुनन्दा की मनोदशा का चित्रण किया गया है। उसका पति उससे वार्तालाप नहीं करता है। जरूरत पड़ने पर ही बोलता है। वह अनपढ़ है किन्तु फिर भी वह चाहती है कि उसका पति उसे समझाये और उससे बाते किया करे।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में सुनन्दा की मनोदशा का चित्रण किया गया है वह अपने पति और उसके मित्रों की बाते सुना करती है। लेकिन उसकी समझ में कुछ भी नहीं आता है। वह चाहती है कि उसका पति उससे

भारत माता और भारत माता की स्वतन्त्रता की बात करे। वह जानना चाहती है कि भारत माता की स्वतन्त्रता क्या है। जब वह अपने पति और उनके मित्रों को जोर–जोर से बातचीत करते सुनती है। तो उसे लगता है कि वे इतनी जोर–जोर से बाते क्यों करते है। इन सब बातों का मतलब क्या होता है। उसके भीतर यह सब जानने का उत्साह बहुत अधिक है। जीवन जीने की ललक उसमें शांत होती जा रही है। परन्तु अब वह सिर्फ इसलिये जीना चाहती है कि इसका पति उससे बातें करे और उसे वह सब बताये जो वह अपने मित्रों के साथ बैठकर चर्चा किया जाता है। वह भी देश को और देश के प्रति अपने पति की कियाकलापों को जानना चाहती है किन्तु उसे दुख इस बात का है कि उसका पति उससे इन सब विषयों पर बातचीत नहीं करता।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में सीधी–साधी भारतीय नारी का सुन्दर चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में पति के साथ बातचीत की जो ललक दिखाई गई है वह अत्यन्त मार्मिक है।
3. प्रस्तुत अंश में पत्नी को पति की इच्छा के अनुरूप विषयों पर भी वार्तालाप करने का इच्छुक बताया गया है।

3– उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है, पर वह जितने हाकिम लोग है, वे जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी–बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौज, पुलिस के सिपाही और मजिस्ट्रेट और मुंशी और चपरासी और थानेदार और वायसराय ये सरकार के ही है! इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं है, पर यह उसी लड़ने न तन–मन बिसार बैठे हैं।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'पत्नी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रसिद्ध मनौवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र कुमार हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में सुनन्दा अपने पति कालिन्दीचरण और उसके मित्रों की बातों को सुनकर सरकार की परिकल्पना करती है। वह सोचती है कि यह किस प्रकार की होती है उससे संघर्ष करना क्या उचित है?

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यवातरण में सुनना अपने पति कालिन्दीचरण और उसके मित्रों के वार्तालाप को सुनकर यह परिकल्पना करती है कि सरकार क्या होती है? उसके मन में सरकार की कोई स्पष्ट भावना नहीं है। वह समझती है कि जितने ओहदेदार लोग होते है। ये सभी सरकार कहलाते है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि हाकिम लोगों के पास बहुत शक्ति होती है। फौज पुलिस, सिपाही मजिस्ट्रेट, चपरासी मुंशी, थानेदार, वायसराय आदि जितने भी उच्च पदों पर बैठे लोग है ये सब सरकार के ही है और उनका पति स्वतन्त्रता की बात करता है। अर्थात् इन सभी से विद्रोह की बात करता है। ज़बकि सुनन्दा का ऐसा मानना है कि इन सब लोगों से कैसे लड़ा जा सकता है। ये तो काफी शक्तिशाली लोग होते है। अर्थात् व्यक्ति से लड़ना उचित नहीं है और फिर भी कालिन्दीचरण और उसके मित्र उनसे लड़ना चाहते है और इसके लिये अपना तन–मन न्यौछावर करने की बात करते रहते हैं।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में भारतीय नारी की सहज सरल वृत्ति को अत्यन्त प्रभावी रूप में रूपायित किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में ग्रामीण सीधी साधी जनता में सरकार के लिये क्या दृष्टिकोण है यह चित्रित किया गया है।

4– सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह! यह मरना क्या है? इस मरने की तरफ उससे देखा नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है– उसको मरना है, उसके पति को मरना है,

पर उस तरफ भूल से छन–भर देखती है, तो भय से भर जाती है। यह उससे सहा नही जाता। बच्चे की याद उसे मथ उठती है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'पत्नी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रसिद्ध मनौवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र कुमार हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में सुनन्दा के लिये अपने पुत्र के प्रति स्नेह की भावना प्रदर्शित हुई है। सुनन्दा का एक पुत्र था जिसका निधन हो जाता है। वह उसका स्मरण कर तड़प उठती है। जीवन की सत्यता से परिचित होने के बाद भी उसमें सहज पुत्र मोह दिखाई पड़ता है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में सुनन्दा अपने पुत्र का स्मरण कर रही है, जो अब जीवित नही है। उसे अपने पुत्र का मरना सबसे ज्यादा याद आता है। अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु का स्मरण कर वह तड़प उठती है। वह कहती है कि यह मरना क्या है? मैं इकलौते पुत्र का निधन हो जाने से इस मरने के तरफ देख भी नही सकती। जबकि जीवन के चिर सत्य से सुनन्दा का परिचय है। वह जानती है कि जो इस संसार में आया है उसकी मृत्यु निश्चित है। उसे पता है कि उसकी मृत्यु होगी, उसके पति की भी मृत्यु होगी परन्तु जब वह अपने पुत्र की मृत्यु का स्मरण करती है तो वह भयाक्रांत हो जाती है। उससे आज इतने वर्षो बाद भी स्मरण में भी वह दुःख सहा नही जाता है। अपने बच्चे का स्मरण मात्र उसे अंदर तक हिलाकर रख देता है। जैसे किसी भी माँ के लिये पुत्र की मृत्यु असह्य होती है। उसी प्रकार सुनन्दा के लिये पुत्र–बिछोह अत्यन्त कष्टकारी रहा है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में माँ का पुत्र के प्रति स्नेह प्रदर्शित किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में माँ के मन में पुत्र की तड़प का विश्लेषण अत्यन्त मार्मिक है।

5– हठात् यह उसके मन को लगता ही है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी! क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखें रहें, पर पूछ लेते तो क्या था। इस बात पर उसका मन टूटता–सा है। मानो उसका जो तनिक–सा मान था, वह भी कुचल गया हो। पर वह–रहरहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है कि छिः! छिः! सुनन्दा तुझे ऐसी किसी बात का अब तक ख्याल होता है! तुझे खुश होना चाहिए कि उनके लिये एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'पत्नी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रसिद्ध मनौवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र कुमार हैं।

प्रसंग : कालिन्दीचरण अपनी पत्नी सुनन्दा से अपने तीन–चार मित्रों के लिये भोजन कराने की बात कहता है पर वह कोई उत्तर नहीं देती। तो वह मित्रों को भोजन बाहर करने की बात कहता है। इतने में सुनन्दा घर में जितना भोजन उसने बनाया था वह सभी एक थाली में परोसकर लाती है और कालिन्दीचरण तथा उसके मित्रों के सामने रख देती है। उसके बाद कालिन्दीचरण अपनी पत्नी सुनन्दा से एक बार भी नहीं पूछता कि तुम क्या खाओगी! इस बात पर सुनन्दा का अर्न्तद्धन्द्ध प्रस्तुत गद्यांश में विश्लेषित है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में सुनन्दा का अर्न्तद्धन्द्ध विश्लेषित किया गया है। जब वह घर में बनाया गया सारा भोजन अपने पति कालिन्दीचरण और उसके मित्रों को परोसकर खाने के लिये दे देती है और उसके बाद भी कालिन्दीचरण अपनी पत्नी सुनन्दा से एक बार भी नहीं पूछता कि तुम क्या खाओगी! तो एकाएक उसके मन में यह विचार उठता है कि उसके पति ने उससे औपचारिकता वश भी इतना नहीं पूछा कि तुम्हारे लिये भोजन बचा है कि

नही। वह सोचती है कि क्या मैं ऐसा कर सकती हूँ कि मेरा पति और उसके मित्र घर में भूखे बैठे रहे और वह भोजन कर ले परन्तु फिर भी उसके पति को उससे पूछना तो अवश्य चाहिये था। अपने पति के इसी तरह के व्यवहार से सुनन्दा का मन सदा दुखी रहता था। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि अगर उसके पति उससे भोजन के बारे में पूछ लेते तो उसका मान बढ़ जाता परन्तु न पूछने के कारण उसे लगा कि जैसे उसका मन कुचल कर रख दिया गया हो परन्तु तत्क्षण वह अपने को ही उलाहना देती हुई सोचती है कि मुझे इस बात पर गर्व करना चाहिये कि अपने पति और मित्रों को घर में बना सारा भोजन परोस देने के बाद उसके खाने के लिये भोजन नहीं रह गया है अतएव अपने पति के नाम पर भूखे रहकर वह पुण्य कमायेगी। ऐसा विचार कर वह स्वयं पर गौरवान्वित होती है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में भारतीय नारी का अद्‌भूत रूप चित्रांकित किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में पति भक्ति का जो रूप दिखाया गया है वह कल्पनातीत है।
3. प्रस्तुत अंश में सुनन्दा का चरित्र अपने चरमोत्कर्ष पर दिखायी देता है।

2.11 शब्दार्थ

शब्दार्थ	शब्दार्थ
तिरष्कृत – बहिष्कार	तल्ला – मंजिल
साभ्रांत – सभ्य	आलसभाव – आलसी
फिक्र – चिन्ता	तल्लीनता – एकाग्रता
बुजुर्गी – बुढ़ापा	गर्ज – जरूरत
स्पृहणीय – छूने योग्य	हौंस – इच्छा
कसूर – गलती	बिसारना – भूलना
खुफिया – जासूसी	मथना – उद्वेलित करना
विह्वल – दुखी	हठात् – जबरदस्ती
चित्त – मन	बेबस – मजबूर
बटलोई – दाल बनाने का बर्तन	गैर – अपरिचित
सुध – याद	प्रीति – प्रेम
उत्ताप– आवेश	अंकुश – बंधन
उत्तेजित – आक्रोश में आना	उन्नत – विकसित
औचित्य – उचित कारण	निरस्त्र – बिना अस्त्र के
रुष्ट – रूठना	ओट – आड़

2.12 सारांश

जैनेन्द्र जी एक सफल मनौवैज्ञानिक, सशक्त कथाकार थे। 'पत्नी' कहानी का मूल मन्तव्य, संवेद्य या प्रतिपाद्य भारतीय नारी की अन्तःव्यथा को व्यंजित कर उसके विद्रोह को स्वरूपाकार प्रदान करना है। इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'पत्नी' कहानी की समीक्षा, 'पत्नी' कहानी के मूल कथ्य, एवम् कहानी में व्यक्त भारतीय नारी की अन्तःव्यथा पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार जैनेन्द्र के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो सके हैं।

- जैनेन्द्र की कहानी कला को समझ सके हैं।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'पत्नी' कहानी की समीक्षा कर सकते हैं।
- 'पत्नी' कहानी के मूल मंतव्य से परिचित हो सके हैं।
- 'पत्नी' के मौन विरोध, स्वतन्त्रता आन्दोलन के परिवेश, करूणा अपूरित मातृ.हृदय एवम् विघटित दाम्पत्य जीवन से परिचित हों सके हैं।

2.13 अपनी प्रगति जाँचिए

1. 'पत्नी' कहानी का मूल मंतव्य अपने शब्दों में लिखिए।
2. कहानी के तत्वों के आधार पर 'पत्नी' की संक्षिप्त समीक्षा लिखिए।
3. 'पत्नी' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है–स्पष्ट कीजिए।
4. 'पत्नी' कहानी में संत्रस्त मौन की सशक्त अभिव्यक्ति की गयी है–स्पष्ट कीजिए।
5. 'पत्नी' कहानी विघटित दाम्पत्य जीवन को प्रदर्शित करती है'–स्पष्ट कीजिए।

2.14 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1. कहानीकार जैनेन्द्र की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।
2. कहानी में प्रयुक्त उर्दू के शब्दों को छांटकर अर्थ लिखते हुए एक चार्ट तैयार कीजिए।

2.15 स्पष्टीकरण के बिन्दु

द्वितीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

2.16 चर्चा के बिन्दु

द्वितीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

इकाई : 3

गैंग्रीन : अज्ञेय

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 कहानीकार अज्ञेयः संक्षिप्त परिचय

3.4 'गैंग्रीन' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

3.4.1 विषय.वस्तु का संगठन

3.4.2 शीर्षक

3.4.3 वर्णन और वातावरण

3.4.4 चरित्र.चित्रण

3.45 भाषा.शैली

3.4.6 कथोपकथन

3.5 एक रस जिन्दगी की घुटन का चित्रण

3.6 निराश जिन्दगी की संवेदन शून्यता का विश्लेषण

3.7 कुण्ठित मातृत्व और शिशु की स्थिति

3.8 व्याख्या खण्ड

3.9 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

3.10 सारांश

3.11 अपनी प्रगति जाँचिए

3.12 नियत कार्य/गतिविधियाँ

3.13 स्पष्टीकरण के बिन्दु

3.14 चर्चा के बिन्दु

3.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की तृतीय इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार अज्ञेय की जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- अज्ञेय के कहानी कला की विशेषताओं से परिचित हो पाएंगे।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'गैंग्रीन' कहानी की समीक्षा कर पाएंगे।

3.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की तृतीय इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत कहानीकार अज्ञेय के जीवन, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

अज्ञेय जी एक सफल मनौवैज्ञानिक, सशक्त कथाकार थे। इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'गैंग्रीन' कहानी की समीक्षा, कहानी के मूल कथ्य, कहानी में व्यक्त मध्यवर्ग की विवश नारी के यन्त्रवत् जीवन पर, एक रस जिन्दगी की घुटन एवम् निराश जिन्दगी की संवेदन शून्यता पर प्रकाश डाला गया है।

3.3 कहानीकार अज्ञेयः संक्षिप्त परिचय

अज्ञेय को प्रतिभा सम्पन्न कवि, कथाकार, शैलीकार, ललित निबंधकार, सम्पादक एवं सफल अध्यापक के रूप में जाना जाता है। इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कुशीनगर नामक ऐतिहासिक स्थान में हुआ।

अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि है। अनेक जापानी हाईकु कविताओं को अज्ञेय ने अनुदित किया। बहुआयामी व्यक्तित्व के एकांतमुखी प्रखर कवि होने के साथ–साथ वे एक सत्यान्वेशी पर्यटक तथा अच्छे फोटोग्राफर भी थे।

4 अप्रैल 1987 में दिल्ली में इनका देहावसान हुआ।

प्रारंभिक शिक्षा पिता की देखरेख में घर पर ही हुई जिसमें अज्ञेय जी ने संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, बांग्ला भाषा एवं साहित्य का अध्ययन किया। इंटर की पढ़ाई मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज से करने के बाद लाहौर के फर्मन कॉलेज से बी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त की। इसके पश्चात अंग्रेजी में एम.ए. करते समय क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न होने के कारण पढ़ाई छोड़ दी।

1930–36 तक अज्ञेय क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न होने के कारण जेल में रहे। 1936–37 में सैनिक और विशाल भारत नाम पत्रिका का सम्पादन किया। 1943–46 तक अज्ञेय ने ब्रिटिश सेना में कार्य किया उसके पश्चात इलाहाबाद से प्रतीक नामक पत्रिका निकाली। देश–विदेश की यात्राओं के दौरान केलीफोर्निया विश्वविद्यालय से और जोधपुर विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। दिल्ली में निवास के दौरान दिनमान साप्ताहिक, नवभारत टाइम्स, वाक और एवरीमेंस जैसी प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिकाओं का सम्पादन किया। 1980 में अज्ञेय ने वत्सलनिधि नामक न्यास की स्थापना की जिससे साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में विकास कार्य किया जा सके।

1964 में 'आंगन के पार द्वार' कविता संग्रह पर आपको साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ तथा 1979 में 'कितनी नावों में कितनी बार' कविता संग्रह के लिये भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया।

प्रमुख कृतियाँ

कविता संग्रह–

भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बावरा, अहेरी, इंद्रधनुष रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आंगन के पार द्वार, पुर्वा, सुनहरे शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूं, सागर मुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं, महावृक्ष के नीचे, नदी की बांक पर छाया, प्रिजन डेज एण्ड अदर्स पोयम (अंग्रेजी में) और कोई ऐसा घर आपने देखा है

कहानी संग्रह–

विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदौल, ये तेरे प्रतिरूप

उपन्यास–

शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने–अपने अजनबी

यात्रा वृतांत–

अरे यायावर रहेगा याद, एक बूंद सहसा उछली

निबंध संग्रह–

सबरंग, त्रिशंकु, आत्मने पद, आलवाल, आधुनिक साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य

संस्मरण–

स्मृति लेखा

डायरी–

भवन्ति, अन्तरा, शाश्वति

नाटक–

उत्तर प्रियदर्शी

विचार गद्य–

संवत्सर

प्रख्यात साहित्यकार अज्ञेय ने यद्यपि कहानियां कम ही लिखी हैं और एक समय के बाद कहानियां लिखना बिलकुल बंद कर दिया परन्तु हिन्दी कहानी को आधुनिकता की दशा में एक नया और स्थायी मोड़ देने का पूरा–पूरा श्रेय अज्ञेय को प्राप्त है। निःसंदेह वे आधुनिक साहित्य के एक शलाका पुरुष थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु के बाद एक दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

3.4 'गैंग्रीन' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

कहानी के तत्वों के आधार पर 'गैंग्रीन' कहानी की तात्विक समीक्षा प्रस्तुत है–

3.4.1 विषय.वस्तु का संगठन

'गैंग्रीन' कहानी सामाजिक समस्या, मनोविज्ञान चरित्र–विश्लेषण, कथानक–निर्माण आदि दृष्टियों से उत्कृष्ट कहानी है। कथानक मध्यवर्ग की विवश नारी के यन्त्रवत् जीवन पर आधारित है। उसमें भारतीय कुटुम्ब के बहुत बड़े अभाव व त्रुटि का विश्लेषण है जहाँ स्वस्थ विनोद और बौद्धिक मनोरंजन का अभाव है। निम्न पंक्तियाँ इसका सजीव चित्र उपस्थित कर देती हैं–

'मैंने देखा कि सचमुच इस कुटुम्ब में गहरी, भयंकर छाया घर कर गयी है, उसके जीवन के इस पहले ही यौवन में धुन की तरह लग गयी है, इसका बताना अभिन्न अंग हो गयी है कि वे उसे पहचानते ही नहीं, उसी की परिधि में घिरे हुए चले जा रहे हैं।"

'गैंग्रीन' पारिवारिक जीवन की कहानी है। इसमें मध्य वर्ग के परिवार की एक नारी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। कहानीकार भारतीय कुटुम्ब.प्रथा में नारी की विशेष त्रुटि का कलात्मक विश्लेषण करना चाहता है।

'गैंग्रीन' कहानी का कथा भाग बहुत संक्षिप्त और धुंधला है। 'गैंग्रीन' में कथानक के स्थान पर लेखक का विचार.प्रधान व्यक्तित्व ही विशेष रूप से उभरा हुआ है। यही कारण है कि परिस्थिति की व्याख्या तथा पात्रों के अभ्यस्त जीवन की विचारधारा के कारण कथा का सौन्दर्य नष्ट हो गया है। विषय.वस्तु में कोई रोचकता नहीं है। मनोवैज्ञनिक विश्लेषण मस्तिष्क के ऊपर भार बन कर छा जाता है। कहानी का कथानक इतना ही है कि लेखक ने घर की चहारदीवारी के भीतर आजीवन बन्दिनी नारी के जीवन का करूणा, सहानुभूतिपूर्ण, संवेदना.व्यंजक चित्र पाठकों के मस्तिष्क पटल पर अंकित कर दिया है।

'गैंग्रीन' कहानी की कथावस्तु बहुत ही संक्षिप्त है। सारी कथा उत्तम प्रसंगों में कही गई है। मालती का कोई बालसखा है, वह सारी कहानी कहता है। मालती शिक्षित है। उसका विवाह डॉक्टर महेश्वर से हो जाता है। डॉ. महेश्वर किसी पहाड़ी प्रदेश में सरकारी डिस्पेंसरी के डॉक्टर हैं।

मालती पति.गृह में है। इसी समय उसका बालसखा अचानक मालती का अतिथि बनकर पहुँच जाता है। मालती के एक शिशु भी हो चुका है। मालती उसका सत्कार करती है। किन्तु सत्कार में कोई विशेष रूचि नहीं होती। मालती का बंधा हुआ जीवन एक यन्त्र की तरह चल रहा है। न उसमें मनोरंजन की अभिलाषा है और न कोई आर्कषण ही है। मालती की इस स्थिति को देखकर उसके बालसखा को दुःख होता है। वह देखता है कि मालती का जीवन नीरस हो चुका है। उसके जीवन में एक यन्त्र की गतिमयता मात्र रह गई है पति के साथ भी बातें करने मे उसकी विशेष रुचि नहीं दिखाई पड़ती है। उसके हृदय में पुत्र के प्रति वात्सल्य की भी उमड़ती हुई भावना नहीं है। दीर्घ.श्वास प्रश्वास ही उसके जीवन के मात्र साथी बन गये है।

डॉ. महेश्वर का जीवन भी मालती की तरह ही नाली के बँधे हुए पानी की तरह बह रहा है। उसमें न कभी बाढ़ आती है और न ह्रास ही होता है। उनके जीवन में भी कोई नवीनता नहीं दिखाई पड़ती है। उनके जीवन को परिस्थितियों में जकड़ लिया है। ऐसा लगता है, जैसे महेश्वर और मालती के हृदय में कोई आन्तरिक वेदना घर किए हुए है। दोनों ही अपने जीवन के अभ्यस्त पथ पर आगे बढ़ते जा रहे हैं। उनके जीवन में कोई नवीन आकर्षण नहीं है। कहानीकार इस प्रकार इन दोनों की झाँकी प्रस्तुत कहानी में दिखाता है। वह परिणाम का कोई संकेत नहीं करता।

प्रस्तुत कहानी 'गैंग्रीन' का आरम्भ ही 'दोपहर' में उस घर के 'सूने आँगन में पैर रखते ही' से हुआ है जो उस बोझिल वातावरण को स्पष्ट कर देता है। सारे कथानक में दाम्पत्य जीवन–संघर्ष से दबी–मुसी, छटपटाती हुई, क्रियाशीलता से परे विश्व नारी की मूर्ति छायी रहती है। कथानक का विकास मनोविश्लेषण के आधार पर हुआ और अन्त कहानी के अधूरेपन को लिए हुए मनोभावों के उतार–चाढ़व के साथ हुआ है, उदाहरणार्थ–

'मालती चुपचाप आकाश में देख रही थी, किन्तु क्या चन्द्रमा को? या तारों को? ग्यारह के पहले घण्टे की खड़कन के साथ ही मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे–धीरे बैठने लगी और घण्टा–ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जाने वाली आवाज में उसने कहा– 'ग्यारह बज गए। "अधूरापन" और अनिश्चितता का यह सौन्दर्य प्रायः उनकी सभी कहानियों के अन्त की विशेषता है, क्योंकि वे कहानी को जीवन की अधूरी कहानी मानते हैं। उनके अंत पाठक की आत्मा को मथ डालते हैं।

3.4.2 शीर्षक

कहानी का शीर्षक 'गैंग्रीन' संक्षिप्त है। वह पात्रों, घटनाओं और भावों का प्रतिनिधित्व करता है। किन्तु शीर्षक में किसी प्रकार का आकर्षण या चमत्कार नहीं है। इसमें कौतूहल जागृत करने की शक्ति कम है। 'शीर्षक' वातावरण की सृष्टि की दृष्टि से जहाँ उपयुक्त है, वहाँ नीरस वातावरण, शुष्क और निगूढ़ वेदना की व्यंजना करता है।

3.4.3 वर्णन और वातावरण

वर्णन और वातावरण उपस्थित करने में अज्ञेय जी अपूर्व हैं। वर्णनों की कुशलता से वे जिस प्रभाव की सृष्टि करते हैं वह अनुपम होती है, वातावरण की साकार अभिव्यक्ति हो जाती है। 'गैंग्रीन' में ऊबे से भरे हुए नीरस, और यन्त्रवत् वातावरण जैसे सजीव हो उठा है। भोजन के विषय में मालती का कथन– " उहूँ मेरे लिए तो यह नयी बात नहीं है, रोज ही ऐसा होता है। फिर बच्चा रोता है तो पुनः कहती है – "हो ही गया है चिड़चिड़ा सा हमेशा ही ऐसा रहता है' और फिर दिन भर में काम करते–करते "तीन बजे गए", "चार बज गये" आदि द्वारा जीवन का यान्त्रिक और शमशानवत् वातावरण आँखों के आगे घूम जाता है। सारी मनहूसियत जैसे पाठक पर भी छा जाती है ओर वह भी 'आगन्तुक' के शब्दों में कह उठती है– "इस घर पर जो छाया घिरी हुई है, वह अज्ञात रहकर भी मानो मुझे भी वश में कर रही है।" वस्तुत' अज्ञेय के वर्णन बड़े ही चित्रात्मक और सशक्त होते हैं।

'गैंग्रीन' कहानी के कथोपकथन वातावरण को चित्रित करने में पूर्ण सहायक सिद्ध हुए हैं। इसमें कहानी के पात्रों की व्यंजनापूर्ण झाँकी देखने को मिल जाती है। कथोपकथनों से आभास होने लगता है कि मानों पात्रों के सिर पर जीवन का बहुत बड़ा बोझ लदा हुआ है, जिसके भार से वे दबे जा रहे हैं।

कथोपकथन मालती के नीरस जीवन को प्रकट कर देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह बातचीत करना ही नहीं चाहती। वह इसलिए बोलती है कि उसे बोलना है। 'गैंग्रीन' कहानी का प्रारम्भ और अन्त सफल वातावरण की सृष्टि से करते हैं। कहानी का प्रारम्भ वर्णात्मक होते हुए भी नीरस वातावरण का निर्देश कर देता है। प्रारम्भ का एक भी वाक्य अप्रासंगिक नहीं है। यह कहानी के मुख्य उद्देश्य और वातावरण की दृष्टि में सहायक होती है।

"दोपहर में उस घर के सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानो उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही है, उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य अस्पृश्य किन्तु फिर भी बोझिल और प्रकम्पमय और घना सा फैला रहा था।"

इसी प्रकार कहानी का अन्त व्यंजनापूर्ण है, जो कि वातावरण की एक एकरसता की छाया पाठकों के हृदय पर डाल देती है।

"ग्यारह से पहले घण्टे की धड़कन के साथ मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे. धीरे बैठने लगी और घण्टा.ध्वनि के कम्पन के साथ की मूक हो जाने वाली आवाज से उसने कहा – "ग्यारह बज गये!.......!

कहानी के मध्य में मालती द्वारा अनेक बार 'रोज' शब्द का प्रयोग वातावरण में नीरसता भर देता है। कथानक का चरम.बिन्दु उस स्थान पर आता है, जब मालती अपने एकलौते बेटे के चोट लगने पर अनमने भाव से कहती हैं :"इसको चोटें लगती ही रहती हैं रोज ही गिर पड़ता है।"

3.4.4 चरित्र.चित्रण

पात्रों के चरित्र.चित्रण में उनकी आयु मुखाकृति और आन्तरिक भावना का परिचय पाठकों को मिल जाता है। चरित्रों की विशेषताएँ मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर प्रकट होती है। सभी पात्र यथार्थ जीवन के हैं। उनमें स्वाभाविकता है। इनके जीवन में विद्रोह की भावना सुसुप्तावस्था में पड़ी हुई है। वातावरण की प्रधानता के कारण कहानीकार चरित्र.चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। वातावरण की सिद्धि के अनुसार ही पात्रों का चरित्र. चित्रण किया गया है।

अज्ञेय व्यक्ति–चरित्र के प्रमुख कहानीकार हैं। उनकी कहानियाँ प्रायः व्यक्ति–चरित्र के ही केन्द्र–बिन्दु पर टिकी हैं। चरित्र चित्रण में उन्होंने मनोविश्लेषण के द्वारा व्यक्ति के स्वभाव, ग्रन्थियों, प्रेरणाओं, अन्तर्द्वन्द्व आदि का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनके चरित्रों का विकास कहीं 'अहं' रूप में होता है, कहीं व्यक्तिगत प्रश्नों और मूल्य को लेकर विद्रोह के धरातल से चरित्र विश्लेषण होता है। सभी चरित्रों में मानवीय निष्ठा है और सभी पर आदर्शवाद का अप्रत्यक्ष अभाव है। 'गैंग्रीन' की मालती अनन्य वेदना, करूणा और विवशता को अपने अन्तर में छिपाये हुए भावी विद्रोह की प्रतीक सी लगती है। आगन्तुक मालती के भावों को पढ़कर बड़ी सूक्ष्मता से उनके मन को देखता है–

'उन आँखों में कुछ विचित्र–सा भाव था मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती बात को याद करने की, किसी बिखरे हुए वायुमंडल को पुनः जगाकर गतिमान करने की, किसी टूटे हुए व्यवहार तन्तु को पुरूज्जीवित करने की और चेष्ठा में सफल न हो रहा हो।'

इसके अतिरिक्त जिस कागज में आम लिपटे थे, उस पुराने अखबर के टुकड़े को संध्या के क्षीण प्रकाश में पढ़ना और लम्बी साँस लेकर फेंक देना मालती की गहरी घुटन को साकार कर देता है और बालक के गिरने पर सहज रूप से मालती का यह कथन– 'इसको चोटें लगती ही रहती हैं, रोज ही गिर पड़ता है।' सभी पाठकों के हृदय को, इस नीरसता के पीछे छिपी हुई मालती की अनन्य वेदना से, मथ डालता है और 'आगन्तुक' के स्वर में पाठक भी जैसे कह उठते हैं "माँ"! युवती माँ! यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है जो तुम मात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो......... और यह अभी, जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है।" अज्ञेय ने 'आगन्तुक' ने हृदय–मंथन को सम्मुख रखकर अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है। घर में आते ही मालती को देखकर वह सोचता है – "मुझे देखकर, पहचार कर उसकी मुझाई हुई मुख–निद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जगी–सी और फिर पूर्ववत् हो गयी। "फिर – मालती ने कोई बात ही नहीं की, यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसे आया हूँ– चुप बैठी है, फिर भी ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिए।"आदि पंक्तियाँ लेखक की मनोवैज्ञानिक शक्ति और वर्णन–कौशल का परिचय देती हैं।

3.4.5 भाषा.शैली

गैंग्रीन कहानी उत्तम पुरुष में हैं। इस शैली में कहानीकार की अनुभूति अभिव्यक्ति हुई है। कहानी में वर्णन की प्रधानता होने के कारण शैली व्यास.प्रधान हो गई है।

कहानी एक प्रत्यक्षदर्शी के द्वारा कही जाने के कारण प्रभावशाली हो गई है। भाषा और भावों को प्रेषणीयता पाठकों के हृदय में मालती के प्रति सहानुभूति जागृत कर देती है। कहानी की मुख्य संवेदना भी यही है।

कहानी के सृजन के पीछे कहानीकार के जो विचार अथवा उद्देश्य होते है। वह भाषा के विशिष्ट गुणों के कारण ही सुगठित रूप में प्रकट हो पाते है। 'गैग्रीन' कहानी के भाषागत विशिष्टताओं पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत कहानी की भाषा अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही भाव सबल और सम्प्रेषणीय बन पड़ी है।

कहानी में बोलचाल की सरल स्वाभाविक भाषा के साथ.साथ संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है। एक उदाहरण देखिये –

"दोपहर के उस सुने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानो उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो, उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना.सा फैल रहा था..........."

कहीं.कहीं पर काव्यमयी भाषा का प्रयोग हुआ है। निम्न उदाहरण में देखिये –

"मैंने देखा – पवन में चीड़ वृक्ष, गर्मी में सूखकर मटमैले हुए धीरे.धीरे गा रहे हैं – कोई राग जो कोमल है, किन्तु करूणा नहीं। अशान्तमय है, किन्तु उद्वेगमय नहीं....।

कहानी में स्वाभाविकता लाने के लिये कहानी की भाषा में सरलता, सहजता एवम् रोचकता का गुण होना अपरिहार्य है और यह गुण इस कहानी में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। सरलता, सहजता एवम् रोचकता आदि भाषागत गुणों के कारण हुआ है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

"काफी देर मौन रहा। थोड़ी देर तक तो मौन आकस्मिक ही था जिसमें मै प्रतीक्षा में था कि मालती कुछ पूछे, किन्तु उस के बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ कि मालती ने कोई बात ही नही की......... यह भी नही पूछा कि मै कैसा हूँ, कैसे आया हूँ ....चुप बैठी है, क्या विवाह के दो वर्ष में ही वह बीते दिन भूल गयी ? या अब मुझे दुर इस विशेष अन्तर पर रखना चाहती है? क्योंकि वह वही स्वच्छन्दता अब तो नही हो सकती.................पर फिर भी ऐसा मौन, पर फिर भी ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नही होना चाहिये............................. "

भाषा में प्रवाहमयता का अभाव भाव सम्प्रेषण में बाधक बनती है अतः कहानी की भाषा में ऐसा प्रवाह होना चाहिऐ जिसमे कि सम्वादों एवम् कथानक में सहज रूप से भाव प्रवाहमान हो सके और उसमें कही भी किसी प्रकार का भी व्यवधान न पड़े। गैग्रीन कहानी में प्रयुक्त भाषा में प्रवाहमयता का गुण अपने उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। एक उदाहरण दृष्टव्य है

"मेरी आहट, सुनते ही मालती बाहर निकली। मुझे देख कर, पहचान कर उस की मुरझायी हुयी मुखमुद्रा तानिक –से मीठें विस्मय से जागी और फिर पूर्ववत् हो गयी। उसने कहा, "आ जाओ।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये भीतर की ओर चली गयी। मैं भी उसके पीछे हो लिया।

भीतर पहुँच कर मैने पुछा, "वे यहाँ नही हैं? "

अभी आये नही, दतर में हैं। थोड़ी देर में आ जायेंगे।

कब के गये हुये हैं?

सबेरे उठते ही चले जाते हैं।

कहानी की भाषा पात्रानुकूल है और इसी कारण पात्रों की मनोदशा, बौद्धिकता एवम् उनके जीवन के यथार्थ को पाठको समक्ष उजागर करने में सफल है। उदाहरणार्थ–

"वही तीन बजे वाली बात मैने फिर देखी, अब की बार और उग्र रूप में। मैने सुना, मालती एक बिल्कुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यन्त्रवत वह भी थके हुये यन्त्र के से स्वर में कह रही है।, "चार बज गये" मानो इस अनैच्छिक समय गिनने.गिनने में ही उसका मशीन.तुल्य जीवन बीतता हो, वैसे ही जैसे मोटर का स्पीडोमीटर यन्त्रवत् फासला नापता जाता है।"

शब्दों के अर्थ ही महत्वपूर्ण नही होते, उनकी ध्वनि की भी अपनी एक विशिष्ट अस्मिता होती है। कई बार तो शब्द के अर्थ से उसकी ध्वनि ही अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। यह शाब्दिक ध्वन्यात्मकता प्रयुक्त कहानी में कहीं पात्रों की मनोदशा को उजागर करने में प्रयुक्त हुयी है तो कहीं वातावरण में सजीवता लाने के लिये। इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

– "घुटनों पर हाथ दे कर एक थकी हुयी 'हुँ' कह के उठी और भीतर चली गयी।"

– मालती टोक कर बोली 'अहुँ' मेरे लिये तो यह नयी बात नही है'.................रोज ही ऐसा होता है.... ......

– मेरे विचारों के साथ आँगन से आती हुयी बरतनों के घिसने की खन.खन ध्वनि मिल कर एक विचित्र स्वर उत्पन्न करने लगी "

– सभी आँगन में खुले हुये नल ने कहा– टिप.टिप.टिप.टिप.टिप.टिप.............!

– वह अपनी बड़ी.बड़ी आँखो से मेरी ओर देखता हुया अपनी मां से लिपट गया और रूआंसा.सा होकर कहने लगा ऊहुँ .ऊहुँ .ऊँ................।

अज्ञेय की भाषा में भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है। शब्दों का चुनाव, छोटे.छोटे वाक्यों का विन्यास देखते ही बनता है। उनका सारा सूक्ष्म.निरीक्षण भाषा के कौशल द्वारा ही सम्भव हो सका है, सुक्ष्मतम भावों को मूर्त रूप में सामने रखने का उनमें सामर्थ्य है। बच्चे के रोने की आवाज सुनकर, घुटनों पर हाथ टेक कर थकी हुई 'हुँहु' करके उठी में गिने.चुने शब्दों में भावों की गम्भीरता स्पष्ट हो उठी है।

गैंग्रीन कहानी पहाडी गाँव में बसे एक ऐसे परिवार की कहानी है, जिसमें पति.पत्नी दोनों शिक्षित हैं। अतः शिक्षित परिवारों की बोलचाल की भाषा कहानी में प्रयुक्त हुयी है जिसमें प्रभावोत्पादकता, भाव.सरलता, स्वाभविकता एवम् सपाटबयानी हेतु तद्भव, उर्दु एवम् अंग्रेजी के शब्दों का यदा कदा किन्तु अत्यन्त उपयुंक्ता के साथ प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ–

– आप के तो खाने का मजा क्या आयेगा ऐसे बेवक्त खा रहे है?

– महेश्वर ने बताया कि उन्हें आज जल्दी अस्पताल जाना है,

वहाँ एक.दो चिन्ताजनक केस आये हुये है, जिन का आपरेशन करना पड़ेगा...........।

– हाँ आज वह गैंग्रीन का आपरेशन करना ही पड़ा। एक कर आया हूँ, दुसरे को एम्बुलेन्स से बड़ा अस्पताल भिजवा दिया है।

– जिस कागज में वे (आम) लिपटे हुये थे, वह किसी पुराने अखबार का टुकडा था ।

– इस भयंकर गरमी के कारण वह अपने फुरसत के समय में भी सुस्त ही रहते हैं।

इसी प्रकार सवेरे, कमरा, हाथ, आखें जैसे तद्भव के, नजर, वक्त, जरूरी, मदद जैसे उर्दु के तथा डिस्पेन्री, डाक्टर, के जैसे अंग्रेजी के शब्दों का बड़ी कुशलता के साथ प्रयोग कहानी में दृष्टिगोचर होता है।

समग्रतः यही कहा जा सकता है की 'गैंग्रीन' कहानी के भाव सहज रूप में पाठकों तक सम्प्रेषित करने में अज्ञेय जी की भाषा शैली का योगदान अपुर्व है और कहानी की सफलता का बहुत कुछ श्रेय जनजीवन की आम भाषा और यथार्थपरक शैली को ही है।

3.4.6 कथोपकथन

कथोपकथन के अतिरिक्त अज्ञेयजी ने स्वकथोपकथन का भी आश्रय लिया है, मानव–हृदय के विकृत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में यह स्वकथोपकथन बड़े लाभकारी सिद्ध हुए हैं। उनके द्वारा वे सरलतापूर्वक पात्रों की मनोभूमि में उतर सके हैं।

'गैंग्रीन' में इस प्रकार के वार्तालाप अधिक नहीं है। मालती ही स्वतः ही जब कहने लगती है– 'ग्यारह बज गए?' आदि–आदि, तो उन छोट–छोटे से वाक्यों में उसकी नीरव–मूक आवाज मूर्त हो उठती है। यूं अज्ञेयजी के कथोपकथन छोटे ओर व्यंजनात्मक होते हैं। उदाहरणार्थ 'रोज' में–

"कहाँ गयी थीं?

"आज पानी ही नहीं है, बर्तन कैसे मँजेंगे।

"क्यों पानी को क्या हुआ।"

रोज ही होता है–कभी वक्त पर तो आता ही नहीं। आज शाम को सात बजे आयेगा, तब बर्तन मँजेंगे।"

'रोज ही होता है'– में अद्भुत व्यंजना है, विवश करूणा की दबी–सी पुकार है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सत्य/असत्य लिखिए

1. कथानक मध्यवर्ग की विवश नारी के यन्त्रवत् जीवन पर आधारित है।
2. 'गैंग्रीन' में कथानक के स्थान पर लेखक का विचार.प्रधान व्यक्तित्व ही विशेष रूप से उभरा हुआ है।
3. 'गैंग्रीन' कहानी का कथा भाग बहुत संक्षिप्त और धुंधला है।
4. कथानक का विकास मनोविश्लेषण के आधार पर हुआ और अन्त कहानी के अधूरेपन को लिए हुए मनोभावों के उतार–चाढ़व के साथ हुआ है,।
5. वातावरण की सिद्धि के अनुसार ही पात्रों का चरित्र.चित्रण नहीं किया गया है।

प्रश्न 2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

मनोदशा, व्यक्ति–चरित्र, मनोविश्लेषण, स्वकथोपकथन, वर्णन, मनोवैज्ञानिक, नीरसता, सजीवता

1. कहानी के मध्य में मालती द्वारा अनेक बार 'रोज' शब्द का प्रयोग वातावरण में ————भर देता है।
2. कथानक का विकास ——————के आधार पर हुआ और अन्त कहानी के अधूरेपन को लिए हुए मनोभावों के उतार–चाढ़व के साथ हुआ है,

3. चरित्रों की विशेषताएँ -----------पृष्ठभूमि पर प्रकट होती है।

4. अज्ञेय -----------के प्रमुख कहानीकार हैं।

5. कहानी में ----------की प्रधानता होने के कारण शैली व्यास.प्रधान हो गई है।

6. कहानी शाब्दिक ध्वन्यात्मकता में कहीं पात्रों की -------- को उजागर करने में प्रयुक्त हुयी है तो कहीं वातावरण में -----------लाने के लिये।

7. कथोपकथन के अतिरिक्त अज्ञेयजी ने -----------का भी आश्रय लिया है,

3.5 एक रस जिन्दगी की घुटन का चित्रण

जीवन की एकरसता मन को सदैव खिन्न बना देती है। वातावरण का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है और धीरे.धीरे मनुष्य की इच्छाये दमित होती चली जाती है। रोज़ कहानी में यह घुटन स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वातावरण के प्रभाव ने जीवन को अपने शिकंजे में कुछ इस तरह से कस लिया है कि जीवन का उल्लास और बीते हुये समय की स्मृतियां भी कुहासे में चली गई है। मालती का जीवन इस गहरे सन्त्रस्त वातावरण की जीती जागती मिसाल बनकर उजागर हुआ है।

'गैग्रीन' कहानी ऐसे परिवार की कहानी है जिसमें पति.पत्नी दोनों पढ़े.लिखे है पति डॉक्टर है, पत्नी घरेलू महिला है पति का स्थानान्तरण एक ऐसे पहाडी प्रदेश में हो जाता है जो शहर की तड़क. भड़क से दूर है जहॉं जीवन बहुत धीमी गति से चलता है जहॉं बाजार, पार्क रेस्टॉरेन्ट, लम्बी चौड़ी सड़के, पढ़.लिखा, पास.पडौस कुछ भी नहीं हैं

पत्र.पत्रिका तो असम्भव है पेपर भी बड़ी मुश्किल से प्राप्त होता है। बिजली भी अधिकतर गुल रहती है। पानी भी कम आता है जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए मालती का मन तरसता है, चहल.पहल नही है इसलिए मालती को सूनापन बहुत खलता है। मालती का व्यक्तित्व उस सूनेपन को अपने जीवन में ही उतार लेती है जिससे उसका जीवन ही नीरस हो जाता है उसके जीवन से उल्लास उमंग गायब है उसके परिवार में एक रस जिन्दगी की घुटन है।

वहॉं उन लोगों का जीवन उन्हें यन्त्रणा सा प्रतीत होता है पति तो फिर भी बाहर अस्पताल में कार्य करने जाता है परन्तु मालती से बात करने वाला भी कोई नहीं रहता है। मालती न तो अपने पति के कार्य से सन्तुष्ट दिखाई पड़ती है और न ही पुत्र के प्रति कोई विशेष आकर्षण उसके मन में विद्यमान है। महेश्वर अस्पताल से गैंग्रीन का आपरेशन कर जब घर आता है और यह बताता है कि कांटा लग जाने से पैर सड़ता जा रहा तो मरीज से बचाने के लिये पैर काटना पड़ा तो मालती का यह कथन पति के कर्तव्य की उलाहना बनकर अभिव्यक्त होता दृष्टिगोचर होता है– 'हां केस बनते देर क्या लगती है? कांटा चुभा था, उस पर टांग काटनी पड़े यह भी कोई डॉक्टरी है? हर दूसरे दिन किसी की टांग, किसी की बांह काट आते हैं, इसी का नाम है अच्छा अभ्यास।'

उसका एक बेटा है मालती को उससे भी वह प्रीती नहीं रहती जो एक मॉं को रहती ही है। पुत्र का रोना या सोते हुये बिस्तर से गिर पड़ना भी मालती के लिये चिन्ता का विषय नहीं होता। वातावरण की शून्यता ने उसे अपने आगोश में इस तरह आबद्ध कर लिया है कि वह मातृत्व भाव से भी वंचित दृष्टिगोचर होती है– 'मालती ने रोते हुए शिशु को मुझसे लेने के लिए हाथ बढ़ाते हुए कहा– इसको चोटें लगती ही रहती है। रोज ही गिर पड़ता है।' पुत्र का रूदन भी मालती को आकर्षित नहीं करता। वह यह जानने की कोशिश भी नहीं करती कि पुत्र के रूदन का कारण क्या है। पुत्र के रोने पर वह कहती है– 'हो ही गया है चिड़चिड़ा.सा, हमेशा ही रोता रहता है।'

फिर बच्चे को डांटकर कहा – चुपकर। जिससे वह और भी रोने लगा। मालती ने पुत्र को भूमि पर बैठा दिया और बोली– अच्छा ले रो ले और रोटी लेने आंगन की ओर चली गई।

पति महेश्वर व्यवहार कुशल है परन्तु वह भी गैंग्रीन के एक जैसे मरीज का इलाज करते.करते नीरसता महसूस करते है और अपनी प्रैक्टिस में इसे उपयोगी नहीं समझते हुए। निर्विकार भाव से मरीजों को आप्रेशन कर देते है। जिसमें मरीज को बस कॉटा ही चुभा होने पर गैग्रीन हो जाता है।

कहानी गतिमान होती है जब मालती का भाई उसके घर आता है और आते से ही वह कुछ अलग सा वातावरण महसूस करता है "दोपहर में उस सूने आंगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा, उस पर किसी शाप की छाया मंडरा रही हो, उस के वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य अस्पृश्य, किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना सा फैल रहा था। वह चुपचाप सभी स्थितियों का विश्लेषण अपने मन में करने लगता है और सोचता रहता है कि ऐसा क्या है?

जब मालती का भाई घर पर आता है तो उसे कुछ अजीब सा माहौल प्रतीत होता है मालती अपने भाई से भी निर्विकार भाव से मिलती है। जिसे देखकर उसका भाई मन.ही.मन सोचता है। "मालती कुछ पूछे, किन्तु उस के बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ, मालती ने कोई बात हीं नहीं की...................... यह भी नहीं पूछा कि मै कैसा हूँ, कैसे आया हूँ?

मालती मौन धारण किये रहती जो प्रायः अजनबी से भी नहीं किया जाता है।

जब भाई के पूछने पर की मेरा आना अच्छा नही लगा क्या? तो वह चुपचाप देखती मात्र है कुछ कहने की, हंसने की चेष्टा करती है पर उससे वह नहीं बन पाता।

उसका अन्तरमन उस सूनेपन में दबकर रह जाता है। उसके हृदय के सारे स्थाई भावों को उसने सूनेपन और निराशा के नीचे दबा लिये है। अब कोई भी हलचल होने पर वह निराश ही रहती है संज्ञाहीन सी निरन्तर यन्त्रवत अपना कार्य करती रहती है और समय के बीतने पर उसे लगता है चलो एक घन्टा और कट गया।

मालती का भाई मालती के व्यवहार को समझने की कोशिश करता है फिर देखता है की "तीन बजे वाली बात मैंने फिर देखी, अब की बार और उग्र रूप में मैंने सुना, मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस यन्त्रवत् वह भी थके हुए यन्त्र के से स्वर में कह रही है, "चार बज गये" ऐसा नहीं था कि मालती से ऐसे ही थी। बचपन की मालती को उसका भाई याद करते हुये मन.ही.मन कहता है। वही उद्धत और चंचल मालती आज कितनी सीधी हो गयी है, कितनी शान्त, और एक अखबार के टुकड़े को तरसती है।

कई वर्ष बाद अपने दूर के रिश्ते में भाई लगने वाले सखा से मिलने पर भी उसकी नीरसता में कोई परिवर्तन नहीं आना, काफी देर बाद उसके आने का कारण पूछना और बहुत देर बाद कब तक रहोगे यह जानने की कोशिश करना आदि यह सिद्ध करता है कि उसने एक रस वातावरण को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया है और उसमें कुछ इस तरह आबद्ध हो गई है कि उसे अब पृथक कर नहीं देखा जा सकता।

इतना ही नहीं मालती के लिये पूरा दिन घण्टो में बँटा हुआ है और जब.जब अस्पताल से घण्टे बजने की आवाज आती है तो वह बहुत ही उदास और बोझिल मन से बुदबुदाती सी नजर आती है कि अब तीन बज गये या चार बज गये। पहाड़ों में गर्मी का वातावरण है जो जीवन को नीरस और ऊबाऊ बना देता हैं जिससे नीरसता अपने आप व्यक्तित्व में बसती जाती है। पहाड़ो का कठिन जीवन मालती और महेश्वर को भी कठिन लगता हैं दुर. दुर तक पैदल चल कर जाना पहाड़ो की मजबूरी होती है। पहाडों जैसी कठोरता दोनो में दिखाई पड़ती जहॉ महेश्वर रोज.रोज़ एक जैसे आपरेशन, मरीजो के कारण संवेदनहीन है तो मालती घर में रहकर निराश, हो गई है।

मालती को इस छोटी सी जगह में कई कष्टों को सहन करना पड़ता है। रोज, सूरज का उगना और ढल जाना होता है। पर उसमें नया कुछ नहीं होने के कारण वह कुण्ठित हो जाती हैं। मालती के लिए दिनचर्या यन्त्रवत है। सूर्योदय और सूर्यास्त में उसके लिये कोई अन्तर नहीं है। पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति मालती की उदासीनता से यह प्रकट होता है कि जैसे उसने अपने जीवन में कोई अमुल्य चीज खो दी हो और उसे जो कुछ मिला है उससे वह सन्तुष्ट नहीं है इसीलिये उसके मन में उपेक्षा के भावों की यह शून्यता घर कर गई है।

कम बोलना, संवेदना हीनता का आ जाना यन्त्रवत, बन जाना एक.एक पल का मुश्किल से बीतना जब हमेशा से व्यक्तित्व में यथार्थ के साथ स्वीकार कर लिए जाते हैं। तो कल्पना रस, का उसमें कोई स्थान नहीं रह पाता जिन्दगी में घुटन धीरे.धीरे फैलने लगती है। जो इस कहानी में बड़ी कला के साथ प्रदर्शित होती है।

3.6 निराश जिन्दगी की संवेदन शून्यता का विश्लेषण

जीवन में निवास स्थान के वातावरण का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। 'गैंग्रीन' कहानी के महेश्वर और मालती जिस स्थान पर निवास करते है। वहाँ का परिवेश अत्यन्त शुष्क है। महेश्वर शासकीय चिकित्सालय के डाक्टर है। अतएव उनका अधिकांश समय अस्पताल में व्यतीत हो जाता है। किन्तु उसके बाद भी जब वे परिवार के साथ रहते है। तो वातावरण की शुष्कता उनके व्यवहार में दृष्टिगोचर होती है। वे पत्नी के साथ या पुत्र के साथ मनोरंजक वातावरण का निर्माण करने की कोशिश नहीं करते है। जिसमें परिवार की शून्यता समाप्त हो सके।

मालती का सारा समय घर में ही व्यतीत होता है अतएव उसे और भी एकाकीपन का अनुभव होता है। जिस परिवेश में यह परिवार निवास करता हैं वहाँ का वातावरण अत्यन्त शुष्क और उजाड़ है। अतः उनका व्यवहार भी उसी वातावरण में रम सा गया है। जिसके कारण पारिवारिक वातावरण अत्यन्त बोझिल और शुष्कतामय हो गया है। मालती के जीवन में किसी प्रकार की नवीनता और उत्साह नहीं दिखाई पड़ता है। पुत्र का नाम पुछने पर मालती ने बच्चे की और देखते हुए उत्तर दिया– "नाम तो कोई निश्चित नही किया वैसे टिटी कहते है" एकमात्र पुत्र का नामकरण तक ना करना उसकी और परिवार की उदासीनता का अनूठा उदाहरण है।

गृहकार्य को बोझ समझती हुई मालती कई बार ऐसा दृश्य प्रस्तुत करती है। जिससे ऐसा लगता है। कि वे अपना जीवन जीने के बाध्य है। उसके जीवन में न तो कोई उत्साह है। और न ही कोई उमंग है। बिजली का बार.बार गुल होना। पानी का समय समय चला जाना जीवन की निरन्तरता में बाधा उत्पन्न करते है। यहाँ तक कि पति.पत्नी एक साथ बैठकर भोजन भी ग्रहण नहीं करते है और शायद उसकी पहल भी कभी नहीं की गई है।

महेश्वर और मालती दोनों पर आवासीय वातावरण का प्रभाव इतना आच्छादित हो गया है कि वे दैनिक जीवन को भी बोझ समझ कर व्यतीत करते हैं। कहानी में कई स्थलों पर महेश्वर और मालती के माध्यम से यह तथ्य स्पष्ट किया गया है। घर में पानी के न होने पर मालती कहती है– "रोज ही होता है–कभी वक्त पर आता नहीं। आज शाम को सात बजे आयेगा, तब बर्तन मँजेंगे।" इसी प्रकार जब महेश्वर से चिकित्सकीय अभ्यास की बात की गई तो वे कहते है। "हाँ मिल हो जाते है। यही ग्रैंग्रीन, हर दूसरे, चौथे दिन एक केस आ जाता है। प्रायः एक जैसे गैंग्रीन के मरीज वहाँ अधिक है जिनका ऑपरेशन करते वक्त हाथ.पैर काटना ही पड़ जाता है। जो निराशा को अधिक बढ़ाती है, नया सृजनात्मक कार्य नहीं होता है तो निराशा बढ़ना स्वाभाविक है।

वे लोग जिस परिवेश में रहते है। वहाँ जीवन में कुछ उमंग पैदा करने वाली वस्तु नहीं है और तो और वहाँ समाचार.पत्र भी उपलब्ध नहीं हो पाता है। तो समय काटना बहुत ही भारी लगता है। मालती ने भीतर जा कर आम उठाये और अपने आँचल में डाल लिये। जिस कागज में वे लिपटे हुए थे, वह किसी पुराने अखबार का टुकड़ा

था। मालती चलती.चलती संध्या के उस क्षीण प्रकाश में उसी को पढ़ती जा रही थी.. वह नल के पास जा कर खड़ी रही। जब दोनों ओर पढ़ चुकी तब एक लम्बी साँस लेकर उसे फेंककर आम धोने लगी''

मनोरंजन के साथ.साथ समाज दुनियाँ से जुड़े रहना भी निराशा के भाव को कम करता है। परन्तु मालती और महेश्वर ऐसे स्थान पर रहते है जहाँ समाचार–पत्र का मिलना भी मुश्किल है दैनिक कार्य से निराशा आने लगती है। मालती के जीवन में भी ऐसी ही निराश जिन्दगी की छाया व्याप्त है और वह अपने भाई के आने पर भी खुश नहीं होती है। बल्कि निर्विकार भाव से चुप रहती है।

''मैं ने कुछ खिन्न.सा होकर दूसरी और देखते हुए कहा, ''जान पड़ता है, तुम्हे मेरे आने से विशेष प्रसन्नता नहीं हुई–'' उस ने एकाएक चौंक कर कहा हूँ?''

यह 'हूँ' प्रश्न.सूचक था, किन्तु विस्मय के कारण। इसलिए मैं ने अपनी बात दुहरायी नहीं चुप बैठा रहा। मालती कुछ बोली ही नहीं तब थोड़ी देर बाद मैं ने उस की ओर देखा। वह एकटक मेरी और देख रही थी, किन्तु मेरे उधर उन्मुख होते ही उस ने आँखे नीची कर ली फिर भी मैंने देखा, उन आँखों में कुछ विचित्र.सा भाव था, मानो मालती के भीतर कहीं कुछ चेष्टा कर रहा हो, किसी बीती हुई बात को याद करने की, किसी बिखरे हुए वायुमण्डल को पुनः जगाकर गतिमान करने की, किसी टूटे व्यवहार.तन्तु को पुनरूज्जीवित करने की, और चेष्टा में सफल न हो रहा हो.........वैसे जैसे बहुत देर से प्रयोग में न लाये हुए अंग को व्यक्ति एकाकए उठाने लगे और पाये कि वह उठता ही नही है, चिरविस्मृति में मानो मर गया है, उसके क्षीण बल से उठ नहीं सकता.......मुझे ऐसा जान पड़ा मानो किसी जीवित प्राणी के गले में किसी मृत जन्तु का तौक डाल दिया गया हो, वह उसे उतार कर फेंकना चाहे पर उतार न पाये। मालती के जीवन में निराशा इतनी गहराई से छाई हुई है की वह संवेदनशून्य हो गई है।

उसके हृदय में निहित स्थाई भाव उस निराशा के नीचे दब गये है अब कोई भी हलचल होने पर वह निराश ही रहती है। संज्ञाहीन सी निरन्तर अपना कार्य करती है और समय के कट जाने का यन्त्रवत इंतजार करती है।

इस प्रकार निराश जिन्दगी की संवेदन शून्यता का मार्मिक विश्लेषण अज्ञेय जी इस कहानी के माध्यम प्रस्तुत किया है।

3.7 कुण्ठित मातृत्व और शिशु की स्थिति

किसी भी माँ के लिये पुत्र अमुल्य निधि की तरह होता है। रोज़ कहानी में मालती की स्थिति इसके विपरीत दृष्टिगोचर होती है। वह अपने पुत्र टिटी के लिये बहुत उत्सुक और प्रसन्नचित नहीं दिखाई पड़ती है। टिटी का रूदन, उसकी बाल सुलभ चंचलता भी उसे आकर्षित नही करती है। इसीलिये वह बार.बार उसके रूदन पर खीझ भी जाती है– ''मालती बच्चे को गोद में लिये हुए थी। बच्चा रो रहा था पर उसकी ओर कोई ध्यान नही दे रहा था।

मैंने कहा– यह रोता क्यों हैं?

मालती बोली– हो ही गया है चिड़चिड़ा.सा, हमेशा ही रोता रहता है। फिर बच्चे को डाँटकर कहा– चुपकर! जिससे वो और भी रोने लगा। मालती ने पुत्र को भूमि पर बैठा दिया बोलो– अच्छा ले रो ले! और रोटी लेने आँगन की ओर चली गयी।

मालती का मातृत्व भी इस पिछड़े इलाके में रहकर कुण्ठित होने लगा था रोज का समय काटना उसके लिए बड़ा भारी काम था बच्चे का रोना भी उसे विचलित नहीं करता है और वह शिशु उस कुण्ठित मातृत्व को सहन करने के लिए विवश सा प्रतीत होता है।

मालती के मन पर वातावरण का प्रभाव इतना अधिक दिखाई पड़ता है कि उसके मन पर एकमात्र पुत्र के प्रति भी वात्सल्य का भाव मृतप्राय .सा हो गया है। रात्रि में सोते हुये पलंग से जब टिटी गिर पड़ता है और उसके गिरने पर मालती का यह कथन उसके समूचे व्यक्तित्व की व्याख्या करता हुआ सा प्रतीत होता है–"इसको चोटे लगती ही रहती है, रोज़ ही गिर पड़ता है।" मालती द्वारा टिटी की यह उपेक्षा भाव शुन्यता की पराकाष्ठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उसके भीतर मातृत्व के भाव मर से गये है। उसे इकलौते पुत्र को चोटग्रस्त होने का दर्द भी नही है।

ऐसे पारिवारिक वातावरण में पुत्र की देखभाल न तो माता के द्वारा हो पाती है और न ही पिता का प्यार प्राप्त हो पाता है। टिटी जब माँ के पास जाने के लिये रूदन कर रहा था तब वहाँ पर महेश्वर में मौजुद थे और मालती बरतन साफ कर रही थी। तब महेश्वर ने कहा– "उधर मत जा" और उसे गोद में उठा लिया। वह मचलने और चिल्ला.चिल्लाकर रोने लगा। तब महेश्वर बोले–"अब रो.धोकर सो जायेगा, तभी घर में चैन पड़ेगी।"

महेश्वर और मालती दोनों ही परिवार में यन्त्रवत जीवन व्यतीत कर रहे हैं जिसका प्रभाव पुत्र पर दिखाई पड़ता है उसका रोना भी वे समझ नही पाते। जब तक बालक बोलना नहीं सीखता तब तक उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम रूदन ही रहा करती है और माता.पिता बच्चे को रूदन से ही उसके सुख.दुख और माँग.पुर्ति का अभिप्राय किया करते है तथा उसकी इच्छायें पूर्ण किया करते है। किन्तु इस कहानी में टिटी का लालन.पालन इस सिद्धान्त के ठीक विपरीत परिस्थितियों में हो रहा है।

जहाँ संवेदना मर जाती है। व्यक्ति प्रयोगवादी बन जाता है। मालती का मातृत्व भी प्रयोगवादी बन गया है। बच्चे के गिरने पर भी वह यह सोचती है। यह तो गिरता ही रहता है। इसके लिए क्या संवेदना प्रकट की जाएँ और सहजता से उसे स्वीकार कर लेती है। जो मातृत्व के व्यवहार के सर्वथा विपरीत है। जिससे पता चलता है कि मालती में कुण्ठा घर कर गई है। जो शिशु के रोने गिरने पर भी सामान्य बनी रहती है।

इसी तरह मालती माँ के कर्तव्य भी यन्त्रयत् करती हैं उसमें भावशुन्यता बहुत अधिक गहराई तक बैठ गई जिससे शिशु उस मातृत्व से वंचित रह जाता है जो एक माँ से प्राप्त होना चाहिये। वह उस संवेदनाओं से अपरिचित रहेगा और यन्त्रवत् ही उसका व्यवहार हो ऐसी सम्भावनाओं अधिक बढ़ाता हैं।

3.8 व्याख्या खण्ड

1– दोपहर में उस घर के सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे जान पड़ा मानों उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही है। उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य, अस्पृश्य किन्तु फिर भी बोझिल और प्रकम्पमय और घना–सा फैल रहा था....

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'गैंग्रीन' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रयोगवादी विचार धारा के प्रवर्तक अज्ञेय है।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में कहानीकार अपनी बाल सखा और रिश्ते में दूर की बहन से मिलने उसके घर पहँचाता है जैसे ही वह उसके घर के द्वार पर आता है उसे ऐसा लगाता है कि उस घर मे कोई श्राप सा व्याप्त है जो इस घर की खुशी, आनंद और उत्साह को खा चुका है और इस घर मे सन्नाटा, बोझिल वातावरण की सघनता ही शेष रह गई है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में कहानीकार जैसे ही अपनी बाल सखा मालती के घर के दरवाजे पर पहुँचते हैं। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस घर में किसी के श्राप की छाया मंडरा रही है। दोपहर के वातावरण में वैसे

ही शांति होती है किन्तु उसके घर के सूने आँगन में यह प्रतीत हुआ जैसे उस घर मे कोई हंसी–खुशी का वातावरण ही नहीं है। कहानीकार को ऐसा लगा जैसे इस घर के चारो ओर कुछ न कहा जाने योग्य, स्पर्श न करने योग्य परन्तु फिर भी बहुत बोझिल सा और भीतर तक कम्पित कर देने वाला सन्नाटा अत्यन्त सघन होकर इस घर के भीतर तक फैल गया है। जो किसी को भले ही दिखाई न दे परन्तु उसे महसूस जरूर किया जा सकता है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश कहानीकार ने परिवार की नीरसता और शून्यता का बहुत सुन्दर चित्र आरम्भ में ही प्रस्तुत कर दिया है।
2. प्रस्तुत अंश मे घर में छाये सन्नाटे को कहानीकार ने भाषाई विलक्षणता के साथ प्रस्तुत किया है।

2– मालती एक बिलकुल अनैच्छिक अनुभूतिहीन, नीरस, यन्त्रवत् वह भी थके यन्त्र की भांति–स्वर में कह रही है– चार बज गये। मानों अनैच्छिक समय गिनने में ही उसका मशीनतुल्य जीवन बीतता हो, वैसे ही जैसे मोटर का स्पीडो मीटर उसका यन्त्रवत् फासला नापता जाता है, और यन्त्रवत् विश्रांत स्वर में कहता है (किससे ?) कि मैने अपने अमित शन्यू पथ का इतना अंश तय कर लिया।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'गैंग्रीन' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रयोगवादी विचार धारा के प्रवर्तक अज्ञेय है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में कहानीकार ने मालती के यन्त्रवत् जीवन को विश्लेषित किया है। जिस प्रकार यन्त्र में कोई संवेदना, स्पन्दन और मानवता नहीं होती उसी तरह मालती की दिनचर्या में इस तरह के किसी भाव के लिये स्थान शेष नहीं रह गया है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में कहानीकार ने मालती के जीवन को देखकर यह अनुमान लगाया कि वह किसी भी कार्य में सुख का अनुभव कर नहीं करती है। वह हर कार्य बिना किसी इच्छा के, अनुभूतिहीन, राग–विराग से मुक्त एक मशीन की भाँति, इतना ही नहीं एक थकी हुई मशीन की तरह समय गिनती हुयी करती रहती है और इसी में उसका दिन कट जाता है। उसे देखकर ऐसा लगता है कि बिना किसी इच्छा के मात्र समय गिनने में ही उसका दिन व्यतीत हो जाता है। जैसे किसी मोटर की दूरी मापक यन्त्र उस वाहन के रूकने पर निर्धारित समय में नापी गई दूरी बता देता है और बताने के लिये उसके पास कोई निश्चित व्यक्ति नहीं है। बस अनायास ही वह अपनी दूरी कह जाता है कि उसने अपनी इतनी निराकार शून्य की दूरी तय कर ली है। उसी तरह मालती इस घर में रहती हुई अपने आप से ही समय की गणना करती–बताती दिखाई पड़ती है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में निरूद्देश्य जीवन का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में जीवन की नीरसता के लिये स्पीडोमीटर का उदाहरण प्रस्तुत कर अद्वितीय तुलना की गई है।

3– एक छोटे क्षण भर के लिए में स्तब्ध हो गया। फिर एकाएक मेरे मन ने समूचे अस्तित्व ने, विद्रोही के स्वर में कहा–कहा मेरे मन के भीतर ही, बाहर एक शब्द भी नहीं निकला –"माँ! युवती माँ! यह तुम्हारे हृदय को क्या हो गया है, जो तुम एक मात्र बच्चे के गिरने पर ऐसी बात कह सकती हो .... और यह अभी जब तुम्हारा सारा जीवन तुम्हारे आगे है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'गैंग्रीन' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रयोगवादी विचार धारा के प्रवर्तक अज्ञेय है।

प्रसंग : मालती का एकमात्र पुत्र जब सोते हुए पंलग से गिर पड़ता है और उसके मुंह से चीख निकल जाती है। लेकिन मालती निर्विकार भाव से कहती है कि यह तो रोज ही गिर जाता है और इसे चोटे लगती है। प्रस्तुत गद्यांश में इसी प्रसंग में कहानीकार अपनी मनोदशा का चित्रण करता हुआ कहता है कि–

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में कहानीकार अपनी मनोदशा का चित्रण करता हुआ कहता है कि एक क्षण के लिये तो वह स्तब्ध रह गया जब बालक के पलंग से नीचे जमीन पर गिर पड़ने पर उसकी माँ मालती ने यह कहा कि यह तो रोज की गिरता रहता है और उसे चोटें लगती रहती है। मालती का अपने बच्चे के प्रति ऐसा व्यवहार देखकर कहानीकार का समूचा अस्तित्व ही हिल गया था। उसके मन में विद्रोह के भाव पैदा हो गये वह कहना चाहता था किन्तु कह नहीं पाया। मन ही मन उसने यह सोचा कि यह कैसी माँ है और वह भी युवा माँ। उसके मन में तो बालक के लिये अत्यन्त वात्सल्य होना चाहिये। वह उसका इकलौता बेटा है। फिर भी उसके हृदय में उसके लिए कोई कसक नहीं है। उस बालक के गिरने पर तुम्हारे मुख से उसके लिये ऐसे शब्द कैसे निकल सकते हैं। उसे तो जरा सी खरोंच आने पर तुम्हें तड़प जाना चाहिये था। इस तरह की उदासीनता इस समय तुम्हारे अन्दर पनप गयी है। जबकि तुम्हारा पूरा जीवन तुम्हारे सामने खड़ा हुआ है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश ने माँ की बच्चे के प्रति उदासीनता का सुदर वर्णन किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में कहानीकार ने माँ की मनोदशा का प्रभावी चित्र प्रस्तुत किया है।
3. प्रस्तुत अंश में कहानीकार ने युवा माँ की मनोदशा और उसके भविष्य को संकेत कर आने वाले समय का चित्रण किया गया है।

4– और, तब एकाएक मैंने जाना कि वह भावना मिथ्या नहीं है। मैंने देखा कि सचमुच उस कुटुम्ब में कोई गहरी, भयंकर छाया घर कर गयी है, उनके जीवन के इस पहले ही यौवन में घुन की तरह लग गयी है, उनका इतना अभिन्न अंग हो गयी है कि वे उसे पहचानते ही नहीं, मैंने उस छाया को देख भी लिया।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'गैंग्रीन' से उद्घृत किया गया है इस कहानी के लेखक प्रयोगवादी विचार धारा के प्रवर्तक अज्ञेय है।

प्रसंग : बालक के पलंग के नीचे गिरने पर मालती का निर्विकार भाव से यह कहना कि यह तो रोज ही गिरता है, रोज ही चोटें लगती है। तब कहानीकार को यह प्रतीत हुआ कि इस पर मे नीरसता इतनी घर कर गयी है कि उसे पहचान पाना इनके बस की बात नही रह गई है जिसे लेखक ने जान लिया था। इसी प्रसंग में कहानीकार यह बताता है कि–

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में कहानीकार यह बताता है कि मालती का यह निर्विकार भाव जब अपने बालक के लिये इतना विशादकारी हो गया है तो वह अपना जीवन कैसे आनन्दमय व्यतीत कर सकती है। उसको मालती की भावना का आभास हो गया था कहानीकार कहता है कि मुझे इस घर में छायी उदासी का एहसास हो गया है जो गहरी काली छाया की तरह व्याप्त हो गयी है यह उदासीनता, नीरसता रूपी काली गहरी छाया जीवन के आरम्भ से ही इस घर में अपना स्थान बना चुकी है। इतनी रच बस गई है कि मालती और उसके पति

महेश्वर दोनो ही इसे पहचान नही पा रहे हैं। जीवन की नीरस्ता ने इस कदर इन दोनों लोगों को अपने आगोश में ले लिया है कि वे इसकी वास्तविकता को नही समझ पा रहे है किन्तु इस सच्चाई के दर्शन कहानीकार को हो गये है। वह जान गया है कि इस घर मे छाई काली गहरी छाया क्या है?

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में जीवन की नीरसता का चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में घर में व्याप्त गहरी छाया के माध्यम से जीवन की उदासी का सुन्दर वर्णन किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में जीवन शैली की कला न जानने और सूक्ष्मता से जीवन की सच्चाई को न पहचान पाने पर कटाक्ष किया गया है।

3.9 शब्दार्थ

अकथ्य – जो कहा न जा सके

अस्पृश्य – जो स्पर्श करने योग्य न हो

प्रकम्पमय – कम्पनयुक्त

विस्मय – आश्चर्य

पूर्ववत – पहले की तरह

सख्य – सखी/मित्र

स्वच्छंदता – खुलापन

मातुल – भाई

उन्मुख – ऊपर मुंह किसे

आकस्मिक – अचानक

अजनबी – अपरिचित

पुनरुज्जीवित – पुनः जीवित होना

स्वरक्षात्मक – स्वयं की रक्षा के लिए

हैसियत – योग्यता

निर्दिष्ट – जिसका निर्देश हो चुका हो

नुस्खा – दवा का पर्चा

फुर्सत – अवसर / अवकाश

बेवक्त – बिना उचित समय के

खाक – धूल / राख

निर्जीव – जिसमें जान न हो

अनैच्छिक – बिना इच्छा के

अनुभूतिहीन – अनुभव के बिना

यंत्रवत – यंत्र के समान

नीरस – रसहीन

स्पीडोमीटर – गतिमापक यंत्र

अमिट – जिसे समाप्त न किया जा सके

किंचित – थोड़ा

ग्लानि – दुःख

लिहाज – अदब

वार्तालाप – बातचीत

कर्त्तव्य – करने वाला धर्म

नित्य – रोज

उद्धत – आतुर

विस्तीर्ण – व्यापक

न्यूनता – कमी

मोमजामा – प्लाटिक का बिछौना

शीतलता – ठंडापन

स्निग्धता – चिकनाई / प्रियता

सम्मोहन – जादू

आल्हाद – खुशी

निवृत्त – सम्पादित / पूर्ण किया हुआ

जिज्ञासा – जानने की इच्छा

शैशवोचित –शिशु की तरह उचित

मिथ्या – झूठ

अकस्मात् – एकाएक

अस्पष्ट – जो स्पष्ट न हो

प्रतीक्षा – इंतजार

3.10 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'गैंग्रीन' कहानी की समीक्षा, कहानी के मूल कथ्य, कहानी में व्यक्त मध्यवर्ग की विवश नारी के यन्त्रवत् जीवन पर, एक रस जिन्दगी की घुटन एवम् निराश जिन्दगी की संवेदन शून्यता के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार अज्ञेय की जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो चुके हैं।
- अज्ञेय के कहानी कला की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'गैंग्रीन' कहानी की समीक्षा कर सकते हैं।
- एक रस जिन्दगी की घुटन एवम् निराश जिन्दगी की संवेदन शून्यता को समझ सकते हैं।

3.11 अपनी प्रगति जाँचिए

1. वर्णन और वातावरण उपस्थित करने में अज्ञेय जी अद्वितीय हैं। 'गैंग्रीन कहानी' का उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।
2. 'गैंग्रीन' कहानी की भाषा–शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. 'गैंग्रीन' कहानी की भाषा अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही भाव सबल और सम्प्रेषणीय बन पड़ी है–स्पष्ट कीजिए।
4. 'जीवन की एकरसता मन को खिन्न बना देती है'–स्पष्ट कीजिए।
5. वातावरण का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। 'गैंग्रीन' कहानी के संदर्भ में उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।
6. कहानीकार अज्ञेय का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

3.12 नियत कार्य / गतिविधियाँ

1. कहानीकार अज्ञेय की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।
2. कहानी में प्रयुक्त उर्दू एवम् संस्कृतनिष्ठ शब्दों को छांटकर अर्थ लिखते हुए एक चार्ट तैयार कीजिए।

3.13 स्पष्टीकरण के बिन्दु

तृतीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3.14 चर्चा के बिन्दु

तृतीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

सन्दर्भ ग्रन्थ

1– डा.सूर्यनारायण रणसुभे : कहानीकार अज्ञेय : सन्दर्भ और प्रकृति

2– डा. दक्षा. आर. जोशी : अज्ञेय के कथा साहित्य में नारी चित्रण

इकाई : 4

दिल्ली में एक मौत : कमलेश्वर

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्‌देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 कहानीकार कमलेश्वर : संक्षिप्त परिचय
4.4 'दिल्ली में एक मौत' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा
4.4.1 कथावस्तु
4.4.2 पात्र /चरित्र चित्रण
4.4.3 भाषा शैली
4.4.4 कथोपकथन
4.4.5 वातावरण
4.4.6 कहानी में निहित उद्‌देश्य
4.5 भौतिकवादी प्रवृत्ति का सजीव चित्रण
4.6 मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व का निरूपण
4.7 व्याख्या खण्ड
4.8 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें
4.9 सारांश
4.10 अपनी प्रगति जाँचिए
4.11 नियत कार्य/गतिविधियाँ
4.12 स्पष्टीकरण के बिन्दु
4.13 चर्चा के बिन्दु

4.1 उद्‌देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की चतुर्थ इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार कमलेश्वर के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- कहानीकार कमलेश्वर के कहानी कला की विशेषताओं को जान पाएंगे।
- कहानी 'दिल्ली में एक मौत' की कहानी के तत्वों के आधार पर तात्विक समीक्षा कर पाएंगे।
- कहानी में व्यक्त भौतिकवादी प्रवृत्ति को समझ पाएंगे।

2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित चतुर्थ खण्ड की चतुर्थ इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत कहानीकार कमलेश्वर के जीवन, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

समय के परिवर्तन के साथ.साथ समाज में और व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों में आए परिवर्तन को कमलेश्वर ने अनेक दृष्टिकोणों से देखा समझा और अपनी कहानियों में उद्घाटित किया है। कमलेश्वर की कहानियों में परिवर्तित सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण एवम् अनुभूति की सच्चाई बड़ी गहराई से व्यक्त हुयी है। इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'दिल्ली में एक मौत' कहानी की समीक्षा, कहानी के मूल कथ्य, भौतिकवादी प्रवृत्ति, मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

4.3 कहानीकार कमलेश्वर : संक्षिप्त परिचय

हिन्दी लेखक कमलेश्वर बीसवीं सदी के सबसे सशक्त लेखकों मे से एक समझे जाते हैं। कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तंभ लेखन, फिल्म पटकथा जैसी अनेक विधाओं में उन्होंने अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया। कमलेश्वर का लेखन केवल गंभीर साहित्य से ही जुड़ा नहीं रहा बल्कि उनके लेखन के कई तरह के रंग देखने को मिलते है। उनका उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' हो या फिर भारतीय राजनीति का एक चेहरा दिखाती फिल्म 'आंधी' हो कमलेश्वर का काम एक मानक के तौर पर देखा जाता रहा है। उन्होंने मुंबई में जो टीवी पत्रकारिता की, वे बेहद मायने रखती है। 'कामगार विश्व' नाम के कार्यक्रम में उन्होंने गरीबों, मजदूरों की पीड़ा–उनकी दुनिया को अपनी आवाज़ दी।

कमलेश्वर का जन्म 6 जनवरी 1932 को उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिली में हुआ। उन्होंने 1954 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। उन्होंनें फिल्मों के लिए पटकथाएं तो लिखी ही, उनके उपन्यासों पर फिल्में भी बनी। 'आंधी', मौसम, सारा आकाश, रजनीगंधा, छोटी सी बात, मिस्टर नटवरलाल, सौतन, लैला, रामबलराम की पटकथाएं उनकी कलम से ही लिखी गई थीं। लोकप्रिय टीवी सीरियल 'चंद्रकांता' के अलावा 'दर्पण' और 'एक कहानी' जैसे धारावाहिकों की पटकथा लिखने वाले भी कमलेश्वर ही थे। उन्होंने कई वृतचित्रों और कार्यक्रमों का निर्देशन भी किया।

1995 में कमलेश्वर को 'पद्मभूषण' से नवाजा गया और 2003 में उन्हें 'कितने पाकिस्तान (उपन्यास)' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे 'सारिका', धर्मयुग, जागरण और दैनिक भास्कर जैसे प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं के संपादक भी रहे। उन्होंने दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक जैसा महत्वपूर्ण दायित्व भी

निभाया। कमलेश्वर ने अपने 75 साल के जीवन में 12 उपन्यास, 17 कहानी संग्रह और करीब 100 फिल्मों की पटकथाएं लिखी। 27 जनवरी 2007 को उनका निधन हो गया।

कृतियां

उपन्यास –

एक सड़क सत्तावन गलियां, तीसरा आदमी, डाक बंगला, समुद्र में खोया हुआ आदमी, काली आंधी, आगामी अतीत, सुबह............दोपहर.......शाम, रेगिस्तान, लौटे हुए मुसाफिर, वही बात एक और, चंद्रकांता, कितने पाकिस्तानी

पटकथा एवं संवाद

कमलेश्वर ने 99 फिल्मों के संवाद, कहानी या पटकथा लेखन का काम किया। कुछ प्रसिद्ध फिल्मों के नाम है –

1. सौतन की बेटी (1989) – संवाद
2. लैला (1984) – संवाद पटकथा
3. यह देश (1984) – संवाद
4. रंग बिरंगी (1983) – कहानी
5. सौतन (1983) – संवाद
6. साजन की सहेली (1981) – संवाद, पटकथा
7. राम बलराम (1980) – संवाद पटकथा
8. मौसम (1975) – कहानी
9. आंधी (1975) – उपन्यास

संपादन

अपने जीवनकाल में अलग–अलग समय पर उन्होंने सात पत्रिकाओं का संपादन किया –

विहान – पत्रिका (1954) नई कहानियां पत्रिका (1958–66) सारिका–पत्रिका (1967–78) कथायात्रा – पत्रिका (1978–79) गंगा – पत्रिका (1984–88) इंगित – पत्रिका (1961–68) श्रीवर्षा–पत्रिका (1979–80)

अखबारों मे भूमिका

वे हिन्दी दैनिक 'दैनिक जागरण' में 1990–92 तक तथा दैनिक भास्कर में 1997 से लगातार स्तंभलेखन का काम करते रहे।

कहानियां कमलेश्वर ने तीन सौ से अधिक कहानियां लिखी। उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियां है–

राजा निरबंसिया, सांस का दरिया, नीली झील, तलाश, बयान, नागमणि, अपना एकांत, आसक्ति, ज़िंदा मुर्दे, जॉर्ज पंचम की नाक, मुर्दों की दुनिया, कस्बे का आदमी

नाटक उन्होंने तीन नाटक लिखे – अधूरी आवाज, रेत पर लिखे नाम, हिंदोस्ता हमारा

4.4 'दिल्ली में एक मौत' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

कहानी के तत्वों के आधार पर 'दिल्ली में एक मौत' कहानी की तात्विक समीक्षा प्रस्तुत है–

4.4.1 कथावस्तु

दिल्ली की सर्दी से कौन अनजान है? कहानी का आरम्भ ही सुबह की सर्द हवाओं से होता है। सुबह 10–12 बजे तक कुहरा सम्पूर्ण वातावरण को अपने आगोश में समेटे होता है। वाहन के आवागमन से इस बात का आभास हो जाता है कि सवेरा हो चुका है और दिल्ली दौड़ने लगी है। कहानीकार एक लैट में रहते है और आस–पास के निवासियों की चर्चा करते हुये पाठकों से उनका परिचय करवाते है। मिस्टर वासवानी जी, मिसेज वासवानी, अतुल मवानी, सरदारजी और उनका नौकर धर्मा ये कुछ ऐसे चरित्र है जिनको लेकर कहानी का आरम्भ होता है।

दिल्ली की सर्दी किसी को स्वेच्छा से घर से बाहर निकलने को प्रेरित नहीं करती। जब तक बहुत मजबूरी न हो लोग बाहर निकलना पसंद नहीं करते है। लोग सुबह सुबह उठकर तैयार इसलिये हो रहे है क्योंकि उन्हें जीवकोपार्जन के लिये घर से बाहर जाना मजबूरी है। कहानीकार जिस लैट में रहता है उसके आसपास के लोगों की चर्चा कर कथा का बहिरंग पक्ष सशक्त करता है।

कहानीकार ने समाचार पत्र में पढ़ा कि सेठ दीवानचंद का आज रात इरविन अस्पताल में देहावसान हो गया है। उनकी शव यात्रा आज सुबह नौ बजे उनकी कोठी से निकलकर पचकुइयाँ श्मशान घाट पहुँचेगी। लैट के सभी लोगों को इसकी जानकारी हो गई है और सभी लोग अपने–अपने ऑफिस जाने के लिये तैयार हो रहे है। सभी के सभी सेठ दीवानचन्द के परिचित है अतएव ऑफिस जाने से पहले श्मशान घाट जायेंगे। कहानीकार सबको तैयार देख रहा है। बीच–बीच में उसके पास भी लैट के निवासी आ जाते है। तब वह सोचता है। अगर किसी ने शव यात्रा से चलने को कहा तो वह क्या करेगा? कहानीकार लिखते हैं–

''जब से मैंने अखबार मे सेठ दीवानचन्द की मौत की खबर पढ़ी थी। मुझे हर क्षण खटका लगा था कि कहीं कोई आकर इस सर्दी में शव के साथ जाने की बात न कह दे। बिल्डिंग के सभी लोग उनसे परिचित थे और सभी शरीफ दुनियादार आदमी थे।''

कहानीकार बिल्डिंग मे रहने वाले लोगों की तैयारी से अलग–अलग कयास लगा रहा है कि कौन शव यात्रा में जायेगा और कौन नहीं। सरदारजी ने जब अपने जब नौकर धर्मा से मक्खन मंगवाया तो उन्हें लगा कि सरदारजी तो शव यात्रा के शामिल नहीं होंगे। अतुल मवानी तो अभी अपने कपड़े ही प्रेस कर रहा है। इसका मतलब ये दोनों ही नहीं जा रहे तो मेरा और सेठ दीवानचन्द का तो नया–नया परिचय है इसलिये मेरे जाने का तो सवाल ही नहीं उठता। मिस्टर और मिसेज वासवानी तो अभी सोकर उठे है इसका मतलब है कि ये लोग भी मैयत मे शामिल नहीं हो रहे।

अतुल मवानी भी कहानीकार के पास आता है और उनसे वार्तालाप करने लगता है चर्चाओं के दौरान अतुल मवानी सेठ दीवानचन्द की शव यात्रा की बात करता है तो कहानीकार बातों को यहाँ वहाँ घुमा देता है और कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देता। कहानीकार को दूर से दिखाई देता है कि सेठ दीवानचन्द की शव यात्रा चली आ रही है। किन्तु इस बिल्डिग के सभी लोग तो अभी तक अपनी–अपनी तैयारियों में ही लगे हैं। इससे कहानीकार को तसल्ली हो जाती है कि कोई भी शव–यात्रा में शामिल होने के लिये नहीं जा रहा है और वह सोचता है कि जब कोई भी शव–यात्रा में शामिल होने के लिये नहीं जा रहा है तो में क्यूँ जाऊँ।

थोड़ी देर मे सरदारजी मिस्टर और मिसेज वासवानी और नये सूट में अतुल मवानी तैयार होकर निकल पड़ते है। सभी लोग आपस में अतुल मवानी के नये सूट की तारीफ कर रहे है। मिसेज वासवानी ने जूड़े मे फूल

। सभी लोग बिल्डिंग से निकलकर टैक्सी स्टेण्ड की ओर जा रहे है। कहानीकार देखता है कि अर्थी उनकी के आगे निकल गयी है। शव यात्रा के साथ कुछ लोग है पीछे दो तीन कारें चल रही है। जो अब किनारे नकर आगे हो गई है।

कहानीकार को ऐसा लगा जैसे उसको तो सेठ दीवानचन्द की शव यात्रा में शामिल होना चाहिये क्योंकि ड़के से जान पहचान है और ऐसे मौकों पर तो दुश्मन का भी साथ देना चाहिये। कहानीकार के मन में शव शामिल होने के बात आती है और वह उठकर ऊपर से ओवरकोट पहनकर और चप्पल डालकर शव यात्रा ल होने के लिये निकल पड़ता है। सेठ दीवानचन्द की शव यात्रा में कंधा देने वालों के अलावा छः सात लोगों कर वह याद करता है कि गतवर्ष उनकी बेटी की शादी में कितने लोगों ने शिरकत की थी कारों का तो लगा था और आदमी के मरते ही कितना परिवर्तन आ जाता है।

थोडी ही देर मे अर्थी पचकुइयाँ श्मशान भूमि पर पहुँच गई। वहाँ पहले ही लोग एकत्रित थे कारें स्कूटर ों और पुरूषों का अच्छा जमघट लगा था। पुरूष सिगरेट पीकर ठण्ड दूर कर रहे थे तो महिलायें लाल बीच सफेद दाँत दिखा रही थीं। लोगों ने मालाएँ और गुलदस्ते थाम रखे थे। श्मशान में लोगों ने फूल मालायें चढ़ाये तो कुछ लोगों ने अगरबत्तियाँ जलाई। कुछ लोगों नये रूमाल निकालकर अपनी आँख और नाक ोसे ही शव दाह संस्कार की वेदी पर रखा और जलाया गया। सभी अपनी–अपनी गाड़ियों मे तैनात हो गये पने–अपने ऑफिस की ओर निकल पड़े। मिसेज वासवानी मिस्टर वासवानी से बता रही थी कि प्रमिला ने बुलाया है चलोगे न। सभी मुस्कुराते हुए एक दूसरे से विदा ले रहे है। अतुल मवानी और सरदारजी ऑफिस बढ़ रहे थे। अब में भी सोच रहा था कि अगर तैयार होकर आता है तो यहाँ से सीधे ऑफिस चला जाता तो छुट्टी लेनी पड़ेगी। चिता के पास चार–पाँच लोग ही रह गये थे। कहानीकार कहता है कि मेरी समझ आ रहा था कि क्या करूँ। छुट्टी ले लूँ, क्योंकि मौत हो गई है और में शव यात्रा में शामिल भी हुआ हूँ। र कहानी समाप्त हो जाती है।

पात्र योजना

प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर द्वारा रचित कहानी 'दिल्ली में एक मौत' में प्रमुख पात्र स्वयं कथाकार ही है। स्वयं ही सम्पूर्ण कथा को पाठकों तक पहुँचाया है। कथ्य को विश्लेषित करने के लिये जिन पात्रों की कता पड़ी है। उनमें प्रमुख है– मिस्टर वासवानी, मिसेज वासवानी, सरदारजी, अतुल भवानी, सेठ दीवानचंद, बुट पालिशवाला।

कहानीकार ने दिल्ली की सर्द हवाओं का विश्लेषण कर मनुष्य की सहज वृत्ति को विश्लेषित किया है। र्दी में जब तक बहुत जरूरी न हो कोई घर से बाहर नहीं निकलना चाहता। उस पर भी मौत, यानी शव–यात्रा मेल होना तो दुश्कर कार्य जान पड़ता है। इसी जद्दोजिहद को इस कथा में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से पात्रों ध्यम से विश्लेषित किया गया है।

रचनाकार ने स्वयं ही सभी चरित्रों पर टिप्पणी करते हुये उनका अभिर्भाव किया है। यह बताया है कि वे यर्थाथवादी समाज के प्रतिनिधि चरित्र है। जो अलग–अलग नामों से जाने जाते है। कहानीकार भी उनके एक म्पूर्ण कथा में उसी का चरित्र सबसे ज्यादा विश्लेषित हुआ है। बाकी सभी चरित्र प्रसंगवश विश्लेषित हुये है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रचनाकार ने स्वयं के माध्यम से कथा विश्लेषित कर एक पूरा दृश्य न बुना है और सभी चरित्रों को चाहे वह अतुल हो या मिस्टर वासवानी सभी के चारित्रिक विश्लेषण में सफलता की है। यह कहानी समाज का वास्तविक रूप उधेड़ता है और चरित्रों की सच्चाई से हमें अवगत कराने में मता प्राप्त करता है।

4.4.3 भाषा शैली

'दिल्ली में एक मौत' कहानी यथार्थवादी समाज का एक पूरा दृश्य प्रस्तुत करती है। कहानीकार ने स्वयं ही एक पात्र का रूप धारण करके कथानक को आगे बढ़ाया है। कहानी भारतीय महानगरीय यथार्थवादी जीवन का दृश्य रूपायित करता है। अतः इस कहानी में प्रयुक्त भाषा में खड़ी बोली के सहज रूप को अपनाया गया है। जिसमें आवश्यकतानुसार अंग्रेजी उर्दु और देशज शब्दों का अत्यन्त व्यवहारिक प्रयोग किया गया है।

कहानीकार ने अंग्रेजी के शब्दों का बहुतायत प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ– बाथरूम, टैक्सी, हार्न बिजनेस मैगनेट आयरन, बिल्डिंग बूट–पालिस कमीशन, पोर्टफोलियो, मार्केट, डियर स्टैण्ड, ओवरकोट, पासपोर्ट, आदि अनेक शब्द हैं जिनका बखूबी प्रयोग कहानी कर ने किया है।

इसी प्रकार उर्दू शब्दों का प्रयोग सहज रूप में इस कहानी में दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ–अरथी, जिन्दगी, रूहें, सलीब, खबर, वक्त, दस्तक, अखबार मुसीबत, तसल्ली, फौरन, सर्द, दुनियादार, जवाब मौजूद, राहत, आहिस्ता, मौत, कुहरा, रेजगारी, इशारा, शामिल, इर्दगिर्द, शोफर, रूमाल ख्याल, दतर आदि ऐसे अनेक उर्दू के शब्द हैं जिनका अत्यंत सटीक प्रयोग कहानीकार ने किया है जिससे संवादों में तो कसाव आता ही है भावों की सम्प्रेषणीयता भी सशक्त हो जाती है।

कहानीकार ने देशज शब्दों का बहुत ही व्यवहारिक प्रयोग किया है। जिसमें आत्मीयता और प्रगाढ़ता को बढ़ावा मिला है। बाहें पसारे, रेंग, घुटी–घुटी, सिरहाने जैसे शब्द कथ्य और संवाद को प्रभावशाली बनाने में सहायक हुये हैं। कहानीकार के द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्द अर्थो के साथ–साथ ध्वनि के माध्यम से भी अपने को व्याख्यायित करने में सफल हुये हैं। उदाहरणार्थ– सनसनाहट, जूँ–जूँ, ठिठुरी, भड़भड़ता, खनक, सनसनाहट सर्र, सरसराती, सुरसुराने जैसे शब्द स्वयं ही ध्वनि उत्पन्न कर अर्थो की प्रगति कराने में समर्थ दिखाई पड़ते हैं। इन शब्दों का सहज प्रयोग अत्यंत प्रभावोत्पादक है।

इसी प्रकार कहावतों मुहावरों की उपस्थिति संवाद और कथा को बहुआयामी रूप प्रदान करती है। कहानी में प्रयुक्त–कानों बस गयी, बादलों को चीरती, कुहरे मे लिपटा हुआ, मेरे कान खड़े हो जाते हैं, जैसे प्रयोग कहानी को प्रभावशाली और अर्थों को नये आयाम प्रदान करते हैं। विविध शब्दों और अर्थो को नवीन प्रयोगो में पिरोकर प्रभावशाली बनाना, यह कहानीकार की कुशलता ही कही जायेगी।

4.4.4 कथोपकथन

'दिल्ली में एक मौत' कहानी में कहानीकार स्वयं उपस्थित होकर पूरा घटनाक्रम सुनाता है। कहानी के बीच–बीच में कुछ चरित्र उपस्थित होकर आपस में वार्तालाप करते हैं तो उनके संवाद अत्यल्प और कसे हुए हैं। अतुल मवानी कहानीकार से आयरन मांगने उसके घर पहुँचता है तो अतुल मवानी के संवाद पर कहानीकार का आत्ममंथन ही व्यक्त हुआ है संवाद नहीं। अतुल मवानी कहता है ''यार क्या मुसीबत है आज कोई आयरन करने वाला भी नहीं आया, जरा अपना आयरन देना।'' अतुल कहता है तो मुझे तसल्ली होती है नहीं तो उसका चेहरा देखते हुए मुझे खटका हुआ था कि कहीं शव यात्रा में जाने का बवाल न खड़ा कर दें। में उसे फौरन आयरन दे देता हूँ और निश्चिन्त हो जाता हूँ कि अतुल अब अपनी पैंट पर आयरन करेगा और दूतावासों के चक्कर काटने के लिये निकल जायेगा।

इसी प्रकार सरदारजी के नौकर को देखकर कहानीकार ने पुकारा ''धर्मा कहाँ जा रहा है?'' 'सरदारजी के लिये मक्खन लेने' उसने वहीं से जबाब दिया तो लगे हाथों मैने भी अपनी सिगरेट मँगवाने के लिए उसे पैसे थमा दिये।

अतुल मवानी और कहानीकार के मध्य आयरन वापसी के समय होने वाले वार्तालाप में संवाद अत्यंत संक्षिप्त किन्तु आत्ममंथन ज्यादा है। उदाहरणार्थ–

"अतुल मवानी मुझे आयरन लौटाने आता है। मैं आयरन लेकर दरवाजा बन्द कर लेना चाहता हूँ पर वह भीतर आकर खड़ा हो जाता है और कहता है– 'तुमने सुना दीवानचंदजी की कल मौत हो गई?'

'मैंने कभी अखबार में पढ़ा है मैं सीधा सा जबाब देता हूँ ताकि मौत की बात आगे न बढ़े। अतुल मवानी के चेहरे पर सफेदी झलक रही है, वह शेव कर चुका है। वह आगे कहता है– 'बड़े भले आदमी थे दीवानचंद।'

यह सुनकर मुझे लगता है कि अगर बात आगे बढ़ गयी तो अभी शव–यात्रा में शामिल होने की नैतिक जिम्मेदारी हो जायेगी, इसलिये मैं कहता हूँ–'तुम्हारे उस मकान का क्या हुआ?'

'बस मशीन अपने भर की देर है। आते ही अपना कमीशन तो खड़ा हो जायेगा। यह कमीशन का काम तो बड़ा बेहूदा है पर किया क्या जाये? आठ–दस मशीनें मेरे थ्रू निकल गयीं तो अपना बिजनेस शुरू कर दूँगा। अतुल मवानी कह रहा है–'भाई शुरू–शुरू में जब में यहाँ आया था तो दीवानचंदजी ने बड़ी मदद की थी मेरी। उन्हीं की वजह से कुछ काम–धाम मिल गया था। लोग बहुत मानते थे उन्हें।'

फिर दीवानचंदजी का नाम सुनते ही मेरे कान खड़े हो जाते हैं। तभी खिड़की से सरदारजी सिर निकालकर पूछने लगते हैं–'मिस्टर मवानी कितने बजे चलना है।'

'वक्त तो नौ बजे का था, शायद सर्दी और कुहरे की वजह से कुछ देर हो जाये।' वह कह रहा है और मुझे लगा कि यह बात शव–यात्रा के बारे में ही हैं।

इस प्रकार इस पूरे संवाद में वार्तालाप तो बहुत कम है। कहानीकार का अन्तर्द्वन्द्व ही ज्यादा है। संवाद अत्यंत छोटे और सीधी बात करने वाले हैं। इस पूरी कहानी में इसी प्रकार छोटे–छोटे संवादों के साथ कहानीकार की वार्ता व्यक्त हुई है जो पूरे समाज की मानसिकता को प्रदर्शित करने में पूरी तरह से सफल रही है।

इसी तरह के वातावरण में संक्षिप्त संवादों का एक उदाहरण देखिए।

तभी मिसेज वासवानी की आवाज सुनाई पड़ती है–'मेरे खयाल से प्रमिला वहाँ जाकर पहुँचेगी, क्यों डार्लिंग?'

'पहुँचाना तो चाहिये.........तुम जरा जल्दी से तैयार हो जाओ।' कहते हुए मिस्टर वासवानी बारजे से गुजर जाये।

अतुल मुझसे पूछ रहा है–'शाम को काफी हाऊस की तरफ आना होगा?

'शायद चला जाऊँ' कहते हुए मैं कंबल लपेट लेता हूँ और वह वापस अपने कमरे में चला जाता है। आध मिनट बाद ही उसकी आवाज फिर आती है–'भई बिजली आ रही है?'

मैं जबाब देता हूँ–'हाँ आ रही है।' मैं जानता हूँ कि वह इलेक्ट्रिक रॉड से पानी गरम कर रहा है, इसलिये उसने यह पूछा है।

इस उदाहरण में भी संक्षिप्त संवाद योजना के दर्शन होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ही संवादों का निर्माण किया गया है। अन्यथा कहानीकार ने स्वयं के माध्यम से ही सम्पूर्ण दृश्य योजना गढ़ दी है।

इस बिल्डिंग में निवास करने वाले सेठ दीवानचंद की शव–यात्रा में शामिल होने के लिये निकलते हुये वार्तालाप कर रहे हैं। वासवानी ऊपर से ही मवानी का सूट देखकर पूछता है, ये सूट किधर सिलवाया है?

'उधर खान मार्केट में।'

'बहुत अच्छा सिला है टेलर का पता हमें भी देना।' फिर वह अपनी मिसेज को पुकारता है– 'अब आ जाओ डियर..........अच्छा मैं नीचे खड़ा हूँ तुम आओ।' कहता हुआ वह भी मवानी और सरदारजी के पास आ जाता है और सूट को हाथ लगाते हुए पूछता है–'लाइनिंग इण्डियन है?'

'इंग्लिश'

'बहुत अच्छा फिटिंग है' कहते हुए टेलर का पता डायरी में नोट करता है।

उपर्युक्त उद्धरण में भी छोटे–छोटे संवादों के साथ पूरा एक दृश्य सृजित कर दिया गया है जिसमें विविध ा मनोदशाओं का उल्लेख भी सहज रूप से दृष्टिगोचर हुआ है। इस प्रकार संवाद योजना की दृष्टि से यह कहानी अत्यंत सशक्त और गौरवशाली है। लघु संवादों के माध्यम से आवश्यकतानुसार दृश्यों का संयोजन किया गया है। कहानीकार द्धारा व्यक्त विचार समाज की हकीकत से परिचित करवाने में पूर्ण सफल रहे हैं।

4.4.5 वातावरण

यथार्थवादी समाज का जो चित्र 'दिल्ली में एक मौत' कहानी में रूपायित किया गया है। वह वर्तमान समय के वातावरण को अच्छी तरह से रेखांकित करने में समर्थ है भारत का समाज व्यक्तिवादी हो गया है। वह केवल अपने स्वार्थ तक संकुचित है। उसकी परिधि उसका परिवार है। कुछ मनुष्य तो यहाँ तक सीमा लांघ गये है कि अपने परिवार में रहकर भी सिर्फ अपने तक ही सीमित है। इस मनोदशा को इस कथा के माध्यम से भली प्रकार अभिव्यक्ति मिली है।

कहानी की कथा महानगरों जीवन से सम्बद्ध है जिसमें वहाँ के प्राकृतिक वातावरण के अलावा वहाँ पर निवास कर रहे जनमानस की प्रकृति का विश्लेषण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से किया गया है। कहानीकार द्धारा विश्लेषित चरित्र और उनकी मनोदशा वर्तमान वातावरण को चरितार्थ करती है और एक ऐसा कैनवास खड़ा करती है जिसमें आज का व्यक्ति पूरी तरह से खोखला दिखाई पड़ता है। उसकी कथनी और करनी मे भेद है।

कमलेश्वर वैसे भी वातावरण को अभिव्यक्त करने में सफल रहे है। आज के महानगरीय समाज में रहने वाले उच्च मध्यम वर्ग के व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थ में लिप्त होकर सिर्फ 'मैं वादी' प्रकृति में जीना चाहते है। समाज के किसी भी वर्ग से उनका सम्बन्ध सिर्फ दिखावा है। मन में टीस का भाव तो कल्पना से परे की वस्तु रह गई है।

4.4.6 कहानी में निहित उद्‌देश्य

'दिल्ली में एक मौत' कहानी के लेखक कमलेश्वर इस कथा के माध्यम से भौतिकवादी समाज में रह रहे दोहरे व्यक्तित्व के लोगों का पर्दाफाश करते हैं। इस कहानी में सेठ दीवानचंद की मौत के बाद उसके परिचित लोगों का उनकी शव यात्रा में शामिल होना मात्र औपचारिकता है, मनुष्य की मृत्यु पर न तो दुःख है और न ही शोक का भाव। जबकि सेठ दीवानचंदजी ने अनेक मित्रों पर उपकार भी किये वे स्वयं एक अच्छे इंसान थे, उसके बाद भी जो लोग उनकी शव–यात्रा में शामिल हुये उनकी पोशाक, उनके हावभाव, उनके वार्तालाप से सेठ दीवानचंदजी के लिये और उनके परिवार के प्रति शोक–सम्वेदना न होकर शव यात्रा में शामिल होने की औपचारिकता मात्र प्रदर्शित हो रहा था।

इस प्रकार यह कहानी दोहरे व्यक्तित्व के लोगों पर कटाक्ष ही नहीं बल्कि सीधे प्रहार करती है। यथार्थवादी समाज का जैसा चित्र इस कहानी में दर्शाया गया है वैसा रूप वर्तमान समाज के लिये हितप्राय नहीं है। भैतिकता का ऐसा घिनौना परिवेश आने वाले समय की विद्रुपता को रेखांकित करता है। मनुष्य के हृदय में मनुष्य के लिये सह्दयता और आत्मीयता के भाव अवरूद्ध हो गये है। सम्बन्धों की प्रगाढ़ता सिर्फ स्वार्थ तक सीमित है।

कहानीकार ने कथा का जो ताना बाना बुना है और उसे व्यक्त करने के लिये जो चरित्र उद्घाटित किये है। उन्हें भलीभांति विस्तार मिला है और कथाकार अपने उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्ण सफल रहा है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1 कहानी की कथा से सम्बद्ध है–

अ– महानगरीय जीवन से

ब– ग्रामीण जीवन से

द – दोंनो से

इ – इनमें से कोई नही

उत्तर ....

2 'दिल्ली में एक मौत' में प्रमुख पात्र है–

अ– मिस्टर वासवानी

ब– सरदारजी

स– अतुल भवानी

द– कथाकार स्वयं

उत्तर ....

4.5 भौतिकवादी प्रवृत्ति का सजीव चित्रण

प्रसिद्ध रचनाकार कमलेश्वर ने 'दिल्ली में एक मौत' कहानी के माध्यम से समाज की भौतिकवादी प्रवृत्ति को उजागर किया है। इस कहानी में एक बिल्डिंग में रहने वाले बहुत से व्यक्तियों के परिचित और करीबी सेठ दीवानचंद का निधन हो जाता है और उनकी शव यात्रा में ये सभी लोग शामिल होते हैं किन्तु सेठ दीवानचंद की शवयात्रा में जितने लोग भी शामिल होते हैं उसमें से अधिकांश लोगों के पहनावे, बातचीत से ऐसा नहीं लगता है कि वे किसी शोक यात्रा में या अपने किसी करीबी व्यक्ति के निधन पर एकत्रित हुये है।

सेठ दीवानचंद की शव यात्रा में शामिल होने के बाद सभी लोगों को अपने–अपने काम में निकल जाना है इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये वे अपने–अपने घरों से सज–धजकर आते है जिससे कि शमशान घाट से उन्हें वापिस घर न आना पड़े। अतुल मवानी ने अपना नया शूट पहना हुआ है। उस पर चर्चा करते हुये वासवानी का कथन देखिए।

'दो मिनट बाद ही सरदार जी तैयार होकर नीचे आते है कि वासवानी उपर से ही मवानी का सूट देखकर पूछता है ये सूट किधर सिलवाया'—

'उधर खान मार्केट से।'

'बहुत अच्छा सिला है। टेलर का पता हमें भी देना। फिर वह अपनी मिसेज को पुकारता है अब आ जाओ डियर।....... अच्छा में नीचे खड़ा हूं तुम आओ।' कहता हुआ वह भी मवानी और सरदारजी के पास आ जाता है और सूट को हाथ लगाते हुए पूछता है— 'लाइनिंग इण्डियन है।'

'इंग्लिश'

'बहुत अच्छा फिटिंग है।' कहते हुये टेलर का पता डायरी में नोट करता है।

इसी प्रकार बिल्डिंग में रहने वाले सरदार जी और मवानी जब मिसेज वासवानी को तैयार होकर नीचे आता हुआ देखते है तो सरदार जी धीरे से मवानी को आंख का इशारा करके सीटी बजाने लगते हैं

इस कहानी में यह सत्य भी दिखाया गया है कि जब तक व्यक्ति जीवित रहता है उसके आगे—पीछे भीड़ का तांता लगा रहता है और जैसे ही उसकी मृत्यु हो जाती है सभी लोग उसका साथ छोड देते है। कहानीकार सेठ दीवानचंद के यहाँ गत वर्ष उसकी लड़की की शादी का जिक्र करता हुआ रहता है। — ''मुझे मेरे कदम अपने आप अरथी के पास पहुंचा देते है और में चुपचाप उसके पीछे—पीछे चलने लगता हूं। चार आदमी कंधा दिए है और सात आदमी साथ चल रहे है। सातंवा मैं ही हूं और मैं सोंच रहा हू कि आदमी के मरते ही कितना फर्क पड़ जाता है। पिछले साल ही दीवानचंद ने अपनी लड़की की शादी की थी तो हजारों की भीड़ में बाहर कारो की लाईन लगी हुई थी....... । ''

कहानीकार ने शवयात्रा में शामिल पुरूष और महिलाओं पर कटाक्ष करते हुये लिखा है कि औरतों की भीड़ एक तरफ खड़ी है। उनकी बातों की उंची ध्वनियां सुनाई पड़ रही है। उनके खड़े होने में बड़ी लचक है जो कनॉटप्लेस में दिखाई पड़ती है। सभी में जूड़ो की स्टाइल अलग—अलग है। मर्दो की भीड़ से सिगरेट का धुंआ उठ—उठकर कुहरे में घुला जा रहा है। और बात करती हुई औरतों के लाल—लाल होंठ और सफेद दांत चमचमा रहे है और उनकी आंखे में एक सरूर है।

दुःख और शोक के वातावरण में भी मनुष्य का दिखावा इस तरह चित्रित हुआ है कि वर्तमान समय का दोहरा व्यक्तित्व बड़ी बेरूखी से उजागर हो गया है कहानीकार शमशान घाट के दृश्य का वर्णन करते हुये कहते है —

''अरथी को बाहर बने चबूतरे पर रख दिया है। अब खामोशी छा गयी है। इधर—उधर बिखरी हुई भीड़ शव के इर्द—गिर्द जमा हो गई है और कारो के शोफ़र हाथों में फूलो के गुलदस्ते और मालाएं लिए अपनी मालकिनों की नजरों का इंतजार कर रहे हैं।

मेरी नजर वासवानी पर पड़ती है। वह अपनी मिसेज को आंख के इशारे से शव के पास जाने को कह रहा है, वह है कि एक औरत के साथ खड़ी बात कर रही है। सरदारजी और अतुल भवानी भी वहीं खडे हुए हैं।

शव का मुंह खोल दिया गया है और अब औरतें फूल और मालाएं उसके इर्द—गिर्द रखती जा रही है। शोफ़र खाली होकर अब कारों के पास खड़े सिगरेट पी रहे हैं। इस प्रकार यह दृश्य स्वतः यह स्पष्ट करता है कि कृत्रिमता इस कदर हमारे उपर हावी हो गई है कि हम अपने निकटतम व्यक्ति की मृत्यु पर भी शोक की गहराई में नहीं उतर पा रहे हैं।

कहानीकार ने सेठ दीवानचंद की मृत्यु पर शमशान घाट में दृष्टिगोचर होने वाले दृश्य को देखकर कटाक्ष रते हुए कहा कि एक महिला माला रखकर कोट की जेब से रूमाल निकालती है और आंखों पर रखकर नाक रसुराने लगती है और पीछे हट जाती है।

और अब सभी औरतों ने रूमाल निकाल लिए है और उनकी नाकों से आवाजें आ रही हैं। कुछ आदमियों अगरबत्तियाँ जलाकर शव के सिरहाने रख दी है। वे निश्छल खड़े हैं। आवाजों से लग रहा है कि औरतों के दिल को ज्यादा सदमा पहुंचा है।

शव यात्रा में शामिल लोगों की औपचारिकता की हद तब देखी जा सकती है। जब सेठ दीवानचंद का व अंतिम संस्कार के लिये अन्दर ले जाया जाता है, सभी लोग वापिस आने की तैयारी करने लगते हैं और धीरे–ध रे लोगों का काफिला वहाँ से सरकता दिखाई पड़ता है– ''मातम पुरूषी के लिये आए हुए आदमी और औरतें अब बाहर की तरफ लौट रहे हैं। कारों के दरवाजे खुलने और बंद होने की आवाजें आ रही हैं।..... और मिसेज वासवानी कह रही हैं। प्रमिला ने शाम को बुलाया है, चलोगे न डियर, कार आ जायेगी, ठीक है न? वासवानी स्वीकृति से सिर हिला रहा है।

कारों में जाती हुयी औरतें मुस्कुराते हुए एक दुसरे से विदा ले रहीं हैं और बाय बाय की कुछ एक आवाजें आ रही है।

जब चिता को अग्नि दे दी जाती है इस समय के दृश्य का उल्लेख अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से कहानीकार ने किया है – चिता में आग लगा दी गई है और चार–पांच आदमी पेड़ के नीचे पडी बेंच पर बैंठे हुए हैं। मेरी तरह से भी यूं ही चले आये हैं। उन्होंने जरूर छुट्‌टी ले रखी होगी, नहीं तो वे भी तैयार होकर आते।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कहानीकार कमलेश्वर ने अत्यन्त सशक्त रूप से इस कथा के माध्यम से समाज में व्याप्त भौतिकवादी प्रवृत्ति को रेखांकित किया है। समाज का प्रत्येक वर्ग सिर्फ दिखावें के लिये एक–दूसरे से जुड़ा हुआ है। आत्मीयता से किसी का सरोकार नहीं रह गया है। वर्तमान भौतिकवादी प्रवृत्ति ने जन मानस को पूरी तरह से खोखला बना दिया है जिसके कारण आपसी सम्बन्धों की खनक अब सुनाई भी नहीं पड़ती।

4.6 मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व का निरूपण

'दिल्ली के एक मौत' कहानी वर्तमान समाज के परिदृश्य को रूपायित करने वाली एक सशक्त कथा है। जिसमें महानगर में निवास करने वाले बासिन्दों का दोहरा चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से कहानीकार ने विश्लेषित किया है। कहानीकार इस कथा के माध्यम से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि व्यक्ति वास्तव में अपने मूल चरित्र में नहीं जीता है वह अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये बहुत से मुखौटे पहनता है और बड़ी कुशलता के साथ उसे जीने की कोशिश करता है। परन्तु जब वह अपनी अंतरात्मा से झांकता है तो उसका खोखलापन उसे साफ दिखाई पड़ता है। इस कहानी में ऐसे चरित्रों की भरमार है।

कहानीकार ने स्वयं के माध्यम से कथा को विवेचित किया है। कथाकार यह बताता है कि दिल्ली की सर्दी में घर से बाहर निकलना दुश्वार है। अतः उसका कतई मन नहीं है कि वह सेठ दीवाचंद की शवयात्रा में शामिल हो। जिस बिल्डिंग में वह निवास करता है उसमें अन्य बहुत से लोग है जो सेठ दीवानचंद के परिचित है और अत्यन्त निकट सम्बन्ध रखने वाले हैं जब वे शवयात्रा में नहीं जा रहे हैं तो मेरे शामिल होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस मनोदशा का एक उदाहरण दृश्य है– ''सरदारजी नास्ते के लिये मक्खन मंगवा रहे हैं। इसका मतलब है वे भी शवयात्रा में शामिल नहीं हो रहे हैं। मुझे कुछ और राहत मिली जब अतुल मवानी और सरदारजी का इरादा शवयात्रा में जाने का नहीं है तो मेरा कोई सवाल ही नहीं उठता। इन दोनों का या वासवानी परिवार का ही सेठ दीवानचंद

के यहाँ ज्यादा आना–जाना था। मेरी तो चार–पांच बार की मुलाकात भर थी। अगर ये लोग ही शामिल नहीं हो रहे हैं तो मेरा सवाल ही नहीं उठता।

कहानीकार स्वयं यह बताता है कि वह शवयात्रा में शामिल न होना पड़े इसलिये इस सम्बन्ध में बिल्डिंग वासियो से ज्यादा बात नहीं करना चाहता। जब अतुल मवानी आयरन लौटाने के लिये उसके पास आते हैं तो वह उसके साथ बहुत ज्यादा बात करने के इच्छुक नहीं है। कहीं बात बढ़े और उसे शवयात्रा में न जाना पड़ जाये–

''अतुल मवानी मुझे आयरन लौटाने आता हैं। मैं आयरन लेकर दरवाजा बंद कर लेना चाहता हूं पर वह भीतर आकर खड़ा हो जाता है और कहता है, 'तुमने सुना दीवानचंदजी की कल मौत हो गई ?'

'मैनें अभी अखबार में पढ़ा है' मैं सीधा–सा जवाब देता हूं ताकि मौत की बात आगे न बढ़े। अतुल मवानी के चेहरे पर सफेदी झलक रही है, वह शेव कर चुका है। वह आगे बहता है 'बड़े भले आदमी थे दीवानचंद।'

यह सुनकर मुझे लगता है कि अगर बात आगे बढ़ी तो अभी शव–यात्रा में शामिल होने की नैतिक जिम्मेदारी हो जायेगी, इसलिए मैं कहता हूं – 'तुम्हारे उस मकान का क्या हुआ ?'

इस प्रकार हम देखते है कि कहानीकार सेठ दीवानचंदजी की शव यात्रा में शामिल न होना पड़े इसलिये किसी से भी उस विषय पर बात नहीं करना चाहता है कि इतनी ठंड में कहीं शवयात्रा में शामिल न होना पड़े। परन्तु कुछ देर के बाद उसे यह लगा है कि उसे तो सेठ दीवानचंद की शवयात्रा में शामिल होना चाहिए–

''मैं चुपचाप खड़ा सब देख रहा हूं और अब न जाने क्यों मुझे मन में लग रहा है कि दीवानचंद की शवयात्रा में कम से कम मुझे तो शामिल हो ही जाना चाहिये था। उनके लड़के से मेरी अच्छी–खासी पहचान है और ऐसे मौके पर तो दुश्मन का साथ भी दिया जाता है। सर्दी की वजह से हिम्मत छूट रही है पर मन में कही शवयात्रा में शामिल होने की बात भीतर ही भीतर कोंच रही है।''

इसी प्रकार जब सभी लोग शमशान घाट पर पहुंच जाते हैं तो वहाँ पर सभी लोग एक–दूसरे से यहाँ वहाँ की बात करने में व्यस्त हैं। सेठ दीवानचंद के दाह–संस्कार में शामिल होना मात्र औपचारिकता लग रहा है। जब अरथी को चबूतरे पर रख दिया जाता है तो वहाँ पर खड़े लोगों का व्यवहार औपचारिकता के सिवाय और कुछ नहीं जान पड़ता। इस समय का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''अरथी को बाहर बने चबूतरे पर रख दिया है। अब खामोशी छा गयी है। इधर–उधर बिखरी हुई भीड़ शव के इर्द–गिर्द जमा हो गई है और कारो के शोफ़र हाथों में फूलो के गुलदस्ते और मालाएं लिए अपनी मालकिनों की नजरों का इंतजार कर रहे हैं।

मेरी नजर वासवानी पर पड़ती है। वह अपनी मिसेज को आंख के इशारे से शव के पास जाने को कह रहा है, वह है कि एक औरत के साथ खड़ी बात कर रही है। सरदारजी और अतुल भवानी भी वहीं खडे हुए हैं।

शव का मुंह खोल दिया गया है और अब औरतें फूल और मालाएं उसके इर्द–गिर्द रखती जा रही है। शोफ़र खाली होकर अब कारों के पास खड़े सिगरेट पी रहे हैं।

जैसे ही शव को दाह संस्कार के लिये ले जाया जाता है वैसे ही लोग अपने–अपने वाहन के पास पहुंचने लगे हैं क्योंकि उन्हें अपने–अपने आफिस और काम काज में जाने की जल्दी है। उस समय लोगों का व्यवहार और उनके बीच होने वाली बातचीत उनके दोहरे व्यक्तित्व का प्रमाण बनकर उभरती है।

''मातम पुरूषी के लिये आए हुए आदमी और औरतें अब बाहर की तरफ लौट रहे हैं। कारों के दरवाजे खुलने और बंद होने की आवाजें आ रही हैं।..... और मिसेज वासवानी कह रही हैं। प्रमिला ने शाम को बुलाया है, चलोगे न डियर, कार आ जायेगी, ठीक है न? वासवानी स्वीकृति से सिर हिला रहा है।

कारों में जाती हुयी औरतें मुस्कुराते हुए एक दुसरे से विदा ले रहीं हैं और बाय बाय की कुछ एक आवाजें आ रही है।

इस प्रकार यह कहानी यह सिद्ध करती है कि मनुष्य किस तरह दोहरी भूमिकाये निभाने में निपुण हो गया है कि वह दुःख में भी अपने परिचित या निकटस्थ लोगों के साथ मानसिक रूप से जुड़ नहीं पाता। मृत्यु जैसे जीवन के वास्तविक सत्य का सामना प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता है और जिस व्यक्ति की मृत्यु होती है वह सदा के लिये हमारे बीच से चला जाता है। तब भी हम उसके लिये दुःख व्यक्त नहीं कर पातें हमारा नकली चेहरा ऐसे ही समय पर बेनकाब होता है।

जीवन की सच्चाई के मध्य मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व को कहानीकार ने बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति दी है। रचनाकार के द्वारा प्रयुक्त मनोविज्ञान हमें यह सोचने पर बाध्य करता है कि हम इस अंधी दौड़ में कहाँ तक निकल गये है कि हमें अपनी सम्बन्धों का भी ख्याल नहीं है और हम किसी के सुख–दुख में पूरी आत्मीयता के साथ जुड़ ही नहीं पा रहे हैं। वर्तमान समाज का यह विद्रुप रूप इस कहानी में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है।

4.7 व्याख्या खण्ड

1– कुहरे में बसें दौड़ रही हैं। जूँ–जूँ करते भारी टायरों की आवाजें दूर से नजदीक आती हैं और फिर दूर होती जाती हैं। मोटर रिक्शे बेतहाशा भागे चले जा रहे हैं। टैक्सी का मीटर अभी किसी ने डाउन किया है। पड़ोस के डॉक्टर के यहाँ फोन की घण्टी बज रही है और पिछवाड़े गली से गुजरती हुई लड़कियाँ सुबह की शिट पर जा रही हैं।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानंद श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित 'दिल्ली में एक मौत' कहानी से उद्धृत किया गया है। इस कहानी के लेखक कमलेश्वर हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में दिल्ली में पड़ने वाली सर्दी का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। मौसम की मार के बावजूद मनुष्य की जिन्दगी यथावत् चल रही है, हर काम समय से पूरा करने की होड़ लगी हुई है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में दिल्ली में पड़ने वाली कड़ाके की सर्दी के बावजूद भी सारा काम वैसे ही चल रहा है जैसे सामान्य दिनों में चला करता है। घना कुहरा होने के बाद भी आवागमन की सुविधा के लिये उपलब्ध बसें फर्राटे से दौड़ रही हैं। उनकी गति का एहसास बसों के टायरों से निकलने वाली आवाजों से लगाया जा सकता है। टैक्सी भी चलनी शुरू हो गयी हैं। जैसे ही टैक्सी के मीटर डाउन की आवाज सुनी तब पता चला कि टैक्सियों में भी गति पकड़ ली है। बिल्डिंग में रहने वाले डॉक्टर के यहाँ फोन की घण्टी बजने लगी है अर्थात् बाकी सारे इलाकों में लोगों की दिनचर्या आरम्भ हो गई है। पड़ोस में गली से गुजरती लड़कियों की आवाज सुनकर ऐसा लगा कि वे सुबह की शिट पर काम करने के लिये घरों से निकल पड़ी हैं। इस प्रकार मौसम के विपरीत होने के बाद भी लोगों की दिनचर्या अपनी गति से चल रही है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में सर्दी वे मौसम का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

2. प्रस्तुत अंश में दिल्ली की दिनचर्या का सजीव चित्रण है।

3. प्रस्तुत अंश में ध्वनियों के माध्यम से बिम्ब प्रस्तुत करने की सफल कोशिश की गयी है।

2– वे रूहें चुपचाप धुंध के समुद्र में बढ़ती जा रही हैं...........बसों में भीड़ है। लोग ठण्डी सीटों पर सिकुड़े हुए बैठे हैं और कुछ लोग बीच में ही ईसा की तरह सलीब पर लटके हुए हैं–बाहें पसारे, उनकी हथेलियों में कीलें नहीं, बस की बर्फीली चमकदार छड़े हैं।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानंद श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित 'दिल्ली में एक मौत' कहानी से उद्धृत किया गया है। इस कहानी के लेखक कमलेश्वर हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में दिल्ली में भीषण सर्दी के बाद भी वहाँ की दिनचर्या यथावत् चल रही है। बसों में खचाखच भीड़ है और लोग अपने–अपने काम में इस तरह मशगूल हो गये हैं जैसे उन पर सर्दी का असर ही न होता हो।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में कहानीकार दिल्ली की सर्दी और अबाध गति से चलने वाली जीवन गति का चित्रण करते हुये कहते हैं कि वातावरण में इतना कुहरा छाया हुआ है कि उसमें आते–जाते लोग रूहों की तरह दिखाई पड़ रहे हैं। उन लोगों को देखकर ऐसा लगता है कि ये रूहें शहर की भीड़ में आगे बढ़ती चली जा रही हैं। इतनी सर्दी के बावजूद बसों में खचाखच भीड़ दिखाई दे रही है। बस की ठण्डी सीटों पर लोग सर्दी के कारण सिकुड़कर बैठे हुए हैं पर अपने काम के लिये निकल गये हैं। बसों की भीड़ का वर्णन करते हुए कहानीकार कहते हैं कि बसों में इतनी भीड़ है कि लोग सीटों के मध्य खाली जगहों पर ईसा मसीह की तरह लटके हुए हैं, जैसे किसी जेहाद में जा रहे हैं। उनकी बाहें खुली हुई हैं परन्तु उनकी हथेलियों पर कीलें नही ठोकी गई हैं। उन्होंने अपनी हथेलियों में बस की ठंडी छड़ें पकड़ी हुई हैं और अपने अपने गंतव्य की ओर चले जा रहे हैं।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में सर्दी का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

3. प्रस्तुत अंश दिल्ली कि बसों की भीड़ और उसमें आवागमन करने वाले यात्रियों का सजीव चित्रण है।

4. प्रस्तुत व्याख्यांश में यात्रियों को ईसा की संज्ञा देकर अंश को बहुआयामी अर्थ प्रस्तुत किया गया है।

3– सरदारजी नाश्ते के लिये मक्खन मंगवा रहे हैं इसका मतलब है वे भी शव–यात्रा में शामिल नही हो रहे हैं। मुझे कुछ और राहत मिली। जब अतुल मवानी और सरदारजी का इरादा शव–यात्रा में जाने का नहीं है तो मेरा कोई सवाल ही नहीं उठता। इन दोनों का या वासवानी परिवार का सेठ दीवानचंद्र के यहाँ ज्यादा आना–जाना था। मेरी तो चार पाँच बार की मुलाकात भर थी। अगर ये लोग शामिल नहीं हो रहे हैं तो मेरा सवाल ही नहीं उठता है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानंद श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित 'दिल्ली में एक मौत' कहानी से उद्धृत किया गया है। इस कहानी के लेखक कमलेश्वर हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में सेठ दीवानचंद्र की मृत्यु के बाद सर्दी के इस मौसम में शव–यात्रा में शामिल होने का जिक्र है। कहानीकार इस ऊहापोह में है कि यदि बिल्डिंग के अन्य लोग शव–यात्रा में शामिल न हो रहे हों तो वह भी शव–यात्रा में जाने से बच जायेगा।

व्याख्या : प्रस्तुत व्याख्या में कहानीकार ने अपनी मनोस्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि सरदारजी ने नाश्ते में मक्खन मंगवाया है तो वह शव–यात्रा में शामिल नहीं हो रहे होंगे। क्योंकि दुःख के समय के कोई विशिष्ट भोजन ग्रहण नहीं कर पाता। कहानीकार को थोड़ा सुकून मिला कि शायद अब उसे शव–यात्रा में शामिल होना न पड़े । वे मन ही मन विचार करते है कि इस बिल्डिंग में निवास करने वाले अतुल मवानी, सरदारजी और वासवानी परिवार के सेठ दीवानचंद्र से अधिक निकटता थी इसीलिए उन्हें तो उनकी शव–यात्रा में शामिल होना चाहिए परन्तु बिल्डिंग का वातावरण देखकर ऐसा लगता है कि ये सभी लोग अपने अपने काम में लगें हैं और शायद शव–यात्रा में शामिल नहीं होंगे। फिर वह स्वयं को लेकर सोचता है कि उसका तो सेठ दीवानचंद्र से चार पाँच बार का ही मिलना था कोई खासी जान पहचान तो थी नहीं, इसीलिये वह शव–यात्रा में शामिल नहीं हो तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में कहानीकार का अन्तर्द्वन्द्व अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्याख्यायित हुआ है।
2. प्रस्तुत अंश के माध्यम से महानगरीय जीवन की भौतिकता का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश दोहरे व्यक्ति का जीवन जीने वाले व्यक्तियों पर कटाक्ष करने में सक्षम है।

4– मैं चुपचाप खड़ा सब देख रहा हूँ और अब न जाने क्यों मुझे मन में लग रहा है कि दीवानचंद्र की शव–यात्रा में कम से कम मुझे–तो शामिल होना ही चाहिए था। उनके लड़के से मेरी खासी जान पहचान है और ऐसे मौके पर तो दुश्मन का साथ भी दिया जाता है। सर्दी की वजह से मेरी हिम्मत छूट रही है। .... पर मन की मन कहीं शव–यात्रा में शामिल होने की बात भीतर ही भीतर कोंच रही है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानंद श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित 'दिल्ली में एक मौत' कहानी से उद्धृत किया गया है। इस कहानी के लेखक कमलेश्वर हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में सेठ दीवानचंद्र की शव–यात्रा में शामिल होने का अन्तर्द्वन्द्व विश्लेषित है। कहानीकार की अन्तर्रात्मा उसे शव–यात्रा में शामिल होने कि लिये उत्प्रेरित करती है।

व्याख्या : प्रस्तुत व्याख्यांश में कहानीकार की अन्तर्रात्मा उसे इस बात के लिये उत्प्रेरित करती है कि उसे तो सेठ दीवानचंद्र की शव यात्रा में अवश्य शामिल होना चाहिए। सेठ दीवानचंद्र के लड़के से उसकी खासी जान पहचान है और सेठ दीवानचंद्र से भी उसकी चार पाँच बार की मुलाकत रही है। अतएव इस दुख भरे समय में तो मुझे उनकी शव–यात्रा में अवश्य शामिल होना चाहिए। कहानीकार को यह सूक्ति की याद आती है कि ऐसे मौके पर तो दुश्मन का भी साथ दिया जाता है। अर्थात् बुरे समय में हमें सबका साथ देना चाहिये। मृत्यु से अधिक बुरा वक्त और क्या हो सकता है अतएव उसे सेठ दीवानचंद्र की शवयात्रा में अवश्य शामिल होना चाहिए। सिर्फ कड़ाके की सर्दी के कारण ही उनके मन में शव–यात्रा में शामिल होने को लेकर ऊहापोह की स्थिति बनी हुई थी और वह किसी तरह तर्क–वितर्क करके अपने मन को आश्वस्त कर शव–यात्रा में शामिल होने से बचना चाह रहा था। अब जब उसकी अन्तर्रात्मा ने उसे धिक्कारा तो शव–यात्रा में शामिल होने की बात उसके हृदय में भीतर तक कोंच गई और उसे आहत कर गई कि वह इस दुख के समय में भी अपने परिचित मित्र के यहाँ नहीं जाने का बहाना ढूंढ़ रहा था।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में कहानीकार का अन्तर्द्वन्द्व अत्यंत सशक्त रूप में व्यंजित हुआ हैं।
2. प्रस्तुत अंश में भौतिकता पर मानवता की जीत बताई गई है।
3. प्रस्तुत अंश में कहावत का सुन्दर प्रयोग दर्शनीय है।

5– मुझे मेरे कदम अपने आप अरथी के पास पहुँचा देते हैं और मैं चुपचाप उसके पीछे– पीछे चलने लगता हूँ। चार आदमी कंधा दिये हैं और सात आदमी साथ साथ चल रहे हैं– सातवां मैं ही हूँ और मैं सोच रहा हूँ कि आदमी के मरते ही कितना फरक पड़ जाता है। पिछले साल ही दीवानचंद्र ने अपनी लड़की की शादी की थी तो हजारों की भीड़ थी। कोठी के बाहर कारों की लाइन लगी हुई थी।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानंद श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित 'दिल्ली में एक मौत' कहानी से उद्धृत किया गया है। इस कहानी के लेखक कमलेश्वर हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश के कहानीकार ने जीवन–मृत्यु के वास्तविक सत्य का वर्णन किया है। मनुष्य के जीवित रहते तक लोग इसके आगे पीछे घूमते हैं परन्तु मनुष्य की मृत्यु होती है तो उसके पास से लोगों का साया दूर हो जाता है। यहाँ लोगों की स्वार्थवृत्ति विवेचित है।

व्याख्या : प्रस्तुत व्याख्यांश में कथाकार कहता है कि शव–यात्रा में शामिल होने के ऊहापोह का अंत हो चुका था और अब वो सेठ दीवानचंद्र की शवयात्रा में शामिल था। उसकी अन्तर्रात्मा ने जब उसे धिक्कारा तो उसके कदम अपने आप सेठ दीवानचंद्र की शव–यात्रा में शामिल होने के लिये निकल पड़े और वह अरथी के पीछे–पीछे चल पड़ा। चार लोगों ने अरथी को कंधा दिया हुआ था और अरथी के साथ सात व्यक्ति और चल रहे थे। कहानीकार कहता है कि सातवाँ व्यक्ति में ही था। उसे ऐसा लगता है कि मनुष्य की मृत्यु के साथ ही लोग उसका साथ क्यों छोड़ देते हैं? कहानीकार स्मरण करता है कि पिछले वर्ष सेठ दीवानचंद्र ने अपनी लड़की की शादी की थी तो हजारों की भीड़ दरवाजे पर जुटी थी। उसके घर के बाहर कारों का मेला लगा था। अर्थात् उसके सारे परिचित नाते–रिश्तेदार एकत्रित हो गये थे और आज जब सेठ दीवानचंद्र का निधन हो गया है तो उसकी अरथी के साथ केवल सात लोग चल रहे हैं। यह कैसी विडम्बना है?

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में जीवन के सत्य और समाज की सच्चाई का यथार्थ वर्णन किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में व्यक्ति की स्वार्थपरता का यथार्थ वर्णन है।

4.8 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

शब्दार्थ

धुंध – कोहरा

फिक्सो – दाढ़ी में लगाने का लोशन

बेतहाशा – तेजी से

डाउन – गिरना

शिट – पहर

सलीब – सूली

मैगनेट – चुम्बक

खामोशी – चुपचाप

दस्तक – आवाज

तसल्ली – आश्वासन

खटका – आशंका

बवाल – झंझट

फौरन – तुरंत

बरजे – बरामदा

आहिस्ता – धीरे

बेहूदा – बेकार

अदब – सम्मान

हिदायतें – नसीहत

पेशगी – काम के पटते दिया गया वेतन

रेजगारी – चिल्लर/फुटकर

रूह – आत्मा

अरथी – शव

शमशान – दाह संस्कार स्थल

शोफर – ड्राईवर

सिरहाने – सिर के पास

मातमपुरसी – दुख व्यक्त करना

दतर – कार्यालय

मौत – मृत्यु

कहावतें / मुहावरे

भटकती हुई रूह – इधर–उधर घूमती हुई आत्मा

दुश्मन का साथ निभाना – मुसीबत में काम आना

4.9 सारांश

कमलेश्वर की कहानियों में परिवर्तित सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण एवम् अनुभूति की सच्चाई बड़ी गहराई से व्यक्त हुयी है। इस इकाई के अन्तर्गत कहानी के तत्वों के आधार पर 'दिल्ली में एक मौत' कहानी की समीक्षा, कहानी के मूल कथ्य, भौतिकवादी प्रवृत्ति और मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार कमलेश्वर के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो चुके हैं।
- कहानीकार कमलेश्वर के कहानी कला की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं।
- कहानी 'दिल्ली में एक मौत' की कहानी के तत्वों के आधार पर तात्विक समीक्षा कर सकते हैं।
- कहानी में व्यक्त भौतिकवादी प्रवृत्ति और मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व को समझ सकते हैं।

4.10 अपनी प्रगति जाँचिए

1. 'दिल्ली में एक मौत' कहानी में मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व का चित्रण मिलता है–स्पष्ट कीजिए।
2. 'दिल्ली में एक मौत' कहानी में निहित उद्‌देश्य पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
3. 'दिल्ली में एक मौत' कहानी में भौतिकवादी प्रवृत्ति का सजीव चित्रण मिलता है–व्याख्या कीजिए।
4. 'दिल्ली में एक मौत' की संक्षिप्त कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिए।
5. 'दिल्ली में एक मौत' कहानी भारतीय महानगरीय जीवन का दृश्य रूपायित करती है–स्पष्ट कीजिए।
6. 'दिल्ली में एक मौत' कहानी की भाषा–शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

4.11 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1. कहानीकार कमलेश्वर की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।
2 कहानी में प्रयुक्त कहावतों और मुहावरों को छांटकर उनका अर्थ लिखते हुए वाक्यों में उनका प्रयोग कीजिए।
3 कहानी में प्रयुक्त उर्दू एवम् अंग्रेजी के शब्दों को छांटकर अर्थ लिखते हुए एक चार्ट तैयार कीजिए।

4.12 स्पष्टीकरण के बिन्दु

चतुर्थ इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

4.13 चर्चा के बिन्दु

चतुर्थ इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

सन्दर्भ ग्रन्थ

1– मधुरेश : नई कहानी : पुनर्विचार

2– डा. मंजुला देसाई : कमलेश्वर की कहानियों का अनुशीलन

बोध प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1

1.4 उत्तर 1–सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1– ब– अन्तिम

2– स– ग्राम्य जीवन

उत्तर 2 – घीसू और माधव दोनो में से कोई भी झोपड़ी के भीतर प्रसव वेदना से तड़प रही बुधिया को देखने नहीं जाते क्योंकि किसी के खेत से चोरी कर लाए गए जो आलू अलाव की आग में भूने रहे हैं, एक के जाने के बाद दूसरा उन्हें निकाल कर अकेला ही न खा जाए।

उत्तर 3 – अन्त में घीसू और माधव कफन, मृतक तथा सभी कुछ भूल नशे में धुत होकर वहीं गिर पड़े। उनका गिरना वस्तुतः विवश, युग–युगो से मज्जा तक घर कर गई भूख व्यवस्था से प्रताड़ित मानवता के चरम पतन की ओर संकेत करता है।

1.5

उत्तर 1– कफन लेने जाकर बाप बेटा द्वारा दारू पीने में व्यस्त हो जाना–फिर यह विश्वास व्यक्त करना कि जिन्होंने अब पैसे दिए है वे मृतक की माटी को भी ठिकाने लगा ही देंगे आदि सभी बातें हमारी परम्परागत सामंती, शोषक, उत्पीड़क अमानवीय व्यवस्था दोष को ही उजागर करने वाली है।

उत्तर 2– कहानीकार 'कफन' कहानी में व्यवस्था–दोष को ही मूल संवेद्य के रूप में, उजागर करना चाहता है। उस व्यवस्था–दोष को, जिसने आमजन या मजदूर किसान को यह सोचने के लिये विवश कर दिया है कि जब हाड़–तोड़ काम करके भी, खून–पसीना बहाकर भी भूख, प्यास और फटेहाली ही पल्ले पड़नी है, तो फिर काम क्यों और किसके लिए किया जाए?

1.6

उत्तर 1– सत्य/असत्य लिखिए

8. सत्य

9. असत्य

10. सत्य

11. असत्य

12. सत्य

13. सत्य

14. सत्य

1.7

उत्तर 1– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

4. .यर्थाथवादी

5. व्यक्तिपरक, समाजपरक

6. मानवीयता, मृत नैतिक

2.3
सिद्धा
स्वरू
2.4
में ठ
लिय

इकाई : 2

2.3

उत्तर 1–'जैनेन्द्र की कहानी.कला पर गांधीवाद, फ्रॉयडवाद और मार्क्सवाद जैसे अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव है।

उत्तर 2–'पत्नी' कहानी का मूल मन्तव्य भारतीय नारी की अन्तःव्यथा को व्यंजित कर उसके विद्रोह को स्वरूपाकार प्रदान करना है।

2.4

उत्तर 1– 'पत्नी' कहानी का आरम्भ स्थिति.वर्णन एवम् मनोविश्लेषण हुआ है।

उत्तर 2– नारी.पात्र सुनन्दा की अन्तः बाह्य स्थितियों को बताने के लिये कहानीकार ने पहले अंगीठी में ठण्डी पडती आग, उसमें फिर कोयले डालना और बुझ रहे अंगारों का फिर से लहक उठना जैसी बातों का सहारा लिया है।

उत्तर 3 – कालिन्दीचरण के प्रश्नों का उत्तर न देना सुनन्दा के मौन विरोध का परिचायक है।

इकाई : 3

उत्तर 1–सत्य/असत्य लिखिए

6. सत्य

7. सत्य

8. सत्य

9. सत्य

10. असत्य

उत्तर 2– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

8. नीरसता

9. मनोविश्लेषण

10. मनोवैज्ञानिक

11. व्यक्ति–चरित्र,

12. वर्णन,

13. मनोदशा ,

7 स्वकथोपकथन,

इकाई 4

4.4

उत्तर 1–सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1 अ– महानगरीय जीवन से

2 द– कथाकार स्वयं

म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

पंचम खण्ड : **कथान्तर : सम्पादक– परमानन्द श्रीवास्तव**

इकाई 5 –	**लाल पान की बेगम**	:	**फणीश्वर नाथ रेणु**
इकाई 6 –	**वापसी**	:	**उषा प्रियम्वदा**
इकाई 7 –	**गुलकी बन्नो**	:	**धर्मवीर भारती**
इकाई 8 –	**गदल**	:	**रांगेय राघव**

लेखक

डॉ. धीरेन्द्र शुक्ला

विभागाध्यक्ष – हिन्दी

शासकीय महात्मा गाँधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय

इटारसी, मध्यप्रदेश

सम्पादक

डॉ. प्रेम भारती

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

पंचम खण्ड : **कथान्तर : सम्पादक– परमानन्द श्रीवास्तव**

खण्ड परिचय–

एम. ए. उत्तरार्ध हिन्दी के षष्ठम प्रश्न पत्र 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' का पंचम खण्ड 'कथान्तर : सम्पादक– परमानन्द श्रीवास्तव' पर आध ाारित है।

इस खण्ड में निम्न कहानियाँ सम्मिलित है जिनका विभिन्न इकाई के अन्तर्गत सविस्तार अध्ययन करेंगे–

इकाई 5	–	'लाल पान की बेगम'	: फणीश्वर नाथ रेणु
इकाई 6	–	वापसी	: उषा प्रियम्वदा
इकाई 7	–	गुलकी बन्नो	: धर्मवीर भारती
इकाई 8	–	गदल	: रांगेय राघव

इकाईयों के विस्तृत अध्ययन से पूर्व संक्षेप में यह स्पष्ट कर दें कि प्रत्येक इकाई में किन.किन महत्वपूर्ण मुद्दों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। कहानी से अभिप्राय, उसमें अभिव्यक्त समस्याएं, मानवीय प्रवृत्तियॉं, पति.पत्नि सम्बन्धों की जटिलता, पारिवारिक विघटन, सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक सरोकार, नारी की स्थिति, व्यक्तित्ववादी संघर्ष तथा कहानी कला के आधार पर कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत खण्ड में सम्मिलित कहनियाँ परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास किया गया है।

इकाई 5 : फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा रचित 'लाल पान की बेगम' कहानी पर आधारित है। 'लाल पान की बेगम' कहानी ग्रामीण अंचल के ताने–बाने में बुनी हुयी है। बिरजू के पिता ने जब बैल खरीदे थे उसी समय यह ऐलान कर दिया था कि वह इस बार बलरामपुर का नाच दिखाने घर के सभी लोगों को बैलगाड़ी ले जायेगा। बस यही से कहानी की शुरुवात होती है और पूरा ग्राम्य जीवन कथा के साथ–साथ आकार लेने लगता है। सारी कहानी मनोविज्ञान का आधार लेकर चली है। मन की लालसा, रीझ. खीझ, कुढ़न आदि की स्थान.स्थान पर सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।इस तरह कहानी ग्रामीण जीवन का सफल अंकन करती है। उनकी जीवन शैली मानसिक स्थिति, व्यवहार परम्परा, रीति.रिवाज शौक का दर्शन हम लालपान की बेगम में पाते है।

इकाई 6 : ऊषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'वापसी' कहानी पर आधारित है। यह कहानी मानव जीवन के यथार्थ की कहानी है। आज की दुनिया मे सारे नाते रिश्ते स्वार्थ के है। इस संसार मे कोई किसी का पिता या पति नहीं, जो कुछ भी है, पैसा कमाने की मशीन है, जिस दिन यह मशीन बन्द हो जाएगी उस दिन लोग चाहना बन्द कर देंगे। यह कहानी इन्हीं विचारों से ओतप्रोत है।

'वापसी' कहानी एक पारिवारिक घुटन की कथा है, जिसमें गृह.स्वामी परिवार की आवश्यकता पूरी करने के लिए जीवनभर नोट छापने की मशीन बना रहता है। घर परिवार से दूर पराए लोगों के बीच वह इसलिए पड़ा रहता है कि जिन्हें वह अपना समझता है, वे सुख से रहें, लेकिन जब वह रिटायर हो जाता है तो अपने लोगों के बीच यह आशा लेकर लौटता है कि उसे सुख मिलेगा, पर उसे सुख की परछाया भी नहीं मिल पाती, बल्कि एक ऐसा घुटनभरा वातावरण मिलता है कि वह पुनः नौकरी करने के लिए घर से बाहर जाने के लिए विवश हो जाता है। उसे इस प्रकार विवश करने वाले उसकी स्वयं की पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू एवम् बेटी आदि होते है।

इस प्रकार परिवार के लोगों से उसको झूठी सहानुभूति भी नहीं मिल पाती है। उसकी पत्नी तक उससे खुश नहीं रहती है और उनकी वापसी पर सभी संतोष की सांस लेते है। कहानी के कथानक का गठन इसी मुख्य संवेदना के केन्द्र.बिन्दु पर गठित है।

इकाई 7 : धर्मवीर भारती द्वारा रचित 'गुलकी बन्नो' कहानी पर आधारित है। 'गुलकी बन्नो' की प्रमुख पात्र गुलकी समाज द्वारा उपेक्षित एवम् पति परित्यक्ता है। उसका जीवन बड़ा ही करूणिक है। पति परित्यक्ता होने पर वह गाँव वालों की सहायता से सब्जी की एक दुकान खोलती है, फिर भी महीने में उसे बीस दिन भूखे रहना पड़ता है। गाँव के बच्चे उसे तंग करते हैं, गाली देते है, चिढ़ाते हैं कुबड़ी का गाना गाते है, क्योकि वह कुबड़ी थी। गाँव में उसका एक मकान है। गाँव वाले उस पर निगाह लगाये हैं। इसलिये उसे इज्जत भी देते हैं। एक दिन उसका पति अपनी रखेल के बच्चे की सेवा के लिए उसे बुलाने आता है, यद्यपि गुलकी की सहेली सत्ती उसे मना करती है फिर भी वह तांगे पर बैठकर पति के साथ चल देती है। प्रस्तुत कथा विषय की दृष्टि से वर्तमान नारी समस्या से सम्बन्धित है

इकाई 8 : रांगेय राघव द्वारा रचित 'गदल' कहानी पर आधारित है। 'गदल' कहानी के माध्यम से रांगेय राघव ने गूजर समाज की स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण किया हैं। गदल वह स्त्री है जो हर तरफ से उपेक्षित होकर अपना जीवन जीती है। न उसे बेटों से सुख मिलता है न वर्तमान पति के घर से। वह अंदर ही अंदर जला करती है कि उसे देवर की उपेक्षा और बेटे बहुओ की दुत्कार के कारण घर छोड़ना पड़ा। इस प्रकार एक उपेक्षित नारी का चित्रण अत्यन्त सशक्त रूप में दर्शाया गया हैं।

'लाल पान की बेगम' : फणीश्वर नाथ रेणु

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 फणीश्वर नाथ रेणु : संक्षिप्त परिचय

5.4 'लाल पान की बेगम' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

5.4.1 कथानक

5.4.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण

5.4.3 वातावरण

5.4.4 भाषा शैली

5.4.5 कथोपकथन

5.4.6 उद्देश्य

5.4.7 शीर्षक

5.5 ग्राम्य परिवार का रहन.सहन और मानसिकता का चित्रण

5.6 ग्राम्य जातियों के आपसी सम्बन्ध, इर्ष्या, द्वेष और प्रेम.भावना का चित्रण

5.7 व्याख्या खण्ड

5.8 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

5.9 सारांश

5.10 अपनी प्रगति जाँचिए

5.11 नियतकार्य / गतिविधियाँ

5.12 स्पष्टीकरण के बिन्दु

5.13 चर्चा के बिन्दु

5.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की पाँचवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु के कहानी कला को समझ पाएंगे।
- कहानी के तत्वों के आधार पर ''लाल पान की बेगम'' कहानी की समीक्षा कर पाएंगे।
- ग्राम्य परिवार का रहन.सहन और मानसिकता को जान पाएंगे।
- ग्राम्य जातियों के आपसी सम्बन्ध, इर्ष्या, द्वेष और प्रेम.भावना को समझ पाएंगे।

5.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की पाँचवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु के जीवन, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

फणीश्वर नाथ रेणु आंचलिक कथाकारों के सिरमौर हैं। ''लाल पान की बेगम'' कहानी ग्रामीण अंचल के ताने–बाने में बुनी हुयी है। गाँव के व्यक्तियों के संस्कार, रूचि, अरूचि, परम्पराओं रूढियों एवम् उनकी परिवेश को मार्मिक और स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करना ही लेखक का मुख्योद्देश्य रहा है।

प्रस्तुत इकाई में कथानक, पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण, वातावरण, भाषा शैली, कथोपकथन, उद्देश्य और शीर्षक आदि कहानी के तत्वों के आधार पर ''लाल पान की बेगम'' कहानी की समीक्षा की गयी है।

''लाल पान की बेगम'' कहानी के आधार पर ग्राम्य परिवार का रहन.सहन, मानसिकता और ग्राम्य जातियों के आपसी सम्बन्ध, इर्ष्या, द्वेष और प्रेम.भावना को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

5.3 फणीश्वर नाथ रेणु : संक्षिप्त परिचय

फणीश्वर नाथ रेणु ने प्रेमचंद के बाद के काल में हिन्दी में श्रेष्टतम गद्य रचनाएं की। इनके पहले उपन्यास मैला आंचल को बहुत ख्याति मिली थी जिसके लिए उन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

जीवनी

फणीश्वर नाथ रेणु का जन्म बिहार के अररिया जिले के फॉरबिसगंज के निकट औराही हिंगना में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा फॉरबिसगंज तथा अररिया में पूरी करने के बाद इन्होने मैट्रिक नेपाल के विराटनगर के विराटनगर आदर्श विद्यालय से कोईराला परिवार में रहकर की। इन्होने इन्टरमीडिएट काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1942 में की जिसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। बाद में 1950 में उन्होनें नेपाली क्रांतिकारी आंदोलन में भी हिस्सा लिया जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। 1952–53 के समय वे भीषण रूप से रोगग्रस्त रहे थे जिसके बाद लेखन की ओर उनका झुकाव हुआ। उनके इस काल की झलक उनकी कहानी तबे एकला चलो रे में मिलती है। उन्होंने हिन्दी में आंचलिक कथा की नींव रखी।

लेखन – शैली

इनकी लेखन–शैली वर्णणात्मक थी जिसमें पात्र के प्रत्येक मनावैज्ञानिक सोच का विवरण लुभावने तरीके से किया होता था। पात्रों का चरित्र–निर्माण काफी तेजी से होता था क्योंकि पात्र एक सामान्य सरल मानव मन के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता था। इनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रधान होती थी। एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है।

इनकी लेखन–शैली प्रेमचंद से काफी मिलती थी और इन्हें आजादी के बाद का प्रेमचंद की संज्ञा भी दी जाती है।

अपनी कृतियों में उन्होनें आंचलिक पदों का बहुत प्रयोग किया है। अगर आप उनके क्षेत्र से हैं (कोशी), तो ऐसे शब्द, जो आप निहायत ही ठेठ या देहाती समझते है, भी देखने को मिल सकते है आपको इनकी रचनाओं में।

साहित्यिक कृतियां

उपन्यास – मैला आंचल, परती परिकथा, जूलूस, दीर्घतपा, कितने चौराहे, पलटू बाबू ,रोड, कथा संग्रह– एक आदिम रात्रि की महक, ठुमरी, अग्निखोर, अच्छे आदमी

रिपोर्ताज – ऋणजल – धनजल नेपाली क्रांतिकथा वनतुलसी की गंध श्रुत अश्रुत पूर्वे

प्रसिद्ध कहानियां – मारे गये गुलफाम (तीसरी कसम), एक आदिम रात्रि की महक, 'लाल पान की बेगम', पंचलाइट, तबे एकला चलो रे, ठेस संवदिया

5.4 'लाल पान की बेगम' की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

कहानी के तत्वों के आधार पर 'लाल पान की बेगम' की समीक्षा प्रस्तुत है–

5.4.1 कथानक

बिरजु, चम्पिया और उसके माता.पिता 'कोयरी टोले' नाम के गाँव में रहते हैं। बिरजु के पिता पटसन और धान की खेती करते हैं और बिरजु की माँ ग्रामीण घरेलू महिला है। इनका परिवार छोटे कुल से सम्बन्ध रखता है।

पटसन की खेती में अच्छी पैदावार होती है जिससे बिरजु के पिता बैलों का एक जोड़ा खरीद लेता है और उसी दिन से कोयरी टोले में कहता फिरता है की– "बिरजू की माँ इस बार बैलगाड़ी पर चढ़ कर जायेगी नाच देखने"

परन्तु बिरजू के पास खुद की गाड़ी नही थी। मात्र बैल ही थे। इस तरह बलरामपुर का नाच देखने के लिए बैल गाड़ी में जाने के लिए बिरजु की माँ, बिरजु और चम्पिया बहुत उत्सुक है। बलरामपुर जाना है गाड़ी से, पैदल नहीं–यह बात बिरजु की माँ को अन्दर से आनान्दित किये जाती है। वह पूरे गाँव में कहती फिरती है– "इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है, बैलगाड़ी पर बैठाकर बलरामपुर का नाच दिखलाऊँगा।"

जब नाच देखने का दिन आता है। तो बिरजु के पिता को 'कोयरी टोले' खुद के ही गाँव में गाड़ी नहीं मिल पाती वह परेशान होकर दूसरे गाँव मलदहिया से गाड़ी माँगने चला जाता है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने लानपान की बेगम के माध्यम से कोयरी टोले के ग्रामीण अंचल में धड़कने वाला जीवन का सफलता पूर्वक अंकन किया।

ग्रामीण परिवेश में गाय, बैल, खेत, खलिहान का बहुत महत्व है। वहाँ व्यक्ति की सम्पन्नता को इसी पैमाने से नापा जाता है।

बिरजू की माँ जो एक ग्रामीण महिला है एक अरमान लेकर बैठी है की वह गाड़ी में बैठेगी। जब बिरजू के बप्पा की खेत मे पटसन की खेती ठीक होती है। तो वह बैल खरीद लेता है और पत्नि को उस बैलगाड़ी में बैठाकर बलरामपुर के नाच में ले जाने की बात कहता है।

जिसका बिरजू की माँ एक माह से इन्तजार करती है और वह सब तय कर लेती है कि साथ में क्या पकाएँगी क्या.क्या पहनेगी, बच्चों को क्या पहनाएँगी,

वह बहुत खुश है कि वह गाड़ी में बैठकर बलरामपुर जाएँगी। जब बिरजु के बप्पा पूरे दिन गाड़ी नहीं लाते है। तो उसका मन बैचेन हो जाता है। वह किसी से ठीक से बात नहीं करती है। पास.पड़ौस की स्त्रियाँ उसके इस व्यवहार का ठीक मतलब नहीं समझ पाते है और सोचते हैं कि उसे घमण्ड आ गया है। ऐसी ही एक ग्रामीण महिला मखनी बुआ जो बिरजू की माँ की पड़ोसन है बिरजू की माँ से पूछ बैठती है। "क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या?"

तो बिरजू की माँ मखनी बुआ को तीखा सा जबाब देती है– "आगे नाथ और पीछे मगहिया न हो तब न फुआ।"

चूंकि मखनी फुआ अकेली है। उसका कोई नही है अतः यह बात बुआ को अन्दर तक धँस जाती है। इसी बात की चर्चा मखनी फुआ पनभरनियों से कर के अपनी कुण्ठा निकालती है और कहती है। "जरा देखो तो इस बिरजू की माँ को। चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुआ है। धरती पर पाँव ही नही पड़ते"

निसाफ करो! खुद अपने मुँह से आठ दिन पहले से ही गाँव की गली.गली में बोलती फिर रही है, हाँ इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है, बैलगाड़ी पर बैठकर बलरामपुर का नाच दिखालाने जाऊँगा। बैल अब अपने घर है तो हजार गाडियाँ मँगनी मिल जायेगी। सो मैने अभी टोक दिया, नाच देखने वाली सब तो और.पौन कर तैयार हो रही है। रसोई.पानी कर रही है। मेरे मुँह में आग लगे, क्यों मैं टोने गयी, सुनती हो क्या जवाब दिया बिरजू की माँ ने?" और वह सब पानी भरने वाली महिलाओं से कहती है।

गाँव में जब महिलाएँ पनघट पर एकत्रित होती है। तो वे आपस में एक दूसरे की चुगली करती है। जो इस कहानी की आँचलिकता का बोध कराता है।

जब मखनी फुआ अपनी पूरी बात कह चूकी होती है। तब जंगी की पतोहू (पोते की बहू) जो सभी महिलाओं में निडर है, वह बिरजू के पिता की तरक्की के राज को कहानी बनाकर कहती है। "फुआ आ! सरवे सित्तलमिंटी (सर्वे सेट्लमेण्ट) के हाकिम के बासा पर फुलछाप किनारी वाली साड़ी पहन के यदि तु भी भंटा की भेंटी चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दु तीन बीघा धनहर जमीन का पर्चा कट जाता। फिर तुम्हारे घर भी आज दस मन सोनाबांग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदती। फिर आगे नाथ और सैकड़ों पगहिया झुलती।"

जब बिरजू की माँ जंगी को पतोहु की बातें सुन लेती है। तो वह उससे कुछ न कह कर गुस्सा अपनी बेटी चम्पी पर निकाल कर देती है।

बिरजू की माँ जंगी की फतोहू को सीधे.सीधे कुछ न बोलकर अपनी बेटी चम्पियाँ को माध्यम बनाकर हुड़क देती है। जिसे जंगी की पतोहू समझ कर ताना, मारते हुये बिरजू की माँ को कहती है– इस मुहल्ले मे 'लाल पान की बेगम' बसती है। नहीं जानती है।"

ताना सुनकर बिरजू की माँ और अधिक विचलित हो अपने की बेटी को डाँटती है। और फिर उसे गाड़ी की याद आती है। शाम हो जाने पर भी बिरजू के बप्पा नहीं लौटता है तो बिरजू को वह परेशान होकर ही बुरा भला कहती

है। और मन.ही.मन परेशान होती है की सब पैदल से जाने वाले लोग ही बलरामपुर पहुँच गये होगे। और वह अपना गुस्सा बकरी पर और बच्चों पर उतारती है।

परन्तु कुछ ही देर बाद बिरजू के बप्पा गाड़ी के साथ लौट जाता है। परन्तु उसकी पत्नी को विश्वास नहीं होता है कि गाड़ी मिल गई है।

वह लेटी रहती है। दरवाजा खोलने नहीं उठती पिता दोनों बच्चों का आवाज लगाते है। पर भी नही उठते है। कुछ देर बाद बिरजु की माँ उठ जाती है। उसका पति धान की बालियाँ लेकर आया है। उसे देखकर उसके मन का क्रोध समाप्त होने लगता है।

बिरजु के पिता उसे मेला चलने, और तैयारी करने के लिए कहता है। जिससे वह स्वीकार नहीं करती है। परन्तु वह बताता है कि "नाच अभी शुरू भी नहीं हुआ होगा। अभी.अभी बलरामपुर के बाबू की कम्पनी गाड़ी मोहनपुर होटिल बँगला से हाकिम साहब को लाने गयी है।"

इतना सुनकर ही बिरजू की माँ की आँखे चमक उठती है। वह जल्दी.जल्दी तय कार्यक्रम निबटाती है और चलने के लिए तैयार हो जाती है।

बिरजू के पिता जब गाड़ी लेकर आता है तो बिरजू की माँ का गुस्सा ऐसे गायब हो जाता है। जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। वह बहुत खुश होती है। उसे लगता है उसने सब पा लिया अब उसके मन में कोई लालसा नहीं है। परिवार में आनन्द का वातावरण छा जाता है। बिरजू की माँ रोटी बनाने के लिए फुआ को हँसती हुई बुलाती है। बिरजू की माँ के हृदय में परिवर्तन हो जाता है। वह जंगी की पुत्रवधू तथा अन्य झगड़ा करने वाली स्त्रियों को भी साथ ले चलती है वह हृदय के उल्लास में दूसरों पर प्रेम प्रकट करने लगती है–

"बिरजू की माँ ने जंगी की पतोहू की ओर देखा, धीरे.धीरे गुनगुना रही है। वह भी कितनी प्यारी पतोहू है। गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गन्ध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने बिरजू की माँ बेगम है। 'लाल पान की बेगम'! यह तो कोई बुरी बात नहीं। हाँ, वह सचमुच 'लाल पान की बेगम' है।"

कहानी का अन्त सूखान्त है। सारी कहानी मनोविज्ञान का आधार लेकर चली है। मन की लालसा, रीझ. खीझ, कुढ़न आदि की स्थान.स्थान पर सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

इस तरह कहानी ग्रामीण जीवन का सफल अंकन करती है। उनकी जीवन शैली मानसिक स्थिति, व्यवहार परम्परा, रीति.रिवाज शौक का दर्शन हम लालपान की बेगम में पाते है।

5.4.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण

चरित्र.चित्रण की दृष्टि से यह कहानी बहुत सफल है। "लाल पान की बेगम" कहानी में बिरजू के पिता, माँ, बिरजू, चमिया, चम्पा, जंगी आदि प्रमुख पात्र हैं। बिरजू की माँ इस कहानी की नायिका है।

चरित्र.चित्रण का आधार मनोवैज्ञानिक है। बिरजू की माँ कहानी की नायिका है, उसका स्वभाव कोमल है और वह दिल की साफ है। वह नाच देखने की अपनी लालसा पूरी होती नहीं देखती। इसी कारण गाँव की स्त्रियों के व्यंग्य पर यह क्रोधित हो उठती है, वह झुँझलाहट बकरे तक पर उतारती हुई कहती है–

"कल ही पंचकौड़ी कसाई के हवाले करती हूँ राक्षस तुझे। हर चीज में मुँह लगावेगा। चम्पिया बाँध दे बकरा को। खोल दे गले की घण्टी। टुमुर.टुमुर मुझे जरा नहीं सुहाता।"

इस कहानी के पात्रों का कथाकार ने सुन्दर और स्वाभाविक चरित्रों के साथ कल्पना का भी उपयुक्त सहारा लिया है। जंगी की पतौहू का चित्रांकन कितना आकर्षक है, इसे देखिए –

बिरजू की माँ ने जंगी की पतौहू की ओर देखा, धीरे.धीरे गुन.गुना रही है वह भी, कितनी प्यारी पतौहू है। गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गन्ध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने बिरजू की माँ बेगम है 'लाल पान की बेगम'! यह तो कोई बुरी बात नहीं। हाँ वह सचमुच लान पान की बेगम हैं।''

नायिका बिरजू की माँ चरित्र किस प्रकार से क्रोध और ईर्ष्या सहित धर्मभीरुता का शिकार है, इसका है, चित्रांकन कहानीकार ने इस प्रकार से किया है –

बिरजू की माँ धर्मभीरू है। उसका नाच देखने का कार्यक्रय अस्त.व्यस्त हो जाता है। उसे भगवान की नाराजी का भय होता हैं–

''महावीर का रोट तो बाकी है। हाय रे देब..............भूल–चूक माफ करो महावीर बाबा! मनौती दूगनी करके चढ़ावेगी बिरजू की माँ।'' पति के गाड़ी ले आने पर बहु प्रसन्न हो जाती है। और 'लाल पान की बेगम' बनी हुई सबको लेकर नाच देखने चल देती है।''

5.4.3 वातावरण

''"लाल पान की बेगम'' का देशकाल ग्रामीणांचल है। ग्रामीण वातावरण के उस भाग को कथाकार ने यहाँ लिया है जो निरा अशिक्षित और रूढ़िग्रस्त तो है लेकिन वह स्वतन्त्र और स्वाभाविक है। देशकाल या वातावरण का एक चित्रांकन इस प्रकार है–

भक.भक् बिजली बत्ती। तीन साल पहले सर्वे कैम्प के बाद गाँव की जलनडाही औरतों ने एक कहानी गढ़के फैलायी थी, चम्पिया की माँ के आंगन में रात.भर बिजली–बत्ती भुक.भुकाती थी। चम्पिया की माँ के आंगन में नालवाले जूते की छाप घोडे की टाप की तरह।''

इस कथन से कथाकार ने ग्रामीण परिवेश का चित्र परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल ही प्रस्तुत किया है।

5.4.4 भाषा शैली

रेणु जी भाषा.शैली के अद्भूत शिल्पी है। इस कहानी की भाषा ग्रामीण वातावरण को बड़ी सफलता से प्रस्तुत कर देती है। ग्रामीण अंचल के शब्दों के प्रयोग के साथ में गाँवों में बोले जाने वाले अंग्रेजी के विकृत शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जैसे– टीसन, ठेठर, वैसकोप आदि का स्वाभाविक प्रयोग है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा की व्यंजना शक्ति बढ़ गई है। सींग खुजाते फिरना, आगे नाथ न पीछे पगहिया, चुडेल मंडराना आदि मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है। ठेठ ग्रामीण शब्दों से भाषा में मिठास आ गई है।

चित्रात्मकता और बोधगम्यता इस कहानी की शैली की प्रमुख पहचान है। लेखक की मनोविश्लेषणात्मक पद्धति अधिक सफलता के साथ इस कहानी में व्यक्त हुई है।

5.4.5 कथोपकथन

कथोपकथन की दृष्टि से यह कहानी बहुत सफल है। गाँव का वातावरण यथार्थ रूप मे सामने आ जाता है। यह कहानी आँचलिक है। अतः इसमें गाँव की स्थानीय बोली का पुट मिलता है। कथोपकथन में नाटकीयता, मार्मिकता

और स्वाभाविकता है। सारे कथोपकथन चरित्र प्रकाशन में सहायक है। वे कथानक को भी गति प्रदान करते हैं कहानी के अन्त में छोटे.छोटे कथोपकथन बहुत सफल और सुन्दर बन पड़े है। कुछ उदाहरण लीजिए–

(1) 'जरा देखो इस बिरजू की माँ को! चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुआ है, धरती पर पाँव नहीं पडते। निसाफ करो! खुद अपने मुँह से आठ दिन पहले से ही गाँव की गली.गली में बोलती फिरती है।'

(2) 'अरी चम्पिया.या.या, आज लौटे तो तेरी मुड़ी मरोड़कर चूल्हे में झोंकती हूँ! दिन.दिन बेचाल होती जाती है।..... गाँव में तो अब ठेठर.बैसकोप का गीत गाने वाली पतुरिया पतोहू सब आने लगी हैं। कहीं बैठके 'कहींबाजे न मुरलिया' सीख रही होंगी ह.र–जा.ई। अरी चम्पिया.या.या!

(3) 'सहुआइन जल्दी सौदा नहीं देती की नानी ! एक सहु आइनं की ही दुकान पर मोती झरते हैं, जो जड़. जड़कर बैठी थी। बोल, गले पर घात देकर कल्ला तोड़ दूँगी हरजाई, जो फिर कभी 'बाजे न मुरलिया' गाते सुना। चाल सीखने जाती है टीशन की छोकरियों से।

(4) 'ए मैया, एक अँगुली गुड़ दे !–देना मैया, एक रत्तभर।'

''लाल पान की बेगम'' कहानी के संवाद अधिक सरल और भावनुकूल है। इससे कहानी का क्रम अधिक गतिशील और भावप्रद रूप में व्यक्त होने में सहजता दिखाई देती है। ''लाल पान की बेगम'' के कथोपकथन वास्तव में यथार्थपूर्ण और विश्वसनीय रूप में है। जैसे–

बिरजू ने धान की एक बाली से एक धान लेकर मुँह में डाल दिया और उसकी माँ ने एक हल्की डांट दी। कैसा भुक्कड़ है तू रे! इन दुश्मनों के मारे कोई नेम.धरम जो बचे।

क्या हुआ, डांटती क्यों है ?

अरे, इन लोगों का सब कुछ माफ है। चिरई चुनमुन है ये लोग। बस, हम दोनों के मुँह में नवान्न के पहले नया अन्न न पड़े।

ओ भैया, इतना मीठा चावल।

5.4.6 उद्देश्य

गाँव के व्यक्तियों के संस्कार, रूचि, अरूचि, परम्पराओं रूढियों एवम् उनकी परिवेश को मार्मिक और स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करना ही लेखक का मुख्योद्देश्य रहा है। इसके साथ ही इस कहानी में लेखक ने ग्रामीण जन.जीवन की खास मनोवृत्तियों का रेखांकन करना भी एक निश्चित उद्देश्य लिया है। यही कारण कि इस कहानी के पात्रों का बखूबी से मनोवविश्लेषण हुआ है। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अभिलाषा, निराशा आदि मनोविकारों के प्रभाव को भी इस कहानी में यर्थार्थ रूप में दिखाया गया हे। इस प्रकार से इस कहानी का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट और सार्थक सिद्ध हो जाता है।

5.4.7 शीर्षक

नायिका के आधार पर शीर्षक बड़ा उपयुक्त और सार्थक है। नायिका ही आद्यान्त सारे कथानक पर छाई है। जंगी की पुत्रवधू बिरजू की माँ को व्यंग्य में '''लाल पान की बेगम'' कहती थी। बिरजू की माँ इस सम्बोधन से चिढ़ती थी, परन्तु बिरजू की माँ जब सजकर नाच देखने चली, तो वह अपना ''लाल पान की बेगम'' नाम सार्थक समझने लगी।

"बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों नेत्र केन्द्रित करने की चेष्टा करके अपने रूप की झाँकी ली। लाल साड़ी की झिलमिल किनारी माँग कि टीका पर चाँद।"

5.5 ग्राम्य परिवार का रहन.सहन और मानसिकता का चित्रण

फणीश्वर नाथ रेणु आंचलिक कथाकारों के सिरमौर हैं। 'लाल पान की बेगम' कहानी ग्रामीण अंचल के ताने–बाने में बुनी हुयी है। बिरजू के पिता ने जब बैल खरीदे थे उसी समय यह ऐलान कर दिया था कि वह इस बार बलरामपुर का नाच दिखाने घर के सभी लोगों को बैलगाड़ी ले जायेगा। बस यही से कहानी की शुरूवात होती है और पूरा ग्राम्य जीवन कथा के साथ–साथ आकार लेने लगता है।

बिरजू के पिता ने सर्वे सेटलमेंट में जमीन ले थी और उसी से पैसे बचाकर बैल खरीद लिये थे। इसने अपने खेत में मेहनत करके धान बोये। इन सब कारणों से आस–पड़ोस के लोग बिरजू की माँ से थोड़ी ईर्ष्या रखते हैं। जंगी की पूतोहू इसी पर कटाक्ष करते हुए कहती है–'फुआ–आ! सरवे सित्तलमिंटी (सर्वे सिटलमेंट) के हाकिम के बासा पर फूलछाप किनारी वाली साड़ी पहन के यदि तू भी भंटा की भेंटी चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दु–तीन बीघा धनहर जमीन का पर्चा कट जाता। फिर तुम्हारे घर भी आज उस मन सोनाबंग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदती। फिर आगे नाथ और सैकड़ों पगहिया झूलती।'

ग्रामीण प्रतिस्पर्धा का इससे अच्छा उदाहरण देखने को नहीं मिलेगा। जब किसी परिवार के पास थोड़ी सी भी धन–सम्पत्ति एकत्रित होने लगती है तो गाँवों में ऐसी स्पर्धाएं स्वाभाविक हुआ करती हैं। इसी प्रकार एक–दूसरे पर कटाक्ष करना और एक–दूसरे का हास– परिहास करना जनमानस का मुख्य ध्येय होता है। इसका एक उदाहरण देखिये–'जंगी की पुतोहू ने बिरजू की माँ की बोली का स्वाद लेकर कमर पर घड़े को संभाला और मटककर बोली–चल दिदिया चल! इस मुहल्ले में 'लाल पान की बेगम' बसती है! नहीं जानती, दोपहर दिन और चौपहर रात बिजली की बत्ती भक–भक कर जलती है।'

भक्–भक् बिजली बत्ती की बात सुनकर न जाने क्यूं सभी खिल–खिलाकर हंस पड़े। फुआ की टूटी हुई दंत–पंक्तियों में बीच से एक मीठी गाली निकली–'शैतान की नानी।'

इसी प्रकार बिरजू की माँ का अपने बेटी चम्पिया से किया गया व्यवहार गाँवों की मानसिकता को सिद्ध करता है। बिरजू की माँ ने चम्पिया को गुड़ लाने के लिये भेजा था। जब बहुत देर बाद वह वापिस आती है तो बिरजू की माँ का गुस्सा सातवें आसमान पर होता है– 'मिट्टी के बरतन से टपकते हुए छोवा–गुड़ को उंगलियों से चाटती हुई चम्पियां आई और माँ के तमाचे खाकर चीख पड़ी–मुझे क्यों मारती है ए–ए–ए–ए? सहुआइन जल्दी से सौदा नहीं देती है एँ–एँ–एँ–एँ।'

'सहुआइन जल्दी सौदा नहीं देती की नानी! एक सहुआइन की ही दुकान पर मोती झड़ते हैं जो जड़ गाड़कर बैठी हुई थी। बोल, गले पर लात देकर तल्ला तोड़ दूंगी हरजाई जो कभी 'बाजे न मुरलिया' गाते सुना। चाल सीखने जाती है टीशन की छोरियों से'।

चम्पियां ने अपनी माँ को जैसे ही बताया कि पिताजी को बैलगाड़ी माँगने पर कोयेरी टोले में किसी ने भी नहीं दी है अब वे मलदहिया टोले से गाड़ी माँगने गये हैं। तब बिरजू की माँ की मानसिकता का चित्रण पूरे ग्रामीण परिवेश का चित्रण बनकर उभरता है। उदाहरण द्रष्टव्य है–"सुनते ही बिरजू की माँ का चेहरा उतर गया। लगा छाते की कमानी उतर गयी घोड़े से अचानक। कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी मंगनी नहीं दी। तब मिल चुकी गाड़ी। जब अपने गाँव के लोगों की आँख में पानी नहीं तो मलदहिया टोली के मियांजान की गाड़ी का क्या भरोसा। न तीन में न तेरह में! क्या होगा शकरकंद छीलकर! रख दे उठा के! यह मर्द नाच दिखायेगा! बैलगाड़ी पर चढ़ाकर नाच दिखाने ले जायेगा! चढ़ चुकी बैलगाड़ी पर, देख चुकी जी भर नाच! पैदल जाने वाली सभी पहुँचकर पुरानी हो चुकी होंगी।"

जंगी की पुतोहू ने जब भक्–भक् बिजली बत्ती वाली बात कही थी तब उसे याद करके बिरजू की माँ की मनोदशा ग्रामीण परिवेश का बहुत सुन्दर विश्लेषण करती प्रतीत होती है। गाँवों में छोटी–छोटी बातों को लेकर आपस में प्रतिस्पर्धा का वातावरण निर्मित हो जाता है और लोगों के मन में कई तरह के अंधविश्वास भी साकार रूप ग्रहण करते से दिखाई पड़ते हैं। यह कथन इस तथ्य को भलीभांति चरितार्थ करता है–'बिरजू की माँ के मन में रह–रहकर जंगी की पुतोहू की बातें चुभती हैं, भक्–भक् बिजली बत्ती!... चोरी–चमारी करने वाले की बेटी–पुतोहू जलेगी नहीं! पांच बीघा जमीन क्या हासिल की है बिरजू के बप्पा ने, गाँव की भाई खौकियों की आंखों में किरकिरी पड़ गई है। खेत में पाट लगा देखकर गाँव के लोगों की छाती फटने लगी, धरती फोड़कर पाट लगा है, वैशाखी बादलों की तरह उमड़ते आ रहे पाट के पौधे! तो अलान तो फलान! इतनी आंखों की धार फला फसल सहे! जहाँ पन्द्रह मन पाट होना चाहिए, सिर्फ उस मन पाट कटा कर तौल के ओजन हुआ रब्बी भगत के यहाँ।

इस प्रकार कहानी में गाँवों में निवास करने वाले लोगों के तरह–तरह के विचार उनकी मानसिकता को तो प्रदर्शित करते ही हैं साथ ही ग्रामीण परिवेश की झांकी भी प्रस्तुत करते हैं। जब बिरजू की माँ फुआ को आवाज लगाती है कि वह उसके यहाँ आकर मीठी रोटी बना दे और उसके यहाँ रात भर रुककर घर की रखवाली भी कर दे तो दोनों के मध्य होने वाला वार्तालाप तथा फुआ का अंतर्द्वंद्व ग्रामीण जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है।

'अरी फुआ–बिरजू की माँ ने हँसकर जवाब दिया–'उस समय बुरा मान गयी थी क्या? नाथ पगहिया वाले को आकर देखो, दो–पहर रात में गाड़ी लेकर आया है। आ जाओ फुआ, मैं मीठी रोटी पकाना नहीं जानती।

फुआ कांखती–खाँसती आयी–'इसी से घड़ी पहर दिन रहते ही पूछ रही थी कि नाच देखने जायेगी क्या? कहती तो मैं पहले से ही अपनी अंगीठी यहाँ सुलगा जाती।

बिरजू की माँ ने फुआ को अंगीठी दिखला दी और कहा घर में अनाज दाना बगैरह तो कुछ है नहीं, एक बागड़ है और कुछ बरतन–बासन। सो रात भर के लिए यहाँ तंबाकू रख जाती हूँ। अपना हुक्का तो ले आई हो न फुआ?' फुआ से तम्बाकू मिल जाये तो रात भर क्या, पांच रात बैठकर जाग सकती है। फुआ ने अंधेरे में टटोलकर तंबाकू का अंदाज किया... ओ–हो। हाथ खोलकर तम्बाकू रखा है बिरजू की माँ ने और वह एक सहुआइन! राम कहो! उस रात को अफीम की गोली की तरह एक मटर–भर तम्बाकू रखकर चली गई गुलाब बाग मेले और कह गयी कि डिब्बी भर तम्बाकू है।'

इसी प्रकार बिरजू की माँ मुँह से कितनी भी खरी–खोटी बच्चों से सुन ले या गाँव की औरतों से किन्तु उसका मन अत्यन्त सहज सरल और भावुक हृदय वाला है। जब बिरजू के पिता बैलगाड़ी लेकर आ जाते हैं तो वह जल्दी–जल्दी अपने बच्चों को तैयार करती है और गाँव की अन्य औरतों को भी याद कर करके अपने साथ बैलगाड़ी में नाच देखने के लिये ले जाती है। ऐसी सहज–सहज वृत्ति ग्रामीण जीवन का दृश्य उपस्थित कर देती है।

'गाड़ी जंगी के पिछवाड़े पहुँची। बिरजू की माँ ने कहा–'जरा जंगी से पूछो न उसकी पुतोहू नां देखने चली गयी क्या?' गाड़ी रूकते ही जंगी के झोपड़े से आती हुई रोने की आवाज स्पष्ट हो गयी। बिरजू के बप्पा ने पूछा–'अरे जंगी भाई! काहे कन्ना रोहट हो रहा है आंगन में?

जंगी घूर ताप रहा था, बोला क्या पूछते हो, रंगी बलरामपुर से लौटा नहीं, पुतोहिया नाच देखने कैसे जाये। आसरा देखते–देखते उधर गाँव की सभी औरतें चली गयी।

'अरी टीशन वाली तो रोती है काहे। बिरजू की माँ ने पुकार कर कहा आ झट से कपड़ा पहनकर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है! बेचारी.... आजा जल्दी।

बगल के झोपड़े से राधे की बेटी सुनरी ने कहा–'काकी, गाड़ी में जगह है? मैं भी आ जाऊंगी।'

बाँस की झाड़ी के उस पार लरेना खवास का घर है। उसकी बहू भी नहीं गयी है। गिलट का झुमकी–कड़ा पहनकर झमकती आ रही हैं।

'आजा! जो बाकी रह गयी है सब आ जाएं जल्दी।'

ऐसी आत्मीयता गाँवों में ही देखने को मिल सकती है। विवाद चाहे जितना भी हो जाये लेकिन आत्मीयता की यह डोर अभी भी ग्रामीण जीवन को उजला बनाये हुये है। ग्रामीण जीवन का रहन सहन और उसकी मानसिकता आज भी गाँवों को जीवंत और परिवेश को स्वच्छता प्रदान करती है। इसीलिये हमारे राष्ट्र को गाँवों का देश कहा जाता है। रेणुजी ने इस कहानी के माध्यम से ग्रामीण परिवेश का अद्भुत चित्र प्रस्तुत किया है।

5.6 ग्राम्य जातियों के आपसी सम्बन्ध, इर्ष्या, द्वेष और प्रेम.भावना का चित्रण

"लाल पान की बेगम" कहानी भारत के गाँवों की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करने में पूर्णतया सक्षम है। इस कहानी में ग्रामीण सम्बन्धों की गहराई है तो वहीं दूसरी ओर एक–दूसरे के राग–द्वेष का चित्रण है तो कही आपसी प्रेमभाव के दर्शन होते हैं। इस प्रकार सभी सम्बन्धों को निभाने वाली इस कहानी में हम देखते हैं कि आज गाँवों में किस तरह से आपसी सम्बन्धों पर कटाक्ष किये जाते हैं–"पड़ोसन मखनी फुआ की पुकार सुनाई पड़ी–'क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या?'

'बिरजू की माँ के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो तब न, फुआ! गरम गुस्से में बुझी नुकीली बात फुआ की देह में धँस गयी और बिरजू की माँ ने हाथ के ढेले को पास ही फेंक दिया....बेचारे बागड़ को कुकुरमाछी परेशान कर रही है।'

गाँवों में छोटी–छोटी बातों को लेकर आपसी सम्बन्धों में खटास सहज देखी जा सकती है। मखनी फुआ को जब बिरजू की माँ ने कटाक्ष किया तो वह बुरा मान गयी और गाँव की बाकी औरतों को बड़े आवेश में बताने लगी–"मखनी फुआ नीम के पास झुकी कमर से घड़ा उतारकर पानी भरकर लौटती पनभरनियों से बिरजू की माँ की बहकी हुई बात का इंसाफ करा रही थी–'जरा देखो तो इस बिरजू की माँ को! चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुआ है, धरती पर पाँव नहीं पड़ते। बिसाक करो! खुद अपने ही मुँह से आठ दिन पहले से गाँव की अली–गली में बोलती फिरी है, हाँ इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है कि, बैलगाड़ी पर बैठकर बलरामपुर का नाम दिखलाऊंगा। बैल अब अपने घर हैं, तो हजार गाड़ी मंगनी मिल जायेगी। सो मैंने अभी टोंक दिया, नाच देखने वालों सब तो औन पौन कर तैयार हो रही हैं, रसोई पानी कर रही हैं। मेरे मुँह पे आग लगे, क्यों में टोकने गई! सुनती हो क्या जवाब दिया बिरजू की माँ ने।'

मखनी फुआ ने अपने पोपले मुँह के ओठों को एक ओर मोड़कर ऐंठती हुई बोली निकाली– 'अर–रे–हाँ–हाँ! बि–र–र–जू की माँ, या के आगे नाथ और......र पीछे पगहिया ना हो, तब्ब–ना–आ–आ।

इस प्रकार के दृश्य गाँवों में आगे–बगाहे देखने को मिल जाते हैं। आज गाँवों में राग द्वेष का वातावरण आर्थिक असमानता के कारण भी दिखाई पड़ता है। थोड़ा–सा धन यदि किसी के पास आ गया तो गाँव के अन्य लोग इस पर टीका–टिप्पणी करने से बाज नहीं आते। जंगी की पुतोहू का यह कथन दृष्टव्य है–

"फुआ–आ! सरवे सित्तमिंटी (सर्वे सेटेलमेंट) के हाकिम के बास पर फूलछाप किनारी वालो साड़ी पहन के यदि तू भी भेंटी चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से–भी दु–तीन बीघा धनहर जमीन का पर्चा कट जाता। फिर तुम्हारे घर भी उस मन सोनाबंग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदती।' फिर आगे नाथ और सैकड़ों पगहिया झूलती।"

चम्पिया ने जब घर आकर बिरजू की माँ को बताया कि पिताजी बैलगाड़ी लेने मलदहिया टोला गये हैं क्योंकि कोयरी टोले में किसी ने बैलगाड़ी नहीं दी है, तो बिरजू की माँ के चेहरे पर उदासी छा गयी। उसे लगा

कि अब वह बलरामपुर का नाच देखने नहीं जा पायेगी। तब उसके मन से कोयरी टोला के लोगों के लिये द्वेष के भाव जाग पड़े। वह कहती है–"कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी मँगनी नहीं दी, तब मिल चुकी गाड़ी। जब अपने गाँव के लोगों की आंख में पानी नहीं तो मलदहिया टोली के मियांजान की गाड़ी का क्या भरोसा?' न तीन में न तेरह में।"

बिरजू की माँ मन ही मन यह विचार कर रही है कि जब सर्वे का समय आया था तभी बिरजू के पिता ने सभी गाँव वालों को समझा दिया था कि सर्वे के समय जमीन आवंटित करवा लो नहीं तो पूरी जिंदगी मजदूरी करनी पड़ेगी। तब किसी की कान में जूं नहीं रेंगी। अब जब बिरजू के पिता ने अपनी जमीन पर खेती करके थोड़ा धन इकट्ठा किया है तो गाँव की आंखों में क्यों किरकिरी हो रही है। वह कहती है कि- "इसमें जलने की क्या बात है भला!.... बिरजू के बप्पा ने तो कुर्मा टोली के एक–एक आदमी को समझा के कहा था जिंदगी पर मजदूरी करते रह जाओगे। सर्वे का समय आ रहा है, लाठी कड़ी करो, दो–तीन बीघे जमीन हासिल कर सकते हो। सो गाँव की किसी पूतखौकी का भतार सर्वे के समय बाबू साहेब के खिलाफ खाँसा भी नहीं।.... बिरजू के बप्पा को एक सहना पड़ा है। बाबू साहेब गुस्से में सरकस नाच के बाघ की तरह हुमड़ते रह गये। उनका बड़ा बेटा घर में आग लगाने की धमकी देकर गया।"

इस प्रकार गाँव का वातावरण रागद्वेष से परिपूर्ण तो है ही लेकिन वहां पर आपसी अत्मीय भाव भी है जिसका कारण गाँवों में आज भी आपसी मेल–जोल का स्वस्थ वातावरण दिखाई पड़ता है। जब घर की रखवाली के लिये बिरजू की माँ मखनी फुआ को आवाज लगवाती है तो वह उलाहना अवश्य देती है, पर बिरजू की माँ के पास आ जरूर जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि आपसी प्रेम भाव कहीं ज्यादा है तभी तो मखनी फुआ कहती है– "हां, अब फुआ को क्यों गुहारती है? सारे टोले में बस एक फुआ ही तो बिना नाथ–पगहिया वाली है।"

'अरी फुआ!' बिरजू की माँ ने हंसकर जवाब दिया, उस समय बुरा मान गयी थी? नाथ–पगहिया वाले को आकर देखो, दो–पहर रात में गाड़ी लेकर आया है! आ जाओ फुआ, मैं मीठी रोटी पकाना नहीं जानती!' फुआ कांखती–खांसती आयी–'इसी से घड़ी–पहर दिन रहते ही पूछ रही थी कि नाच देखने जायेगी क्या? कहती तो मैं पहले ही अपनी अंगीठी यहाँ सुलगा जाती। '

बिरजू की माँ जब अपने पूरे परिवार के साथ बैलगाड़ी में बैठकर बलरामपुर का नाच देखने के लिये निकलती है तो वह गाँव की हर एक औरत को अपने साथ बैलगाड़ी में बिठा लेना चाहती है। इससे यह प्रतीत होता है कि आपस में रागद्वेष जितना भी हो पर उनके हृदय स्वच्छ है और उनके मन में एक–दूसरे के लिये प्रेम भाव भी है तभी तो वे एक–दूसरे को दुखी नहीं देख सकते है। इसका एक सशक्त उदाहरण दृष्टव्य है–

"गाड़ी जंगी के पिछवाड़े पहुँची। बिरजू की माँ ने कहा जरा जंगी से पूछो न उसकी पुतोहू नाच देखने चली गई क्या? गाड़ी रुकते ही जंगी के झोपड़े से आती हुई रोने की आवाज स्पष्ट हो गयी। बिरजू के बप्पा ने पूछा अरे जंगी भाई काहे का रोहट हो रहा है आँगन में?"

जंगी घूर ताप रहा था, बोला–'क्या पूछते हो, रंगी बलरामपूर से लौटा नहीं, पुतोहिया नाच देखने कैसे जाये। आसरा देखते–देखते उधर गाँव की सभी औरतें चली गयीं।'

"अरी टीशन वाली, तो रोती है काहे। बिरजू की माँ ने पुकार कर रहा आ जा झट से कपड़ा पहन कर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है। बेचारी! .... आ जा जल्दी।

बगल के झोपड़े से राधे की बेटी सुनरी ने कहा–'काकी गाड़ी में जगह है? मैं भी जाऊंगी।'

बांस की झाड़ी के उस पार लरेना खवास का घर है। उसकी बहू भी नहीं गयी है। गिलट का झुनकी कड़ा पहनकर झमकती आ रही है।

'आ जा! जो बाकी रह गयी है सब आ जाये जल्दी।'

ऐसा प्रेम भाव का वातावरण वर्तमान में केवल गाँवों में ही देखने को मिल सकता है। जहाँ एक ओर वे आपस में छोटी–छोटी बातों पर लड़ते दिखाई पड़ते हैं वही अवसर आने पर वे सभी एक–दूसरे के साथ मिलकर आत्मीयता का वातावरण निर्मित करते हैं। एक–दूसरे की तारीफ करते हैं एक–दूसरे के गुणों का बखान करते हैं। गाँव का प्राकृतिक सौंदर्य ग्रामवासियों की तरह ही निर्मल कोमल और स्वच्छ होता है–

"गाड़ी गाँव से बाहर होकर धान के खेतों के बगल से जाने लगी। चांदनी, कार्तिक की।..... खेतों से धान के झरते फूलों की गंध आती है। बांस की झाड़ में कहीं दुद्धी की लता फूली है। जंगी की पुतोहू ने एक बीड़ी सुलगाकर बिरजू की माँ की ओर बढ़ाई। बिरजू की माँ को अचानक याद आया, चम्पिया, सुनरी, लरेना की बीबी और जंगी की पुतोहू ये चारों ही तो बैसकोप का गीत गाना जानती हैं।....

इस प्रकार हम यह कह सकते है कि ''लाल पान की बेगम'' कहानी में ग्रामीण परिवेश में आपसी सम्बन्धों की मिठास, प्रेम भाव कहीं अधिक आत्मीय रूप से चित्रित हुये हैं। रागद्वेष का चित्रण जो कहानीकार ने किया है वह स्वाभाविक रूप से उत्पन्न वातावरण का परिणाम है। परन्तु गाँवों के निवासियों में जो प्रेम, लगाव और आत्मीयता है वह हमारे गाँवों का वास्तविक दृश्य उपस्थित करने में पूरी तरह से समर्थ है।

5.7 व्याख्या खण्ड

गद्यांश 1.

डाही औरतों ने एक कहानी गढ़ के फैलाई थी, चम्पिया की माँ के आँगन में रात भर बिजली बत्ती भुक–भुकाती थी। चम्पिया की माँ के आँगन में नाल वाले जूते की छाप घोड़े की टाप की तरह!...... जलो, जलो! और जलो! चम्पिया की माँ के आँगन में चाँदी जैसे पाट सूखते देखकर जलने वाली सब औरतें खलिहान पर सोनोली धान के बोझों की देखकर बैंगन का भुर्ता हो जायेंगी।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन के "लाल पान की बेगम'' कहानी से उद्घृत किया गया है। इस कहानी के लेखक आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में यह विवेचित किया गया है कि गाँव की टोना–टोटका करने वाली औरतों ने यह बात फैलाई है कि चम्पिया की माँ के घर में बिजली बत्ती झक–झुक कर जलती है जिसमें लोग उसके और उसके घर के लोगों से सम्बन्ध न रखें और वे लोग गाँव में अकेले पड़ जायें।

व्याख्या : बिरजू की माँ कहती है कि गाँव की टोना–टोटका का करने वाली औरतों ने ही तीन साल पहले यह बात प्रचारित की थी कि चम्पिया की माँ के आँगन में बिजली बत्ती भक–भक करके जलती बुझती है औा उसके आँगन में नाल वाले जूतों की छाप तथा घोड़ों की टाप देखी जा सकती है। अतएव चम्पिया की माँ जादू–टोना जानती है और वह इसी कारण अपने प्रभाव से सर्वे टीम को अपने बस में करके पाँच बीघा जमीन ले रही है। चम्पिया की माँ कहती है कि जब मेरे आँगन में चाँदी की तरह चमकने वाल पाट (जूट) की ढेरियां लगेंगी तब पूरे गाँव वाले देखकर जलेंगे। इसी तरह जब खलिहान (जहाँ धान एकत्रित करके रखा जाता है) में सोने की बाल सी दिखाई पड़ने वाली धान की गठरियां रखी जायेंगी तो गाँव वाले देख देखकर बैंगन के भुर्ते की तरह जलेंगे।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में ग्रामीण परिवेश में किस तरह एक–दूसरे परिवार का मजाक बनाया जाता है, विश्लेषित किया गया है।
2. इस अंश में ग्रामीण वातावरण का सुन्दर चित्रण किया गया है।

गद्यांश 2.

पहले से किसी बात का मनसूबा नही बाँधना चाहिए किसी को? भगवान ने मनसूबा तोड़ दिया। उसको सबसे पहले भगवान से पूछना है, यह किस चूक का फल दे रहे हो भोला बाबा! अपने

जानते उसने किसी देवता–पित्तर की मान–मनौती बाकी नही रखी। सर्वे के समय जमीन के लिये जितनी मनौतियाँ की थीं.....ठीक ही तो! महाबीरजी का शेर तो बाकी ही है। हाय रे दैव!.... भूल–चूक माफ करो महाबीर बाबा! मनौती दूनी करके चढ़ायेगी बिरजू की माँ।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन के "लाल पान की बेगम" कहानी से उद्धृत किया गया है। इस कहानी के लेखक आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु हैं।

प्रसंग : जब बिरजू के पिता बैलगाड़ी लेकर नहीं आते हैं तो बिरजू की माँ के मन में तरह–तरह के सवाल उठने लगते हैं। वह सोचने लगती है कि उसने भगवान को नाराज कर दिया है इसीलिये वह बलरामपुर का नाच देखने नही जा रही है।

व्याख्या : प्रस्तुत अंश में यह बताया गया है कि जब बिरजू के पिता बैलगाड़ी लेकर नहीं आ पाते हैं तो बिरजू की माँ के मन में तरह–तरह के ख्याल आते हैं। उसे लगता है कि पहले से कोई मनसूबा नहीं तैयार करना चाहिये। भगवान ने ही हमारे विचार पूरा नहीं होने दिया होगा। वह सोचती है कि उसने तो कभी भी भगवान की पूजा–अर्चना में कोई कमी नहीं छोड़ी है। तब भगवान ने उसका मनसूबा क्यों पूरा नहीं होने दिया? वह बलरामपुर का नाच देखने जाना चाहती है और अभी तक बिरजू के पिता को बैलगाड़ी नहीं मिल पाई है। वह पुनः विचार करती है कि सर्वेक्षण के समय जमीन खरीदने के लिये उसने जितनी मन्नतें मानी थीं वो समी तो उसने पूरी कर दी हैं, फिर अचानक उसे याद आता है कि महावीरजी के लिये की गई मन्नत तो अभी बाकी है। त बवह फिर महावीरजी से प्रार्थना करती है कि उसे माफ कर दें और वह यह प्रतिज्ञा करती है कि वह महावीर बाबा में दुगनी मनौती चढ़ायेगी।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में ग्रामीण अंधविश्वास का वर्णन किया गया है।
2. प्रस्तुत गद्यांश में यह बताया गया है कि जब तक सारे संसाधन एकत्रित हो जायें तब तक कोई भी कार्यक्रम तय नहीं कर लना चाहिये।
3. प्रस्तुत अंश में ग्रामीणों की धर्म भिरूता विश्लेषित की गई है।

गद्यांश 3

बिरजू की माँ दिन–रात मंझा न देती रहती तो ले चुके थे जमीन। रोज आकर माथा पकड़कर बैठ जायें, मुझे जमीन नहीं लेनी है बिरजू की माँ, मजदूरी ही अच्छी.....जवाब देती थी बिरजू की माँ खूब सोच–समझ के। छोड़ दो, जब तुम्हारा कलेजा ही थिर नहीं होता है तो क्या होगा। जोरू जमीन जोर के, नहीं हो किसी और के।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन के "लाल पान की बेगम" कहानी से उद्धृत किया गया है। इस कहानी के लेखक आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में सर्वेक्षण के समय जमीन खरीदने को लेकर बिरजू की माँ हमेशा जोर देती रही। इसी कारण बिरजू के पिता के पास आज जमीन है। वह तो हमेशा अपने हथियार डाल देता था और मजूरी करके ही जीवन काट देने को राजी था। किन्तु बिरजू की माँ ही थी कि जो उसे हमेशा प्रोत्साहित करती रहती थी।

व्याख्या : प्रस्तुत व्याख्यांश में यह बताया गया है कि यदि बिरजू की माँ लगातार दबाव न बनाती है तो बिरजू के पिता सर्वेक्षण के समय जमीन न खरीद पाते। दिन भर सर्वेक्षण दल के आगे– पीछे घूमने के बाद जब शाम को घर आकर बिरजू के पिता सिर पर हाथ रखकर बैठ जाते थे कि अब मैं मजदूरी करके ही जीवन काट लूँगा जमीन नहीं खरीद पाऊंगा। लेकिन बिरजू की माँ ही थी कि हठ करके अड़ी रही और बिरजू के पिता को

समझाती रही कि जमीन खरीदने से घर की दरिद्रता खत्म हो जायेगी। बीच–बीच में वह उसे उलाहना भी देती थी क्योंकि स्त्री के द्वारा दी गई उलाहना से पुरूष का पुरूषत्व जाग उठता है इसलिये वह उसे यहाँ तक कह देती है कि अगर तुम स्त्री को जमीन खरीद नहीं दिखा सके तो वह किसी और की हो जायेगी। इस तरह से बिरजू की माँ अपने पति को जमीन खरीदने के लिये प्रोत्साहित करती रही और उसी का परिणाम है कि बिरजू के पिता के पास पांच बीघा जमीन है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में स्त्री द्वारा पुरूष को प्रोत्साहित कर जमीन खरीदने का सुन्दर वर्णन किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में कहावतों–मुहावरों के माध्यम से तथ्य को स्पष्ट करने का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

गद्यांश 4

लो खूब देखो नाच! वाह रे नाच! कथरी के नीचे दुशाले का सपना!......... कल भोरे पानी भरने के लिये जब आयेगी पतली जीभ वाली पतुरिया सब हँसती आयेगी, हंसती जायेगी..... सभी जलते हैं उससे, हाँ, भगवान दाढ़ीजार भी.....दो बच्चों की माँ होकर भी वह जस की तस है। उसका घरवाला उसकी बात में रहता है। वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी जमीन है किसी के पास एक घुर जमीन भी अपनी इस गाँव में! जलेंगे नहीं, तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी। लोगों की बिखदिट से बचे तब तो।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन के "लाल पान की बेगम" कहानी से उद्घृत किया गया है। इस कहानी के लेखक आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश मे जब बिरजू के पिता बैलगाड़ी नही ला पाते हैं तब बिरजू की माँ की मनःस्थिति का चित्रण किया गया है। अभी तक उसने पूरे टोले मे यह बात प्रचारित कर दी थी कि वह इस बार बैलगाड़ी में बैठकर बलरामपुर का नाच देखने जायेगी लेकिन जब कल सुबह सारी स्त्रियाँ उससे पूछेंगी तो वह क्या जबाब देगी। इसका द्वन्द्व विवेचित है।

व्याख्या : बिरजू की माँ स्वयं को उलाहना देती हुई कहती है कि नाच देखने का बहुत शोक था अब बैलगाड़ी मंगनी में नहीं मिल पायी है तो खूब नाल देख लो। वह कहती है कि जब स्वयं में सामर्थ्य न हो तो सपने नहीं देखना चाहिए। वह सोचती है कि जब कल पनघट पर गाँव की सभी स्त्रियाँ मिलेगी तो मेरा मजाक उड़ायेंगी। पतली जीभ वाली पतुरिया भी मेरी हंसी उड़ायेगी। क्योकि उसकी सम्पन्नता और बातचीत के कारण उससे सभी जलते हैं। वह यहाँ तक सोच लेती है कि भगवान भी उससे जलने लगे हैं। वह कहती है कि सभी सोचते हैं कि दो बच्चों की माँ होने बाद भी उसका सौन्दर्य जस का तस है, उसका पति भी उसकी बात मानता है, उसके पास जमीन है, वह हर दृष्टि से सम्पन्न है। गाँव मे किसी के पास भी जरा सी जमीन नहीं है और उसके तीन बीघे की जमीन पर अगहन का धान लगा हुआ है। वह कहती है कि लोगों की बुरी नजरों से वह बच जाये तभी तो धान बच पायेगा।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में बिरजु की माँ का अर्न्तद्वन्द्व अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रस्तुत हुआ है।
2. प्रस्तुत अंश में कहावतों मुहावरों का सुंदर प्रयोग सराहनीय है।

गद्यांश 5

बिरजू को गोद में लेकर बैठी उसकी माँ की इच्छा हुई कि वह भी साथ–साथ गीत गाये। बिरजू की माँ ने जंगी की पुतोहू की ओर देखा, धीरे–धीरे गुनगुना रही है वह भी। कितनी प्यारी

पुतोहू है। गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गंध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने बिरजू की माँ बेगम है, 'लाल पान की बेगम'। यह तो कोई बुरी बात नहीं है। हाँ वह सचमुच 'लाल पान की बेगम' है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन के "लाल पान की बेगम" कहानी से उद्घृत किया गया है। इस कहानी के लेखक आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में बिरजू की माँ, बिरजू, चम्पिया, जंगी की पुतोहू, लरेना की बीबी, राधे की बेटी सुनरी आदि बैलगाड़ी में सवार होकर बलरामपुर का नाच देखने जा रहे हैं। बिरजू की माँ ने सभी को गीत गाने के लिये कहा और अब वह आत्मवलोकन करती हुई कहती है।

व्याख्या : प्रस्तुत व्याख्यांश में बिरजू की माँ टोले की अन्य स्त्रियों को साथ लेकर बलरामपुर का नाच देखने जा रही है। उसने अत्यन्त मातूल भाव से अपने बेटे बिरजू को अपनी गोद में सुला रखा है और उसका मन हुआ कि वह भी अन्य स्त्रियों के साथ-साथ गीत गाने लगे। जंगी की पुतोहू की तरफ देखकर बिरजू की माँ को ऐसा लगा कि वह कितनी सुन्दर है। गौने की साड़ी पहनकर जब वह बैठी है तो उसमें से एक पृथक खूश्बू आ रही है जो उसे आनन्द पहुँचा रही है। जंगी की पुतोहू ने ही कहा था कि बिरजू की माँ 'लाल पान की बेगम' है और आज स्वयं बिरजू की माँ को यह एहसास होता है कि उसने जो सोचा था उसके पति ने पूरा कर दिया। आज वह सभी को साथ लेकर बलरामपुर का नाच देखने जा रही है। वह वास्तव में 'लाल पान की बेगम' है। जंगी की पुतोहू ने ठीक की कहा था इसमें बुरा मानने वाली कौन सी बात है। यह तो प्रशंसा का विषय है कि बिरजू की माँ 'लाल पान की बेगम' है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश मे बिरजू की माँ का अन्तर्द्वन्द्व विश्लेषित किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में कहानी के शीर्षक को अर्थ की व्यापकता मिलती है।

गद्यांश 6

बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों आँखों को केन्द्रित करने की चेष्टा करके अपने रूप की झाँकी ली। लाल साड़ी की झिलमिल किनारी वाली माँगटिक्का पर चाँद बिरजू की माँ के मन में अब और कोई लालसा नहीं। उसे नींद आ रही है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन के "लाल पान की बेगम" कहानी से उद्घृत किया गया है। इस कहानी के लेखक आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में बिरजू की माँ, बिरजू, चम्पिया, जंगी की पुतोहू, नरेना की बीबी, राधे की बेटी सुनरी बैलगाड़ी में सवार होकर बलरामपुर का नाच देखने जा रहे है। बिरजू की माँ अपने सौन्दर्य के दर्शन स्वयं कर आत्मावलोकन करती हुई कहती है।

व्याख्या : प्रस्तुत अंश में बिरजू की माँ अपने बेटे-बेटी और पड़ोस की जंगी की पुतोहू, लरेना की बीबी, राधे की बेटी सुनरी को लेकर अपने पति के साथ बैलगाड़ी में बैठकर बलरामपुर का नाच देखने जा रही है। वह अत्यन्त आनन्दित और प्रफुल्लित है कि उसकी मुराद पूरी हो गयी है। उसके मन में जितने गिले सिकवे थे, वे सभी खत्म हो चुके थे। वह अपनी दोनों आँखों को नाक के पास एकाग्र करके स्वयं के सौंदर्य का दर्शन करंना चाहिती है। आज वह अत्यन्त रूपवान और लावण्यमयी दिखाई पड़ रही है। लाल साड़ी में उसका सौन्दर्य और भी अधि क आकर्षक दिखाई पड़ रहा है। उसकी माँग में सजा टीका, चाँद की तरह प्रतीत हो रहा है। बिरजू की माँ मन-ही-मन सोचती है कि अब उसके मन में कोई लालसा शेष नहीं है। अब शायद वह बलरामपुर का नाच न भी देखे, क्योंकि उसे नींद आने लगी है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में बिरजू की माँ के अलौकिक सौंदर्य का अत्यन्त आकर्षक वर्णन किया गया है।
2. स्वयं रूप सौंदर्य के दर्शन की कल्पना आकर्षण और अलौकिक है।
3. प्रस्तुत अंश में बिरजू की माँ के चरित्र को नवीन ऊँचाइया मिली हैं।

5.8 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

शब्दार्थ

कुढ़ना – चिढ़ना
बागड़ – बड़े
कुकुरमाछी – काली–काली मक्खियाँ
कलेवा – भोग लगाना
हथछुट्टा – बिना बंधन का
इंसाफ – न्याय
मंगनी – माँगने पर
औन–पौन – किसी भी तरह
सोना बैग – सोने से भरा हुआ
पाट – जूट
पगहिया – रस्सियाँ
मुँहजोर – बदतमीज
मोर्चा – झगड़ा
झाल – तीखापन
बेचाल – सीधे रास्ते न चलना
चौंधिया – चकाचौंध करना
हर्जाई – दूसरे का दिल जलाने वाले
तलहथी – हथेली
बेलज्जी – बिना लज्जा वाले
दियाबत्ती – शाम का समय
टोला – मोहल्ला
राकस – राक्षस
मंसूबा – इच्छा
भाईखोकियों – नजर लगाने वाले
मेहना – आकर्षित करना
बिखरोट – बुरी नजर
ओसारे – ऊपरी हिस्से
हुलसती – उत्सुकता
नवान्न – नया अन्न
गमकता – महकता
औंधाकर – उल्टा करके

हांकना – चलाना

पन्ना रोहट – रोने की आवाज

भूर – कचरे का ढेर

सुलगाकर – जलाकर

कहानी में प्रयुक्त कहावतें/मुहावरे

1. चुड़ैल मंडराना
2. आगे नाथ न पीछे पगहिया
3. सींग खुजाते फिरना
4. मन मसोस कर रहना
5. गोबर की ढेरी में ढेला मारना
6. बैगन का भुरता होना
7. छाते की कमानी उतरना
8. आँखों की धार
9. लाठी कड़ी करना
10. जोरू जमीन जोर के नहीं तो किसी और के
11. कोल्हू के बैल
12. कथरी के नीचे दुशाले का सपना

5.9 सारांश

"लाल पान की बेगम" कहानी ग्रामीण जीवन का सफल अंकन करती है। उनकी जीवन शैली मानसिक स्थिति, व्यवहार परम्परा, रीति.रिवाज शौक का दर्शन हम 'लालपान की बेगम' में पाते है। कहानी में ग्रामीण परिवेश में आपसी सम्बन्धों की मिठास, प्रेम भाव, रागद्वेष स्वाभाविक रूप चित्रित हुये हैं।

चरित्र.चित्रण की दृष्टि से यह कहानी बहुत सफल है। चरित्र.चित्रण का आधार मनोवैज्ञानिक है। कथाकार ने ग्रामीण परिवेश का चित्र परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल ही प्रस्तुत किया है। इस कहानी की भाषा ग्रामीण वातावरण को बड़ी सफलता से प्रस्तुत कर देती है। "लाल पान की बेगम" कहानी के संवाद अधिक सरल और भावनुकूल है।

क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, अभिलाषा, निराशा आदि मनोविकारों के प्रभाव को भी इस कहानी में यर्थार्थ रूप में दिखाया गया हे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो चुके हैं।
- कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु के कहानी कला से परिचित हो चुके हैं।
- कहानी के तत्वों के आधार पर "लाल पान की बेगम" कहानी की समीक्षा कर सकते हैं।
- ग्राम्य परिवार का रहन.सहन और मानसिकता से परिचित हो चुके हैं।
- ग्राम्य जातियों के आपसी सम्बन्ध, इर्ष्या, द्वेष और प्रेम.भावना से परिचित हो चुके हैं।

5.10 अपनी प्रगति जाँचिए

1. "लाल पान की बेगम" की कहानी को संक्षेप में लिखिए और वस्तु गठन की सफलता की दृष्टि से उसकी विशेषताएँ बतालाइये।

2. कहानी कला की दृष्टि से 'लाल पान की बेगम' कहानी का मूल्याँकन कीजिए।
3. चरित्र–चित्रण, की दृष्टि से "लाल पान की बेगम" कहानी की विशेषताएँ बतलाइए।
4. "लाल पान की बेगम" कहानी की कथोपकथन पर टिप्पणी लिखिये।
5. भाषा शैली की दृष्टि से "लाल पान की बेगम" कहानी की विशेषताएँ बतलाइए।

5.11 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1. कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।
2 कहानी में प्रयुक्त कहावतों और मुहावरों को छांटकर उनका अर्थ लिखते हुए वाक्यों में उनका प्रयोग कीजिए।
3 कहानी में प्रयुक्त आंचलिक शब्दों को छांटकर अर्थ लिखते हुए एक कोश तैयार कीजिए।

5.12 स्पष्टीकरण के बिन्दु

द्वितीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

5.13 चर्चा के बिन्दु

द्वितीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

इकाई 6

वापसी उषा प्रियम्वदा

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 उषा प्रियम्वदा : संक्षिप्त परिचय

6.4 वापसी की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

6.4.1 कथानक

6.4.2 वातावरण

6.4.3 भाषा शैली

6.4.4 कहानी के शीर्षक की सार्थकता

6.4.5 उद्देश्य और संवेदना–

6.5 संयुक्त परिवार की बदली हुई मानसिकता

6.6 पारिवारिक रिश्तों का ह्रास

6.7 व्याख्या खण्ड

6.8 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

6.9 सारांश

6.10 अपनी प्रगति जाँचिए

6.11 नियत कार्य/गतिविधियाँ

6.12 स्पष्टीकरण के बिन्दु

6.13 चर्चा के बिन्दु

6.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की छठवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- लेखिका उषा प्रियंवदा के कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- लेखिका उषा प्रियंवदा के कहानी कला को समझ पाएंगे।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की समीक्षा कर पाएंगे।
- कहानी के आधार पर संयुक्त परिवार की बदली मानसिकता को समझ पाएंगे।
- कहानी के आधार पर पारिवारिक रिश्तों का ह्रास और आपसी सम्बन्धों में आए बदलाव एवम् उसके कारणों को को समझ पाएंगे।

6.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की छठवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत लेखिका उषा प्रियंवदा के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत इकाई में कथानक, पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण, वातावरण, भाषा शैली, कथोपकथन, उद्देश्य और शीर्षक आदि कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की समीक्षा की गयी है।

'वापसी' कहानी के आधार पर संयुक्त परिवार की बदली मानसिकता, पारिवारिक रिश्तों का ह्रास और आपसी सम्बन्धों में आए बदलाव एवम् उसके कारणों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

6.3 उषा प्रियम्वदा : संक्षिप्त परिचय

लेखिका उषा प्रियम्वदा का जन्म 24 दिसम्बर 1930 को कानपुर में हुआ। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में पी.एच–डी. की उपाधि प्राप्त की।

प्रकाशित कृतियाँ

उपन्यास– पचपन खम्भे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा, अंतरवंशी, भया कबीरा उदास

कहानी संग्रह– कितना बड़ा झूठ, एक कोई दूसरा, सम्पूर्ण कहानियाँ

6.4 वापसी की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की समीक्षा प्रस्तुत है–

6.4.1 कथानक

'वापसी' कहानी मध्यमवर्गीय परिवार में रहने वाले एक रिटायर्ड वृद्ध सज्जन गजाधर बाबू की विवशता, उदासी और अकेलेपन की मर्म भरी कहानी है, इसमें परिवार की दो पीढ़ियों के आन्तरिक वैषम्य (जनरेशन गेप) को बड़ी सूक्ष्मता से अभिचित्रित किया गया है।

गजाधर बाबू एक सेवानिवृत वृद्ध सज्जन है। उनकी विवशता, उदासी और अकेलेपन की व्यथा को इस कहानी में मार्मिकता पूर्वक अभिचित्रित किया गया है। गजाधर बाबू रेल्वे में स्टेशन मास्टर थे। उन्होंने 35 वर्षो तक

नौकरी की। अब रिटायर होकर घर जाने का समय आ गया था। उनके नौकर गनेशी ने सब तैयारी कर दी। बिस्तर बांध दिया। गजाधर बाबू अपने बच्चों से मिलने के लिए तड़प रहे थे। वे बहुत प्रसन्न थे। एक लम्बी अवधि उन्होंने अकेले ही रहकर व्यतीत की थी। अकेलेपन के क्षणों में उन्होंने कितनी ही कल्पनाएं की थी। आज वे सब साकार हो रही थी। वे हमेशा छोटे स्टेशनों पर रहे थे। बच्चे शहर में रहे ताकि पढ़.लिखकर होशियार और किसी योग्य हो जावें। पत्नी बच्चों के साथ रहती थी। पत्नी सीधी.सादी थी। जब गजाधर बाबू घर आते हैं तो वह बड़ा स्वागत करती थी। इन बातों को याद करके गजाधर बाबू घर जाने की खुशी में थे।

गजाधर बाबू घर पहुंचते हैं। घर पहुँचकर उनकी सार आशाएं धूमिल हो गई। वे अनुभव करते है कि अमर, उसकी बहू, नरेन्द्र और पुत्री बसन्ती सभी मानों उन्हें भूल चूके है। उनका आना सभी को कष्ट दे रहा है। वे देखते है कि उनकी बेटी.बहू सभी काम से जी चुराती है। बड़े बेटे अमर की बहू कुछ भी नहीं करती थी। उनकी पुत्री बसन्ती कॉलेज में पढ़ती थी, इसलिए वह भी काम करना पसन्द नही करती थी। गजाधर बाबू को घर का रंग.ढंग पसंद न आया। वे चाहते थे कि उनकी पुत्री अब सयानी हो गई है इसलिए वह अधिक समय तक घर में रहकर घर के कामों मे सहयोग करे। इसीलिए वे बसन्ती को बुलाकर कहते है कि आज से शाम का खाना उसे स्वयं और सुबह का खाना उसकी भाभी को बनाना होगा। बसन्ती द्वारा पढ़ने की बात कहने पर वे बड़े प्रेमपूर्वक समझाकर कहते है कि उनकी माँ पर इतनी उम्र में इतना अधिक काम डालना ठीक नहीं है। किन्तु बसन्ती को उनकी बात अच्छी नहीं लगती है। एक दिन बसन्ती कहीं बाहर जा रही थी। गजाधर बाबू उसे रोकते है, वह उस समय तो रूक जाती है, परन्तु पिछले दरवाजे से आने.जाने लगती है।

गजाधर बाबू का घर छोटा था। उस घर में पहले से ही ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि गजाधर बाबू के लिए कोई स्थान नहीं बचा था। अतः गजाधर बाबू की चारपाई बैठक में लगा दी गई। गजाधर बाबू देख रहे थे कि घर मे काम करने वालों की कमी नहीं है इसलिए उन्होंने नौकर हटा दिया। वे अपनी पत्नी से घर के खर्च कम करने की बात भी कहते है। परन्तु पत्नी कहती है– सभी खर्चे तो वाजिब.वाजिब है, किसका पेट काटूं? यही जोड.गांठ करते बूढ़ी हो गई हूं। न मन का पहिना, न ओढ़ा गजाधर बाबू को यह बात खटक जाती है। गजाधर बाबू की बात का विरोध‌ा बसन्ती, अमर, नरेन्द्र और स्वयं उनकी पत्नी ने भी किया। सभी का कहना था – भला बाबू जी को हमारे काम में दखल देने की क्या आवश्यकता है, पत्नी का भी कहना था– ठीक है, आप बीच मे न पड़ा कीजिए। बच्चे बड़े हो गए हैं। हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे। यह सब गजाधर बाबू की इच्छा के विपरीत था। उन्हें स्नेह चाहिए था, ऐसा स्नेह जो त्याग करने के पश्चात् संतान से मिलता है। वैसा स्नेह, उन्हें नहीं मिला वे चिढ़ गए।

गजाधर बाबू रोजाना घूमने जाते थे। एक दिन वे घूमकर लौटते है तो देखते है कि उनकी चारपाई बैठक से हटा कर उनकी पत्नी के कमरे में लगा दी गई है। वे चुपचाप आकर खाट पर लेट गए। उन्हें रेल्वे वाला क्वार्टर याद आने लगा। इस समय वे घर के लोगों के विभिन्न स्वरों को सुन रहे थे। इन स्वरों में बहू और सास में झपड़, खुले नल की आवाज, रसोई घर के बरतनों की खड़खड़ाहट आदि थी। अमर, बहू और बसन्ती की शिकायत भी थी। गजाधर बाबू बड़े दुःखी होते है। उन्होंने वहां से चल देना ही उचित समझा। उन्हें गनेशी की याद आती है। वे सोचते है कि इन अपनों से तो बेगाने ही भले हैं। एक दिन वे अपनी पत्नी को सेठ रामजीलाल की शक्कर मिल में नौकरी मिलने की सूचना देते हैं। वे अपनी पत्नी को भी साथ चलने को कहते है, पर वह नहीं जाती और कहती है– मैं चलूंगी तो यहाँ क्या होगा ? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की। नरेन्द्र उनके कपड़े बाँध देता है और रिक्शे में बिठाकर उन्हें विदा कर देता है। बहू अमर से पूछती है। सिनेमा ले चलिएगा न ? बसन्ती उछलकर कहती है– भइया हमें भी। गजाधर बाबू जी की पत्नी चौके में जाती है और नरेन्द्र से कहती है– नरेन्द्र बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस कहानी में एक रिटायर्ड वयोवृद्ध सज्जन स्वभाव वाले गजाधर बाबू की विवशता, उदासी और अकेलेपन की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया गया है। इस प्रकार कहानी में ऊषा जी ने अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक अन्तः दृष्टि से आधुनिक परिवार का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

6.4.2 वातावरण

कहानी मध्यम वर्ग से सम्बन्धित है। अतः कहानी मे मध्यवर्गीय परिवार का घरेलू वातवरण सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इसमे दो पीढ़ियों के आन्तरिक वैषम्य को बड़ी सूक्ष्मता के साथ अभिचित्रित किया गया है। गजाधर बाबू का पारिवारिक प्रेम या उनके परिवार के साथ रहने के स्वप्न भंग के वातावरण को लेखिका ने वर्णन विश्लेषण (गजाध र बाबू की मन स्थिति) गजाधर बाबू का घर मे दखल देना, नौकर छुडाना, बसन्ती का पिता से रूठना, पुत्र द्वारा पिता पर कटाक्ष करना और अन्त में पुनः नौकरी कर लेना आदि क्रियाकलापों द्वारा स्वाभाविक रूप से अभिचित्रित किया है। वातावरण चित्रण का निम्न चित्र अवलोकनीय है

लेटे हुए घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी सी झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज, रसोई के बर्तनो की खटपट और उसी मे गौरैया का वार्तालाप अचानक ही उन्होने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात मे दखल न देंगे। यदि गृह स्वामी के लिए पूरे घर मे एक चारपाई की जगह यही है तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई, तो वहीं चले जाऐंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे......।'

6.4.3 भाषा शैली

वापसी कहानी में यद्यपि सर्वत्र आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हुई है तथापि कुछ.कुछ प्रसंगो में संस्कृतनिष्ठ भाषा का भी उपयोग हुआ है। जैसे– ''यही थी क्या उसकी पत्नी जिसके हाथो के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहाँ खो गयी, उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिये नितान्त अपरिचित है।''

प्रस्तुत कहानी की भाषा सरल एवम् सुबोध है और इसी कारण भाव सम्प्रेषण में पूर्णतः सक्षम है। एक उदाहरण देखिये –

''घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने कुछ विषाद का अनुभव किया जैसे एक परिचित स्नेह, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा है।''

वापसी कहानी के भाषा में ऐसा प्रवाह है, जिससे कथा.गति में अथवा संवादों मे कहीं भी विचित्रता प्रतीत नहीं होती है और कथानक सहज स्वभाविक गति से आगे बढता है। एक उदाहरण देखिये–

''गजाधर बाबू खुश थे – बहुत खुश। पैंतीस साल की लम्बी नौकारी के बाद वे रिटायर होकर घर जा रहे थे। उन अकेले क्षणों मे उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वे अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वे अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे।''

प्रस्तुत कहानी में भाषागत स्पष्टता देखी जा सकती है। कहानी का जो भी कथ्य है उसे साफ.साफ और सीधी.सादी भाषा में प्रस्तुत कर दिया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृह स्वामी के लिये पूरे घर में एक चारपाई की जगह नहीं है तो यही पड़ें रहेंगे। यदि कहीं और डाल दी गयी तो वहीं चले जायेंगे। यदि बच्चो के जीवन में उनके लिये कहीं स्थान नहीं तो अंपने घर में परदेशी की तरह पड़ें रहेंगे ....!''

वापसी कहानी की भाषा कहानी में व्यक्त यर्थाथ को पूर्ण कठोरता एवम् ठोस रूप मे व्यक्त करने में पूर्णतः सफल कही जा सकती है। उहारण देखिए –

"गजाधर बाबु ने आहत दृष्टि से अपनी पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चो के लिए धनोपार्जन के एक निमित मात्र है। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिन्दूर डालने की अधिकारी हो जाती है। समाज में उसका स्थान है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने में अपने कर्तव्य की छुट्टी पा जाती है।"

भाषा की सहजता के लिये कुछ देशज शब्दों जैसे–विहो, जूठा.सकरा, खिच.खिच, घरवाली, सिटपिटायी आदि का प्रयोग किया गया है। जिनसे भाषा की सम्प्रेषणीयता बढी है। इस सन्दर्भ में कुछ वाक्य इस प्रकार है।

– गजाधर बाबू को वहाँ लेटे देख बड़ी सिटपिटायी

– घरवाली ने कुछ बेसन के लड्डू रख दिये है। कहा–बाबुजी को पसन्द थे।

– बिहो, चाय तो फीकी सी है।

– इस घर में धरम.करम कुछ नहीं। पूजा करके फिर वही जूठा सकरा हुआ।

भाषा की सहजता एवम् सुबोधता के लिये ही कहानी में उर्दू एवम् अंग्रेजी के अत्यन्त प्रचलित शब्दों को भी यथायोग्य स्थान प्राप्त हुआ है। जैसे–उर्दू के खातिर, खबर, इन्तजार, शिकायत, खुशामद, शऊर, जरूरत मिजाज तथा अंग्रेजी के रिटायर, क्वार्टर, लेट आदि।

कहानी में कथ्य को अधिक सरल, स्पष्ट और भावपूर्ण बनाने के लिये लेखिका ने वापसी कहानी में मुहावरों का सीमित किन्तु उपयुक्त प्रयोग किया है। वास्तव में कहानी में वही मुहावरे प्रयुक्त हुये है जो आम आदमी के भावाभिव्यक्ति के आम शब्द है। गले में फाँस, धन्धा पीटना, पेट काटना, हाथ बटाना, हाड़ तोडना, ठगा जाना आदि। इस सन्दर्भ में कुछ वाक्य इस प्रकार हैं–

– इस गृहस्थी का धन्धा पीटते.पीटते उमर बीत गयी।

– सभी खर्चे तो वाजिब.वाजिब है किसका पेट काटूँ ।

– उन्हें लगा कि वे जिन्दगी द्धारा ठगे गये ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'वापसी' कहानी की भाषा सरल, स्पष्ट, प्रवाहमय, भावाभिव्यक्ति मे सक्षम है जो लेखिका के भाषा पर पूर्ण अधिकार को प्रमाणित करती है।

6.4.4 कहानी के शीर्षक की सार्थकता

'वापसी' कहानी का शीर्षक बहुत ही सार्थक है। वापसी शब्द का अर्थ होता है किसी स्थान से अपने मूल स्थान पर लौटना। प्रस्तुत कहानी के नायक गजाधर बाबू अपनी रेल्वे की नौकरी के 35 वर्ष गुजार कर सेवा निवृत्त हुए तो उन्होंने अपना सरकारी क्वार्टर खाली करके अपने 'भूरे.पूरे परिवार, बीवी.बच्चों के साथ रहने के लिए प्रसन्नचित अपने मूल निवास स्थान को लौट रहे है। सम्पूर्ण समाज को व्यवस्थित करके अपने साथी कर्मचारियों से विदा होते समय अपनी आत्मीयता से उन्होंने सबका दिल जीत लिया था। उन्होंने अधिकतर छोटे स्टेशनों पर ही रहकर अपना सेवाकाल पूरा किया था। बच्चों की पढ़ाई में व्यवधान न हो इसलिये पत्नी को बच्चों की देख. रेख के लिये उनके साथ ही शहर में रखा था। शहर में उन्होंने अपना मकान भी बनवा लिया था, परन्तु हमेशा अपने

सेवा स्थल पर अकेले ही रहे थे। अब सेवा निवृत होने पर एक ओर उन्हें अपने साथी कर्मचारियों की आत्मीयता छूटने का डर था तो दूसरी ओर परिवार के साथ सुख.चैन से रहने की खुशी थी। उनके एकाकी जीवन के वे क्षण बड़े सुखमय व्यतीत हुये थे जब वे अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहे थे। बच्चों का स्नेह, पत्नी का अगाध प्रेम, मना करने पर भी आग्रहपूर्वक भोजन.कराना, स्नेहपूर्ण मुस्कान व प्रेमालाप उन्हें रह.रह कर याद आते रहे थे और आज वर्षो बाद वे उसी प्रेम को पाने के लिए अपने परिवार के साथ रहने जा रहे थे।

मनुष्य की कल्पनाएँ कितनी थोथी और मिथ्या हुआ करती हैं? गजाधर बाबू को घर पहुँचकर आत्मीयता के स्थान पर प्रतिकूल वातावरण मिला। परिवार के किसी भी सदस्य को उनके साथ रहने की खुशी न हुई बल्कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हें अपने मार्ग का रोड़ा समझने लगा। उन्होंने यह स्वयं अनुभव किया कि बेटा.बेटी, बहू किसी को भी यहाँ तक पत्नी को उनकी आवश्यकता न थी। सब लोग बाबूजी को भार समझते थे। ऐसे समय में जबकि बाबूजी को एक सहारे की आवश्यकता थी। तब पत्नी को घर गृहस्थी के कामो से फूर्सत न थी कि उनका साथ दे सके सुख.दुःख पूछ सके। सब बाबूजी को अपनी स्वच्छन्दता में बाधक मानते थे और उनकी अनुपस्थिति में बुराइयाँ भी करते थे जिसे उन्होंने एक दिन स्वयं ही सुन लिया था। तब उन्होंने ने यह निश्चय किया कि घर में भार स्वरूप रहने से अन्यत्र जाकर रहना ही श्रेष्ठ है। यह विचार करके अपना बोरी बिस्तर बाँध घर से चल पड़े कि मुझे सेठ रामजीलाल के चीनी मिलमें नौकरी मिल गई है। यह सुनते ही घर के सभी ने उन्हें हँसी खुशी बिदा किया लडडू ओर मठरी के साथ। सबने खुशियाँ मनाई।

इस प्रकार लेखिका ने यह स्पष्ट किया है कि वृद्धावस्था में पारिवारिक प्रेम का एकांतिक आवेग संयमित हो जाता है। बड़े–बूढ़े अच्छी बात सिखाने वाल बालकों को अच्छे नहीं लगते, भार से प्रतीत होते है। कोई साथ देने को तैयार नहीं होता और पारिवारिक विघटन हो जाता है।

इस प्रकार गजाधर बाबू को अपने कार्य स्थल से घर की वापसी मिली और घर से पुनः वापस होकर कार्य पर लगाना पड़ा। इस विचित्र सत्य 'वापसी' का वर्णन लेखिका ने बड़ी कुशलता से किया है और 'वापसी' शीर्षक रखकर वापसी की सफल अभिव्यक्ति की है। अतः यह एक सफल सार्थक शीर्षक है।

6.4.5 उद्देश्य और संवेदना–

उद्देश्य की दृष्टि से लेखिका ने स्पष्ट किया है कि बूढ़े लोगों के प्रति आज के पारिवारिक परिवेश में नजरिया केवल धन पाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया है। लेखिका ने कहानी के माध्यम से परिवारों में फैलती टूटन स्वार्थ तथा झड़पो का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। एक ओर वृद्ध गजाधर बाबू है, जो आराम चाहते हैं, मर्यादा, कम खर्ची तथा मितव्ययिता चाहते हैं, जबकि दूसरी ओर युवा.पीढ़ी है– उनकी पत्नी, बेटे, बहू और लड़की जो आजादी. मौज.मस्ती, खर्च की पूरी.पूरी सुविधाएं चाहते हैं वे अपना भला चाहते हैं और अपने किसी भी काम में वृद्ध पिता या पति की दखलंदाजी को सहन नहीं कर पाते हैं। उन सभी को न पिता की आवश्यकता है और न पति की। केवल पैसा ही उनके लिए सब कुछ था। इन्हीं सब कारणों से बाबू गजाधर को रिटायर्ड होने के बाद भी रामजीलाल सेठ की चीनी मिल में अपना शेष जीवन खपाने के लिए वापस जाना पड़ता है। यही वापसी कहानी का उद्देश्य हैं।

6.5 संयुक्त परिवार की बदली हुई मानसिकता

'वापसी' कहानी में कथाकार उषा प्रियंवदा ने एक ऐसे परिवार का चित्रण किया है जिसमें भविष्य निर्माण के उद्देश्य से पिता के द्वारा अपने बच्चों और पत्नी को अपने नौकरी स्थल से दूर बड़ी जगह पर स्थापित किया गया था। जिससे उसके दोनों लड़के और लड़की उच्च शिक्षा प्राप्त कर अच्छी आजीविका प्राप्त कर सकें। आगे

चलकर गजाधर बाबू अपने बडे बेटे अमर का विवाह कर देते हैं। अब परिवार में बहू का प्रवेश भी होता है। उनकी पत्नी बच्चों की देखभाल करती है और गजाधर बाबू छोटे–छोटे स्टेशनों पर पदस्थ रहकर रेल्वे विभाग में नौकरी करते हैं।

35 वर्ष की लम्बी सेवा अवधि के बाद जब गजाधर बाबू सेवा निवृत्त होते हैं तो उनके मन में अजीब सी प्रसन्नता है कि वे अब अपने परिवार से साथ अपना शेष जीवन व्यतीत करेंगे। सारा जीवन अकेले रहकर बिताया है, पारिवारिक सुख से वे सदा वंचित रहे हैं। अब वे अपने परिवार के पास जा रहे हैं जहाँ उनकी पत्नी, बेटा, बेटी और बहू सब एक साथ सम्मिलित रूप से रहेंगे। लेकिन जब वे अपने घर पहुँचते है तो यह पाते हैं कि उनके लिये इस परिवार में कोई स्थान नही है। बेटा और बहू अपने ढंग से घर चला रहे हैं। यहाँ तक की पत्नी भी उन बच्चों के साथ रम गई है। उसके मन में अपने पति गजाधर बाबू के लिये वह आत्मनीयता और लगाव नहीं है। जिसका स्मरण कर उन्होंने अपना जीवन व्यतीत कर दिया था। उदाहरण दृष्टव्य है–

'हां बड़ा सुख है न बहु से। आज रसोई करने गई है देखो क्या होता है। कहकर पत्नी ने आंखे मूंदी और थोड़ी ही देर में सो गयी। गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गये। यही थी क्या उसकी पत्नी जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा की वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहाँ खो गयी, उसकी जगह आज जो स्त्री है वह उनके मन और प्राणों के लिये नितान्त अपरिचित है। गाढ़ी नींद में डूबी हुई उनकी पत्नी का भारी शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रूखा सा। गजाधर बाबू देर तक पत्नी को देखते रहे। फिर लेटकर छत की और ताकने लगे।'

गजाधर बाबू को सबसे ज्यादा दुख इस बात का था कि उनकी पत्नी स्वयं उनके प्रति आत्मीय भाव नहीं रखती है। परिवार के किसी सन्दर्भ में जब गजाधर बाबू कोई निर्णय दे देते हैं तो उसमें उनका ही दोष निकाला जाता है कि उनके दिये गये निर्णय के कारण ही परिवार के लोग दुखी है और घर की शांति में बाधा पहुँच रही है। गजाध ार बाबू जब अपनी बेटी बसन्ती को शीला के यहाँ जाने के लिये मना कर देते है तो वह पिता से रूठ जाती है और अपने कमरे में ही पड़ी रहती है। खाना भी नहीं खाती। इस पर गजाधर बाबू की पत्नी कहती है कि आपने बसन्ती को क्या कह दिया है कि वह रूठी हुई कमरे में पड़ी है, तब पत्नी की बात सुनकर गजाधर बाबू का मन खिन्न हो जाता है कि उनकी पत्नी इस प्रसंग में उन्हें ही दोषी मान रही है।

जब परिवार के सदस्यों को यह लगने लगता है कि उनके अधिकारों का हनन हो रहा है। जब परिवार के सदस्य परिवार के प्रति अपने दायित्वों को भूल जाते हैं और सिर्फ अपने हित में ही सारा निर्णय करने करने पर उतारू हो जाते हैं, बच्चे माता–पिता के प्रति अपने कर्त्तव्यों की तरफ ध्यान नहीं देते और केवल अपना वर्तमान ही देखते हैं तब पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव की स्थिति तब बन जाती है। गजाधर बाबू का बेटा अपने परिवार से पृथक मकान लेकर रहने की कोशिश करता है। तब गजाधर बाबू का मन बैठ जाता है। उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं कि उसका परिवार ऐसे बिखराव की स्थिति में पहुँचेगा।

संयुक्त परिवार की टूटन इस कहानी में अत्यन्त प्रभावी ढंग से विश्लेषित की गई है। छोटी–छोटी बातों को लेकर स्वतन्त्रता की उड़ान के लिये व्याकुल पुत्र अपने वृद्ध माता–पिता को छोड़कर अलग घर बसाने की कल्पना करने लगता है तो गजाधर बाबू जैसे पिता का तो दिल ही बैठ जाता है। जिन्होंने अपने जीवनकाल में कभी संयुक्त रूप से परिवार के साथ रहकर सुख का अनुभव ही नहीं किया। सेवानिवृत्ति के बाद उनका परिवार उनके सामने बिखराव की स्थिति में खड़ा हुआ है। उदाहरण दृष्टव्य है। "उसकी पत्नी ने साफ–साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की बहुत–सी शिकायतें है। उनका कहना है कि पिताजी हरदम बैठक में पड़े रहते हैं, कोई आ जाये तो कहीं बैठने की जगह तक नहीं। वे अभी तक अमर को छोटा समझते थे और मौके–बेमौके राय देते रहते हैं। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब तक उसके फूहड़पन पर ताने देती रहती थी।"

एक दिन उनकी पत्नी ने यह शिकायत की कि नौकर काम नहीं करता सामान खरीदने जाता है तो खुद पैसे बचा लेता है। गजाधर बाबू को यह लगा कि इस परिवार में नौकर की भी जरूरत नहीं है जिसके कारण उन्होंने उसकी छुट्टी कर दी। जिसकी वजह से भी बेटे अमर बहु और बेटी बसन्ती अप्रसन्न हुए कि पिताजी ने नाहक उसे निकाल दिया। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है – उनकी पत्नी स्वाभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थी कि वह कितना कामचोर है, बाजार की हर किसी चीज में पैसे बनाता है, खाने बैठता है तो खाते ही चला जाता है। गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन–सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा है। बात सुनकर लगा की नौकर का खर्च बिलकुल बेकार है, उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया।

इस घटना के बाद परिवार के सदस्यों का मुखर रूप गजाधर बाबू कों देखने को मिला तब उन्हें लगा कि यहाँ उसका रहना हितकर नहीं है। जो खुशी से यहाँ पाने आये थे वह उन्हें यहाँ नहीं मिल सकती है। तब उन्होंने पत्नी को बताया कि सेठ रामजीमल की चीनी की मिल में उन्हें नौकरी मिल गई है और खाली बैठे रहने से तो अच्छा है कि चार पैसे कमाये जाये। उसके बाद गजाधर बाबू का सामान तैयार हो जाता है। जब वे पत्नी को साथ चलने को कहते है तो वह भी बच्चों के साथ रहना पसन्द करती है और इस प्रकार गजाधर बाबू अकेले ही अपना घर छोड़कर सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी करने के लिये निकल पड़ते हैं। गजाधर बाबू के प्रस्थान करते ही घर का वातावरण फिर पहले की तरह आनंदमय हो जाता है। उनके जाने के बाद सब अंदर आये। बहू ने अमर से पूछा– 'सिनेमा ले चलियेगा न ?'

'बसन्ती ने उछलकर कहा – भैया हमें भी।'

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गयी बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में ले आई और कनस्तरों के पास रख दिया। फिर बाहर आकर कहा– अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे उसमें चलेने तक की जगह नहीं है।

इस प्रकार हम देखते है कि 'वापसी' कहानी पारिवारिक रिश्तों के बिखराव को अत्यन्त सशक्त रूप से विश्लेषित करती है। परिवार में कोई भी सदस्य एक–दूसरे के प्रति न तो आत्मीयता रखता है और न उनके मन में एक–दूसरे के लिये आदर भाव है। आपसी सम्बन्ध सिर्फ स्वार्थ तक सीमित हैं पारिवारिक बिखराव का जीता–जागता सशक्त दस्तावेज वापसी कहानी में रूपायित किया गया है।

6.7 व्याख्या खण्ड

गद्यांश–1

रेलवे– क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताये थे, उनका समान हट जाने से नग्न और कुरूप लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी पास–पड़ौस के लोग उखाड़ ले गये थे, वहाँ जगह–जगह पर गहरे गड्डे बन गये थे। पर बाल–बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह सब एक दुर्बल लहर की तरह उठकर लीन हो गया।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'वापसी' से उदधृत किया गया है इस कहानी की लेखिका प्रसिद्ध कथाकार उषा प्रियंवदा है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गजाधर बाबू लम्बी सेवा के बाद सेवानिवृत्त होकर अपने परिवार के पास जा रहे हैं। उसकी प्रसन्नता उनके चेहरे पर स्पष्ट देखी जा सकती है। जिस आवास में वे अब तक रह रहे थे। वह

उजड़ चुका है, किन्तु उसके बाद भी उनके मन में कोई दुःख नहीं है क्योंकि वे अपने परिवार के पास जा रहे हैं।

व्याख्या : गजाधर बाबू ने रेलवे की नौकरी करते हुये एक लम्बा समय इस मकान में बिताया है। अब वे सेवानिवृत्त होकर अपने परिवार के पास जा रहे हैं इस बात की प्रसन्नता से वे फूले नहीं समा रहे हैं। उनका सामान बंध चुका है। इसलिये जो मकान पहले कभी सजा–संवारा व्यवस्थित सा रहा करता था वर्तमान में खाली होने के कारण नग्न और कुरूप सा लग रहा है। उनके आस–पास के लोगों ने आँगन में रोपे गये पौधे भी उखाड़कर अपने–अपने घरों में लगा लिए है। जिससे उनके आँगन में गहरे–गहरे गड्डे बन गये हैं। उनका यह मकान और आँगन बिलकुल उजाड़–सा दिखाई पड़ रहा है किन्तु गजाधर बाबू अपने बाल–बच्चों की कल्पना कर आनंदित और प्रफुल्लित है कि अब वे अपने परिवार के पास रहने जा रहे हैं। इस मकान और आंगन का सुनापन अब उसके मन को नहीं खटक रहा है क्योंकि उनके मन में अपने परिवार से मिलने का उच्छवास कहीं अधिक है।

विशेष :

1. प्रस्तुत गद्यांश में कहानीकार ने गजाधर बाबू के मन की प्रसन्नता और परिवार से मिलने की उत्सुकता को अत्यन्त प्रभावी ढंग से व्याख्यायित किया है।

गद्यांश–2

यदि राय की बात की जाती कि प्रबंध कैसे हो तो उन्हें चिन्ता कम संतोष अधिक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी जैसे परिवार की सब परेशिानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'वापसी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी की लेखिका प्रसिद्ध कथाकार उषा प्रियंवदा है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गजाधर बाबू की पत्नी पारिवारिक आर्थिक तंगी का जिक्र कर रही हैं कि घर में खर्च अधिक होता है और परिवार की आय कम है। जिससे घर का खर्च चलाना मुश्किल होता है। जितने जरूरी खर्च है। वे ही तो किये जाते हैं फिर किसका पेट काटकर पैसा बचाया जाये। पत्नी के द्वारा की जा रही शिकायत से गजाधर बाबू व्यथित होकर सोचते हैं –

व्याख्या : जब गजाधर बाबू की पत्नी यह बताती हैं कि घर का खर्च ज्यादा है और आर्थिक तंगी के कारण घर चलाना मुश्किल होता है। घर में जितने भी खर्चे है वे सब जरूरी हैं उनके बिना गुजार नहीं हो सकता। उनकी पत्नी उलाहना देती हुए कहती है कि उसने अपना सारा जीवन यहीं पर न्यौछावर कर दिया न तो मन का पहना और न ही ओढ़ा। तब गजाधर बाबू को ऐसा लगता है कि उन्हें तो सिर्फ पूरी बातें बताई जा रही हैं। उनसे कोई राय या सुझाव तो लिया ही नहीं जा रहा कि घर की आर्थिक स्थिति को या घर के खर्चो पर किस तरह नियन्त्रण लगाया जा सकता है। उन्हें ऐसा लगता है कि यदि उनसे राय ली जाती है कि परिवार का प्रबंध कैसे करना है तो उन्हें प्रसन्नता होती। लेकिन उनकी पत्नी तो ये सारी बातें शिकायत के तौर पर मुझे बता रही है जैसे इन सब कारणों का उत्तरदायी में ही हूँ और मेरे ही कारण से परिवार में ये सब परेशानियां खड़ी हुई हैं।

विशेष :

1. प्रस्तुत गद्यांश के गजाधर बाबू के कथित मन में उठने वाले सवालों को रेखांकित किया गया है।

2. परिवार में आने वाली आर्थिक संस्थाओं के लिये जैसे वे ही दोषी थे। इसका लिखांकन किया गया है।

गद्यांश–3

यही थी क्या उसकी पत्नी जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहाँ खो गयी, उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिये नितान्त अपरिचित है। गाढ़ी नींद में डूबी हुई उसकी पत्नी का भारी शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था। चेहरा श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक पत्नी को देखते रहे, फिर लेटकर छत की ताकने लगे।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'वापसी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी की लेखिका प्रसिद्ध कथाकार उषा प्रियंवदा है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गजाधर बाबू पत्नी के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार को देखकर अत्यन्त व्यथित हैं। उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उनकी पत्नी मे इतना परिवर्तन आ गया होगा। उनकी पत्नी परिवार के प्रत्येक सदस्य से दुखी है और उसकी शिकायत गजाधर बाबू से किया करती है। गजाधर बाबू अपनी पत्नी के पूर्व और वर्तमान रूप पर विचार करते हैं–

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में गजाधर बाबू अपनी पत्नी को सोता हुआ देख रहे हैं और मन ही मन यह कल्पना कर रहे हैं कि यह वही कोमल स्पर्श और अद्भुत मुस्कान बिखेरने वाली स्त्री है जिसका स्मरण करके उन्होंने अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया। उनको ऐसा लगने लगा कि इतनी रूपवान युवती ने अपना पूरा जीवन जिन्दगी की राह में कहाँ खो दिया। आज जो स्त्री उनके पास सो रही है उसके व्यवहार और विचार से तो उसका कभी परिचय ही नही था। इसी कारण गजाधर बाबू को उनकी पत्नी अपरिचित सी लगी। गजाधर बाबू को नींद में डूबी उनकी पत्नी अत्यन्त कुरूप और बेडौल लगने लगी और उसका चेहरा श्रीहीन तथा रूखा जान पड़ता है। उसमें आये इस आमूलचूल परिवर्तन को वे काफी देर तक निहारते रहे और छत की ओर कुछ इस तरह देखने लगे जैसे वे अपने भविष्य की कल्पना कर रहे हों कि आने वाला समय न जाने कैसा होगा।

विशेष :–

1. प्रस्तुत अंश के माध्यम से जीवन यात्रा में बदले आयाम को रूपायित किया गया है।
2. समय चक्र के साथ व्यक्ति में आने वाला परिवर्तन उसके वातावरण का विवेचन करता है।

गद्यांश–4

वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से अपने कर्तव्य से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि वही उसकी संपूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उसके केंद्र नहीं हो सकते उन्हें तो उसकी परिधि पर ही जीवित रहना है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'वापसी' से उद्घृत किया गया है इस कहानी की लेखिका प्रसिद्ध कथाकार उषा प्रियंवदा है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गजाधर बाबू अपनी पत्नी के व्यवहार से बहुत व्यथित दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने जो कल्पना की थी उसके ठीक विपरित व्यवहार उन्हें परिवार में देखने को मिल रहा है। उनकी पत्नी का जीवन केवल घर–गृहस्थी तक सिमटकर रह गया है। आत्मीय भावों के लिये उसके मन में कोई स्थान नहीं है।

व्याख्या : प्रस्तुत अंश में गजाधर बाबू को ऐसा लगता है कि उसकी पत्नी केवल घर संसार तक सीमित हो गयी है। रसोई घर में रखी सामग्री और रसोईघर ही उसका जीवन है। पति पत्नी के मध्य जो आत्मीयता और लगाव के भाव होते है। वे तो मृतत्राय हो चुके हैं। गजाधर बाबू के सामने खाने की थाली रख देने मात्र से वह अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण मान लेती है। उसका जीवन केवल घर–गृहस्थी तक ही सीमित रह गया है। मानवीय सम्बन्धों के लिये उसके मन में कोई स्थान रिक्त नहीं है। गजाधर बाबू को ऐसा लगाता है कि स्त्री का केन्द्र बिन्दु उसका पति होता है किन्तु उसकी पत्नी का केन्द्र बिन्दु रसोई घर ही रह गया है। उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे अब अगर इस घर में मुझे रहना है तो उसकी परिधि में ही रहकर जीवन यापन करना पड़ेगा। पत्नी के इस व्यवहार ही उन्हें बहुत ठेस पहुँचती है।

विशेष :

1. प्रस्तुत गद्यांश में पति पत्नी के सम्बन्धों को बड़ी सरलता के साथ विश्लेषित किया गया है।

2. प्रस्तुत अंश में गजाधर बाबू की मानसिकता मानवीय संवेदनाओं का विश्लेषण करती दिखाई पड़ती है।

गद्यांश–5

किसी बात में हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तिव घर के वातावरण का कोई भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी, जैसे कि सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गई।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संग्रह में संकलित कहानी 'वापसी' से उद्‌घृत किया गया है इस कहानी की लेखिका प्रसिद्ध कथाकार उषा प्रियंवदा है।

प्रसंग : प्रस्तुत अंश में यह विवेचित किया गया है कि गजाधर बाबू जो सोच कर अपने परिवार के पास रहने के लिये आये थे। उसके ठीक विपरित वातावरण उन्हें यहाँ दिखाई दिया। जब वे घर के विषय में कोई टिप्पणी करे तो भी उपेक्षा और न करे तब भी उनका अस्तित्व शून्य ही नजर आता है। इस अवसाद में गजाधर बाबू अपने आप को पाते है और उनका मन व्यथित हो जाता है।

व्याख्या : अपने परिवार के साथ रहने की ख्वाहिश लेकर आये गजाधर बाबू को यह घर बेगाना सा लगने लगा था। जब उन्होंने घर के मामलों में हस्तक्षेप करना छोड़ दिया तब भी परिवार के सदस्यों से उन्हें कोई आत्मीयता नहीं मिली सभी लोग उनकी उपेक्षा करते हुये दिखाई पड़ते है। उनके साथ कोई वार्तालाप नहीं करना चाहता है। केवल उनकी पत्नी आवश्यकता पड़ने पर उनसे बोला करती है। गजाधर बाबू को ऐसा लगने लगा कि इस परिवार में उनकी उपस्थिति सजी हुई बैठक में लगी उनकी चारपाई की तरह थी जो उसकी बैठक की सुंदरता को बाधि ात कर रही हो। उसी प्रकार उनका इस परिवार में रहना लोगों की स्वतन्त्रता को बाधित कर रहा था। घर आने से पूर्व उनके मन में जो प्रसन्नता उल्लास और उत्साह था वह घर आने के बाद गहरे अवसाद में डूब गया।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में संयुक्त परिवार के बिखराव को दृश्यांकित किया गया है।

2. प्रस्तुत अंश में गजाधर बाबू की कल्पनाओं को ध्वस्त होते दिखया गया है।

6.8 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

शब्दार्थ

विषाद – दुख

हौसला – हिम्मत

कुरूप – बदसूरत

आकांक्षी – इच्छा रखने वाला

मनोविनोद – हासपरिहास

आघात – चोट

अनायास – अचानक

अस्थायित्व – अस्थिरता

अलगनी – रस्सी

वाजिब – उचित

स्वाभाविक – सहज, प्राकृतिक

सहानुभूति – हमदर्दी

लावण्यमयी – सुंदर, कांतिमयी

खुशामद – चापलूसी करना

मिजाज – तासीर, स्वभाव

चिंघाड़ – हाथी का चिल्लाना

हस्तक्षेप – दखल देन, रुकावट

कर्तव्य – करने वाले का धर्म

निमित्त – हेतु, कारण

अस्तित्व – विद्यमानता, सत्ता का भाव

परिधि – सीमा

असंगत – अनुचित

उदासीनता – विरक्ति, खिन्नता, निरपेक्षता

तत्परता – मुस्तैदी

कहावतें / मुहावरे

1. हँस–हँसकर दोहरी होना – अत्यधिक प्रसन्न होना
2. कमाने वाले हाड़ तोड़ें यहाँ चीजें लूटें – मेहनत करे कोई फल भोगे कोई
3. गले में फाँस – अजीबो गरीब स्थिति
4. धन्धा पीटना – एक ही काम में लगे रहना
5. हाथ बटाना – सहयोग करना
6. हाड़ तोड़ना – जी तोड़ मेहनत करना

6.9 सारांश

'वापसी' कहानी पारिवारिक रिश्तों के बिखराव को अत्यन्त सशक्त रूप से विश्लेषित करती है। संयुक्त परिवार की टूटन इस कहानी में अत्यन्त प्रभावी ढंग से विश्लेषित की गई है। इस कहानी में एक रिटायर्ड वयोवृद्ध सज्जन स्वभाव वाले गजाधर बाबू की विवश्ता, उदासी और अकेलेपन की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया गया है।

कहानी मे मध्यवर्गीय परिवार का घरेलू वातवरण सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। 'वापसी' कहानी की भाषा सरल, स्पष्ट, प्रवाहमय, भावाभिव्यक्ति मे सक्षम है।'वापसी' कहानी का शीर्षक बहुत ही सार्थक है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- लेखिका उषा प्रियंवदा के कृतित्व सें परिचित हो चुके हैं।
- लेखिका उषा प्रियंवदा के कहानी कला से परिचित हो चुके हैं।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की समीक्षा कर सकते हैं।
- संयुक्त परिवार की बदली मानसिकता को समझ सकते हैं।
- पारिवारिक रिश्तों का ह्यास और आपसी सम्बन्धों में आए बदलाव एवम् उसके कारणों को को समझ पाएंगे।

6.10 अपनी प्रगति जाँचिए

1 कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' कहानी की समीक्षा कीजिए।

2 'वापसी' कहानी की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

3 'वापसी' कहानी का शीर्षक बहुत ही सार्थक है– स्पष्ट कीजिए।

4 कहानी मे मध्यवर्गीय परिवार का घरेलू वातवरण सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है– स्पष्ट कीजिए।

5 संयुक्त परिवार की टूटन इस कहानी में अत्यन्त प्रभावी ढंग से विश्लेषित की गई है– स्पष्ट कीजिए।

6.11 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1 लेखिका उषा प्रियंवदा की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।

2 कहानी में प्रयुक्त कहावतों और मुहावरों को छांटकर उनका अर्थ लिखते हुए वाक्यों में उनका प्रयोग कीजिए।

3 कहानी में प्रयुक्त देशज और उर्दु शब्दों को छांटकर अर्थ लिखते हुए एक कोश तैयार कीजिए।

6.12 स्पष्टीकरण के बिन्दु

छठवीं इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

6.13 चर्चा के बिन्दु

छठवीं इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

गुलकी बन्नो : धर्मवीर भारती

ाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 धर्मवीर भारती : संक्षिप्त परिचय

7.4 गुलकी बन्नो की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

7.4.1 कथानक

7.4.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण

7.4.3 वातावरण

7.4.4 भाषा शैली

7.4.5 कथोपकथन

7.4.6 उद्देश्य और संवेदना–

7.5 बेबस नारी का त्रासद–चित्रण

7.6 बाल मनोंवृत्तियों का सजीव चित्रण

7.7 सामाजिक शिष्टाचार का निरूपण

7.8 मानवीय संवेदना से परिपूर्ण कहानी

7.9 व्याख्या खण्ड

7.10 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

7.11 सारांश

7.12 अपनी प्रगति जाँचिए

7.13 नियत कार्य / गतिविधियाँ

7.14 स्पष्टीकरण के बिन्दु

7.15 चर्चा के बिन्दु

7.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की सातवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार धर्मवीर भारती के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- कहानीकार धर्मवीर भारती के कहानी कला को समझ पाएंगे।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'गुलकी बन्नो' कहानी की समीक्षा कर पाएंगे।
- बेसहारा, गरीब और लाचार स्त्री के त्रासदी को समझ पाएंगे।
- 'गुलकी बन्नो' कहानी के आधार पर बाल मनोंवृत्तियों, सामाजिक शिष्टाचार, मानवीय संवेदना को समझ पाएंगे।

7.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की सातवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत कहानीकार धर्मवीर भारती के जीवन, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

'गुलकी बन्नो' कहानी में गुलकी का चरित्र एक लाचार एवम् निरीह नारी का है। इसके चरित्र की अवधारणा कर लेखक ने उन समस्त नारियों के प्रति सहानुभूति जागृत कराने का प्रयास किया है जो ऐसे विषाक्त वातावरण में जी रही है।

प्रस्तुत इकाई में कथानक, पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण, वातावरण, भाषा शैली, कथोपकथन, उद्देश्य और शीर्षक आदि कहानी के तत्वों के आधार पर 'गुलकी बन्नो' कहानी की समीक्षा की गयी है।

'गुलकी बन्नो' कहानी के आधार पर बेसहारा, गरीब और लाचार स्त्री के त्रासदी, बाल मनोंवृत्तियों, सामाजिक शिष्टाचार, मानवीय संवेदना को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

7.3 धर्मवीर भारती : संक्षिप्त परिचय

धर्मवीर भारती आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि, नाटककार और सामाजिक विचारक थे। वे एक समय की प्रख्यात साप्ताहिक पत्रिका धर्मयुग के प्रधान संपादक भी थे। डॉं धर्मवीर भारती को 1972 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया, उनका उपन्यास गुनाहों का देवता सदाबहार रचना मानी जाती है. सूरज का सातवां घोड़ा को कहानी कहने का अनुपम प्रयोग माना जात है जिस श्याम बेनेगल ने इसी नाम की फिल्म बनायी, अंधा युग उनका प्रसिद्ध नाटक है।। इब्राहीम अलकाजी, राम गोपाल बजाज, अरविन्द गौड़, रतन थियम, एम के रैना, मोहन महर्षि और कई अन्य भारतीय रंगमंच निर्देशकों ने इसका मंचन किया है।

जीवन परिचय

भारती का जन्मप्रयाग में हुआ और शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय से प्राप्त की । प्रथम श्रेणी मे एम ए करने के बाद डॉं धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर शोध– प्रबंध लिखकर उन्होने पीएचडी प्राप्त की।

कार्यक्षेत्र रू अध्यापक । 1948 में 'संगम' सम्पादक श्री इलाचंद्र जोशी में सहकारी संपादक नियुक्त हुए। दो वर्ष वहाँ काम करने के बाद हिंन्दुस्तानी अकादमी में अध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1960 तक कार्य किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान' हिन्दी साहित्य कोश के सम्पादन में सहयोग दिया। निकष पत्रिका निकाली तथा 'आलोचना' का सम्पादन भी किया। उसके बाद 'धर्मयुग' में प्रधान सम्पादक पद पर बम्बई आ गये। 1987 में डॉं भारती ने अवकाश ग्रहण किया। 1999 में युवा कहानीकार उदय प्रकाश के निर्देशन में साहित्य अकादमी दिल्ली के लिए डॉं भारती पर एक वृत्त चित्र का निर्माण भी हुआ है।

अलंकरण तथा पुरस्कार

1972 में पद्मश्री से अलंकृत डॉं धर्मवीर भारती का अपने जीवन काल में अनेक पुरस्कार प्रंाप्त हुए जिसमें से प्रमुख हैं

- 1984 हल्दी घाटी श्रेष्ठ पत्रकारिता पुरस्कार
- महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन 1988
- सर्वश्रेष्ठ नाटककार पुरस्कार संगीत नाटक अकादमी दिल्ली 1989
- भारत भारती पुरस्कार उत्तर महाराष्ट्र सरकार 1994
- व्यास सम्मान के बिड़ला फाउंडेशन

प्रमुख कृतियां

कहानी संग्रहः मुर्दो का गाव, स्वर्ग और पृथ्वी, चाद और टूटे हुए लोग, बंद गली का आखिरी मकान, सास की कलम से , समस्त कहानियाँ एक साथ

काव्य रचनाएं रू ठंडा लोहा, सात गीत, वर्ष कनुप्रिया, सपना अभी भी, आद्यन्त

उपन्यासः गुनाहों का देवता, सूरज का सातवां घोड़ा , ग्यारह सपनोंका देश, प्रारंभ व समापन

निबंध : टेले पर हिमालय, पश्यंती

कहानियाँ : अनकही, नदी प्यासी थी, नील झील, मानव मूल्य और साहित्य, ठण्डा लोहा,

पद्य नाटक : अंधा युग

आलोचना : प्रगतिवाद : एक समीक्षा, मानव मूल्य और साहित्य

7.4 गुलकी बन्नो की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

कहानी के तत्वों के आधार पर 'गुलकी बन्नो' कहानी की तात्विक समीक्षा प्रस्तुत है–

7.4.1 कथानक

गुलकी समाज द्वारा उपेक्षित एवम् पति परित्यक्ता है। उसका जीवन बड़ा ही करूणिक है। पति परित्यक्ता होने पर वह गाँव वालों की सहायता से सब्जी की एक दुकान खोलती है, फिर भी महीने में उसे बीस दिन भूखे

रहना पड़ता है। गाँव के बच्चे भीखा, मटकी, मुन्ना आदि उसे तंग करते हैं, गाली देते है, चिढ़ाते हैं कुबड़ी का गाना गाते है, क्योकि वह कुबड़ी थी।

गाँव में उसका एक मकान है। गाँव वाले उस पर निगाह लगाये हैं। इसलिये उसे इज्जत भी देते हैं। एक दिन उसका पति अपनी रखेल के बच्चे की सेवा के लिए उसे बुलाने आता है, यद्यपि गुलकी की सहेली सत्ती उसे मना करती है फिर भी वह तांगे पर बैठकर पति के साथ चल देती है। प्रस्तुत कथा विषय की दृष्टि से वर्तमान नारी समस्या से सम्बन्धित है, क्योंकि आज भी इस तरह की घटनाएँ आये दिन समाज में देखने को मिलती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गुल्की बन्नो मध्यवर्गीय उन समस्त नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो पति द्वारा अपमानित एवम् परित्यक्ता होकर अपने जीवन पर चार–चार आँसू बहाती हैं। वे पुरूषों के अत्याचारों का शिकार होकर टूट जाती है। इस दृष्टि से कहानी यथार्थ मूलक है। कहानी की प्रत्येक घटना यथार्थ प्रतीत होती है।

7.4.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण

गुलकी कथा का केन्द्रीय चरित्र है। भारतीजी ने इसी के माध्यम से अपने कथानक का ताना–बाना बुना है। यद्यपि कहानी में घेघा बुआ, मुन्ना, भीखा, मटकी, निरमल कथा को और उसके चरित्र को ही उभारने में सहायक हुए हैं। गुलकी कुबड़ी होने के कारण शरीर से असमर्थ है। उसकी वेदना, उसकी कसक, उसकी टीस पाठकों को बराबर अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। घेघा बुआ का अमानवीय व्यवहार तथा गाँव वालों की स्वर्थलिप्सा उसे और अधिक निरीह एवम् व्यथित कर देती है, उस पर बच्चों का चिढ़ाना कितना दुःखपूर्ण है।

यद्यपि वह पति को ही सर्वस्व समझती है और उसकी सेवा के लिए अपमनित एवम् तिरस्कृत होने पर भी उसी के साथ चली जाती है ।

घेघा बुआ स्वार्थी है। गाली तो उनकी जबान में ही बसती है। सत्ती (साबुनवाली) उग्र स्वभाव की है। किन्तु वह गुलकी को प्यार करती है। उससे सहानुभूति रखती है निरमल की माँ यद्यपि कोमल स्वभाव की है, उसमें दया है, ममता है किन्तु उसका पति धूर्त एवम् स्वार्थी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरित्र–चित्रण की दृष्टि से कहानी पूर्ण सफल है।

7.4.3 वातावरण

आलोच्य कहानी सामाजिक वातावरण पर अवलम्बित है। अर्थात् यह कहानी निम्नवर्गीय वातावरण पर आध ाारित है। इसकी भाषा हाव–भाव, बोलचाल, स्वार्थ–लिप्सा रहन–सहन आदि सभी निम्नवर्गीय ही हैं। आपसी लाग–डाट, वादविवाद, गाली–गलौच आदि सभी मध्यवर्गीय लोगों के वातावरण का ही सूचक है। अतः कहा जा सकता है कि वातावरण की दृष्टि में यह कहानी सफल है।

7.4.4 भाषा शैली

आलोच्य कहानी की भाषा स्वाभाविक, पात्रानुकूल एवम् वातावरण प्रधान है। बोचलाच की भाषा से कहानी आद्यन्त सजीव ही बनी रही है। देहाती भाषा के शब्दों का बाहुल्य है। उदाहरण के लिए घेघाबुआ के कथन को लिया जा सकता है। 'ऐ मर कलमुहे' – अकस्मात् घेघाबुआ ने कूढ़ा फेंकने के लिये दरवाजा खोला और चौतरे पर बैठे भीखा को गाते हुए देखकर कहा – तेरे पेट में फोनोफिराक उलियान बा का जौन भिनसार भवा कि तान तोड़ लाग राम जाने के कैसन एकरा दीदा लगता है।'' कितनी स्वाभाविक और सजीव है भाषा। भारतीजी की भाषा के सम्बन्ध में भी कमलेश्वर के विचार शतप्रतिशत सही है– 'उन्होंने उसे आदमी की ही मूल वाणी में ही, उसकी गति सहित नियोजित किया और शब्दों को नये सन्दर्भों में रखकर उसे अर्थयुक्त, संयत, प्रौढ़ और पहले से ज्यादा जीवन्त बनाया।'

7.4.5 कथोपकथन

कथोपकथन से एक ओर कहानी में जहाँ नाटकीयता आती है, वहीं दूसरी ओर इसमे चरित्रों की विशेषताओं का भी उद्घाटन होता है। कहीं–कहीं पर संवाद प्रश्नसूचक आये हैं। देखिये –

'कुबड़ी–कुबड़ी का हेराना ?'

'सुई हिरानी।'

'सुई लइकै का करबे ?'

'कन्था सीबे।'

'कन्था सीके का करबे ?'

'लकड़ी लावे'।

लकड़ी लाय के का करबे ?

'भात पकइबे।'

'भात पकाय के का करबे?'

'भात खाबै।'

भात के बदले लात खाबै।'

बच्चों का यह संवाद उन्हीं के अनुरुप है। इसी प्रकार कुबड़ी और मुन्ना का संवाद भी दर्शनीय है।

किसने मारा इसे ?

हम मारा है। कुबड़ी गुल्की ने बड़े कष्ट से खड़े होकर कहा– 'का करोगे? हमें मारागे?'

'मारेंगे क्यों नहीं ? मुन्ना बाबू ने अकड़ कर कहाँ

7.4.6 उद्देश्य और संवेदना–

कहानी यथार्थवादी है। गुलकी का कारूणिक चित्र उपस्थित कर लेखक समाजवालों का ध्यान गुलकी की भाँति जीवन व्यतीत करने वाली नारियों की ओर प्रेषित करना चाहता है ताकि वे उनका कष्ट देखें, उनकी मुसीबतों का समझें, उनके प्रति प्रेम संवेदनशील हो और निरीह नारियों के परित्याग की भावना का ही उन्मूलन कर डालें। यही इस कथा का प्रतिपाद्य है। इसी के लिए लेखक ने गुलकी के चरित्र की अवधारणा की है। आज समाज में गुलकी ही नहीं, वरन् उस जैसी लाखों–लाख नारियाँ हैं जो इस तरह समाज में जी रही हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुलकी का चरित्र एक लाचार एवम् निरीह नारी का चरित्र है। इसके चरित्र की अवधारणा कर लेखक ने उन समस्त नारियों के प्रति सहानुभूति जागृत कराने का प्रयास किया है जो ऐसे विषाक्त वातावरण में जी रही है।

7.5 बेबस नारी का त्रासद–चित्रण

'गुलकी बन्नो' नारी त्रासदी की करूण कथा है, जिसमें गुलकी इसकी मुख्य पात्र है।

''गुलकी बन्नो की झुर्रियाँ आने लगी थी और कमर के पास से वह इस तरह दोहरी हो गई थी जैसे 80 वर्ष की बुढ़िया हो''

गुलकी के पति ने उसे त्याग दिया है मात्र इसलिए की पाँच बरस बाद बच्चा हुआ है वो भी मरा हुआ। जिसमें उसका कोई कसूर नहीं था। परन्तु कारण जो भी हो गुलकी बन्नो को ही सजा मिलती है और उसका पति उसे सीढ़ी से ढ़केल देता है, जिससे जिन्दगीभर के लिए हड्डी खराब हो गई और उसका कूबड़ निकल आया जिसने उसको और भी कुरूप और डरावना बना दिया।

गुलकी वापस अपने गाँव आती है परन्तु वहाँ उसका अपना कोई भी जीवित नहीं है। गाँव के मोहल्ले में उसके पिता के एक घर के सिवा उसके पास कुछ नहीं है। पेट के गुजारे के लिए उसे सब्जियाँ बेच कर गुजारा करना पड़ता है।

जिस चौतरे पर वह सब्जी बेचती है वहाँ पर पहले मोहल्ले के बच्चे खेला करते थे ऐसे में बच्चों को गुलकी के आने से कष्ट होता है वह उसका मजाक बनाते हैं। उसे चिढ़ाते है, मारते हैं, तंग करते हैं। वह बेबस, अकेले कुछ भी नहीं कर पाती है। बच्चे गुलकी को तंग करने के लिए मटकी को लैमजूस देने का लालच देकर कुबड़ी बनाते हैं वह उसी तरह पीठ दोहरी करके चलने लगी।

बच्चों ने सवाल जवाब शुरू किये–

"कुबड़ी–कुबड़ी का हेराना?"

"सुई हिरानी।"

"सुई लैके का करबे?"

"कन्था सीबै!"

"कन्था सीके क्या करबे ?"

"लकड़ी लाबै !"

"लकड़ी लायके क्या करबे?"

"भात पकइबै ?"

"भात पकायके का करबे ?"

"भात खाबै !"

"भात के बदले लात खाबे ?"

इस प्रकार बच्चे गुलकी को परेशान करते थे।

एक दिन जब इस प्रकार मटकी को कुबड़ी बनाकर गुलकी के दुकान के सामने ले गये तो इसके पहले मटकी जवाब दे बच्चों ने अनजाने में उसे इतनी जोर से ढ़केल दिया कि वह कुहनी भी न टेक सकी और सीधे मुँह के बल गिरी। नाक, होंठ और भौंह खून से लथपथ हो गये। मटकी चीखी और लड़के 'कुबड़ी मर गई!' कह कर चीखने लगे। अकस्मात् उन्होंने देखा कि गुलकी उठी। वे जान छोड़कर भागे। पर गुलकी उठकर आई मटकी को गोद में लेकर पानी से उसका मुँह धोने लगी और धोती से खून पोछने लगी। बच्चों ने पता नहीं क्या समझा कि वह मटकी को मार रही है या क्या कर रही है कि वे अकस्मात् उस पर टूट पड़े। गुलकी की चीखें, सुनकर मुहल्ले लोग आये तो उन्होंने देखा कि गुलकी के बाल बिखरे हैं, दाँत से खून बह रहा है, अस्त–व्यस्त सी वह चबुतरे के नीचे पड़ी है, और सारी तरकारी सड़क पर बिखरी है।

गुलकी कर कुबड़ उसे और डरावना वीभत्स बना देता है बच्चे उसको बार–बार चिढ़ा कर तंग करते वह यह सब देख कर भी बेबस और अंजान बनी रहती है।

गुलकी अकेली है आय के साधन कुछ भी नहीं है। वह स्वयं सब्जियाँ बेचने का काम करना शुरू कर देती है पर उसकी आय अधिक नहीं होती ऊपर से उसे हर महिने चौतरे का एक रूपये किराया देना होता है जिसे वह नहीं दे पाती है जिसके कारण उसे उलाहना सहन करनी पड़ती है–

"ऐ हाँ! बच्चे हैं। तुहूँ तो दूध पियत बच्ची हौ। कह दिया कि जबान न लड़ाओ हमसे, हाँ! हम बहतै बुरी हैं। एक तो पाँच महीने से किरावा नहीं दियो और हियाँ दुनियाँभर के अन्धे, कोढ़ी बदुरे रहत हैं। चलौ उठाओ अपनी दुकान हियाँ से। कलसे न देखी हियाँ तुम्हें।"

मुहल्ले में कोई उससे कुछ लेता हीं नहीं थ पर इसके लिए बुआ उसे निकाल देंगी यह उसे कभी आशा नहीं थी। वैसे ही महीने में 20 दिन वह भूखी सोती थी। धोती में 10–10 पैबन्द थे। मकान गिर चुका था। एक दालान में थोड़ी सी जगह में वह सो जाती थी। पर दुकान तो वहाँ रखी नहीं जा सकती। उसने चाहा कि वह बुआ के पैर पकड़े ले, मिन्नत कर ले। पर बुआ ने जितनी जोर से दरवाजा खोला था उतनी ही जोर से बन्द कर दिया।

आखिर में घेघा बुआ उसकी दुकान उजाड़ देती है और उसकी आय के साधन को चकना चूर कर देती है–

"और बुआ ने पागलों की तरह दौड़कर नाली में जमा कूड़ा लकड़ी से ठेल दिया। छः इंच मोटी गन्दे पानी की धार धड़–धड़ करती हुई उसकी दुकान पर गिरने लगी। तरोइया पहले नाली में गिरी, फिर मूली, खीरे, साग अदरक उछल–उछलकर दूर जा गिरे। गुलकी आँख फाड़े पागल सी देखती रही और फिर दीवार पर सर पटककर हृदय विदारक स्वर में रो पड़ी "अरे मोर बाबू–हमें कहाँ छोड़ गये – अरे मोरी माई! पैदा होते ही हमें क्यों नहीं मार डाला! अरे धरती मैया हमें काहे नहीं लील लेती!

ऐसे ही उसकी दुकान में लगे बांस हटा दिये जाते हैं। उसकी त्रासदी और बढ़ जाती है। एक दिन गुलकी का पति आ जाता है परन्तु 'मोहल्ले वाले' यहाँ भी षड्यंत्र के द्वारा गुलकी के टूटे–फूटे मकान को कम दामों में हथिया लेते हैं और गुलकी को वापस पति के पास भेजने के लिए पति को तैयार करते हैं। गुलकी अपनी मर्जी से खुशी से पति के पास जाती है। क्योंकि पति से अलग होकर भी वह अच्छी हालत में नहीं रह रही थी। सो अपना भाग्य पति परमेश्वर को मान कर वह खुशी–खुशी पति के साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है।

गुलकी का पति बुआ से कह रहा था–'इसे ले तो जा रहे हैं, पर इतना कहे देते हैं, आप भी समझा दें उसे कि रहना हो तो दासी बन कर रहे। न दूध की न पूत की। हमारे कौन काम की पर हाँ औरतिया की सेवा करे, उसका बच्चा खिलावे, झाड़ू बुहारू करे तो दो रोटी खाय पड़ी रहे। पर कभी उससे जबान लड़ाई तो खैर नहीं। हमारा हाथ बड़ा जालिम है। एक बार कूबड़ निकला, अगली बार परान ही निकलेगा।"

नारी जीवन की त्रासदी शादी के बाद अगर गुलकी बच्चा नहीं दे पाई इस खातिर उसे मारा गया, और इतना अधिक मारा की वह सीढ़ी से गिर गई और कूबड़ बन गया। वह किसी भी काम की नहीं रह गई तो उसे घर से निकाल दिया, दूसरी शादी कर ली, गुलकी को सिर्फ घर के काम, काज करने वाली, सेवा करने वाली से अधिक नहीं समझा गया।

उसे मनुष्य समझा ही नहीं गया एक वस्तु समझ कर खराब हुई तो फेंक दी गई परन्तु जब मकान बेच कर उसके रूपये मिलते हैं तो उसका पति उसे ले जाने को तैयार है पर फिर भी एक सेवका की भाँति पर नारी जीवन की त्रासदी की गुलकी को उसी घर में दोबारा जाना पड़ता है जहाँ उसका अपमान हुआ वह खुशी जाने तैयार होती है–

गुलकी बोली–"कुछ भी होय। है तो अपना आदमी! हारे–गाढ़े कोई और काम आवेगा ? औरत को दबायके रखना ही चाहिए।"

गुलकी गलत सही के फेरे में न पड़कर पति को ही अपना परमेश्वर मान लेती है। "पति से हमने अपराध किया तो भागवान ने बच्चा छिना लिया, अब भगवान हमें क्षमा कर देंगे।" फिर कुछ क्षण के लिये चुप हो गई "छमा करेंगे तो दूसरी संतान देंगे क्यों नहीं देंगे? तुम्हारे जीजाजी को भगवान बनाये रक्खे खोट तो हमी में है। फिर संतान होगी तब तो सौत का राज नहीं चलेगा।"

नारी जीवन की त्रासदी कि सारा दोष अपने सर मढ़ लेती है पति के कुशलक्षेम की प्रार्थना करती है यह उसके अज्ञानता का परिणाम है की वह कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं देख पाती है और पति की खुशी में सब कुछ मान साथ चली जाती है।

7.6 बाल मनोवृत्तियों का सजीव चित्रण

बच्चे यथार्थ से अंजान होते हैं उनके खेल, परेशानियाँ, द्वन्द्व अलग तरह के होते हैं। जब बात मोहल्ले की होती है तो गुलकी को वे सब एक साथ परेशान करते हैं। जुलूस आकर दुकान के सामने रूक गया। गुलकी सतर्क हो गई। दुश्मन की ताकत बढ़ गई थी।

मटकी सिसकते सिसकते बोली–"हमके गुलकी मारिस है। हाय! हाय! नरिया में ढकेल दिहिस। अरे बाप रे।" निरमल, मेवा, मुन्ना सब पास आकर उसकी चोट देखने लगे। फिर मुन्ना ने ढकेलकर सबको पीछे हटा दिया और सण्टी लेकर तनकर खड़े हो गये "किसने मारा है इसे।"

बच्चे गुलकी को अपने मोहल्ले की नहीं मानते थे वह उसे बाहर से आई हुई मानने के कारण वे अपना छोटा समूह लेकर उसका विरोध करते हैं।

मुन्ना अकड़ते हुए कहा "ए मिरवा बिगुल बजाओ।"

"मिरवा ने दोनों हाथ मुँह पर रखकर कहा–"धुतु धुतु धू।" जलूस चल पड़ा और कप्तान ने नारा लगाया–

अपने देस में अपना राज!

गुलकी की दुकान बाईकाट!

जब गुलकी और बच्चों में विरोध उत्पन्न हो ही जाता है तो बच्चे गुलकी को बार–बार तंग करना शुरू कर देते हैं।

वे इसके लिए गुलकी की तरह "मटकी को लैम जूस का लालच देकर कुबड़ी बनाया गया। वह उस तरह पीठ दोहरी करके चलने लगी बच्चों ने सवाल जवाब शुरू किये–

"कुबड़ी–कुबड़ी का हेराना?

"सुई हिरानी।"

"सुई लैके का करबे ?

"कन्था सीबै!"

"कन्था सीके क्या करबे?

"भात पकइबे !"

"भात पकायके का करबे ?"

"भात खाबे!"

भात के बदले लात खाबे?"

और इसके पहले कि कुबड़ी बनी हुई मटकी कुछ कह सके, वे उसे जोर से लात मारते और मटकी मुँह के बल गिर पड़ती है। बच्चों को किसी कुरूप, वीभत्स को चिढ़ाने में ज्यादा मजा आता है। वे "चिढ़ा" कर आनन्दित होते हैं। गुलकी को चिढ़ाने के लिए वह मटकी को कुबड़ी बनाकर लात मार कर गिरा देते हैं।

बच्चे अपने समूह में एकता के साथ में रहते हैं जब समूह के किसी भी सदस्य को कोई भी नुकसान पहुँचाता है तो वह उस पर दुश्मन की तरह टूट पड़ते हैं।

"एक दिन जब इसी प्रकार मटकी को कुबड़ी बनाकर गुलकी की दुकान के सामने ले गये तो इसके पहले मटकी जवाब दे उन्होंने अनचिते में उसे इतने जोर से ढकेल दिया कि वह कुहनी भी न टेक सकी और सीधे मुँह के बल गिरी। नाक, होंठ और भौंह खून से लथपथ हो गये। वह हाय! हाय! कर इस बुरी तरह चीखी कि लड़के 'कुबड़ी मर गई! चिल्लाते हुए भी सहम गये और हतप्रभ हो गये।

अकस्मात् उन्होंने देखा कि गुलकी उठी वे जान छोड़कर भागे। पर गुलकी उठकर आई, मटकी को गोद में लेकर पानी से उसका मुँह धोने लगी और धोती से खून पोछने लगी। बच्चों ने पता नहीं क्या समझा कि वह मटकी को मार रही है या क्या कर रही है कि वे अकस्मात उस पर पड़े गुलकी की चीखें सुनकर मुहल्ले के लोग आये।"

बच्चे अक्सर अपने से बड़ों की बातें सुनकर उसे अपनी तरह से समझकर व्याख्या करते हैं, अपना दृष्टिकोण बनाने लगते हैं। ऐसे ही जब गुलकी के बुआ के चौतरे पर दुकान खोलने की बात मोहल्ले के बच्चों को पता चलती है तब बच्चों में सनसनी फैल जाती है।

"वैसे तो हकीमजी का चबुतरा बड़ा था पर वह कच्चा था, उस पर छाजन नहीं थी। बुआ का चौतरा लम्बा था, उस पर पत्थर जड़े थे। लकड़ी के खम्भे थे। उस पर टीन छाई थी। कई खेलों की सुविधा थी। खम्भों की पीछे किलकिल काँटे की लकीरें खींची जा सकती थीं। एक टाँग से उचक–उचकर बच्चे चिबिड्डी खेल सकते थे। पत्थर पर लकड़ी का पीढ़ा रखकर नीचे से मुड़ा हुआ तार घुमाकर रेलगाड़ी चला सकते थे। जब गुलकी ने अपने दुकान के लिए चबूतरे के खम्भों में बाँस बाँधे तो बच्चों को लगा कि उनके साम्राज्य में किसी अज्ञात शत्रु ने आकर किले बन्दी कर ली है। वे सहमे हुए दूर से कुबड़ी गूलकी को देखा करते थे। निरमल ही उसकी एक मात्र संवाददाता थी और निरमल का एक मात्र विश्वस्त सूत्र था उसकी माँ। उससे जो सुना था उसके आधार पर निरमल ने सबको बताया था कि यह चोर है। इसका बाप 100 रूपया चुराकर भाग गया। यह भी उसके घर का सारा रूपया चुराने आई है। रूपया चुरायेगी तो यह भी मर जायेगी। मुन्ना ने कहा 'भगवान सबको दण्ड देता है'। निरमल बोली 'ससुराल में भी रूपया चुराए होगी। मेवा बोला, अरे–कूबड़ थोड़े है। ओही रूपये बाँधे है पीठ पर। मनसेधू का रूपया है, 'सचमुच?' निरमल ने अविश्वास से कहा। और नहीं क्या। कूबड़ थोड़े है। है तो दिखावे।"

जब बच्चे अपनी दुश्मन गुलकी के पास अपने समूह के दो लोगों को बैठा देखते है तो तुरन्त मेवा गया और पता लगाकर लाया कि गुलकी दोनों को एक–एक अधन्ना दिया।

जब समूह के सभी लोगों को पता चल जाता है की मिरवा और मटकी दुश्मन से जा मिले हैं उन्हें जलन होती है। दल के नायक मुन्ना सबको सम्बोधित करता है और कहता है–

"निरमल! मिरवा मटकी को एक भी निमकौड़ी मत देना। रहे उसी कुबड़ी के पास।" "हाँ जी!" निरमल ने आँख चकमाकर गोल मुँह करके कहा "हमार अम्मा कहत रही उन्हें छुयो न। न साथ खायो, न खेलो। उन्हें बड़ी बुरी बिमारी है। आक थू!" मुन्ना ने उनकी ओर देखकर उबकाई जैसा मुँह बनाकर थूक दिया।

गुलकी को जीवकोपार्जन के स्थल से बेदखल करने का जब फरमान बुआ ने दिया है और कोई भी उसके पक्ष में बोलने को तैयार नहीं होता तब गुलकी के चबूतरे के आस–पास खेलने वाले बच्चों में मुन्ना का गुलकी की यह दशा देखकर अत्यन्त व्यथित होना और अपनी माँ के पास लेटे–लेटे सोचना कि अब गुलकी का क्या होगा बाल मनोवृत्ति का उदाहरण है–

"मुन्ना लेटा था और उसके ऊपर अंधेरे मे यह सवाल जवाब इधर से उधर और उधर से इधर जा रहे थे। वह फिर कांप उठा, माँ के पास घुस गया और सोते–सोते उसने साफ सुना– कुबड़ी फिर उसी तरह रो रही है, गला फाड़ कर रो रही है। कौन जाने मुन्ना के ही आंगन में बैठकर रो रही हो। नींद में वह स्वर कभी दूर कभी पास आता हुआ ऐसा लग रहा है जैसे कुबड़ी मुहल्ले के हर आंगन में ज़ाकर रो रही हो, पर कोई सुन नहीं रहा, सिवा मुना के।"

बच्चों में कौतुहल बहुत अधिक होता है जब उन्हें अपनी दुश्मन गुलकी बन्नो के पति के आने की खबर होती है तो वह सब छोड़कर उसे देखने लगते हैं। "मुन्ना को देखकर मटकी ताली बजा–बजाकर कहने लगी "गुलकी का मनसेधू आवा है। ए मुन्ना बाबू! ई कुबड़ी का मनसेधू है। फिर उधर मुड़कर–"एक डबल दै देव।"

चूँकि बच्चों की लड़ाई चौतरे को लेकर थी गुलकी के दुकान हटाने के बाद वे भी अपने दूसरे खेलों में मस्त हो जाते हैं। जब गुलकी का पति उसे लेने आता है तब "मेवा ने पास पहुँचकर कहा–"ए गुलकी, ए गुलकी, जीजाजी के साथ जाओगी क्या?"

गुलकी पति के साथ जाने को तैयार है। गुलकी इक्के पर बैठ जाती है। गुलकी ने मिरवा, मटकी को पैसे दिये परन्तु वे लोग संकोच कर जाते हैं परन्तु पुचकारने पर पैसे ले लेते हैं।

बच्चों की मनोवृत्ति क्षणिक होती है वे मासूमियत से लबालब होते हैं। बालमन शीघ्र ही क्रोध को भूलकर एक हो जाते हैं।

7.7 सामाजिक शिष्टाचार का निरूपण

सामाजिक परिवेश में सामाजिक शिष्टाचार तथा रीति–रिवाज का निर्वहन स्वाभाविक प्रक्रिया है। 'गुल्की बन्नों' में सामाजिक शिष्टाचार तथा रीति–रिवाज के निर्वहन का चित्रण सहज, सरल रूप में हुआ है।

गुलकी के पति ने जब उसे त्याग दिया है तो गुलकी वापस अपने गाँव आती है परन्तु वहाँ उसका अपना कोई भी जीवित नहीं है। गाँव के मोहल्ले में उसके पिता के एक घर के सिवा उसके पास कुछ नहीं है। तब सभी उसकी मदद करते हैं गुलकी की दुकान खुलवाने की बात तय हो जाती है–

"बेटवा एको दुकान खुलकाय देव। हमरा चौतरा खाली पड़ा है। यही रूपया दुई रूप्या किरावा दै देवा करै, दिनभर अपना सौदा लगाय ले। हम का मना करित है? एत्ता बड़ा चौतरा मुहल्ले वालन के काम न आई तो का हम छाती पर धै लैं जाब! पर हाँ, मुला रूपया दै देवा करै।"

ऐसे ही जब बच्चे गुलकी को तंग करते हैं तब घेघा बुआ बीच बचाव करती रहती है। गुलकी का घर टूट जाता है तो सत्तो उसे अपने घर में पनाह देती है।

एक दिन गुलकी का पति आ जाता है परन्तु 'मोहल्ले वाले' यहाँ भी षड्यंत्र के द्वारा गुलकी के टूटे–फूटे मकान को कम दामों में हथिया तो लेते हैं पर जब गुलकी की विदाई होती है तब उसको विदा करने सभी लोग आते हैं। वह सब के साथ मिलती है। ऐसे में गुलकी जब अपने पति के साथ विदा होती रहती है "सहसा एक बिल्कुल अजनबी किन्तु अत्यन्त मोटा स्वर सुनाई पड़ा बच्चों ने अचरज से देखा, मुन्ना की माँ चली आ रही है। हम तो मुन्ना

का आसरा देख रहे थे कि स्कूल से आ जाये, उसे नाश्ता करा ले तो आयें, पर इक्का आ गया तो हमने समझा अब तू चली अरे! निमरल की माँ कहीं ऐसे बेटी की बिदा होती हैं लाओ जरा रोली घोलो, जल्दी से चावल लाओ, और सेन्दूर भी ले आना निरमल बेटा! तुम बेटा उतर आओ इक्केसे"।

बिदाई के समय गुलकी को सभी विदा करते है– ''मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है। हमारा भी तो फर्ज था। अरे माँ–बाप नहीं है तो मुहल्ला तो है। आओ बेटा!'' और उन्होंने टीका करके ऑचल के नीचे छिपायें हुए कुछ कपड़े और एक नारियल उसकी गोद में डालकर उसे चिपका लिया।''

सामाजिक परिवेश में सामाजिक शिष्टाचार का निरूपण जिस तरह से कहानी में यह आया है वह कहानी को पाठक के और करीब लाती है।

7.8 मानवीय संवेदना से परिपूर्ण कहानी

'गुलकी बन्नो' मानवीय संवेदना से परिपूर्ण कहानी है। गुलकी का अपने पति के घर से वापस गाँव आना और मोहल्ले वालों की उसको मदद करना सभी घटनाएँ मानवीय संवेदनाओं का उद्घाटन करती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

"तो का भवा बहू अरे निरमल के बाबू से तो एकरे बाप की दॉत काटी रही है।"

घेघा बुआ की आवाज आई–'बेचारी बाप की अकेली संतान रही। एही के बियाह में मटियामेट हुइ गवा। पर ऐसे कसाई के हाथ में दिहिस कि पाँचै बरस में कूबड़ निकल आवा'

"बेटवा एको दुकान खुलकाय देव। हमरा चौतरा खाली पड़ा है। यही रूपया दुई रूपया किरावा दै देवा करै, दिनभर अपना सौदा लगाय ले। हम का मना करित है? एत्ता बड़ा चौतरा मुहल्ले वालन के काम न आई तो का हम छाती पर धै लैं जाब! पर हाँ, मुला रूपया दै देवा करै।"

बच्चों द्वारा गुलकी को परेशान करने पर घेघा बुआ द्वारा बीच बचाव करना और गुलकी का घर टूट जाने पर सत्तो द्वारा अपने घर में पनाह देना आदी मानवीय संवेदना का उत्कृष्ट उदाहरण है।

बच्चों से गुलकी के अत्यधिक तंग होने के बावजुद मटकी के प्रति गुलकी का व्यवहार मानवीयता का एक उदाहरण है– एक दिन जब बच्चे मटकी को कुबड़ी बनाकर गुलकी के दुकान के सामने ले गये तो इसके पहले मटकी जवाब दे बच्चों ने अनजाने में उसे इतनी जोर से ढ़केल दिया कि वह कुहनी भी न टेक सकी और सीधे मुँह के बल गिरी। नाक, होंठ और भौंह खून से लथपथ हो गये। मटकी चीखी और लड़के 'कुबड़ी मर गई!' कह कर चीखने लगे। अकस्मात् उन्होंने देखा कि गुलकी उठी। वे जान छोड़कर भागे। पर गुलकी उठकर आई मटकी को गोद में लेकर पानी से उसका मुँह धोने लगी और धोती से खून पोछने लगी।

गुलकी को जीवकोपार्जन के स्थल से बेदखल करने का जब फरमान बुआ ने दिया है और कोई भी उसके पक्ष में बोलने को तैयार नहीं होता तब गुलकी के चबूतरे के आस–पास खेलने वाले बच्चों में मुन्ना का गुलकी की यह दशा देखकर अत्यन्त व्यथित होना और अपनी माँ के पास लेटे–लेटे सोचना कि अब गुलकी का क्या होगा मानवीय संवेदना का उत्कृष्ट उदाहरण है–

"मुन्ना लेटा था और उसके ऊपर अंधेरे मे यह सवाल जवाब इधर से उधर और उधर से इधर जा रहे थे। वह फिर कांप उठा, माँ के पास घुस गया और सोते–सोते उसने साफ सुना– कुबड़ी फिर उसी तरह रो रही है, गला फाड़ कर रो रही है। कौन जाने मुन्ना के ही आंगन में बैठकर रो रही हो। नींद में वह स्वर कभी दूर कभी

पास आता हुआ ऐसा लग रहा है जैसे कुबड़ी मुहल्ले के हर आंगन में जाकर रो रही हो, पर कोई सुन नहीं रहा, सिवा मुना के।''

जब गुलकी की विदाई होती है तब उसको विदा करने सभी लोग आते हैं। वह सब के साथ मिलती है। ऐसे में गुलकी जब अपने पति के साथ विदा होती रहती है ''सहसा एक बिल्कुल अजनबी किन्तु अत्यन्त मोटा स्वर सुनाई पड़ा बच्चों ने अचरज से देखा, मुन्ना की माँ चली आ रही है। हम तो मुन्ना का आसरा देख रहे थे कि स्कूल से आ जाये, उसे नाश्ता करा ले तो आयें, पर इक्का आ गया तो हमने समझा अब तू चली अरे! निमरल की माँ कहीं ऐसे बेटी की बिदा होती हैं लाओ जरा रोली घोलो, जल्दी से चावल लाओ, और सेन्दूर भी ले आना निरमल बेटा! तुम बेटा उतर आओ इक्केसे''।

बिदाई के समय गुलकी को सभी विदा करते है– ''मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है। हमारा भी तो फर्ज था। अरे माँ–बाप नहीं है तो मुहल्ला तो है। आओ बेटा!'' और उन्होंने टीका करके आँचल के नीचे छिपायें हुए कुछ कपड़े और एक नारियल उसकी गोद में डालकर उसे चिपका लिया।''

संवेदना दूसरों के दुखः को देखकर जाग उठती है। गुलकी के दुख में पूरा मोहल्ला शामिल है। जब वह अपने पति के साथ जाने वाली है तब पूरा महोल्ला उसे अपनी बेटी की तरह विदा करते है। छोटे–छोटे बच्चे जो गुलकी से लड़ा करते थे वे भी भावविभोर होकर उसे विदा करते है, जो मानवीय संवेदना की सशक्त अभिव्यिक्ति है।

7.9 व्याख्या खण्ड

गद्यांश 1.

जब गुलकी ने अपने दुकान के लिए चबूतरे के खम्भों में बाँस बाँधे तो बच्चों को लगा कि उनके साम्राज्य में किसी अज्ञात शत्रु ने आकर किलेबन्दी कर ली है। वह सहमें हुए दूर से कुबड़ी गुलकी को देखा करते थे। निरमल ही उनका एक मात्र संवाददाता थी और निरमल की एक मात्र विश्वस्त सूत्र थी उसकी माँ। उससे जो सुना था उसके आधार पर निरमल ने सबको बताया था कि वह चोर है। उसका बाप 100 रूपया चुराकर भाग गया। यह भी उसके घर का सारा रूपया चुराने आई है। रूपया चुरायेगी तो यह भी मर जायेगी। मुन्ना ने कहा भगवान सबको दण्ड देता है।

सन्दर्भ :प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यावरतरण में गुलकी बन्नो को बुआ ने अपना चबूतरा किराये पर दे दिया कि वह उस चबूतरे पर सब्जी की दुकान लगा ले। जिससे वह अपना गुजर बसर कर सके। अब तक वह चबूतरा बच्चों के खेलने का स्थल था।

व्याख्या : जब गुलकी बन्नो अपनी दुकान लगाने के लिये चबूतरे के खम्बों में बाँस बाँध रही थी तो उसे देख बच्चों को ऐसा लगा कि उनके खेलने की जगह में किसी अपरिचित ने कब्जा कर लिया है और अब उनके खेलने की जगह उनसे छिन गई है। गुलकी का कुबड़ निकला हुआ था इसलिये वह कुछ डरावनी सी दिखती थी। अतः बच्चे दूर से, सहमें हुए से उसे देख रहे थे। उन बच्चों को गुलकी के बारे में जानकारी देने वाली निरमल ही थी जो गुलकी के सम्बन्ध में बताया करती थी। निरमल को गुलकी के बारे में जानकारी उसकी माँ से मिला करती थी। निरमल की माँ से उसने सुना था कि वह चोर है। यह बात निरमल ने सभी बच्चों को बताई कि गुलकी चोर

है और उसके पिता 100 रूपये चुराकर भाग गये थे। अब गुलकी बुआ के चबूतरे में दुकान लगाकर यहाँ रहेगी और इनका सारा रूपया चुराने आई है। निरमल कहती है कि गुलकी अगर रूपया चुरायेगी तो मर जायेगी। इस पर मुन्ना का अभिमत है कि भगवान सभी को दण्ड देते हैं।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में गुलकी के रोजगार आरम्भ करने का सुन्दर चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में किसी अपरिचित के सम्बन्ध में बिना सोये समझे अवधारणा निश्चित करने पर टिप्पणी की गई है।
3. प्रस्तुत अंश में बाल मनोवृत्तियों का सुंदर चित्रण किया गया है।

गद्यांश 2

उसके बाद अपने उस कृत्य से बच्चे जैसे खुद सहम गये थे। बहुत दिन तक वे शांत रहे। आज जब मेवा ने उसकी पीठ पर धूल फेंकी तो जैसे उसे खून चढ़ गया पर फिर न जाने वह क्या सोचकर चुप रह गई और जब नारा लगाते हुए जलूस गली में मुड़ गया तो उसने आँसू पोछे, पीठ पर से धूल झाड़ी और साग पर पानी छिड़कने लगी।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गुलकी की तरह मटकी अभिनय कर रही थी कि बच्चों ने उसे खेल–खेल में पीछे से ढकेल दिया तो वह ज्यादा जोर से मुँह के बल गिर गई और उसे भयंकर चोट लग गई तो गुलकी उसका खून पोंछने लगी पर लोगों को लगा कि गुलकी ने उसे मारा है अतः लोगों ने गुलकी की पीठ में धूल झोंक दी और उसकी सब्जी पर धूल डाल दी।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में जब मटकी को गुलकी बन्नो उठाकर उसका खून पोछने लगती है और उसका मुँह पानी से धोती है तो सारे बच्चे सहम जाते हैं उन्हें लगता है कि वे गुलकी का मजाक उड़ा रहे थे और उसी गुलकी ने मटकी की सेवा और रक्षा की है। किन्तु मेवा और अन्य लोगों ने गुलकी की पीठ और सब्जी में ध ूल उड़ाकर उसका नुकसान किया है। तब वे सभी बच्चे सहमे से एक किनारे खड़े हो गये और काफी दिनों तक शांत रहे। आज जब मेवा ने गुलकी की पीठ पर धूल फेंकी तो वह बुरी तरह से चिढ़ गई और उसकी आँखों में जबरदस्त क्रोध दिखाई पड़ा परन्तु वह शांत रही, कुछ–भी न बोली। सभी लोग यह समझ रहे थे कि गुलकी ने ही मटकी को मारा है जिससे उसके मुँह से खून निकल रहा है। तो वे गुलकी के खिलाफ नारा लगाते–लगाते आगे गली की ओर चले गये। गुलकी ने अपने आँसू पोछे, अपनी पीठ पर से धूल झाड़ी और चुपचाप सब्जियों पर पानी छिड़कने लगी जिससे सब्जी पर डाली गई धूल साफ हो जाये।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में बच्चे गुलकी का व्यवहार देखकर हतप्रद दिखाये गये हैं।
2. प्रस्तुत अंश में मटकी के साथ गुलकी का व्यवहार मानवीयता के दर्शन कराता है।
3. प्रस्तुत अंश में निरीह व्यक्ति पर किये पर किये जाने वाले अत्याचार को दिखाया गया है।

गद्यांश 3

गुलकी सन्न रह गई। उसने किराया सचमुच पाँच महीने से नहीं दिया था। बिक्री ही नहीं थी। मुहल्ले में कोई उससे कुछ लेता ही नहीं था पर इसके लिये बुआ उसे निकाल देंगी यह उसे कभी आशा नहीं थी। वैसे ही महीने में 20 दिन वह भूखी सोती थी। धोती में 10–10 पैबंद थे। मकान गिर चुका था। एक दालान में थोड़ी–सी जगह में वह सो जाती थी। पर दुकान तो वहां रखी नहीं जा सकती। उसने चाहा कि वह बुआ के पैर पकड़ ले, मिन्नत कर ले। पर बुआ ने जितनी जोर से दरवाजा खोला था, उतनी ही जोर से बंद कर दिया।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में बुआ ने गुलकी को यह फरमान सुना दिया कि वह उसका चबूतरा खाली क दे। क्योंकि उसने बुआ को पाँचमहीने से किराया नहीं दिया है और अब मटकी को मार कर उसने पूरे गाँव से बैर ले ली है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावरण में बुआ ने गुलकी को यह फरमान सुनाया कि वह उसका चबूतरा खाली कर दे और यहाँ से चली जाये, तो गुलकी बुरी तरह सन्न रह गई। क्योंकि गुलकी ने पाँच महीने से बुआ को चबूतरे का किराया भी नहीं दिया था। समस्या यह थी कि गुलकी की दुकान से कोई सब्जी ही खरीद नहीं रहा था जिसके कारण किसी प्रकार से बिक्री तो ही नहीं रही थी। गुलकी ने कभी सोचा ही नहीं था कि बुआ उसे अपने यहाँ से निकाल देगी। गुलकी की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी, वह महीने में बीस दिन भूखी सोती थी, उसकी साड़ी में इतने पैबंद लगे थे कि उसे देखकर गुलकी की गरीबी का एहसास सहज हो जाता था। उसका अपना मकान गिर चुका था, वहां वह दालान पर ही सो जाया करती थी, किन्तु उस जगह पर दुकान लगाना संभव नहीं था। गुलकी के मन में आया कि वह बुआ के पैर पकड़े और उससे याचना करे कि उसे घर से न निकाला जाए जिसे वह अपने जीविकोपार्जन के लिये यहाँ दुकान लगाती रहे। परंतु बुआ ने जिस क्रोध में दरवाजा खोला था, उसी आवेश में दरवाजा बंद कर दिया और गुलकी मन मसोस कर रह गई।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में गुलकी के प्रति बुआ की उपेक्षा प्रदर्शित की गयी है।
2. प्रस्तुत अंश में गुलकी की गरीबी का मार्मिक चित्रण किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में गुलकी की मनोदशा का चित्रण किया गया है।

गद्यांश 4

"खोलौ तो देखैं।" अकस्मात् गुलकी ने तड़पकर कहा–आज तक किसी ने उसका यह स्वर नहीं सुना था – "पांच महीने का दस रूपया नहीं दिया, बस, पर हमारे घर की धन्नी निकाल के बसंतू के हाथ किसने बेचा ? तुमने ! पच्छिम ओर का दरवाजा चिरवा के किसने जलवाया ? तुमने ! हम गरीब है। हमारा बाप नहीं है। सारा मुहल्ला हमें मिलके मार डालो।"

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गुलकी जब बुआ का चबूतरा खाली नहीं करती तो बुआ कहती है कि उसके घर की नाली का रास्ता गुलकी की दुकान के सामने से निकालेगी, इस पर गुलकी तड़प उठती है और कहती है–

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में बुआ यह कहती है कि उसके घर से नाली का रास्ता गुलकी की दुकान के सामने से ही निकाला जायेगा इससे गुलकी बहुत ज्यादा नाराज होती है और आवेश में कहती है कि नाली का रास्ता खोलकर तो दिखाओ। उसका यह तीक्ष्ण रूप पहले किसी ने नहीं देखा था। गुलकी कहती है कि–पाँच महीने में 10 रूपया चबूतरे का किराया नहीं दिया तो तुम मुझे चबूतरा खाली करने को कह रही हो और जब मेरा मकान गिर गया था तो उसकी धन्नी (छत के मध्य की लकड़ी) को बसंतु के हाथ किसने बेचा था? तुमने। उसके घर में पश्चिम की ओर लगा दरवाजा टुकड़े–टुकड़े कर किसने जलवाया? तुमने। गुलकी कहती है कि हम गरीब हैं तो सारे अत्याचार मुझ पर ही करोगी, क्योंकि मेरे पिता नहीं है। वह तड़पकर कहती है कि पूरा मोहल्ला मिलकर हमें मार डालो तो तुम सभी को शांति मिलेगी।

विशेष :–

1. प्रस्तुत अंश में निरीह और निर्धन गुलकी की तड़प का मार्मिक चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में गुलकी के माध्यम से गरीबी और लाचारी का मार्मिक दृश्य विश्लेषित किया गया है।

गद्यांश 5

मुन्ना लेटा था और उसके ऊपर अंधेरे मे यह सवाल जवाब इधर से उधर और उधर से इधर जा रहे थे। वह फिर कांप उठा, माँ के पास घुस गया और सोते–सोते उसने साफ सुना– कुबड़ी फिर उसी तरह रो रही है, गला फाड़ कर रो रही है। कौन जाने मुन्ना के ही आंगन में बैठकर रो रही हो। नींद में वह स्वर कभी दूर कभी पास आता हुआ ऐसा लग रहा है जैसे कुबड़ी मुहल्ले के हर आंगन में जाकर रो रही हो, पर कोई सुन नहीं रहा, सिवा मुना के।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यावतरण में बुआ ने अपना चबूतरा खाली करने का फरमान सुना दिया है जिससे गुलकी अत्यन्त दुखी है। उसे लगता है कि उसके जीवकोपार्जन के सारे साधन बंद से जायेंगे। गुलकी के पास हमेशा खेलते रहने वाले बच्चों में से मुन्ना गुलकी की इस दशा से बड़ा व्यथित है।

व्याख्या – प्रस्तुत गद्यांश में गुलकी इस बात से दुखी है कि उसने जीवकोपार्जन के स्थल से उसे बेदखल करने का फरमान बुआ ने दिया है और कोई भी उसके पक्ष में बोलने को तैयार नहीं है। गुलरी के चबूतरे के आस–पास खेलने वाले बच्चों में मुन्ना गुलकी को यह दशा देखकर अत्यन्त व्यथित है। वह अपनी माँ के पास लेटा–लेटा सोच रहा है कि अब गुलकी का क्या होगा? रात्रि के अंधकार में उस बालक के मन में बहुत से विचार सवाल–जवाब बनकर आते–जाते रहे। गुलकी की असहाय और निरीह अवस्था का विचार कर मुन्ना मन ही मन कांप उठा और अपनी माँ के आँचल में दुबक गया। उसने साफ–साफ गुलकी के रोने की आवाज सुनी। वह गला फाड़कर रो रही थी, परन्तु कोई भी उसे सांत्वना नहीं दे रहा था। मुन्ना को लगा कि वह उसके ही आँगन में बैठकर रो रही है। रात्रि में नींद में डूबी बस्ती में ऐसा लग रहा था कि जैसे उसके रूदन का स्वर कभी पास आ जाता है तो कभी दूर चला जाता है। उसके रूदन से ऐसा लगता था कि वह मुहल्ले के हर आँगन में जाकर रो रही हो पर उसे तसल्ली देने वाला कोई भी नहीं था।

विशेष–

1. प्रस्तुत अंश में बाल मन के उद्वेलन का सुंदर चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में निर्धन के असहाय होने पर उसका कोई साथ नहीं देता, इसका वर्णन दर्शनीय है।
3. प्रस्तुत अंश में गुलकी का रूदन निर्धन का रुदन बनकर विवेचित हुआ है।

गद्यांश 6.

मेवा ने पास पहुँचकर कहा ए गुलकी, ए गुलकी, जीजाजी के साथ जायेगी क्या? कुबड़ी ने झेंपकर कहा धत्त रे! ठिठोली करता है! और लज्जा भरी जो मुस्कान किसी भी तरूणी के चेहरे पर मनमोहक लाली बनकर फैल जाती, वह उसके झुर्रियोंदार, बेडौल, नीरस चेहरे पर विचित्र रूप से वीभत्स लगने लगी। उसके काले पपडीदार होठ सिकुड़ गये, आंखों के कोने मिचमिचा उठे और अत्यन्त कुरुचिपूर्ण ढंग से उसने अपने पल्ले से सर ढांक लिया और पीठ, सीधीकर जैसे कूबड़ छिपाने का प्रयास करने लगी।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गुलकी का पति उसके मुहल्ले में उसे लेने आता है क्योंकि उसकी दूसरी पत्नी को बच्चा होना है अतः वह गुलकी को साथ ले जाना चाहता है जिससे घर की देख–भाल हो सके। यह सूचना जब मेवा गुलकी को देती है तो उसकी प्रसन्नता और स्त्रीवत लज्जा दर्शनीय है।

व्याख्या – प्रस्तुत गद्यावतरण में मेवा गुलकी को बताती है कि उसका पति उसे लेने आयी है तो क्या गुलकी उसके साथ जाएगी? इस प्रश्न पर गुलकी लजा जाती है और वह लज्जा करती हुई कहती है कि तुम मेरे साथ मजाक कर रही हो। पति के साथ जाने की बात सुनकर गुलकी के चेहरे पर लज्जा भरी मुस्कान आ गयी जो उसके झुर्रीदार, बेडौल और नीरस चेहरे विभत्स सी लगने लगी। उसके पपड़ीदार होंठ प्रसन्नता में सिकुड़ गये, प्रसन्नता में उसकी आंखों के कोने सुकड़ने लगे तभी उसने अपना पल्लू अपने सिर पर ढंक लिया और पीठ सीध ी करने की कोशिश करने लगी जैसे वह अपना कुबड़ छिपाने की कोशिश कर रही हो। उसका यह व्यवहार किसी तरूणी. से कम नहीं था।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में स्त्री के पति के साथ जाने की प्रसन्नता का मोहक चित्रण किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में भारतीय स्त्री का सहज सरल रूप विवेचित हुआ है।

गद्यांश 7

जितना हमसे बन पड़ा किया। किसी को दौलत का घमण्ड थोडे ही दिखाना था। नहीं बहन! तुमने तो किया पर मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है। हमारा भी तो फर्ज था। अरे माँ–बाप नहीं है तो मुहल्ला तो है। आओ बेटा! और उन्होंने टीका करके आंचल के नीचे छिपाये हुए कुछ कपड़े और एक नारियल उसकी गोद में डालकर उसे चिपका लिया। गुलकी जो अभी तक पत्थर–सी चुप थी सहसा फूट पड़ी। उसे पहली बार लगा जैसे मायके से जा रही है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग – प्रस्तुत गद्यांश में गुलकी का पति उसे वापिस अपने साथ ले जा रहा है। मुहल्ले की सभी स्त्रियां गुलकी को बिदा कर रही हैं। उनका स्नेह और प्रेम देखकर गुलकी आनंदित और प्रफुल्लित है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में निरमल की माँ गुलकी की विदाई पर अपनी भावनायें व्यक्त करती हुई कहती है कि हमसे जितना बन पड़ा हमने गुलकी के साथ किया। कभी किसी को दौलत का घमण्ड नहीं दिखाया जाता। मुहल्ले की बिटिया तो सारे मुहल्ले की बिटिया होती है। अतः उसका ध्यान रखना सबका कर्तव्य है। अगर गुलकी के माता–पिता जीवित नहीं है तो क्या हुआ हम सब लोग तो है जो गुलकी को ससम्मान अपने पति के साथ बिदा कर सकते है। ऐसा कहते हुए निरमल की माँ ने गुलकी को अपने पास बुलाया और उसकी गोद में नरियल कपड़े देते हुए उसका टीका किया तब गुलकी का जड़वत शरीर रोमाँचित हो उठा। उसे इस मुहल्ले में पहली बार लगा जैसे वह मायके से बिदा हो रही है और गुलकी फूट–फूटकर रोने लगी।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में मुहल्लेवासियों की गुलकी के प्रति निकटता विवेचित की गई है।
2. प्रस्तुत अंश में भारतीय परिवेश को दृश्यांकित किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में गुलकी का भावुक हृदय साकार हुआ है।

गद्यांश 8

आओ बेटा! गुलकी जा रही है न आज। दीदी है न! बड़ी बहन है। चल पांव छू ले। आ इध र! माँ ने फिर कहा! मुन्ना .... और कुबड़ी के पांव छुए ? क्यों? क्यों? पर माँ की बात! एक क्षण में उसके मन में एक पूरा पहिया घूम गया और वह गुलकी की ओर बढ़ा। गुलकी ने दौड़कर उसे चिपका लिया और फूट पड़ी हाय मेरे भईया। अब हम जा रहे हैं। अब किससे लड़ोगे मुन्ना भइया ? अरे मेरे बीरन, अब किससे लड़ोगे ? मुन्ना को लगा जैसे उसकी छोटी–छोटी पसलियों में एक बहुत बड़ा सा आंसू जमा हो गया जो अब छलकने ही वाला है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित कहानी संकलन 'कथान्तर' में संकलित कहानी 'गुलकी बन्नो' से अवतरित किया गया है। इसके लेखक धर्मवीर भारती है।

प्रसंग : प्रस्तुत गद्यांश में गुलकी अपने पति के साथ उसके घर जा रही है। मुहल्ले की सभी स्त्रियां बड़ी आत्मीयता से उसे विदा कर रही हैं। मुन्ना की माँ भी अपने बेटे को बुलाकर गुलकी के पैर छूने के लिये कहती है। गुलकी और मुन्ना का द्वंद्व अपने चरम पर है।

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में गुलकी अपने पति के साथ उसके घर जा रही है। मुहल्ले की सभी स्त्रियाँ अपनी–अपनी भावनायें व्यक्त कर रही हैं। मुन्ना की माँ ने अपने बेटे का पुकारा और कहा कि तुम्हारी बहन विदा हो रही है उसके चरण स्पर्श कर लो। मुन्ना जैसे ही गुलकी के पास आकर चरण स्पर्श करता है गुलकी भाव विह्वल हो जाती है। मुन्ना के मानस पटल पर सारी स्मृतियाँ कौंध जाती हैं। सारा समय चक्र एक पहिये की भांति चक्कर लगा जाता है। गुकको मुन्ना को अपने गले से लिपटा लेती है और फूट–फूटकर रोते हुए कहती है कि अब तो मैं जा रही हूँ अब तुम किससे लड़ोगे, किसे चिढ़ाओगे। मुन्ना इन सब बातों को सुनकर और उस कारूणिक विदाई दृश्य को देखकर ऐसा महसूस करता है कि उसकी छोटी–छोटी पसलियों में एक बहुत बड़ा आंसू जमा हो गया हो और अब छलकने ही वाला है, उसका मन दुख से भर जाता है।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में मुहल्ले वासियों का गुलकी के प्रति स्नेह व्यक्त हुआ है।
2. प्रस्तुत अंश में गुलकी के भाव बिहल हृदय का सुन्दर वर्णन किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में मुन्ना के माध्यम से बच्चों का गुलकी के प्रति प्रेम विवेचित हुआ है।

7.10 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

शब्दार्थ

अकस्मात् – अचानक

उलियान – लगा है

चौतरे – चबूतरे

विक्षिप्त – पागल

देहरी – दरवाजा

खीझी – नाराज

झिड़का – डाँटा

सतर्क – सजग

ताज्जुब – आश्चर्य

इजाद – अविष्कार

अप्रत्याशित – अचानक

मशविरा – सलाह

कौतूहल – कौतूक, आश्चर्य

कनपटियों – कान के ऊपर

गुलझर्रे उड़ाना – मस्ती करना

असगुन – अपशकुन

तरुणी – युवती

विभत्स – डरावनी

परजा पजारू – सेवक

हथप्रभ – आश्चर्यचकित

कहावतें / मुहावरे

1. दाँत काटी – अत्यन्त निकटता

2. पाला मारना – जड़ हो जाना
3. खून चढ़ना – अत्यधिक नाराज होना
4. न दूध की न पूत की – निरर्थकता

7.11 सारांश

कथा विषय की दृष्टि से 'गुलकी बन्नो' वर्तमान नारी समस्या से सम्बन्धित है, क्योंकि आज भी इस तरह की घटनाएँ आये दिन समाज में देखने को मिलती है। गुल्की बन्नो मध्यवर्गीय उन समस्त नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो पति द्वारा अपमानित एवम् परित्यक्ता होकर अपने जीवन पर चार–चार आँसू बहाती हैं। इस दृष्टि से कहानी यथार्थ मूलक है। पात्र योजना, भाषा शैली, वातावरण की दृष्टि में यह कहानी सफल है।

'गुलकी बन्नो' मानवीय संवेदना से परिपूर्ण कहानी है। 'गुलकी बन्नो' नारी त्रासदी की करूण कथा है। 'गुल्की बन्नों' में सामाजिक शिष्टाचार तथा रीति–रिवाज के निर्वहन का चित्रण सहज, सरल रूप में हुआ है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार धर्मवीर भारती के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो चुके हैं।
- कहानीकार धर्मवीर भारती के कहानी कला से परिचित हो चुके हैं।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'गुलकी बन्नों' कहानी की समीक्षा कर सकते हैं।
- बेसहारा, गरीब और लाचार स्त्री के त्रासदी को समझ सकते हैं।
- 'गुलकी बन्नों' कहानी के आधार पर बाल मनोंवृत्तियों, सामाजिक शिष्टाचार, मानवीय संवेदना को समझ सकते हैं।

7.12 अपनी प्रगति जाँचिए

1. कहानी के तत्वों के आधार पर भारती जी की कहानी' गुलकी बन्नो' की समीक्षा कीजिए।
2. 'गुलकी बन्नो' भारती जी की एक सफल कहानी है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. 'गुलकी बन्नो' कहानी की भाषा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
4. 'गुलकी बन्नो' नारी की विवशता एवम् लाचारी की कहानी है।' इस कथन की सत्यता प्रमाणित करते हुए इसकी विशषेताओं का उद्घाटन कीजिए।

7.13 नियत कार्य / गतिविधियाँ

1 लेखिका उषा प्रियंवदा की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।

2 कहानी में प्रयुक्त उर्दू शब्दों को छांटकर उनका अर्थ लिखते हुए वाक्यों में उनका प्रयोग कीजिए।

3 कहानी में प्रयुक्त देशज शब्दों को छांटकर अर्थ लिखते हुए एक कोश तैयार कीजिए।

7.14 स्पष्टीकरण के बिन्दु

सातवीं इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

7.15 चर्चा के बिन्दु

सातवीं इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

गदल : रांगेय राघव

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य
8.2 प्रस्तावना
8.3 रांगेय राघव : संक्षिप्त परिचय
8.4 गदल की संक्षेप में तात्विक समीक्षा
8.4.1 कथानक
8.4.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण
8.4.3 भाषा शैली
8.4.4 कथोपकथन
8.4.5 उद्देश्य और संवेदना–
8.5 गूजर जाति में नारी की स्थिति
8.6 गदल एक सशक्त नारी
8.7 गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताएँ
8.8 व्याख्या खण्ड
8.9 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें
8.10 सारांश
8.11 अपनी प्रगति जाँचिए
8.12 नियत कार्य / गतिविधियाँ
8.13 स्पष्टीकरण के बिन्दु
8.14 चर्चा के बिन्दु

8.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की आठवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार रांगेय राघव के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो पाएंगे।
- कहानीकार रांगेय राघव के कहानी कला को समझ पाएंगे।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'गदल' कहानी की समीक्षा कर पाएंगे।
- गूजर जाति में नारी की स्थिति को समझ पाएंगे।
- 'गदल' कहानी के आधार पर गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताओं से परिचित हो पाएंगे।

8.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के कहानियों से सम्बन्धित पंचम खण्ड की आठवीं इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अन्तर्गत कहानीकार रांगेय राघव के जीवन, व्यक्तित्व एवम् कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

गदल' कहानी के माध्यम से रांगेय राघव ने गूजर समाज की स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण किया हैं।

प्रस्तुत इकाई में कथानक, पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण, वातावरण, भाषा शैली, कथोपकथन, उद्देश्य और शीर्षक आदि कहानी के तत्वों के आधार पर 'गदल' कहानी की समीक्षा की गयी है।

'गदल' कहानी के आधार पर गूजर समाज में नारी की स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। साथ ही गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है।

8.3 रांगेय राघव : संक्षिप्त परिचय

रांगये राघव हिन्दी के उन विशिष्ट और बहुमुखी प्रतिभावाले रचनाकारों में से हैं जो बहुत ही कम उम्र लेकर इस संसार में आए, लेकिन जिन्होंने अल्पायु में ही एक साथ उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार, आलोचक, नाटककार, कवि, इतिहासवेत्ता और तथा रिपोतौज लेखक के रूप में स्वयं को प्रतिस्थापित कर दिया, साथ ही अपने रचनात्मक कौशल से हिन्दी की महान सृजनशीलता के दर्शन करा दिए। आगरा में जन्में रांगेय राघव ने हिन्दीतर भाषी होते हुए भी हिन्दी साहित्य के विभिन्न धरातलों पर युगीन सत्य से उपजा महत्वपूर्ण साहित्य उपलब्ध कराया। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर जीवनीपरक उपन्यासों का ढेर लगा दिया। कहानी के पारंपरिक ढाँचे में बदलाव लाते हुए नवीन कथा प्रयोगों द्वारा उसे मौलिक कलेवन में विस्तृत आयाम दिया। रिपोर्ताज लेखन, जीवनचरितात्मक उपन्यास और महायात्रा गाथा की परंपरा डाली। विशिष्ट कथाकार के रूप में उनकी सृजनात्मक संपन्नता प्रेमचंदोत्तर रचनाकारों के लिए बड़ी चुनौती बनी।

इनका मूल नाम तिरूमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य था; लेकिन उन्होंने अपना साहित्यिक नाम 'रांगेय राघव' रखा। इनका जन्म 17 जनवरी, 1923 श्री रंगनाथ वीर राघवाचार्य के घर हुआ था। इनकी माता श्रीमती वन–कम्मा और पत्नी श्रीमती सुलोचना थीं। इनका परिवार मूलरूप से तिरूपति, आंध्रप्रदेश का निवासी था। " वैर " गाँव के सहज, साद ग्रामीण परिवेश में उनके रचनात्मक सहित्य ने अपना आकार गढ़ना शुरू किया। जब उनकी सृजन–शक्ति अपने प्रकाशन का मार्ग ढूंढ रही थी तब देश स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत था। ऐसे वातावरण में उन्होंने

अनुभव किया अपनी मातृभाषा हिन्दी से ही देशवासियों के मन में देश के प्रति निष्ठ और स्वतंत्रता का संकल्प का जगाया जा सकता है। यों तो उनकी सृजन–यात्रा सर्वप्रथम चित्रकला में प्रस्फुटित हुई। सन् 1936–37 के आस–पास जब वह साहित्य की ओर उन्मुक हुई तो उसने सबसे पहले कवित के क्षेत्र में कदम रखा और इसे संयोग कह जाएगा कि उनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति का अंत भी मृत्यु पूर्व लिखी हुई उनकी एक कविता से ही हुआ। उनका साहित्य सृजन भले ही कविता से शुरू हुआ हो, लेकिन उन्हें प्रतिष्ठा मिली एक गद्य लेखक के रूप मे। सन् 1943 में प्रकाशित 'घरौंदा' उपन्यास के जरिए वे प्रगतिशील कथाकार के रूप में चर्चित हुए। 1962 में उन्हें कैंसर रोग से पीड़ित बताया गया था। उसी वर्ष 12 सितंबर में उनका मुंबई (तत्कालीन बंबई) में देहावसान हुआ।

उनका यह विपुल साहित्य उनकी अभूतपूर्व लेखन क्षमता को दर्शाता है। जिसके संदर्भ में कहा जाता रहा है कि 'जितने समय में कोई पुस्तक पढ़ेगा उतने में वे लिख सकते थे वस्तुतः उन्हें कृति की रूपरेखा बनाने में समय लगता था, लिखने में नहीं। 'रांगेय राघव सामान्य जन के ऐसे रचनाकार हैं जो प्रगतिवाद का लेबल चिपकाकर सामान्य जन बन जाते हैं। रांगेय राघव ने वादों के चौखटे से बाहर रहकर सही मायने में प्रगतिशील रवैया अपनाते हुए अपनी रचनाधर्मिता से समाज संपृक्ति का बोध कराया। समाज के अंतरंग भावों से अपने रिश्तों की पहचान करवाई सन् 1942 में वे मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित दिखे थे, मगर उन्हें वादग्रस्तता से चिढ़ थी। उनकी चिंतन प्रक्रिया गत्यात्मक थी उन्होंने प्रगतिशीस लेखक संघ की सदस्यता ग्रहण करने से इनकार कर दिया, क्योंकि उन्हें उसकी शक्ति और समार्थ्य पर भरोसा नहीं था। साहित्य में वे न किसी वाद से बंधे, न विधा से। उन्होंने अपने ऊपर मढ़े जो रहे मार्क्सवाद, प्रगतिवाद और यथार्थवाद का विरोध किया। उनका कहना सही था कि उन्होंने न तो प्रयोगवाद का आश्रय लिया और न प्रगतिवाद के चोले में अपने को यांत्रिक बनाया। उन्होंने केवल इतिहास को, जीवन को, मनुष्य की पीड़ा को और मनुष्य की उस चेतना को, जो अंधकार से जूझने की शक्ति रखती है, उसे ही सत्य माना।

रांगेय राघव ने जीवन की जटिलतर होती जा रही संरचना में खोए हुए मनुष्य की, मनुष्यत्व की पुनर्रचना का प्रयत्न किया, क्योंकि मनुष्यत्व के छीजने की व्यथा उन्हें बराबर सालती थी। उनकी रचनायें समाज को बदलने का दावा नहीं करतीं, लेकिन बदलाव की आकांक्षा जरूर हैं। इसलिए उनकी रचनाएँ अन्य रचनाकारों की तरह व्यंग्य या प्रहारों में खत्म नहीं होतीं, न ही दार्शनिक टिप्पणियों में समाप्त होती हैं, बल्कि वे मानवीय वस्तु के निर्माण की ओर उद्यत होती हैं और इस मानवीय वस्तु का निर्माण उनके यहाँ परिस्थिति और ऐतिहासिक चेतना के द्वंद से होता है। उन्होंने लोक–मंगल से जुड़कर युगीन सत्य को भेदकर मानवीयता को खोजने का प्रयत्न किया तथा मानवतावाद को अवरोधक बनी हर शक्ति को परास्त करने का भरसक प्रयत्न भी। कुछ प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों के उत्तर रांगेय राघव ने अपनी कृतियों के माध्यम से दिए। इसे हिन्दी साहित्य में उनकी मौलिक देन के रूप में माना गया। ये मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित उपन्यासकार थे। 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते' के उत्तर में 'सीधा–सादा रास्ता, आनंदमठ' के उत्तर में उन्होंने 'चीवर' लिखा। प्रेमचंदोत्तर कथाकारों की कतार में अपने रचनात्मक वैशिष्ट्य, सृजन विविधता और विपुलता के कारण वे हमेशा स्मरणीय रहेंगे।

रांगेय राघव की कृतियां

उपन्यास

- घरौदा विषाद मठ मुरदों का टीला सीधा साधा रास्ता हुजूर चीरी प्रतिदान अँधेरे के जुगनू काका अबाल पराया देवकी का बेटा यशोधरा जीत गई लोई का ताना
- रत्ना की बात भारती का सपूत आँधी की नवों अँधेरे की भूख बोलते खंडहर कब तक पुकारूँ पक्षी और आकाश बौने और घाय फूल लखिमा की आँखें राई और पर्वत

- बंदूक और बीन राह न रूकी जब आवेगी काली घटा धूनी का धुआँ छोटी सी बात
- पथ का पाप मेरी भव बाधा धरती मेरा घर आग की प्यास कल्पना प्रोफेसर.
- दायरे पतझर आखरी आवाज

कहानी संग्रह

साम्राज्य का वैभव देवदासी समुद्र के फेन अधूरी मूरत जीवन के दाने अंगारे न बुझे ऐयाश मुरदे इंसान पैदा हुआ पाँच गधे एक छोड़ एक

रिपोर्ताज तूफानों के बीच

- काव्य अजेय खंडहर पिघलते पत्थर मेधावी राह के दीपक पांचाली रूपछाया नाटक स्वर्णभूमि की यात्रा रामानुज विरूढ़क

आलोचना

- भारतीय पुनर्जागरण की भमिका
- भारतीय संत परंपरा और समाज
- संगम और संघर्ष
- प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास
- प्रगतिशील साहित्य के मानदंड
- समीक्षा और आदर्श
- काव्य कला और शास्त्र
- महाकाव्य विवेचन
- तुलसी का कला शिल्प
- आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और श्रृंगार
- आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली
- गोरखनाथ और उनका युग

8.4 गदल की संक्षेप में तात्विक समीक्षा

कहानी तत्वों के आधार पर गदल की समीक्षा प्रस्तुत है।

8.4.1 कथानक

रांगेय राघव की कहानी 'गदल' चरित्र प्रधान कथानक है। इस कथा का आरम्भ निहाल और उसकी माँ गदल की चीख पुकार से होता है। डोड़ी बीच में आकर बचाव करता है। गदल गुन्ना की पत्नी थी और डोड़ी उसका देवर। गदल के दो पुत्र निहाल और नारायण। डोड़ी ने शादी तो की थी किन्तु उसका कोई पुत्र जीवित नहीं रहा और न ही उसकी पत्नी ने ज्यादा दिनों तक जीवन जिया। डोड़ी ने दूसरा विवाह नहीं किया वह अपने भाई और भाभी के पास ही रहता रहा। किन्तु गुन्ना की मृत्यु के बाद गदल को जब डोड़ी का आश्रय न मिला तो उसने गूजर समाज के लौहरों की बिरादरी में मौनी को अपनाकर उसके घर जा बैठी।

एक दिन भी न बीता था कि गदल के बेटे उसे अपने घर ले आए। वाद विवाद के बाद गदल और डोड़ी आपस में बातचीत कर रहे थे। गदल को इस बात का अफसोस था कि पति गुन्ना की मौत के बाद इस घर में उसका कौन है? वह किसके लिये यहाँ रहे? गदल मन ही मन यह चाहती थी कि डोड़ी उसे अपने पास रख ले परन्तु डोड़ी ने इस डर से गदल को अपने पास नहीं रखा कि कुनबा और बेटे यह सोचेंगे कि माँ और चाचा का पहले से–ही सम्बन्ध रहा होगा इसीलिये तो चाचा ने दूसरा विवाह नहीं किया और अब पिता की मृत्यु के बाद दोनों एक साथ रहने लगे। इन सब बातों को सोचकर डोड़ी चुप रहा और गदल को दब कर रहना नही आता था इसीलिये उसने अपने बेटे बहु के साथ रहना पंसद नहीं किया। उसका मन था कि डोंडी उसे अपने साथ रख ले लेकिन जब डोंडी ने कोई प्रस्ताव नही रखा तो उसने प्रतिक्रिया वश वह लोहारे विरादरी के मौनी के यहाँ आकर डेरा जमा बैठी।

मौनी की भाभी दुल्लो जबान से कम नहीं थी। दुल्लो और गदल के बीच वाक युद्ध हुआ करते थे। परन्तु गदल अपनी मर्जी से आई थी और अपनी मर्जी से रह रही थी। गदल हमेशा स्वाभिमान से जीना पंसद करती है। एक बार जब नारायन उसके घर आकर दण्ड भरने की बात करता है तो उसे क्रोध आ जाता है और वह अपने गहनें उतारकर उसकी ओर फेंक देती है। इस प्रकार वह अपने और अपनी बिरादरी के सम्मान की रक्षा करती है। परन्तु गहने देने की घटना को दुल्लो नया मोड़ देकर गदल की खिंचाई करती है।

डोड़ी बूढ़ा हो चला था। वह अपने भतीजों के साथ ही रहता था। जब उसे पता चलता है कि नारायन दण्ड लेने गदल के पास चला गया है तो वह नाराज होकर निहाल को समझाता है कि वह (गदल) रूठकर ही यहाँ से गई है हमें इस तरह किसी विवाद में नही पड़ना चाहिये। वह समझा बुझाकर अपने भतीजों को शांत कर देता है और घर के बाहर ही सो जाता है। उसका शरीर थोड़ा तप रहा था फिर भी वह पड़ोस में ढोलक सुनने गया और वापिस आकर स्मृतियों में डूबता उतराता सो गया।

मौनी और गिर्राज की बातों से गदल को पता चला कि डोड़ी की मृत्यु हो गई है तब गदल तड़प उठती है। उसके मन को लगा कि जैसे उसका कोई अपना चल बसा हो। डोड़ी गदल का देवर था अतः वह मौनी से कहती है कि वह डोड़ी को देखने जायेगी। इस पर मौनी ने उसे घर में बंद कर दिया और जाने से रोकने लगा। परन्तु, गदल कहाँ मानने वाली थी। उसने छप्पर में सुराख कर अपने भागने का रास्ता बना लिया और डोड़ी के घर जा पहुंची।

मौनी को जब पता चला कि गदल डोड़ी के यहाँ पहुँच गयी है तो वह तड़प उठा। लेकिन बदनामी औरटीका–टिप्पणी के भय से वह कुछ कर न पाया। गिर्राज के द्वारा मौनी ने सुना था कि डोड़ी का मृत्युभोज गदल ने शाही अंदाज में करवाया था। बिरादरी का कोई भी आदमी भूखा नहीं रहा। गदल की शान बढ़ गई थी। मौनी के मन में एक फांस गड़ गई थी इसीलिये उससे गदल की शिकायत कर मृत्युभोज में दरोगा के बुलवाया और विवाद खड़ा करवाया।

गूजर समाज में यह नियम है कि भोज में 25 आदमियों से अधिक को भोज देने पर कानूनी कार्यवाही की जायेगी। गदल ने मृत्यु भोज में पूरी बिरादरी से बुलाया था और स्थानीय दरोगा से मेल मुलाकात भी कर ली थी परन्तु मौनी ने बड़े दरोगा से शिकायत कर गदल को नीचा दिखाने की ठान ली थी तब विवाद खड़ा हुआ। दीवानजी ने आकर समझाने की कोशिश अवश्य की थी और बड़े दरोगा के किसी भी समय आ धमकने की शंका भी जता दी थी परन्तु गदल ने ठान लिया था कि वह पूरी बिरादरी को भोजन कराकर ही दम लेगी और हुआ भी वही। आखिरी पंगत ने जब तक भोजन नहीं किया तब तक पुलिस वालों से मोर्चा लेने के लिये उसने अपने घर की छत से गोलियां चलवाईं और जब समी ने भोजन कर लिया तो उन्हें पीछे के दरवाजे से विदाकर अपने बहू–बेटों को भी पीछे के दरवाजे से सुरक्षित निकाल कर खुद छत पर मोर्चा सम्भाल लिया। किन्तु बड़ी संख्या में पुलिस बल का वह सामना नहीं कर सकी और पुलिस की गोली का शिकार हो गई।

8.4.2 पात्र–योजना एवम् उनके चरित्र–चित्रण

गदल कहानी में कहानीकार रांगेय राघव ने पात्रों की दृष्टि से इतनी अधिक संख्या में पात्रों को संयोजन किया है कि पाठक को सभी पात्रों के नाम याद रखना दुष्कर प्रतीत होता है। किन्तु इस तथ्य से यह नहीं कहा जा सकता कि पात्र संयोजन की दृष्टि से कहानी कमजोर है या शिथिल है। कहानीकार ने कथ्य और पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों को विवेचित करने के लिए इन पात्रों का संयोजन किया है। इस दृष्टि से देंखे तो कहानी की मुख्य पात्र गदल के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए रांगेय राघव ने एक लंबे परिचय विवेचन से सभी पात्रों का उल्लेख कर दिया है।

''गुन्ना मरा, तो पचपन बरस का था। गदल विधवा हो गयी। गदल का बड़ा बेटा निहाल तीस बरस के पास पहुँच रहा था। उसकी बहू दूल्लो का बड़ा बेटा सात का, दूसरा चार का और तीसरी छोरी थी जो उसकी गोद में थी। निहाल से छोटी तर–ऊपर की दो बहिनें चम्पा और चमेली, जिनका क्रमशः झाज और बिस्वारा गांओं में ब्याह हुआ था। आज उनकी गोदियों से लाल उतरकर धूल में घुटुरुवन चलने लगे थे। अंतिम पुत्र नारायन अब बाइस का था, जिसकी बहू दूसरे बच्चे की माँ होने वाली थी। ऐसी गदल, इतना बड़ा परिवार छोडकर चली गई और बत्तीस साल के एक लौहारे गुजर के यहाँ जा बैठी थी।''

इस वर्णन द्वारा रांगेय राघव ने गदल के पूरे परिवार का परिचय दे दिया है। जिस कुशलता के साथ इस अंश का लेखन किया गया है वह प्रशंसनीय है। इतने अधिक पात्रों का परिचय और वर्णन हर किसी कहानीकार के बस की बात नहीं होती। कहानी के अन्य पात्रों में गुन्ना का छोटा भाई डोंडी है। डोंडी की स्त्री भी थी, बच्चे की हुए परन्तु कुछ समय बाद न तो डोंडी की स्त्री जीवित रही और न ही उसके कोई संतान जीवित रही। गुन्ना के बहुत समझाने के बाद भी डोंडी ने दूसरा विवाह नहीं किया, वह अपने भाई और भाभी गदल के ही साथ रहता रहा।

पति की मृत्यु के बाद गदल मौनी गूजर के साथ रहने लगी। मौनी का एक बड़ा भाई था उसकी पत्नी दुल्लों भी इनके साथ ही रहती थी। इन सबके अलावा इस कहानी में चिम्मन कुबेड़ा, गिर्राज, पटेल, दीवान, दरोगा, सिपाही आदि चरित्र प्रसंगवश उपस्थित हुए हैं जिनका पृथक से कोइ चारित्रिक अस्तित्व नहीं है। गदल कहानी के प्रमुख पात्र के रूप में स्वयं गदल, डोंडी ओर मौनी ही प्रमुख पात्र रूप में उभरकर सामने आये हैं। गदल इस कहानी की प्रमुख चरित्र है। संपूर्ण कथा इसी के इर्द गिर्द चक्कर लगाती रहती है। गदल एक सशक्त, दृढ़ और भावुक हृदय की स्त्री है। वह अपने कर्तव्य के प्रति सदैव सजग रहती है तो अपने अधिकारों की भी छिनना जानती है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''अब मेरा यहाँ कौन है! मेरा मरद तो मर गया। जीते जी मैने उसकी चाकरी की, उसके नाते, उसके सब अपनों की चाकरी बजायी। पर जब मालिक ही न रहा तो, काहे को हड़कंप उठाऊं ! यह लड़के, यह बहुएं ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी।''

गदल यह चाहती थी कि पति की मृत्यु के बाद डोंडी उसे अपने पास पत्नी बनाकर रख लेना। परन्तु जब डोंडी ने ऐसा नहीं किया तो वह दुःखी होकर और बेटे–बहुओं के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से दुःखी होकर मौनी के घर जा बैठी। वह स्वयं कहती है कि– ''भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया तब तू मुझे रखकर घर नही बसा सकता था। तूने मुझे पेट के लिये पराई ड्योढ़ी लँघवाई–चूल्हा मैं तब तक फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नही हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी।''

गदल की स्पष्टवादिता और दबंग व्यक्तित्व उसकी पृथक पहचान बनाता है। वह अपने ह्रदय की सुनती है और फिर जैसा उसे उचित लगता है वैसा करती है। जब उसे डोंडी की मृत्यु का सामाचार मिलता है तो वह उसके घर जाना चाहती है किन्तु मौनी उसे बिल्कुल मना कर देता है। तब गदल का अंतर्मन तड़प उठता है। वह आक्रोशित होकर कहती है कि– ''अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहुंगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में तो जीभ कटवा लेती तेरी।''

यह रूप डोंडी की मृत्यु पर गदल जैसी स्त्री का ही हो सकता है। वह डोंडी के मृत्यु भोज को वृहत रूप में आयोजित करती है। पूरी बिरादरी को भोजन करवाती है। किन्तु कानून आड़े आता है कि 25 लोगों से अधिक एक जगह पर एकत्रित होकर भोज नहीं कर सकते, तब भी वह पुलिस का सामना करती है। बिरादरी को सम्मान पूर्वक घर से विदा करती है और बहू–बेटों को सुरक्षित घर से बाहर कर स्वयं पुलिस की गोली का शिकार हो जाती है।

डोंडी और मौनी गदल के ही इर्द गिर्द अपने व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। डोंडी एक ऐसा चरित्र है जो समाज, परिवार आदि की परवाह कर दूसरा विवाह नहीं करता और अपना जीवन व्यतीत कर देता है। भाई की मृत्यु के बाद डोंडी ने गदल को इसलियें नही अपनाया कि समाज और घर के बच्चें क्या कहेंगे ? परिवार की बदनामी होगी। इसीलिये उसने गदल को घर छोड़कर जाने दिया। वह कहता है कि– ''गदल, मैं बुड्ढा हूँ। डरता था, जग हँसेगा। बेटे सोचेंगे, शायद काका का अम्मा से पहले ही से नाता था, तभी तो चाचा ने दूसरा ब्याह नहीं किया। बिरादरी की भी बदनामी होती न?

वहीं तीसरा चरित्र मौनी लौहरे बिरादरी का अय्यास गूजर है। वह गदल को अपने घर पनाह देता है, उस पर हुकूम गांठता है परन्तु गदल स्वच्छंद प्रकृति की स्त्री है इसलिए वह उस पर लगाम नहीं लगा पाता। डोंडी की मृत्यु के बाद मौनी के न चाहते हुए भी गदल छप्पर तोड़कर डोंडी के घर चली गई, जब उसे पता चला तो वह भीतर ही भीतर मन मसोस कर रह गया–''मौनी रह रह कर तड़पता था हिम्मत नहीं होती थी कि जाकर सीधे गाँव में हल्ला करे और लट्ठ के बल पर गदल को उठा लाये। मन करता, ससुरी की टाँगे तोड़ दे। दुल्लों ने व्यंग्य भी किया कि उसकी लुगाई भागकर नाक कटा गयी है, खून का–सा घूँट पीकर रह गया। गूजरों ने जब सुना तो, कहा– अरे बुढ़िया के लिए खून खराबा करायेगा?''

इस प्रकार हम देखते है कि गदल कहानी में पात्रों की संख्या अधिक होने के बाद भी कहानीकार ने जिस पात्र को केंद्र में रखकर कथ्य बुना है, उसके चरित्र के साथ पूर्ण न्याय किया है। पात्रों की संख्या कथ्य संयोजन के कारण अटपटी नहीं लगती। जिन पात्रों को विस्तार मिलना चाहिये उनके साथ कहानीकार ने पूरा न्याय किया है। इसी कारण यह कहानी कालजयी बन पड़ी है।

8.4.3 भाषा शैली

'गदल' कहानी की भाषा शैली गुजर समाज की आंचलिक बोली के प्रभाव से ओतप्रोत है। जिससे यह कहानी आंचलिकता का पुट लिये हुए है। लेकिन उसके बाद भी यह कथा सहज रूप से बोधगम्य है। कहानीकार ने कथ्य को वास्तविकता के धरातल से जोड़ने के लिये आचंलिक बोली में पात्रों की संवाद अदायगी करवाई है। जिसमें समाज की बोली का परचिय प्राप्त होता है। अपनी बात को प्रभावी ढ़ंग से व्यक्त करने के लिये कहावतों मुहावरों का सहज प्रयोग हुआ है। गदल और डोंडी के वार्तालाप का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

" तू तो बस यही सोचा करता होगा कि गदल गयी, अब पहले – सा रोटियों का आराम नहीं रहा। बहुएं नहीं करेंगी तेरी चाकरी, देवर! तूने भाई से और मुझसे निभायी, तो मैंने भी तुझे अपना ही समझा। बोल झूठ कहती हूँ?

– नहीं, गदल। मैनें कब कहाँ

– बस यही बात है देवर! अब मेरा यहाँ कौन है? मेरा मरद तो मर गया। जीते जी मैंनें उसकी चाकरी की, उसके नाते उसके सब अपनों की चाकरी बजायी। पर जब मालिक ही न रहा तो, काहे को हड़कम्प उठाउँ! यह लड़के, यह बहुएँ ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी!

– पर क्या यह सब तेरी औलाद नहीं, बावरी। बिल्ली तक अपने जायों के लिये सात घर उलटभेर करती है, फिर तू तो मानुस है। तेरी माया–ममता कहाँ चली गयी?

– देवर, तेरी कहाँ चली गयी थी, जो तूने ब्याह न किया!

– मुझे तेरा सहारा था, गदल!"

इसी प्रकार सहज सरल रूप में शब्दों का प्रयोग अत्यन्त व्यावहारिक और प्रभावी ढ़ंग से विवेचित हुआ है। कहावतों–मुहावरों के प्रयोग से अर्थों की अर्थवत्ता और अधिक व्यापक बन गई है। मौनी की भाभी दुल्लो का कथन इस दृष्टि से दृष्टव्य है–

"देवरानी ने गहने दे दिये। घुटना आखिर पेट को ही मुड़ा। ऐसे चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डौर पर डंडा–थूआ तक लग जायेंगे, पक्का चबूतरा घर के आगे बगबगायेगा। समझा देती हूँ। तुम भोले–भाले ठहरे। तिरिया चरित्तर तुम क्या जानो। धन्धा है यह भी। अब कहेगी, फिर बनवा मुझे।"

इसी प्रकार पारिवारिक सम्बन्धों की सच्चाई का बयान करते हुए ड़ोंडी और निहाल आपस में बातचीत कर रहे हैं। तब सहज–सरल रूप में प्रयुक्त शब्दों द्वारा निर्मित वाक्यों ने प्रभावी ढ़ंग से इस तथ्य को उजागर किया है–

"पर बेटा, तू न कह, जग तो उसे तेरी माँ ही कहेगा। जब तक मरद जीता है, लोग बैयर के मरद की बहू कहकर पुकारते है। जब मरद मर जाता है, तो बोल उसे बेटे की अम्मा कहकर पकारते हैं। कोई नया नेम थोड़ा ही है।"

डोंडी की मृत्यु का समाचार सुनने के बाद गदल में दुःख और अवसाद का ठिकाना नहीं होता है। वह तड़प जाती है। उसके मन में आता है कि वह तुरंत डोंडी के घर जाये और उसके बेटों के दुःख में शामिल हो। इसी विचार से वह अपने पति मौनी से जाने की इच्छा व्यक्त करती है परन्तु जब मौनी मना कर देता है तो वह उबल पड़ती है–

" तू रोकेगा? अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहुंगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में तो जीभ कटवा लेती तेरी।"

इसी प्रकार जब गदल डोंडी की मृत्यु पर मौनी के घर से भाग जाती है तो मौनी की भाभी दुल्लो अपने देवर पर व्यंगात्मक ढंग से कटाक्ष करती है। कहानी में इस तरह के भाषयी प्रयोग कई जगह दृष्टिगोचर होते है। दुल्लो का कथन दृष्टव्य है–

"दुल्लो ने व्यंग्य भी किया कि उसकी लुगाई भागकर नाक कटा गयी है, खून कां–सा घूँट पीकर रह गया।"

"गूजरों ने जब सुना, तो कहा – अरे बुढ़िया के लिये खून–खराबी करायेगा? और अभी तेरा उसने खरच ही क्या कराया है। दो जून रोटी खा गयी है, तो तुझे भी तो टिक्कड़ खिलाकर ही गयी है?"

गदल और पटेल के मध्य होने वाले संवाद मे भाषा की कसावट सहज दृष्टव्य है– "उमर देखती कि इज्जत, यह कहो! कि मेरी देवर से रार थी, खत्म-हो गयी। बेटा है, मैने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझ पर दावा करो। पंचायत में जबाव दूँगी। लेकिन बेटों ने बिरादरी के मुँह पर थूका, तब तुम सब कहाँ थे।" इस कथन मे निहाल जब अपनी माँ को खेत से उठा लाता है और उसके साथ लड़ाई–झगड़ा करता है तब का जिक्र गदल ने पटेल से किया है।

मृत्यु भोज पर पुलिस बल के साथ चली कसमकस में गदल को गोली लग जाती है, परन्तु उससे पहले वह अपनी इच्छानुसार पूरी बिरादरी को भोज करवाती है फिर सभी मेहमानों को सुरक्षित घर से बिदा करती है उसके बाद अपने बहू–बेटों को सुरक्षित घर से बचा कर निकलवा देती है, अंत में पुलिस की गोली का शिकार हो अपने प्राण त्याग देती है तब कहानीकार की भाषायी व्याख्या दर्शनीय है–

"और सिर लुढ़क गया। उसके होठों पर मुस्कुराहट ऐसी ही दिखाई दे रही थी, जैसे अब पुराने अंधकार मे जलाकर लायी हुई.........पहले की बुझी लालटेन।"

इस प्रकार कहानी 'गदल' की भाषा शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक और पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में पुर्णतया सक्षम है। कहानीकार द्वारा प्रयुक्त आंचलिक शब्दों का प्रयोग हमें कहानी का सामिप्य प्रदान करता है, तो कहावतों–मुहावरों का प्रयोग नये आयाम स्थापित करता है। भाषाई अभिव्यक्ति अत्यन्त सशक्त और प्रभावशाली है।

8.4.4 कथोपकथन

रांगेय राघव रचित प्रसिद्ध कहानी 'गदल' में विचारों के आदान–प्रदान के लिये प्रयुक्त कथन अत्यन्त छोटे एवं सुगठित हैं। इसीलिये पाठक के लिये अधिक बोधगम्य तथा सहज संवेदनीय हैं। कहानीकार ने कथानक को आगे बढ़ाने के लिये दिये गये संकेत भी संक्षिप्त एवं परिपक्वता के साथ निर्मित किये हैं। इस दृष्टि से देखें तो कहानी का आरम्भ ही कुतूहल भरा है–

" बाहर शोर–गुल मचा। डोंडी ने पुकारा– कौन है?

कोई उत्तर नहीं मिला। आवाज आयी– हत्यारिन! तुझे कतल कर दूँगा!

स्त्री का स्वर आया– करके तो देख! तेरे कुनबे को डायन बनके न खा गयी, निपूते!

डोंडी बैठा न रह सका। बाहर आया।

क्या करता है, क्या करता है, निहाल ? डोडी बढ़कर चिल्लाया–आखिर तेरी मैया है।

मैया है!–कहकर निहाल हट गया।"

पारिवारिक परिचय देने के लिये कहानीकार द्वारा प्रयुक्त भाषा और अभिव्यक्ति रचना अत्यन्त प्रभावशाली है। छोटे–छोटे वाक्यों में एक वृहत् परिवार का परिचय अत्यन्त समीचीन और सहज बन पड़ा है। गदल का परिवार काफी बड़ा है, उनका परिचय और आपसी सम्बन्धों की विवेचना करते हुय कहानीकार लिखते हैं – गुन्ना मरा, तो पचपन बरस का था। गदल विधवा हो गयी। गदल का बड़ा बेटा निहाल तीस बरस के पास पहुँच रहा था।

उसकी बहू दूल्लो का बड़ा बेटा सात का, दूसरा चार का और तीसरी छोरी थी जो उसकी गोद में थी। निहाल से छोटी तर–ऊपर की दो बहिनें चम्पा और चमेली, जिनका क्रमशः झाज और बिस्वारा गांओं में ब्याह हुआ था। आज उनकी गोदियों से लाल उतरकर धूल में घुटुरूवन चलने लगे थे। अंतिम पुत्र नारायन अब बाइस का था, जिसकी बहू दूसरे बच्चे की माँ होने वाली थी। ऐसी गदल, इतना बड़ा परिवार छोडकर चली गई और बत्तीस साल के एक लौहारे गुजर के यहाँ जा बैठी थी।''

अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिये पात्रों ने छोटे–छोटे कथनों का उपयोग किया है जो अत्यन्त समीचीन है। जिससे पाठक भी बोझिल नहीं होता और एक बैठकी में कहानी पढ़ जाता है। परिवार छोड़कर मौनी के पास चले जाने के प्रसंग पर अपना पक्ष रखते हुए गदल डोंडी से कहती है कि ''भैया तेरा मरा, क़ारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया तब तू मुझे रखकर घर नही बसा सकता था। तूने मुझे पेट के लिये पराई ड्योढ़ी लँघवाई–चूल्हा मैं तब तक फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नही हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी। समझा, देवर! तूने तो नहीं कहा तब। अब कुनबे ही नाक पर चोट पड़ी, तब सोंचा, तब न सोंचा, तब तेरी गदल को बहुओं ने आँखें तरेर कर देखा। अरे, कौन किसी की परवाह करता है।'' इस संवाद में भी कुतूहल है, जिज्ञासा का भाव है, इसीलिये थोड़े से लम्बे कथन भी बोझिल नहीं बल्कि आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं।

कहानी में प्रयुक्त छोटे–छोटे संवाद विचारों के आदान–प्रदान में सहायक रहे हैं। कहानीकार से छोटे–छोटे संवादों की रचना कर कहानी को आगे बढ़ाया है। शब्दों का सहीं चयन और प्रयोग संवादों का प्राणतत्व कहा जा सकता है। गदल कहानी में ऐसे प्रयोग बहुतायत हुए हैं। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है–

'' –मौनी उत्तर न दे सका। वह बाहर चला गया।
–दुपहर हो गई थी। दुल्लों बैठी चरखा कात रही थी।
–नारायण ने आकर आवाज दी–कोई है?
–दुल्लों ने घूँघट काढ़ लिया। पूछा–कौन हो?
–नारायण ने खून का घूँट पीकर कहा –गदल का बेटा हूँ।
–दुल्लो घूँघट में हँसी। पूछा– छोटे हो कि बड़े
–छोटा
– और कितने है?
– कित्ते भी हों। तुझे क्या? गदल ने निकलकर कहाँ
– अरे आ गई!– कहकर दुल्लों भीतर भागी।
– आने दो आज उसे। तुझे बता दूंगी, जिठानी !—— गदल ने सिर हिलाकर कहाँ
– अम्मा! ——नारायण ने कहा– यह तेरी जिठानी है?
– क्यों आया है तू, यह बता! गदल झल्लाई।
– दण्ड धरवाने आया हूँ अम्मा! कहकर नारायण आगे बढ़ने को बढ़ा।
– वही रह? गदल ने कहाँ

इस प्रकार जहाँ छोटे–छोटे संवादों ने अपना प्रभाव छोड़ा है वहीं व्यंग्यात्मक संवादों की बहुलता अपना प्रभाव व्यक्त करने में पीछे नहीं रहे हैं। पारिवारिक सम्बन्धों में एक–दूसरे पर कटाक्ष करने के लिए देवरानी–जेठानी के संवाद व्यंग का पुट लिये हुए हैं। गदल अपनी जेठानी पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि–''वाह, जिठानी! पुराने मरद का मोल नये मरद से तेरे घर को बैयर ही चुकयाती होंगी। गदल तो मालकिन बनकर रहती है, समझी! बाँदी

बनकर नहीं। चाकरी करूँगी तो अपने मरद की, नही तो बिंधना मेरे ढेंगे पर। समझी! तू बीच में बोलने वाली कौन।''

कहानी के भावनात्मक अंशो में संवादो की परिपक्वता देखते ही बनती है। गदल को जब इस बात का पता चलता है कि डोंडी का देहावसान हो गया है तो वह तड़प उठती है। वह अपने वर्तमान पति मौनी से वहां जाने की बात कहती है। तो वह गदल को वहां जाने से रोक देता है। तब उसका क्रोध अपने सातवें आसमान पर पहुँच जाता है। वह मौनी को जवाब देती हुई कहती है कि– '' तू रोकेगा? अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहुंगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में तो जीभ कटवा लेती तेरी।''

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि गदल कहानी में कहानीकार ने संवादों के लेखन में सफलता प्राप्त की है। जहाँ एक ओर छोटे छोटे संवाद प्रभावी रहे हैं वहीं भावाविव्यक्ति के लिये प्रयुक्त थोड़े लंबे संवाद गठीले शब्द संयोजन के कारण अपनी पृथक पहचान रखने में सफल हुये हैं। वहीं कहावतों और मुहावरों का प्रयोग कहानी को नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। देशज शब्दों का संवादों में प्रयोग आंचलिकता की पहचान कायम करता है। कहानीकार ने कथा संयोजन में संवादों की कुशलता पर विजय प्राप्त की है यही कारण है कि गदल अत्यन्त प्रभावी कहानी बन पड़ी है।

6.4.5 उद्देश्य और संवेदना–

गदल कहानी में कहानीकार रांगेय राघव ने गूजर समाज के एक परिवार की स्त्री को प्रमुख चरित्र के रूप में स्थापित किया है। कहानी के अन्य पात्र इसी प्रमुख पात्र गदल के इर्द–गिर्द चक्कर लगाते से नजर आते हैं। रांगेय राघव 'गदल' कहानी के माध्यम से गूजर समाज में स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। यह कहानी स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। राष्ट्र में इस जाति के लोग बड़ी संख्या में गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में फैले हुए हैं।

इस कहानी में गदल स्वाभिमानी, आत्मनिर्भर, परिवार के प्रति ईमानदार, स्पष्टवादी स्त्री के रूप में चित्रित की गई है। गुन्ना की मृत्यु के बाद जब उसके भाई डोंडी ने गदल को आश्रय के लिये प्रस्तावित नहीं किया और गदल के बहू–बेटों ने उसे यथोचित सम्मान नहीं दिया तो वह अपना घर छोड़कर मौनी के यहाँ जा बैठी। इसके पीछे भी उसका स्वाभिमान व्यक्त होता है। वह कहती है कि– ''अब मेरा यहाँ कौन है! मेरा मरद तो मर गया। जीते जी मैने उसकी चाकरी की, उसके नाते, उसके सब अपनों की चाकरी बजायी। पर जब मालिक ही न रहा तो, काहे को हड़कंप उठाऊं ! यह लड़के, यह बहुएं ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी।''

इसी प्रकार वह डोंडी से कहती है कि जब मेरा पति मर गया तब भी तुमने मुझे आश्रय नहीं दिया, मै अपनों के ही बीच रहना पंसद करूंगी, किसी की याचना पर जीवन बिताना मेरी फितरत में नहीं है। वह कहती है कि– ''भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया तब तू मुझे रखकर घर नही बसा सकता था। तूने मुझे पेट के लिये पराई ड्योढ़ी लँघवाई–चूल्हा मैं तब तक फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नही हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी।''

इस प्रकार हम देखते है कि कहानीकार ने गदल के चरित्र के माध्यम से एक ऐसी स्त्री की कहानी गढ़ी है जो कई गुणों को धारण करने के बाद भी सामाजिक परिस्थितियों के कारण सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर पाती। गूजर समाज की मान्यता और इस समाज में नारी की दयनीय स्थिति का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है। पारिवारिक चरित्र का अभाव और छोटी–छोटी बातों को लेकर घर में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना सहज बात रही है। देवरानी और जेठानी के मध्य संघर्ष की स्थिति का चित्रण कहानीकार ने अत्यन्त स्वाभाविक

रूप से किया है।

'गदल' कहानी में गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताओं को भी विवेचित किया गया है। आर्थिक आध ाार पर एक ही बिरादरी के अलग–अलग हिस्से दिखाई देते हैं जो आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग थे वे लौहरे के नाम से जाने जाते थे और जो आर्थिक विपन्नता में जीवन–यापन कर रहे थे। उन्हें खारी बिरादरी का कहा जाता है। इस प्रकार कहानीकार ने आर्थिक विषमता के कारण सामाजिक विवाद को भी विवेचित किया है। यह विवाद सामाजिक सौहार्द और सहिष्णुता के लिय घातक होता है।

कहानीकार ने 'गदल' कहानी के माध्यम से समाज में व्याप्त परम्पराओं पर भी कुठाराघात किया है। गुजर समाज में एक परिवार छोड़कर दूसरे परिवार से जुड़ जाने पर न्याय का कार्य पंचायत करती है। गदल इसका भी विरोध करती दिखाई पड़ती है वह पटेल से कहती है कि मैं पंचायत के सम्मुख जवाब दूंगी। वह कहती है कि मेरे बेटों ने वापिस घर आने पर मौनी के घर आकर दण्ड की माँग की यह कहाँ का न्याय है। इसी प्रकार मृत्यु भोज पर दरोगा द्वारा आपत्ति करने पर पर विवाद की स्थिति निर्मित हो जाती है और अंत में गदल को अपनी जान गवानी पड़ती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक परम्पराएं जहाँ हमें विवाद और संघर्ष की ओर ले जाती है वहीं भावनाओं में बहने के कारण जान भी चली जाती है।

इस प्रकार 'गदल' कहानी एक स्त्री संघर्ष को विवेचित करने वाली समर्थ कथा बनकर उभरती है। कहानीकार रांगेय राघव ने गूजर समाज की स्त्री के माध्यम से भारतीय ग्रामीण नारी को चित्रित किया है। उसकी भावनाएं परिवार और समाज में कोई अपना अस्तित्व नहीं रखती। स्त्री केवल घर में चूल्हा चक्की करने वाली स्त्री होती है जो सिर्फ भोग्या का कार्य करती है। लेकिन जब वह अपना व्यक्तित्व स्वयं निर्मित करना चाहती है और अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष कर अपने ढंग से जीने का रास्ता तलाशती है तो गदल का रूप ले लेती है। इस तरह कहानीकार इस कथा के माध्यम से अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्ण सफल कहा जा सफल है।

8.5 गूजर जाति में नारी की स्थिति

रांगेय राघव द्वारा लिखित कहानी 'गदल' में गूजर समाज में नारी की स्थिति का बड़ा सजीव तथा मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। कहानीकार ने गदल के माध्यम से नारी चरित्र को विश्लेषित किया है। वास्तव में गदल वह स्त्री है जो संपूर्ण ग्रामीण परिवेश की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। गूजर समाज अपनी शक्ति के बल पर अपना जीवकोपार्जन करते हैं। परन्तु वे अपने परिवार में स्त्री को खाना बनाकर खिलाने तथा भोग्या के रूप में मानते है। जिसकी वजह से इस समाज की स्त्रियाँ अपनी स्वेच्छा से अपना अस्तित्व स्थापित नहीं कर पाती है। किन्तु गदल के चरित्र में इसके साथ ही जिन तत्वों के दर्शन कहानीकार ने कराये हैं वे विलक्षण और प्रशंसनीय है। परन्तु इसके साथ ही स्त्री समुदाय का जो उपेक्षित रूप विश्लेषित हुआ है वह अत्यन्त दयनीय और मर्मस्पर्शी है।

कहानी का आरम्भ ही गदल पर होने वाले अत्याचार से प्रारम्भ होता है। जो स्त्री समुदाय की स्थिति को विवेचित करने में सक्षम है। जब पुत्र ही माता पर टूट पड़े और उसे जान से मारने की कोशिश करे तो माँ का अस्तित्व खतरे में दिखाई देने लगता है। उदाहरण दृष्टव्य है–

" बाहर शोर–गुल मचा। डोंडी ने पुकारा– कौन है?

कोई उत्तर नहीं मिला। आवाज आयी– हत्यारिन! तुझे कतल कर दूँगा!

स्त्री का स्वर आया– करके तो देख! तेरे कुनबे को डायन बनके न खा गयी, निपूते!

डोंडी बैठा न रह सका। बाहर आया।

क्या करता है, क्या करता है, निहाल ? डोडी बढ़कर चिल्लाया–आखिर तेरी मैया है।

मैया है!–कहकर निहाल हट गया''

गदल और उसके देवर डोंडी में वार्तालाप हो रहा है। पति की मृत्यु के बाद स्त्री का घर से जैसे दाना–पानी उठ जाता है। वैसा ही कुछ घटनाक्रम गुन्ना की मृत्यु के बाद गदल के साथ हुआ था इसीलिये वह अपना दुख डोंडी से व्यक्त करती हुई कहती है कि ''भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया तब तू मुझे रखकर घर नही बसा सकता था। तूने मुझे पेट के लिये पराई ड्योढ़ी लँघवाई–चूल्हा मैं तब तक फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नही हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी।''

गूजर समाज में स्त्रियों की स्थिति का अंदाजा डोंडी और गदल के इस संवाद से हो जाता है, जब दोंनो वैवाहिक जीवन के सन्दर्भ में चर्चा कर रहे हैं। गुन्ना की मृत्यु के बाद गदल मौनी के साथ रहने लगती हैं। उसके बाद जब डोंडी और गदल की मुलाकात होती है तो दोंनो बातचीत करते हए इस बात से आवेश में आते जाते है कि जब गुन्ना की मौत हुई थी तब मृत्यु भोज पर गुन्ना के बेटे निहाल ने दावत में केवल 25 लोगो को ही बुलाया था और कहा कि यह कानून है पच्चीस से ज्यादा लोगो को बुलाने से पुलिस पकड़ ले जायेगी। तुम लोग डरपोक हो। तो मैं तुम लोगों के साथ क्यूं रहूँ। इस पर डोडी कहता है कि–

''मेरे रहते तू पराये मरद के जा बैठेगी।

–हाँ

–अबके तो कह! वह उठकर बढा

–सौ बार कहूँ, लाला!– गदल पड़ी–पड़ी बोली।

–डोंडी बढ़ा।

–बढ़। गदल ने फूफकारा।

डोंडी रूक गया। गदल देखती रही। डोंडी जाकर बैठ गया। गदल देखती रही। फिर हँसी। कहा– 'तू मुझे करेगा। तुझमें हिम्मत कहाँ है, देवर! मेरा नया मरद है न, मरद है इतनी सुन तो ले भला। मुझे लगता है, तेरा भईया ही फिर मिल गया है मुझे।''

देवर और भाभी के मध्य इस तरह के संवाद गूजर समाज के चरित्र को विश्लेषित करने में समक्ष है। गूजर समाज में स्त्री का जो रूप दर्शाया गया है वह अत्यन्त दुख पहुँचाने वाला है। देवरानी और जेठानी के सम्बन्ध भी पारम्परिक रूप में प्रत्येक समाज में लगभग एक जैसे ही दिखाई पड़ते है। जहाँ गदल और मौनी की भाभी के मध्य होने वाले वार्तालाप इस बात का प्रमाण है।

''अब चुप क्यों हो गया देवर? बोलता क्यों नहीं ? मेरी देवरानी लाया है कि सास। तेरी बोलती क्यें नहीं कढ़ती? ऐसी न समझियों तू मुझे! रोटी तवा पर पलटते मुझे भी आंच नहीं लगती, जो मैं इसकी खरी–खोटी सुन लूँगी, समझाा ? मेरी अम्मा ने भी मुझे चूल्हे की मिट्टी खा के ही जना था। हाँ।

इस प्रकार पारिवारिक सम्बन्धों में भी एक दूसरे के प्रति आदर भाव लुप्त हो गया है। स्त्रियों का मान सम्मान तो इस समाज में दूर की कौड़ी की तरह हैं। नारायण की माँ गदल जब मौनी के पास आकर रात भर रही तो दूसरे दिन नारायण मौनी के घर दण्ड लेने के लिये चला जाता है कि कल रात गदल उसके घर आई थी, तो समाज के रीति रिवाज के अनुसार उन्हें दण्ड भरना होगा। उस बात से गदल को बड़ा क्रोध आता है, वह तड़प कर अपने गले से हार और हाथों से कड़ा निकाल कर नारयण की तरफ फेंकती है और कहती है कि– ''भर गया दण्ड तेरा। अब मत आइयो कोई। समझा! समझ लीजो थाने में रपट कर दूंगी कि मेरे मरद का सब माल दबाकर

बहुओं के कहने से बेटों ने मुझे निकाल दिया है।'' इस प्रकार हम देखते है कि परिवार का झगड़ा सड़क पर आ जाता है और माँ बेटे आपस में ही लड़ने लगते है। इस तरह यहाँ माता पुत्र सम्बन्ध अत्यन्त कटु भाव रखते हुये दिखाये गये हैं। जिससे समाज की मर्यादा के खण्डित होने के सरे आम दर्शन कराये गये हैं।

इसी घटना पर जेठानी का कथन परिवार की स्त्रियों की कलई खोल देता है। जब नारायण गहने लेकर चला जाता है तब मौनी की भाभी गदल पर आक्षेप करती हुई कहती है कि– ''देवरानी ने गहने दे दिये। घुटना आखिर पेट को ही मुड़ा। ऐसे चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डौर पर डंडा–थूआ तक लग जायेंगे, पक्का चबूतरा घर के आगे बगबगायेगा। समझा देती हूँ। तुम भोले–भाले ठहरे। तिरिया चरित्तर तुम क्या जानो। धन्धा है यह भी। अब कहेगी, फिर बनवा मुझे।'' इस प्रकार स्त्री के चरित्र पर बिना सोचे समझे स्त्री द्वारा ही आक्षेप करना समाज की वास्तविकता को प्रदर्शित करता है।

जब गदल को इस बात की जानकारी मिलती है कि डोंडी का देहावसान हो गया है तो वह उसके घर जाना चाहती है। इस पर मौनी उसे मना कर देता है तब गदल का जो रूप दिखाया गया है वह उसके अपने देवर के प्रति मोह और अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष की कहानी कहता है। तब वह अपने वर्तमान पति को भी ताक पर रख देती है। उसका कथन दृष्टव्य है।

''अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहुंगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में तो जीभ कटवा लेती तेरी।''

एक स्त्री का इस प्रकार अपने पति से वार्तालाप करती दिखाई गई है। जब स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों में कोई लोक लाज ही दिखाई ना पड़े तो वहाँ स्त्री के सम्मान का प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्री इनके समाज में मात्र मनोरंजन और घर की चाकरी करने वाली महिला के रूप में दिखाई गई है। इसी कारण गदल का यह हश्र दिखाया गया है।

जब गुन्ना की मौत के बाद गदल मौनी के घर जा बसती है तो उसके बेटे उसे भला बुरा कहते है। आज जब डोंडी जीवित नहीं है और गदल उसकी मौत पर अपने पुराने घर आती है तो सब उसके आने पर सवाल जवाब करने लगते हैं। वह घर छोड़कर क्यूं गई इस पर उसे उलाहना देते है। तब वह पटेल को उत्तर देती हुई कहती है कि ''उमर देखती कि इज्जत, यह कहो! कि मेरी देवर से रार थी, खत्म हो गयी। बेटा है, मैने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझ पर दावा करो। पंचायत में जबाव दूँगी। लेकिन बेटों ने बिरादरी के मुँह पर थूका, तब तुम सब कहाँ थे।'' इस पुरूष प्रधान समाज में पुरूष कोई भी गलती करे तो उसे कोई कुछ नहीं कहता परन्तु स्त्री अगर कोई परम्परा से हटकर कदम उठाती है तो सभी उस पर उंगली उठाने लगते हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि 'गदल' कहानी के माध्यम से रांगेय राघव ने गूजर समाज की स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का सजीव और मर्मस्पर्शी चित्रण किया हैं। गदल वह स्त्री है जो हर तरफ से उपेक्षित होकर अपना जीवन जीती है। न उसे बेटों से सुख मिलता है न वर्तमान पति के घर से। वह अंदर ही अंदर जला करती है कि उसे देवर की उपेक्षा और बेटे बहुओ की दुत्कार के कारण घर छोड़ना पड़ा। इस प्रकार एक उपेक्षित नारी का चित्रण अत्यन्त सशक्त रूप में दर्शाया गया हैं।

8.6 गदल एक सशक्त नारी

रांगेय राघव द्वारा रचित कहानी 'गदल की' प्रमुख पात्र इस कहानी की नायिका स्वयं गदल है। वह गूजर समाज की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं हैं उन्हें मात्र घर

में चूल्हा चक्की पीसने तथा भोग विलास की वस्तु समझा जाता है। किन्तु गदल का चरित्र गुजर समाज के इस मान्यता के विपरित चित्रित किया गया है। वह अत्यन्त स्वाभिमानी, निडर, आत्मनिर्भर, स्पष्टवादी तथा अपने परिवार के प्रति ईमानदार स्त्री के रूप में उभर कर सामने आती है।

कहानी के आरम्भ में ही गदल और उसके पुत्र निहाल के बीच जो संवाद होते हैं, उससे उसके निडर व्यक्तित्व की पहचान होती हैं–

" बाहर शोर–गुल मचा। डोंडी नें पुकारा– कौन है?

कोई उत्तर नहीं मिला। आवाज आयी– हत्यारिन! तुझे कतल कर दूँगा!

स्त्री का स्वर आया– करके तो देख! तेरे कुनबे को डायन बनके न खा गयी, निपूते!

डोंडी बैठा न रह सका। बाहर आया।

क्या करता है, क्या करता है, निहाल ? डोडी बढ़कर चिल्लाया–आखिर तेरी मैया है।

मैया है!–कहकर निहाल हट गया"

इस प्रकार गदल का व्यवहार एक समान्य स्त्री की तरह नहीं है, वह बहादुरी से विपत्तियों का सामना करना जानती हैं इसलिये जब उसका पति गुन्ना मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो वह अपने घर में ठीक से आश्रय न प्राप्त होने के कारण मौनी के घर जाकर बैठ जाती है। वह डोंडी से कहती है कि– "अब मेरा यहाँ कौन है! मेरा मरद तो मर गया। जीते जी मैने उसकी चाकरी की, उसके नाते, उसके सब अपनों की चाकरी बजायी। पर जब मालिक ही न रहा तो, काहे को हड़कंप उठाऊं ! यह लड़के, यह बहुएं ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी।"

गदल अपनी इच्छा से जीना चाहती है। उसकी इच्छा थी कि उसका देवर डोंडी उसे अपना ले, परन्तु डोंडी लोक व्यवहार के कारण ऐसा नहीं करता है। गदल उसे अपमानित करने के लिये मौनी की पत्नी बनकर उसके घर जा बैठती है। उसे इस बात का भी रंज है कि जब उसके पति भी मृत्यु हुई तो डोंडी और निहाल ने पूरे समाज को मृत्यु भोज नहीं दिया। वह कहती है कि– "मेरे ससुर मरे थे, तब तेरे भैया ने बिरादरी को जिमा कर ओंठों से पानी छुलाया था अपने। और तुम सबने कितने बुलाये? तू भैया, दो बेटे। यही भैया हैं, यही बेटे हैं? पच्चीस आदमी बुलाये कुल। क्यों आखिर ? कह दिया लड़ाई में कानून है। पुलिस पच्चीस से ज्यादा होते ही पकड़ ले जायेगी! डरपोक कहीं के। मैं नहीं रहती ऐसों के।"

गदल में इस बात की भी तड़प है कि उसके देवर ने भाई की मृत्यु के बाद उसे क्यों नहीं अपनायां इसी दुख में उसे अपना घर छोड दिया। वह अपने देवर को मन ही मन चाहती थी किन्तु स्वयं कुछ नहीं कहना चाह रही थी किन्तु आज जब वह मौनी की पत्नी बन चुकी है तब डोंडी से मिलने पर अपनी भावनाओं का इजहार करती हुई कहती है कि– "भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया तब तू मुझे रखकर घर नही बसा सकता था। तूने मुझे पेट के लिये पराई ड्योढ़ी लँघवाई–चूल्हा मैं तब तक फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नही हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी।"

इस तरह वह किसी की दया या याचना पर अपना जीवन व्यतीत करने को राजी नहीं है। वह जिसके साथ भी जीवन बिताये लेकिन स्वाभिमान के साथ रहना चाहती हैं। इसीलिये वह अपने देवर और बेटों को छोड़ मौनी के घर जा बैठती है। वहाँ भी वह अपनी जेठानी से खरी–खोटी नहीं सुन पाती, पलटकर जवाब देने में किसी प्रकार की मुरव्वत नहीं करती है। अपनी जेठानी पर कटाक्ष करती हुयी कहती है कि– "मिट्टी न खाके आई, सारे कुनबे को चबा जायेगी, डायन। ऐसी नहीं तेरी गुड की भेली है, जो न खायेंगे हम, तो रोटी गले में फंदा मार जायेगी।"

गदल का हृदय आज भी अपने देवर के लिये धड़कता है। वह जब यह समाचार सुनती है कि उसका देहावसान हो गया है तो वह उसके घर जाने के लिये छटपटाने लगती है। किन्तु पूछने पर मौनी स्पष्ट शब्दों में मना कर देता है तब उके अंदर का कोध भड़क जाता है और वह मौनी को दो टूक जवाब देती हुई कहती है कि ''अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहुँगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में तो जीभ कटवा लेती तेरी।'' इस तरह उसकी देवर के पास जाने की तड़प स्पष्ट दिखाई देती है। वह अपने परिवार के सदस्यों से बहुत स्नेह करती है। इसीलिये जब मौनी उसे कमरे में बंद कर देता है तो वह छप्पर तोड़कर डोंडी के पास पहुँच जाती है। उदाहरण दृष्टव्य है– ''रात का तीसरा पहर बीत रहा था। मौनी की नाक बज रही थी। गदल ने पूरी शक्ति लगाकर छप्पर का कोना उठाया और साँपिन की तरह उसके नीचे से रेंगकर दूसरी और कूद गयी।''

गदल जब अपने बेटे और देवर के घर पहुँचती है तो लोग यह आक्षेप लगाते है कि उसने अपना घर छोड़कर मौनी को अपना लिया है। इसलिये उसे पचांयत का सामना करना पड़ेगा। इस समय वह अपने बेटों पर आरोप लगाती है कि इन लोगों ने मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया और इसी कारण मुझे घर छोड़कर जाना पड़ा। इस समय उसका दुख अभिव्यक्त हुआ है साथ ही उसके साहस का भी परिचय मिलता हैं – कि ''उमर देखती कि इज्जत, यह कहो! कि मेरी देवर से रार थी, खत्म हो गयी। बेटा है, मैने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझ पर दावा करो। पंचायत में जबाव दूँगी। लेक़िन बेटों ने बिरादरी के मुँह पर थूका, तब तुम सब कहाँ थे।''

डोंडी की मृत्यु पर गदल पूरी बिरादरी को भोज कराना चाहती है परन्तु उसके समाज में कानून है कि पच्चीस से ज्यादा लोग एक जगह पर एकत्रित नहीं हो सकते। तब भी वह स्थानीय दरोगा से मेल मिलाप करके यह कोशिश करती है कि अपने सारे बिरादरी वालों को भोजन कराये। वह सारी बिरादरी को भोज के लिये आमंत्रित करती है और भोज करवाती है लेकिन बड़े दरोगा के पास शिकायत हो जाने के कारण उसके घर पुलिस वालों के आने की खबर सुनकर वह कांप उठती है कि बिरादरी को यदि भोजन नहीं करा सकी तो उसकी नाक कट जायेगी, इस पर वह अपने बेटे को ताकीद करती है कि डोंडी ने जीवन भर इस घर से नाता नहीं तोड़ा, वह तुम सबको अपना बेटा मानकर पालता रहा। अब विपत्ति के समय तुम सबको संयम और साहस से काम लेना है। वह कहती है कि– ''मेरी कोख की लाज करनी होगी तुझे।– गदल ने कहा– तेरे काका ने तुझको बेटा समझकर अपना दूसरा ब्याह नामंजूर कर दिया था। याद रखना, उसके और कोई नहीं।''

गदल का ममतामयी रूप उस समय देखने को मिलता है जब मृत्यु भोज पर अंतिम पंगत खाना खाकर पीछे के दरवाले से सुरक्षित भेज दी जाती हैं। उसके बाद पुलिस का हमला हो जाता है घर पर पुलिस की गोलियों की बौछार होने लगती है। गदल अपने बहू बेटो को सुरक्षित बचाना चाहती है। जब सब चले गये गदल उपर चढी। निहाल से कहा– बेटा! उसके स्वर की अखंड ममता सुनकर निहाल के रोंगटे उस हलचल में भी खडे हो गये। उससे पहले की वह उत्तर दे, गदल ने कहा– ''तुझे मेरी कोख की सौंगंध है। नारायन को और बहू बच्चों को लेकर निकल जा पीछे से।'' इस प्रकार वह इन सबकी जान बचा लेती है और अकेले ही पुलिस की गोलियों का सामना करती है। इस घर में अब वह अकेली बची है तभी उसे पुलिस की गोली लग जाती है। जब दरोगा और पुलिस वाले उसे चारों ओर से घेर लेतें हैं तब तक उसकी मृत्यु हो जाती है। लेकिन रांगेय राघव ने कहानी के अंत में उसके मृत शरीर के सम्बन्ध में जो उक्तियां लिखी है उससे उसके व्यक्तित्व की पृथक पहचान बनकर उभरती है – ''और सिर लुढ़क गया। उसके होंठों पर मुस्कुराहट ऐसी ही दिखाई दे रही थी, जैसे अब पुराने अंधकार में जलाकर लायी हुई ..... पहले की बुझी लालटेन। ''

इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गदल का व्यक्तित्व एक सशक्त नारी के रूप में व्याख्यायित हुआ है। मजदूर समाज की स्त्री होने के बाद भी उसने अपनी इच्छा से जीवन जीया और स्वाभिमान के साथ रही। उसके अस्तित्व में वे सभी गुण देखने को मिलते है जिनकी छटपटाहट प्रत्येक स्त्री जाति में देखी जा सकती है। गदल इस कहानी की ही नायिका नहीं है वह समाज के सामने भी अपना आदर्श प्रस्तुत करती है।

8.7 गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताएँ

'गदल' कहानी की कथावस्तु गूजर समाज के परिवेश में लिखी गयी है। प्रत्येक समाज की अपनी–अपनी परम्पराएं और मान्यताएं हुआ करती हैं। इसी तरह गूजर समाज में नारी की स्थिति बहुत दयनीय दिखाई पड़ती है। यह समाज अपनी शक्ति के बल पर अपना जीवकोपार्जन करता है। इस कहानी में यह देखने को मिलता है कि यदि किसी परिवार में पुरूष की मृत्यु हो जाती है तो उस परिवार की स्त्री अपनी बिरादरी में दूसरे व्यक्ति से विवाह कर सकती है या उसके घर जाकर उसके साथ रहना आरम्भ कर देती है। रांगेय राघव गदल के परिवार का परिचय देते हुए कहते हैं –

"गुन्ना मरा, तो पचपन बरस का था। गदल विधवा हो गयी। गदल का बड़ा बेटा निहाल तीस बरस के पास पहुँच रहा था। उसकी बहू दूल्लो का बड़ा बेटा सात का, दूसरा चार का और तीसरी छोरी थी जो उसकी गोद में थी। निहाल से छोटी तर–ऊपर की दो बहिनें चम्पा और चमेली, जिनका क्रमशः झाज और बिस्वारा गांओं में ब्याह हुआ था। आज उनकी गोदियों से लाल उतरकर धूल में घुटुरूवन चलने लगे थे। अंतिम पुत्र नारायन अब बाइस का था, जिसकी बहू दूसरे बच्चे की माँ होने वाली थी। ऐसी गदल, इतना बड़ा परिवार छोडकर चली गई और बत्तीस साल के एक लौहारे गुजर के यहाँ जा बैठी थी।"

इस प्रकार हम देखते है कि इतना भरा–पूरा परिवार छोड़कर दूसरे के साथ जीवन व्यतीत करने की इजाजत गूजर समाज में है परन्तु यदि इस समाज की स्त्री या पुरुष अपनी बिरादरी छोड़कर किसी अन्य बिरादरी में विवाह कर से या उस घर में जाकर रहने लगे तो पंचायत न्याय करके दण्ड किया करती है। इसी तथ्य पर गदल और पटेल का संवाद दृष्टव्य है –

पटेल ने कहा – 'पर तूने बेटा–बेटी की उमर न देखी, बहू!

गदल ने कहा– "उमर देखती कि इज्जत, यह कहो! कि मेरी देवर से रार थी, खत्म हो गयी। बेटा है, मैने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझ पर दावा करो। पंचायत में जबाव दूँगी। लेकिन बेटों ने बिरादरी के मुँह पर थूका, तब तुम सब कहाँ थे।"

इसी तरह जब कोई पुरूष या स्त्री एक बार घर छोड़ने के बाद वापिस अपने पुराने घर पर लोगों से मिलने भी आये और इस बात की उसे अगर सहमति नहीं है तो उसे दण्ड भरना पड़ता है। जब गदल मौनी के साथ अपना घर बसा लेती है और उसके बाद वह अपने पुराने घर में आती है तो निहाल के साथ उसका विवाद होता है फिर गदल देवर डोंडी के पास बैठकर तमाम संदर्भो में बातचीत करती है। उसके बाद जब गदल वापिस मौनी के यहाँ चली जाती है। तो पीछे से नारायन मौनी के यहाँ पहुँच जाता है। वह मौनी के यहाँ इसलिये पहुँचा कि बिना इंजाजत उनकी माँ गदल कल उनके घर आई थी। अतः उसे दण्ड भरना पड़ेगा। इस प्रसंग का उदाहरण देखिए।

–नारायण ने आकर आवाज दी–कोई है?

–दुल्लों ने घूँघट काढ़ लिया। पूछा–कौन हो?

–नारायण ने खून का घूँट पीकर कहा –गदल का बेटा हूँ।

–दुल्लो घूँघट में हँसी। पूछा– छोटे हो कि बड़े

–छोटा

– और कितने है?

– कित्ते भी हों। तुझे क्या? गदल ने निकलकर कहाँ

– अरे आ गई!– कहकर दुल्लों भीतर भागी।

– आने दो आज उसे। तुझे बता दूंगी, जिठानी !––– गदल ने सिर हिलाकर कहाँ

– अम्मा! –––नारायण ने कहा– यह तेरी जिठानी है?

– क्यों आया है तू, यह बता! गदल झल्लाई।

– दण्ड धरवाने आया हूँ अम्मा! कहकर नारायण आगे बढ़ने को बढ़ा।

– वही रह? गदल ने कहाँ

उसी समय लोटा डोर लिये मौनी लौटा। उसने देखा कि गदल ने अपने कड़े और हँसुली उतारकर फेंक दी और कहा– ''भर गया दण्ड तेरा। अब मत आइयो कोई। समझा! समझ लीजो थाने में रपट कर दूंगी कि मेरे मरद का सब माल दबाकर बहुओं के कहने से बेटों ने मुझे निकाल दिया है।''

नारायन का मुँह स्याह पड़ गया। वह गहने उठाकर चला गया। मौनी मन ही मन शंकित सा भीतर आया।

रांगेय राघव ने यह संकेत दिया है कि गुजर समाज में यह कानून बनाया गया है कि मृत्यु मोज पर पच्चीय से ज्यादा लोग एकत्रित न किये जाये अन्यथा पुलिस कानूनी कार्यवाही कर लोगों को जेल में बंद कर देती। जब गदल के पति की मृत्यु होती है तो उसके बेटे मृत्यु भोज पर पच्चीस लोगों को ही बुलाते है। इस बात से गदल अपने बेटों और देवर डोंडी से नाराज है। वह कहती है कि जब उसके ससुर का देहावसान हुआ था तो गुन्ना ने पूरी बिरादरी को भोजन कराया था। लेकिन स्वयं गुन्ना की मृत्यु पर उसके भाई और बेटों ने कानून का हवाला देकर सिर्फ पच्चीस लोगों को भोजन कराया जिससे उसे ठेस पहुँची है। उदाहरण दृष्टव्य है– ''मेरे ससुर मरे थे, तब तेरे भैया ने बिरादरी को जिमा कर ओंठों से पानी छुलाया था अपने। और तुम सबने कितने बुलाये? तू भैया, दो बेटे। यही भैया हैं, यही बेटे हैं? पच्चीस आदमी बुलाये कुल। क्यों आखिर ? कह दिया लड़ाई में कानून है। पुलिस पच्चीस से ज्यादा होते ही पकड़ ले जायेगी! डरपोक कहीं के। मैं नहीं रहती ऐसों के।''

यही कानून आगे चलकर गदल की मृत्यु का कारण बनता है। जब डोंडी की मृत्यु हो जाती है तो गदल उसे देखने

के लिये आना चाहती है। परन्तु उसका वर्तमान पति मौनी उसे मना कर देती है। उस पर गदल का कथन दृष्टव्य है – ''अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहुँगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में तो जीभ कटवा लेती तेरी।''

इस कथन से यह सिद्ध होता है कि गूजर समाज में स्त्री को पत्नी रूप में अपने पास रखने के लिये लड़की वालों को धन–सम्पत्ति देने की परम्परा है। यदि धन दौलत देकर उसे स्त्री बनाया जाता है तो उस पर अधिकार पूर्वक शासन किया जा सकता है। इस तरह पत्नी के दो रूप दिखाई पड़ते है। एक वह जिसे धन से खरीदा गया हो और दूसरी वह जो अपने आप किसी पुरूष के साथ रहने को तैयार हो जाये।

'गदल' कहानी का अंत समाज की परम्परा का विरोध करने के कारण ही दुखात्मक हुआ है। डोंड़ी की मृत्यु के बाद गदल पूरी बिरादरी को मृत्यु मोज पर आमंत्रित करना चाहती है। परन्तु समाज की परम्परा या कानून

है कि पच्चीस से ज्यादा लोगों को एक जगह पर एकत्रित नहीं किया जा सकता। परन्तु गदल की जिद और इच्छा के कारण ही वह स्थानीय दरोगा से सम्पर्क कर उसे अपने पक्ष मे कर लेती है और डोंडी के मृत्यु भोज पर पूरी बिरादरी को आमंत्रित करती है। भोज समारोह में पूरी बिरादरी भोजन कर रही है तभी ऊपर से दरोगा और पुलिस वाले उसके घर आ धमकते हैं। वह जल्दी से सभी आमंत्रितों को भोजन कराती है और सकुशल पीछे दरवाजे से निकाल देती है। साथ ही अपने बहू–बेटों को भी सपरिवार सुरक्षित बचाकर निकाल देती है किन्तु स्वयं पुलिस की गोली का शिकार हो जाती है। उदाहरण दृष्टव्य है–

" गदल ने एक बन्दुक वाले से भरी बंदुक लेकर कहा–

चले जाओं सब निकल जाओं।

संतान के मोह से जकड़े हुए युवकों को आपत्ति ने अंधकार में विलीन कर दिया।

गदल ने घोड़ा दबाया। कोई चिल्लाकर गिरा। वह हँसी। विकराल हास्य उस अंधकार में गूंज उठा।

दरोगा ने सुना, तो चौंका। औरत! मरद कहाँ गये! उसके कुछ सिपाहीयों ने पीछे से घिराव डाला और ऊपर चढ गये। गोली चलायी । गदल के पेट में लगी।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गुजर समाज की पारम्परिक मान्यताओं के करण परिवार मे खून खराबा हुआ और गदल की मृत्यु हो गयी। इस कहानी में समाज की पारम्परिक मान्यताओं के कारण जहाँ एक और दूषित वातावरण निर्मित होता है। वहीं दूसरी और जान भी गवानी पड़ती है। इस प्रकार यह कहानी पारम्परिक मान्यताओं पर चलने का विरोध करती सी प्रतीत होती है। जिन परम्पराओं के कारण समाज या परिवार बिखराव के मार्ग पर प्रशस्त हो उसे बदलने की कोशिश करनी चाहिये। गदल उनका विरोध करती है और अंत में मृत्यु को प्राप्त होती है। पर विरोध में स्वर को मुखर करने में महत्वपुर्ण भूमिका अदा करती है।

8.8 व्याख्या खण्ड

गद्यांश 1.

"अब मेरा यहाँ कौन है! मेरा मरद तो मर गया। जीते जी मैने उसकी चाकरी की, उसके नाते, उसके सब अपनों की चाकरी बजायी। पर जब मालिक ही न रहा तो, काहे को हड़कंप उठाऊं ! यह लड़के, यह बहुएं ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी।"

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन में संकलित कहानी 'गदल' से अवतरित किया गया है। इस कहानी के लेखक रांगेय राघव हैं।

प्रसंग : गुन्ना की मृत्यु के बाद गदल पास के कुनबे में मौनी की घरवाली बनकर रहनें चली गयी तो उसके बेटे शाम को उसे बाँधकर वापस ले आते हैं और विवाद करते हैं। रात्रि में गुन्ना की पत्नि गदल और उसका देवर डोंड़ी आपस में वार्तालाप कर रहे हैं।

व्याख्या : गुन्ना की मृत्यु के बाद गदल की इच्छा थी कि उसका देवर डोंडी उसे अपना ले, परन्तु डोंडी लोक व्यवहार के कारण ऐसा नहीं करता है। तो वह अपने घर में ठीक से आश्रय न प्राप्त होने के कारण मौनी के घर जाकर बैठ जाती है। इस बात से नाराज होकर उसके बेटे शाम को उसे बाँधकर वापस ले आते हैं और विवाद करते हैं। रात्रि में गुन्ना की पत्नि गदल अपने देवर डोंड़ी से कहती है कि इस घर में मेरा कौन रह गया है। जिसके लिये इस घर में रहूँ। जब तक मेरा पति जीवित था मैने उसके लिये हर काम किया। उसकी बहुत सेवा की। पति होने के कारण उसके सभी रिश्तेदारों की भी खूब सेवा की। मैंने पूरी ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन किया।

परन्तु जब पति ही नहीं रहा तो अब मैं सारे रिश्ते–नाते क्यों निभाऊँ। मेरे ये लड़के जो अपनी माँ का जरा भी ध्यान नहीं रखते, ये बहुएँ जिन्होने मुझे कभी अपना नहीं समझा। मैं इनके साथ रह कर गुलामी की जिन्दगी नहीं जीना चाहती हूँ।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में गदल की स्पष्टवादिता का वर्णन किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में पति की मृत्यु के बाद स्त्री की मनोदशा का वास्तविक चित्रण दर्शनीय है।
3. प्रस्तुत अंश में गदल का अर्न्तद्वन्द्व दर्शनीय है।

गद्यांश 2

"भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया तब तू मुझे रखकर घर नही बसा सकता था। तूने मुझे पेट के लिये पराई ड्योढ़ी लँघवाई–चूल्हा मैं तब तक फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नही हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी।"

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन में संकलित कहानी 'गदल' से अवतरित किया गया है। इस कहानी के लेखक रांगेय राघव हैं।

प्रसंग : गुन्ना की मृत्यु के बाद गदल की इच्छा थी कि उसका देवर डोंडी उसे अपना ले, परन्तु डोंडी लोक व्यवहार के कारण ऐसा नहीं करता है। तो वह अपने घर में ठीक से आश्रय न प्राप्त होने के कारण मौनी के घर जाकर बैठ जाती है। इस बात से नाराज होकर उसके बेटे शाम को उसे बाँधकर वापस ले आते हैं और विवाद करते हैं। रात्रि में गुन्ना की पत्नि गदल अपने देवर डोंड़ी से वार्तालाप करती है–

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में गदल और डोडी वार्तालाप कर रहे हैं। गदल स्मरण करती हुई कहती है कि जब मेरा पति अर्थात् तेरा भाई मृत्यु को प्राप्त हुआ था तो उसका सारा क्रियाकर्म उसके बेटों ने किया। जब सारा काम–काज हो गया तो डोंडी तूने मुझे अपने पास रखकर घर क्यों नहीं बसा लिया, तब मैं इस घर को छोड़कर कभी नहीं जाती। वह डोंडी पर आरोप लगाती हुई कहती है कि डोंड़ी तूने ही मुझे पेट की खातिर इस घर से बिना कुछ कहे जाने के लिये मजबूर किया। अन्यथा मैं इस घर को और तूझे छोड़कर कभी नहीं जाती। वह कहती है कि मैं उसी व्यक्ति के घर का चूल्हा जलाउँगी जहाँ पर मेरा कोई अपना निवास करता हो। मैं ऐसी स्त्री नहीं हूँ कि मर–मरकर अपना शरीर क्षय करूँ और दूसरों के घर में आनंद की किलकारियां बजती रहे। मै तभी किसी का पेट भरूँगी जब अपने पेट का सौदा कर लूँगी अर्थात् अपने रहने खाने की उचित व्यवस्था के बाद ही में किसी के साथ रह सकती हूँ।

विशेष–

1. प्रस्तुत अंश में गदल एक स्वाभिमानी स्त्री के रूप में दृष्टिगोचर होती है।
2. प्रस्तुत अंश में गदल की स्वष्टवादिता दर्शनीय है।
3. प्रस्तुत अंश में भारतीय परिवारों में नारी की वास्तविक स्थिति का चित्रण दर्शनीय है।

गद्यांश 3

"अब चुप क्यों हो गया देवर? बोलता क्यों नहीं ? मेरी देवरानी लाया है कि सास। तेरी बोलती क्यों नहीं कढ़ती? ऐसी न समझियों तू मुझे! रोटी तवा पर पलटते मुझे भी आंच नहीं लगती, जो मैं इसकी खरी–खोटी सुन लूँगी, समझा ? मेरी अम्मा ने भी मुझे चूल्हे की मिट्टी खा के ही जना था। हाँ।

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन में संकलित कहानी 'गदल' से अवतरित किया गया है। इस कहानी के लेखक रांगेय राघव हैं।

प्रसंग : गदल जब रात भर अपने पुराने घर पर रहकर सुबह मौनी के घर आती तो गदल और जेठानी दुल्लों के बीच वाक् युद्ध होता है। उसके बाद मौनी उससे पूछता है कि रात भर वहां रही तो वह सारी बातें बताती है। फिर मौनी से कहती है कि मैं घर भर का काम नहीं करूँगी, हम केवल दो लोग हैं अतः हम अपना रसोई अलग करेंगे। इस बात पर जेठानी दुल्लो आक्रोशित होकर अपने देवर मौनी से कहती है–

व्याख्या : घर भर का काम नहीं करने और अपना रसोई अलग करने की बात सुनकर जेठानी दुल्लो आक्रोशित होकर अपने देवर मौनी से कहती है–कि अब तुम चुपचाप क्यों खड़े हो, कुछ बोलते क्यों नहीं। तुम मेरे लिये गदल के रूप में मेरी देवरानी लाये हो कि सास! क्योंकि इसका व्यवहार तो सास की तरह दिखाई दे रहा है। दुल्लो अपने देवर से कहती है कि इतना सब सुनने के बाद अब तेरी आवाज क्यों नहीं निकल रही है। मुझे तुम ऐसी वैसी स्त्री न समझना। वह कहती है कि मुझे भी इसकी भी खरी–खोटी बात सुनकर आवेश आ सकता है और मै भी पलटकर जवाब दे सकती हूँ। मुझे भी मेरी माँ ने इसी चूल्हे की मिट्टी खाकर पैदा किया है।

विशेष–

1. प्रस्तुत अंश देवरानी, जेठानी का संघर्ष अत्यन्त वास्तविकता में साथ विवेचित किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश गुजर समाज का पारिवारिक चित्रण प्रभावी ढंग से किया गया है।

गद्यांश 4

"देवरानी ने गहने दे दिये। घुटना आखिर पेट को ही मुड़ा। ऐसे चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डौर पर डंडा–थूआ तक लग जायेंगे, पक्का चबूतरा घर के आगे बगबगायेगा। समझा देती हूँ। तुम भोले–भाले ठहरे। तिरिया चरित्तर तुम क्या जानो। धन्धा है यह भी। अब कहेगी, फिर बनवा मुझे।"

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉ परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन में संकलित कहानी 'गदल' से अवतरित किया गया है। इस कहानी के लेखक रांगेय राघव हैं।

प्रसंग : गूजर समाज की मान्यता के अनुसार जब कोई पुरूष या स्त्री एक बार घर छोड़ने के बाद वापिस अपने पुराने घर पर लोगों से मिलने भी आये तो उसे दण्ड भरना पड़ता है। जब गदल मौनी के साथ अपना घर बसा लेती है और उसके बाद वह अपने पुराने घर में आती है तो निहाल के साथ उसका विवाद होता है। फिर गदल देवर डोंडी के पास बैठकर तमाम संदर्भों में बातचीत करती है। उसके बाद जब गदल वापिस मौनी के यहाँ चली जाती है। तो पीछे से नारायन मौनी के यहाँ पहुँच कर बिना इजाजत उनकी माँ गदल के कल उनके घर आने पर दण्ड माँगने पर गदल ने अपने गले से हार और हाथ का कड़ा निकालकर उसे दिया और क्रोध में घर के भीतर नहीं आने दिया। इस प्रसंग में गदल की जेठानी दुल्लों अपने देवर मौनी को शिकायत करते हुए कहती है–

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में दुल्लो मौनी से कहती है कि देवरानी गदल ने अपने जेवर अपने बेट नारायन को दण्ड स्वरूप दिये। जिस तरह घुटना पेट की ओर मुड़ता है उसी प्रकार गदल का झुकाव भी उसके अपनों की तरफ ही हुआ और आखिर अपने बेटे को ही आर्थिक लाभ पहुँचाया। अगर यह इसी तरह चार घरों में जाकर पति बनायेगी। तो उसकी तो चांदी ही चांदी हो जायेगी। उसके बेटों के खेतों पर फसल लहलहायेंगी और चारों तरफ रखवाली के लिये घेराबंदी भी हो जायेगी। उसके घर के सामने पक्का चबूतरा बन जायेगा। वह मौनी से कहती है कि तुम सीधे–साधे व्यक्ति हो। तुमको इस तरह की कुत्सित विचार रखने वाली स्त्रियों के बारे में नहीं पता है। यह तो इनका काम ही है कि एक घर छोड़ना और दूसरा घर पकड़ना। अब यह तुमसे कहेगी कि मुझे दूसरा हार और कड़ा बनवा दो।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में भारतीय समाज का वास्वविक चित्र प्रस्तुत किया गया है।
2. प्रस्तुत अंश में देवरानी और जेठानी का संघर्ष प्रभावी रूप में चिंत्रित किया गया है।
3. प्रस्तुत अंश में निम्न वर्गीय समाज का चित्रण दर्शनीय है।

गद्यांश 5

"अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकने वाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहुंगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में तो जीभ कटवा लेती तेरी।"

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश डॉं परमानन्द श्रीवास्तव द्वारा सम्पादित 'कथान्तर' कहानी संकलन में संकलित कहानी 'गदल' से अवतरित किया गया है। इस कहानी के लेखक रांगेय राघव हैं।

प्रसंग : प्रस्तुत गंद्याश में जब गदल को गिर्राज और मौनी की बातचीत से यह पता चलता है कि उसके देवर डोंड़ी की मृत्यु हो गयी है तो वह तड़प उठती है। वह उसके घर जाना चाहती है किन्तु मौनी उसे मना कर देता है। तो वह आवेश में आकर उसे जबाव देते हुए कहती है–

व्याख्या : प्रस्तुत गद्यावतरण में गदल डोंड़ी की मृत्यु पर अपने घर जाना चाहती है। किन्तु मौनी के मना करने पर वह आक्रोशित होकर कहती है कि जिन बच्चों को मैंने पैदा किया वे मुझे यहाँ आने से रोक नहीं पाये तो तुम मुझे यहाँ पर क्या रोक पाओगे। वह कहती है कि जिस डोंड़ी को नीचा दिखाना चाहती थी अब तो वही नहीं रहा तो यहाँ रहकर क्या करूँगी। तुम मुझे रोकने वाले कौन होते हो। मै यहाँ अपने मर्जी से आयी थी जब तक मन करेगा रहूँगी जब मन नही होगा मै चली जाऊँगी। तुमने मुझे घन देकर खरीदा तो नहीं है फिर तुम्हारी बातें क्यों सुनूँ। वह मौनी को कहती है कि इस घर में थे इसलिये तुम्हारे मुँह से मुझे रोकने की बात निकल गई और अगर मेरे अपने घर में रहते हुए इतनी बात कहते तो तुम्हारी जीभ ही कटवा लेती।

विशेष :

1. प्रस्तुत अंश में गदल का दुखी ह्रदय मुखर हुआ है।
2. प्रस्तुत अंश में गदल का डोंड़ी के प्रति स्नेह अभिव्यक्त हुआ है। .
3. प्रस्तुत अंश में गदल का आत्मनिर्भर रूप दृष्टिगोचर होता है।

4. प्रस्तुत अंश में अपने देवर को देखने की ललक का सुन्दर वर्णन कहानीकार से गदल के माध्यम से व्यक्त किया है।

8.9 शब्दार्थ, कहावतें एवम् मुहावरें

शब्दार्थ

निस्तब्ध – चकित

बरेण्डा – बरामदा

दीवे – दिये

कर्रा – मजबूत

कुनबा – समाज

खसम – पति

चकरी – नौकरी

जोड़ी – दरवाजा

बिरादरी – समाज

हठात् – जबर्दस्ती

हुकुम – आदेश

बांदी – नौकरानी

ओवरी – कमरा

कुलक्षिणी – गलत आचरण वाली

हौंस – इच्छा

बखत – समय

ओट – किनारा

कढ़ा – गड़ा

रार – लगाव

नाज – अनाज

सशंक – शंका के साथ

पंगत – भोजन के लिये बैठे लोग

टोपीदार – इज्जतदार

विलीन – लुप्त

कहावतें / मुहावरे

1. आँखों में हया बचना – शर्म शेष रहना
2. नाक कटाना – इज्जत गँवाना
3. नाक पर चोट लगना – स्वाभिमान पर ठेस पहुँचना

4. घुटना पेट को मुड़ना – अपनों के प्रति आसक्ति
5. खून का घूँट पीना – क्रोध दबाना

8.10 सारांश

रांगेय राघव की कहानी 'गदल' चरित्र प्रधान कथानक है। गदल कहानी में पात्रों की संख्या अधिक होने के बाद भी कहानीकार ने जिस पात्र को केंद्र में रखकर कथ्य बुना है, उसके चरित्र के साथ पूर्ण न्याय किया है। पात्रों की संख्या कथ्य संयोजन के कारण अटपटी नहीं लगती।

'गदल' कहानी की भाषा शैली गुजर समाज की आंचलिक बोली के प्रभाव से ओतप्रोत है। जिससे यह कहानी आंचलिकता का पुट लिये हुए है। लेकिन उसके बाद भी यह कथा सहज रूप से बोधगम्य है।

'गदल' की भाषा शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक और पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में पुर्णतया सक्षम है। कहानीकार द्वारा प्रयुक्त आंचलिक शब्दों का प्रयोग हमें कहानी का सामिप्य प्रदान करता है, तो कहावतों–मुहावरों का प्रयोग नये आयाम स्थापित करता है। भाषाई अभिव्यक्ति अत्यन्त सशक्त और प्रभावशाली है।

कहानीकार ने कथा संयोजन में संवादों की कुशलता पर विजय प्राप्त की है यही कारण है कि गदल अत्यन्त प्रभावी कहानी बन पड़ी है।

रांगेय राघव द्वारा लिखित कहानी 'गदल' में गूजर समाज में नारी की स्थिति का बड़ा सजीव तथा मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।

गदल का व्यक्तित्व एक सशक्त नारी के रूप में व्याख्यायित हुआ है। मजदूर समाज की स्त्री होने के बाद भी उसने अपनी इच्छा से जीवन जीया और स्वाभिमान के साथ रही। उसके अस्तित्व में वे सभी गुण देखने को मिलते है जिनकी छटपटाहट प्रत्येक स्त्री जाति में देखी जा सकती है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- कहानीकार रांगेय राघव के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित चुके हैं।
- कहानीकार रांगेय राघव के कहानी कला से परिचित चुके हैं।
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'गदल' कहानी की समीक्षा कर सकते हैं।
- गूजर जाति में नारी की स्थिति से परिचित चुके हैं।
- 'गदल' कहानी के आधार पर गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताओं से परिचित चुके हैं।

8.11 अपनी प्रगति जाँचिए

1 'गदल' कहानी की संक्षेप में तात्विक समीक्षा कीजिए।

2 'गदल' कहानी की पात्र–योजना पर संक्षेप में टिप्पणी कीजिए।

3 'गदल' की भाषा शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक और पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में पुर्णतया सक्षम है– टिप्पणी कीजिए।

4 'गदल' कहानी की कथोपकथन पर संक्षेप में टिप्पणी कीजिए।

5 'गदल' कहानी का उद्देश्य क्या है?

6 'गदल' कहानी के आधार पर गूजर जाति में नारी की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

7 गदल का व्यक्तित्व एक सशक्त नारी के रूप में व्याख्यायित हुआ है। –'गदल' कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

8 गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताएँ कौन–कौन सी हैं?

8.12 नियत कार्य/गतिविधियाँ

1 कहानीकार रांगेय राघव की प्रमुख कृतियों का एक चार्ट तैयार कीजिये।

2 कहानी में प्रयुक्त आंचलिक को छांटकर उनका अर्थ लिखते हुए वाक्यों में उनका प्रयोग कीजिए।

3 कहानी के आधार पर गूजर समाज की पारम्परिक मान्यताओं को चुनकर लिखिए

8.13 स्पष्टीकरण के बिन्दु

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

8.14 चर्चा के बिन्दु

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल

एम. ए. उत्तरार्द्ध : हिन्दी

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक

षष्टम् खण्ड : 'अन्धेर नगरी' – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

इकाई– 1 भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा'

इकाई– 2 'अन्धेर नगरी' में नाट्य तत्व एवम् युगबोध

इकाई– 3 (अ) 'अन्धेर नगरी' का प्रहसन स्वरूप, रंग परिकल्पना

(ब) व्याख्या खण्ड

लेखक – डा. धीरेन्द्र शुक्ला
विभागाध्यक्ष – हिन्दी
शासकीय महात्मा गाँधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय
इटारसी, मध्यप्रदेश

सम्पादक – डा. प्रेम भारती

षष्ठम् प्रश्न–पत्रः आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक

षष्ठम् खण्ड : 'अन्धेर नगरी' – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

खण्ड परिचय–

एम. ए. उत्तरार्ध हिन्दी के षष्ठम प्रश्न पत्र : 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के षष्ठम खण्ड 'अन्धेर नगरी' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' पर आधारित है। 'अन्धेर नगरी' समसामयिक सन्दर्भों का जीवन्त नाटक है। इसका कथानक 'अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा' लोकोक्ति पर आधारित है। हास्य व्यंग्य के माध्यम से देश के तात्कालीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों पर प्रकाश डालते हुए भारतेन्दु जी ने समाज सुधार के दृष्टिकोण से इस लोकोक्ति आधारित कथानक को नाट्य रूप प्रदान किया।

प्रस्तुत खण्ड तीन इकाईयों में विभक्त है–

प्रथम इकाई 'भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा' के अन्तर्गत नाटककार भारतेन्दु की नाट्य सम्बन्धी दृष्टिकोण के साथ.साथ उनके नाट्य साहित्य से आप परिचित हो पायेंगे। इस इकाई में 'अन्धेर नगरी' नाटक का सारांश प्रस्तुत है तथा नाटक में निहित उद्देश्य की विवेचना की गयी है।

द्वितीय इकाई में 'अन्धेर नगरी' में पात्र योजना एवम् चरित्र.चित्रण, सम्वाद और भाषा.शैली जैसे नाट्य तत्वों के आधार पर आलोच्य नाटक की विवेचना की गई है। साथ ही इस इकाई के अध्ययन से आप भारतेन्दु युगीन समय से परिचित हो पाएंगे। युगबोध की कसौटी पर 'अन्धेर नगरी' को परखने का प्रयास इसी इकाई में किया गया है।

प्रस्तुत खण्ड के तृतीय इकाई में 'अन्धेर नगरी' के प्रहसन स्वरूप की विवेचना की गई है। आलोच्य नाटक की रंग परिकल्पना पर भी इसी इकाई में विवेचना की गई है और अन्त में 'अन्धेर नगरी' की विभिन्न मंचीय प्रस्तुतियों का उल्लेख किया गया है।

तृतीय इकाई में प्रमुख गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या की गयी है और कठिन शब्दों के अर्थ दिये गये हैं।

सभी इकाईयों में बोध प्रश्न दिए गए है। अध्ययन के पश्चात् बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए और खण्ड के अन्त में दिए उत्तरों से उनका मिलान कीजिए। यदि आपके उत्तर सही ना हो तो इस अध्ययन सामग्री का पुनः ध्यानपूर्वक पठन करें और बोध प्रश्नों के सही उत्तर देने का प्रयास करें।

इस खण्ड का अध्ययन करने से पूर्व मूल नाटक का भलीभांति अध्ययन अपेक्षित है।

भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 नाटककार भारतेन्दु
1.4 भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा
1.5 भारतेन्दु का नाट्य कर्म
1.6 'अन्धेर नगरी' नाटक का सारांश
1.7 नाटक का उद्देश्य
1.8 सारांश
1.9 अपनी प्रगति जाँचिए
1.10 नियतकार्य / गतिविधियाँ
1.11 स्पष्टीकरण के बिन्दु
1.12 चर्चा के बिन्दु

1.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के षष्ठम प्रश्न पत्र 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के 'अन्धेर नगरी' नाटक से सम्बन्धित खण्ड षष्ठम की प्रथम इकाई का आप अध्ययन करने जा रहे है। इस इकाई के अन्तर्गत आप नाटककार भारतेन्दु और उनकी नाट्य अवधारणा के साथ.साथ भारतेन्दु जी के नाट्य कर्म से परिचित हो पायेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भारतेन्दु युग और भारतेन्दु जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के बारे में उल्लेखनीय बातों से परिचित होंगे।
- साथ ही उनके नाट्य सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी आप जान पायेंगें।

- भारतेन्दु जी ने जब नाट्य लेखन प्रारम्भ किया था तब हिन्दी में न तो नाटक लिखे जाते थे और न ही रंगमंच उपलब्ध था किन्तु उस समय भारतीय, पाश्चात्य और लोक नाट्य परम्पराएँ उपलब्ध थी उनके सन्दर्भ में ही भारतेन्दु के नाटकों को समझा जा सकता है। इसलिए उन नाट्य परम्पराओं का उल्लेख करते हुये भारतेन्दु के नाट्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का विवेचन करेंगे।
- 'अन्धेर नगरी' नाटक का सारांश पढ़ने के साथ.साथ नाटक में निहित उद्देश्य से परिचित हो पाएंगे।

1.2 प्रस्तावना

एम. ए. उत्तरार्ध हिन्दी के षष्ठम प्रश्न पत्र के नाटक से सम्बन्धित षष्ठम खण्ड की यह पहली इकाई है। इस खण्ड की अगली इकाईयों में आप भारतेन्दु युग, युगबोध की कसौटी पर 'अन्धेर नगरी', 'अन्धेर नगरी' की भाषा, शिल्प और रंगमंचीय विशेषताओं का अध्ययन करेंगें। इनके अध्ययन से पूर्व आपके लिये यह जानना आवश्यक है कि भारतेन्दु जी के समय हिन्दी नाटकों की दशा क्या थी? उनका व्यक्तित्व कैसा था उन्हें विरासत में कौन.कौन सी नाट्य परम्पराएँ प्राप्त हुयी और उन परम्पराओं से उन्होंने क्या अंगीकार किया और स्वयं किन परम्पराओं का निर्माण किया।

संस्कृत नाटक और लोक नाटक के रूप में भारतीय नाट्यकला की बहुत लम्बी और समृद्ध परम्परा मिलती है किन्तु हिन्दी में आधुनिक युग से पूर्व नाटक की परम्परा लगभग शून्य थी। भारतेन्दु जी से ही हिन्दी में आधुनिक युग का प्रारम्भ होता है। आधुनिक हिन्दी गद्य के जन्मदाता के साथ.साथ प्रथम समर्थ नाटककार के रूप में भारतेन्दु जी प्रतिष्ठित है। भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी में नाट्य विधा सम्बन्धी एक स्पष्ट सोच या दृष्टिकोण अस्तित्व में नहीं था और न ही हिन्दी का अपना रंगमंच उपलब्ध था। उस समय पारसी थियेटर अवश्य अस्तित्व में था, जिसके द्वारा हिन्दी, उर्दू, गुजराती तथा मराठी नाटक खेले जाते थे। आरम्भिक हिन्दी रंगमंच पर पारसी थियेटर का प्रभाव अवश्य दिखायी देता है। भारतेन्दु की आस्था शाश्वत और पुराने पड़ गये नियमों में नहीं है बल्कि वे समय के साथ.साथ परिवर्तन की आकांक्षा करते हैं। नाट्य रचना के सन्दर्भ में उनकी यह पंक्ति उल्लेखनीय है कि– 'मनुष्य की परिवर्तनशील वृत्तियों का ध्यान रखकर नाटक लिखे जाये।'

भारतेन्दु के लिये साहित्य रचना कर्म क्षेत्र में जुटने जैसा था। युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखना, भाषा और जनता की प्रकृति और आवश्यकताओं को पहचान कर लिखना समकालीन साहित्य के लिये एक अप्रतिम उदाहरण है। अपने इसी बहुमुखी व्यक्तित्व के साथ भारतेन्दु ने नाट्यरचना के क्षेत्र में अपनी अद्भुत सृजनशीलता का परिचय दिया है।

वैसे तो आधुनिक गद्य के जन्मदाता वही हैं परन्तु नाट्यरचना उनकी प्रमुख विधा लगती है केवल इसलिए नहीं कि वे स्वयं अभिनेता एवम् निर्देशक थे बल्कि इसलिये भी क्योंकि वे क्रांति, जन जागरण, संस्कार और शोध ान की दृष्टि से आम जनता के लिये नाटक को ही सर्वाधिक सशक्त माध्यम मानते थे। भारतेन्दु ने प्रचुर नाट्य साहित्य की रचना की, जो मौलिक एवम् अनुदित दोनों है। सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक विविध विषयों को लेकर रचे अपने नाटकों में भारतेन्दु ने अपने आधुनिक दृष्टिकोण को ही व्यक्त किया है साथ ही शिल्प एवम् शैली के विविध एवम् नवीन प्रयोगों ने उनकी इस अवधारणा को सिद्ध किया है कि लोक स्वभाव एवम् युगीन आवश्यकताओं के साथ नाटककार को भी नियमों में लचीलापन लाना चाहिए।

'अन्धेर नगरी' समसामयिक सन्दर्भों का जीवन्त नाटक है, जिसकी सार्थकता और मूल्यवत्ता समय के साथ. साथ बढ़ती गयी है। यह नाटक अपने लघु आकार के बाद भी हिन्दी नाट्य रचना एवम् रंगमंच को क्रांतिकारी मोड़ देने में सक्षम रहा है। आगे की इकाईयों में 'अन्धेर नगरी' में व्यक्त यर्थाथ, उसके नाट्य तत्व, शिल्प एवम् उसकी

रंगचीयता को समझने में आसानी होगी यदि हम भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा एवम् रचनात्मकता को समझ पाते हैं। इसीलिए प्रस्तुत इकाई में हमने अध्ययन सामग्री को नाटककार भारतेन्दु, भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा, भारतेन्दु का नाट्य कर्म आदि शीर्षक पर केन्द्रित किया है।

1.3 नाटककार भारतेन्दु

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी के शिवाला मोहल्ले में 9 सितम्बर, 1850 ई. को अग्रवाल परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र और माता का नाम पार्वतीदेवी था। भारतेन्दु के पिता जाने.माने साहित्यकार थे। वे गिरधरदास उपनाम से ब्रजभाषा में कविताएं लिखते थे। इनके लिखे चालीस ग्रन्थ बताये जाते हैं। इन्होंने नहुष नाम का नाटक भी लिखा। भारतेन्दु को जन्म से ही साहित्यिक वातावरण मिला। साहित्यिक संस्कार उन्हें पिता से ही मिले।

भारतेन्दु के पूर्वजों ने ब्रिटिश कम्पनी के सहयोग से पर्याप्त धन अर्जित किया था। इनका परिवार नगर के प्रमुख सेठों में से था। भारतेन्दु को धन के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। वे कहते थे– इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाउंगा। भारतेन्दु ने जीवन भर दिल खोलकर पैसा खर्च किया।

भारतेन्दु को बचपन में संवेदनात्मक आघात काफी झेलने पड़े। जब ये पांच वर्ष के थे, तभी इनकी मां को देहान्त हो गया और जब ये दस वर्ष के हुए तो इनके पिता स्वर्ग सिधार गये। इन्हें विमाता के द्वारा काफी उपेक्षा मिली। ये अधिक शिक्षा भी नहीं ग्रहण कर सके। क्वीन्स कालेज, बनारस में इन्होंने प्रवेश अवश्य लिया, पर घर के प्रतिकूल वातावरण और अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण ये अधिक पढ़ नहीं सके। इन्होंने बीच में ही कालेज छोड दिया। भारतेन्दु कालेज में शिक्षा अवश्य ग्रहण नहीं कर सके पर स्वतन्त्र रूप से उन्होंने संस्कृत, बंगला, गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी और लोक भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

भारतेन्दु में विलक्षण प्रतिभा थी। उन्होंने पांच वर्ष की उम्र में ही एक दोहा लिखकर, अपने पिता को दिखाया था। दोहा इस प्रकार था–

लै ब्योंड़ा ठाडे भये श्री अनिरुद्ध सुजान।

वाणासुर की सैन को हनन लगे भगवान।।

वैसे व्यवस्थित रूप से भारतेन्दु ने सत्रह वर्ष की आयु से लेखन प्रारम्भ किया और इन्हें केवल अठारह वर्ष सर्जना के लिये मिले। चौतीस वर्ष चार माह की अवस्था में, 6 जनवरी, 1885 ई. को इनका देहान्त हो गया। लेकिन इस अल्प.काल में भारतेन्दु ने जितना साहित्य सर्जित किया, उतना पूर्णायु वाले रचनाकार भी नहीं कर सके, फिर मात्रा की दृष्टि से ही नहीं, उत्कृष्टता की दृष्टि से भी इनका साहित्य महत्वपूर्ण है।

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी.गद्य साहित्य की स्थिति नहीं के बराबर थी। भारतेन्दु के गद्य की सभी प्रमुख विधाओं में साहित्य लिखा, और विकास की नयी नींव डाली। इस प्रवर्तन के कारण ही भारतेन्दु को हिन्दी.गद्य साहित्य का जनक कहा जाता है। भारतेन्दु ने कविता, निबंध, उपन्यास, समीक्षा आदि की, छोटी.बड़ी मिलाकर लगभग 175 कृतियों का सृजन किया। इनका सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीय भावना, जनचेतना और साहित्य के प्रचार.प्रसार की वृत्ति से परिपुष्ट है। भारतेन्दु ने साहित्य को नये विचार और नयी शैलियाँ प्रदान की।

हिन्दी और राष्ट्रीय चेतना के प्रचार.प्रसार के लिये भारतेन्दु ने पत्रकारिता को विशेष महत्व दिया। उन्होंने 1867 ई. में 'कवि.वचन.सुधा' पत्रिका निकाली। पहले यह मासिक रही, और इसमें प्राचीन कवियों की रचनाएँ प्रकाशित की जाती रही। आगे इसे पाक्षिक कर दिया, और इसमें साहित्य, राजनीति, समाज.सुधार, इतिहास और

ज्ञान.विज्ञान से संबंधित लेख छपने लगे। इस पत्रिका के प्रति लोगों में रूचि देखकर, अंत में इसे साप्ताहिक कर दिया गया। कवि.वचन.सुधा विशुद्ध रूप से साहित्यिक पत्रिका नहीं थी। इसमें सभी प्रकार की रचनाएँ छपती थी। साहित्यिक प्रचार–प्रसार की दृष्टि से अक्टूबर, 1873 ई. में भारतेन्दु ने हरिश्चन्द्र मैगजीन निकाली। एक वर्ष के बाद इस पत्रिका का नाम 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' कर दिया। इस पत्रिका में साहित्य से इतर विषय भी प्रकाशित होते थे, पर प्रमुखता साहित्यिक विषयों की ही रहती थी। भारतेन्दु ने जनवरी, 1874 ई. में महिलाओं के लिये 'बाल बोधिनी' पत्रिका निकाली। इन पत्रिकाओं से हिन्दी का प्रचार–प्रसार तो हुआ ही, साथ ही जनता में साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्कार निर्मित हुए और नये लेखकों को इनसे प्रोत्साहन मिला। साहित्य के इतिहास में इन पत्रिकाओं का अपना एक अलग महत्व है। भारतेन्दु निर्भीक और ईमानदार पत्रकार थे।

भारतेन्दु अत्यधिक उदार संवेदनशील और स्वाभिमानी साहित्यकार थे। उनका व्यक्तित्व सुदृढ़ और निर्भीक था। उनमें देश, समाज और साहित्य के प्रति अटूट निष्ठा थी। वे जाति और धर्मगत संकीर्णता से दूर थे। उनकी दृष्टि वैज्ञानिक और तार्किक थी। उन्होंने छुआछूत और अनमेल विवाह का डटकर विरोध किया। वे नारी की शिक्षा और उसकी स्वतंत्रता के हिमायती थे। भारतेन्दु में एक साहित्यकार के सभी गुण विद्यमान थे। वे अपनी प्रकृति के विषय में स्वयं लिखते है–

सेवक गुनी जन के, चाकर चतुर के हैं।
कविन के मीत, चित हित गुन ज्ञानी के।
सीधेन सों सीधे, महाँ बांके हम बांकेन सों,
'हरीचन्द्र' नगर दमाद अभिमानी के।।
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही,
नेह के दीवाने सदा, सूरत निवानी के।
सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के।।

भारतेन्दु अपने युग के उत्प्रेरक थे। उन्होंने तन.मन.धन से साहित्यकारों की सेवा की। वे अन्य साहित्यकारों की कृतियों को भी प्रकाशित कराने की व्यवस्था करते थे, और उन्हें जनोपयोगी साहित्य लिखने के लिये प्रेरित करते थे, भारतेन्दु एक साहित्यकार ही नहीं वे एक संस्था थे। इसीलिये 1850 ई. से 1900 ई. तक के काल को भारतेन्दु. युग के नाम से अभिहित किया जाता है। भारतेन्दु ने अपना सम्पूर्ण धन, साहित्य और समाज की सेवा में लगा दिया, और अन्त में उन्हें कर्ज लेकर अपना खर्च चलाना पड़ा। कर्ज अदा करने में उनका एक मकान भी बिक गया। भारतेन्दु अपने साहित्य और समाजसेवी कार्यो से, अपने समय में ही पूरे देश में लोकप्रिय हो गये थे। उनके योगदान से ही प्रभावित होकर, भारतीय जनता ने उन्हें भारतेन्दु की उपाधि प्रदान की थी।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सही विकल्प छाँटकर लिखिये–

1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म कब हुआ?

अ–9 सितम्बर, 1850 ई.

ब– 9 सितम्बर, 1855 ई.

स–9 दिसम्बर, 1850 ई.

द–9 दिसम्बर, 1860 ई.

उत्तर ——————————

2) भारतेन्दु ने जनवरी, 1874 ई. में महिलाओं के लिये कौन सी पत्रिका निकाली?

अ–बाल बोधिनी

ब– बाल प्रबोधिनी

स– कवि–वचन–सुधा

द– इनमें से कोई नहीं

उत्तर ——————————

प्रश्न 2– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पांच वर्ष की उम्र में कौन सा दोहा लिखा था?

उत्तर ——————————

प्रश्न 3– भारतेन्दु को हिन्दी.गद्य साहित्य का जनक क्यों कहा जाता है?

उत्तर – ——————————

प्रश्न 4– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कौन.कौन सी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया?

उत्तर ——————————

प्रश्न 5– सत्य/असत्य लिखिए–

अ– 1850 ई. से 1900 ई. तक के काल को भारतेन्दु.युग के नाम से अभिहित किया जाता है।

उत्तर ——————————

ब– भारतेन्दु को संस्कृत, बंगला, गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी और लोक भाषाओं का ज्ञान नहीं था।

उत्तर – ————————

स– हिन्दी और राष्ट्रीय चेतना के प्रचार.प्रसार के लिये भारतेन्दु ने पत्रकारिता को विशेष महत्व दिया।

उत्तर ————————

1.4 भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा

नाटक के क्षेत्र में भारतेन्दु का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने नाटक के सिद्धान्त और व्यवहार, दोनों क्षेत्रों में कार्य किया। सिद्धान्त के क्षेत्र में उन्होंने 'नाटक' शीर्षक से निबन्ध लिखा। इसमें उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य नाट्यकला के सिद्धान्त का भी निर्माण किया। विषय निर्धारण, चरित्र.चित्रण, विषय विन्यास तथा नाटक के उद्देश्य पर उन्होंने मौलिक रूप से प्रकाश डाला। भारतेन्दु का यह निबन्ध, हिन्दी में नाट्य सिद्धान्तों पर किया गया पहला कार्य है। व्यवहार के क्षेत्र में भारतेन्दु ने नाटकों की सर्जना तो की ही.साथ ही अनेक नाटकों का निर्देशन किया ओर उसमें भूमिकाएँ भी अदा कीं। बनारस थियेरट द्वारा 1968 ई. में 'जानकी मंगल' नाटक मंचित किया गया जिसमें भारतेन्दु ने लक्ष्मण की भूमिका निभाई। भारतेन्दु सभी प्रकार की भूमिकाएँ निभाने में कुशल थे। 'नीलदेवी' नाटक में उन्होंने पागल की चुनौतीपूर्ण भूमिका अदा की। बलिया में प्रस्तुत 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में भारतेन्दु स्वयं हरिश्चन्द्र बने और इनका अभिनय देखकर दर्शक गद्गद् हो उठे। नाटकों के मंचन के लिये भारतेन्दु ने काशी में 'नेशनल थियेटर' की स्थापना की और इस संस्था द्वारा कई नाटक मंचित कराये। भारतेन्दु रंगमंच के साथ गहराई से जुडे थे, इसीलिए उन्हें मंचन की बारीकियों का विशद ज्ञान था। उन्होंने अपने इस ज्ञान का पूरा. पूरा उपयोग अपने नाट्य लेखन में किया।

भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी नाटक और रंगमंच की स्थिति प्रायः शून्य थी। पराधीन भारत में नाटक और रंगमंच को प्रोत्साहन नहीं मिला। भारतेन्दु ने नाटक की शक्ति को समझा और इसे सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना के प्रचार. प्रसार का सबसे सशक्त माध्यम माना। उनका कहना था– 'यदि नाटक के अभिनय का प्रारम्भ हो जायेगा तो सब कुचाल आपसे आप छूट जायेगी।' भारतेन्दु सोद्देश्य लेखन के पक्षधर थे। उन्होंने नाटक के लिये पाँच बातें आवश्यक मानीं–हास्य, शृंगार, कौतुक, समाज संस्कार और देशवत्सलता। ये पाँचों तत्व उनके नाटकों में समन्वित हैं। भारतेन्दु अपने समय के साथ अत्यधिक जागरूक थे। परम्परा के प्रति आस्था रखते हुए भी वे परिवर्तन पर बल देते थे। वे लिखते हैं– 'मनुष्य की परिवर्तनशील वृत्तियों का ध्यान रखकर नाटक लिखें। परम्परा को भारतेन्दु वहीं तक स्वीकारते थे, जहाँ तक वह समाज के लिये उपयोगी हो। रूढ़ परम्पराओं को उन्होने कभी महत्व नहीं दिया बल्कि उनकी भर्त्सना की। भारतेन्दु ने रंगमंच को एक आन्दोलन के रूप में लिया। अपने समकालीन लेखकों को भी इसके विकास के लिए प्रेरित किया। इनके समय में अनेक शहरों में नाट्य संस्थाएँ बनी और बहुत से नाटक मंचित किये गये।

भारतेन्दु नाटक में मनोरन्जन को आवश्यक मानते थे, लेकिन कोरा मनोरन्जन उसकी दृष्टि में उपयुक्त नहीं था। नाटक लिखने में भारतेन्दु की दृष्टि यथार्थवादी थी। उसका आदर्श भी जीवन से जुड़ा हुआ था। भारतेन्दु रंगमंच को नाटक का अभिन्न अंग मानते थे। उन्होंने अपने नाटक रंगमंच और दर्शक को दृष्टि में रखकर लिखे। भारतेन्दु के समय हिन्दी रंगमंच की परम्परा तो नहीं थी, लेकिन संस्कृत और लोकनाट्य की एक लम्बी परम्परा उनके सामने थी। पारसी और बंगला रंगमंच भी उनके समय सक्रिय था। भारतेन्दु ने रामलीला, रासलीला, नौटंकी, पारसी.मंच

और पाश्चात्य नाट्य दृष्टि– सभी के वैशिष्ट्य को अपने नाट्यशिल्प में संयोजित किया, और हिन्दी को एक व्यापक नाट्य दृष्टि और सम्भावनापूर्ण रंगमंच प्रदान किया।

हिन्दी के प्रथम नाटककार होकर भी भारतेन्दु ने साहित्य .जगत को विभिन्न नाट्य रूप और शैलियाँ प्रदान की है। रूपक के पारम्परिक भेदों में उन्होंने भाण, नाटक, व्यायोग और प्रहसन उपरूपकों में नाटिका, सट्टक और नाट्य रासक प्रस्तुत किये। गीति नाट्य की भी उन्होंने सर्जना की। संस्कृत नाटक, रामलीला, रासलीला, नौटंकी, पारसी रंगमंच, बंगला नाटक अैार पाश्चात्य नाट्य की विशेषताओं को लेकर, भारतेन्दु ने हिन्दी.नाटक के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये। 'चन्द्रावली' में लीला नाट्य का, 'नीलदेवी' में नौटंकी शिल्प का और 'सत्य हरिश्चन्द्र' में पारसी रंगमंच का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

भारतेन्दु के प्रायः सभी नाटकों में मनोरंजन के साथ कलात्मकता विद्यमान है। इसके कथानक सरल एवम् स्वाभाविक गति से आगे बढ़ते हुए, चरम सीमा को प्राप्त कर, अपना उद्देश्य पूर्ण करते हैं। विस्तार की दृष्टि से भारतेन्दु के नाटक अधिक बड़े नहीं हैं। 'प्रेमयोगिनी', नीलदेवी', 'विषस्य विषमौषधम्', 'वैदिकी हिंसा.हिंसा न भवति', 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी' और 'सती प्रताप' को एकांकी की कोटि में रखा जा सकता है। भारतेन्दु के नाटक कार्य व्यापार और कौतूहल की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है।

भारतेन्दु के नाटकों की चरित्र.सृष्टि भी नाट्य को प्रभावोत्पादक बनाती है। इनके नाटकों में चरित्रों की विविधता है। सभी वर्गों से चरित्र लिये गये हैं। भारतेन्दु ने चरित्र संयोजन में प्राचीन और नवीन, दोनों पद्धतियों का उपयोग किया है। प्राचीन पद्धति संस्कृत नाटकों की परम्परा में है। ये चरित्र आर्दश संवलित हैं। नवीन पद्धति अंग्रेजी और बँगला नाटकों से प्रभावित हैं। ये चरित्र यथार्थवादी पीठिका पर निर्मित हैं। भारतेन्दु के नाटकों के पात्रों को मुख्यत तीन भागों में बाँटा जा सकता है– आदर्शवादी पात्र, यथार्थवादी पात्र और प्रतीकात्मक पात्र। आदर्शवादी पुरुष–पात्रों में हरिश्चन्द्र ('सत्य हरिश्चन्द्र'), सूर्यदेव (नीलदेवी'), सत्यवान (सती प्रताप), विश्वामित्र (सत्य हरिश्चन्द्र') आदि प्रमुख हैं। स्त्री पात्रों में शैव्या (सत्य हरिश्चन्द्र) नीलदेवी (नाटक नीलदेवी), सावित्री (सती प्रताप') चन्द्रावली ('चन्द्रावली') आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इन पात्रों से दर्शकों को चरित्र–निर्माण की प्रेरणा मिलती है।

भारतेन्दु द्वारा रचित यथार्थवादी पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसमें राजकर्मचारी, पुरोहित, साधु, पण्डा, व्यापारी आदि हैं। इन पात्रों के माध्यम से भारतेन्दु ने समाज के ठेकेदारों पर व्यंग्य किया है। प्रतीकात्मक पात्र अधिक़तर प्रवृत्ति परक हैं। जैसे –निर्लज्जता, आशा, आलस्य, धैर्य आदि। भारत, भारत भाग्य, भारत जननी, भरत दुर्दैव, सत्यानाश, रोग, अन्धकार आदि पात्र भी प्रतीकात्मक हैं और इनसे भारत की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। ये पात्र बड़े जीवन्त हैं।

भारतेन्दु के नाटकों के नायक उत्तम और अधम, दोनों प्रकार के हैं। नायिकाओं का चित्रण आर्दश रूप में हुआ है। अब्दुरशरीफ और भारत.दुर्दैव जैसे घृष्ट प्रतिनायकों को भी इनके नाटकों में स्थान मिला हैं। भारतेन्दु के नाटकों में सर्वत्र अन्तः और बाह्य संघर्ष के दर्शन होते हैं। चरित्र प्रकाशन में स्वगत कथन काफी सहायक हुए हैं।

भारतेन्दु के नाटकों की भाषा स्वाभाविक, गतिशील और प्रभावोत्पादक है। पात्रों की प्रकृति एवम् योग्यता के अनुसार भाषा का स्वरूप निर्मित हुआ है। भारतेन्दु के खड़ी बोली–गद्य पर उर्दू और ब्रजभाषा की छाप है। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी इनकी भाषा में बहुतायत से हुआ है और इससे भाषा सशक्त बनी है। भारतेन्दु के नाटकों के सम्वाद छोटे और सहज हैं। इनमें रोचकता के साथ भावुकता भी है। हास्य और व्यंग्य के प्रयोग से भारतेन्दु के सम्वाद अधिक मार्मिक और गीतशील बन गये हैं। पद्यात्मक सम्वादों का प्रयोग भी भारतेन्दु ने बहुतायत से किया है। 'चन्द्रावली' ओर 'प्रेम योगिका' में पद्यात्मक सम्वादों का आधिक्य है। लेकिन ये सम्वाद स्वाभाविकता

और नाटकीयता से परिपूर्ण हैं। आन्तरिक भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए स्वगत कथन, आकाश भाषित आदि की भी योजना है। स्वगत कथनों का प्रयोग प्रायः सभी नाटकों मे हुआ है। भारतेन्दु के सम्वाद कथ्य को आगे बढ़ाने में समर्थ हैं।

भारतेन्दु रसानुभूति को भी नाटक में स्थान देते हैं। इसके नाटकों में प्रायः सभी रसों की सृष्टि हुई है। वैसे इनके नाटकों में शृंगार, हास्य सभी दशाओं का मार्मिक चित्रण है। 'नीलदेवी' में वीररस प्रमुख है। 'अन्धेर नगरी' और 'वैदिकी हिंसा.हिंसा न भवति' में हास्य रस का संयोजन है। करूण रस भी इनके नाटकों में प्रायः मिल जाता है। 'भारत जननी', भारत दुर्दशा' और हरिश्चन्द्र' में करूण रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

भारतेन्दु के प्रायः सभी नाटक अभिनेय हैं। भारतेन्दु ने हिन्दी नाटक को रंगमंच से जोड़कर, उसे अपनी संस्कृति और चेतना प्रदान की। उनके नाटकों में व्यंग्य, प्रतीक, बिम्ब, संगीत, लय आदि आज भी प्रासंगिक हैं। भारतेन्दु को निश्चित रूप से हिन्दी नाटक का जनक कहा जा सकता है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सत्य/असत्य लिखिए–

अ– भारतेन्दु रंगमंच के साथ गहराई से जुडे थे, इसीलिए उन्हें मंचन की बारीकियों का विशद् ज्ञान था।

उत्तर ____________________

ब– भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी नाटक और रंगमंच की समृद्ध परम्परा थी।

उत्तर ____________________

स– भारतेन्दु द्वारा रचित यथार्थवादी पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

उत्तर ____________________

द– भारतेन्दु के नाटकों के नायक उत्तम और अधम, दोनों प्रकार के हैं।

उत्तर ____________________

इ– भारतेन्दु के सभी नाटक प्रायः अभिनेय नहीं हैं।

उत्तर ____________________

प्रश्न 2 – नाटकों के मंचन के लिये भारतेन्दु ने किसकी स्थापना की ?

उत्तर ____

____

____

प्रश्न 3 – भारतेन्दु ने नाटक के लिये कौन सी पाँच बातें आवश्यक मानीं?

उत्तर ____

____

प्रश्न 4 'अन्धेर नगरी' और 'वैदिकी हिंसा.हिंसा न भवति' में किस रस का संयोजन है?

उत्तर ____________________

प्रश्न 5 भारतेन्दु ने आन्तरिक भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए किसकी योजना की ?

उत्तर ____________________

____

प्रश्न 6 भारतेन्दु के नाटकों के पात्रों को मुख्यत कितने भागों में बाँटा जा सकता है? बताइये।

उत्तर ____________________

____

प्रश्न 6 भारतेन्दु के नाटकों के आदर्शवादी पुरुष.पात्रों और स्त्री पात्रों के नाम बताइये।

उत्तर ____________________

____

प्रश्न 7 भारतेन्दु के नाटकों के आदर्शवादी पात्रों से दर्शकों को किसकी प्रेरणा मिलती है?

उत्तर ____________________

____

____

____

प्रश्न 8 भारतेन्दु ने नाटकों के किन किन पात्रों ही भूमिकाएं निभायी हैं?

उत्तर ____________________

____

1.5 भारतेन्दु का नाट्य कर्म

भारतेन्दु के नाटकों का विषय .क्षेत्र काफी व्यापक हैं। उन्होंने पुराण, इतिहास, समसामयिक समाज और राजनीति, सभी से अपने नाटकों की विषयवस्तु चुनी। उन्होंने मौलिक नाटक तो लिखे ही, साथ ही अन्य भाषाओं के श्रेष्ठ नाटकों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। भारतेन्दु के नाटकों की सूची इस प्रकार हैं–

मौलिक कृतियां

वैदिकी हिंसा.हिंसा न भवति (1873 ई.)

प्रेमजोगिनी (1875 ई.)

विषस्य विषमौषधम् (1875 ई.)

चन्द्रावली (1876 ई.)

भारत.दुर्दशा (1876 ई.)

भारत जननी (1877 ई)

नीलदेवी (1880 ई.)

अन्धेर.नगरी (1881 ई.)

सती.प्रताप (1884 ई.)

अनुदित कृतियां

विद्यासुन्दर (1868 ई.)

रत्नावली (1868 ई.)

पाखण्डविडम्बन (1872 ई.)

धनंजय–विजय (1873 ई.)

सत्य हरिश्चन्द्र (1875 ई.)

मुद्राराक्षस (1875 ई.)

कर्पूर मंजरी (1876 ई.)

दुर्लभ बन्धु (1880 ई.)

'वैदिकी हिंसा.हिंसा न भवति' नाटक प्रहसन के रूप में लिखा गया है। इसकी वस्तु तत्कालीन समाज से सम्बन्धित है। इसमें मांस.भक्षण और मदिरापान की भर्त्सना की गयी है। साथ ही समाज में व्याप्त धार्मिक पाखण्डों, मतमतान्तरों, दुश्यप्रवृतियों आदि को दिखाकर, दर्शकों को उनसे सचेत रहने की प्रेरणा दी गयी है। इस नाटक में मनोरंजकता के साथ.साथ कलात्मकता का गुण भी विद्यमान है।

'विषस्य विषमौषधम' भाण शैली में लिखा गया एक पात्रीय व्यंग्य नाटक है। इसमें बड़ौदा के तत्कालीन नरेश मल्हारराव गायकवाड़ के राज्याच्युत किये जाने की ऐतिहासिक घटना का वर्णन है। इस नाटक में उनके द्वारा किये गए अत्याचार पर तीखे व्यंग्य किए गए हैं। अभिनय की दृष्टि से यह नाटक सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें रोचकता और कौतुहल का अभाव है।

'प्रेमजोगिनी' अपूर्ण नाटक है। इसमें काशी की यथार्थ स्थिति पर चार व्यंग्य चित्र है। धर्म के नाम पर होंने वाले पाखण्डों और अनर्थो का इसमें बड़ी निर्भीकता से उद्घाटन किया गया है। काशी के यथार्थ चित्रण के साथ, नाटककार के व्यक्तिगत जीवन की भी झलक इसमें मिल जाती है।

'भारत–दुर्दशा' राष्ट्रीयता की भावना से ओत.प्रोत प्रतीकात्मक नाटक है। इस नाटक में सांकेतिक पात्रों के माध्यम से भारत की तत्कालीन स्थिति का चित्रण किया गया है। इसमें न केवल सामाजिक, आर्थिक एवम् राजनैतिक सुधारवादियों की हीनावस्था पर व्यंग्य किया गया है। अपितु अवनति के आधारभूत कारणों का मूलोच्छेद कर, भारतवासियों के हृदय में राष्ट्रीय भावना का भी संचार किया गया है। यह नाटक अभिनेयता की दृष्टि से अत्यधि क सफल है।

'भारत जननी' में एक ही दृश्य है। डॉ. दशरथ ओझा इसे 'आधुनिक युग का उत्तम एकांकी' मानते हैं। इस नाटक का उद्देश्य भारत भूमि और भारत.सन्तानों की दुर्दशा दिखाना रहा है। इसमें भारत की दयनीय अवस्था का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह यथार्थवादी नाटक है। इसमें यथार्थ चित्रण के माध्यम से जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने का प्रयत्न किया गया है।

'नील देवी' में पंजाब के राजा सूर्यदेव सिंह और रानी नील देवी की वीरता का वर्णन है। अमीर अब्दुर शरीफ खाँ सूर पंजाब पर आक्रमण करता है और सूर्यदेव सिंह को कैद कर लेता है। सूर्यदेव सिंह कैद के सीखचों को तोड़कर सत्ताईस यवनों को मारकर वीरगति को प्राप्त करता है। नील देवी अपने पति की मृत्यु को प्रतिशोध ा लेने के लिये नर्तकी का वेष धारण करती है और अब्दुर शरीफ का वध कर देती है। भारतेन्दु ने इस नाटक में नील देवी के तेजस्वी और निर्भीक रूप का चित्रण कर, भारतीय नारी के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया है। यह नाटक अभिनेयता की दृष्टि से अत्यन्त सफल है।

'अंधेरी नगरी' हास्य .व्यंग्य प्रधान प्रहसन है। इसकी कथा जनता में, अनेक रूपों में पहले से प्रचलित थी। भारतेन्दु ने बिहार के एक जमींदार की भ्रष्ट व्यवस्था और असंगत न्याय को लक्ष्य करके इस कथा को नाटकीय आकार दिया है। यह नाटक राजाओं और सामन्तों की शोषक.वृत्ति, निरंकुशता, अराजकता और मूढ़ता पर करारे व्यंग्य करता है। आगे इस नाटक पर विस्तार विचार किया गया है। अभिनय की दृष्टि से भारतेन्दु के नाटकों में यह सबसे अधिक लोकप्रिय है।

'सती प्रताप' अपूर्ण नाटक है। इसके चार दृश्य ही भारतेन्दु लिख पाये थे। आगे चलकर बाबू राधाकृष्ण दास ने इसे पूरा किया। यह नाटक सावित्री.सत्यवान की कथा पर आधारित है। इस नाटक का उद्देश्य सती सावित्री के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करना रहा है। नाटकीयता की दृष्टि से यह नाटक उत्कृष्ट है। यदि भारतेन्दु इसे पूरा कर सके होते तो यह उनका एक सफलतम नाटक होता।

भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में 'चन्द्रावली' और 'सती प्रताप' पौराणिक; 'विषस्य विषमौषधम्' और 'नीलदेवी' ऐतिहासिक, बाकी सब सामाजिक है। 'चन्द्रावली' नाटिका भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में सर्वश्रेष्ठ मानी गयी हैं। यह प्रेम.प्रधान नाटिका हैं। इसमें चन्द्रावली और कृष्ण के प्रेम का वर्णन है। वैसे कृष्ण की प्रेमिका के रूप में राध ा का नाम प्रसिद्व है, लेकिन भारतेन्दु ने इस नाटिका में चन्द्रावली को कृष्ण की प्रेमिका माना है। यह राधा की सखी है। चन्द्रावली के विरह का बड़ा मार्मिक चित्रण इस नाटिका में किया गया है। भारतेन्दु राधा.कृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे। उनकी आस्था वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में थी। उनके पूर्वज इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। कहना न होगा कि इस नाटिका में भारतेन्दु की ही भक्ति.भावना, चन्द्रावली के माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं। केवल पात्रों के नाम ही पौराणिक हैं।

विद्यासुन्दर' नाटक यतीन्द्र मोहन ठाकुर के बँगला नाटक की छाया लेकर लिखा गया है। इस नाटक में विद्या और सुन्दर की प्रेम कथा का वर्णन हैं, यह समस्या प्रधान नाटक है। इसमें नूतन और पुरातन विवाह.पद्धतियों का संघर्ष दिखाकर, अधुनातन समस्या की ओर संकेत किया गया है। लेखक ने इस समस्या का समाधान दिया है।

'रत्नावली' हर्ष कृत संस्कृत नाटिका रत्नावली का हिन्दी अनुवाद है। यह नाटक अपूर्ण है। इसमें केवल विष्कम्भक भाग का ही अनुवाद किया गया हैं।

'पाखण्ड विडम्बन' कृष्ण मिश्र विरचित प्रबोध चन्द्रोदय के तृतीय अंक का अनुवाद है। इसमें धार्मिक मतमतान्तरों की विद्रूपता का चित्रण किया गया है। धर्म भी अब पाखण्ड और आडम्बरों से ग्रसित है। यह नाटक प्रतीकात्मक शैली में है।

'धनंजय .विजय' संस्कृत कवि कांचन के धनंजय–विजय व्यायोग का अनुवाद है। व्यायोग, रूपक का एक भेंद है। इसमें एक ही अंक होता है। भारतेन्दु ने नाट्य रुप की दृष्टि से ही इसका अनुवाद किया है। यह नाटक कौरवों.पांडवो की कथा पर आधारित है। इसमें वीर रस की प्रधानता है।

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान पर आधारित है। इसकी कथा का मूल आधार संस्कृत का चण्ड कौशिक नाटक है। इसके लेखक क्षेमेश्वर है। इस नाटक में राजा हरिश्चन्द्र के सत्य और त्याग का वर्णन है। सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में भारतेन्दु की अपनी कुछ मौलिक उद्भावनाएं भी है। यह नाटक राजा हरिश्चन्द्र की सत्य प्रियता और दानशीलता का आदर्श प्रस्तुत करता है। अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक अत्यन्त सफल हैं इस नाटक के अनेक प्रदर्शन भी हो चुके हैं।

'मुद्रा.राक्षस' विशाखदत्त के संस्कृत.नाटक मुद्रा राक्षस का अनुवाद है। यह नाटक चन्द्रगुप्त के समय की राजनीतिक स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है और चाणक्य की संगठनात्मक शक्ति, कूटनीतिक दृढ़ता और नैतिकता का परिचायक हैं। यह अनुदित नाटक अनुवाद की भाषा और स्वरुप का मौलिक उदाहरण है। यह नाटक साहित्य और रंगमंच दोनों के लिये अनुकरणीय है।

'कर्पूर मंजरी' राजशेखर कृत प्राकृत भाषा के नाटक कर्पूर मंजरी का अनुवाद है। यह प्रेम प्रधान नाटक है। इसकी भाषा बड़ी सजीव है। लोकोक्तियों का भी बड़ा सुन्दर प्रयोग इस नाटक में हुआ है।

'दुर्लभबन्धु' शेक्सपियर के अंग्रेजी.नाटक मर्चेण्ट आफ वेनिस का भावानुवाद हैं इसमें भारतेन्दु ने मूल भावों की रक्षा करते हुए, भारतीय वातावरण के अनुकूल कथा को ढ़ालने का प्रयास किया है। पात्रों का नाकरण भी भारतीय पद्धति पर है। इस नाटक में सच्ची मित्रता और धनिकों की क्रूरता का चित्रण हैं। यह नाटक दया, परहित और सच्चाई का आदर्श प्रस्तुत करता है।

अनूदित नाटकों में 'विद्या सुन्दर' और 'सत्य हरिशचन्द' छायानुवाद हैं, बाकी नाटकों के अनुवाद में भारतेन्दु ने कोई खास परिवर्तन नहीं किया। इस प्रकार भारतेन्दु ने बंगला, संस्कृत, प्राकृत और अंग्रेजी से अनुवाद के लिये नाटक चुने। उनके अनूदित नाटक आदर्श प्रधान है। इन नाटकों के माध्यम से भारतेन्दु ने भारतीयों को कर्तव्य परायणता की ओर उन्मुख करने का प्रयत्न किया है। भारतेन्दु के मौलिक नाटक भी देश.भक्ति से अनुप्राणित है। उनमें तत्कालीन समाज और राजनैतिक स्थिति का व्यापक चित्रण हैं। अंग्रेजों और जमीदारों की शोषण नीति, जनता की उदासीनता, धार्मिक अन्धविश्वास और आडम्बरों पर भारतेन्दु ने खुलकर व्यंग्य किये है। भारतेन्दु मानवीय आचरण और भारतीय आचरण और भारतीय संस्कृति के व्याख्याकार है। उनका हर नाटक दर्शक को कोई न कोई प्रेरणा देता है। उनकी मान्यता ही है– नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावें।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1 – सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए–

1) भारतेन्दु का प्रथम मौलिक नाटक है–

अ– चन्द्रावली

ब– वैदिकी हिंसा–हिंसा न भवति

स– भारत–दुर्दशा

द– विषस्य विषमौषधम्

उत्तर ——————————

2) 'मुद्रा–राक्षस' नाटक है–

अ– मौलिक

ब– अनुदित

उत्तर ——————————

3) 'धनंजय .विजय' किस भाषा से अनुदित है?

अ– संस्कृत

ब– मराठी

स– अंग्रेजी

द– बंगला

उत्तर ——————————

4) भारतेन्दु के अनूदित नाटक हैं–

अ– घटना प्रधान

ब– वातावरण प्रधान

स– चरित्र प्रधान

द– आदर्श प्रधान

उत्तर ——————————

प्रश्न 2 – 'विषस्य विषमौषधम' किस शैली में लिखा गया नाटक है?

उत्तर – ——————————————————————

——————————————————————

प्रश्न 3 – 'नील देवी' नाटक में किसकी वीरता का वर्णन है?

उत्तर – ——————————————————————

——————————————————————

प्रश्न 4 – भारतेन्दु ने किस.किस भाषा से अनुवाद के लिये नाटक चुने?

उत्तर – ____

____

____

प्रश्न 5 – शेक्सपियर के अंग्रेजी.नाटक 'मर्चेण्ट आफ वेनिस' का भावानुवाद कौन सा नाटक है?

उत्तर – ____

____

प्रश्न 6 – 'धनंजय .विजय' नाटक किनकी कथा पर आधारित है। इसमें कौन से रस की प्रधानता है?

उत्तर – ____

____

प्रश्न 7 – 'पाखण्ड विडम्बन' कृष्ण मिश्र विरचित प्रबोध चन्द्रोदय के तृतीय अंक का अनुवाद है। इसमें किसका चित्रण किया गया है?

उत्तर – ____

____

प्रश्न 8 – 'पाखण्ड विडम्बन' नाटक किस शैली में है?

उत्तर – ____

____

प्रश्न 9– सत्य/असत्य लिखिए–

अ– अनूदित नाटकों में 'विद्या सुन्दर' और 'सत्य हरिश्चन्द' छायानुवाद हैं,।

उत्तर – ______________

ब– भारतेन्दु की मान्यता है कि – नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावें।

उत्तर – ______________

स– अभिनय की दृष्टि से भारतेन्दु के नाटकों में 'सती प्रताप' सबसे अधिक लोकप्रिय है।

उत्तर – ______________

द–'भारत–दुर्दशा' राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत प्रतीकात्मक नाटक है।

उत्तर – ______________

1.6 'अन्धेर नगरी' नाटक का सारांश

अन्धेर नगरी' रूपक का एक भेद – प्रहसन है। प्रहसन एक अंक का होता है। अंक में कई दृश्य हो सकते हैं। इसकी कथा में किसी की मूर्खता पर हास्य आदि से लेकर अन्त तक रहता है। इस प्रहसन का नायक अन्धेर नगरी का राजा चौपट राजा है। उसके राज्य में अन्धेर.ही.अन्धेर है। वहाँ भाजी और खाजा दोनों ही टके सेर बिकते हैं, कल्लू बनिया की दीवाल गिरने से बकरी मर जाती है, चौपट्ट राजा बहुतों को फांसी देता हुआ अन्त में स्वयं फांसी पर चढ़ जाता है, कथावस्तु दृश्यानुसार निम्न प्रकार है। यह एक अंक का प्रहसन है जिसमें छः दृश्य है।

पहला दृश्य (बाह्य प्रान्त)

महन्त जी अपने चेलों गोबरधनदास और नारायणदास के साथ रामधुन गाते हुए नगर में प्रवेश करते हैं। वे दोनों चेलों को भिक्षा लाने को भेजते हैं। गोबरधनदास पश्चिम की ओर और नारायणदास पूरब की ओर जाता है। गोबरधनदास अच्छी भिक्षा लाने के लिए महन्त को आवश्स्त करता है। महन्त गोबरधनदास को लोभ न करने का उपदेश देकर भेजते हैं।

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।

लोभ कभी नहीं कीजिए, यामै नरक निदान।।

दूसरा दृश्य (बाजार)

गोबरधनदास बाजार पहुँच जाता है। उसे भिक्षा में सात पैसे मिलते हैं, वह देखता है कि बाजार में सारी चीजें टके सेर बिक रही है। कबाब टके सेर बिक रहा है। नारंगी वाला नारंगी टके सेर बेच रहा है। चना जोर गरम टके सेर बिक रहा है। हलवाई मिठाई टके सेर बेच रहा है। सब्जी, बादाम व पिस्ते आदि मेवा टके सेर बिक रही है। चूरन वाला चूरन टके सेर और मछली वाला मछली टके सेर बेच रहा है। जात वाला ब्राम्हण टके सेर सारी जातें बेच रहा है ओर बनिया आटा, दाल, नमक, घी, चीनी, चावल, मसाला आदि सभी सामान टके सेर बचे रहा है।

सारा सामान टके सेर बिकता देखकर गोबरधनदास को बड़ी प्रसन्नता होती है। वह हलवाई से इस नगरी और इसके राजा का नाम पूछता है। हलवाई बतलाता है कि इस नगरी का नाम अन्धेर नगरी और राजा का नाम चौपट्टराजा है। गोबरधनदास प्रसन्नता में गा उठता है।

अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा,

टके सेर भाजी, टका सेर खाजा।

गोबरधनदास भीख में मिले सात पैसों की साढ़े तीन किलो मिठाई लेकर महन्त जी के पास आता है।

तीसरा दृश्य (जंगल)

महन्त और नारायणदास एक ओर से राम भजो गीत गाते हुए आते है और एक ओर से गोबरधनदास आनन्दमग्न हो अन्धेर नगरी का गुणगान करता हुआ आता है। गोबरधनदास आनन्दमग्न हो अन्धेर नगरी के बाजार का सारा हाल बताता है और वहीं रहकर खूब माल खाने की इच्छा व्यक्त करता है। महन्त जी उसे समझाते है–

बच्चा ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है जहाँ टके सेर भाजी और टके सेर ही खाजा हो। गोबरधनदास पर इस चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह वहीं रह जाता है। गुरू महन्त अन्य शिष्य नारायणदास सहित अन्धेर नगरी से चले जाते हैं। जाते हुए कह जाते हैं कि संकट के समय वह उनका स्मरण कर ले। गोबरधनदास टके सेर माल खाकर खूब मोटा–तगड़ा हो जाता है।

चौथा दृश्य (राज सभा)

चौपट्ट राजा का दरबार लगा हुआ है। राजा, मन्त्री और नौकर उपस्थित हैं। एक सेवक चिल्लाकर कहता है। पान खाइये महाराज। राजा पीनक से चौंककर उठता है और कहता है। क्या कहा? सूपनखा खाइये। मन्त्री हाथ पकड़कर कहता है। पान खाइये महाराज। राजा मन्त्री को हुकम देता है कि सेवक को सौ कोड़े लगाये जाये। मन्त्री कहता है कि इस सेवक का दोष नहीं है न तमोली पान लगाकर देता और न यह पुकारता। राजा तमोली के दो सौ कोड़े लगाने की सजा सुनाता है। मन्त्री कहता है कि आप पान खाइये। आप पान से नहीं अपितु सूपनखा के नाम से डरे है। सजा तो सूपनखा को होनी चाहिए। राजा घबड़ा कर मन्त्री से कहता है।

फिर वही नाम ? मन्त्री तुम बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देगें कि मन्त्री बेर.बेर तुम्हें सौत बुलाना चाहता है।

चौपट्टराजा शराब पीकर उन्मत हो जाता है। इतने में एक फरियादी आकर फरियाद करता है कि कल्लू बनिया की दीवाल गिरने से उसके नीचे उसकी बकरी दब कर मर गई। इसका न्याय किया जाय।

चौपट्टराजा की न्याय प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। वह कल्लू बनिया की दीवाल को तत्काल पकड़कर लाने का आदेश देता है। मन्त्री कहता है कि दीवाल को नहीं लाया जा सकता। इस पर चौपट्टराजा कल्लू बनिया को ही पकड़ कर लाने का आदेश देता है। कल्लू बनियां अपने को निर्दोष बतलाकर कमजोर दीवाल बनाने के लिए कारीगर को दोषी ठहराता है। राजा कल्लू को छोड़ देने और कारीगर को पकड़ लाने का आदेश देता है। कारीगर अपने को निर्दोष बतलाकर चूने वाले का कसूर बतलाता है, जिसने खराब चूना दिया। राजा कारीगर को छोड़ने और चूने वाले को पकड़ लाने का आदेश देता है। चूने वाला सारा दोष भिश्ती का बतलाता है जिसने चूने में ज्यादा पानी डालकर उसे खराब कर दिया। राजा चूने वाले को छोड़ने और भिश्ती को पकड़ कर लाने का हुक्म देता है। भिश्ती कहता है कस्साई ने इतनी बड़ी मशक बना दी जिसमें पानी ज्यादा आ गया, अतः सारा कसूर कस्साई का है। राजा भिश्ती को छोड़ने और कस्साई को पकड़ कर जाने का हुक्म देता है। कस्साई कहता है कि गड़रिये ने टके में इतनी बड़ी भेड़ दे दी कि उसकी बड़ी मशक बन गई। अतः सारा कसूर गडरिये का है। राजा कस्साई को छोड़ने और गड़रिये को पकड़ कर लाने का हुक्म देता है। गड़रिया अपनी सफाई देता हुआ कहता है। महाराज। उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई तो उसके देखने में मैनें छोटी.बड़ी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं। राजा गड़रिये को निकालने और कोतवाल को पकड़ कर लाने का हुक्म देता है। कोतवाल के लाये जाने पर उसे तत्काल फांसी पर चढ़ा देने का हुक्म देता है। चौपट्टराजा का न्याय .दरबार समाप्त होता है।

पांचवा दृश्य (अरण्य)

कोतवाल दुबला.पतला था। अतः उसकी गर्दन में फांसी का फन्दा ढीला रहता है। चौपट्टराजा हुक्म देता है कि जिस मोटे.तगड़े आदमी के गले में फन्दा आ जाय उसी को फांसी पर चढ़ा दिया जाय। चार प्यादे मोटे.ताजे आदमी की खोज में निकलते है। उनको गोबरधनदास टके सेर की मिठाई खाता हुआ मिलता है। वे उसे ही पकड़ लाते है क्योंकि उसकी मोटी गर्दन में फांसी का फन्दा फिट आ जायगा। उसके गिड़गिड़ाने का प्यादों पर कोई असर नहीं पड़ता। अब उसे गुरू की चेतावनी याद आती है और वह संकट में मुक्ति हेतु गुरु का स्मरण करता है।

छठा दृश्य (श्मशान)

गोबरधनदास को चार सिपाही पकड़े हुए फांसी देने के लिए लाते है। वह हाय! हाय! चिल्लाता है। इतने में गुरूजी और नारायणदास आ जाते है। वे सिपाहियों को हटाकर गोबरधनदास के कान में कुछ कह देते है। गोबरध

ानदास कहता है कि हम अभी फांसी पर.चढेंगे। गुरूजी भी फांसी चढ़ने की जिद्द करते है। सभी फांसी पर चढ़ने के दोनों के झगड़े को देखकर चकित रह जाते है। चोपट्टराजा पूछता है कि यह सब क्या गड़बड़ है। गुरूजी समझाते है कि इस शुभ मूहूर्त में जो भी फांसी पर चढ़ेगा सीधा स्वर्ग जायेगा। मन्त्री भी फांसी पर चढ़ने को तैयार हो जाता है, कोतवाल भी फांसी पर चढ़ने की जिद्द करता है। मूर्ख चौपट्टराजा यह सब देखकर कहता है–

चुप रहो सब लोग। राजा के रहते और कौन बैकुण्ठ जा सकता है, हमको फांसी पर चढ़ाओ। जल्दी! जल्दी

राजा को लोग टिकटी पर खड़ा करते है। राजा फांसी पर चढ़ जाता है। महन्त के निम्न कथन के साथ पटाक्षेप होता है।

जहाँ न धर्म न बुद्धि नहि, नीति न सुजान समाज।

ते ऐसाहिं आपुहिं नसे, जैसे चौपट्टराज।।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सही विकल्प बताइये–

1) 'अन्धेर नगरी' प्रहसन में कितने दृश्य है?

अ– दो

ब – छः

स– सात

द– चार

उत्तर ——————————

प्रश्न 2– महन्त गोबरधनदास को लोभ न करने के लिए कौन सा उपदेश देते हैं?

उत्तर – ————————————————————

————————————————————

प्रश्न 3– 'अन्धेर नगरी' के बाजार में सारा सामान किस भाव में बिकता है?

उत्तर – ————————————————————

————————————————————

प्रश्न 4– कल्लू बनिया की दीवाल गिरने से उसके नीचे फरियादी की बकरी के दब कर मरने पर न्याय प्रकिया के दौरान चोपट्टराजा किनको किनको दोषी ठहराता है और अन्त में किसको फाँसी की सजा सुनाता है?

उत्तर – ————————————————————

————————————————————

प्रश्न 5– कोतवाल को फांसी क्यों नहीं दी जाती?

उत्तर –

प्रश्न 6– गोबरधनदास को फांसी के लिए क्यों पकड़ लाते है?

उत्तर –

प्रश्न 7– अन्त में फांसी पर कौन चढता है?

उत्तर –

प्रश्न 8– महन्त के किस कथन के साथ नाटक का पटाक्षेप होता है?

उत्तर –

प्रश्न 9 – सही जोड़े बनाइये–

प्रथम दृश्य	बाजार
दूसरा दृश्य	जंगल
तीसरा दृश्य	राज सभा
चौथा दृश्य	नगर प्रवेश बाहय प्रान्त
पांचवा दृश्य	श्मशान
छठा दृश्य	अरण्य

1.7 'अन्धेर नगरी' नाटक का उद्देश्य

भारतीय नाटक उद्देश्य.प्रधान होते हैं और पाश्चात्य नाटक समस्या.प्रधान। पाश्चात्य नाटकों के समान भारतीय नाटकों में संघर्ष की समाप्ति ही उद्देश्य प्राप्ति के रूप में नहीं दिखाई जाती है वरन् उनके उद्देश्य में जीवन.पथ प्रशस्त वाली विशिष्टता निहित रहती है।

भारतेन्दु जी नाटक के पाँच उद्देश्य मानते हैं – 1. हास्य, 2. शृंगार, 3. कौतुहल, 4. समाज संस्कार तथा 5. देशवत्सलता। कुछ रचनायें समय के साथ कभी पुरानी नहीं पड़ती हैं। बल्कि बदलते परिवेश और बदलती परिस्थितियों में नये नये अर्थों में प्रतिबिम्बित होती हैं। चाहे अंग्रेजी शासन हो, चाहे स्वतंत्र भारत के बदलते शासन की परम्परा का लम्बा इतिहास हो, चाहे विश्व के किसी भी कोने का इतिहास हो, 'अन्धेर नगरी' हर काल, हर स्थान से जुड़ता है और जुड़कर अपना नया ही सौन्दर्य उद्घाटित करता है। यद्यपि 'अन्धेर नगरी' अत्यन्त लोकप्रिय प्रहसन

है फिर भी इसने समसामयिक दृष्टि से और आधुनिक रंग.चेतना के विकसित दौर में एक अत्यन्त गम्भीर और सृजनात्मक कृति के रूप में अपना स्थान बना लिया है।

यूँ तो यह नाटक 1881 ई. में किसी जमींदार को लक्षित करके नेशनल थियेटर के लिए एक ही बैठक में लिखा गया था एक ही रात में भारतेन्दु ने एक सामान्य लोकोक्ति 'अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' को इतना व्यंग्यात्मक सार्वजनीन, सार्वलौकिक और सृजनात्मक अर्थ दे दिया। रंग मण्डली के अनुरोध ा पर लिखा गया यह प्रहसन भारतेन्दु के नाट्यकर्म की तीव्रता और गम्भीरता को भी प्रस्तुत करता है और यह सोचने पर भी विवश करता है कि यह छोटा.सा प्रहसन कैसे आज असामान्य और चुनौतीपूर्ण हो गया।

ऊपर से हास्य.प्रधान दिखने वाला यह प्रहसन वस्तुतः तीखी, व्यंग्यपूर्ण रचना है। यह दूसरी बात है कि भारतेन्दु का व्यंग्य बहुत कटु और उतना प्रत्यक्ष नहीं है जितना बंगला नाटककार माइकेल का है। शायद यह उस युग की आवश्यकता भी थी फिर भी भारतेन्दु के व्यंग्य का सौन्दर्य आक्रामकता में नहीं उसकी अनायास प्रवाहमान अभिव्यक्ति और रोचकता में है जो हंसाता भी है और तिलमिलाता भी है।

महन्तजी के कथन में नाटक का सन्देश प्रारम्भ में व्यंजित है।

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।

तृतीय अंक में भी महन्तजी चेतावनी के रूप में अपना संदेश देते है।

सेत–सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देश कुदेश महँ, कबहुँ न कीजै बास।।
कोकिल बायस एकसम, पंडित मूरख एक।
इन्द्रायन दाड़िम विषय, जहाँ न नेकु विवेक।।
बसिये ऐसे देश नहिं, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुःख पाइए, प्रान दीजिए रोय।।

"सो बच्चा चलो यहाँ से। ऐसी अन्धेर नगरी में हजार मन मिठाई मुत की मिले तो किस काम की? यहाँ एक छन नहीं रहना। देख मेरी बात मान, नहीं पीछे पछतावेगा।"

इस सामान्य से दिखने वाले कथानक में सामन्ती व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था की भ्रष्टाचारिता, सत्ता की विवेकहीनता, शिथिलता.जड़ता, सत्ताधारी की मानसिकत्ता, उसकी निरंकुशता, निरीह जनता को लम्बे समय तक उलझाने और ठगने की प्रवृत्ति, आज के युग में मूल्यों की विकृति और विसंगति को चित्रित किया गया है। इसे मगर मात्र दृष्टान्त शैली मानें तो इसका केन्द्रबिन्दु कर्मफल है– लोभवृत्ति और चौपट्ट राजा की परिणति। लेकिन नाटक का मूल स्वर प्रचलित अराजक, मूल्यहीन अमानवीय व्यवस्था प्रणाली का है जिसमें अन्याय है, झूठ है, लोभ और स्वार्थ है, शोषण जैसी वृत्तियाँ पनप रही है और फिर भी जीवन प्रवाहमान है ज्यों का त्यों।

अन्धेर नगरी अन्ध.व्यवस्था का प्रतीक है। चौपट्ट राजा विवेकहीनता और न्यायदृष्टि के न होने का मूर्त स्वरूप है। उसका न्याय भी अन्धता का प्रमाण है क्योंकि बकरी की मृत्यु का दण्ड देने के लिए गोबरधनदास पकड़ लिया गया अर्थात् कोई भी दण्डित हो सकता है। अविवेकी, प्रमादी, मूल्यहीन राजा की परिणति तो भारतेन्दु ने दिखायी ही है लेकिन साथ ही उन्होंने गोबरधनदास के द्वारा मनुष्य की लोभवृत्ति पर भी व्यंग्य किया है। लोभवृत्ति ही मनुष्य को अन्धेर नगरी की अव्यवस्था और अमानवीयता में फसाँती है।

अंग्रेजों की न्याय दृष्टि और प्रणाली में भी शोषक.शोषित, अपराधी.निरपराधी में कोई अन्तर नहीं था। आज

भी हमारी न्याय प्रणाली की यही स्थिति है। हमारी समकालीन शासन व्यवस्था की, शोषकवृत्ति पर तो अन्धेरी नगरी व्यंग्य है ही, पर वह अन्धेर नगरी विश्व के किसी भी कोने में हो सकती है क्योंकि ये प्रवृत्तियाँ आधुनिक युग की देन हैं।

बाजार दृश्य और दरबार दृश्य इस प्रहसन के अमूल्य नाटकीय दृश्य है। सत्ता की अव्यवस्था, विवेकहीनता, मूल्यहीनता का परिचय इन दो दृश्यों में मिलता है। बाजार का दृश्य पूरे देश के स्तर पर सस्तेपन, विकृति, आडम्बर, अमानवीयता, शोषण और संवेदना की कमी को व्यक्त करता है। चना जोर गरम बचेने वाले घासीराम के शब्दों में बंगाली, मिया, हाकिम सब आ जाते है। वह कहता है।

चना हाकिम साब जो खाते।
सब पर दूना टिकस लगाते।।

कुंजडिन सब्जी बेचते.बेचते अन्त में जब यह कह देती है कि "ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।" तो सारा सब्जी बाजार व्यंग्यात्मक अर्थ की व्यापकता में बदल जाता है। मुगल का कथन तात्कालीन स्थिति की यथार्थता का बोधक है–"आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंग्रेजों का भी दांत कट्टा हो गया। नाहक ही रूपया खराब किया बेवकूफ बना। हिन्दुस्तान का आदमी लक.लक हमारे यहाँ का आदमी बुँबुक.बुँबुक।" पाचक वाले की पंक्तियां महाजन, एडीटर, नाटक वाले, बनिये, साहब और पुलिस वालों पर प्रहार करती है।

चूरन जब से हिन्द में आया।
इसका धन बल सभी घटाया।।
चूरन अमले सब जो खावैं।
दूनी रिश्वत तुरन्त पचावैं।।
चूरन नाटक वाले खाते।
इसकी नकल पचाकर लाते।।
चूरन सभी महाजन खाते।
जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खावैं एडिटर जात।
जिसके पेट पचै नहिं बात।
चूरन साहेब लोग जो खाता।
सारा हिन्द हजम कर जाता।।
चूरन पुलिस वाले खाते।
सब कानून हजम कर जाते।।

ये पंक्तियाँ केवल अंग्रेजी शासन तक ही सीमित नहीं है और इन सबके बीच में भारतेन्दु जब जात वाले ब्राम्हण को टके में जात बेचते दिखा देते है तो सारी मूल्यहीनता और संवेदनशून्य स्थिति साकार हो जाती है। चतुर्थ दृश्य राजनीतिक कार्यवाही के खोखलेपन, आम.आदमी की बहलाने.फुसलाने और न्याय के सन्दर्भ में अत्यन्त हल्की मन.स्थिति, प्रमाद और हास्यस्पद सत्ता को सामने लाता है। जिस तरह एक.एक करके बनिया, भिश्ती, कस्साई आदि लाये जाते है, वह एक खोखली, झूठी, ठगने वाली न्याय प्रक्रिया और अमानवीय क्रम का चित्र लगता है। आम आदमी की प्रार्थना और उसकी पीड़ा वहीं की वहीं रह जाती है– सब स्वार्थ, उन्माद में उलझ जाते हैं। इस दृश्य में बड़ी

गति, लय और सम्भावनायें हैं। इसके पात्र वर्ग तथा व्यंग्य का प्रतिनिधित्व करते है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम निष्कर्ष रूप से कह सकते है कि अन्धेर नगरी जीवन्त सार्थक, समकालीन रचना है जिसका उद्देश्य तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अव्यवस्था को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करना है और महन्त जी के शब्दों में यह संदेश व्यक्त करना है कि लोभ सम्पूर्ण बुराईयों की जड़ है तथा लोभ कभी नहीं करना चाहिए। अन्त में वे अपने शब्दों में उद्देश्य और संदेश प्रकट करते हुए कहते है।

जहाँ न धर्म न बुद्धि नहि नीति न सुजन समाज।

ते ऐसहि आपुहि नसे जैसे चौपट राज।।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1 – भारतेन्दु जी नाटक के कितने और कौन कौन से उद्देश्य मानते हैं?

उत्तर ______________________________

____

____

प्रश्न 2 – महन्तजी के कथन में नाटक का जो सन्देश प्रारम्भ में व्यंजित है उसे लिखिए।

उत्तर – ______________________________

____

प्रश्न 3 – भारतेन्दु ने गोबरधनदास के द्वारा मनुष्य की किस वृत्ति पर व्यंग्य किया है?

उत्तर – ______________________________

____

प्रश्न 4 – अन्धेर नगरी किसका प्रतीक है?

उत्तर – ______________________________

____

प्रश्न 5 – चौपट राजा किसका प्रतीक है?

उत्तर – ______________________________

____

प्रश्न 6– सत्ता की अव्यवस्था, विवेकहीनता, मूल्यहीनता का परिचय किन दो दृश्यों में मिलता है?

उत्तर – ______________________________

____

प्रश्न 7– चतुर्थ दृश्य (राजसभा) किस स्थिति का परिचायक है?

उत्तर – ____________________

प्रश्न 8– भारतेन्दु के व्यंग्य का सौन्दर्य किसमें है?

उत्तर – ____________________

प्रश्न 9– 'अन्धेर नगरी' का उद्देश्य बताइये।

उत्तर – ____________________

प्रश्न 10– भारतेन्दु जब जात वाले ब्राम्हण को टके में जात बेचते दिखा देते है तो कौन सी स्थिति साकार हो जाती है?

उत्तर – ____________________

1.8 सारांश

भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा नामक इस इकाई के अध्ययन से स्पष्ट है कि भारतेन्दुजी के लिये नाटक साहित्य भी था और रंगमंच भी। वे नाटक को समाज और राष्ट्र के जागरण एवम् युग परिवर्तन का सशक्त माध्यम मानते थे। उन्होंने परम्परा और आधुनिक, दोनों स्रोतों से प्राप्त रंग दृष्टियों को आत्मसात करते हुए हिन्दी की अपनी रंग दृष्टि और नाट्य परम्परा का विकास किया। अतः कह सकते हैं कि भारतेन्दु की नाट्य दृष्टि भारतीय और आधुनिक है, रूढ़िबद्ध नहीं। भारतेन्दु मूलतः लोकचेतना के नाटककार हैं लेकिन वे संस्कृत के शास्त्रीय विधान, पारसी नाटक और पश्चिम की नाट्य कला के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं हैं।

भारतेन्दु द्वारा बताये गये उद्देश्यों से स्पष्ट है कि वे मनोरंजन के विरोधी नहीं हैं न ही हास्य को हल्की-फुल्की नगण्य चीज मानते हैं, बल्कि जनजागरण एवम् लोकरुचि के लिये उन्हें अनिवार्य मानते हैं।

भारतेन्दु के मौलिक और अनुदित नाटकों के संक्षिप्त परिचय से यह भी स्पष्ट होता है कि वह स्वाधीन चेतना

के नाटककार थे। उन्होंने जनता की प्रकृति और युग की आवश्यकताओं को पहचानकर नाटक लिखा। वे अपनी परम्परा, अपने युग, हिन्दी की नाट्य कला और भाषा का संस्कार करने में अनुवादों का महत्व समझ रहे थे अतः अनुवाद हेतु वे नाटकों का चयन सोच.समझकर करते थे। अनुवाद क्षेत्र में उनके व्यक्तित्व और व्यापक मानवीय संवेदना और कला.कौशल का परिचायक है।

1.9 अपनी प्रगति जाँचिए

1. 'अन्धेर नगरी' प्रहसन की कथावस्तु लिखिए।
2. 'अन्धेर नगरी' के उद्देश्य पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
3. भारतेन्दु हरिश्चद्र जी के मौलिक नाटकों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

1.10 नियतकार्य/गतिविधियाँ

1 भारतेन्दु के नाटकों के आदर्शवादी, यथार्थवादी और प्रतीकात्मक पात्रों का चयन कर पत्रक (चार्ट) तैयार करें।

2 भारतेन्दु के मौलिक एवम् अनुदित नाटकों के प्रकाशन वर्ष के कमानुसार पत्रक (चार्ट) तैयार करें।

3 भारतेन्दु के नाटकों के नाम तथा उनके प्रमुख पात्रों के नामों का पत्रक (चार्ट) तैयार करें।

4 'अन्धेर नगरी' प्रहसन के छठवें दृश्य का अभिनयात्मक पठन करें।

1.11 स्पष्टीकरण के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

1.12 चर्चा के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर आप और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

'अन्धेर नगरी' में नाट्य तत्व एवम् युगबोध

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 प्रमुख पात्र एवम् चरित्र चित्रण
2.4 भाषा शैली
2.5 सम्वाद योजना
2.6 रचना.विधान में 'अन्धेर नगरी' एक विलक्षण नाटक
2.7 गीत योजना
2.8 भारतेन्दु युगीन समय
2.9 युगबोध की कसौटी पर अन्धेर नगरी
2.10 सारांश
2.11 अपनी प्रगति जाँचिए
2.12 नियतकार्य / गतिविधियाँ
2.13 स्पष्टीकरण के बिन्दु
2.14 चर्चा के बिन्दु

2.1 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने नाटककार भारतेन्दु के व्यक्तित्व, विरासत में मिली विभिन्न नाट्य परम्पराएं, भारतेन्दु की नाट्य सम्बन्धी अवधारणाएं तथा भारतेन्दु द्वारा रचित विभिन्न नाटकों के बारे में परिचय प्राप्त किया। साथ ही 'अन्धेर नगरी' नाटक का सारांश एवम् उसमें निहित उद्देश्य का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप –

- पात्र.योजना एवम् चरित्र.चित्रण, सम्वाद एवम् भाषा.शैली जैसे नाट्य तत्वों के सन्दर्भ में 'अन्धेर नगरी' के विवेचन से आप आलोच्य नाटक के नाट्य तत्वों की विशिष्टताओं से परिचित हो पाएंगे।

- गीत योजना ने 'अन्धेर नगरी' की सफलता में अपना क्या योगदान दिया है इस तथ्य से भी आप परिचित हो पाएंगे।

- भारतेन्दु युगीन समय के सामाजिक.राजनीतिक परिवेश को जानकर उसके परिप्रेक्ष्य में व्यक्त यथार्थ को जान पाएंगे।

2.2 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा एवम् भारतेन्दु के नाट्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। इस इकाई में नाट्य तत्वों के आधार पर 'अन्धेर नगरी' की विवेचना की गई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों में 'अन्धेर नगरी' ऐसा नाटक है जिसकी सार्थकता एवम् मूल्यवत्ता समय के साथ.साथ बढ़ती गयी है। अपने लघु आकार में भी कालजयी होना और नाट्य रचना और रंगमंच को क्रांतिकारी मोड़ देना इस नाटक की मौलिकता एवम् विशिष्टता का परिचायक है। प्रस्तुत इकाई में 'अन्धेर नगरी' नाटक का सम्वाद, भाषा.शैली, पात्र योजना एवम् गीत योजना आदि बातों पर पाठ्य सामग्री को केन्द्रित किया गया है ताकि आपको नाटक के उपर्युक्त सभी पक्षों को जानने एवम् समझने का अवसर प्राप्त हो।

'अन्धेर नगरी' अपने संक्षिप्त कलेवर में प्रहसन होते हुए भी अपनी व्यापक अर्थवत्ता की वजह से कालजयी नाटक है। 'अन्धेर नगरी' नाटक की अन्तर्वस्तु का गहरा सम्बन्ध भारतेन्दु के समय की भारत की विशिष्ट परिस्थितियों से है। भारतेन्दु युग की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियां क्या थीं? उस युग की सांस्कृतिक आवश्यकताएं क्या थीं? यह जानने के लिये भारतेन्दु युगीन समय को जानना आवश्यक है। इसी दृष्टि से भारतेन्दु युगीन समय से आपको परिचित कराने का प्रयास यहाँ किया गया है। उसी परिप्रेक्ष्य में 'अन्धेर नगरी' में व्यक्त यथार्थ क्या है और यह व्यक्त यथार्थ कहाँ तक वर्तमान सन्दर्भों और समकालीन स्थितियों का संकेत करती है इन सारी बातों को स्पष्ट करने के लिये युगबोध की कसौटी पर 'अन्धेर नगरी' को परखने का प्रयास इस इकाई में किया गया है।

2.3 प्रमुख पात्र एवम् चरित्र चित्रण

'अन्धेर नगरी' के पात्रों को किसी वर्ग.भेद या वर्गीकरण.पद्धति या शास्त्रीय आधारों पर नहीं देखा जाना चाहिए। यहाँ पात्र.परिकल्पना, पात्रों का चयन न पूर्वनिर्धारित लगता है, न नाटककार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र! यहाँ पात्र अपने पूरे समूह में, समूह के संयोजन, उसके अर्थवता में एक साथ महत्वपूर्ण हैं। भारतेन्दु की पात्र.परिकल्पना ही अपने में सार्थक और सोद्देश्य नाटक की अनिवार्यता हैं जिसमें यहाँ पात्र भी अपनी व्यंजनाओं में सोद्देश्य और जीवित हो जाते हैं। इन पात्रों का उद्देश्य न कथा कहना है, न मात्र मनोरंजकता या चमत्कार पैदा करना है और न 'सोद्देश्यता' के कारण इसमें कोई स्थूल प्रभाव एकरसता या बासीपन आया हैं। ये पात्र समय के साथ.साथ समूचे विश्व.सन्दर्भ और व्यवस्था.तंत्र में बार.बार जीवित होते हैं और हमें गुदगुदाते हुए जीवन के अराजक और अवरोधक तत्वों के प्रति जागरूक बनाते हैं।

पात्रों के उस बड़े समूह में अगर ध्यान दिया जाये तो तीन पात्र मुख्य लगते हैं –महन्त, गोबरधन दास और राजा। नाटक की कल्पना का आरम्भ, समस्या और व्यंग्य का विकास, उसका संयोजन और संचालन, उसकी अभिव्यक्ति इन्हीं के द्वारा होती है। एक अन्य पात्र है। जो नाटक में अप्रत्यक्ष होते हुए भी प्रत्यक्ष है और नाटकीय मोड़, करुणा, व्यंग्य प्रस्तुत करने वाला है और वह है बकरी। बकरी का अमूर्त किन्तु बार.बार मूर्त होता हुआ रूप कथानक, कथानक में पात्रों के समूह के आगमन, व्यंग्य के विकास का आधार हो जाता है और नाटक की उत्तम शिक्षा से जुड़ जाता है।

महन्त का चरित्र इस भ्रष्ट समाज में भी मूल्य.चेतना का संकेत करता है एक आस्था और निष्ठा, संयम और कूटनीति का, दूरदर्शिता और प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देता है। वह पहले ही अपने अनुभवों और सूझ.बूझ के कारण अन्धेर नगरी की वास्तविकता और मायाजाल को समझता है और मोह, माया, लोभवृत्ति में न फंसने के लिए गोबरधनदास को समझाता है। गोबरधनदास द्वारा बहुत सारी मिठाई की भारी गठरी लाने पर महन्त का पहला प्रश्न यही

है कि किस धर्मात्मा से भेंट हुई ? उसे आश्चर्य होता है कि 'यह कौन.सी नगरी है और इनका कौन राजा है जहाँ टके सेर भाजी और टके सेर ही खाजा है? अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा के विषय में जानने पर उसका स्पष्ट कथन कि –

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास ।

ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।

गोबरधनदासके लोभ को देखकर वह कहते हैं कि देख बच्चा पीछे पछतायगा। महन्त स्वयं वहाँ एक क्षण भी नहीं रहना चाहता पर वह यह अवश्य कहता है कि 'कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना' तीसरे अंक में महन्त के ये शब्द आगामी स्थिति के व्यंजक और कथानक के मोड़ के द्योतक हैं। छठे अंक में महन्त शिष्य गोबरधनदास की दुर्गति देखकर पुनः कहते हैं कि 'तैंने मेरा कहना नहीं माना' लेकिन वह आत्मविश्वास के साथ नारायण की सामर्थ्य पर भरोसा रखकर उससे निश्चित रहने को भी कहते हैं। सिपाही से महन्त का व्यवहार स्पष्ट, निर्भीक और एक उपदेशक के आत्मसम्मान का है और चेतावनी का भी– देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा। 'अन्तिम दृश्य में महन्त की युक्ति से ही अन्धेर का अंत होता है और दोनों काम एक साथ होते हैं– नाटकीय स्थिति का स्वाभाविक, सुन्दर मोड़ और राजा जैसे व्यक्ति का अन्त भी अर्थात् समकालीन व्यंग्य की प्रखरता की सम्भावनाओं का विस्तार भी और महन्त के शब्दों में शिक्षा, प्रेरणा, भरतवाक्य का आधुनिक रूप भी। महन्त के इस पूरे चरित्र. चित्रण में बहुत विस्तार न होते हुए भी सूक्ष्म व्यंजनाओं और नाटकीय संयोजन की कला है। यह उल्लेख्य है कि महन्त भी निर्धारित ढाँचे का साधु नहीं है, न मात्र उपेदशक' है, वह अनुभवी, आत्मनिर्भर और अपने में मानवीय पात्र है। क्रोध, क्रूरता, पाखंड उसमें नहीं है और न ही वह एक ऐसी 'आर्दश प्रतिमा' है जिसे भारतेन्दु ने अपने अनुरूप गढ़ा हो। महन्त भी जीवन.चेतना से जुड़ा लोक से सीधे लिया गया और नाटकीय विडम्बना और नाटकीय सूत्रों से जुड़ा हुआ पात्र है।

यही वैशिष्ट्य गोबरधनदास का है– वही उत्सुकतावश, आनन्द और कौतूहलवश स्वाभाविक मानवीय स्वभाव के साथ नगरी में प्रवेश करता है। अपने गुरु के निर्देश और चेतावनी को न मानने वाला, स्वतः अपने ही कर्म से, अपनी की वृत्ति से अन्धेर नगरी में फँसने वाला पात्र। 'अन्धेर नगरी' का प्रत्यक्षदर्शी भोगी, भोक्ता वही है– पहले अत्यन्त आनन्दित.मुदित, मग्न, विस्मय और भोग की ललक से भरा सीधा सादा शिष्य। उस अन्ध.व्यवस्था, अन्ध न्याय का वही– यानी मूर्ख और लोभी ही शिकार बनता है। केवल इतना ही नहीं, भारतेन्दु ने सिपाही के मुख से यह भी कहलाया है कि 'इस राज में साधु.महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इससे तुम्हीं को फाँसी देंगें, 'बेअपराध, नाहक फाँसी चढ़ाये जाने की विसंगति, सरलता और मूल्यों का ध्वंश, लोभवृत्ति से 'मुटाने' का परिणाम – बहुत से संकेत यह पात्र भी देता है और नाटक के आरम्भ से अन्त तक के मोड़ों और परिणति का दृष्टि.भोक्ता बनता है और अनुभूति भी करता है। उसका महत्व शिष्य से अधिक आज के उस आम आदमी के रूप में है जो भूख और लोभ से पीड़ित है, भौतिक जगत् बाजार के व्यवसायिक माहौल में घिर जाता है और उस उपभोक्ता समाज में स्वयं को, अपने लक्ष्य को भूल जाता है। इस पात्र में भी भारतेन्दु ने इस प्रकार देश और काल के अनुसार विविध ा अर्थों के उद्घाटन के अनन्त अवसर दिये है। राजा का विवेकहीन, मद्यप, मूर्ख, उच्छृंखल, लोभी और स्वेच्छाचारी, अमानवीय रूप ही उसका और नाटक का महत्व बढ़ाता है। चालाक और स्वार्थपरक मन्त्री की चाटुकारिता से ग्रस्त और काम को टालने की आलस्यभरी मानसिकता, प्रमाद और अज्ञान सब आज के शासनतंत्र और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के संकेत करने वाले तत्व है। उसमें कोई भी शास्त्रीय, परम्परागत नायक तलाशना निरर्थक है। भारतेन्दु की कल्पना में न धीरोदात्त नायक है, न धीरोद्धत। उनकी कल्पना में वह एक अराजक तत्व है सामाजिक.सांस्कृतिक जागरण, मानवीय सम्वेदना के विकास का अवरोधक तत्व ऊपर से विध्वंसक न दिखते हुए भी वह जीवन की गति में बेहद घातक है जिसे फरियादी की आवाज नहीं सुनायी देती और सुनायी भी देती है तो उसका मूल भाव निर्ममता

का है, उपेक्षा और निरंकुश शासक का है। भारतेन्दु राजा पर हंसते दिखते है। उसका मजाक उड़ाते – वैसे ही जैसे निराला का कुकुरमुत्ता सारे साहित्यकारों, कलाकारों, दर्शनशास्त्रियों और वैज्ञानिकों पर हंसता है। इस राजा में क्रूरपन है, मूर्खता, अभ्रदता, अश्लीलत्व है और राजसभा में आम जनता के साथ एक खिलवाड़ी वृत्ति है – जिसमें किसी भी मोटे आदमी को पकड़कर लाने और नाहक फांसी पर चढ़ा देने का आदेश है। साथ ही राजसभा में एक. एक करके सारे जनवर्ग को बुलाने और वापस भेजने की शाहीवृत्ति और जड़ता है। उसे बकरी, कुबरी, लरकी कुछ भी होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। शराब और पान उसकी मानसिकता और पूरे इतिहास के प्रतीक हो जाते है। प्रसिद्ध नाटककार और समीक्षक डॉ. सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में वह राजा नहीं, राजा का कार्टून है– उसका व्यंग्यचित्र है। भारतेन्दु ने दस व्यंग्यचित्र में अभूतपूर्व ढ़ग से प्राण फूंके हैं। राजा. की अंतिम परिणति भी स्वयं उसी के हाथों होती है। किसी अन्य के कारण नहीं। जनता के आक्रोश को पचाकर–गलाकर प्रहसन की भूमि पर ले आना और स्वतः बैकुण्ठ.गमन या बैकुण्ठ न्याय चुन लेना विलक्षण कला है। कहीं भी नाटककार उस अधर्मी को धर्म या उपदेश की ओर ले जाने का प्रयास नहीं करता। पूरे विश्व में छाया यह राजा अनेक आयामों समय की नब्ज़ से सम्बद्ध है इसी कारण ऐसे पात्र न विस्मृत होते है, न मृत। अपनी अर्थवत्ता और व्यंजक शक्ति के साथ वह बार–बार जीवित होते है। चाटुकारों के कंधों से टिका, उनकी बैसाखी पर चलने वाला शासक क्या न्याय जीवित होते है। चाटुकारों के कंधों का स्वयं ही शिकार होगा। जब.जब 'अन्धेर नगरी' के प्रदर्शन हुए राजा के चरित्र को सबने अपने. अपने ढ़ंग से लिया। पर मुख्य ध्वनि सत्तावादी प्रवृत्तियों और अन्धाधुन्ध आदेशों और उनके पालन की मूर्खता जड़ता की रही।

'अन्धेर नगरी' के अन्य सभी पात्र एक पूरा समूह है जो समूह चेतना बनकर आते है– कबाबवाला, घासीराम, नारंगीवाली, हलवाई, कुंजड़िन, मुगल, पाचकवाला, मछलीवाली, जातवाला, बनिया, फरियादी कल्लू बनिया, कारीगर, चूनेवाला, भिश्ती, कसाई, कोतवाल, प्यादे और सिपाही। इन सबके अतिरिक्त सेवक, नौकर, नारायणदास भी है। ये पात्र एक भीड़ है जिनका उपयोग दृश्य संरचना के लिए भी किया गया है उदाहरणार्थ– बाजार की दृश्य रचना बेचने वालों का समूह ही करता है और राजसभा के दृश्य में आने वाले सभी पात्र उस पूरे सभा दृश्य की संरचना करते है उसी तरह प्यादे और सिपाही फांसी के दृश्य की। ये सभी पात्र वैयक्तिक विशेषताओं से युक्त होते हुए भी व्यक्ति चरित्र नहीं है– वह उस पूरे वर्ग के प्रतिनिधि और नाट्य के प्रतिनिधि अंग बनकर आते है। उनकी अपनी चारित्रिक रेखायें महत्वपूर्ण नहीं है उन स्थितियों और समकालीन सन्दर्भों की व्यंजना जो उनमें अनिवार्यतः लेखक ने गुंथी है, ये संश्लिष्ट, व्यंजक और जीवित पात्र है। ये सभी जातियों, वर्गों के पात्र हैं जहाँ स्त्री.पुरूष का कोई भेद नहीं है। यद्यपि पारसी रंगमंच और नौटंकी से जोड़ते हुए भारतेन्दु ने मछलीवाली के साथ शृंगार तत्व और नारंगी वाली के साथ भी उस विशेषता को जोड़ा है जो लोकव्यवहार, लोकभाषा और संस्कार, लोकरंजन और आकर्षण का भी एक जरूरी हिस्सा है। कोतवाल, प्यादे, सिपाही सब अपने.अपने मूल स्वभाव में है– भ्रष्ट, जनविरोधी। सेवक, नौकर भी अपनी शाश्वत प्रकृति में है। इतने बड़े समूह को छोटे से नाटक में संभालना, वाक्चातुर्य, स्वभाव.वैशिष्ट्य, जन.संस्कार, आधुनिक व्यंग्य और अंतहीन अर्थ.सौंदर्य और अभिनयात्मकता से तराशना भारतेन्दु की पात्र सृष्टि और चित्रण प्रतिभा का उदाहरण है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– 'अन्धेर नगरी' में तीन पात्र मुख्य हैं। तीनों पात्रों के नाम बताइये–

उत्तर ______________________________

____

____

प्रश्न 2– महन्त का चरित्र किसका संकेत करता है?

उत्तर ____

____

____

प्रश्न 3– 'अन्धेर नगरी' के अन्य सभी पात्र एक पूरा समूह है जो किसके प्रतीक हैं?

उत्तर ____

____

प्रश्न 4– चौपट्ट राजा के चरित्र की विशेषताएं बताइये।

उत्तर ____

____

प्रश्न 5– गोबरधनदास का चरित्र किसका संकेत करता है?

उत्तर – ____

____

____

____

प्रश्न 6– सत्य /असत्य लिखिए–

1) 'अन्धेरं नगरी' में भारतेन्दु जी ने पात्र के समूह का उपयोग दृश्य संरचना के लिए भी किया गया है।

उत्तर ____________

2) सभी पात्र वैयक्तिक विशेषताओं से युक्त नहीं है।

उत्तर ____________

3) नाटक के पात्र उस पूरे वर्ग के प्रतिनिधि और नाट्य के प्रतिनिधि अंग बनकर आते है।

उत्तर ____________

2.4 भाषा शैली

'अन्धेर नगरी' प्रहसन की भाषा सरल बोधगम्य और व्यावहारिक है। उसमें अस्पष्टता न होकर गति और नाटकीयता है। साथ ही उसमें काव्य सरिस सरसता एवम् प्रभावोत्पादकता भी है। आलोच्य प्रहसन की भाषा की सफलता का रहस्य नाटक की सरलतां और संक्षिप्तता है। इसमें वाक्य.विन्यास और शब्द चयन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। एक.एक शब्द अर्थमूलक तथा प्रयोजनमूलक है। शब्द चयन की इस विशिष्टता के कारण प्रहसन की भाषा में विशेष रोचकता आ गयी है। जो दर्शकों को अन्त तक बाँधे रहती है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी सिद्धहस्त नाटककार थे। कवि होने के नाते भाषा में कवित्व और माधुर्य का प्राधान्य स्वाभाविक ही है। आलोच्य प्रहसन की भाषा नई चाल में ढ़ली हिन्दी है। भारतेन्दु जी की भाषा का अपना एक निजी स्तर है। तद्भव एवम् प्रान्तीय बोलियों के शब्दों की बहुलता है। उनकी भाषा में गति है, लय है। माधुर्य और कल्पनाओं का रंगीला पुट है। आपका भाषा पर पूर्ण अधिकार है जो विशाल शब्द भण्डार का द्योतक है। इसीलिये प्रहसन की भाषा भावानुकूल, परिस्थितिजन्य तथा प्रवाहयुक्त है। प्रहसन की भाषा में ओज, माधुर्य एवम् प्रसाद तीनों गुणों का समावेश है।

भाषा की उन्नति को राष्ट्रीय उन्नति कर मूल बनाने वाले साहित्यकार भारतेन्दु ने समस्त राष्ट्रीय जागरण को लोक जागरण से सम्बद्ध कर उसके लिए लोकभाषा को अपनाया। यद्यपि भारतेन्दु की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है पर वह नई चाल में ढली है। अन्धेर नगरी प्रहसन में इस नई चाल में ढली हिन्दी में भारतेन्दु ने लोक प्रचलित प्रयोगों, मुहावरों, लोकोक्तियों और उसके साथ उर्दू ब्रजभाषा आदि के प्रयोगों एवम् उर्दू.अंग्रेजी शब्दों को भी हिन्दी की निजी प्रवृत्ति के अनुसार ढ़ालकर प्रयुक्त किया है। निम्नलिखित उदाहरण देखिये–

"हाय? मैंने गुरूजी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरूजी ने कहा था कि ऐसे नगर में नहीं रहना चाहिए यह मैंने न सुना। अरे। इस नगर का नाम ही अन्धेर नगरी और राजा का नाम चौपट राजा है तब बचने की कौन आशा है। अरे। इस नगरी मे ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं जो इस फकीर को बचावे गुरूजी कहाँ हो? बचाओ. बचाओ गुरूजी।"

भारतेन्दुजी को संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, फारसी और लोकभाषाओं की बहुत अच्छी जानकारी थी। जनपदीय बोलियों को उन्होने हिन्दी में अच्छी तरह मिलाया। उनका विश्वास भाषा के तद्भव रूपों, उसकी मिठास और सहजता में जितना अधिक था, उतना तत्सम रूपों में नहीं। इस कथन की पुष्टि में निम्न उदाहरण दृष्टव्य है –

"गुरूजी ऐसा तो संसार भर मे कोई देश ही नहीं। दो पैसा पास रखने से ही मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगरी को छोड़कर नहीं जाऊँगा और जगह दिन भर माँगों तो भी पेट नहीं भरता। वरच बाजे.बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यहाँ रहूँगा।"

भारतेन्दु जी की गद्य भाषा में अनोखा चुलबुलापन, जिन्दादिली, लहजा या वाक्यों की बनावट है। आपने भाषा को सरल, सुस्पष्ट और गतिशील बनाने के लिए वातानुकुल भाषा का प्रयोग किया है राजा और भिश्ती के पात्रानुकुल सम्वाद देखिए –

राजा– अच्छा चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो (चूने वाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है।) क्यों बे भिश्ती! गंगा जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गयी?

भिश्ती – महाराज! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दी कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा–अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती को निकालो।

(लोग भिश्ती को निकालते हैं। कस्साई को लाते है।)

राजा– क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनायी कि दीवार लगायी, बकरी दबायी?

अन्धेर नगरी प्रहसन में भाषा शैली के भी विभिन्न रूप हमें देखने को मिलते है। जिससे परिस्थिति, भाव और विचारों का सफल प्रदर्शन हो सका है तथा नाटक में विशेष रोचकता आ गयी है। जो दर्शकों को अन्त तक अपने में बांधे रखती है। नाटक में प्रयुक्त कुछ शैलियाँ दृष्टव्य है:

2.4.1 भावात्मक शैली – आलोच्य प्रहसन में पात्रों के हृदय के उद्‌गारों का आवेश इस शैली में भली प्रकार प्रकट हुआ है। गोबरधनदास को जब फाँसी का पता चलता है तो वह अत्यन्त दुःखी होकर भावावेश में कहता है – 'फाँसी अरे बाप रे बाप फाँसी मैंने किसकी जमा लूटी है कि मुझको फाँसी। मैंने किससे प्राण मारे कि मुझको फाँसी।"

2.4.2 परिचयात्मक शैली – प्रहसन में जहाँ पात्र किसी घटना का वर्णन करते हैं अथवा किसी प्रकार की सूचना प्रदान करते हैं। तब भारतेन्दु जी इसी शैली का प्रयोग करते हैं। इस शैली में भाषा विषयानुकूल और व्यावहारिक होती है। गोबरधनदास को पकड़कर फाँसी लगाने के लिए प्रथम प्यादा उनको कारण बतलाते हुए कहता है 'बात यह है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुक्म हुआ था।' जब फाँसी देने को उनको ले गये तो फाँसी का फन्दा बड़ा हुआ क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो। बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूरी है, नही तो न्याय न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते है कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।'

2.4.3 व्यंग्यात्मक शैली – इसमें भाषा का रूप बड़ा चुटीला और मार्मिक है। कहावतों, मुहावरों और सूक्तियों के प्रयोग ने इसे बड़ा लचीला बना दिया है। भारतेन्दु जी के व्यंग्य बड़े मार्मिक, चुटीले और प्रभावशाली है जो सीधे मर्म को भेद देते है। नारंगी वाली, कुँजड़िन और मुगल के कथन देखिए:

नारंगी वाली – दोनों हाथों लो – नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे।

कुँजड़िन– जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी, टके सेर भाजी। ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।

मुगल – अमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंग्रेज का भी दांत खट्टा हो गया। नाहक को रूपया खराब किया। हिन्दोस्तान का आदमी लक–लक हमारे यहाँ का आदमी बुबँक–बुबँक।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अलोच्य प्रहसन की भाषा नई चाल में ढली हिन्दी जिसमें तद्भव, अंग्रेजी, उर्दू तथा प्रान्तीय बोलियों का खुलकर प्रयोग किया गया है। इससे भाषा में अनोखा माधुर्य और भाव प्रेषणीयता बढ़ गयी है। भाषा प्रभावोत्पादक और व्यंग्य के कारण अविस्मरणीय बन गई।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– नाटक में प्रयुक्त कुछ शैलियों के नाम बताइए।

उत्तर ______________________________

____

____

प्रश्न 2– भारतेन्दु जी परिचयात्मक शैली का प्रयोग नाटक में कहाँ किया है? एक उदाहरण दीजिए।

उत्तर ______________________________

____

____

प्रश्न 3– प्रहसन की भाषा में किन तीन गुणों का समावेश है?

उत्तर ______________________________

____

____

प्रश्न 4– भारतेन्दु जी का विश्वास भाषा के तद्भव रूपों, उसकी मिठास और सहजता में जितना अधि था, उतना तत्सम रूपों में नहीं। इस कथन की पुष्टि हेतु एक उदाहरण दीजिए।

उत्तर ______________________________

____

2.5 सम्वाद योजना

मूलतः नाटक स्वयं एक रचनात्मक सम्वाद है और रंगमंच भी संश्लिष्ट कलात्मक सम्वाद है। नाटक की समग्र संरचना.कथानक का विकास, संघर्ष पात्रों का चित्रण, उनकी वैयक्तिकता और विरोध, वैशिष्टय और अन्तर, नाटक के लक्ष्य की अनुभूति और उसका सम्प्रेषण, समूची रंग परिकल्पना, सम्वाद.रचना या सम्वाद.योजना पर ही आधारित होती है। इसलिए सम्वाद नाटक का अभिन्न और अनिवार्य अंग तो है ही, वह इस विधा की स्वन्तत्र मौलिकता, सृजन.शक्ति के भी बोधक। वह केवल नाटककार की नाट्यरचना के अस्त्र मात्र या जरूरत भर नहीं है। मुक्तिबोध अगर कहते है कि 'साहित्य' के बाहरी रूपविधान से पृथक् कला के भीतर अपने नियम भी होते है। तो 'कला के भीतरी अपने नियम' निश्चय ही नाट्यभाषा और सम्वादो में गुँथे रहते हैं। सामान्यतः हम सम्वादों की विश्वसानीयता, सहजता की बात कहते है। चूँकि 'अन्धेर नगरी' यथार्थवाद, व्यंग्यात्मक, समकालीन जीवन का प्रत्यक्षीकरण कराने वाला सामाजिक नाटक है इसलिए 'जीवन की हलचल की भाषा में' रोजाना के मुहावरे और लहजे में रची.बसी भाषा में गठित.सृजित सम्वाद ही उसका प्राणतत्व है। अमेरिकन नाट्य समीक्षक बेन्टले की मान्यता है कि 'जन्मजात नाटककार को दृश्य संकेतों की आवश्यकता नही होती'– भारतेन्दु इस दृष्टि से अत्यन्त संवेदनशील और सम्भानाओं से युक्त नाटककार है।

'अन्धेर नगरी' के सम्वादों में रवानगी, व जिन्दादिली, आरोहावरोह इतनी अधिक है कि कुछ अपरिचित या अप्रचलित शब्द के आने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि उसकी ध्वनि, उनकी लय और वाक्य में उसका प्रयोग अर्थ व्यंजित करता है, अभिनयात्मक सौंदर्य भी पैदा करता है। यूँ भी सम्वाद की श्रेष्ठता केवल शब्द या भाषा पर ही नहीं होती, सम्वाद के अपने अन्य साधन भी होते हैं जैसे दृश्य.विधान, भाव.भंगिमा, मुखमुद्रा, टोन, ध्वन्यात्मकता, लय नियोजन। नाटक में सम्वादों को समझाने का काम अभिनय करता है। कोई भी सम्वाद कठिन तब होगा जब वहाँ परिस्थिति, या कोई भी स्थिति अधूरी हो, अपर्याप्त हो या अनाटकीय यानी कृत्रिम और निरर्थक हो। 'अन्धेर नगरी' इतना चुस्त और सांकेतिक है कि उसकी संवाद.योजना परिस्थिति के अपर्याप्त अथवा अविकसित रह जाने के कारण कहीं भी क्षण भर के लिए भी बाधित नहीं हुई है। उसके सम्वाद वस्तुविकास ही नहीं करते् विकसित होती हुई कथावस्तु के भीतरी व्यंग्य को व्यापक विस्तार और सन्दर्भ भी देते चलते हैं।

'वृहत् कथानक' जैसे तत्व से उलझने की आवश्यकता न पड़ने के कारण, और 'अन्धेर नगरी' के सक्षिप्त हास्य.यंग्यपूर्ण हल्के.फुल्के कथानक और उसके रूपाकार के कारण यह समझना बहुत बड़ा भ्रम होगा कि उसकी सम्वाद.योजना सरल है। वस्तुतः 'अन्धेर नगरी' के सम्वाद सहज हैं पर सरल नहीं। नाट्य स्थिति कार्यव्यापार और

दृश्यत्व के सामंजस्य के कारण वे स्वाभाविक गति और अभिव्यंजना.सौंदर्य लिए हुए हैं। 'अन्धेर नगरी' की सम्वाद. योजना इस सत्य को प्रमाणित करती है कि नाटक सम्वाद अवश्य है पर मात्र सम्वाद ही नहीं है क्योंकि नाटक में सम्वादों का नहीं, नाटक का मूल्य होता है। सम्वादों की पात्रानुकूलता का प्रश्न 'अन्धेर नगरी' में उतना नहीं उठता जितना अन्य नाटकों में क्योंकि यह स्वतन्त्र चरित्रों का नाटक न रहकर विश्वव्यापी समकालीन मानव.चरित्र का नाटक अधिक है फिर भी चरित्रांकन में सम्वादों की योजना से सहयोग जरूर मिलता है। महन्त, नारायणदास और गोबरधनदास की आपसी बातचीत, उन्हीं के लहजे और वाक्य .गठन को तो लाती ही है उनका पात्र.व्यक्तित्व, स्वभाव, रूप.आकार की ध्वनि और अभिनय .भंगिमा भी स्पष्ट झलकती है। लेकिन बाजार का दृश्य आते ही सहसा एक नाटकीय त्वरा आवेग् वैविध्य का स्वर उभरता है–फैलता जाता है– सब एक.दूसरे से भिन्न ढंग, भिन्न लय, नये.नये मुहावरों और लोकतत्वों के साथ आधुनिकतम व्यंजनाओं को लिये हुए। नारंगी और मछली बेचने वाली के वाक्यों और गीत में अगर चांचल्य, स्फूर्ति, रसिक मिजाज है, चुहलबाजी है। तो नटककार ने घासीदास और पाचकवाला के 'चने जोर गरम और 'चूरन' में लोकजीवन की धुन को आवाज के यथार्थ की व्यंजकता से भरने में बहुत सफलता पायी है। दोनों के व्यंग्य. ब्रिटिश शासन औरं समय के साथ.साथ आज के बदलते युग के प्रति सघन होते जाते हैं –

चना हाकिम साहब जो खाते ।
सब पर दूना टिकस लगाते । चने जोर गरम–टके सेर ।।
चूरन चला दाल की मण्डी । इसको खायेंगी सब रण्डी ।।
चूरन अमले सब जो खावैं । दूनी रिश्वत तुरंत पचावैं ।।
चूरन खावै एडिटर जात । जिनके पेट पचै नहिं बात ।।
चूरन साहेव लोग जो खाता । सारा हिंन्द हजम कर जाता ।।
चूरन पुलिस वाले खाते । सब कानून हजम कर जाते ।।

जातवाला ब्राह्मण जब जात बेचता है तो उसके बेचने में दूसरी लय, स्वर और तेज़ गति है–

'टके के वास्तै ब्राह्मण से धोबी हो जायें और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें।'

इस पूरे स्थल का सगंठन, शब्द.योजना ऐसी है कि वर्तमान मूल्यवानता, अवसरवादिता, भ्रष्ट स्वभाव और प्रकृतियों का अनुभव उसको पढ़ने से होने लगता है। 'लुटाय दिया अनमोल माल ! ले टके सेर' आज की संवेदनहीन स्थिति से साक्षात्कार करा जाता है। पात्र के बदल जाने पर सम्वाद भी बदल जाता है। उदाहरणार्थ बनिया और मुगल के बेचने के स्वर, वाक्य उनके कार्य, जाति और स्वभाव के अनुरूप है। दूसरी ओर राजसभा के दृश्य से राजा, मन्त्री और नौकर के सम्वाद उनके स्वभाव के अनुरूप। राजा की मूर्खता, विलासिता, आलस्य, मदिराभ्रष्ट बुद्धि, भ्रष्ट मानसिकता, संवेदनहीन व्यक्तित्व, स्वार्थपरता सब कुछ उसकी सम्वाद–रचना से साकार हो गया है। यहाँ राजा से अपेक्षित सधे.सधाये वाक्य, शब्द, उसका अनुशासन और व्यवस्थित भाषा नही है बल्कि उसकी विवेकहीनता और मूर्खता दिखाने के लिए अभद्र शब्द, तुकबन्दी, फूहड़ वाक्य इस तरह रचे गये हैं कि अमानवीय प्रशासन और वर्तमान भ्रष्टाचार का विकृत रूप खुल जाता है, 'दुष्ट, लुच्चा, पाजी। नाहक हमको डरा दिया'? 'क्यों बे खेर.सुपाड़ी –चुन वाले', 'क्यों बे भिश्ती गंगा जमुना की किश्ती।', 'क्यों बे ऊख पौंड़ के गड़रिये' जैसे अनेक प्रयोग वर्तमान व्यवस्था, विश्व–व्यापी स्थिति और नाट्यप्रयोजन को भी सिद्ध करते हैं और राजा यानी व्यवस्था के चरित्र को भी। राजा का बकरी को प्रायः लरकी, बरकी, कुबरी कहना मूल समस्या के प्रति राजा की संवेदनहीनता का प्रमाण है, केवल हास्य का नही, कहीं कहीं पारसी थियेटर और नौटंकी, में तुकान्त.योजनां से सम्वाद एक विशिष्ट आकर्षण और चमत्कार पैदा करते हैं–

राजाः क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगायी बकरी दबायी?

जो गोबरधनदास मिठाई खाकर अरण्य में आनन्दमग्न और निश्चिन्त है कि–

'माना कि देस बहुत बुरा है, पर अपना क्या अपने किसी राजकाज
में थोड़े हैं कि कुछ डर है, मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से रामभजन करना।'

उसी को जब प्यादे आकर पकड़ लेते हैं तो सम्वादों का स्वरूप बदल जाता है एक ओर प्यादों के वाक्य उनके कार्य और व्यवहार के अनुकूल हैं दूसरी ओर गोबरधनदास और प्यादे के सम्वाद मिलकर, क्रूरता, आदेश और भय.आतंक का अत्यन्त नाट्यात्मक वातावरण बनाते हैं , वह भी पारसी रंगमंच और नौटंकी की उत्तेजनात्मक अदायगी का प्रभाव लिये हुए हैं –

गोबरधनदासः दुहाई परमेश्वर की, और मैं नाहक मारा जाता हूँ। अरे यहाँ बड़ा ही अन्धेर है, अरे गुरू जी महाराज का कहा मैंने न माना, उसका फल मुझको भोगना पड़ा। गुरू जी–कहाँ हो। आओ मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बे अपराध मारा जाता हूँ गुरू जी, गुरू जी– हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फाँसी देते हैं। अरे भाइयो, कुछ तो धरम विचारो। अरे मुझ गरीब को फाँसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा? अरे मुझे छोड़ दो! हाय! हाय!

जाहिर है कि इन सम्वादों में वाचिक, कायिक, सात्विक अभिनय तलाशने की आवश्यकता नही है। वह सारा आवेग, सह सम्बन्ध, अन्त क्रिया और बाह्यक्रिया का संश्लेषण पूर्णतः अन्तर्भूत है। छोटे.छोटे वाक्य और उनमें गजब को आरोह.अवरोह। इसीलिए कहा गया है कि सम्वादों में अगर स्वर का त्वरित और शक्तिशाली वैषम्य हो, क्रिया.प्रतिक्रियात्मक तत्व हो, तो अभिनेता.पाठक.दर्शक उनसे सीधे ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है। ऊपर से सीध े सरल दीखने वाले इन सवादों में अप्रत्यक्ष और विकासशील संकेतार्थ हैं जिनके कई स्तर हैं। 'स्थितियात्मकता' जैसी स्थिति 'अन्धेर नगरी' की सम्वाद.योजना में नहीं है– निरन्तर एक गत्यात्मक प्रवाह और नाटकीय व्यंग्य। वहाँ वाक्यार्थ उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना व्यंग्यार्थ और उससे उत्पन्न होती दृश्यात्मकता, लयात्मकता और नवीन अनुगूँज।

कभी कभी नाटककार सम्वाद में उत्तर प्रत्युत्तर से स्थिति के विकास और गति में आकर्षण, चमत्कार और लय पैदा करता है। बात से बात निकलती जाती है और नाटक स्वतः बनता जाता है। गोबरधनदास बाजार में जब बनिये के पास जाता है तो सम्वाद की संक्षिप्ति और अभिनयात्मक प्रभाव दृष्टव्य है –

गोबरधनदास : क्यों भई बनिये, आटा कितने सेर?

बनिया : टके सेर।

गोबरधनदास : औ चावल?

बनिया : टके सेर।

गोबरधनदास : औ चीनी

बनिया : सब टके सेर।

गोबरधनदास : सब टके सेर। सचमुच।

बनिया : हाँ महाराज , क्या झूठ बोलूँगा?

गोबरधनदास : (कुंजडिन के पास ज़ाकर) क्यों माई, भाजी क्या भाव ?

कुंजडिन : बाबा जी, टके सेर । निनुआ मुरई धनिया, मिरचा, साग, सब टके सेर।

गोबरधनदास : सब भाजी टके सेर! वाह वाह! बड़ा आनन्द है। यहाँ सभी चीज टके सेर। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई ! मिठाई कितने सेर।

हलवाई : बाबा जी! लडुआ, जलेबी, गुलाब जामुन, खाजा सब टके सेर।

गोबरधनदास : वाह! वाह!! बड़ा आनन्द है! क्यों बच्चा मुझसे मसखरी तो नहीं करता? सचमुच सब टेक सेर?

यहाँ क्रमशः गोबरधनदास का बढ़ता हुआ आनन्द और विस्मय, साथ ही उसका लोभवृत्ति' में फंसता हुआ सांसारिक मन उजागर होता ही है, एक क्रियात्मकता, लय, अभिनेयत्व भी साकार होती है। इसके अतिरिक्त शब्दविशेष को अपनी व्यापक व्यंजना के साथ पकड़ते हुए क्रमशः भारतेन्दु जिस तरह मूल प्रयोजन पर पहुँचते हैं– नगरी का नाम अन्धेर नगरी और राजा का नाम चौपट्ट राजा तो सम्वाद समकालीन व्यंग्य को प्रत्यक्ष कर देते हैं। नाटकीय कार्यव्यापार का मुख्य रूप वाणी को माना गया है और सम्वाद कार्य के विकास में भी सहायक होते हैं, पात्र के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति में भी। ये सम्वाद नाटक को सामाजिक क्रियाशील कला का सौन्दर्य प्रदान करते हैं और नागरिकों से लेकर ग्रामीणों की भीड़ तक के लिए सम्प्रेषण की क्षमता रखते हैं। 'अन्धेर नगरी' के सम्वादों में मावनीय विडम्बना भाषा सम्वाद के उच्चारित रूप में गूँथी हुई है। भारतीय आचार्यो की तरह सम्वाद को 'वाचिक अभिनय' की संज्ञा देने वाले भारतेन्दु की मान्यता है कि ग्रन्थकर्ता ऐसी चातुरी और निपुणता से पात्रगण की बातचीत की रचना करे कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उसकी बात भी विरचित हो। नाटक में वाचाल पात्र की मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मुर्ख की वाक्‌पटुता और पंडित का मौनीभाव विडम्बना मात्र है। पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है। 'अन्धेर नगरी' के सम्वादों में हर सम्वाद हर पात्र के स्वभाव और क्रियाओं की अनुभूति कराता है और जहाँ सहज.स्वाभाविक रवानगी और सार्थकता को विशेष स्थान दिया है वहाँ निश्चय ही उसके पीछे अभिनेता, रंगकर्मी भारतेन्दु की यह दृष्टि है कि 'नाटक में वाक्.प्रयत्न एक दोष है।' वाक् प्रयत्न और वागाडम्बर दोनों को घातक मानते हुए उनका कथन हैं कि 'नाटक में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता के साथ वाग्मिता का भी सम्यक आदर होता है। 'थोड़ी.सी बात में अधिक भावों का अवतरण' 'अन्धेर नगरी' में आद्यन्त है और बेहद चुटीले संकेतों से भरा है। वस्तुतः सम्वाद रचना में भारतेन्दु का ध्यान शब्द से अधिक पात्र के उच्चारित स्तर पर है। भाव प्रदर्शन, आंगिक क्रियाओं, दर्शक.चेतना पर है। भारतेन्दु नाटकीय सम्वाद की सहजता, शक्ति एवम् सीमा से उसके लिखित और अभिनेय रूप से सर्वथा परिचित थे। असम्बद्ध, निरर्थक वाक्य को उन्होंने हमेशा अग्राह्य माना। 'अन्धेर नगरी' के सम्वादों में पारसी रंगमंच और नौटंकी के सम्वादों की अदायगी, एक विशेष अन्दाज में दिखायी देती है। यही नहीं, छोटे से प्रहसन के लघु सम्वादों में ही सम्पूर्ण समकालीन यथार्थ है जो कथित कम है, ध्वनित और व्यंजित ज्यादा है। दृश्य चाहे बाजार का हो, चाहे राजसभा का, उसके सम्वादों और उसके संश्लेषण में इतनी गहरी सम्पृक्ति और मुक्ति दोनों है कि पात्रों को पूरी छूट मिलती है ही, निर्देशक, दर्शक और अभिनेता को भी छूट मिलती है। अलग.अलग देखने पर इसके सम्वादों में प्राचीन नाटक रूढ़ियाँ नहीं है अर्थात् स्वगत, आकाशभाषित, सूच्य दृश्य, सूत्रधार, नट आदि.नान्दीपाठ, भरतवाक्य, प्रस्तावना आदि। पर अप्रत्यक्ष रूप में सब हैं भी– अपने नये कलेवर के साथ। महन्त और चेलों का भजन गाते हुए प्रवेश और अन्त में दोहा भिन्न ढंग से उस कार्य को करता हैं। 'अन्धेर नगरी' में सूचनाओं, विश्लेषण, टिप्पणी, आलोचना, विकास की छूट है, अनन्त संभावनायें हैं जिससे उसकी समकालीन प्रासंगिकता बढ़ती जाती है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– 'लुटाय दिया अनमोल माल! ले टके सेर' आज की किस स्थिति से साक्षात्कार करा जाता है?

उत्तर ____

____

प्रश्न 2– राजा का बकरी को प्रायः लरकी, बरकी, कुबरी कहना किस बात का प्रमाण है?

उत्तर ____

____

2.6 रचना.विधान में 'अन्धेर नगरी' एक विलक्षण नाटक

अपने रचना.विधान में 'अन्धेर नगरी' एक विलक्षण नाटक इसलिए लगता है कि उसमें असम्बद्ध स्थितियाँ भी हैं। बाजार, राजसभा, श्मशान के दृश्यों और पात्रों में यूँ तो कोई सम्बन्ध नहीं है। कथाविहीन दृश्य हैं, उनमें पात्रों का कोई व्यक्तित्व नहीं है। उनकी बातचीत बेतुकी है। बाजार दृश्य में सब अपने.अपने ढंग से बेचते है। अपराध ी का अन्त तक पता नहीं लगता, यह एब्सर्डिटी ही है, राजा ने फरियादी से कहा था कि 'तुम्हारा न्याय यहाँ ऐसा होगा जैसा जम के यहाँ भी न होगा' और वही राजा अन्त में मृत्यदण्ड भोगता है। हर चीज टके सेर बिकती है। यह असंगति का रूप ही है कि राजा विवेकहीन है पर अपने आप को बुद्धिमान समझता है और उल्टे.सीधे न्याय करता है। फाँसी के फन्दे के हिसाब से मोटी गर्दन वाले को पकड़कर लाने का हुक्म हो जाता है। इन स्थितियों से यह नाटक भुवनेश्वर और विपिन कुमार अग्रवाल के एब्सर्ड नाटकों की तरह श्रेष्ठ असंगत नाटक लगता है। राजा सनकी, झक्की है पूरी नगरी ही सनकियों की नगरी लगती है। जिससे हास्य और व्यंग्य, समकालीन सन्दर्भ सब व्यंजित होते हैं।

यह भारतेन्दु का ही वैशिष्ट्य है कि इतनी संक्षिप्त कथा और प्रसंगो के, नाटकीय स्थितियों और दृश्यों की रचना और संयोजन वह इस प्रकार करते है कि एक ओर रोचकता, जिज्ञासा तत्व, बना रहता है। दूसरी ओर अपराध ी की खोज और फरियादी के न्याय पर भी ध्यान केन्द्रित रहता है। सबसे कठिन है बाजार दृश्य और राजसभा दृश्य की संरचना। एक ओर बाजार दृश्य में बिखराव, एकरसता, निरर्थक भरमार और पुनरावृत्ति दोष, मिथ्या चकम. दमक आ सकती थी पर यह दृश्य संकेतात्मकता, व्यंग्यात्मक टोन और प्रस्तुति–पद्धति को हमेशा नयी कल्पना और विस्तार देता है। भारतेन्दु ने बेचने वालों के क्रम, उनकी शब्दावली, उनके निजी टोन और लय, उनकी अदायगी और रवानगी के अन्तर को बनाये रक्खा है। कबाबवाला जब लगातार बोलकर सहसा बाजार दृश्य की संरचना करता है या दर्शकों का सहसा ध्यान आकृष्ट करता है। तभी भारतेन्दु ने घासीराम की लोक.प्रचलित पद्यात्मक पद्धति ली है। फिर नारंगवाली, हलवाई, कुंजड़िन, मुगल, पाचकवाला, मछलीवाली, जातवाला ब्राह्मण रक्खा है। जिस तरह पुरूष और स्त्री स्वरों के क्रम से आकर्षण बढ़ाया है उसी तरह सही समय, सही आदमी, सही ढंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ मुगल और जातवाला ब्राह्मण अपने स्थान से कहीं पहले से ही एकदम शुरू में ही रखे गये होते तो वह व्यंग्य न उभरता। जाति बेचने की अत्यन्त रोचक संरचना सारी पृष्ठभूमि बन जाने के कारण ही सार्थक होती है। भारतेन्दु ने अगर हलवाई, मुगल, जातवाला को अधिक विस्तार और निरन्तरता दी है, तो वह उनकी नाट्यभाषा का कौशल है। कथाविन्यास में चुस्ती, संगठन तारतम्य, आन्तरिक व्यंजनायें 'अन्धेर नगरी' को एक पूर्ण नाटक की संज्ञा देने का आधार बनती है। अनुशासन सम्भावनाओं पर कुशल दृष्टि, वैविध्य, मनोरंजक शैली सारे व्यापार में गम्भीर सन्तुलन, छोटे.बड़े वक्तव्यों की अपेक्षायें भारतेन्दु की मौलिकता का प्रमाण है। जिस प्रकार राजसभा का दृश्य भी, लेकिन अन्तर केवल यह है कि एक स्थान का दृश्य होते हुए भी उसमें निरन्तर नयेअनये पात्रों का प्रवेश.प्रस्थान, प्रश्न.उत्तर चलते रहते हैं जिससे परिवर्तनशीलता और गत्यात्मक स्थितियाँ बनी रहती हैं। यथार्थवादी शैली के बन्ध ान में न पड़कर लोकनाट्य की उन्मुक्त प्रस्तुति शैली के अनुभव और प्रयोग के कारण यह दृश्य अत्यन्त चुस्त बन पड़ा है। कभी शब्द.प्रयोगों से हास्य .व्यंग्य की सृष्टि की गयी है, कभी मुहावरों और क्रियाओं से। प्रत्येक पात्र का प्रवेश कथानक के प्रयोजन को स्पष्ट करता है और इस तरह पूरे नाटक के कथासूत्र बंधते जाते है। भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' के शिल्प को लचीला रक्खा है। उसे शिथिल या ढीला.ढाला नहीं कहा जा सकता, न दृश्यों की बुनावट

में शैथिल्य है, न अतिरिक्त विस्तार, न एकदम संक्षिप्ति। हर दृश्य, हर स्थिति अपने अनुपात में है। वस्तुतः शिल्प पर लोकनाट्य का अनुभव बराबर पकड़ मजबूत करता है। सामान्य जनता के लिए, लोकवार्ता से कथानक लेकर भारतेन्दु प्रहसन की रचना करते है। जन.संस्कारों, जनमानस को समझते हैं और उनके लिए सन्देश भी छोड़ते है उन्हें परिष्कृत होने, संवेदनशील होने का अवसर भी देते है। दृश्य .c परिवर्तन का ढंग, पात्रों के प्रवेशअप्रस्थान की शैली, गीत.संगीत, बोलने की लय और भंगिमा सबमें लोकनाटकों की शैली देखी जा सकती है। इस लोकधर्मिता ने कथाअविन्यास को भी प्रभावित किया है। नाट्यलोचक डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, डॉ. सत्येन्द्र तनेजा ने 'अन्धेर नगरी' के शिल्प को मूलतः लोकनाटकों से प्रेरित माना है। लेकिन मुख्य बात है कि भारतेन्दु किसी पद्धति का अनुकरण नही कर रहे है। न मात्र प्रभाव ले रहे हैं। उन्होंने अपनी मौलिक रचनाशीलता से 'अन्धेर नगरी' को संगठित शिल्प दिया है। जिसके पीछे सांस्कृतिक चेतना और परम्परागत आधार है–साथ ही भारतेन्दु की युगानुरूप दृष्टि। 'अन्धेर नगरी' में 'भारत दुर्दशा' या अपने अन्य नाटकों की तरह उन्होने न मंगलाचरण लिया है, न प्रस्तावना और भरतवाक्य, लेकिन वही कार्य महन्त और चेलों के भजन से और अंत में महन्त के दोहे से कराया है जिसका उद्देश्य वन्दना या प्रार्थना नहीं है। न मंगलवाक्य भर, लेकिन नाटकीय उद्देश्य में दोनों सहायक होते हैं। रूढ़ियों से मुक्ति भारतेन्दु का प्रयास है। नये नाटक की संवेदना और संरचना 'अन्धेर नगरी' में देखी जा सकती है। उसका कथा और शिल्प, दोनों का संयोजन, उससे उत्पन्न प्रभाव, कला.सौंदर्य और अद्भूत व्यंजना.शक्ति सिद्ध करती है कि 'अन्धेर नगरी' अपने रचना विधान में सशक्त कृति है। निर्देशक सत्यव्रत सिन्हा अगर 'रचना के स्तर पर उसे महत्वपूर्ण नहीं मानते तो शायद यह समकालीन रंगकर्म और नयी नाट्यसमीक्षा के आरम्भिक दौर के कारण था। क्रमशः प्रस्तुतियों के साथअसाथ, समकालीन सन्दर्भो के साथअसाथ पूनर्मूल्यांकन ने 'अन्धेर नगरी' के संरचना.पक्ष की विशिष्टता को प्रतिष्ठित किया है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– नाट्यलोचक डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, डॉ. सत्येन्द्र तनेजा ने 'अन्धेर नगरी' के शिल्प को मूलतः किससे प्रेरित माना है?

उत्तर ________________________________

____

प्रश्न 2– भारतेन्दु ने मौलिक रचनाशीलता से 'अन्धेर नगरी' को संगठित शिल्प दिया है। इसके पीछे कौन सा आधार है?

उत्तर ________________________________

____

2.7 गीत योजना

नाटक दृश्य .काव्य है। इसलिए कुशल नाटककार अपने नाटक को सुरूचिपूर्ण बनाने के लिए उसमें गीतों या पद्यात्मक सम्वादों को उचित महत्व प्रदान करता है। जब दर्शक गद्य में सम्वाद सुनते.सुनते ऊब जाते है तब गीत ही उनका मनोरंजन करते है और नाटक के प्रति उनके मन में अभिरूचि उत्पन्न करते हैं।

नाटक में गीत परम्परा का महत्व – नाटक में गीतों की परम्परा अति प्राचीन है। प्राचीनकाल के अधिकांश नाटक तो पूर्णतः पद्यबद्ध ही होते थे। संस्कृत नाटकों में गद्य के साथ.साथ पद्य का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता

है। इसमें सन्देह नहीं कि नाटक के रस प्रवाह को तीव्र और पुष्ट बनाने में गीतों का प्रयोग बड़ा उपादेय सिद्ध होता है। गीत हमारे जीवन के सहज और सरल प्रतीक है फलतः मानव जीवन के दृश्य .चित्र उपस्थित करने वाले नाटकों के लिए तो गीत तत्व और भी आवश्यक है। गीतों का माधुर्य नाटक की शोभा को बढ़ा देता है।

भारतेन्दु जी नाटकार ही नही, अपितु कवि भी है। उनका कवि हृदय उनके नाटकों में बड़े सुन्दर रूप से दृष्टिगोचर होता है। उन्होने अपने सभी नाटकों में सुन्दर गीतों की योजना की है। गीतों के रूप में उनके हृदय की सारी भावुकता और काव्यत्व मूर्तिमान हो उठा है।

नाटक में गीत–योजना का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। नाटक में गीत निम्न प्रकार से सहयोग करते हैं–

1. गीत गद्यमय सम्वादों से ऊबे हुए दर्शकों का मनोरंजन करते है।
2. गीत चरित्र–चित्रण में सहायक होते है।
3. गीत रसोद्रेक में सहायक होते है।
4. गीतों का माधुर्य नाटक की शोभा बढ़ाता है।
5. गीत भावों की अभिव्यति में सहायक होते है।

गीत परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल होने चाहिए। वे कथानक को गति प्रदान करने वाले हों तथा दर्शकों की अभिरूचि में वृद्धिकारक हों। गीत नाटकीय अनुकूलता लिए हुए हों। वास्तव में गीत वातावरण व परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिए।

'अंधरे नगेरी' प्रहसन में 5 गीत और 5 दोहे है। प्रथम गीत प्रथम अंक में प्रार्थना के रूप सब लोग गाते हैं। प्रथम अंक में ही एक दोहा महन्तजी अपने शिष्य को लोभ से बचने के लिये उपदेश स्वरूप बतलाते है। द्वितीय अंक में घासीराम चने वाला अपना चना बेचते हुए उसकी विशेषता बतलाता हुआ गाता है। इसी अंक में पाचक वाला अपने चूरन की विशेषता बतलाता हुआ गीत गाता है। दृतीय अंक में ही मछली वाली मछली बेचते हुए तीसरा गीत गाती हैं। तृतीय अंक में तीन दोहे महन्तजी द्वारा अपने शिष्य को उपदेश स्वरूप गाये गये हैं। पंचम अंक में गोवरध नदास एक गीत गाता हुआ प्रवेश करता है। छठवें अंक में गुरू (महन्तजी) एक दोहा गाते हैं।

गीत.योजना कथानक के अनुकूल है– प्रथम अंक में महन्त जी अपने दो चेलों के साथ प्रार्थना गाते हुए आते है। उसी प्रार्थना को सब लोग मिलकर गाते हैं। सब लोग प्रार्थना में राम.नाम की महिमा गाते हैं:

राम भजो राम भजो राम भजो भाई।
राम के भजे से गनिका तरि गयी।
    राम के भजे से, गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बनै सब,
    राम के भजन बिनु सबहि नसाई।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु,
    सूरदास भए कविकुल–राई।
राम के नाम से घास जंगल की,
    तुलसीदास भये भजि–रघुराई।

इस प्रार्थना में राम नाम की महिमा गायी गयी है।

"अन्धेर नगरी' की विशेषता देखकर महन्तजी अपने शिष्य गोबरधनदास को चेतावनी देते हुए कहते हैं:

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहिं कीजिए , या में नरक निदान।।

गीत.योजना वातावरण में सहायक– 'अन्धेर नगरी' प्रहसन में गीत वातावरण के अनुकूल हैं। घासीराम चने वाला अपने चने के विशेष गुण और उनके खाने वालों का गुणगान करता है तथा चने खाने का क्या फल होता है, इसकी निम्न पंक्तियों में गाते हुए व्यक्त करता है:

चना चुरमुर चुरमुर वालै।
बाबू खाने को मुँ खोलै।
चना खावै तौकी मैना ।
बोलैं अच्छा बना चबैना।।
चना खायँ गफूरन मुन्न।
बोलैं और नहीं कुछ सुन्नी।।
चना खाते सब बंगाली।
जिनकी धोती ढीली–ढाली।।
चना खाते मियाँ जुलाहे।
डाढ़ी हाकिम गाह बगाहे।।
चना हाकिम सब जो खाते।
सब पर दूना टिकस लगाते।।

इस प्रकार बतालाया गया है कि चना खाकर ही सरकारी अफसर जनता पर दूना टैक्स लगाते हैं।

गीत.योजना रसोद्रेक में समर्थ है– गीत योजना रस का उद्रेक करने में समर्थ है। पाचक वाला अपने चूरन की विशेषता बतलाता है कि चूरन खाने से क्या प्रभाव होता है। निम्न गीत में देखिये:

हिन्दू चूरन इसका नाम।
विलायत पूरन इसका काम।।
चूरन जब से हिन्द में आया।
इसका धन बल सभी घटाया।।
चूरन चला दाल की मण्डी।
इसको खोयेगी सब रण्डी।।
चूरन अमले सब जो खावैं।
दूनी रिशवत तुरत पचावैं।।
चूरन नाटक वाले खाते।
इसकी नकल पचाकर लाते।।

चूरन सभी महाजन खाते।
जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खाते लाला लोग।
जिनको अकिल अजीरन रोग।।
चूरन खावै एडिटर जात।
जिनके पेट पचे नहिं बात।।
चूरन साहब लोग जो खात।
सारा हिन्द हजम कर जात।।
चूरन पुलिस वाले खाते ।
सब कानून हजम कर जाते।।

इस प्रकार चूरन खाने से अंग्रेजों के सब काम पूर्ण हो जाते हैं। जब से यह चूरन हिन्दुस्तान में आया तब से भारतीयों का धन और बल लगातार घटता चला गया। इस चूरन को वेश्यायें भी खाती है। इस चूरन को खाकर कर्मचारी दुगनी रिश्वत तुरन्त पचा जाते हैं। नाटक वाले चूरन खाकर बड़ी अच्छी नकल करते हैं। महाजन चूरन खाकर सम्पूर्ण रकम हजम कर जाते हैं। एडीटर चूरन खाकर कोई बात हजम नही कर पाते हैं। साहब लोग चूरन खाकर सारे भारतवर्ष को हजम कर जाते हैं।

शृंगार रस का समां बँधाने वाला निम्न गीत मछली वाली गाती है:

मछरिया एक टके कै बिकाय।
लाख टका कै वाला जोबन, गाहन सब ललचाय।।
नैन–मछरिया रूप –जल में, देखत ही फँसि जाय।
बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिलै बिना अकूलाय।।

सदोपदेश की सृष्टि–तृतीय अंक में महन्तजी अपने शिष्य गोवरधनदास को उपदेश देते हुए कहते हैं ऐसी नगरी में नही रहना चाहिए। देखिए:

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास ।
ऐसे देस कुदेस में कबहुँ न कीजे बास।।
कोकिल बायस एक राम, पंडित मूरख एक।
इन्द्रायन दाडियन विषय, जहाँ न नेकु विवेक।।
बसिये ऐसे देस नहि, कनक वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुःख पाइये, प्रान दीजिए रोय।।

इसी प्रकार पंचम अंक में गोबरधनदास निम्न गीत गाते हुए तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दशा पर अच्छा प्रकाश डालता है:

'अन्धेर नगरी' अनबूझ राजा।
टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।
नीच ऊँच सब एकहि ऐसे।

जैसे भँडूए पंडित तैसे।
कुल मरजाद न मान बढ़ई।
सबै एक से लोग–लुगाई।।
जात–पाँत पूछै नहि कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।
वेश्या जोरू एक समाना।
बकरी गऊ एक कर जाना।।
साँचे मारे मारे डोलैं।
छली दुष्ट सिर चढ़ि–चढ़ि बोलैं।
प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी।
सोई राजसभा बल भारी ।।
साँच कहैं ते पनही पावैं।
छलियन के एका के आगे।
लाख कहौ एकहु नहिं लागे।।
भीतर होइ मलिन की कारो।
चाहिए बाहर रंग चटकारो।
धर्म –अधर्म एक रंग चटकारी।
राजा करे सो न्याय सदाई।।
भीतर स्वाहा बाहर सदै।
राज करहिं अमले अरू प्यादे।।
अन्धाधुन्ध मच्यौ सब देसा।
मानहुँ राजा रहत बिदेसा।।
गो–द्विज श्रुति आदर नहिं होई।
मानहुँ नृपति विधर्मी कोई।।
ऊँच नीच सब एकहिं सारा।
मानहुँ ब्रह्म–ज्ञान बिस्तारा।।

इसी प्रकार गुरूजी प्रहसन के अन्त में अपना उपदेश देते हुए कहते है:

जहाँ पे धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज।
ते ऐहि आपुहिं नसैं, जैसे चौपट राज।।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'अन्धेर नगरी' प्रहसन के गीत, शब्द.योजना, संगीत और कथा.वस्तु के अनुकूल है। भाव.योजना, हृदयगत भावों, अन्तर्भावों, और अन्तवृतियों के उद्घाटन में यथेष्ट सहायक हैं। गीतों में प्रतीकात्मकता, प्रेषणीयता और अर्थ व्यंजकता के गुणों का समावेश है। भाषा की दृष्टि से संरलता, सजीवता, प्रवाह

और सुस्पष्टता है। गीतों में नाटकीयता, यथार्थता, सजीवता, मार्मिकता, संक्षिप्तता एवम् हृदयस्पर्शिता आदि गुणों का समावेश हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 'अन्धेर नगरी' प्रहसन की गीत योजना पूर्ण सफल है। भारतेन्दु जी का कवि हृदय दर्शकों के मनोरंजनार्थ गीत एवम् दोहों के रूप में फूट पड़ा है जिससे पात्रों के भावों को, वातावरण को, कथानक को तथा रंगमंच को अपूर्व सफलता मिली है। वास्तव में भारतेन्दु जी ने इस प्रहसन के गीतों एवम् दोहों के माध्यम से तत्कालीन राज्य.व्यवस्था, न्याय.व्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर करारा व्यंग्य किया है। आलोच्य प्रहसन में सरसता और रोचकता के साथ अनुभूति की मौलिकता विद्यमान है

प्रश्न 1 – नाटक में गीत किस प्रकार से सहायक होते है?

उत्तर ____________________

____

प्रश्न 2 – तृतीय अंक में महन्तजी अपने शिष्य गोबरधनदास को उपदेश देते हुए जो गीत कहते हैं उसकी चार पंक्ति लिखिए–

उत्तर ____________________

____

प्रश्न 3 – मछली वाली द्वारा शृंगार रस का समां बाँधने वाले गीत की पंक्ति लिखिए.

उत्तर ____________________

____

प्रश्न 4 – 'अन्धेर नगेरी' प्रहसन में कितने गीत और दोहे है?

उत्तर ____________________

____

प्रश्न 5 – 'अन्धेर नगरी' प्रहसन के गीतों में किन गुणों का समावेश है?

उत्तर – ____________________

____

प्रश्न 6 – सही /गलत बताइये–

1) नाटक में गीतों की परम्परा प्राचीन काल में नहीं थी?

उत्तर – __________

2) अन्धेर नगरी' प्रहसन में गीत–योजना वातावरण के अनुकूल हैं।

उत्तर – __________

3) 'अन्धेर नगरी' प्रहसन की गीत–योजना पूर्ण सफल नहीं कही जा सकती है।

उत्तर – ——————

4) गीत–योजना कथानक के अनुकूल है।

उत्तर – ——————

2.8 भारतेन्दु युगीन समय

भारतेन्दु का जन्म सन् 1850 में हुआ था। जब वे सात साल के थे, तभी देश में अंग्रेजों के विरूद्ध पहला स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया था सन् 1885 में भारतेन्दु का देहान्त हो गया। यह वही साल है जब कांग्रेस की स्थापना हुई थी और जिनके नेतृत्व में देश ने सन् 1947 में आजादी प्राप्त की थी। भारतेन्दु के समय इन्हीं दो ऐतिहासिक घटनाओं के बीच का समय है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु युग के नाम से यही काल जाना जाता है 1857 का संग्राम यद्यपि देशी सामंतशाही के नेतृत्व में लड़ा गया था लेकिन इसमें भारत के विशेष रूप से उत्तर भारत की किसान जनता ने भी सक्रिय रूप से हिस्सा लिया था। 1857 का विद्रोह असफल रहा। लेकिन देश की बागडोर ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से निकलकर सीधे ब्रिटेन की महारानी और वहाँ की संसद के हाथ में आ गई थी। अंग्रेजों के आगमन से भारत में राजसत्ता का स्वरूप बदलने लगा। यद्यपि देश अब भी छोटी.बड़ी रियासतों में बँटा था, लेकिन देश की केन्द्रीयकृत सत्ता पर अंग्रेजों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा था देश के कई हिस्से सीधे अंग्रेजों के अधीन थे, तो कई ऐसे सामंतों के अधीन जिन्होंने अंग्रेजों के शासन के मातहत रहना स्वीकार कर लिया था।

अंग्रेजों ने ऊपर से नीचे तक राजसत्ता के ढ़ाँचे को बदलना शुरू कर दिया था स्थानीय स्तर पर जमींदारी प्रथा का विस्तार हुआ जिसने किसानों की दशा को पहले से अधिक दयनीय बना दिया। यह जमींदारी प्रथा किसानों को ऐसी पैदावार के लिए मजबूर कर रही थी, जिनसे देशी जमींदारी और विदेशी शासकों को लाभ था, लेकिन जिसकी वजह से किसानों को शोषण और उत्पीड़न बेतहाशा बढ़ गया था। इसके साथ ही अंग्रेजों ने इंग्लैंड में बने माल की बिक्री सुनिश्चित करने के लिए देशी उद्यागों को नष्ट करना शुरू कर दिया। कई बड़े औद्योगिक केन्द्र जो मुगल काल में विकसित हुए थे, अंग्रेजों के राज में धीरे.धीरे नष्ट होने लगे। दूसरी ओर यूरोप और इंग्लैंड में औद्यौगीकरण की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई थी, उसका असर भारत पर भी पड़ा। एक ओर भारत से कच्चा माल एकत्र करने और उसे भारत से बाहर ले जाने की जरूरत थी, तो दूसरी ओर इंग्लैण्ड और यूरोप का बना माल भारत के विभिन्न हिस्सों तक पहुँचाने की। यही कारण था कि भारत में अंग्रेजों ने रेल यातायात आरम्भ की। रेल सिर्फ एक नये तरह के परिवहन का साधन ही नहीं थीं, बल्कि उसने आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को भी गति प्रदान की। कार्ल मार्क्स ने इस सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था–कि रेलवे का प्रादुर्भाव भारत में आधुनिक उद्योगों के आगमन का पूर्वसूचक है। उन्नीसवीं सदी के मध्य में नील, चाय, काफी के क्षेत्र में कई उद्योग स्थापित हुए। 1850 और 1855 के बीच सूती कपड़ों के कारखाने, जूट की मिलें और कोयला खानों की स्थापना हुई। 1879 में भारत में 56 सूती उद्योग और कोयला खदानें काम कर रही थीं।

इसी दौर में उस आधुनिक शिक्षा का प्रसार हुआ जिसने राष्ट्रव्यापी और सुधारवादी आन्दोलनों पर गहरा असर डाला। भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार ब्रिटिश सरकार ने अपनी राजनीतिक, आर्थिक और प्रशासनिक जरूरतों के चलते किया। मैकाले जैसे अंग्रेज शासकों का विचार था कि अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीयों को पूरी तरह पश्चिम सभ्यता के विकृत रूप में रंगा, उन्हें अंग्रेजों जैसा बनने की प्रेरणा भी दी जा सकती है। लेकिन यह शिक्षा पूर्ण निरपेक्ष उदारवादी और ब्रिटिश शासन से पहले की शिक्षा पद्वति के विपरीत जाति और धर्म का ख्याल किये बिना सर्वसुलभ थी। शिक्षा के प्रभाव को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री ए.आर.देसाई लिखते हैं–

भारतीय राष्ट्रवाद ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप लिया। उस वक्त तक देश में एक शिक्षित वर्ग तैयार हो गया था और भारतीय उद्योगों के उदय के साथ ही भारतीय औद्योगिक बुर्जुआजी का जन्म हो चुका था। इन्ही वर्गों ने राष्ट्रीय आन्दोलन का संगठन किया और अपनी विरोधी पताका में निम्नांकित नारे सरकारी नौकरियों का भारतीयकरण, भारतीय उद्योगों के लिए सुरक्षा, वित्तीय स्वायत्तता आदि को शामिल किया। आर्थिक और अन्य क्षेत्रों में ब्रिटिश और भारतीय हितों के संघर्ष के कारण यह आन्दोलन शुरू हुआ।

इस आधुनिक शिक्षा ने उस बुद्धिजीवी वर्ग को पैदा किया जिसने राष्ट्रीय मुक्ति और समाज सुधार आंदोलन में न केवल महत्वपूर्ण भूमिका निभाई वरन् उसका नेतृत्व भी किया। उन्होंने राष्ट्रीयता और जनतन्त्र की भावनाओं से ओतप्रोत सम्पन्न प्रादेशिक साहित्य और संस्कृति की सृष्टि की। इसके बीच से महान वैज्ञानिक, कवि, इतिहासकार, समाजशास्त्री, साहित्यिक, दार्शनिक और अर्थशास्त्री उत्पन्न हुए। प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग ने आध ुनिक पाश्चात्य जनतांत्रिक संस्कृति का स्वांगीकरण किया और नवजात भारतीय राष्ट्र की जटिल समस्याओं को समझा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इसी प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बुद्धिजीवी वर्ग ने अपने विचारों के लोगों तक पहुँचाने के लिए कई तरीकों का इस्तेमाल किया। उन्होंने कई राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक संगठन बनाए, समाचारपत्र और पत्रिकाओं का प्रकाशन किया और उसके माध्यम से लोगों ने नई चेतना और नये विचारों का प्रचार–प्रसार किया। स्वयं भारतेन्दु ने कई पत्रिकाओं का प्रकाशन किया और अपने समकालीन लेखकों को पत्र.पत्रिकाओं के प्रकाशन और उनमें लिखने के लिए प्रेरित किया।

19वीं सदी में जो नया समाज बन रहा था, उसकी जरूरतें वही नहीं थी। जो उससे पहले के समाज की थी। इस नयी आवश्यकताओं की पहचान उस नये बौद्धिक वर्ग ने की जो उस दौर में उभर रहा था। उससे समाज में पुरानी रूढ़ियों, मान्यताओं और आचरणों को समाप्त करने के लिए अनथक प्रयास किया। क्योंकि उसका विश्वास था कि इसके बिना राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। समाज सुधार के दौर में प्रबुद्ध वर्ग का दृष्टिकोण उदार, विवेकशील और लोकतांत्रिक भावनाओं पर आधरित था। जैसे उन्होंने वर्ण व्यवस्था और जातिवाद का विरोध किया। हीन.दशा से जुडी प्रथाओं को समाप्त कराने का संघर्ष किया जिनमें सती प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह, बालिका वध आदि शामिल है। उन्होंने स्त्री.शिक्षा, विधवा विवाह आदि का समर्थन ही नहीं किया वरन् इसके लिए संस्थाएँ भी स्थापित कीं।

1857 के संघर्ष की असफलता ने सामन्ती शासन की पुनः स्थापना का विकल्प हमेशा के लिए खत्म कर दिया। लेकिन इसी दौर में परिस्थितियाँ नये ढंग से सामने आ रही थीं जिसने 1870 के बाद नये राजनीतिक उभार को जन्म दिया और जिसकी परिणति 1885 में कांग्रेस की स्थापना में हुई। इस दौर की उस विशेष स्थिति पर रोशनी डालते हुए ए.आर.देसाई लिखते हैं,– 1857 के विद्रोह के परवर्ती काल में किसानों का असंतोष लगातार बढ़ गया क्योंकि ब्रिटिश शासन में वे अधिकाधिक विपन्न होते गये थे। भू.राजस्व और लगान के बढ़ते हुए बोझ का उन पर बड़ा बुरा असर पड़ा था। 1870 तक हस्तशिल्प और कारीगर उद्योग पूरी तरह खत्म हो गये थे। 1870 के कृषि संकट के फलस्परूप किसानों की स्थिति और भी बुरी हुई और उनमें ऋणग्रस्तता बढ़ी। 1867 और 1880 के बीच कई अनर्थकारी दुर्भिक्ष पड़े। दूसरे अफगान युद्ध के वित्तीय बोझ और 1877 के असंयत अत्तिव्यापी, भव्य और चमत्कारिक दिल्ली दरबार जिसमें विक्टोरिया को भारत साम्राज्ञी घोषित किया गया, के कारण लोगों का असंतोष और दोष बढ़ा ही, खासकर इसलिए कि यह दुर्भिक्ष और भुखमरी का जमाना था। फिर 1878 के वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट जो भारतीय प्रेस की स्वतंत्रता पर रोक लगाने के निमित्त पारित किया गया था, और 1879 के इंडियन प्रेस और आर्म्स एक्ट के कारण लोगों के असन्तोष की ज्वाला प्रज्वलित हुई। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भारतेन्दु और उनके समय के दूसरे लेखक लिख रहे थे। राष्ट्रीय असंतोष की जिस भावना को इस दौर में डब्लू. सी. बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आर.सी.दत्त, दादा नौरोजी जस्टिम रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले आदि व्यक्त कर रहे थे, उसी

असंतोष को अपने ढंग से भारतेन्दु युग के लेखक भी व्यक्त कर रहे थे और 'अन्धेर नगरी' की रचना इन्हीं परिस्थितियों में इसी असंतोष की अभिव्यक्ति के लिए हुई थी।

जैसा कि हमने कहा है, भारतेन्दु युगीन समय में ध्यान देने योग्य बात है– एक ओर भारतीय किसानों और सिपाहियों का राष्ट्रीय विद्रोह और दूसरी ओर राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म। राष्ट्रीयता का स्वर क्रांतिकारी है और राष्ट्रीय कांग्रेस का सुधारवादी। इसलिए विचारणीय है कि भारतेन्दु के साहित्य में कौन सा स्वर प्रमुख है? क्या वह 1875 के राष्ट्रीय विद्रोह की चेतना का विकास है या 1885 की कांगेस की सुधारवादी चेतना के अधिक निकट है? वस्तुतः भारतेन्दु युग का सम्बन्ध इस द्वन्द्वात्मक चेतना से है जब भीतर ही भीतर बहुत तेजी से नवीन मौलिक दृष्टि राजनीतिक क्रांति के रूप में मुखर हो रही थी जिसे हम भारत दुर्दशा, 'अन्धेर नगरी' में सीधे देख सकते हैं। भारतेन्दु ने अपने प्रहसनों में इस साम्राज्यवादी व्यवस्था को बड़ी निर्ममता से उघाड़ा हैं। भारतेन्दु ने अपने पारिवारिक संस्कारों से निरन्तर संघर्ष करते हुए रूढ़िग्रस्त देशवासियों को साम्राज्यवाद के विरूद्ध जगाने का साहसिक कार्य किया। अंग्रेजी राज में सुख समृद्धि शक्ति एवम् व्यवस्था का उन्होंने खूब मजाक उड़ाया। तत्कालीन परिस्थितियों में भारतेन्दु ने साहित्य और जंनता को निकट लाने का गम्भीर दायित्व निभाया। अंग्रेजी राज की दमनकारी व्यवस्था में उसके पास मिथक और प्रहसन एक रास्ता था। 'अन्धेर नगरी' से यह प्रमाणित हो जाता है। भारतेन्दु युग में जो तीखा प्रहसनात्मक व्यंग्य, अपने समय के प्रति गहरी आलोचनात्मक समझ और वैचारिक संषर्घ पनप रहा था उसी में भविष्य के बीज मौजूद हैं। सत्ता और व्यवस्था के परिवर्तन की आकांक्षा और जनसामान्य के शोषण का विरोध उसके नाटकों में व्यक्त हुआ।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1 – भारतेन्दु के जीवनकाल में कौन से दो ऐतिहासिक घटनाएं हुयी?

उत्तर ______________________________

____

प्रश्न 2 – भारतेन्दु के समय स्थानीय स्तर पर जमींदारी प्रथा का विस्तार होने से किसानों की दशा पर क्या प्रभाव पड़ा?

उत्तर – ______________________________

____

____

____

____

____

प्रश्न 3 – अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड में बने माल की बिक्री सुनिश्चित करने के लिए क्या किया?

उत्तर – ______________________________

____

____

____

प्रश्न 4– भारत में अंग्रेजों ने रेल यातायात आरम्भ क्यों की?

उत्तर – ____

____

____

प्रश्न 5 – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं?

उत्तर – ____

____

____

2.9 युगबोध की कसौटी पर 'अन्धेर नगरी'

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' अपने समय का कुशल चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है। इससे पहले संक्षिप्त रूप में हम यह कहना चाहेंगे कि रचनाकर भारतेन्दु जी किसी प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं थे। वे न तो चली आती हुई किसी प्राचीन कालीन साहित्यिक विचारकों के मत से सहमत थे और न किसी घिसी.पिटी मान्यताओं को ही स्वीकारने वाले थे। अपितु वे सर्वथा एक नवीन युग के निर्माता, पक्षधर और स्वप्नद्रष्टा थे। उनका दृष्टिकोण एक पुष्ट, सबल और स्वस्थ समाज का रोपण करने वाला था। उन्हें अपने समाज और राष्ट्र के अतीत से गहरा और अटूट लगाव था। वे अपने समय के बिखरते हुए जीवन मूल्यों को भली.भाँति देख रहे थे और इसको गम्भीरतापूर्वक अनुभव भी कर रहे थे। इससे संवेदनशील होकर ही वे साहित्योन्मुख हुए थे। अपने समय की हृदय स्पर्शी समस्याओं को मर्मस्पर्शी रूप में चित्रित करने के साथ ही साथ उनके निदान और समाधान के जिए उन्होंने अनेक साहित्यिक विधाओं का पीयूष.स्त्रोत प्रवाहित किया था।

अब यह विचारणीय है कि बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कौन.सा युग संकट और समाज.राष्ट्रगत घोर अभाव देखा था। इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि उसके समय में प्रथम स्वतन्त्रता संग्रम की प्रतिक्रियास्परूप अंग्रेज. प्रभुता की क्रूरतापूर्ण कदम और दुर्व्यवहार, सांस्कृतिक संस्था तथा विधर्मियों के द्वारा हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रहार और अपनी संस्कृति और धर्म का दिया जा रहा बोझ कुत्सित व्यवहार, जातीय गर्व का ह्रास और फिर साहित्य और साहित्यकार का अनादर–उपेक्षा आदि का विशेष आधिक्य था। भारतेन्दु जी ने इस सबके प्रति अपना यथासम्भव दृष्टिकोण अपनाया और ठोस कदम उठाया। उनके युगबोधमय दृष्टिकोण और ठोस कदमों को लक्षित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें असाधारण युग प्रहरी स्वीकारते हुए यह कहा हैं कि–"उन्होंने हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से जगा दिया। बड़े भारी विच्छेद से उन्होंने हमें बचाया।"

भारतेन्दु ने अपनी चर्चित कृति 'अंधेरी नगरी' में अपने युग की सम्पूर्ण स्थिति के एक भाग को बड़े ही प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है। उन्होंने देखा कि बुद्धि और ज्ञान को आधार बनाने वाली ब्राह्मण जाति किसी प्रलोभन में आकर अपना आदर्श और गरिमा के पथ को छोड़ती जा रही है। उसे अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए पैसे चाहिए, इसके लिए वह सब कुछ दे देने के लिए तैयार है। बस केवल मोल लेने वाला होना चाहिए। 'अन्धेर नगरी'

का ब्राह्मण टके के वास्ते यह कहता है कि, 'एक टका हमें दो हम अभी अपनी जात दे देते हैं। 'अन्धेर नगरी' में सब टके का ही खेल और चमत्कार दिखालने का प्रयास रचनात्मकता ने किया है। टके के वास्ते ब्राह्मण धोबी और धोबी ब्राह्मण बनने को तैयार है। यही नहीं टके के वास्ते सच की झूठ गवाही भी सम्भव है और टके के वास्ते ही पापीष्ट को धर्मात्मा और धर्मात्मा को पापीष्ट बनाना सम्भव है। टका ही पुण्य है, टका ही पितामह है, टका ही अनमोल पदार्थ है और टका ही जाति हैं, संस्कार वेद धर्म, कुल जाति वंश सब टके सेर हैं।'' इस सभी तत्कालीन युगीन चित्रों को भारतेन्दु अपने प्रहसन 'अंधेरी नगरी' में बखूबी चित्रित किया है।

भारतेन्दु द्वारा लिखित 'अंधेरी नगरी' प्रहसन में उस अतीत कालीन अंग्रेजी सत्ता का विवरण है जिसमें शासक प्रजा का अनादर और तिरस्कार किया करते हैं। भारतेन्दु की इस रचना में ऐतिहासिक तथ्यों का सत्य निरूपण है। अंग्रेजी सरकार किस तरह से भारी टैक्स के द्वारा भारत के उद्योग.धन्धों को समाप्त करने में लगी हुई है। हमारे अतीतकालीन उद्योग.धन्धे समाप्त होकर उस समय परामुखी हो चुके थे। उस समय में सभी सरकारी अधि ाकारी दमन कर रहे हैं। शोषण का जबर्दस्त कुचक्र फैला हुआ था और चारों ओर जनता लुटी जा रही थी। उसमें व्यापक असंतोष और घूँटन की भावना दिखाई देती है। हमारी राष्ट्रीय एकता की भावना को भंग करने में और क्रान्तिकारी की भावना को विनष्ट करने में एक जुट होकर अंग्रेजी सरकार सक्रिय हो रही थी। 'अन्धेर नगरी' का चूरन वाला इसी प्रकार के युग बोध का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हैं जो इस प्रकार से दृष्टव्य है:

चूरन नाटक वाले खाते। इसकी नकल पचाकर लाते।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।
चूरन खाते लाला लोग। जिसकी बुद्धि अकिल अजीरन लोग।
चूरन खाते एडीटर जात। जिसके पेट पचे नहीं बात।
चूरन साहब लोग जो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।

भारतेन्दु के युग का सच्चा व्यक्ति गलत समझा जाता था और गलत व्यक्ति सच्चे रूप में देखा जाता था। इसलिए सच्चे व्यक्ति सब प्रकार से पीड़ित और दुखित होते रहते थे। सत्याचरण तो केवल प्रदर्शनमात्र था। अंदर से तो बदनीयत और कलुष भावना का ही ज्वार उमड़ता था। इस समाज में धर्म और नैतिक स्वरूपों का गला घोंट दिया गया था और गाय, द्विज, वेद आदि सात्विक स्वरूपों के प्रति अभिमान का भाव मरता जा रहा था। इस प्रकार का दृश्योल्लेख 'अन्धेर नगरी' के पाँचवें दृश्य में यों है–

साँचे मारे डोलै। छली दृष्ट सिर चढ़ि–चढ़ि बोलै।
प्रगट सभ्य छलकारी। सोई राज सभा बल भारी।
साँच कहें ते पहनीं खावे। झूवे बहुविधि पदवी पावै।
छलियन के एकाके आगे। लाख कहौ एकहूँ नहीं लागे''
गोद्विज श्रुति आदर नहिं होई। मानहु नुपति विधर्मी कोई।।

संक्षेप में हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि उस युग में किसी प्रकार न कोई आदर्श था न सभ्यता, और न कोई नैतिकता ही थी। अपितु पूरा समाज अयोग्य अंग्रेजी सत्ता का अनुयायी बन चुका था। इस प्रशासन से केवल अज्ञानता के बादल घने हो रहे थे और हमारी भारतीयता की छवि को कलुषित कर रहे थे। अतएव 'अन्धेर नगरी' वास्तव में युग बोध की कसौटी पर कसने से खरा और सफल दिखाई पड़ता है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1 – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय कौन.सा युग संकट और समाज.राष्ट्रगत परिस्थितियाँ थी?

उत्तर ____

____

____

____

____

प्रश्न 2 – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के युगबोधमय दृष्टिकोण और ठोस कदमों को लक्षित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें असाधारण युग प्रहरी स्वीकारते हुए क्या कहा?

उत्तर ____

____

____

____

____

प्रश्न 3 – सत्य/असत्य लिखिए–

1) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सर्वथा एक नवीन युग के निर्माता, पक्षधर और स्वप्नद्रष्टा थे।

उत्तर – ______________

2) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' अपने समय का कुशल चित्र प्रस्तुत करने में असमर्थ है

उत्तर – ______________

3) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का दृष्टिकोण एक पुष्ट, सबल और स्वस्थ समाज का रोपण करने वाला था।

उत्तर – ______________

4) 'अन्धेर नगरी' वास्तव में युग बोध की कसौटी पर कसने से खरा और सफल दिखाई पड़ता है।

उत्तर – ______________

2.10 सारांश

पात्र.योजना एवम् चरित्र.चित्रण, सम्वाद एवम् भाषा.शैली जैसे नाट्य तत्वों के सन्दर्भ में 'अन्धेर नगरी' के विवेचन से स्पष्ट है कि 'अन्धेर नगरी' एक सफल नाटक है। यहाँ पात्र अपने पूरे समूह में, समूह के संयोजन, उसके अर्थवता में एक साथ महत्वपूर्ण हैं। नाटक में वाक्य.विन्यास और शब्द चयन की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। एक.एक शब्द अर्थमूलक तथा प्रयोजनमूलक है। शब्द चयन की इस विशिष्टता के कारण प्रहसन की भाषा में विशेष रोचकता आ गयी है। 'अन्धेर नगरी' यथार्थवाद, व्यंग्यात्मक, समकालीन जीवन का प्रत्यक्षीकरण कराने वाला सामाजिक नाटक है इसलिए 'जीवन की हलचल की भाषा में' रोजाना के मुहावरे और लहजे में रची.बसी भाषा में गठित.सृजित सम्वाद ही उसका प्राणतत्व है। गीत योजना ने 'अन्धेर नगरी' की सफलता में अपना अमुल्य और सार्थक योगदान दिया है। सारांशतः कह सकते हैं कि 'अन्धेर नगरी' प्रहसन की गीत योजना पूर्ण सफल है। भारतेन्दु जी ने इस प्रहसन के गीतों एवम् दोहों के माध्यम से तत्कालीन राज्य.व्यवस्था, न्याय.व्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर करारा व्यंग्य किया है। आलोच्य प्रहसन में सरसता और रोचकता के साथ अनुभूति की मौलिकता विद्यमान है।

2.11 अपनी प्रगति जाँचिए

1 'अन्धेर नगरी' की सम्वाद योजना पर प्रकाश डालते हुए उनकी विशेषताओं का उद्घाटन कीजिए।

2 'अन्धेर नगरी' की भाषा–शैली पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

3 'अन्धेर नगरी' प्रहसन की गीत–योजना की सफलता एंव असफलता की दृष्टि से समालोचना कीजिए।

4 गीतों के माध्यम से भारतेन्दु हरिश्चद्र जी ने क्या सन्देश दिया है? उसकी व्याख्या कीजिए ।

5 भारतेन्दुयुगीन समय पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

6 'अन्धेर नगरी' युगबोध की कसौटी पर खरा उतरता है। स्पष्ट कीजिये।

2.12 नियतकार्य / गतिविधियाँ

1 'अन्धेर नगरी' में प्रयुक्त गीतों का सस्वर पाठ करें।

2 'अन्धेर नगरी' में प्रयुक्त कहावतों / मुहावरों का संकलन कर उनके अर्थ स्पष्ट कीजिए और कहावतों / मुहावरों का प्रयोग करते हुए एक.एक वाक्य की रचना कीजिए।

3 'अन्धेर नगरी' में प्रयुक्त देशज शब्दों का संकलन कर उनके अर्थ को व्याख्यायित करने हेतु पत्रक (चार्ट) तैय़ार करें।

4 'अन्धेर नगरी' में राजा द्वारा नशे की हालत में बोले गये संवादों में प्रयुक्त विकृत शब्दों का चयन कर उनके सही शब्दों की संरचना करते हुए पत्रक (चार्ट) तैयार करें।

2.13 स्पष्टीकरण के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

____

____

2.14 चर्चा के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर आप और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

इकाई– 3

(अ) 'अन्धेर नगरी' का प्रहसन स्वरूप एवम् रंग परिकल्पना

(ब) व्याख्या खण्ड

इकाई 3 (अ) की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 प्रहसन के रुप में 'अन्धेर नगरी'

3.4 'अन्धेर नगरी' की रंग परिकल्पना

3.5 'अन्धेर नगरी' की रंगमंचीय प्रस्तुति

3.6 सारांश

3.7 अपनी प्रगति. जाँचिए

3.8 नियतकार्य / गतिविधियाँ

3.9 स्पष्टीकरण के बिन्दु

3.10 चर्चा के बिन्दु

इकाई 3 (ब)

व्याख्या खण्ड

3.1 उद्देश्य

पिछली इकाई में आपने 'अन्धेर नगरी' के नाट्य तत्वों की विशिष्टताओं को जाना। प्रस्तुत इकाई के अध ययन के पश्चात आप –

- 'अन्धेर नगरी' एक प्रहसन है पूर्ण नाटक नहीं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात 'अन्धेर नगरी' के प्रहसन स्वरूप को समझ पाएंगे।

- 'अन्धेर नगरी' की रंग परिकल्पना के अध्ययन से आप जान पाएंगे कि दृश्य विधान, सम्वाद, भाषा, पात्र योजना, अभिनेयता आदि सभी दृष्टि से आलोच्य नाटक रंगमंच की दृष्टि से कितना सशक्त और सफल नाटक है।
- इकाई के अन्त में 'अन्धेर नगरी' की रंगमंचीय प्रस्तुतियों को आप जान पाएंगे।

3.2 प्रस्तावना

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी की षष्ठम् प्रश्न.पत्र 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के 'अन्धेर नगरी' से सम्बन्धित खण्ड की यह तीसरी इकाई है। पहली दो इकाईयों में नाटककार भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा, उनके नाट्य साहित्य तथा 'अन्धेर नगरी' के नाट्य तत्वों की विशिष्टताओं से आप परिचित हो चुके हैं।

'अन्धेर नगरी' बदलते युग के अनुसार हिन्दी नाटक और रंगमंच के लिये एक मौलिक, लचीले, जीवन्त और सार्थक नाट्य शिल्प का उदाहरण प्रस्तुत करता है। अतः प्रस्तुत इकाई में 'अन्धेर नगरी' की रंगपरिकल्पना पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त आप 'अन्धेर नगरी' की रंगमंच पर होने वाली प्रस्तुतियों एवम् रंगमंचीय प्रयोगों के बारे में भी जान सकेंगे।

3.3 प्रहसन के रुप में अन्धेर नगरी

नाटक का लक्षण और अर्थ स्पष्ट करते हुए साहित्य.शास्त्री ब्रजरत्नदास ने अपनी समीक्षा पुस्तक 'हिन्दी नाट्य साहित्य' में लिखा है– ''नट क्रिया का अर्थ नृत्य करना या अभिनय करना है और जिसमें यह दिखलाया जाय वही नाटक है।'' वास्तव में सर्वगुण सम्पन्न अत्यन्त मनोहर और लोमहर्षक खेल ही नाटक है। साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के दो रूप कहे हैं– श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य का आनन्द और अनुभव केवल श्रवण द्वारा होता है। नाटक एक दृश्यकाव्य है और इसका सब कुछ श्रेय या प्रेय मात्र इसके अभिनय पर निर्भर होता है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों के तीन मतों अर्थात् कल्पना, बुद्धि और शैली में से बुद्धि तत्व को ही अपनाया है क्योंकि इनके विचार से बुद्धि तत्व या विचार तत्व के समावेश से दृश्यकाव्य की कला में कोई कमी नही होती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों में इसी तत्व को ग्रहण किया है। दृश्यकाव्य गुणयुक्त, दोषरहित, रमणीयता का प्रतीक है और सरस अलंकृत शब्दावली सा होता है। जिसमें सहज और सरल भाषा शैली के द्वारा स्पष्ट विचारों का समावेश रहता है। भारतेन्दु द्वारा लिखित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' में उपर्युक्त तत्वों का समावेश है।

प्रहसन की परिभाषा करते हुए प्रसिद्ध साहित्य कोश भाग–1 में लिखा है–

भाणवत्सान्धि सन्ध्य लाक्ष्य विनिर्मितम्।
भवेत् प्रहसनं वृतं निन्द्यानां कतिकल्पितम् ।।
अभवारभटी, नापि विष्कम्भक प्रवेशकौ।
अभी हास्य रसस्तत्र दीध्यानां स्थितिनैवा।।

अर्थात् प्रहसन रूपक का एक ऐसा भेद है जिसमें सन्धि, संध्य लाक्ष्य और अंकको रचना की भांति हुआ करती है। इसका कथानक अधम प्रकृति के व्यक्ति का इतिवृत्त होता है और वह भी कवि द्वारा कल्पित होता है। इसमें वाराभटी नामक वृत्ति नही होता है और न विष्कम्भक और न प्रवेशक की ही रचना की जाती है। इसका अंगी रस हास्य होता है। इसमे वीथ्यंग योजना ऐच्छिक होती है, अनिवार्य नहीं होती। प्रहसन दो प्रकार का होता है। 1. शुद्ध प्रहसन और 2. संकीर्ण प्रहसन। भरतमुनि के अनुसार– जब भगवत् तापस, भिक्षु, क्षत्रीय आदि का किसी

(पाखण्डी) नाभक या नीच व्यक्तियों द्वारा परिहास किया जाए तो शुद्ध प्रहसन होता है। इसमें भाषा और कथानक को आरम्भ से अन्त तक एक समान रूप से पाखण्डी व्यक्तियों के यथार्थ जीवन के उपयुक्त नियोजित किया जाता है। संकीर्ण प्रहसन के विषय में भरतमुनि ने कहा है– इसमें वेश्य, चेट, नंपुसक, विट, धूर्त, वन्धकी के अशिष्ट वेश, भाषा और चेष्टाओं का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है। इसमें सामान्य जनता में प्रचलित किसी दुराचरण एवम् दम्भपाखण्ड का प्रदर्शन अनिवार्य है। साहित्यालोचक ब्रजरत्नदास के अनुसार– प्रहसन में कल्पित कथा रहती है और हास्य रस प्रधान होता है। पात्रगण साधारण या निम्नकोटि के होते है। स्वयं भारतेन्दु जी ने प्रहसन की परिभाषा इस प्रकार से दी है– हास्य इसका मुख्य खेल, नायक राजा व धनी या ब्राम्हण अथवा धूर्त कोई भी हो। इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए। किन्तु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते है। भारतेन्दु जी इसके उदाहरणार्थ अपने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' और 'अन्धेर नगरी' का नाम लिया है।

उपर्युक्त प्रहसन के लक्षण, परिभाषा और उदाहरण के आधार भारतेन्दु द्वारा लिखित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' संकीर्ण प्रहसन सिद्ध होता है। हम यह पहले कह चुके है कि संकीर्ण प्रहसन में किसी वेश्या चेट (भांड़) नपुसंक, विट (वेश्या गामी तथा कामुक) धूर्त और वंधकी (दुराचारी) का आख्यातोल्लेख होता है अर्थात् इनमें से किसी भी पात्र को नायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुत प्रहसन 'अन्धेर नगरी' का नायक राजा इसी श्रेणी का पात्र है। उसका स्वरूप एक भांड़, धूर्त या कलीव से अच्छा नहीं है। वह आरम्भ से अन्त तक एक हास्यजनक स्थिति में प्रस्तुत है। वह सब प्रकार से हास्य का केन्द्र बना हुआ है। उसका आचरण और कर्म दोनों ही हास्य रस से अभिसिंचित और आप्लावित है। जब वह शराब के नशे में मस्त हो जाता है। तब वह गन्दे और अशिष्ट शब्दों को निकालता है और शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाता है। जैसे– क्यों बे कारीगर। इसकी बकरी किस तरह मर गई? कल्लू बनिया की दीवार को अभी पकड़ लाओं। क्यों बे बनिये। इसकी करकी नही बरकी क्यों दबकर मर गई आदि। इनसे उसके अर्धज्ञान और उपहास का पात्र होने का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। केवल यही नहीं उसकी अल्प समझ उसकी मूर्खतामयी सूझ और इससे उसका फैसला करना और निर्णय देना भी उसको हास्य का केन्द्र बनाने में पर्याप्त है।

संकीर्ण प्रहसन के नायकत्व पर विचार करने के बाद जब हम इसकी कथावस्तु पर विचार करते है तो हम यह देखते है कि संकीर्ण प्रहसन की कथावस्तु सामान्य जनता में प्रचलित किसी दुराचरण और दम्भ, पाखण्ड का प्रदर्शन के साथ न्याय और अन्याय की विपरीत दशाओं और उजागर करने वाला है।

अर्थात् संकीर्ण प्रहसन की कथावस्तु में न्याय की जगह अन्याय और अन्याय की जगह न्याय का रूप या स्थिति होती है। प्रस्तुत संकीर्ण प्रहसन 'अन्धेर नगरी' की कथावस्तु के मूल में दोषी को निर्दोषी और निर्दोषी को दोषी व्यक्त करने में सक्षम और अत्यन्त सफल है। इसके अतिरिक्त संकीर्ण प्रहसन की कथावस्तु यथार्थ नहीं अपितु कल्पित होती हुई भी यथार्थन्मुख होती है। इसकी घटना किसी निश्चित गतिविधि को कल्पित होती हुई भी सत्य और सम्भावित स्थिति को प्रस्तुत करने में सक्षम सिद्ध होती है। प्रस्तुत संकीर्ण प्रहसन 'अन्धेर नगरी' की कथावस्तु इस विचार से सफल और उपयुक्त सिद्ध होती है। यह हम भली प्रकार से जानते है कि किसी भी प्रहसन का अंगीरस केवल हास्य रस होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित संकीर्ण प्रहसन का अंगीरस हास्य रस है क्योंकि इसके समस्त कार्य व्यापारों को संचालित करने वाले पात्रों के हाव भाव और प्रस्तुतिकरण हास्योद्दपन से प्रस्तुत और नायक राजा का अवलम्बन भी केवल यही है।

संकीर्ण प्रहसन के अन्य पात्र साधारण और निम्न या अधम कोटि के होते है जिनका चरित्रोद्घाटन के लिये प्रहसनकार संकेत मात्र किया करता है। इनके चरित्र भी सामाजिकता और मानवता से लगभग पृथक ही होता है। 'अन्धेर नगरी' के अन्य पात्र सामाजिक दायित्व से हीन और हीन दृष्टिकोण के है यथा मंत्री, कोतवाल, कल्लू, कारीगर, कस्साई, भिश्ती, गड़ेरिया आदि।

प्रहसन की एक यह भी विशेषता होती है कि उसमें आरभटी, विष्कम्भक और प्रवेशक आदि नाटक के समान नहीं होते है। इनका प्रवेश विस्तृत कथन के लिए उपयुक्त है। एकांकी में इसकी सम्भावना नहीं की जा सकती है। 'अन्धेर नगरी' प्रहसन में आरभटी, विष्कम्भक और प्रवेशक आदि का समावेश इसीलिए नहीं किया गया है क्योंकि यह एक एकांकी है नाटक नहीं। 'अन्धेर नगरी' में इसीलिए वह वर्णन प्रस्तुत है जो सामान्य और सहज होते हुए भी अद्‌भुत नहीं अपितु यथार्थमय हो।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कोई भी प्रहसन (चाहे शुद्ध प्रहसन हो या संकीर्ण प्रहसन) हो, केवल एक अंक का होता है। यह ठीक वैसे ही प्रस्तुत होता है जैसे भाण में का एक अंक होता है और वह प्रस्तुत होता है। इसके अन्तर्गत नट ही ऊपर देख.देखकर अपनी कथा किसी से बार.बार कहते हुए दिखाई पड़ता है। यों तो हम पहले कह चुके है कि किसी प्रहसन में प्रधान रस हास्यरस होता है। लेकिन इस रस के अतिरिक्त विषय को रोचक और मर्मस्पर्शी बनाने के लिए अन्य रसों का भी सामान्यतः प्रयोग होता है यथा– रौद्र, शांत, करूण आदि। इनके द्वारा कभी क्रोध, तो कभी चिंता और कभी गम्भीर विचारों का सन्निवेश होता है लेकिन सम्पूर्ण रचना का मुख्योद्‌देश्य केवल विनोद होता है जो वास्तव में हास्य व्यंग्य के रस से अभिसिंचित होता है। इस प्रकार से प्रहसन की भाषा सामान्य, सरल और सहज होती है। स्वाभाविक रूप से व्याकरण की अशुद्धियाँ कहीं भी देखी जा सकती है।

उपर्युक्त तथ्यों की सत्यता की खोज किए जाने पर बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' अपूर्ण रूप में प्राप्त होता है। इसके आरम्भ में किसी प्रकार से कोई अंक नहीं है। और इसका आरम्भ केवल प्रथम करके रचनाकार ने कर दी है जो प्रहसन के नियम के विरूद्ध दिखाई पड़ता है। इस सम्पूर्ण प्रहसन में केवल छः दृश्य है और नट ऊपर देखते हुए सम्पूर्ण कथा को स्वयं नहीं कहता है बल्कि कथातन्तु किसी और पात्रों के द्वारा भी प्रकट किया जाता है जो परस्पर तर्क.वितर्क, सम्वाद करके सामने प्रस्तुत होते है। इस दृष्टिकोण से 'अन्धेर नगरी' प्रहसन काव्यशास्त्र के मतों या सिद्धान्तों की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। इस तथ्य के विचारने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते है कि रचनाकार एक नयी काव्यशास्त्रीय परम्परा का प्रवर्तक होने के प्रयास में ही ऐसा कर सका है। इसकी पुष्टि भारतेन्दु के द्वारा दी गई स्थापना से हो जाती है जो इस प्रकार से है– ''यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किन्तु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते।'' इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि भारतेन्दु जी ने अंक को देना या लिखने की कोई आवश्यकता नहीं समझे या इसे अनुचित समझकर नहीं लिखे। तब हम यह कह सकते है कि भारतेन्दु इससे सम्बन्धित दृष्टिकोण से अनभिज्ञ नहीं थे और न तो वे जान बूझकर ही परम्परागत काव्यशास्त्री दृष्टिकोणों का किसी प्रकार अनुवर्त्तन पथ से भटक चुके थे। बल्कि उनका यह प्रयास कि वे एक नई परम्परा का बीजारोपण करें और चली आती हुई परम्परागत दृष्टि को साफ सुथरी बना सके। इससे उनका एक अपूर्व या अद्‌भुत योगदान सिद्ध होता है। इस आधार पर प्रस्तुत प्रहसन 'अन्धेर नगरी' का कथानक अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने में समक्ष और योग्य सिद्ध होता है। इसमें की गई दृश्यों की योजना से हास्य व्यंग्यों की सक्षम शक्ति के द्वारा तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर कटु प्रहार अत्यन्त सटीक और सजीव रूप में दिखाया गया है। हास्य व्यंग्य के प्रस्तुतीकरण के द्वारा भारतेन्दु ने पाठक और श्रोता के मनोभावों को गुदगुदाते हुए उसे वास्तविक स्थिति से परिचित कराया है।

उपर्युक्त विवेचनों को समेटते हुए हम यह निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि 'अन्धेर नगरी' एक सफल और उत्तम कोटि का प्रहसन है जिसका अपना कोई महत्वपूर्ण उद्‌देश्य है। रचनाकार को इसके प्रस्तुतीकरण में अपेक्षित सफलता मिली है। इस रचना का मुख्य उद्‌देश्य भारतीय समाज की अधःस्थिति, उसके मनोबल का ह्रासोन्मुख, पराभवमय स्वरूप आदि के दोषी या एक मात्र प्रधान कारण अंग्रेजी सत्ता के प्रभाव को भली प्रकार से यथा सम्भव चित्रित किया गया है।

प्रश्न 1– साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के कौन से दो रूप कहे हैं –

उत्तर ____________________

____

____

प्रश्न 2– प्रहसन कितने प्रकार का होता है? नाम लिखिए।

उत्तर ____________________

____

____

प्रश्न 3– शुद्ध प्रहसन किसे कहते हैं?

उत्तर ____________________

____

____

प्रश्न 4– संकीर्ण प्रहसन किसे कहते हैं?

उत्तर ____________________

____

____

3.4 'अन्धेर नगरी' की रंग परिकल्पना

रंगमंच का महत्व– नाटक का अस्तित्व ही रंगमंच से है। रंगमंच के बिना नाटक की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। नाटक की उत्पत्ति रंगमंच और अभिनय के योग से हुई। नाटक की रचना पंचम वेद के रूप में आम जनता के मनोरंजनार्थ की गयी। इसीलिए अभिनेयता नाटक का सबसे आवश्यक तत्व है। डॉ. राजकुमार वर्मा के शब्दों में, जो नाटक रंगमंच पर खेले जाने पर अपना बहुत सा सौन्दर्य खो बैठते है, वे चाहे साहित्य की दृष्टि से कितने ही अच्छे क्यों न हो पर अच्छे नाटकों की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते है। नाटक दृश्य .काव्य है। इसलिए उसका सम्बन्ध रंगमंच से होता है। अतः नाटक की सफलता या असफलता रंगमंच है। नाटक की सफलता का मूल आधार अभिनय की सफलता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के सभी नाटक अभिनेय है। उनका दृश्य.विधान इतना सरल, संम्वाद इतने संक्षिप्त और सुगठित तथा भाषा इतनी सजीव, रोचक और स्वाभाविक है कि रंगमंच पर किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती है। रंगमंच संकेतों की सृष्टि भी अभिनय में विशेष रूप से सहायक है। 'अन्धेर नगरी' प्रहसन का प्रदर्शन अत्यन्त सरल है। इसे खुले तथा बन्द स्टेज पर आसानी से प्रदर्शित किया जा सकता है। कथावस्तु, चरित्र.चित्रण तथा नाट्य.

कला की योजना अभिनय में पूर्ण साधक है। अतः भारतेन्दु जी का प्रहसन 'अन्धेर नगरी' अभिनेयता की दृष्टि से पूर्णतः सफल है। 'अन्धेर नगरी' के तारतम्य में अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से नाटक में निम्न गुण दृष्टिगोचर होते हैं–

संक्षिप्त तथा सुलझा हुआ कथानक – आलोच्य प्रहसन 'अन्धेर नगरी' का कथानक लोक प्रसिद्ध लोकोक्ति 'अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा' के आधार पर एक जमींदार को लक्ष्य करके एक ही बैठक में लिखा गया है, जिसका कथानक अत्यन्त संक्षिप्त और सुलझा हुआ है। इसकी लंबाई ऐसी है कि दो घंटे में सरलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है। कथानक तीव्रगति से अग्रसर होने वाला है। मधुकर ने लिखा है, भारतेन्दु ने दर्शक को सहभागी बनाते हुए एक ऐसे नाट्यविधान की कल्पना की जिसमें नाटक रंगस्थ खेल का पर्याय था, बौद्धिक गोष्ठियों में स्फुरण के विकास का माध्यम नहीं। वास्तव में सम.सामयिक प्रश्नों को उठाते हुए भी इसमें मनोरंजन और लीलातत्व भी है। ब्रजभाषा के पद्यमय सम्वाद, नृत्य और संगीत की योजना भी है। इस प्रकार 'अन्धेर नगरी' मूलतः लोकचेतना का लोकनाट्य शैली में बंधा नाटक है। डॉ. सत्येन्द्र तनेजा के अनुसार, लोकजागरण और लोकचेतना की भावना से अनुप्राणित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाट्य दृष्टि और रंग परिकल्पना में लोकधर्मी चेतना है। इसके रंग.विधान में उन्होंने हिन्दी प्रदेश के प्रसिद्ध लोकनाट्य नौटंकी और उस युग के प्रचलित पारसी रंगमंच के स्वरूप को मिला दिया है। रंगमंच पर विविध दृश्य विधानों की टेकनीक 'अन्धेर नगरी' में भारतेन्दुजी ने पारसी नाटकों से ली है।

दृश्य विधान – आलोच्य प्रहसन को निर्देशकों ने एक ओर नौटंकी के रूप में प्रस्तुत किया है, दूसरी ओर दक्षिण के यक्षगान लोकनाट्य के रूप में। गायन, नृत्य, सम्वाद, उच्चारण, अभिनय .शैली, गति.संचार सब लोक नाटकों जैसा है। बाजार का दृश्य भी परम्परागत आधुनिक टेकनीक में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही प्रहसन में यथार्थवादी शैली की प्रस्तुति है।

सीमित पात्र – नाटक के संघटन में इतना लचीलापन है कि पात्रों के प्रवेश प्रस्थान नाटककार की तरह नहीं, निर्देशक अपनी कल्पनानुसार कर सकता है। पात्र लोकनाटकों की तरह कभी.कभी एक साथ आकर अन्त में एक साथ ही मंच से चले जाते है। 'अन्धेर नगरी' प्रहसन के राजा, मंत्री, महन्तजी, नारायण, गोबरधनदास, चार सिपाही, चार प्यादे और बाजार में विभिन्न विक्रेता है। इस प्रकार पात्रों की संख्या अधिक नहीं है। पात्र संख्या सीमित होने से दर्शकों को नाटक के समझने में कोई कठिनाई नहीं होती हैं।

दृश्य योजना – प्रहसन में कुल 6 अंक है। प्रथम अंक– बाह्यप्रान्त, द्वितीय अंक– बाजार, तृतीय अंक– जंगल, चतुर्थ अंक– राजसभा, पंचम अंक– अरण्य और छठा अंक– श्मशान का है। भारतेन्दु जी ने प्रत्येक अंक के प्रारम्भ में घटना, परिस्थिति, वातावरण, पात्रों की वेश.भूषा आदि के पर्याप्त संकेत दिये है।

सम्वाद योजना – सम्वाद की विशेषता वाचालता नही, वाग्मिता है। 'अन्धेर नगरी' नाटक के सम्वादों में जो तीव्रता और प्रखरता है, वह भी प्रहसन की अभिनेयता में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई है। सम्वाद संक्षिप्त व सरल है, वे उत्तर प्रत्युत्तर रूप में होने के कारण व्यवहारिक है, दर्शकों के लिए रूचिकर है यथा–

गोबरधनदास – क्यों भाई बनिये, आटा कितने सेर ?

बनिया – टके सेर।

गोबरधनदास – और चावल ?

बनिया – टके सेर।

गोबरधनदास – और चीनी?

बनिया – टके सेर।

गोबरधनदास – और घी?

बनिया – टके सेर।

गोबरधनदास – सब टके सेर। सचमुच।

बनिया – हाँ महाराज, क्या झूठ बोलूँगा

भाषा शैली – इसकी भाषा नितान्त हरकत भरी, जीवन्त, सक्रिय, उच्चारित शब्द की ध्वनियों और लयों के सौन्दर्य से पूर्ण है। भाषा की नाट्यात्मक अभिव्यंजना, पैनापन, लय और टोन, चरित्रानुकूलता, चमत्कारिकता, नाटकीयता और रवानगी के कारण नेमिचन्द्र जैन ने 'अन्धेर नगरी' को हिन्दी नाटको में बेजोड़ कहा है। स्वयं बाजार का दृश्य ही भाषा की व्यंजना, लय तथा कल्पना दृष्टि का अनूठा उदाहरण है। उनकी भाषा शक्ति है जो साधारण दिखने वाले दृश्य को व्यापक विस्तार और अर्थ संकेत देती है। व्यंग्य और प्रहार में उनकी भाषा यहाँ सक्षम है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा का नितान्त नया मिला हुआ प्रयोग, वह भी नवीन कलेवर के साथ प्रस्तुत है। सत्यव्रत सिन्हा के शब्दों में, "वस्तुतः इसकी शैली पारसी रंगमंच की है और कथ्य विषय के अनुकूल ही इसकी भाषा हैं।"

इसको पढ़कर लगता है कि जैसे एक निरन्तर प्रवाहमान आन्तरिक उच्छवास में, मानसिक उत्तेजना को नाट्यबद्ध कर दिया गया है। भाषा की लय का यह आवेग भी 'अन्धेर नगरी' की सफलता है, चूने वाले के लिए चुन्नीलाल को निकालो' गंडरिया के लिए 'क्यो' वे ऊखपौड के गंडरियों जैसे प्रयोग भाषा की जीवन्तता, तद्भव रूपों की प्रधानता, तोड.मरोड़, मुहावरों के प्रयोग आदि को सामने लाते है।

काव्यमयता– सचमुच नाटक स्वयं एक काव्य होता है। "श्रेष्ठ नाटक कविता के समान ही भाषा की व्यंजना शक्ति का बिम्बमयता की, सघनता और तीव्रता का, संगीत और लय का शब्द, और अभिव्यक्ति की अनिवार्यता का उपयोग करता है।" नेमीचन्द जैन की यह पंक्तियाँ नाटककार की सृजन शक्ति और संवेदना को एक चुनौती है। भारतेन्दु में नाटक का यह 'काव्यरूप' है और 'अन्धेर नगरी' तो एक नया तेवर है, काव्य का एक पैना प्रयोग। संगीत और काव्य को भारतेन्दु ने नाटक का अभिन्न अंग माना हैं जनसमूह इनसे बहुत अधिक प्रभावित होता है। संगीत का प्रयोग नाटक में कितना अर्थवान, अनिवार्य और सांकेतिक ढंग से किया जा सकता है वह 'अन्धेर नगरी' में विभिन्न धुनों के प्रयोग से समझा जा सकता है।

अभिनेयता– 'अन्धेर नगरी' खुले सादे मंच का प्रहसन है। यद्यपि इसमें इतनी सम्भावनायें भी है कि वह प्रोसेनियम मंच पर बन्द प्रेक्षागृह की चाहर–दीवारी में भी अपना प्रभाव डाल सकता है। लेकिन उसकी मूल–प्रवृत्ति और उसका समग्र प्रभाव खुले मंच पर ही है। कार्य की जिस त्वरित गति को, दिल्लगी को, बात कहने की सर्वथा अपनी मौलिक शैली को भारतेन्दु ने पकड़ा है वही 'अन्धेर नगरी' को कालजयी बनाता है। 'नाटक देखहु सुख पायो' कहकर भारतेन्दु अपनी अवधारणा को पर्याप्त स्पष्ट कर देते हैं। दर्शक की उपस्थिति का एहसास 'अन्धेर नगरी' में बराबर होता रहता है। वह ड्राइंग रूमी नाटक नहीं लगता। वह अतिनाटकीय और अतिमनोरंजनपूर्ण परिस्थितियों से युक्त अस्वाभाविक घटना प्रधान नाटक भी नहीं लगता है। उसके पात्र निर्जीव नहीं है, बल्कि ये उसमें स्थितियों और व्यंग्य के संकेत के लिए ही है। पात्रों की अलग व्यक्तित्व.रेखायें विकसित करना इस प्रहसन में सम्भव भी नहीं था। वस्तुतः 'अन्धेर नगरी' जीवन्त, सार्थक, समकालीन रचना है।

अन्त में हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि निश्चय ही 'अन्धेर नगरी' एक प्रहसन होते हुए भी अपने कथ्य में आधुनिक, निरन्तर, नवीन और शैली–शिल्प में मौलिकता और लचीलेपन का, परम्परा और प्रयोग का उदाहरण है। भारतेन्दु जी नाटक, नाट्यकला, रंगमंच नाट्यभाषा नाट्य समीक्षा के प्रति सजग, सक्रिय साहित्यकार थे तथा अभिनेता, रंगकर्मी होने के कारण रंगमंच के प्रति निष्ठावान भी थे। नाटक और रंगमंच की दृष्टि से वे एक ऐतिहासिक सन्दर्भ पुरुष माने जा सकते है। उनका प्रहसन 'अन्धेर नगरी' अभिनय की दृष्टि से पूर्ण सफल है।

प्रश्न 1– उचित विकल्प चुनकर लिखिए

1) रंगमंच पर विविध दृश्य विधानों की टेकनीक 'अन्धेर नगरी' में भारतेन्दु जी ने किनसे ली है?

अ–अंग्रजी नाटकों से

ब–पारसी नाटकों से

स–बंगला नाटकों से

द–मराठी नाटकों से

उत्तर ______________________

2) 'अन्धेर नगरी' किस मंच का प्रहसन है?

अ– बन्द स्टेज

ब– खुले सादे

स– दोनो

उत्तर ______________________

3) 'अन्धेर नगरी' में गायन, नृत्य, सम्वाद, उच्चारण, अभिनय–शैली, गति–संचार सब किसके जैसा है?

अ–मराठी नाटकों जैसा

ब–बंगला नाटकों जैसा

स–लोक नाटकों जैसा

द–उपर्युक्त तीनों जैसा

उत्तर ______________________

प्रश्न 2– अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से नाटक में किन गुणों का होना आवश्यक है?

उत्तर – ____

____

____

प्रश्न 3–'अन्धेर नगरी' प्रहसन में कुल कितने अंक है?

उत्तर – ____

प्रश्न 4– नेमिचन्द्र जैन ने 'अन्धेर नगरी' को हिन्दी नाटकों में क्यों बेजोड़ कहा है?

उत्तर ____

____

____

प्रश्न 5– सत्य/असत्य लिखिए

1) भारतेन्दु जी ने 'अन्धेर नगरी' नाटक के प्रत्येक अंक के प्रारम्भ में घटना, परिस्थिति, वातावरण, पात्रों की वेश–भूषा आदि के पर्याप्त संकेत दिये है।

उत्तर – ____________

2) संगीत और काव्य को भारतेन्दु ने नाटक का अभिन्न अंग नहीं माना हैं।

उत्तर – ____________

3) 'अन्धेर नगरी' अतिनाटकीय और अतिमनोरंजनपूर्ण परिस्थितियों से युक्त अस्वाभाविक घटना प्रधान नाटक भी लगता है।

उत्तर – ____________

4) नाटक और रंगमंच की दृष्टि से भारतेन्दु जी एक ऐतिहासिक सन्दर्भ पुरूष माने जा सकते है।

उत्तर – ____________

3.5 'अन्धेर नगरी' की रंगमंचीय प्रस्तुति

जैसा कि पहले ही जान चुके हैं, भारतेन्दु नाटक शब्द का अर्थ रंगस्थल खेल ही मानते है और कहते हैं कि नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। रंगमंच उनकी सक्रियता, रगांन्दोलन की संगठित योजनाओं और संस्कृत मंच, लोकमंच, पारसी रंगमंच और विदेशी एवम् बंगला मंच, मराठी मंच का ज्ञान और अनुभव उन्हें बराबर हिन्दी रंगमंच के लिए प्रेरित करता था। इसलिए उनके नाटकों में रंगमंच अलग से कोई विचारणीय प्रश्न या विषय नहीं है। वह नाटक में अंतर्निहित है। चूँकि 'अन्धेर नगरी' अपनी संवेदना और शिल्प में एक अत्यन्त लचीले कलेवर की, रोचक, मुखर गठी हुई, गत्यात्मक और तीखी चुभन की नाटय.रचना हैं इसलिए उसने हिन्दी रंगमंच के लिए सार्थक, सर्जनात्मक चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं।

'अन्धेर नगरी' न विशिष्ट और आभिजात्य मंच का नाटक है, न मात्र लोकमंच का। वह न आधुनिक और यथार्थवादी मंच का नाटक है, न पारसी थियेटर का। यह रंगमंचीय प्रकृति की दृष्टि से सबका नाटक है, जिसमें प्रबुद्ध, संवेदनशील, अनुभवी दर्शक वर्ग से लेकर हजारों का जन.समूह और भीड़ आनंद ले सकती है। यह निश्चय ही खेल है। यह स्वतंत्रता के बाद के हिन्दी रंगान्दोलन की ही महत्वपूर्ण कड़ी नहीं है। पर जब से यह लिखा गया तभी से जन.जीवन और रंगमंच के बीचों.बीच है। बल्कि इसका तो लेखन ही रंगमंण्डली के आग्रह पर रातों.रात रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए ही हुआ। लोकमंच और पारसी रंगमंच की तरह रंगकर्म और नाटककार का यह सम्बन्ध ध्यान देने योग्य है। 'अन्धेर नगरी' जन.रूचि, मनोरंजन, जन.जागरण, कौतुक को समझने के साथ देश. वत्सलता, समाज.सुधार और युगीन आवश्यकताओं को भी रंगमंच द्वारा पूरा करना चाहता है। इस सोद्देश्यता और संश्लिष्टता के बारे में आप आरम्भ से जानकारी पाते रहे हैं। ऐसे समय जब न हिन्दी भाषा का पूर्ण विकास हुआ था, न नाटक कला का स्वरूप स्थिर हुआ था, न हिन्दी में रंगमंच का कोई स्वरूप शास्त्र था और देश पर विदेशी शासन था, उस समय हंसी.हंसी में नाटक में इतनी पैनी, सटीक, स्पष्ट शब्दों में बातें कह देना और रंगमंच पर बार. बार खेला जाना इस नाटक की शक्ति का सूचक है। इस छोटे से नाटक में सब कुछ है। पूरा युग, पूरा इतिहास, परम्परा और वर्तमान, काव्य और भाषा की लय, गम्भीर संकेत, रंगमंच का व्याकरण और अभिनय .शक्ति की चुनौतियाँ भी। आप समझ सकते है कि पूरे बाजार दृश्य को अगर अभिनेता समूह और निर्देशक .व्यापक कल्पना. दृष्टि, समकालीन व्यंग्य और प्रयोगशील तरीके से रच दे तो हर युग, हर काल में वह दृश्य नवीन अर्थो में जीवित हो उठता है।

वर्षों तक 'अन्धेर नगरी' का मंचन एक प्रहसन के रूप में होता रहा। यह विदित है कि काशी के हिंदू नेशनल थियेटर ने 'अन्धेर नगरी' का सबसे पहले मंचन किया था, बाद में भारतेन्दुयुगीन लेखक प्रताप नारायण मिश्र ने कानपुर में इसकी प्रस्तुति (1882) कराई। आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने बलिया में (1884) इसके मंचन का उल्लेख किया है। बाद में 1891 से समकालीन हिन्दी रंगमंच के उदय के साथ कल्पनाशील निर्देशकों का ध्यान अन्धेर नगरी की ओर गया। सत्यव्रत सिन्हा ने अगर इसे आधुनिक वेशभूषा, प्रयोगात्मक शैली में प्रस्तुत किया तो अन्य कई निर्देशकों ने यथार्थवादी शैली और नौटंकी शैली में इसकी प्रस्तुति की। 1978 में ब.व. कारंत द्वारा यक्षगान शैली में इसकी प्रस्तुति एक सर्जनात्मक मोड़ थी। जिसमें परम्परा और आधुनिकता का, रंगमंच के सौंदर्यशास्त्र और समकालीन जीवन का, रचना और पुर्नरचना का अद्भूत मेल था। आधुनिक भारत में नई सांस्कृतिक क्रांति की आकांक्षा इस नाटक की प्रस्तुतियों से विकसित हुई। इस तरह एक प्रहसन पूर्ण, समग्र, संशलिष्ट रचना' होती गयी और व्यंग्यार्थ खुलते गए, रंगमंच की दिशाएँ .सम्भावनाएँ बढ़ती गई। जितने ही अधिक इसके मंचन हुए, उतना ही इस नाटक में लोकतंत्रीय रंगमंच' और दृश्यात्मक कविता का विस्तार हुआ। भारतेन्दु के नाटक दृश्यों के नाटक हैं। वे वाक्यों, सम्वादों से कम, दृश्यों की कल्पना और दृश्यों के संयोजन से ही अर्थ.विस्तार और लय का वैचिष्य पैदा करते हैं। दृश्यों के भीतर ही कई नाटय.रूढ़ियाँ, गतियाँ लोक व्यवहार रहते है, ध्वनियाँ रहती है। जिन पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नही रहती। बाजार दृश्य, दरबार दृश्य, फाँसी दृश्य सबमें आप यह महसूस कर सकते हैं। शब्दों के भीतर से अपने आप दृश्य उभरता है, अभिनय .भंगिमा निकलती है। आखिर क्या कारण है कि भय, आतंक के राजनीतिक.सामाजिक वातावरण में भी 'अन्धेर नगरी' की प्रस्तुति निःशंक भाव से हो जाती है और बाल रंगमंच, किशोरों और युवाओं के महोत्सवों में भी इसकी प्रस्तुतियाँ होती है। निर्देशकों ने इस नाटक को समकालीन प्रासंगिकता और रंगमंचीय सार्थकता.क्षमता के कारण ही हमेशा उठाया है। (नटरंग,46 पृ. 91) पुरानी पुस्तक 'हरिश्चन्द्र' में भी बाबू शिवनंदन सहाय ने इसके प्रदर्शनों का वर्णन किया है। (हरिश्चन्द्र, पृ. 198) इसे मराठी सहित कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी पेश किया गया है इन प्रसंगों से 'अन्धेर नगरी' में निहित विविधता और हर वर्ग, हर प्रकृति का सामंजस्य ज्ञात होता है। उसकी भीतरी प्रकृति में बड़ी आत्मीयता, सहज उल्लास और चुलबुलापन है।

'अन्धेर नगरी' की भाषा में जो जिन्दादिली, जो लय.विधान है, जो पात्रों के भावानुसार उतार.चढ़ाव है और जो व्यंजनाएँ हैं, उनसे आप परिचित हो चुके हैं। भाषा का वह मौलिक रूप अभिनय को स्वतः स्फूर्त भी बनाता है। और नई.नई भंगिमाएँ भी देता है। शब्दों की तोड़.मरोड़, स्थितियों की असम्बद्धता और भाषा की रवानगी से यह नाटक स्वतः अभिनय और मंच की सर्जनशीलता को जन्म देता है। पिछली इकाइयों में आपको बताया गया है 'अन्धेर नगरी' का नाट्य.शिल्प एक साथ बहुत सुगठित और लचीला है। नाटकीय स्थितियाँ उत्तरोत्तर विकसित होकर नाटक को उत्कर्ष तक ले जाती है। जो रंगमंचीय सफलता का कारण है। उसके पात्र, बिम्ब, प्रतीक, गीत.संगीत सब हमारे बीच के हैं जिससे उसकी सार्वकालिकता और जीवन की सहज अनुभूतिपरकता बनती है। बिना बाह्य उपकरणों के यह सादे मंच का, खुले मंच का नाटक है। जो इसके परम्परागत और प्रयोगात्मक दोनों रूपों को उजागर करता है।

प्रश्न 1– सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1) 1978 में किस निर्देशक द्वारा यक्षगान शैली में इस नाटक की प्रस्तुति की गयी थी–

अ– सत्यव्रत सिन्हा   ब– ब.व. कारंत

स– एम के रैना   द– मणि कौल

उत्तर ____________________

2) 'अन्धेर नगरी' को आधुनिक वेशभूषा तथा प्रयोगात्मक शैली में सर्वप्रथम किसने प्रस्तुत किया–

अ– विभा मिश्रा　　　　ब– मणि कौल

स– सत्यव्रत सिन्हा　　　　द– ब.व. कारंत

उत्तर ———————

प्रश्न 2 – 'अन्धेर नगरी' का सबसे पहले मंचन किसने किया था?

उत्तर ———————

प्रश्न 3 – निर्देशकों ने इस नाटक को मंचन हेतु हमेशा उठाया है क्यों?

उत्तर ———————

प्रश्न 4 – सत्य/असत्य लिखिए–

1) इसे मराठी सहित कई अन्य भारतीय भाषाओं में भी मंचित किया गया है।

उत्तर – ———————

2) नाटक की रचना पंचम वेद के रूप में आम जनता के मनोरंजनार्थ की गयी।

उत्तर – ———————

3) अभिनेयता नाटक का सबसे आवश्यक तत्व नहीं है।

उत्तर – ———————

4) भारतेन्दु नाटक शब्द का अर्थ रंगस्थल खेल ही मानते है।

उत्तर – ———————

3.6 सारांश

निश्चय ही 'अन्धेर नगरी' एक प्रहसन होते हुए भी अपने कथ्य में आधुनिक, निरन्तर नवीन और शैली.शिल्प में मौलिकता और लचीलेपन का परम्परा, और प्रयोग का उदाहरण है। भारतेन्दु आज भी ऐसे अकेले नाटककार हैं जो नाटक, नाट्यकला, रंगमंच, नाट्यभाषा, नाट्यसमीक्षा के प्रति सजग, सक्रिय साहित्यकार थे और अभिनेता, रंगकर्मी होने के कारण रंगमंच के प्रति निष्ठावान थे। नाटक और रंगमंच की दृष्टि से वह ऐतिहासिक सन्दर्भ.पुरुष माने जा सकते हैं।

3.7 अपनी प्रगति जाँचिए

1 प्रहसन स्वरूप को स्पष्ट करते हुए 'अन्धेर नगरी' की प्रहसन की दृष्टि से समीक्षा कीजिये।

2 'अन्धेर नगरी' की रंगपरिकल्पना पर प्रकाश डालिये।

3.8 नियतकार्य / गतिविधियाँ

1. 'अन्धेर नगरी' प्रहसन में दृश्य योजना के आधार पर मंचन हेतु दृश्यवार आवश्यक सामग्री की सूची का पत्रक (चार्ट) तैयार कीजिए।
2. 'अन्धेर नगरी' प्रहसन के राजसभा एवम् बाजार दृश्य का अभ्यास कीजिए।

3.9 स्पष्टीकरण के बिन्दु

तृतीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

3.10 चर्चा के बिन्दु

तृतीय इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर आप और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

इकाई–3 (ब) व्याख्या खण्ड एवम् शब्दार्थ

महत्वपूर्ण व्याख्याएँ

साहित्य में रचना और रचनाकार को समझने के लिए विभिन्न पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किये गये कथन को बिना व्याख्यायित किये उसके बहुआयामी अर्थो को आत्मसात करना सम्भव नहीं होता है। अतः प्रस्तुत इकाई में नाटक के प्रमुख गद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या की गयी है। जिसमें कि आप नाटक को पूर्ण रूपेण समझने में सफल हो सके और नाटक के बहुआयामी अर्थो को भलीभाँति आत्मसात कर सके।

गद्यांश 1

जलेबियाँ गरमागरम। ले सब इमरती लड्डू, गुलाब–जामुन, खुरमा बुंदिया, बरफी, समोसा, पेड़ा कचौड़ी, घेवर गुपचुप। हलुआ ले हलुआ मोहनभोग। मोयनदाने कचौड़ी कचाका। हलुआ नरम चभाका। घी मैं गरम, चीनी में, तरातर, चासानी में चभाचभ, ले भूर का लड्ड, जो खाय सो भी पछताय, जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका। पापड़ पड़ाका। ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तीस कौम हैं भाई। जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरिए, वैसे 'अन्धेर नगरी' के हम। सब समान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

सन्दर्भ – प्रस्तुत गद्यांश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रणीत 'अन्धेर नगरी' प्रहसन से अवतरित है। दूसर अंक के इस अवतरण में उस हलवाई का कथन है जो अपनी मिठाइयाँ आवाज लगाकर बेचता है।

व्याख्या – हलवाई कहता है कि गरमागरम जलेबियाँ ले लो। इमरती, लड्डू, गुलाब–जामुन, खुरमा, बूँदी, बर्फी, समोसा, पेड़ा कचौड़ी तथा मजेदार घेवर लो। हलुआ मोहनभोग, मोयनदार कचौड़ी नरम तथा मुलायम और तर हलुआ लो। सभी मिठाइयाँ घी में डूबी, चीनी में सराबोर और चाशनी में डूबी हुई हैं। भूर का लड्डू लो। जो खावे वह पछताये और जो न खावे भी पछतावे। कड़क रेवड़ी और पापड़ पड़ाका लो। हलवाईगीरी ऐसी है जिसको छत्तीसों जाति करती हैं। जैसे कलकत्ते के विलसन मन्दिर के भितरियों, वैसे ही 'अन्धेर नगरी' के वे सब निवासी हैं। सब मिठाइयाँ ताजी है। लो और खाओ। सब का भाव टके सेर है।

विशेष – (1) भाषा सरल एवम् प्रवाहमयी है तथा शैली वर्णनात्मक है।
(2) व्यंग्य एवम् मुहावरों का सटीक प्रयोग है।
(3) दृष्टान्त अलंकार है।

गद्यांश 2

ले धनिया मैथी सोआ पालक चौराई बथुआ करेमु नौनियाँ कुलफा कसारी चना सरसों का साग। भरसा ले भरसा। बैंगन लौकी कोंहड़ा आलु अरुई बण्डा नेनुआ सूरन रामतरोई मुरई लो आदि मिर्च लहसुन पियाज टिकोरा लो। ले फालसा खिन्नी आम अमरूद निबुआ मटर होरहा आदि लो। जैसी काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिन्दूस्तान का मेवा फूट और बैर।

सन्दर्भ – द्वितीय अंक में बाजार में बैठी कुंजड़िन अपनी सब्जियाँ बेचती हुई आवाज लगाती है।

व्याख्या– धनिया, मैथी, सोआ, पालक, चौराई बथुआ करेमु, नैनियाँ, कुलफा कसारी, चना, सरसों का साग लो। मरगा, बैगन, लौकी, कुम्हेड़ा, आलू, अरबी, बण्डा, नैनुया, सूरन, रामतरोई, मुरई लो। अदरक, मिर्च लहसुन, प्याज,

टिकोरा लो। फालसा, खिन्नी, आम अमरूद,निबुआ, मटर होला आदि लो। यहाँ काजी और पाजी एक समान हैं, अर्थात बुरे–भले में कोई अंतर नहीं है। सारी प्रजा सहमत हैं। सभी भाजी टके सेर है। हिन्दूस्तान की मेवा फूट और बेर भी लो।

विशेष– (1) फूट और बैर में श्लेष अलंकार है। हिन्दूस्तान की मेवा फूट और बेर हैं पर यहाँ पर श्लेष में व्यंग्यार्थ हिन्दूस्तान में फूट और एक–दूसरे से शत्रुता है।

(2) जैसे काजी वैसे पाजी' में अंतर न करके सभी अच्छे–बुरे को एक समान बताकर कहना चाहते हैं कि यहाँ न्याय नहीं है।

(3) रैयत राजी सारी प्रजा के सहमति है अर्थात् कोई अंग्रेजों की नीति से असहमत नहीं हैं।

गद्यांश 3

बादाम, पिस्ते, अखरोट, अनार, बिहीदाना, मुनक्का, किशमिश, अंजीर, आबजोश, आलु–बुखारा, चिलगोजा, सेब, नाशपाती, बिही, सरदा, अंगूर का पिटारी। आमारा ऐसा मुल्क जिससे अंगरेज का भी दांत कट्टा हो गया। नाहक को रुपया खराब किया बेवकूफ बना। हिन्दोस्तान का आदमी लक–लक हमारे यहाँ का आदमी बुंबुक– बुंबुक। लो सब मेवा टके सेर।

सन्दर्भ – मुगल फल–विक्रेता अपने विभिन्न फल आवाज लगाकर बेच रहा है।

व्याख्या– बादाम, पिस्ता, अखरोट, अनार, बिहीदाना, मुनक्का, किशमिश, अंजीर, आलू– बोखराए चिलगोजा, सेब, नाशपाती, सरदा, तरबूज तथा अंगूर ले लो। हमारा देश ऐसा है जिसमें अंग्रेजों के भी दाँत खट्टे पड़ गये, अर्थात् वे उसी बड़ी कठिनाई से अधीन कर सके। मैं तो यहाँ व्यर्थ आया और बेकार में अपना धन नष्ट किया। भारत का आदमी दुबला– पतला है और हमारे देश का आदमी वीर और बहादुर है। लो सब मेवा टके सेर हैं।

विशेष– (1) भारतवर्ष की तत्कालीन निर्धनावस्था से दुःखी होकर मुगल सोचता है कि उसने तो यहाँ आकर अपना धन व्यर्थ खराब किया।

(2) भारतवर्ष का मनुष्य भी दुर्बल है जबकि उसके देशवासी पूर्ण स्वस्थ हैं।

(3) उसका देश तो ऐसा है जिसमें अंग्रेजों के दाँत खट्टे हो गये।

गद्यांश 4

गुरुजी, ऐसा तो संसार–भर में कोई देश ही नहीं है। दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है। मै तो इस नगरी का छोड़कर नहीं जाऊँगा और जगह दिन भर माँगो तो भी पेट नहीं भरता। बरंच बाजे–बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यहीं रहूँगा।

सन्दर्भ – प्रस्तुत गद्य खण्ड भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' के तृतीय अंक से अवतरित है। महन्त ने अपने शिष्य, गोबरधनदास को समझाया कि बेटा, ऐसी 'अन्धेर नगरी' में नहीं रहना, चाहे हजार मन मुत मिठाई मिले, फिर भी वह व्यर्थ है। इस कथन को सुनकर गोबरधनदास ने कहा–

व्याख्या– गुरुजी, इस नगरी के समान अच्छा संसार भर में कोई भी देश नहीं है। यहाँ दो पैसे में ही मजे से पेट भरता है। वह तो इस नगरी को छोड़कर नहीं जाएगा, क्योंकि अन्य स्थानों पर तो दिनभर भिक्षा माँगों फिर भी पेट नहीं भरता है। कभी –कभी तो वहाँ बिना कुछ खाये पीये उपवास हो जाता है, इसीलिए वह तो यहाँ रहेगा।

विशेष –1. इस नगरी के समान कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ इतनी आसानी से पेट भर जावे। इसीलिए वह इस नगरी को छोड़कर अन्यन्त्र नहीं जाएगा और यहीं पर रहेगा।

गद्यांश 5

मैं तो इस नगरी में अब एक क्षण भी नहीं रहुँगा। देख मेरी बात मान, नही पीछे पछतायेगा। मैं तो जाता हूँ। पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

सन्दर्भ– महन्त के बहुत समझाने पर भी उनका शिष्य वहाँ से जाने के लिये तैयार नहीं हुआ तब उन्होंने अपना निश्चय बतलाया और सुझाव दिया।

व्याख्या–गुरूजी ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह उनकी बात मान ले, अन्यथा बहुत अधिक पछतायेगा। अच्छा, तो तू नहीं जाता जो वे जाते है और इतना उससे कहते जाते है कि जब कभी उसके ऊपर मुसीबत आए तब वह उन्हें याद करे।

विशेष–(1) गुरूजी 'अन्धेर नगरी' में एक पल भी नहीं रहना चाहते है।

(2) गुरूजी उसे संकटकाल में अपने स्मरण का सुझाव भी देते है।

गद्यांश 6

गुरूजी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था। माना कि देश बहुत बुरा है, पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, रोज मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से रामभजन करना।

सन्दर्भ – प्रस्तुत गद्यांश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र विरचित प्रहसन 'अन्धेर नगरी' के पंचम अंक से लिया गया है। वहाँ की सुख–सुविधाओं से गोबरधनदास बड़ा प्रसन्न है और सोचता है कि गुरुजी तो व्यर्थ की वहाँ रहने की मनाही कर रहे थे।

विशेष–यहाँ पर व्यक्ति की स्वार्थ भावना का चित्रण किया गया है। उस देश से कोई मतलब नहीं है। यह है देशभक्ति और देशप्रेम का अभाव जो तत्कालीन भारतीयों की प्रवृति को प्रकाशित कर रहा है।

गद्यांश 7

फाँसी! अरे बाप रे बाप उसे फाँसी! मैंने किसकी जमा लूटी है। कि मुझकों फाँसी! मैंने किसके प्राण मारे कि मुझको फाँसी!

सन्दर्भ – जब गोबरधनदास को राजा के सिपाही पकड़ लेते है और कहते है कि चलों जाओ फाँसी पर चढों, तब वह कहता है–

व्याख्या– फाँसी क्यों? अरे बाप रे उसे फाँसी की सजा क्यों दी जा रही है? उसने क्या अपराध किया है?उसने कोई गम्भीर अपराध नहीं किया है फिर भला उसे फाँसी किसलिए दी जा रही है।

विशेष– किसी भी व्यक्ति को किसी धन नहीं लुटाने या प्राण हरने जैसे भंयकर अपराध में मृत्युदण्ड़ दिया जाता है। किन्तु उसने कोई गम्भीर अपराध नहीं किया है फिर भला उसे फाँसी किसलिए दी जा रही है?

गद्यांश 8

यह बात है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुक्म हुआ था। जब फाँसी देने को उसको ले गये, तो फाँसी का फन्दा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले है। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होना जरूरी है, नहीं तो न्याय नही होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते है, कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें ।

सन्दर्भ – यहाँ प्रथम सवार गोबरधनदास को बतलाता है कि उसे फाँसी क्यों दी जा रही है।

व्याख्या – गोबरधनदास ने कहा कि उसने कोई अपराध नहीं किया है। फिर उसे फाँसी क्यों दी जा रही है, तब प्रथम सवार उसके प्रश्न का उत्तर देता हुआ कहता है कि कल कोतवाल साहब को फाँसी की आज्ञा हुई थी। जब फाँसी देने को उन्हें ले गये तब फाँसी का फन्दा बड़ा रहा, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले –पतले थे। सिपाहियों ने इस बात की महाराज को सूचना दी और प्रार्थना की।

तब महाराज ने आज्ञा दी कि किसी मोटे आदमी को पकड़कर फांसी पर चढ़ा दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध ा में किसी न किसी को तो सजा होनी अवश्य है, अन्यथा न्याय नहीं होगा। इसी न्याय के वास्ते और राजाज्ञा के पालन हेतु उसे लिये जा रहे है, ताकि कोतवाल के बदले उसे फांसी दी जा सके।

विशेष – न्याय के लिए और राजाज्ञा के पालन हेतु वे उसे फांसी के लिये ले जा रहे है। इससे पता चलता है कि अंग्रेजों के राज्य में न्याय व्यवस्था बड़ी खराब थी।

गद्यांश 9

इसमें दो बात है एक तो नगर भर के राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़े तो वह न जाने क्या बात बनावे कि हम लोगों के सिर कही न घबरायें और फिर इस राज में साधू– महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इससें तुम्हीं को फांसी देंगे।

सन्दर्भ – गोबरधनदास ने प्रथम सवार की बात सुनकर कहा कि क्या नगर में अन्य कोई मोटा व्यक्ति नहीं है? क्यों उस अनाथ भिखारी को फांसी दी जा रही है। इसका उत्तर देते हुए प्रथम सवार कहता है–

व्याख्या – इसके दो कारण है। प्रथम तो सम्पूर्ण नगर में राजा के न्याय के भय के कारण कोई मोटा नहीं होता है। दूसरे अन्य किसी को पकड़े तो न जाने वह कैसी बात बनातें कि उन्हीं के सिर पर बाधा आ पड़े। इसके अतिरिक्त इस राज्य में साधु और महात्माओं की ही दुर्दशा है। इसलिए उसी को फांसी दी जाएगी।

विशेष – प्यादे के कथन से निम्न बातें स्पष्ट है –

1. राजा के न्याय के भय से सब सुविधाएं होते हुए भी कोई व्यक्ति मोटा नहीं हो पाता है।
2. साधू–महात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति को पकड़ भी लिया जाये तो न जाने वह अपनी चतुराई से कैसी चाल चले कि उन्हीं के सिर पर बाधा आ पड़े।
3. इस नगर में साधु–महात्माओं की ही दुर्दशा है।

गद्यांश 10

दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हाँ। अरे! यहाँ बड़ा ही अन्धेर है, अरे गुरूजी महाराज का कहा मैंने न माना उसका फल मुझको भोगना पड़ा। गुरूजी कहाँ हो। आओ मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता

हाँ। गुरूजी –

सन्दर्भ – जब गोबरधनदास को फांसी दी जाने लगी तब वह बोला –

व्याख्या – परमेश्वर की दुहाई है। वह तो बिना अपराध के ही मारा जा रहा है। इस नगरी में बड़ा अन्याय और अन्धेर है। उसने अपने गुरूजी का कहना नहीं माना। इसी का फल उसे भुगतना पड़ रहा है। अरे गुरूजी! आप कहाँ हो? आओ, मेरे उसने प्राणों की रक्षा करो। मै तो निरपराध मारा जा रहा हाँ, गुरूजी आओ और उसके प्राण बचाओ।

विशेष – 1. गुरू आज्ञा न मानने का फल बतलाया गया है।

2. संकटकाल में गुरू ही रक्षा करते हैं।

गद्यांश 11

हाय बाप रे! मुझे बेकसूर फांसी देते हैं। अरे भाइयों, कुछ तो धरम विचारो। अरे मुझ गरीब को फांसी देकर तुम लोगों क्या लाभ होगा, अरे मुझे छोड़ दो। हाय। हाय। (रोता है और छुड़ाने का यत्न करता है।)

सन्दर्भ – प्रस्तुत गद्यांश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रहसन 'अन्धेर नगरी' के छठे अंक से अवतरित है। इसमें गोबरधनदास को फांसी देने का वर्णन है।

व्याख्या – गोबरधनदास बड़ा दुखी होता है और कहता है कि हाय बाप रे। मुझ निरपराध को फांसी क्यों दी जा रही है। अरे भाइयों कुछ तो धर्म–अधर्म का विचार करो। इस निर्धन फकीर को फांसी देकर उन्हें क्या लाभ होगा? वह रोता है और छुड़ाने का प्रयत्न करता हुआ कहता है कि उसे छोड़ दो, हाय उसे छोड़ दो।

विशेष – गोबरधनदास के मृत्यु – समय की दशा का वर्णन है।

गद्यांश 12

जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते है। टके वास्ते ब्राह्मण, से धोबी हो जायें और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते ब्राह्मण जैसी कहो वैसे व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिन्दू से क्रिस्तान

सन्दर्भ – प्रस्तुत अवतरण 'अन्धेर नगरी' नामक एकांकी में से लिया गया। है इसके लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। यहाँ पर एकांकीकार ने बाजार का चित्र खीचा है। बाजार में सभी प्रकार के व्यापारी अपना–अपना माल बेचने के लिए प्रस्तुत हैं, वहीं पर एक ब्राह्मण अपनी जाति बेचने के लिए उत्सुक नजर आ रहा है।

व्याख्या– एक ब्राह्मण, जो कि जात वाला है, बाजार में खड़ा हुआ जाति बेच रहा है। टके सेर जाति लें। एक टका दीजिए, हम अपनी जाति बेचते है। मात्र एक टके के लिए ब्राह्मण से धोबी हो जायें धोबी को ब्राह्मण कर दें। केवल एक टके में जाति लें। एक टके के लिए जिस प्रकार की व्यवस्था चाहें, वैसी हो सकती। टके के लिए असत्य को सत्य में परिवर्तित कर सकते हैं। ब्राह्मण से मुसलमान और हिन्दू से ईसाई टके के लिए बन सकते हैं।

विशेष– 1 प्रस्तुत स्थल पर नाटककार ने ब्राह्मण नाम के पात्र की कल्पना करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इस तरह का पात्र एकांकी में प्रस्तुत करना एकदम मौलिकता एवम् नवीनता है।

2. इस स्थल पर जात बेचने की बात कहकर पैसे के लिए कुलीन लोगों द्वारा सारी धर्म मर्यादा को तिलांजलि दे देने की प्रवृति पर तीखा प्रहार किया गया है।

3. प्रस्तुत अवतरण में हास्य–व्यंग्यात्मक शैली में धन –लोलुप ब्राह्मणों पर और सारी मर्यादा और समाज– व्यवस्था के कर्णधारों पर बहुत ही चुभता हुआ व्यंग्य प्रस्तुत किया है।

गद्यांश 13

धर्म अधर्म एक दरसाई। राजा करै सो न्याव सदाई।।

भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहिं अमले अरू प्यादे।।

अन्धाधुन्ध मच्यौ सब देसा। मानहँ राजा रहत बिदेसा।।

गो द्विज श्रुति आदर नहीं होई। मानहँ नृपति बिधर्म्मी कोई।।

ऊंच नीच सब एकहि सारा। मानहुं ब्रम्ह्मण ज्ञान बिस्तारा।।

सन्दर्भ – प्रस्तुत अंश 'भारतेन्दु' के 'अन्धेर नगरी' नामक प्रहसन में से अवतरित किया गया है। यहाँ पर गोबरधनदास गाता हुआ दिखाया गया है कि इस अन्धेर नगरी में धर्म और अधर्म करने वालों को समान समझा जाता है।

व्याख्या– वे लोग धर्म–अधर्म में कोई भेद नहीं समझते। राजा जो भी कार्य करे (धर्म या अधर्म पूर्ण) वह न्याय कहलाता है। विदेशी शासक ह्रदय से काले हैं, शरीर से गोरे है। उनके अमले और प्यादों का राज चल रहा है। सारे देश में अव्यवस्था फैली हुई है मानो राजा विदेश में रहता है। इस देश में विदेशी शासन के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के प्रमिमान गौ, ब्राह्मण और वेद का सम्मान नहीं होता मानो राजा कोई दूसरे धर्म का है। उसके लिए ऊंच–नीच में कोई भेद नहीं है, मानो उसके ब्राह्मण जात का विस्तार हो गया हो जिससे उसे सब समान प्रतीत हो रहे है।

विशेष. 1 इस अंश में शब्दों का समुचित रूप से प्रयोग हुआ है।

2.इसमें ब्रजभाषा का लालित्य द्रष्टव्य है।

3. शब्द–भण्डार की दृष्टि से ब्रजभाषा के शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी प्रचलित शब्द भी मिलते है।

4. अंत में कह सकते हैं कि–'जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजन समाज, ते ऐसाहि आपुहिं नसे जैसे चौपट राज'।

महत्वपूर्ण वाक्य एवम् सूक्तियाँ

(1) लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति का चयन 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' में से किया गया है। इसके रचयिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। यहाँ पर गुरू के अपूर्व अनुभव का परिचय प्राप्त होता है।

व्याख्या – महन्त और उनके दोनों चेले अन्धेर नगरी में जाते हैं। गोबरधनदास अपने गुरु से बहुत मात्रा में भिक्षा लाने की बात कहता है। वह बताता है कि यहाँ के लोग बड़े धनी हैं। अतः यहाँ भिक्षा प्रचुर मात्रा में मिल जायेगी। इस पर गुरूजी अधिक लोभ को दूषित वृत्ति का स्थान करने की बात कहते है।

विशेष–1 प्रस्तुत सूक्ति में गुरू का यह कथन गोबरधनदास के जीवन में आगे सही सिद्ध होता है। उसे लोभ के कारण ही फांसी के फदे का शिकार बनाया जाता है।

2. सूक्ति प्रधानता दर्शनीय है।

3. शैली उपदेशात्मक है।

(2) जहाँ न धर्म्म न बुद्धी नहिं, नीति न सुजन समाज।

ते ऐसहि आपुहिं नसैं, जैसे चौपटराज।।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति काव्य वाक्य 'अधेर नगरी चौपट राजा' में से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। यहाँ पर महन्त जी भरत वाक्य की तरह अपना निष्कर्ष और भविष्य के लिए चेतावनी प्रस्तुत करते हैं।

व्याख्या– जहाँ धर्म की अवहेलना की जाती है, लोग बुद्धि से काम नहीं लेते, विवेकपूर्वक नहीं चलते , नीति का पालन नहीं करते और जहाँ सज्जन समाज नहीं है, ऐसे लोग चौपट राजा की तरह अपने आप ही नष्ट हो जाते हैं।

विशेष– 1 यहाँ लेखक ने बताया है कि हमें सदैव बुद्धिमान, धर्मप्रिय और नियम के अनुरूप चलने वाले देश में ही निवास करना चाहिए।

2. विवेकहीन व्यक्ति अपनी ही मूर्खता के कारण चौपट राजा के समान अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

3. शैली उपदेशात्मक है। भाषा में स्वाभाविकता का विचार अवश्य रखा गया है। महन्त तथा चेलों के कथोपकथन में सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग दिखाई देता है।

(3) सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।

ऐसे देस कुदेस में, कबहुं न कीजै वास।।

प्रसंग–प्रस्तुत सूक्ति काव्य वाक्य 'अन्धेर नगरी चौपट राजा' में से अवतरित किया गया है। इसके रचयिता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र है। यहाँ पर भारतेन्दु जी ने बताया है कि गुण और अवगुण में अन्तर न कर पाने वाला देश कभी भी फलीभूत नहीं हो सकता है।

व्याख्या– गोबरधनदास जब अपने गुरू को आकर यह बताता है कि मैं आज भिक्षा में मिले सात पैसों में ही साढ़े तीन सेर मिठाई लाया हूँ क्योंकि इस नगरी में हर वस्तु का भाव टके सेर है। इस पर महंत जी उससे कहते हैं कि जिस देश में अच्छी और बुरी सभी वस्तुयें एक ही भाव बिकती हों, उस देश में रहना किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं है।

विशेष– 1 इस सूक्ति में भले और बुरे की पहचान न कर पाना बुद्धिहीनता का परिचायक है।

2. शैली उपदेशात्मक है।

कठिन शब्दों के अर्थ

बंचि – गुणगान कर,

भाथी – धौंकनी,

नसाई – नष्ट होना,

कबिकुलराई – विभिन्न कवियों में श्रेष्ठ,

मालवर – धनवान,

निदान – अंत में,

तौकि, मैना, गफूरन, मुन्नी – काशी की तात्कालीन प्रसिद्ध वैश्याएं,

सिलहट – बंगाल देश का एक नगर,

बुटवल– नेपाल का एक कस्बा,

रंगतरा, संगतरा – मिठी नारंगी,

कचाका – मुलायम,

चभाका – तर,

चभाचभ– तर किया हुआ,

बिही दाना – अमरूद जैसे एक फल के बीज,

आबजोश – मुनक्का,

सरदा – खरबूजे की जाति का एक फल,

लकलक – दुबला–पतला,

बुम्बुक – बहादुर पहलवान,

अमलबेद – एक खट्टा फल,

अमले – कचहरी के कारंदे,

अजीरन – अपच,

सेत – श्वेत रंग वाली चीज,

बायस – कौआ,

इंद्रायन – लाल रंग का सुंदर लेकिन कड़वा फल,

दाड़िम – अनार,

कनकवृष्टि – सोने की वर्षा,

बाजे–बाजे – किसी–किसी,

पीनक – हल्का नशा,

नाहक – अकारण,

बेर–बेर – बार–बार,

जम – यमराज,

आशना – सम्बंधी,

बोदा – घटिया, बेजान,

सरब मोहर – तुरंत,

मलिन – मैला,

पनही – जूता,

भीतर स्वाहा बाहर सादे – धूर्त, कपटी,

बिस्तारा – ब्रह्म ज्ञानी,

चाभना – छक कर खाना,

जमा – खजाना,

आछत – जीवित रहते,

आपुहि – अपने आप,

टिकठी – फांसी के लिये लगाया गया तख्ता।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. राम विलास शर्मा, भारतेन्दु युग
2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–2
3. ब्रज रत्नदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
4. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, भारतेन्दु की विचारधारा
5. 'अन्धेर नगरी' चौपट राजा सम्पादक डॉ. रमेश गुप्ता
6. 'अन्धेर नगरी' सम्पादक डॉ. सुरेशचन्द शुक्ल
7. भारतेन्दु और 'अन्धेर नगरी' – गिरिश स्तोगी
8. भारतेन्दु और भारतीय नव जागरण सम्पादक शम्भुनाथ, अशोक जोशी
9. भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–1

बोध प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1

1.3 नाटककार भारतेन्दु

उत्तर 1– सही विकल्प छाँटकर लिखिये–

1) अ–9 सितम्बर, 1850 ई. 2) अ–बाल बोधिनी

उत्तर 2– लै ब्योंड़ा ठाडे भये श्री अनिरूद्ध सुजान।

वाणासुर की सैन को हनन लगे भगवान।।

उत्तर 3– भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी–गद्य साहित्य की स्थिति नहीं के बराबर थी। भारतेन्दु के गद्य की सभी प्रमुख विधाओं में साहित्य लिखा, और विकास की नयी नींव डाली। इस प्रवर्तन के कारण ही भारतेन्दु को हिन्दी–गद्य साहित्य का जनक कहा जाता है।

उत्तर 4– 'कवि–वचन–सुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', बाल बोधिनी

उत्तर 5– सत्य/असत्य लिखिए–

अ– सत्य ब– असत्य स– सत्य

1.4 भारतेन्दु की नाट्य अवधारणा

उत्तर 1– सत्य/असत्य लिखिए–

अ– सत्य ब– असत्य स– सत्य

द– सत्य इ– असत्य

उत्तर 2 – काशी में 'नेशनल थियेटर'

उत्तर 3 – नाटक के लिये पाँच बातें आवश्यक मानीं–हास्य, शृंगार , कौतुक, समाज संस्कार और देशवत्सलता।

उत्तर 4 – हास्य रस

उत्तर 5 – स्वगत कथन, आकाश भाषित आदि की

उत्तर 6 – भारतेन्दु के नाटकों के पात्रों को मुख्यत तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

आदर्शवादी पात्र, यथार्थवादी पात्र और प्रतीकात्मक पात्र।

उत्तर 7 – चरित्र–निर्माण की

उत्तर 8 – 'जानकी मंगल' नाटक में लक्ष्मण की, 'नीलदेवी' नाटक में पागल की, 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में हरिश्चन्द्र की

1.5 भारतेन्दु का नाट्य कर्म

उत्तर 1 – सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए–

1) ब–वैदिकी हिंसा–हिंसा न भवति   2) ब– अनुदित

3) अ–संस्कृत   4) द– आदर्श प्रधान

उत्तर 2 – भाण शैली

उत्तर 3 – पंजाब के राजा सूर्यदेव सिंह और रानी नील देवी की वीरता का वर्णन है।

उत्तर 4 – भारतेन्दु ने बंगला, संस्कृत, प्राकृत और अंग्रेजी से अनुवाद के लिये नाटक चुने।

उत्तर 5 – दुर्लभबन्धु'

उत्तर 6 – 'धनंजय–विजय' नाटक नाटक कौरवों–पांडवो की कथा पर आधारित है। इसमें वीर रस की प्रधानता है।

उत्तर 7 – 'पाखण्ड विडम्बन' कृष्ण मिश्र विरचित प्रबोध चन्द्रोदय के तृतीय अंक का अनुवाद है। इसमें धार्मिक मतमतान्तरों की विद्रूपता का चित्रण किया गया है। धर्म भी अब पाखण्ड और आडम्बरों से ग्रसित है।

उत्तर 8 – 'यह नाटक प्रतीकात्मक शैली में है।

उत्तर 9– सत्य/असत्य लिखिए–

अ– सत्य

ब– सत्य

स– असत्य

द– सत्य

1.6 नाटक का सारांश

उत्तर 1– सही विकल्प बताइये–

1) ब – छः

उत्तर 2– लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामै नरक निदान।।

उत्तर 3– टके सेर

उत्तर 4– कल्लू बनियां, दीवाल बनाने वाले कारीगर, चूने वाले, भिश्ती, कस्साई, गड़रिये, कोतवाल और अन्त में कोतवाल के लाये जाने पर उसे तत्काल फांसी पर चढ़ा देने का हुक्म देता है।

उत्तर 5– कोतवाल दुबला–पतला था। अतः उसकी गर्दन में फांसी का फन्दा ढीला रहता है। इसलिए कोतवाल को फांसी क्यों नहीं दी जाती?

उत्तर 6– चौपट्टराजा हुक्म देता है कि जिस मोटे–तगड़े आदमी के गले में फन्दा आ जाय उसी को फांसी पर चढ़ा दिया जाय गोबरधनदास की मोटी गर्दन में फांसी का फन्दा फिट आ रहा था। अतः गोबरध् नदास को सिपाही फांसी देने के लिए लाते है।

उत्तर 7– चौपट्टराजा

उत्तर 8– महन्त के निम्न कथन के साथ पटाक्षेप होता है।

जहाँ न धर्म न बुद्धि नहि, नीति न सुजान समाज।
ते ऐसाहिं आपुहिं नसे, जैसे चौपट्टराज।।

उत्तर 9 – सही जोड़े बनाइये–

प्रथम दृश्य	नगर प्रवेश बाहय प्रान्त
दूसरा दृश्य	बाजार
तीसरा दृश्य	जंगल
चौथा दृश्य	राज सभा
पांचवा दृश्य	अरण्य
छठा दृश्य	श्मशान

1.7 नाटक का उद्देश्य

उत्तर 1 – भारतेन्दु जी नाटक के पाँच उद्देश्य मानते हैं – 1. हास्य, 2. शृंगार, 3. कौतुहल, 4. समाज संस्कार तथा 5. देशवत्सलता।

उत्तर 2 – महन्तजी के कथन में नाटक का निम्न सन्देश प्रारम्भ में व्यंजित है

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।

उत्तर 3 – मनुष्य की लोभवृत्ति

उत्तर 4 – अन्ध–व्यवस्था का

उत्तर 5 – विवेकहीनता और न्यायदृष्टि के न होने का

उत्तर 6– बाजार दृश्य और दरबार दृश्य

उत्तर 7– राजनीतिक कार्यवाही के खोखलेपन, आम–आदमी की बहलाने–फुसलाने और न्याय के सन्दर्भ में अत्यन्त हल्की मन–स्थिति, प्रमाद और हास्यस्पद सत्ता का

उत्तर 8– भारतेन्दु के व्यंग्य का सौन्दर्य आक्रामकता में नहीं उसकी अनायास प्रवाहमान अभिव्यक्ति और रोचकता में है जो हंसाता भी है और तिलमिलाता भी हैं।

उत्तर 9– अन्धेर नगरी जीवन्त सार्थक, समकालीन रचना है जिसका उद्देश्य तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अव्यवस्था को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करना है और महन्त जी के शब्दों में यह संदेश व्यक्त करना है कि लोभ सम्पूर्ण बुराईयों की जड़ है तथा लोभ कभी नहीं करना चाहिए।

उत्तर 10– मूल्यहीनता और संवेदनशून्य स्थिति

2.3 प्रमुख पात्र एवम् चरित्र चित्रण

उत्तर 1– 'अन्धेर नगरी' में तीन पात्र मुख्य हैं – महन्त, गोबरधनदास और चौपट राजा

उत्तर 2– महन्त का चरित्र इस भ्रष्ट समाज में भी मूल्य.चेतना का संकेत करता है एक आस्था और निष्ठा, संयम और कूटनीति का, दूरदर्शिता और प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देता है। वह पहले ही अपने अनुभवों और सूझ.बूझ के कारण अन्धेर नगरी की वास्तविकता और मायाजाल को समझता है और मोह, माया, लोभवृत्ति में न फंसने के लिए गोबरधनदास को समझाता है।

उत्तर 3– 'अन्धेर नगरी' के अन्य सभी पात्र एक पूरा समूह है जो समूह चेतना के प्रतीक हैं।

उत्तर 4– विवेकहीन, मद्यप, मूर्ख, उच्छृंखल, लोभी और स्वेच्छाचारी, अमानवीय, चाटुकारों के कंधों से टिका, उनकी बैसाखी पर चलने वाला शासक

उत्तर 5– अपने गुरु के निर्देश और चेतावनी को न मानने वाला, स्वतः अपने ही कर्म से, अपनी की वृत्ति से अन्धेर नगरी में फँसने वाला पात्र, अत्यन्त आनन्दित.मुदित, मग्न, विस्मय और भोग की ललक से भरा सीधा सादा शिष्य, मूर्ख और लोभी।

उत्तर 6– सत्य /असत्य लिखिए–

1) सत्य

2) असत्य

3) सत्य

2.4 भाषा शैली

उत्तर 1– नाटक में प्रयुक्त कुछ शैलियों के नाम भावात्मक शैली, परिचयात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली

उत्तर 2– प्रहसन में जहाँ पात्र किसी घटना का वर्णन करते हैं अथवा किसी प्रकार की सूचना प्रदान करते हैं। तब भारतेन्दु जी परिचयात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। इस शैली में भाषा विषयानुकूल और व्यवहारिक होती है।

उदाहरण – गोबरधनदास को पकड़कर फाँसी लगाने के लिए प्रथम प्यादा उनको कारण बतलाते हुए कहता है 'बात यह है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुक्म हुआ था।' जब फाँसी देने को उनको ले गये तो फाँसी का फन्दा बड़ा हुआ क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो। बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूरी है, नही तो न्याय न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते है कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।'

उत्तर 3– प्रहसन की भाषा में ओज, माधुर्य एवम् प्रसाद तीनों गुणो का समावेश है।

उत्तर 4— भारतेन्दु जी का विश्वास भाषा के तद्‌भव रूपों, उसकी मिठास और सहजता में जितना अधिक था, उतना तत्सम रूपों में नहीं। इस कथन की पुष्टि हेतु एक उदाहरण

"गुरूजी ऐसा तो संसार भर मे कोई देश ही नहीं। दो पैसा पास रखने से ही मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगरी को छोड़कर नहीं जाऊँगा और जगह दिन–भर माँगों तो भी पेट नहीं भरता। वरच बाजे–बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यहाँ रहूँगा।"

2.5 सम्वाद योजना

उत्तर 1– 'लुटाय दिया अनमोल माल ! ले टके सेर' आज की संवेदनहीन स्थिति से साक्षात्कार करा जाता है।

उत्तर 2– राजा का बकरी को प्रायः लरकी, बरकी, कुबरी कहना मूल समस्या के प्रति राजा की संवेदनहीनता का प्रमाण है,

2.6 रचना.विधान में 'अन्धेर नगरी' एक विलक्षण नाटक

उत्तर 1– नाट्यलोचक डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. सिद्धनाथ कुमार, डॉ. सत्येन्द्र तनेजा ने 'अन्धेर नगरी' के शिल्प को मूलतः लोकनाटकों से प्रेरित माना है।

उत्तर 2– भारतेन्दु ने मौलिक रचनाशीलता से 'अन्धेर नगरी' को संगठित शिल्प दिया है, जिसके पीछे आधार है–सांस्कृतिक चेतना और परम्परागत साथ ही भारतेन्दु की युगानुरूप दृष्टि।

2.7 गीत योजना

उत्तर 1 – नाटक में गीत निम्न प्रकार से सहायक होते है–

1. गीत गद्यमय सम्वादों से ऊबे हुए दर्शकों का मनोरंजन करते है।
2. गीत चरित्र–चित्रण में सहायक होते है।
3. गीत रसोद्रेक में सहायक होते है।
4. गीतों का माधुर्य नाटक की शोभा बढ़ाता है।
5. गीत भावों की अभिव्यति में सहायक होते है।

उत्तर 2 – सदोपदेश की सृष्टि–तृतीय अंक में महन्तजी अपने शिष्य गोवरधनदास को उपदेश देते हुए जो गीत कहते हैं उसकी चार पंक्ति –

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास ।

ऐसे देस कुदेस में कबहुँ न कीजे बास।।

कोकिल बायस एक राम, पंडित मूरख एक।

इन्द्रायन दाडियन विषय, जहाँ न नेकु विवेक।।

बसिये ऐसे देस नहि, कनक वृष्टि जो होय।

रहिए तो दु:ख पाइये, प्रान दीजिए रोय।।

उत्तर 3 – मछली वाली द्वारा श्रृंगार रस का समां बाँधने वाले गीत की पंक्ति –

मछरिया एक टके कै बिकाय।

लाख टका कै वाला जोबन, गाहन सब ललचाय।।

नैन–मछरिया रूप –जल में, देखत ही फँसि जाय।

बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिलै बिना अकूलाय।।

उत्तर 4 – 'अंधरे नगेरी' प्रहसन में 5 गीत और 5 दोहे है।

उत्तर 5 – गीतों में नाटकीयता, यथार्थता, सजीवता, मार्मिकता, संक्षिप्तता एवम् हृदयस्पर्शिता आदि गुणों का समावेश हैं।

उत्तर 6 – सही /गलत बताइये–

1) गलत

2) सही

3) गलत

4) सही

2.8 भारतेन्दु युगीन समय

उत्तर 1 – पहला स्वतंत्रता संग्राम और कांग्रेस की स्थापना

उत्तर 2 – भारतेन्दु के समय स्थानीय स्तर पर जमींदारी प्रथा का विस्तार हुआ जिसने किसानों की दशा को पहले से अधिक दयनीय बना दिया। यह जमींदारी प्रथा किसानों को ऐसी पैदावार के लिए मजबूर कर रही थी। जिनसे देशी जमींदारी और विदेशी शासकों को लाभ था, लेकिन जिसकी वजह से किसानों का शोषण और उत्पीडन बेतहाशा बढ़ गया था।

उत्तर 3 – अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड में बने माल की बिक्री सुनिश्चित करने के लिए देशी उद्यागों को नष्ट करना शुरू कर दिया।

उत्तर 4– एक ओर भारत से कच्चा माल एकत्र करने और उसे भारत से बाहर ले जाने की जरूरत थी, तो दूसरी ओर इंग्लैण्ड और यूरोप का बना माल भारत के विभिन्न हिस्सों तक पहुँचाने की। यही कारण था कि भारत में अंग्रेजों ने रेल यातायात आरम्भ की।

उत्तर 5 – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रगतिशील बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं

2.9 युगबोध की कसौटी पर 'अन्धेर नगरी'

उत्तर 1 – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में प्रथम स्वतन्त्रता संग्रम की प्रतिक्रियास्परूप अंग्रेज–प्रभुता की क्रूरतापूर्ण कदम और दुर्व्यवहार, सांस्कृतिक संस्था तथा विधर्मियों के द्वारा हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रहार और अपनी संस्कृति और धर्म का दिया जा रहा बोझ कुत्सित व्यवहार, जातीय गर्व का ह्रास और फिर साहित्य और साहित्यकार का अनादर–उपेक्षा आदि का विशेष आधिक्य था

उत्तर 2 – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के युगबोधमय दृष्टिकोण और ठोस कदमों को लक्षित करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें असाधारण युग प्रहरी स्वीकारते हुए क्या कहा – कि–"उन्होंने हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से जगा दिया। बड़े भारी विच्छेद से उन्होंने हमें बचाया।"

उत्तर 3 – सत्य/असत्य लिखिए–

1) सत्य 2) असत्य

3) सत्य 4) सत्य

इकाई– 3 (अ) 'अन्धेर नगरी' का प्रहसन स्वरूप एवम् रंग परिकल्पना

3.3 प्रहसन के रुप में अन्धेर नगरी

उत्तर 1– साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के दो रूप कहे हैं – श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य।

उत्तर 2– प्रहसन दो प्रकार का होता है। 1. शुद्ध प्रहसन और 2. संकीर्ण प्रहसन।

उत्तर 3– भरतमुनि के अनुसार– जब भगवत् तापस, भिक्षु, क्षत्रीय आदि का किसी (पाखण्डी) नाभक या नीच व्यक्तियों द्वारा परिहास किया जाए तो शुद्ध प्रहसन होता है। इसमें भाषा और कथानक को आरंभ से अंत तक एक समान रूप से पाखण्डी व्यक्तियों के यथार्थ जीवन के उपयुक्त नियोजित किया जाता है।

उत्तर 4– भरतमुनि के अनुसार संकीर्ण प्रहसन में वेश्य, चेट, नंपुसक, विट, धूर्त, वन्धकी के अशिष्ट वेश, भाषा और चेष्टाओं का अभिनय प्रदर्शित किया जाता है। इसमें सामान्य जनता में प्रचलित किसी दुराचरण एवम् दम्भपाखंड का प्रदर्शन अनिवार्य है।

3.4 'अन्धेर नगरी' की रंग परिकल्पना

उत्तर 1– उचित विकल्प चुनकर लिखिए

1) ब–पारसी नाटकों से

2) स– दोनो (बन्द स्टेज और खुले सादे)

3) स–लोक नाटकों जैसा

उत्तर 2– अभिनय और रंगमंच की दृष्टि से नाटक में किन गुणों का होना आवश्यक है?

संक्षिप्त एवम् सुलझा हुआ कथानक, प्रस्तुति योग्य दृश्य विधान, सीमित पात्र, स्पष्ट दृश्य योजना, रूचिकर संवाद योजना, जीवन्त भाषा शैली, काव्यमयता, अभिनेयता।

उत्तर 3–'अन्धेर नगरी' प्रहसन में कुल 6 अंक है।

उत्तर 4– इसकी भाषा नितान्त हरकत भरी, जीवन्त, सक्रिय, उच्चारित शब्द की ध्वनियों और लयों के सौन्दर्य से पूर्ण है। भाषा की नाट्यात्मक अभिव्यंजना, पैनापन, लय और टोन, चरित्रानुकूलता, चमत्कारिकता, नाटकीयता और रवानगी के कारण नेमिचन्द्र जैन ने 'अन्धेर नगरी' को हिन्दी नाटको में बेजोड़ कहा है।

उत्तर 5– सत्य/असत्य लिखिए

1) सत्य

2) असत्य

3) असत्य

4) सत्य

3.5 'अन्धेर नगरी' की रंगमंचीय प्रस्तुति

उत्तर 1– सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1) ब– ब.व. कारंत

2) स– सत्यव्रत सिन्हा

उत्तर 2 – ' काशी के हिंदू नेशनल थियेटर ने 'अन्धेर नगरी' का सबसे पहले मंचन किया था,

उत्तर 3 – निर्देशकों ने हमेशा इस नाटक को समकालीन प्रासंगिकता और रंगमंचीय सार्थकता–क्षमता के कारण मंचन हेतु उठाया है।

उत्तर 4 – सत्य/असत्य लिखिए–

1) सत्य

2) सत्य

3 असत्य

4) सत्य

म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्र : **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

सप्तम खण्ड : **'आधे.अधूरे' : मोहन राकेश**

इकाई – 1 मोहन राकेश का नाट्य कर्म, चिन्तन एवम् 'आधे.अधूरे' का नाट्य.शिल्प

इकाई – 2 नाट्य तत्वों की दृष्टि से 'आधे.अधूरे'

इकाई – 3 (अ)यथार्थवादी दृष्टि एवम् युगबोध के परिप्रेक्ष्य में 'आधे.अधूरे'

(ब) व्याख्या खण्ड

लेखक – **डॉ. धीरेन्द्र शुक्ला**
विभागाध्यक्ष – हिन्दी
शासकीय महात्मा गाँधी स्मृति स्नातकोत्तर महाविद्यालय
इटारसी, मध्यप्रदेश

सम्पादक – **डॉ. प्रेम भारती**

एम. ए. उत्तरार्द्ध : **हिन्दी**

षष्ठम् प्रश्न–पत्रः **आधुनिक कथा साहित्य एवं नाटक**

सप्तम खण्ड : **'आधे.अधूरे' : मोहन राकेश**

खण्ड परिचय–

एम. ए. उत्तरार्ध हिन्दी के षष्ठम प्रश्न पत्र 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' का सप्तम खण्ड मोहन राकेश के नाटक 'आधे.अधूरे' पर आधारित है।

यह नाटक हिन्दी का एक अत्यन्त चर्चित और सफल नाटक माना गया है। 'आधे.अधूरे' स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के दौर में लिखा गया है। इसका कथानक शहरी मध्य वर्ग के जीवन पर आधारित है। व्यवसाय में असफल व्यक्ति, जीवन के अधूरेपन से त्रस्त पति.पत्नी और पति.पत्नी के तनाव के बीच भविष्य के प्रति निराश बच्चों के पारस्परिक द्वन्द्व की कहानी 'आधे.अधूरे' में हैं।

इस खण्ड को तीन इकाईयों में विभाजित किया गया है–

प्रथम इकाई में मोहन राकेश के नाट्य साहित्य का परिचय देते हुए उनके नाट्य चिन्तन पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही 'आधे.अध ूरे' के वस्तु विधान पर विचार किया गया है। इस इकाई में 'आधे.अधूरे' की नाट्य भाषा और सम्प्रेषण, रंग योजना, दृश्य योजना, प्रकाश एवम् संगीत योजना, पात्र योजना पर विचार करते हुये 'आधे.अधूरे' के नाट्य शिल्प पर प्रकाश डाला गया है। इकाई के अन्त मे 'आध े.अधूरे' की विभिन्न रंगमंचीय प्रस्तुतियों का भी उल्लेख किया गया है।

नाट्य तत्वों की दृष्टि से 'आधे.अधूरे' की विवेचना द्वितीय इकाई के अन्तर्गत किया गया है। इस इकाई में देशकाल, पात्र, सम्वाद योजना, भाषा, नामकरण की सार्थकता आदि शीर्षकों के अन्तर्गत ''आधे.अधूरे' पर प्रकाश डाला गया है।

'आधे.अधूरे' से सम्बन्धित तृतीय इकाई में यथार्थवादी दृष्टि एवम् युगबोध के परिप्रेक्ष्य में 'आधे.अधूरे' का विवेचन किया गया है। इसके अन्तर्गत 'आधे.अधूरे' की यथार्थवादी दृष्टि, 'आधे.अधूरे' का युगबोध, नाटक में वर्णित समस्याओं तथा महानगरीय विघटनशील परिवार का विवेचन किया गया है। तृतीय इकाई के अन्तर्गत महत्वपूर्ण गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या दी गयी है।

सभी इकाईयों में बोध प्रश्न दिए गए है। अध्ययन के पश्चात् बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए और खण्ड के अन्त में दिए उत्तरों से उनका मिलान कीजिए। यदि आपके उत्तर सही ना हो तो इस अध्ययन सामग्री का पुनः ध्यानपूर्वक पठन करें और बोध प्रश्नों के सही उत्तर देने का प्रयास करें।

इस खण्ड के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक है कि आप 'आधे.अधूरे' नाटक का अध्ययन अवश्य कर लें।

इकाई–1

मोहन राकेश का नाट्य कर्म, चिन्तन एवम् 'आधे. अधूरे' का नाट्य.शिल्प

संरचना –

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 मोहन राकेश का नाट्य कर्म
1.4 मोहन राकेश का नाट्य चिन्तन
1.5 'आधे.अधूरे' के वस्तु विधान का केन्द्र बिन्दु
1.6 नाटक के तत्व एवम् शिल्प में अन्तर
1.7 रंग योजना
1.8 दृश्य योजना
1.9 प्रकाश योजना एवम् संगीत
1.10 भाषा एवम् ध्वनि
1.11 पात्र योजना
1.12 मंचीय सीमायें
1.13 'आधे.अधूरे' की प्रमुख प्रस्तुतियां
1.14 सारांश
1.15 अपनी प्रगति जाँचिए
1.16 नियतकार्य / गतिविधियाँ
1.17 स्पष्टीकरण के बिन्दु
1.18 चर्चा के बिन्दु

1.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के सप्तम खण्ड की प्रथम इकाई का अध्ययन करने जा रहे हैं।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

सशक्त नाटकाकर मोहन राकेश के नाट्य कर्म के अन्तर्गत उनके तीनों नाटक 'आषाढ़ का दिन' लहरों के राजहंस' और 'आधे.अधूरे' के मूल विषय से परिचित हो सकेंगे।

आप जान पायेंगे कि मोहन राकेश के दो नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और लहरों के राजहंस' ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों पर रचे होने पर भी उनका भाव बोध कितना आधुनिक है और उसके माध्यम से लेखक ने क्या कहना चाहा है ?

हिन्दी नाटक को रंगमंच पर अपने समग्र परिवेश में प्रतिष्ठित करना राकेश जी के जीवन का लक्ष्य था और अपने इस लक्ष्य को पाने में वे सफल भी हुये। राकेश के नाटक साहित्यिकता एवम् रंगमंच दोनों दृष्टि से सफल हैं। उनकी इस सफलता का कारण नाटक और रंगमंच के सम्बन्ध में उनके चिन्तन में निहित था। इस इकाई के अध्ययन से आप मोहन राकेश के नाट्य चिन्तन से परिचित हो सकेंगे।

मोहन राकेश के नाटकों में 'आधे.अधूरे' का विशिष्ट स्थान है। यह नाटक पूर्णतया आधुनिक भाव–बोध से सम्पृक्त है। इस इकाई के अध्ययन से आप 'आधे.अधूरे' नाटक के कथानक के विषय वस्तु से परिचित हो पायेंगे।

इस इकाई में मोहन राकेश के अत्यन्त चर्चित नाटक 'आधे.अधूरे' के नाट्य शिल्प का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आपके समक्ष नाट्य तत्व एवम् नाट्य शिल्प का भेद स्पष्ट हो जायेगा।

नाटक की सफलता उसकी मंचीय प्रस्तुति से गहराई से जुड़ी है। इस दृष्टि से 'आधे.अधूरे' नाटक एक सफल नाटक कहा जा सकता है। रंग योजना, दृश्य योजना, प्रकाश योजना एवम् संगीत, भाषा आदि का ' आधे.अधूरे' की मंचीय प्रस्तुति में योगदान को जान सकेंगे।

इस इकाई में 'आधे.अधूरे' नाटक की मंचीय सीमाओं का अध्ययन कर आप जान सकेंगे कि रंगमंच में किसी नाटक के मंचन की सीमाएँ क्या हो सकती है और रंगमंच की प्रस्तुति में आने वाली समस्याओं को किस प्रकार ठीक किया जा सकता है। साथ ही इस इकाई के अन्त में 'आधे.अधूरे' नाटक की प्रमुख प्रस्तुतियों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

मोहन राकेश हिन्दी नाट्य साहित्य के क्षेत्र में उस समय आए, जब समस्या–नाटक के नाम पर शुष्क एवम् नीरस नाटकों की धूम मच रही थी। नाटक के नाम पर कुछ सांकेतिक एवम् आधी.अधूरी सम्वाद.योजना को ही सब.कुछ माना जाने लगा था। समस्या चित्रण के नाम पर ऐसी.ऐसी कठिन परिकल्पनाएँ हिन्दी.नाटकों में होने लगी थीं जिनका भारतीय दृष्टि में तो कोई मान और मूल्य नहीं था। यथार्थवादी नाटककार नाटकों में से साहित्यिकता या काव्यत्व के तत्वों का प्रायः बहिष्कार करके सहज नाटकीयता का भी गला घोंट रहे थे। तभी मोहन राकेश ने अपने नाटकों के माध्यम से उस नई यथार्थवादी या समस्या.प्रधान दृष्टि को तो जीवित रखा ही, उन्हें काव्यत्व एवम् साहित्यिकता का नव आयाम एवम् उच्च क्षितिज भी प्रदान किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी.नाटक को जन्म दिया था। श्री जयशंकर प्रसाद ने उसे काव्यत्व एवम् साहित्यिकता के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित किया था। उसके बाद नाटक कोरी भावुकता के क्षितिज से तो अवश्य उतर कर जीवन के यथार्थ धरातल पर टिका, किन्तु अपनी सरसता एवम् लालित्य से दूर हो गया। इस दृष्टि से निश्चय ही वह मोहन राकेश ही थे जिन्होने जयशंकर प्रसाद जी के बाद हिन्दी नाटक को लालित्य एवम् काव्यत्व का नव आयाम पुनः प्रदान किया। इस सम्बन्ध में डा. सुरेश अवस्थी लिखते है – "मोहन राकेश ने अपने पहले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में कोई तीन दशकों के बाद नाटक में फिर से काव्य.तत्व और उन साहित्यिक गुणों को प्रतिष्ठित किया था, जिनको प्रसाद के बाद यथार्थवादी नाट्य.परम्परा ने निर्वासित कर दिया था।" निश्चय ही नाटककार के रूप में मोहन राकेश का यह अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य है।

प्रसादजी के नाटकों पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है और यह अधिकांशतः सत्य भी है कि उनके अन्तिम नाटक ध्रुवस्वामिनी को छोड़कर, अन्य किसी भी नाटक में रंगमंच और अभिनय की सम्भावनाओं का कोई ध्यान नहीं रखा गया। इसके विपरीत मोहन राकेश ने जहाँ प्रसाद जी की नाटकीय काव्यत्व–परम्परा को पुनजीर्वित किया, वहीं वे रंगमंच और अभिनेयता की समग्र सम्भावनाओं को लेकर नाटक के क्षेत्र में अवतरित हुए। इसका प्रमाण इस बात से भी मिल जाता है कि उन्होंने अपने नाटकों में अनेक बार सुधार किया। इसी कारण उनके प्रत्येक नाटक के प्रत्येक संस्करण में बहुत अन्तर दिखाई देता है। हिन्दी नाटक को रंगमंच पर अपने समग्र परिवेश में प्रतिष्ठित करना उनके जीवन का चरम लक्ष्य था। अपने इस लक्ष्य को पाने में वे पूर्ण सफल हुए।

संस्कृत काव्य शास्त्रियों ने नाटक को दृश्य .काव्य की संज्ञा दी है। अर्थात् नाटक ही एक ऐसा काव्य है जिसे पढ़ने और सुनने के साथ ही रंगमंच पर दर्शकों के लिए भी उपलब्ध कराया जा सकता है। इस प्रकार नाटक साहित्य की अन्य विधाओं से अलग अपनी एक विशिष्ट अस्मिता रखता है।

नाटक साहित्य का इतिहास बताता है कि सभी देशों के नाटक रचना के उन्नति काल में श्रेष्ठ नाटककारों ने अपने नाटकों की रचना मुख्य रूप में रंगशालाओं दर्शकों के सम्मुख प्रदर्शित करने के लिए ही की थी। इस सन्दर्भ मे संस्कृत काव्यशास्त्र ही नहीं पाश्चात्य नाटककार इ्सूनेस का अभिमत भी यही है– "मेरा विश्वास है कि नाटक मूलतः रंगमंचीय होते है और इसलिए जब तक मेरे नाटक रंगमंच पर अभिनीत होकर दर्शकों द्वारा नाटक कहलाने के पात्र सिद्व नहीं होते मैंने तब तक उन्हें मुद्रित होने की अनुमति नहीं दी।" रंगमंच की इस महत्ता को स्वीकार कर पाश्चात्य विद्वान एल्मर राइस ने स्पष्ट शब्दों में कहा है – "नाटक का मूल सार शब्द नहीं वरन् क्रियाकलाप है।" नाटक खेलने के लिए ही लिख जाते है। इसीलिए डॉ. रामकुमार वर्मा का कहना है "किसी भी भांति नाटकों की उत्कृष्टता का प्रश्न और निर्णय बिना मंच के संपर्क के नही हो सकता। यदि नाटक प्राण है तो मंच उसका शरीर।"

वास्तव में नाटक का रूप और उसकी प्रेषणीयता कई अन्य कलाओं के तत्वों से प्रभावित और नियंत्रित होती है। रंगमंच और प्रदर्शन की रूढियों, रंग, सज्जा, प्रकाश–व्यवस्था तथा संगीत और नृत्य आदि अनेक कलाओं के तत्व और कला रूढियां नाटक की मूल वस्तु साहित्यिक अंश की प्रेषणीयता का रूप अनुशासित करती है और उसे विशिष्ट बनाती है। नाटक में रूपकता तथा उसकी प्रेषण–सापेक्षता का अनिवार्य तत्व, उसकी प्रेषणीयता को अन्य विधाओं की साहित्यिक कृतियों की प्रेषणीयता से भिन्न बना देता है। यही कारण है कि नाटक का रसास्वादन करने वाले प्रेक्षक का प्रेक्षाभाव, काव्य का रसास्वदन करने वाले पाठक के भाव.बोध से नितान्त भिन्न है। नाटक का आस्वादन समूह परक है जबकि अन्य सभी प्रकार की साहित्यिक कृतियों का आस्वादन व्यक्ति–परक है। नाटक के आस्वादन में मूल रूप से दो स्तर है एक व्यक्ति आस्वादन का स्तर और दूसरा समष्टि आस्वादन का स्तर।

नाटक में रंग.मूल्यों की तलाश करने वाले नाटककारों में स्व. मोहन राकेश अग्रणी रहे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने नाटकों के द्वारा हिन्दी रंगमंच को एक नया दिशा निर्देश दिया है। 'आधे.अधूरे' ही नहीं, उनके अन्य नाटक भी अनेक प्रकार के मंचो पर कई बार अभिनीत किये गये और सफलता पूर्वक खेले गये है। 'आधे.अधूरे' तो इस दृष्टि से एक नया प्रयोग ही है जिसने रंगमंच को एक गरिमा और शालीनता दी है। इसमें केवल उतने ही घण्टे की कथा है जितने घण्टे का नाटक है। इस दृष्टि से मंच पर कुछ भी बदलने की आवश्यकता नहीं है। केवल ध्वनि और प्रकाश की सहायता तथा सम्वादों के माध्यम से पूर्व घटित घटनाओं का बोध करा दिया गया है। मंच प्रभाव की दृष्टि से 'आध ो.अधूरे' नाटक के सम्वाद भी महत्वपूर्ण है।

1.3 मोहन राकेश का नाट्य कर्म

एक सर्जक कलाकार के रूप में मोहन राकेश की प्रतिभा का प्रथम स्फुटन कहानी के रूप में ही सम्भव हो सका। कहानीकार के रूप में मोहन राकेश एक ओर यदि प्रेमचन्द और पुराने कहानीकारों के छोर का स्पर्श करते है। (उनकी 'मलबे का मालिक' जैसी कहानियाँ परम्परागत कहानी.साहित्य के अनुरूप ही हैं) तो दूसरी ओर उन्हें नई कहानी के प्रस्तोता होने का गौरव भी प्राप्त है। कहानी के बाद वे उपन्यास.रचना के क्षेत्र में आये। उसके बाद ही उन्होंने नाटक, एकांकी नाटक और निबन्ध.रचना जैसे अन्य विधात्मक साहित्यिक रूपों को अपनाकर एक कुशल कलाकार की चहुँमुखी प्रतिभा का परिचय दिया।

नाटक और एकांकी.साहित्य – यों तो मोहन राकेश सन 1948 से ही एक समर्थ कहानीकार के रूप में साहित्यकाश पर उदय हो चुके थे, उसके बाद कहानीकार के रूप में उन्हें मान.प्रतिष्ठा अनवरत रूप में मिलती ही गयी। फिर भी देश.विदेश में उन्हें सर्वाधिक प्रतिष्ठा नाटककार के रूप में ही प्राप्त हो सकी। उनके व्यक्तित्व का सारा द्वन्द्व और उनका जागरूक चेतन रूप नाटकों में ही सर्वाधिक प्रखरता के साथ रूपायित हो सका। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी नाटक को जन्म दिया था उनके बाद साहित्य का यह क्षेत्र और अनेक वर्षो तक रिक्त रहा। फिर हिन्दी नाट्य.क्षितिज पर जयशंकर प्रसाद के रूप में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र का उदय हुआ। जब इस नक्षत्र का

भी भौतिक अस्त हो गया, तो एक बार फिर उसी शून्य और रिक्तता की अनुभूति होने लगी थी तभी सहसा नाटककार के रूप में हिन्दी.साहित्य.क्षितिज पर उदय होकर मोहन राकेश ने उस सारी शून्यता और रिक्ति को पूर्णतया भर दिया। संख्या की दृष्टि से यद्यपि राकेश के नाटक भारतेन्दु और प्रसाद से बहुत कम है, पर निश्चय ही कलात्मकता एवम् रंगमंच आदि की दृष्टि से राकेश के नाटक इन दोनों महान् व्यक्तियों के नाटकों से कहीं आगे हैं। राकेश ने नाटककार के रूप में निश्चय ही नव्य क्षितिजों का अन्वेषण एवम् उद्घाटन किया है।

अभी तक राकेश के तीन पूर्ण नाटक तथा कुछ एकांकी नाटक प्रकाश में आ चुके है। प्रकाशित नाटकों एवम् एकांकियों के नामादि प्रकाशन.क्रम से इस प्रकार हैं–

(का) 'आषाढ़ का एक दिन' सन् 1958 में प्रकाशित।

(ख) 'लहरों के राजहंस' सन् 1966 में प्रकाशित।

(ग) 'आधे.अधूरे' सन् 1969 में प्रकाशित।

(घ) 'अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी तथा बीज नाटक' मरणोपरान्त सन् 1973 में प्रकाशित।

हमारे अध्ययन का मुख्य विषय मोहन राकेश के 'आधे.अधूरे' नाटक का समग्र मूल्यांकन करना है, पर लेखक के समग्र व्यक्तित्व एवम् कृतित्व की सम्पूर्ण झाँकी पाने की दृष्टि से यहाँ अन्य नाटकों का संक्षिप्त आलोचनात्मक आंकलन उचित रहेगा। स्वर्गीय मोहन राकेश के अन्य नाटकों का यहाँ संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है–

(क) आषाढ़ का एक दिन – नाटककार मोहन राकेश की यह सर्वप्रथम कलात्मक सर्जना है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1958 में हुआ था। रचनाक्रम की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक प्रथम कृति होने पर भी इसने एकाएक राकेश को प्रथम श्रेणी के नाटककारों के धरातल पर लाकर प्रतिष्ठित कर दिया था। राकेश ने यह नाटक कलाकार और राजनीति जैसे कुछ बुनियादी प्रश्नों को लेकर रचा था, और इसका नायक ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से विवादास्पद होते हुए भी विश्व में प्रतिष्ठित नाटककार कालिदास को बनाया गया, अतः इस सर्जना को लेकर पाठकों, विद्वानों और आलोचकों में अनेक प्रकार के विवाद उठ खड़े थे। इस कृति की रंगमचीयता एवम् अभिनेयता को लेकर भी एक प्रकार का निरर्थक विवाद खड़ा किया गया था। रंगमंच एवम् अभिनेयता की दृष्टि से राकेश ने इस नाटक को प्रत्येक नया संस्करण प्रकाशित होने से पहले, हर बार मांजा एवम् संवारा है। इसी कारण इसके सन् 1958 में प्रकाशित होने वाले प्रथम संस्करण से लेकर उपलब्ध अन्तिम संस्करण तक इसके रंग.रूप में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। रंगमंच एवम् अभिनय की दृष्टि से यह नाटक अब इतना मंज एवम् सज.संवर चुका है कि उसके बारे में विवाद के रूप में भी कुछ कह पाना प्रायः ही निरर्थक होगा। देश–विदेश में सैकड़ों बार इसका सफल मंचीय प्रस्तुतीकरण हो चुका है। यहाँ तक कि सम्वादों का अंग्रेजी में रूपान्तरण करके भी विदेशों में इसका सफल मंचन विदेशियों द्वारा भी प्रस्तुत किया चुका है।

राकेश ने नाटक में कालिदास के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने के लिए जहाँ उपलब्ध इतिहास से सम्पर्क साधा है, वहीं उसके सम्बन्ध में प्रचलित लोक.कथाओं, किवदन्तियों, कहावतों तथा मान्यताओं को भी आधार बनाया है। कुल मिलाकर नाटककार ने इस ऐतिहासिक पर अज्ञात.इतिहास वाले पात्र को सम्भावनाओं के समग्र साँचे में ढालकर, उतना उसके बाहरी ढाँचे का चित्रण नहीं किया, जितना कि उसके आन्तरिक ढाँचे का, साथ ही उन आयामों का, जिन्होंने सामान्य धरातल से उठाकर उसे एक महाकवि या महान् नाटककार के स्तर तक पहुँचा दिया था।

नाटककार ने कालिदास और मल्लिका के माध्यम से जिन समस्याओं का अंकन किया है, वे चिरन्तन समस्याएँ है। आज भी उतनी ही सत्य एवम् यथार्थ हैं जितनी कि कालिदास के युग में थी। कलाकार को राज्याश्रय लेना चाहिए या नहीं, राज्याश्रय लेकर भी राजनीति में भाग लेना चाहिए अथवा नहीं, व्यक्तिगत जीवन में प्रेम और विवाह, अन्य प्रकार की प्रतिद्वन्दिता, आन्तरिक बाह्य दबाव आदि कुछ ऐसी समस्याएँ हैं, जो कि युग–युगों से कलाकार के साथ जुड़ी आ रही है। आज तक न तो उनका कोई समाधान मिला ही है। (नाटक में भी नहीं) और न मिल पाने की कोई सम्भावना ही दिखाई देती है। कलाकार का यही आक्रोश एवम् क्षोभ है जिसे मोहन राकेश का कलाकार सहन

नहीं कर सका और उसी सब को उसने 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में रूपाकर प्रदान किया है।

पुरुष.नारी के सम्बन्धों का भी इस नाटक में स्पष्ट रूप से चित्रण किया गया है। इस बारे में नाटककार राकेश का दृष्टिकोण अधिकांशतः स्वच्छन्दतावादी ही रहा है। इसे हम युग बोध के साथ ही नाटककार का निजी बोध एवम् मंतव्य भी कह सकते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'आषाढ का एक दिन' नाटक में राकेश ने अपने अनुभूति–प्रवण क्षण बोध को ही सफलता के साथ पूर्ण अभिनेयता के साथ सामंजस्य स्थापित करके कालिदास, मल्लिका, अम्बिका विलोम आदि पात्रों के माध्यम से रूपायित किया है। तभी तो यह नाटक पूर्णतः ऐतिहासिक न होते हुए भी समग्र ऐतिहासिक सम्भावनाओं से संयत विशुद्ध साहित्यिक और साथ ही अभिनेय नाटक बन पाया है। नाटक में कलाकार का युगों.युगों का द्वन्द्व प्रधान है। इसमें कुछ भी अप्रासंगिक, असंगत या विकृत नहीं है। इस नाटक पर लेखक को ललित.कला अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

(ख) लहरों के राजहंस – सन् 1963 में प्रकाशित 'लहरों के राजहंस' लेखन क्रम की दृष्टि से मोहन राकेश का दूसरा लोकप्रिय नाटक है। द्वन्द्वग्रस्त और अनिर्णीत चेतना के क्षण.बोध को ही यहाँ नाटककार ने नन्द और सुन्दरी जैसे ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से आकार प्रदान करने का प्रयास किया है। वास्तव में 'आषाढ का एक दिन' का कालिदास ही यहाँ नन्द बनकर आया है। विरक्ति एवम् पलायन का भाव.रूप यहाँ भी 'आषाढ़ का एक दिन' के समान विद्यमान है। 'लहरो के राजहंस' का अत्यन्त संक्षेप में कथानक केवल इतना ही है कि तथागत (गौतम बुद्ध) अपने भाई नन्द के द्वार से बिना भिक्षा पाये ही लौट जाने को बाध्य हुए, क्योंकि उनकी पुकार को वहाँ कोई सुन न पाया। पता चलने पर क्षमा.याचना के विचार से नन्द तथागत के पास गया। नन्द कुछ देर के लिए लौटकर आया, पर वह नन्द नहीं, जो कि गया था बल्कि एक दूसरा प्रवज्यागृहीत नन्द घर आया.आया और चला भी गया। उसकी पत्नि सुन्दरी उसकी अनवरत् प्रतीक्षा करती रही। सुन्दरी के लिए सारा सुखद अतीत एक सपना या कपोल–कल्पित तथ्य मात्र बनकर रह गया। स्पष्ट है कि एक क्षण की चूक ने (तथागत के नन्द के द्वार से भिक्षा पाये बिना ही लौट जाना) विलासी नन्द और उसकी गर्विणी पत्नी सुन्दरी के समस्त जीवन की धारा ही बदल डाली। इस एक क्षण को ही नाटककार मोहन राकेश ने 'लहरों के राजहंस' नाटक में बड़े ही सजीले, नाटकीय एवम् भोगे हुए क्षण के रूप में चित्रित किया है।

'लहरों के राजहंस' नाटक में भी अन्तर्द्वन्द्व अपने चिरन्तन मानवीय द्वन्द्व के रूप में प्रमुखता के साथ चित्रित हुआ है। नाटककार यह मानकर चला है कि द्वन्द्व का एक क्षण ही जीवन की समूची आस्थाओं में आमूल–चूल परिवर्तन ला देने के लिए पर्याप्त हुआ करता है। बाकी सारी स्थितियाँ तो मात्र गुजरने के लिए हुआ करती है। इन्हीं सब कारणों से हमने 'लहरो के राजहंस' नाटक को राकेश के पहले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की अगली कड़ी माना है। दोनों के मूल संवेद्य में वास्तव में कोई भी मौलिक अन्तर नहीं। फिर दोनों के पात्र.परिवेश, कथा एवम् कथानक समान रूप से ऐतिहासिक भित्तियों पर ही अंकित किये गये है। 'आषाढ़ का एक दिन' में यदि कालिदास के साथ विलोम भी है, तो 'लहरों के राजहंस में' नन्द के साथ श्यामांग भी है। विलोम और श्यामांग.दोनों उलझे और उखड़े हुए व्यक्तित्व होते हुए भी वास्तव में सुलझाव और अन्तःसंयोजना रखते हैं। दोनों ही वास्तव में विरोधों.अवरोधों के सुन्दर, सजग एवम् सजीव प्रतीक है। उतने ऐतिहासिक सत्य नहीं, जितने प्रतीक। इस दृष्टि से 'लहरो के राजहंस' के समग्र रूप को हम एक ऐतिहासिक मिथक ही नहीं, बल्कि युगों.युगों की द्वन्द्वग्रस्त चेतना के सन्दर्भो में एक समग्र प्रतीक, एक समूचा बिम्ब कह सकते है। यही इस दूसरे नाटक की वास्तविक सफलता एवम् सार्थकता है।

(ग) 'आधे.अधूरे' – सन् 1969 में प्रकाशित मोहन राकेश के अभी तक प्रकाशित पूर्ण नाटकों की कड़ी में यह अन्तिम नाटक है। इसी नाटक की सर्वांगींण विवचेना प्रस्तुत अध्ययन सामग्री का उदेश्य एवम् लक्ष्य है, अतः इसके सम्बन्ध में हम यहाँ अधिक कुछ नहीं कहना चाहते। फिर भी इसके मूल वर्ण्य.विषय एवम् रचना.प्रक्रिया के सम्बन्ध में यहाँ कुछ कह देना एकदम असंगत न होगा।

प्रस्तुत नाटक का कथ्य अपने.आप में चिरन्तन प्रश्नों एवम् सत्यों को संजोये रखते हुए भी पूर्ववर्ती दोनों नाटकों से सर्वथा भिन्न है। इसमें आधार–भित्ति वर्तमान में भोगे जा रहे जीवन को ही बनाया गया है, न कि अतीत अथवा

इतिहास को। आज का जीवन जिन अनेक प्रकार की विसंगतियों के फलस्वरूप अधूरेपन की अनुभूतियों से भर चुका है। विशेषतः अर्थ और काम ";मग) को लेकर, उन्हीं को यहाँ जीवन्त पात्रों के माध्यम से रूपाकार प्रदान करने की सफल चेष्टा की गई है। यहाँ एक ऐसे परिवार का वर्णन किया गया है। जो अपने–आप में ही आश्वस्त नहीं। उसके समाने जीवन का कोई प्रत्यक्ष एवम् स्पष्ट लक्ष्य भी नहीं है। अतः सारा परिवार ही अनेक प्रकार की हीन.ग्रन्थियों से ग्रसित होकर एक विचित्र.सा अधूरा और अपरिपक्व.सा व्यवहार करता हुआ दिखाई देता है। अतः रूपाकार की दृष्टि से यह नाटक पूर्णतः यथार्थवादी है। राकेश के नाटक पूर्ववर्ती नाटकों के समान साहित्यिक या काव्यमय नाटक नहीं। इस नाटक पर लेखक को संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–सत्य/असत्य लिखिए

अ– मोहन राकेश कहानी के बाद वे उपन्यास.रचना के क्षेत्र में आये। उसके बाद ही उन्होंने नाटक, एकांकी नाटक और निबन्ध.रचना के क्षेत्र में आये –

उत्तर ______________

ब– 'आषाढ़ का एक दिन' नाटककार मोहन राकेश की यह अंतिम नाटक है–

उत्तर ______________

स– 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक पर लेखक को ललित.कला अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था–

उत्तर ______________

द– सन् 1963 में प्रकाशित 'लहरों के राजहंस' लेखन क्रम की दृष्टि से मोहन राकेश का दूसरा लोकप्रिय नाटक है–

उत्तर ______________

इ– मोहन राकेश के दो नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और लहरों के राजहंस' ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों पर रचे गये हैं–

उत्तर ______________

प्रश्न 2– अभी तक राकेश के तीन पूर्ण नाटक प्रकाश में आ चुके है। प्रकाशित नाटकों नाम एवम् प्रकाशन वर्ष बताइए–

उत्तर ____

____

____

प्रश्न 3–'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम लिखिए।

उत्तर ____

____

____

प्रश्न 4–'लहरों के राजहंस' नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम लिखिए।

उत्तर --

प्रश्न 5–'आधे.अधूरे' नाटक पर लेखक को कौन सा पुरस्कार प्राप्त हुआ था

उत्तर --

1.4 मोहन राकेश का नाट्य चिन्तन

एक नाटककार के लिए मंच की सीमाओं का ज्ञान आवश्यक है। मोहन राकेश को मंचीय सीमाओं का गहरा ज्ञान था। वे मंच और दर्शकों को दृष्टि में रखकर नाटक रचा करते थे। लेकिन मंच और दर्शक के लिये वे नाटक के स्तर में कमी नहीं करते थे। साहित्यिकता और रंगमंच–दोनों के सार्थक समन्वय के वे पक्षधर थे। पारसी रंगमंच स्तरहीनता के कारण उन्हें अनुकूल नहीं लगा और प्रसाद का जटिल रंगमंच भी उनकी मान्यता के विपरीत था। पारसी रंगमंच के सम्बन्ध में मोहन राकेश लिखते हैं– "हिन्दी रंगमंच ने उस पारसी कम्पनियों की हीन और गली.सड़ी विरासत लेकर जन्म लिया जो स्वयं घटिया दर्जे के यूनानी रंगमंच से प्रेरणा लेकर पनपी थीं। हिन्दी में कविरत्न पं. राधेश्याम कथावाचक की कृतियाँ ही इस रंगमंच के अनुकूल बन सकीं। इससे अधिक की शायद आशा भी नहीं की जा सकती थी।" (मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि पृष्ठ 98–99) प्रसाद के सम्बन्ध में राकेश का मत है– "प्रसाद जी ने पारसी कम्पनियों की परम्परा से तो नाता तोड़ा, पर न उन्होंने भारतेन्दु की परम्परा को आगे ले जाने का प्रयत्न किया और न ही रंगमंच की किसी नयी परम्परा का संकेत दिया। यद्यपि उनका विचार था कि परिष्कृत बुद्धि के अभिनेता हों, सुरूचि.सम्पन्न सामाजिक हों और पर्याप्त द्रव्य काम में लाया जाए तो उनके नाटक अभिनीत होकर अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न कर सकतें हैं पर नाटकों के शिल्प को देखते हुए उनसे सहमत

होना असम्भव प्रतीत होता है।......प्रसाद जी का रंगमंच के साथ सम्पर्क नहीं रहा, शायद इसीलिए वे रंगमंच की सीमाओं से परिचित नहीं हो सके।" (साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि पृष्ठ 100) भारतेन्दु की रंग.दृष्टि हिन्दी रंगमंच को विकास की ओर ले जा सकती थी। इस सम्बन्ध में राकेश लिखते हैं– "भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में रंगमंच के सम्बन्ध में उनकी स्पष्ट दृष्टि का परिचय अवश्य मिलता है। लोकरूचि और परम्परा, दोनों को मान्यता देते हुए उन्होंने संस्कृत नाटक के रंगशिल्प को नये साँचे में ढालने का प्रयत्न किया। भारतेन्दु की पात्र कल्पना तथा उनके दृश्य .संयोजन का जनसाधारण में नाटक की स्थापना करने की इच्छा को व्यक्त करते हैं।..... भारतेन्दु की दृष्टि को आगे विकसित किया जाता तो अब तक हिन्दी रंगमंच का एक निश्चित रूप हमारे सामने आ गया होता।"

नाटक के लिए रंगमंच का महत्व स्वीकार करते हुए राकेश लिखते हैं – "लिखा गया नाटक एक हड्डियों के ढाँचे की तरह है जिसे रंगमंच का वातावरण ही मासंलता प्रदान करता है।" उनके अनुसार सही रंगमंच की खोज के लिए आवश्यक हैं – "अपने जीवन और परिवेश की गहरी पहचान–आज के अपने घात प्रतिघातों की रंगमंच संभावनाओं पर दृष्टिपात। यह खोज ही हमें वास्तविक नये प्रयोगों की दिशा में ले जा सकती है और उस रंग.शिल्प को आकार दे सकती है। जिससे हम स्वयं अब तक परिचित नहीं है।" हिन्दी रंगमंच की विपन्न स्थिति को देखते हुए राकेश सहज मंच के हिमायती है – ''तकनीकी रूप से समृद्ध और संश्लिष्ट रंगमंच भी अपने में विकास की एक दिशा है, परन्तु उस से हटकर एक दूसरी दिशा भी है और मुझे लगता है कि हमारे प्रयोगशील रंगमंच की वही दिशा हो सकती है। वह दिशा रंगमंच के शब्द और मानवपक्ष को समृद्ध बनाने की है– अर्थात् न्यूनतम उपकरणों के साथ संश्लिष्ट से संश्लिष्ट प्रयोग कर सकने की। यही रंगमंच में शब्दकार का स्थान महत्वपूर्ण हो उठता है।'' अन्यत्र और

स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं– ''हमारी अपेक्षा न्यूनतम तकनीकी उपादनों के आश्रय से रंगमंच के विकास की है और उसके लिए विशिष्ट तकनीकी सुविधाओं से सम्पन्न प्रदर्शन.गृहों की अपेक्षा और निर्भरता से हमें, जहाँ तक बन पड़े, अपने को मुक्त करना होगा। उन परिस्थितियों से हम सब परिचित हैं, जिनके कारण हमारे यहाँ अच्छे से अच्छे नाट्य प्रयोगों के तीन.तीन, चार.चार से अधिक प्रदर्शन नहीं हो पाते और इतना भी सम्भव बनाने के लिए आयोजकों को कितना श्रम करना पड़ता है और कितनी आर्थिक क्षति झेलनी पड़ती हैं, यह सब हमसे छिपा नहीं है।''

मोहन राकेश नाट्य रचना में उपयुक्त भाषा पर विशेष बल देते है– "शब्द मूलतः ध्वनि तथा लय ध्वनि का धर्म, होने से किसी भी तरह के शब्द प्रयोग की सार्थकता उसके लय नियोजन पर निर्भर करती है। यह लय .नियोजन अपने से ही कई–कई बिम्बों तथा मिथकों के संसर्ग मन में जगाकर शब्दों के व्याकरण.विश्लेषित अर्थ से परे बहुत.से अनिर्वचनीय तथा विश्लेषणातीत अर्थो की अनुगूँज मन में पैदा कर सकता है। इस लय .नियोजन के नाटकीय प्रयोग की सम्भावनाएँ असीमित है। एक नाटक के अन्तर्गत साधारण से साधारण ढंग से बोले गये शब्दों के तो अपने अर्थ. संसर्ग. रहते ही हैं, उन अर्थ.संसर्गो में किसी विशेष लय के संयोग से बहु चामत्कारिक प्रभाव पैदा करने वाले दूसरे. दूसरे अर्थ संसर्ग भी लाये जा सकते है।" एक अन्य स्थान पर वे कहते है– "आज के रंगमंच के लिए उपयुक्त शब्द प्रस्तुत करने में समकालीन नाटककार बहुत हद तक असफल रहा है। रंगमंच को किसी भी तरह की चकाचौंध का पर्याय बना देना, उसके अन्तर्हित तर्क को ही पराजित करना है। शब्द, अभिनेता और इन दोनों का संयोजन करने वाले निर्देशक के अतिरिक्त और कुछ ऐसा नहीं है जो नाटकीय रंगमंच की अनिवार्य शर्त हो पर इससे शब्द का दायित्व बहुत बढ़ जाता है।....... मैं सिनेमाई अभिनय की तुलना में रंगमंचीय अभिनय में अभिनेता की उन्मुक्तता को भी बहुत महत्वपूर्ण मानता हूँ, परन्तु यह उन्मुक्तता तभी सार्थक है, जब वह उस संयम के अन्तर्गत हो, जो शब्द का हैं।"

मोहन राकेश रंगमंच और नाटक को सिनेमा और रेडियो से अधिक प्राणवान मानते हैं। वे लिखते हैं–सिनेमा और रेडियो के विशिष्ट और विकसित शिल्प के बावजूद उनकी अपनी सीमाएँ हैं। रेडियो नाटक मात्र ध्वनि की सीमाओं में आबद्ध है श्रोता को अपने लिए अपनी कल्पना से चित्रों के निर्माण का आयास करना पड़ता है। तीसरे आयाम का अभाव सिनेमा नाटक की सीमा है, जिसके कारण पर्दे पर दिखाई देने वाली रंगीन या कृष्ण श्वेत छायाकृतियां अयथार्थ के भ्रम को नहीं मिटा पाती। सिनेमा में तीसरे आयाम का विस्तार हो जाने पर भी कैमरे की आंख से देखे गये चरित्र जी जागते इंसानों का स्थान न ले पायेंगे, इसलिए रंगमंच की सम्भावनाएं असंदिग्ध हैं। रंगमंचीय नाटकों में बढ़तीहुई लोकरूचि इस बात का प्रमाण है। दूसरे, समाज के सभी क्षेत्रों और वर्गों के लोगों में अभिनय की रूचि विद्यमान रहती है। सिनेमा और रेडियो सबकी अभिनय रूचि की परितृप्ति का साधन नहीं बन सकते, उनके लिए रंगमंच ही एक मात्र साधन है। रंगमंच सिनेमा और रेडियो के लिए अच्छे चरित्रों के चयन का केंद्र भी बन सकता है।"

मोहन राकेश नाटककार, रंग.निर्देशक तथा अभिनेता के सहयोगी प्रयास को रंगमंच के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं– "हमारी रंग.अवधारणा को विशेष रूप से मानवीय पक्ष पर ही निर्भर रहकर चलना होगा। अर्थात् नाटककार, रंग निर्देशक तथा अभिनेता इन तीनों के सहयोगी प्रयास को ही प्रमुखता देकर कल की सम्भावनाओं की खोज करनी होगी।" मोहन राकेश नाटककार और निर्देशक के बीच उपयुक्त तालमेल के पक्षधर है। वे नहीं चाहते कि निर्देशक नाटक के साथ मनमानी करे या नाटककार ज्यों का त्यों नाटक मंचित करने का आग्रह करे। वे लिखते है– "रंगमंच की पूरी प्रयोग प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत, सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहे यह स्थिति मुझे स्वीकार्य नहीं लगती। न ही यह कि नाटककार की प्रयोगशीलता उसकी अपनी अलग चारदीवारी तक सीमित रहे और क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे दूर अपनी अलग चारदीवारी तक। इन दोनों को एक धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंग प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बन सके। साथ ही यह भी कि वह उस प्रक्रिया को अपनी प्रयोगशीलता के ही अगले चरण के रूप में देख सके।"

नाटक का रंगमंच पर खरा उतरना आवश्यक है। मोहन राकेश लिखते हैं– "बहुत बार ऐसा होता है कि अपेक्षाओं के अनुसार नाटकों की रचना की जाती है, पर कई बार ऐसा भी होता है कि एक नाटक के लिए विशेष रंगमंच का संयोजन किया जाता है। परन्तु दोनों ही स्थितियों में नाटककार के सामने रंगमंच के रूप

विधान का स्पष्ट होना आवश्यक है। तथाकथित साहित्यिक नाटक साहित्य कृति होते हुए भी नाटक नहीं होता। विचार और भावपूर्ण गुम्फित भाषा नाटकीयता की कसौटी नहीं है। सम्वादों और घटनाओं को दृश्यों और अंको. में बांट देना ही पर्याप्त नहीं, नाटककार के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ लिखता है उसे आंख मूंदकर अपनी कल्पना के रंगमंच पर घटित होते हुए भी देखे। लिखा हुआ नाटक अपने में पूर्ण कृति नहीं होती। रंगमंच की पृष्ठभूमि और पात्रों का अभिनय उसे पूर्णता प्रदान करते हैं। एक कृति के रूप में नाटक तभी सफलता प्राप्त कर सकता है जबकि उसमें रंगमंच पर अभिनीत होने की सम्भावनाएँ निहित हों।"

मोहन राकेश हिन्दी रंगमंच के विकास और दर्शकों की कमी पर भी विचार करते हैं। उनका मानना है– "हिन्दी का वास्तविक रंगमंच राजकीय आयोजनों से नहीं, समर्थ नाटककारों और अभिनेताओं तथा निर्देशकों के हाथों विकसित होगा। यदि नाटक जीवन के द्वन्द्वों का चित्रण करेगा तो रंगमंच को भी जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल ढ़लना होगा। हिन्दी रंगमंच को हिन्दी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतीक बनना होगा।" दर्शकों के विषय में उनका कहना है–"दर्शक वर्ग में गम्भीर रंगमंच के संस्कार न होना अपने में कोई बहुत बड़ा तर्क नहीं है, क्योंकि यह संस्कार धीरे.धीरे चाहे विकसित हों, अपने आप विकसित नहीं होगा। उसके लिए जैसे.तैसे यह सम्भव बनाना ही होगा कि हमारे रंग प्रयोग एक विस्तृत दर्शक समुदाय तक पहुँच सकें।"

इस प्रकार मोहन राकेश का नाट्य चिन्तन नाटक और रंगमंच के विस्तृत स्वरूप को अपने में समाहित किए हुए है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–उचित कथनों पर सही/गलत लिखिए–

1. मोहन राकेश को मंचीय सीमाओं का गहरा ज्ञान था।
2. मोहन राकेश साहित्यिकता और रंगमंच दोनों के सार्थक समन्वय के पक्षधर थे।
3. मोहन राकेश पारसी रंगमंच से प्रभावित थे–
4. मोहन राकेश रंगमंच और नाटक को सिनेमा और रेडियों से अधिक प्राणवान नही मानते हैं।
5. मोहन राकेश नाटककार, रंग–निर्देशक तथा अभिनेता के सहयोगी प्रयास को रंगमंच के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं
6. मोहन सकेश नाटक का रंगमंच पर खरा उतरना आवश्यक नहीं मानते हैं।
7. मोहन राकेश का नाट्य चिन्तन नाटक और रंगमंच के विस्तृत स्वरूप को अपने में समीहित किए हुए है।

प्रश्न 2– नाटक के लिए रंगमंच का महत्व स्वीकार करते हुए मोहन राकेश ने क्या लिखा हैं

उत्तर – ....

....

....

प्रश्न 3– दर्शकों के विषय में मोहन राकेश का क्या कहना है

उत्तर– ....

....

....

....

1.5 'आधे.अधूरे' के वस्तु विधान का केन्द्र.बिन्दु

वस्तु विधान में नाटककार ने एक मध्यवर्गीय परिवार को अपना केन्द्र.बिन्दु बनाया है। एक परिवार है, जिसकी मध्
यवर्गीय स्थिति क्रमशः गिरती हुयी उसे निम्न मध्यवर्गीय स्थिति में ला पटकती है। इसका मूल कारण है परिवार
के मुखिया पुरुष पात्र की अकर्मण्यता, निकम्मापन और आत्मविश्वास.विहीनता। वह अपनी इन स्थितियों को अनुभव
तो करता है, पर सिवाय छटपटाहट के अन्य कुछ भी कर पाने में समर्थ नहीं हो पाता। इसी कारण परिवार के मुखिया
की जो भूमिका होनी चाहिए, वह उसे निभा पाने में एकदम असमर्थ होकर रह जाता है। उसे आर्थिक दृष्टि से एकदम
अपनी कमाऊ पत्नी पर आश्रित होकर रह जाना पड़ता है। अतः उसकी स्थिति का दयनीय हो जाना नितान्त
स्वाभाविक ही कहा जाएगा। उस पर कमाऊ पत्नी के व्यंग्य, बड़ी ही दयनीय एवम् विचित्र स्थिति का निर्माण कर
देते है। इन्हीं स्थितियों में नारी.पुरुष (पति.पत्नी) का जीवन तो व्यतीत हो ही रहा है, बल्कि कहा जाए कि ढोया
जा रहा है, इसका प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ता है। बड़ी लड़की अपनी माँ के ही प्रेमी के साथ भाग जाती है।
पर वहाँ भी उसे मायके के परिवार जैसी टूटन का अनुभव करना पड़ता है। परिवार का लड़का और छोटी लड़की
भी उसी प्रकार की असमर्थताओं एवम् वैषम्यों का शिकार होकर टूटते.बिखरते दिखाई देते है। छोटी लड़की जिद्दी
है और लड़का आवारगी को ढोता हुआ किसी तरह जी रहा है। बस, यही मध्यवर्गीय परिवार वह केन्द्र.बिन्दु है जिस
पर 'आधे.अधूरे' नाटक की समूची वस्तु.योजना आधारित है। वास्तव में यह कहानी मध्य से निम्न.मध्य वर्ग की ओर
(आर्थिक स्तर पर) अग्रसर हो रहे आज के प्रत्येक भारतीय परिवार की कहानी है। अर्थ की भूख के साथ फिर जब
काम ;मग) की भूख भी मिल जाती है। तो एक भयावह विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो जाया करती है जो कि अपने
साथ–साथ दूसरों को भी ले डूबा करती है। उन्हीं मूल तथ्यों.यथार्थ एवम् अनवरत भोगे जा रहे तथ्यों को केन्द्र या
मूल आधार बना करके ही 'आधे.अधूरे' नाटक की मूल.वस्तु का संगठन किया गया है। विघटन की जो निरन्तर
प्रक्रिया अर्थ.काम के आस.पास हो रही है, उसकी सजीव योजना यहाँ वस्तु विन्यास के रूप में हुई है।

वस्तु.योजना : विकास और रूप– 'आधे.अधूरे' नाटक की वस्तु योजना एक ही दृश्य में मुख्यतः दो अंकों में की गई
है। पहला अंक वास्तव में वस्तु का विधान, उद्घाटन एवम् प्रतिष्ठापन करने वाला है। दूसरे अंक में तेज़ी से अन्तिम
सोपान तक पहुँचा कर अर्थात् मध्य से निम्न.मध्य वर्ग की ओर अग्रसर हो रहे परिवार की स्थिति का रूपायन करके
उसे वहीं समाप्त कर दिया गया है। वस्तु.योजना में यथार्थ रूप में निम्न.मध्यवर्गीय स्थितियों का उद्घाटन मात्र
कर दिया गया हैं, उसका कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया। अपने समग्र परिवेश में वस्तु.योजना का स्वरूप
और विकास निम्नलिखित हैं–

वस्तु का उद्घाटन मध्य.वर्गीय स्थितियो सें निम्न.मध्यवर्गीय स्थितियों की ओर अग्रसर हो रहे एक परिवार के घर
के दृश्य से होता हैं। समूचा दृश्य .विधान कथ्य एवम् कथानक के सर्वथा अनूरूप ही अन्तःयोजित किया गया हैं।
उस दृश्य में बैठा व्यक्ति सिगार के कश खींचता हुआ अपनी स्थिति पर गम्भीर रूप से चिंतित.सा दिखाई देता हैं।
वह बडी ही नाटकीय घर के दृश्य से होता हैं स्थितियों में वस्तु.विषय का उद्घाटन करता हैं। वह काले सूट वाला
व्यक्ति दर्शको के समक्ष अपनी स्थिति को प्रतिष्ठापित करने के लिये कहता हैं कि सडक के फूटपाथ पर चलने के
जिस आदमी से अचानक आप लोग टकरा जाते हैं, वही मैं हूँ। विभाजित रूप में मैं सभी व्यक्तियों में आंशिक रूप
से अवश्य ही विद्यमान हूँ। इस प्रकार वह व्यक्ति, जो नाटककार की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रतीत
होता है, सहज ही पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

इसके बाद रंग.प्रकाश द्वारा एक प्रकाश से अगला दृश्य, उसी स्थान पर आरम्भ होता है। कुछ सामान अपनी बाहों
आदि में सम्भाले मंच पर बाहर की ओर नाटक की नायिका का प्रवेश होता है। उसका नाम है– सावित्री। एक खीझ
और आक्रोश का व्यक्त भाव उसकी मनः स्थितियों को लगभग स्वयं ही उजागर कर देता है। अपनी छोटी बेटी
किन्नी को पुकारने पर भी उसे कोई उत्तर नहीं मिलता, तब उसकी खीझ और भी बढ़ जाती है। फिर जब वह उस
कमरे की स्थिति देखती है, वहाँ पड़ी छोटी बेटी की कटी.फटी किताबें और इक्कीस वर्षीय युवक बेटे अशोक द्वारा
काटी गई अभिनेत्रियों की तस्वीरें, इधर.उधर बिखरे कपड़े तथा अन्य वस्तुएं निहारती है, तो उसकी खीझ क्रोध तथा
आवेश में परिवर्तित हो जाती है। तभी उसके पति महेन्द्रनाथ का प्रवेश होता है। पत्नी के दतर से आज जल्दी लौट

आने पर वह आश्चर्य प्रकट करता है। उसके पूछने पर पत्नी सावित्री केवल कतरा कर रह जाती है। फिर दोनों मे खीझ और कुण्ठा से भरी घरेलू बातें होती रहती है। जैसे– चाय किसने पी थी, किन्नी कहाँ गई आदि। इसके बाद जब सावित्री यह बताती है कि आज उसका बॉस सिंघानिया इधर से गुजरते समय घर में आयेगा, तो उसे किसने.क्यों बुलाया जैसी बातों को लेकर पति.पत्नी अर्थात् महेन्द्रनाथ और सावित्री में एक प्रकार की बहस आरंभी हो जाती है। महेन्द्रनाथ सिघानिया का वहाँ आना पसंद तो नहीं करता, पर अपनी बेकारी तथा कमाउ पत्नी के रूआब के कारण इस बात का खुलकर विरोध भी नहीं कर पाता। अतः सिधानिया से सामना होने से बचने के लिए वह बहाना बना देता है। कि उसे भी अभी.अभी जुनेजा के यहाँ जाना है। क्योंकि अपने पति के मित्र जुनेजा को पत्नी सावित्री पसंद नहीं करती, अतः वह इससे चिढ़ कर रह जाती है। उस की चिढ़ का कारण यह है कि जुनेजा के कारण ही उसके पति को व्यापार में हानि उठानी पड़ी, जिस कारण आज उन्हें इस प्रकार की दयनीय स्थितियों में काम करना और जीना पड़ रहा है। अतः जुनेजा को लेकर तथा पति के कई दिनों तक घर से बाहर रहने की बात को लेकर दोनों में तीखी झड़प हो जाती है। उस झड़प के दौरान पत्नी सावित्री पति पर लांच्छन लगाती है कि उसका प्रभाव जवान बेटे अशोक पर भी पड़ रहा है। वह भी आवारा बना फिरता है और कई.कई दिन घर नहीं आता।

पति महेन्द्रनाथ भी कम नहीं था। प्रत्युत्तर में वह पत्नी सावित्री पर दोषारोपण करते हुए कहता है कि उसकी बड़ी लड़की ने, जो उसी के प्रेमी के साथ घर से भाग गई, अपनी माँ का ही तो अनुकरण किया है। अब छोटी लड़की भी तो उसी पद.चिन्हों पर चलने का प्रयत्न कर रही है। अतः घर परिवार के बिखराव में उसका दोष नहीं जितना पत्नी अर्थात् सावित्री का है। इस प्रकार यहाँ तक नाटककार ने यही स्पष्ट किया है कि मां.बाप के पारस्परिक टकरावों का प्रभाव उनकी सन्तानों पर भी निरन्तर पड़ रहा है। इस टकराव के मुख्य कारण आर्थिक और काम. सम्बन्धी ही है। इन्हीं से पीड़ित होकर पति.पत्नी एक दूसर को अधूरा समझते है और पूरेपन की तलाश में भटक जाते है। उनके भटकाव सन्तानों को भी निष्क्रिय बनाकर, आधा.अधूरा बनाकर रख देते है। वे दिशाहीन होकर भटक जाते है।

कथानक आगे बढ़ता है। सिंघानिया को अपने घर बुलाने के कारण एवम् प्रयोजन को सटीक बनाने के लिए पत्नी सावित्री महेन्द्रनाथ से कहती है कि वह बड़े लोगों को घर पर विशेष प्रयोजन से बुलाती है। वह चाहती है कि इन लोगों के संपर्क में आकर उनकी मिन्नत.खुशामद से युवक बेटा अशोक कहीं काम.धाम पाकर कमाउ बन सके, जिससे घर की दशा सुधरे। इस पर पति महन्द्रनाथ व्यंग्य करते हुए कहता है, पहले आने वालों ने तो काम दे ही दिया है, अब यह सिंघानिया भी जरूर अशोक को काम देवेगा– हाँ। इस पर जब सावित्री उसकी शंकालू एवम् व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति पर झिड़क देती है तो पुरुष पहले आये जगमोहन, मनोज आदि के नाम तक गिना देता है। इस प्रकार पति. पत्नी आपस में उलझ ही रहे थे कि रोने से सूजी आंखे तथा खाली हाथ लिए उनकी विवाहिता बड़ी लड़की वहाँ प्रवेश करती है। उसे इस रूप में आते निहार महेन्द्रनाथ पुनः व्यंग्य से भरकर कह उठता है। लगता है, यह फिर अपने पति मनोज के घर से भाग आई है। वह पत्नी को प्रेरित करता है कि लड़की बिन्नी से फिर उस प्रकार भाग आने का कारण तो ज्ञात करें। पूछने पर लडकी बिन्नी उत्तर देती है कि जहाँ तक उसके पति मनोज का प्रश्न है, उसमें किसी भी प्रकार की कमी नहीं है। कमी एवम् अधूरापन उसके अपने व्यक्तित्व एवम् व्यवहार में प्रतीत होता है जिसे कि वह यहीं से अर्थात् अपने घर से ही साथ लेकर गई है, तभी तो वह स्वयं और उसका जीवन स्वाभाविक नहीं रह पाता। इस कारण का ज्ञान मुझे यहाँ से या अपने भीतर से ही हो सकता है, वहाँ से नही। इसी कारण में यही चली आई।

इस प्रकार अधूरेपन को सभी स्तरों पर लेकर द्रुतगति से कथावस्तु आगे सरकती जाती है। महेन्द्रनाथ और सावित्री पारस्परिक आरोपों.प्रत्यारोपों में लड़की बिन्नी के सामने ही पुनः झड़पे लेने लगते है। बीच में महेन्द्रनाथ जगमोहन का किस्सा छेड़कर पुनः दिल्ली में उसके स्थानान्तरण की बात भी बताता है। इससे वातावरण और भी अधिक विषाक्त हो उठता है। तभी छोटी लड़की किन्नी अचानक प्रवे करती है। माता.पिता के साथ अपनी बड़ी बहन को भी उस आक्रोशमयी, खीझ.भरी स्थिति में निहार, कुछ ठिठक कर वह स्वयं ही बताती है कि स्कूल से लौटने पर

जब घर में कोई भी दिखाई न दिया, तो वह बस्ता पटककर यों ही बाहर चली गई। माता के यह पूछने पर कि वह कहाँ चली गई थी। किन्नी ढिठाई से उत्तर देती है कि कही भी चली गई थी, उससे क्या। जब घर में कोई था ही नहीं, तो वह यहाँ बैठती भी तो किसके पास? उसका आक्रोश और वक्तव्य यह व्यक्त करता है कि किस प्रकार मां.बाप का तनाव बच्चों को भी अड़ियल वाचाल और लापरवाह बना देता है। जब किन्नी अपने लिए दूध गर्म होने की बात पूछती है। तो सावित्री की त्योरियां स्वतः ही तन जाती है ओर बेचारा महेन्द्रनाथ उठकर दूधगर्म करने चला जाता है। इसी अन्तराल में किन्नी जब अपनी मां के सामने अपने लिए कुछ वस्तुओं की फरमाइश करती है तो उसे कुण्ठित मां की झिड़कियां खाकर कहने के लिए एक प्रकार से विवश होना पड़ता है कि फिर बड़े भाई अशोक के समान उसकी पढ़ाई भी क्यों छुड़ावा नहीं दी जाती है ? वह चली जाती है और पिता या पति महेन्द्रनाथ वापिस आकर बड़ी लड़की बिन्नी को बताता है कि आज तुम्हारी मां का बॉस सिंघानिया घर में आ रहा है। कथन में क्योंकि कटु व्यंग्य अन्तर्हित रहता है, अतः सावित्री जैसे– रूआंसी.सी हो उठती है। उसी समय चीखती.चिल्लाती और बड़े भाई अशोक से लड़कर, उससे पीछा की जाती हुई किन्नी फिर वहाँ आ उपस्थित होती है। अशोक भी पीछे.पीछे आ जाता है। वह सबको चकित कर देने वाले ढंग से बताता है कि केवल बाहर.तेरह वर्ष की आयु में ही किन्नी ने गन्दी और कामुकतापूर्ण पुस्तके पढ़नी आरम्भ कर दी है। इस पर किन्नी कहती है कि पुस्तक वास्तव में भैया अशोक की ही थी, जिसे वह स्वयं छिपकर पड़ा करता है। मैं उसी को देख रही थी। इस पर जब पिता महेन्द्रनाथ वह पुस्तक देखना चाहते है, तो अशोक नहीं दिखाता। पिता इसे अपना अपमान समझकर तीखे क्रोध से तिलमिला कर कह उठता है–

''अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार में हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार भी में हूँ। इन सबकी जिन्दगियां चौपट करने का जिम्मेदार में हूँ। फिर भी में इस घर में चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घर.घुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लग गया है।''

उत्तेजित महेन्द्रनाथ यह सब कहते.कहते कदम पटकता घर से बाहर निकल जाता है। वातावरण में जड़ता का आभास होने लगता है। प्रत्येक मंगल.शनीश्चर को यही सब होने की बात कह कर सावित्री भी किन्नी की जिज्ञासा शान्त करने का प्रयत्न करती है। पर सिंघानिया के पुनः वहाँ आने का समाचार सुनकर अशोक का मन वितृष्णा, विक्षोभ एवम् ग्लानि से भर उठता है। वह उसे एकदम असभ्य.सा मानता है। अशोक उसके असभ्य एवम् अश्लील विचारों, पैण्ट के बटन तक खुले होने की नकल भी करता है। सिंघानिया का उपहास सावित्री को और भी खिझा देता है। उसे दुःख है तो इस बात का कि परिवार के जिन लोगों के लिए उसने अपने आपको एक मशीन मात्र बना दिया है? वही बात.बात पर उसका अपमान करते हैं। इस प्रकार यहाँ तक पारिवारिक जीवन की टकराहट, बिखराव और मान.अपमान, हीनता का एक स्पष्ट चित्र सामने उभर आता है।

द्रुत गति से आगे बढ़ रहे कथानक में इसके बाद एक नया पर प्रत्याशित मोड़ आता है। द्वार पर थपथपाहट सुनकर सभी एकाएक चौंक उठते हैं और सावित्री उठकर अपने बाँस सिंघानिया का मुस्कराने का प्रत्यन कर स्वागत करती है। सावित्री की बड़ी लड़की बिन्नी से परिचय कराया जाने पर बह बार.बार जाँघें खुजलाते हुए कामुक दृष्टि से उसे देखकर जो.सो बकता जाता है। अपने लिए स्थिति को असह्य जानकर अशोक वहाँ से खिसक जाना चाहता है, जबकि सावित्री उसे रोककर सिंघानिया से अनुरोध करती है कि वह उसके बी.एस.–सी. फेल लड़के को कहीं कोई काम धन्धा लगवा दे। वह पहले भी कई बार पूछी जा चुकी बातों को दोबारा दोहराकर बिन्नी की ओर कामुक दृष्टि से झाँकते हुए उसका ध्यान रखने का आश्वासन देता है। इधर.उधर की बहकी बातें करने बिन्नी को को झाँकने और किसी अन्य नारी का बार.बार नाम लेने के बाद सिंघानिया आखिर उठ जाता है। उसके जाते ही अपने बनाये स्कैच को निहारते हुए अशोक खिलखिला उठता है। बिन्नी के पूछने पर वह अपना बनाया कार्टूननुमा सिंघानिया का स्कैच उसे दिखाते हुए कहता है कि वह तो उसके सींग भी बनाना चाहता था, पर सहसा उसे ध्यान आ गया कि गधे के सिर पर सींग नहीं हुआ करते। तभी सिंघानिया को बाहर तक छोड़ने गई सावित्री लौटकर बताती है कि उसकी कार स्टार्ट नहीं हो पर रही, उसे धक्का लगाना पड़ेगा। इस पर अशोक व्यंग्यात्मक भाव से हँस कर कह उठता है –

" अभी से? अभी तो नौकरी की बात तक नहीं की उसने। अगर उसने सचमुच नौकरी दिला दी, तब तो पता नहीं क्या होगा।" इतना कहकर वह बाहर निकल जाता है। उसके बाहर निकलते ही सावित्री बिन्नी के हाथ में पकड़े स्कैच को देखकर सहसा कह उठती है, यह तो तुम्हारे डैडी जैसा मुखौटा ही प्रतीत होता है। इस पर जैसे चौंक कर बिन्नी कहती है, पर अशोक तो इसे अभी जाने वाले व्यक्ति का स्कैच बता रहा था। इस अपमानजनक बात को सुनकर सावित्री भी जैसे क्रोध से उबल पड़ती है। तभी अशोक भी वहाँ वापिस आ जाता है। उसे देखते ही सावित्री जैसे बरसते हुए की उठती है– "मैं तो मिन्नत.खुशामद करके लोगों को घर पर बुलाती हूँ और तू कार्टून बना कर उनका मजाक उड़ाता है। मैं यह सहन नहीं कर सकती।" इस पर अशोक भी रूखाई और ढिठाई से कहता है– "तब ऐसे लोंगों को घर पर बुलाया ही क्यों करती हो जिनके आने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो और सब करना कराना पड़े। हमें और अधिक हीनता की भावनाओं से आक्रान्त होना पड़े।" इतना ही नहीं, अपनी माँ को लांच्छित करते हुए अशोक यह भी कह देता है कि आज तक उसने लोगों के पद और वेतन को देखकर ही घर पर आमंत्रित किया है। बेटे की बातें सावित्री की और भी भड़का देती है। अतः वह स्पष्ट निर्णय सुना देती है कि आगे से वह केवल अपने लिए जीएगी। घर के सभी लोग अपने बारे में जैसा चाहे सोच लें, निर्णय करलें। इतना ही नहीं, वह अपने इस घर का त्याग कर देने की बात भी कहती है। इस मोड़ पर पहुंचकर नाटक का पहला अंक रंग और प्रकाश. छाया के अन्तराल में समा जाता है। इसे हम नाटक का मध्यान्तर भी कह सकते है और यह हिन्दी.नाटक में निश्चिय ही यह एक नया प्रयोग है।

मध्यान्तर या अन्तराल के अनन्तर दूसरा अंक आरम्भ होता है। रंग और प्रकाश की छाया में सोफे पर लेटा हुआ अशोक एक पत्रिका पढ़ रहा होता है, जबकि उसकी बड़ी बहन बिन्नी मेज पर बैठकर स्लाइसिज पर मक्खन लगा रही होती है। बिन्नी के अशोक को एक डिब्बा खोल देने की बात कहने पर, वह असमर्थता प्रकट करते हुए उसे बताता है कि दुकान पर से सौदा उधार लाने के समय उसने मि. जुनेजा के यहाँ वहाँ से उधार में ही पिता की जानकारी प्राप्त करने के लिए फोन किया था। फोन पर पिता से तो भेंट हो नहीं सकी, हाँ, जुनेजा से अवश्य भेंट हुई। उसने बताया कि तुम्हारे पिता तो अब लौट कर नहीं आएंगे। उसने यह अवश्य कहा कि आज सायंकाल वह माँ से बात करने यहाँ आएगा। उसने यह अवश्य कहा कि आज सायंकाल वह मां से बात करने यहाँ आएगा। इस पर बिन्नी मां का मूड़ खराब होने की बात कहती है तो अशोक फिर व्यंग्यात्मक हो उठता है। वह कहता है कि बढिया साड़ी तो इस प्रकार बांधकर गई थी जैसे किसी के विवाह पर जा रही हों। इस पर बिन्नी बताती है कि मां कह तो गई है कि साढ़े पांच तक लौट आएगी, पर लगता यों था कि जैसे बे कोई गंभीर निर्णय कर चुकी हों। अशोक भी यह इच्छा व्यक्त करता है कि अब कोई न कोई निर्णय हो ही जाना चाहिए। अशोक यह भी व्यक्त करता है कि जाने क्यों, इस घर के वातावरण में वह अपने.आपको स्वाभाविक नहीं रख पाता? बिन्नी के इसका कारण और अस्वाभाविकता के बारे में पूछने पर वह बताता है कि उसी से तो उसे भी पता चल सका है कि कहीं कुछ ऐसी गड़बड़ है जो अस्वाभाविक बना देती है और लोग कहीं भी अपने.आप को एडजस्ट नहीं कर पाते। पर अब उचित यही है कि जानकर भी अनजान बनकर रहा जाए। यह सुनकर बिन्नी के मक्खन लगाते हाथ सहसा काँप जाते है। उसकी अस्वाभाविक स्थिति को भांप अशोक उठकर बाहर निकल जाता है। इस प्रकार कथानक में यहाँ तक नाटककार सारे परिवार की भीतर ही भीतर टूटने की परिस्थितियों को व्यक्त कर देता है। वह यह आभास भी दे देता है कि यहाँ सभी अपने अधूरेपन से नहीं, बल्कि दूसरों के अधूरेपन की चिन्ता से ग्रस्त है। सभी कुंठित एवम् हीनता ग्रंथि के शिकार हो चुके है।

यहाँ तक मुख्यतः आर्थिक वैषम्यों के कारण आये पारिवारिक विघअन का ही स्पष्टतः चित्रण हुआ है। इसके बाद नाटककार नाटक के सहायक पात्रों किन्नी और अशोक के माध्यम से मध्य.वर्गीय परिवारों में फैल रही कामुकता और सैक्सी भावनाओं के ढोल की पोल खुलवाता है।

वस्तु.योजना अपने विकासक्रम में आगे बढ़ती है। अपनी छोटी बहन किन्नी को बलात् भीतर की ओर धकेलते हुए अशोक पुनः मंच पर आता है। किन्नी उससे छुटकारा पाकर भाग जाना चाहती है। अशोक उसे बांह में पकड़ कर निरन्तर भीतर घसीटने लगता है। आश्चर्य चकित बिन्नी इस पकड़ा.धकड़ी का कारण पूछती है और किन्नी उससे सहायता की याचना करती है। पास आकर जब बिन्नी किन्नी की बांह अशोक के हाथ से छुड़ा देती है तो अशोक

बिन्नी को बताता है कि किन्नी अपनी सहेली सुरेखा से स्त्री.पुरुष के, वह भी पति.पत्नि नहीं बल्कि पराये स्त्री.पुरुषों के, यौनाचारों की स्थितियों के सम्बन्ध में बतिया रही थी, जिन्हे पीछे खड़े होकर अशोक ने सुन लिया था। पर वास्तव में अपने घरेलू वातावरण के प्रभाव से किन्नी ही सुरेखा से यह सब बतिया रही थी। वह फिर भाग जाने का यत्न करती है, पर अशोक उसे पकड़े रहता है। इस पर जब अशोक से चुप रहने की बात कहकर बिन्नी किन्नी से सारी बात जानना चाहती है, तो वह उल्टे अशोक के ही यौनाचारों एवम् प्रेम.सम्बन्धों की पोल खोलने लगती है। वह बताती है कि अशोक भैया ने किन्नी को जन्मदिन पर मिलने वाली चूड़ियां और पेन आदि चीजें उद्योग सेंटर में काम करने वाली लड़की वर्णा को दे दी हैं। हमेशा उसी के पीछे डोलता रहता है। इस प्रकार पूरा परिवार यौनाचारों के चक्कर में पड़कर एक प्रकार से भ्रष्ट हो चुका है, यह स्पष्ट हो जाता है।

किन्नी की बातों से चिढ़ कर जब अशोक उसे मारने के लिए बढ़ता है तो वह बाहर भाग जाती है। अशोक भी उसके पीछे भागना चाहता है परन्तु तभी माता सावित्री को आया देख वहीं ठिठक कर खड़ा रह जाता है। मां को देख बिन्नी चाय बनाने की बात कहती है, पर सावित्री यह कहकर मना कर देती है कि वह चाय के लिए ही किसी के साथ जा रही है। इस पर बिन्नी उसे जुनेजा के आने की बात कहती है, तो सावित्री कह देती है कि उसे उसके घर पर न होने की बात कह दी जाए। यह भी बता दिया जाए कि जगमोहन आया था, उसी के साथ वह गई है। फिर जब अशोक वहाँ से खिसक जाता है, तो सावित्री बिन्नी को यह बता देती है कि वह शायद ही घर लौटे। अब वह जगमोहन के साथ रहेगी। जाने क्या सोच कर बिन्नी वहाँ से भीतर चली जाती है।

बिन्नी के जाते ही सावित्री अपने झुर्रियों भरे चेहरे के सांज.श्रृंगार के प्रयत्न के साथ.साथ उन्माद की सी स्थिति में कुछ बड़बड़ाते हुए अपना कुछ सामान भी इधर.उधर करने करने, कुछ समेटने जैसा अभिनय करने लगती है। तभी जगमोहन का प्रवेश होता हैं। उसको अत्यधिक आवश्यकता की बातें कह बाहर चलकर सारी बातें बताने के अभिप्राय से सावित्री उसके साथ घर से निकल जाती है। इस प्रकार बड़ा ही कौतुहलपूर्ण वातावरण में 'आधे.अधूरे' नाटक की कथावस्तु, कुछ अनिश्चितता लिए हुए अग्रसर होती है। उनके जाते ही मि. जुनेजा वहाँ प्रवेश करते है और बताते है कि अशोक अपने पिता से मिलने उनके घर पर गया है। पर यहाँ तो मामला ही कुछ विचित्र सा बना पड़ा है, अतः जुनेजा असंमजस में पड़ जाता है। उस पर जब उसे सावित्री के जगमोहन के साथ जाने का पता चलता है, तब तो उसका असंमजस एवम् स्थिति बहुत विचित्र होकर रह जाती है।

जुनेजा से ही यह रहस्य खुलता है कि महेन्द्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री से अत्यधिक प्रेम करता है। पर अपनी उंटपटांग हरकतों एवम् व्यवहारों से सावित्री ने उसके साथ.साथ घर के जीवन तथा वातावरण को भी नरक तुल्य बना दिया है। जुनेजा यह भी बताता है कि महेन्द्रनाथ स्वयं यहाँ आकर सावित्री को समझाने का प्रयत्न करता। पर रक्तचाप से पीड़ित होने के कारण वह स्वयं नहीं आ सका। उसी ने उसे (जुनेजा को) सावित्री को सारी स्थिति समझाने के लिए भेजा है। तभी वहाँ सावित्री भी लौट आती है। पति के अस्वस्थता का समाचार पाकर भी सावित्री अप्रभावित रहती है। उल्टे अपने पति की ही उसके सामने आलोचना करने लगती है। वह कठोर होकर (अत्यधिक व्यंग्यात्मकता से भरकर, महेन्द्रनाथ को फटकारते हुए कहती है–

''आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो? जब से मैने उसे जाना हैं मैने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढते पाया है। खास तौर से आपका। यह करना चाहिए या नहीं जुनेजा से पूछ लूं। वहाँ जाना चाहिए या नहीं जुनेजा से राय कर लूँ। कोई छोटी से छोटी चीज खरीदनी है, तो भी जुनेजा की पसंद से। कोई बड़े बड़ा खतरा उठाना है तो भी जुनेजा की सलाह से, यहाँ तक कि मुझ से ब्याह करने का फैसला भी कैसे किया उसने? जुनेजा के हामी भरने से। जो जुनेजा सोचता है, जो जुनेजा चाहता है, जो जुनेजा करता है, वही उसे भी चाहना है, वही उसे भी करना है। क्योंकि जुनेजा तो एक पूरा आदमी है अपने में, और वह (महेन्द्रनाथ) खुद? वह खुद एक पूरे आदमी का आधा.चौथाई भी नहीं है।''

इसी प्रकार सावित्री का विक्षुब्ध मन जैसे जुनेजा के सामने फट पड़ता है। जुनेजा के किसी भी तर्क का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपने आक्रोश में वह पति महेन्द्रनाथ के साथ.साथ बेचारे जुनेजा को भी रगड़ती जाती

है। भावावेश और मनःआवेग में व चिल्लाकर यहाँ तक कह जाती है कि उसे अधूरे नहीं, बल्कि एक पूरे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की आवश्यकता है। वह महेन्द्रनाथ जैसे अधूरे व्यक्ति से सख्त घृणा करती है। इस पर कुछ आवेश में आकर जुनेजा सावित्री को अतीत का स्मरण दिलाता है। अपनी वर्तमान स्थिति के लिए उसी को उत्तरदायी बताता है। जुनेजा उसे एक प्रकार के धिक्कारते हुए स्पष्ट कहता है–

''आज से बीस साल पहले भी एक बार लगभग ऐसी बातें में तुम्हारे मुँह से सुन चुका हूँ। तुम्हें याद है? मेरे घर पर हुई थी वह बात। तुम बात करने के लिए ही खासतौर से आयी थी। और मेरे कन्धे पर सिर रखे देर तक रोती रही थी। उस दिन भी बिल्कुल इसी तरह तुमने महेन्द्र को मेरे सामने उधेड़ा था। कहा था कि– ''वह बहुत लिजलिजा और चिपचिपा सा आदमी है।'' आगे वह फिर अतीत को दुहराता हुआ कहता है– ''पर उसे वैसा बनाने वालों में नाम तब दूसरों के थे। एक नाम था उसकी मां का और दूसरा इसके पिता का। पर जुनेजा का नाम तब नहीं था ऐसे लोगों में।'' जुनेजा इसका भी रहस्योद्घाटन करते हुए आगे कहता है– ''क्यों नहीं था, कह दूं न यह भी? बहुत पुरानी बात है, कह देने में कोई हर्ज नही। मेरा नाम इसलिए नहीं था कि एक आदमी के तौर पर मैं महेन्द्र से कुछ बेहतर था। तुम्हारी नजर में, मुझसे उस वक्त तुम क्या चाहती, मैं ठीक.ठीक नहीं जानता। लेकिन तुम्हारी बात से इतना जरूर जाहिर था कि महेन्द्र को तुम वह आदमी नहीं मानती थीं।'' सावित्री के जीवन में आने वाले कई पुरूषों के नाम गिनाने के बाद उसकी वास्तविक मनः स्थिति को व्यक्त करते हुए जुनेजा कहता है– ''असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली। उसकी जिन्दगी में भी तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कि कितना कुछ एक साथ पाकर, और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के भी साथ जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती।'' इस प्रकार वस्तु योजना विकसित होते हुए, चरम परिणति की ओर अविरत अग्रसर होती जाती है। पर सावित्री इन सब बातों को अपनी उखड़ी हँसी में उड़ा दने का प्रयत्न करती है। पर जुनेजा के चाबुक की तरह पड़ते शब्द अन्त में उसकी हँसी को उड़ा देने में समर्थ हो ही जाते हैं। यहीं से कथानक में अत्यधिक नाटकीयता का समावेश भी हो जाता है। जुनेजा की खरी.खरी सुनकर सावित्री जैसे चीख कर कह उठती है–

''सब के सब एक से। बिल्कुल एक से है आप लोग। अलग.अलग मुखौटे पर चेहरा.चेहरा सब का एक ही।''

बौखलाई हुई सावित्री के मन पर एक करारी चोट करने के लिए तब फिर जुनेजा कहता है कि ऐसी स्थिति में वह महेन्द्रनाथ को मुक्त ही क्यों नहीं कर देती? इस पर सावित्री भी स्पष्ट कह देती है कि जो मोहरा (महेन्द्रनाथ) न खुद चल सकता है और न उसे ही चलने देता है, उसकी उसे कतई कोई आवश्यकता नहीं है। इस पर कुछ स्तब्ध ा एवम् हताश.सा होकर एक प्रकार से निर्णयात्मक स्वर में जुनेजा सावित्री से कहता है–

''तो ठीक है। वह नहीं आयेगा। वह कमजोर है, मगर इतना कमजोर नहीं है। तुम से जुड़ा हुआ है, मगर इतना जुड़ा हुआ नहीं। इतना बेसहारा भी नहीं है जितना वह अपने को समझता है। वह ठीक से देख सके, तो एक पूरी दुनिया है उसके आस.पास। मैं कोशिश करूंगा कि वह आँख खोलकर देख सके उसे।'' इतना कहकर जैसे जुनेजा जाने के तत्पर होता है कि तभी कुछ हाँफता हुआ.सा अशोक प्रवेश करके एक चरम कौतूहल का भाव भर देता है। वह बताता है कि महेन्द्रनाथ उसके न चाहने पर भी वापिस आ गये है। तबीयत खराब होने के कारण उन्हें स्कूटर से उतारने में सहारे की जरूरत पड़ेगी। सावित्री, बिन्नी, जुनेजा सभी आश्चर्य से 'उतारने में सहारे की जरूरत पड़ेगी' यह समाचार सुनते हैं। जुनेजा के मुख से केवल इतना ही निकलता है कि– 'तो आ ही गया वह आखिर?' और जुनेजा अपने व्यथित नयन झुका लेता है। सावित्री भी कुर्सी की पीठ का सहारा ले लेती है। इतने में बाहर से किसी के फिसल जाने पर किवाड़ों का सहारा लेने जैसा खड़का सुनकर अशोक बाहर की ओर भाग जाता है। फिर अशोक सहारा देकर महेन्द्रनाथ को भीतर लाता हुआ दिखाई देता है। सावित्री स्थिर.नयना बाहर की ओर निहारने लगती है। फिर वह उसी कुर्सी पर बैठ जाती है। जैसे वह भी अपने अधूरेपन से पराजित होकर रह गई हो और अन्त में रंग और प्रकाश की सीमारेखा अन्धकार की छाया में अशोक का सहारा लिए हुए थका.सा महेन्द्रनाथ भीतर आ गया– ऐसा प्रतीत होता है। बस, इसी अप्रत्याशित किन्तु सम्भावित मोड़ पर पहुंच कर नाटक की वस्तु का अन्त हो जाता

है। इस प्रकार पूरी वस्तु की योजना एवम् विकास दो अंको या एकं अन्तराल अथवा मध्यान्तर की सीमा.रेखा में की गई है।

वस्तु.विवेचन– वस्तु योजना और उसके उपरिवर्णित विकास क्रम के यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि इसमें मध्य वर्ग से विघटित होकर निम्न वर्ग की ओर अग्रसर हो रहे नगरीय परिवार के आत्म.कुण्ठाओं, हीनताओं आदि से भरे खटटे एवम् कडुवे जीवन का चित्रण किया गया है। इस वर्ग की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यहाँ अपनी गलती कोई भी स्वीकार नहीं करना चाहता। स्वयं के अधूरेपन को न तो काई स्वीकारना ही चाहता है, और न उसे दूर कर अन्यों के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहता है। वह स्वयं अधूरा है, पर उसे दूसरे का अधूरापन सहा नहीं है। परिणाम स्वरूप परिवार अभिशप्त होकर, पारस्परिक अविश्वासों से भरकर अनवरत बिखरते जा रहे है। इस प्रकार का ही एक परिवार वस्तु.योजना का वर्ण्य.विषय एवम् केन्द्र है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– 'आधे.अधूरे' की वस्तु.योजना का वर्ण्य.विषय एवम् केन्द्र क्या है? (लघुउत्तरीय

उत्तर – ....

....

....

'आधे.अधूरे' .का नाट्य–शिल्प

1.6 नाटक के तत्व एवम् शिल्प में अन्तर

तत्व एवम् शिल्प में अन्तर– सामान्यतया जब किसी नाट्य.कृति के शिल्प या कला का प्रश्न आता है, तो तत्वों के साथ उसका अन्तर न करके, शिल्प के सन्दर्भ में भी तात्विक विवेचन ही कर दिया जाता है, जो उचित नहीं। हमारे विचार में भी तत्वों का सम्बन्ध खण्ड.रूप में नाट्य.विवेचन के साथ रहा करता हैं और उसका सम्बन्ध अधि ाकांशतः आन्तरिक.योजनाओं के साथ ही रहा करता है। इसके विपरित जिसे नाट्य.शिल्प.कला कहा जाता है, वह इस बात में हैं कि उन तत्वों का अन्तःसंयोजन किस सूक्ष्मता एवम् कुशलता के साथ किया गया है। शिल्प में आन्तरिकता भी निश्चय ही रहा करती हैं, पर उसका सीधा सम्बन्ध रंग.योजनाओं, वस्तु.स्थितियों की अभिव्यक्तियों, साज.सज्जा और उसके द्वारा विश्वस्त वातावरण की सृष्टि और मंचीय प्रक्रियाओं के साथ ही रहा करता हैं। उसमें रंग और प्रकाश की व्यवस्था भी आ जाती हैं। वे संकेत एवम् क्रियाएँ भी आ जाती हैं जो अन्तः.बाह्य पात्रीय एवम् नाटकीय स्वरूपों को और स्थितियों को उजागर करती हैं।

तत्व का सीधा सरल अर्थ होता हैं– कथावस्तु, पात्र एवम् चरित्र.चित्रण, सम्वाद.योजना आदि, जबकि कला या शिल्प का अर्थ होता हैं इन सब का सम्यक्, सूक्ष्म एवम् अन्तः.संयोजन। यह संयोजन ही नाटक के सभी प्रकार के, सभी रूपों के एक समग्र बिम्ब को उभार पाने में समर्थ हुआ करता है। नाट्य.शिल्प वास्तव में वह स्पन्दन है जो कि सुनियोजित तत्वों के अन्तराल में भी अनवरत सुनाई पड़ता हैं। उस धड़कन को व्यक्त, मूर्त या मुखरित करना निश्चय ही तत्व नहीं हैं, बल्कि हैं–नाट्य.कला अथवा नाट्य.शिल्प।

नाट्य तत्व और नाट्य.शिल्प या नाट्य.कला में यह सूक्ष्म भेद जान लेने के बाद अब हम विस्तार से, अन्तःबाह्य दृष्टियों से 'आधे.अधूरे' नाट्क के सन्दर्भ में नाटककार मोहन राकेश के नाट्य.शिल्प अथवा नाट्य.कला पर विचार करेंगे।

प्रश्न 1– नाट्य तत्व के अन्तर्गत क्या आता है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 1– नाट्य तत्व का सीधा सम्बन्ध किससे होता है?

उत्तर ....

....

....

....

1.7 रंग योजना

तात्विक विवेचन.विश्लेषण तो उन नाटकों का भी किया जाता हैं, जो मात्र साहित्यिक.सुपाठ्य नाटक होते हैं और जिनमें अभिनेयता एवम् स्पष्ट रंग.योजना का अभाव रहता हैं। अतः स्पष्ट है कि नाट्य.शिल्प या कला का सम्बन्ध ा मुख्यतः उसकी रंग.योजना एवम् अभिनेयता से हैं, उसमें विद्यमान सहज.स्वाभाविक नाटकीय आयाम से है। अतः पहले रंग.दृष्टि से नाटकीयता एवम् नाटकीय .योजनाओं की चर्चा करना ही उपयुक्त होगा। रंग.योजना एवम् अभिनेयता दोनों दृष्टियों से नाटककार ने जो कथ्य, एवम् कथानक प्रस्तुत किया हैं, मात्र एक मध्यान्तर या अन्तराल देकर, एक ही दृश्य अथवा सैट पर उसका समूचा अभियोजन निश्चय ही 'आधे.अधूरे' नाटक में नाटककार का एक सर्वथा नया शिल्पगत प्रयोग हैं। इस प्रयोग.शिल्प के कारण कथ्य एवम् कथानक अधिक स्वाभविक, विश्वसनीय एवम् अन्तः तारतम्य से संयत हो गये है। इससे जो रंगीन.प्रभविष्णुता उत्पन्न होती हैं, वह निश्चय ही अन्यत्र कहीं नही मिलती। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में तो वर्षो के समय का अन्तराल विद्यमान हैं, अतः वहाँ संकलनत्रय की दृष्टि से समय.योजना का अभाव हैं। क्योंकि समय के इस अन्तराल में पात्रों की आयु, स्थिति, परिवेश आदि सभी में एक बहुत बड़ा अन्तर आ जाता हैं, जिसे सहज ही मंच पर प्रदर्शित कर पाने में कठिनाई होना स्वाभाविक हैं, इसके बाद 'लहरों के राजहंस' नाटक में नाटककार ने उस अन्तराल को काफी कुछ समेट लिया हैं, जबकि 'आध ो.अधूरे' नाटक में आ कर उस प्रकार का अन्तराल कतई नहीं रह गया। कुछ ही घण्टों के सीमित अन्तराल में– यानि कि दो.ढ़ाई घण्टों के जितने समय में नाटक का अभिनय सम्भव हो सकता हैं–सब कुछ सिमट कर एक विशिष्ट प्रभाव की सृष्टि करने वाला हैं। विशेषता यह कि इतने कम समय में नाटककार एक पूरे युग के विसंगति.विघटित बोध को, समूचे परिवेश को और उससे सम्बन्धित सब.कुछ को पूर्णतया, पूरे सम्प्रेषण के साथ कह जाता हैं। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी अपने 'सिन्दूर की होली' जैसे नाटकों में समय के अन्तराल को अभिनय .समय तक ही सीमित करने की सफल चेष्टा की हैं, पर उसमें वह गहराई, वह अपनत्व और विश्वसनीयता नहीं हैं जो 'आधे.अध ूरे' में विद्यमान हैं। प्रसाद जी के नाटकों में तो इस प्रकार के रंग.शिल्प का सर्वथा अभाव हैं। इस शिल्पगत वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में महेश आनन्द के विचार विशेष दर्शनीय हैं–

"राकेश ने कम.से.कम समय और स्थान में इतने सारे प्रश्नों और पात्रों को प्रस्तुत करने में जिस रंगानुभव का परिचय दिया हैं, वह हिन्दी नाटक के लिए नया हैं। जिस गति से नाटक आगे बढ़ता है–उसी गति के साथ दर्शक भी यात्रा करता हैं। यही विशेषता नाटक के कथ्य को विश्वसनीय बना देती हैं। नाटक में कोई विशेष घटनाएँ घटित नहीं

होतीं, बल्कि पात्रों की मनोस्थितियों और संवेदनाओं का चित्रण हैं।

केवल कथ्य एवम् कथानक की दृष्टि से, या समय को समेटने और पात्रों को समेटने आदि की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि समग्र दृष्टियों से राकेश अपने नाटकों में मात्र रंगमंचीय दृष्टि लेकर ही चले हैं, इसी कारण वहाँ सर्वत्र मौलिक उद्‌भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। उन्हौंने प्रायः इन्ट्यूशन से काम लेकर अनेक प्रकार के प्रयोग किए हैं। अतः उनकी अनुभूतियाँ जहाँ आन्तरिक दृष्टि से गहन.सघन एवम् सतर्क की स्थितियों का द्योतन करती हैं, वहाँ रंग.योजना में भी यह स्थिति बनी रहती हैं।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सत्य/असत्य लिखिए–

1) नाट्य.शिल्प या कला का सम्बन्ध मुख्यतः उसकी रंग.योजना एवम् अभिनेयता से हैं।

उत्तर ____________

2) 'आधे.अधूरे' नाटक में संकलनत्रय की दृष्टि से समय.योजना का अभाव हैं।

उत्तर ____________

3) केवल कथ्य एवम् कथानक की दृष्टि से, या समय को समेटने और पात्रों को समेटने आदि की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि समग्र दृष्टियों से राकेश अपने नाटकों में मात्र रंगमंचीय दृष्टि लेकर ही चले हैं।

उत्तर ____________

4) 'आधे.अधूरे' नाटक में समय का अन्तराल नहीं है।

उत्तर ____________

1.8 दृश्य योजना

'आधे.अधूरे' नाटक में कथ्य एवम् कथानक की विश्वसनीयता का बाह्य.संयोजन करने के लिए जिस प्रकार की दृश्य .योजना की है, वह वास्तव में उनकी मौलिकता और रंग.दृष्टि प्रखरता को तो व्यक्त करती ही हैं, थियेटर के मुहावरे के साथ भी एक तरह से सम्बद्ध दिखाई देती हैं। वे दृश्य.योजनाओं में यह मानकर चले हैं कि आज का जीवन और नाट्य.दृश्य वास्तव में सिनेजगत जैसा विस्तृत आयाम प्राप्त कर चुके हैं। पर नाटकीय रंगमंच के पास न तो सिने.जगत जैसी सुविधाएँ ही हैं और न अन्य सीमाएँ ही। इसी कारण जो कुछ सहज लभ्य एवम् उपयुक्त हो सकता हैं, अपनी दृश्य.योजनाओं में उन्होंने उसका खुलकर.मुक्त भाव से प्रयोग किया है। विशेषता यह हैं कि वह प्रयोग स्वयं में एक जीवन्त प्रतीक भी बन गया है। 'आधे.अधूरे' के सन्दर्भ में देखिए। उसकी दृश्य.योजना और उसकी साज. सज्जा अत्यधिक स्वाभाविक, सादी होते हुए भी सार्थक तो हैं ही सही, एक निम्न.मध्य.वर्गीय जीवन के घर का सजीव प्रतीक भी है। पूरी नाट्य.योजना और उसके दृश्य .विधान का आधार तीन भिन्न दिशाओं में खुलने वाले दरवाजों वाला एक ही कमरा है। उस कमरे में नाटककार के अपने शब्दों में –"उस घर व्यतीत स्तर के कई एक टूटते अवशेष.सोफा सेट, डाइनिंग टेबल आदि.किसी न किसी तरह अपने लिए जगह बनाये है। जो कुछ भी है, वह अपनी अपेक्षाओं के अनुसार न होकर कमरे की सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से है।" ठीक उसी प्रकार, जैसे कि इस घर में रहने वाले अपनी अपेक्षित अपेक्षाओं के अनुसार न रहकर अपनी वर्तमान में घिर आई अनिच्छित–अयाचित सीमाओं के अनुसार एक और ही अनुपात से घर में रह रहे हैं। क्या कमरे की इस योजना को एक आन्तरिक प्रतीक.योजना भी नहीं कहा जा सकता? वहाँ जो कुछ भी है और जिस रूप में भी है, वह वास्तव में वर्ण्य परिवार की बेतरतीबी, घुटन, छटपटाहट, कड़वाहट आक्रोश एवम् संत्रास के आन्तरिक स्वरूप को ही उजागर करने वाला है। जैसे कि नाटककार के शब्दों में "एक चीज का दूसरी चीज से रिश्ता तात्कालिक सुविधा की माँग

के कारण टूट चुका है। उसी प्रकार परिवार के सदस्य भी एक.दूसरे से आन्तरिक रूप से टूट चुके है। परन्तु ''फिर भी लगता है कि वह सुविधा कई तरह की असुविधाओं से समझौता करके की गयी है। बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खोजने की कोशिश की गयी है''– ठीक उसी प्रकार परिवार के सदस्य असुविधाओं में ही सुविधाएँ खोज पाने की कोशिश में है– यानी कि नितान्त अभावों में भाव ढूँढ रहे है।''निश्चय ही इस प्रकार की दृश्य.योजना रंग.शिल्पी मोहन राकेश के शिल्प की एक अत्यन्त सार्थक, सटीक और सचित्र योजना है। इस प्रकार की सटीकता ही उसे अन्य नाटककारों एवम् रंग.शिल्पियों से अलग.अलग महत्व प्रदान कर देती है। इस बारे में, इन अद्भुत और मौलिक योजनाओं के बारे में 'आधे.अधूरे' नाटक को अनेक बार बंद और खुले मंच पर मंचित करने वाले ओम् शिवपुरी के विचार भी देखिये–

'आधे.अधूरे' का कार्य.स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफा, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, फाइलें आदि है। यह कमरा एक समय साफ.सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पर धूल की तह जम गई है। काकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गयी है। परिवार का हर एक सदस्य एक.दूसरे से कटा हुआ है, घर की हवा तक में उस स्थायी तल्खी की गंध है, जो पाँचों व्यक्तियों के मन में भरी है– ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप..... दम घोंटने वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है''

'आधे.अधूरे' नाटक में नाटककार ने जिन रंग.मूल्यों को तलाशा है, उसकी प्रशंसा करते हुए श्री महेश आनंद लिखते है– ''इस नाटक की सफलता का सबसे बड़ा कारण नाटककार की रंग.चेतना है जो सारे नाटक में छायी हुई है। राकेश ने इस नाटक में यथार्थवादी रंगमंच को एक नया और आकर्षण रूप दिया है लेकिन–''किसी भी तरह की चका चौंध'' को अपनाकर रंगमंच के 'अन्तर्हित तर्क' को पराजित करने का प्रयास नहीं किया। 'आधे.अधूरे' की दृश्य सज्जा बहुत ही सादगी भरी किन्तु सार्थकता लिये हुए है। सारे नाटक का कार्य.स्थल केवल एक ही कमरा है जिसमें उस घर के व्यतीत स्तर के कई एक टूटते अवशेष सोफा सेट, डायनिंग टेबल, कबर्ड और ड्रेसिंग टेबल आदि पात्रों की छटपटाहट बिखराव, आकोश और कडुवाहट को गहराई से व्यंजित करते है। इन वस्तुओं की तरह ही परिवार के सदस्यों का एक दूसरे से रिश्ता टूट चुका हैं।''

स्पष्ट है कि दृश्य.योजना में राकेश ने जिस मौलिक, स्वाभाविक और यथार्थ शिल्प का प्रयोग किया है, वह जितना बाहय स्थितियों का द्योतक है, अपने व्यापक प्रतीकात्मक मुहावरे के रूप में उससे भी कहीं अधिक वहाँ रहने वाले लोगों की अन्तः विभाजित.स्थितियों एवम् टूटन.विद्रूपता का भी द्योतक है और यही इस शिल्प की एक अभिनव सर्जक कल्पना एवम् सार्थकता है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सत्य/असत्य लिखिए–

1) 'आधे.अधूरे' की दृश्य.योजना और उसकी साज–सज्जा अत्यधिक स्वाभाविक, सादी होते हुए सार्थक है।

उत्तर ______________

2) सारे नाटक का कार्य.स्थल केवल एक ही कमरा है

उत्तर ______________

प्रश्न 2– 'आधे.अधूरे' की दृश्य .योजना किसकी प्रतीक है?

उत्तर ....

प्रश्न 3– क्या कमरे की योजना को एक आन्तरिक प्रतीक.योजना भी कहा जा सकता?

उत्तर ______________

प्रश्न 4– 'आधे.अधूरे' की दृश्य .योजना किन स्थितियों की द्योतक है?

उत्तर ....

प्रश्न 5– नाट्य.योजना और उसके दृश्य .विधान का आधार क्या है?

उत्तर ....

प्रश्न 6– 'आधे.अधूरे' नाटक को अनेक बार बंद और खुले मंच पर मंचित करने वाले ओम् शिवपुरी के विचार लिखिए।

उत्तर ....

1.9 प्रकाश योजना एवम् संगीत

रंग.शिल्प की दृष्टि से सजीवता और प्राणवत्ता प्रदान करने वाले तत्व होते है– ध्वनि, प्रकाश और पार्श्व.संगीत। 'आधे.अधूरे' नाटक की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है उसके अन्तः.बाह्य.वातावरण के अनुरूप ही इसमें रंग, प्रकाश, ध्वनियाँ और पार्श्व.संगीत आदि की सार्थक योजना की गई है। घर की वस्तुओं के समान ही नाटक के पात्रों या परिवार के सदस्यों से सम्बन्धों की अलहदगी, घुटन, टूटन, बिखराव और विघटन आदि की विद्रूप स्थितियाँ आ गई, उन्हें उभारने के लिए नाटकाकार ने इन्हीं सबका सहारा लेकर अपने अद्भुत रंग.कौशल और रंगअशिल्प का परिचय दिया है। इस प्रकार की सुघड़ शिल्पिक योजनाओं का ब्यौरा श्री महेश आनन्द के शब्दों में पढ़िये– ''एक खण्डहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत.लड़के का काटी तस्वीर को बड़े.बड़े टुकड़ों में कतरना.प्रकाश आकृतियों पर धुंधला कर कमरे के अलग.अलग कोनों में सिमटता विलीन होता हुआ– अंधेरे के साथ.साथ संगीत का रूकना और कैंची की चक्.चक्.चक् सुनाई देना – ये सब घर की जर्जरता और बिखराव के साथ मानवीय सम्बन्धों की निरर्थकता घोषित करते है। अन्त में केवल कैंची की चक्.चक् वातावरण में करूणा का स्वर फैला कर मूल्यों के अन्त की ओर संकेत करती है।' 'स्पष्ट है कि प्रकाश, ध्वनियों और मातमी संगीत की योजना मूल कथ्य.कथीनक और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों के साथ सीधी जुड़ी हुई हैं इस शमशान से सन्नाटे वाले वातावरण में भी विद्रूप.रूप में ही सही, एक प्रकार के जीवन की गन्ध स्वतः ही आने लगती है और वह जीवन है आज का' जिस में अनेक कुछ ओढ़े हम जी रहे हैं।

नाटक के आरम्भ में रंग.प्रकाश और संगीत की ध्वनियों में जो दृश्य उभरता है, उससे जो 'बोध' दर्शक (पाठक) के मन में बनता या उभरता है, उसमें जो प्रतीकात्मकता एवम् बिम्बमयता है, वह सब पात्रों की स्थितियों को उन की विद्रूप.सी चेतनाओं का कथ्य के अनुरूप एक सहज बिम्ब स्वतः ही मूर्त करके साकार हो जाता है। नाटककार के शब्दों में ही देखिये–''परदा उठने पर सब से पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टेबल पर छोड़ा' गया अधटूटा टी. सेट आलोकित होता है और निश्चय ही मात्र इतना आलोक ही रहने वाले परिवार की स्थिति का बिम्ब उभार जाता है। इसके बाद–''फिर फटी किताबों और टूटी कुर्सियों आदि में से एक.एक। कुछ सेकेण्ड बाद प्रकाश सोफे के उस भाग पर केन्द्रित हो जाता है जहाँ बैठा काले सूट वाला आदमी सिगार के कश खिंच रहा है। उसके सामने रहते उसी तक सीमित रहता है, पर बीच.बीच में कभी यह कोना और कभी वह कोना साथ आलोकित हो उठता है।'' इस प्रकार रंग.शिल्प की दृष्टि से 'आधे.अधूरे' नाटक में प्रकाश योजना का अत्यधिक महत्व है। यहाँ एक विशेषता यह भी है कि रंग.प्रकाश की योजना और उसके साथ निम्नलिखित ध्वनियाँ जहाँ पात्रों की बाह्य कियाओं से परिचय कराती हैं, वहाँ अन्तः संज्ञाओं का बोध भी उनके द्वारा सहज ही हो जाता है। जिस प्रकार नाटक के कथ्य.कथानक के उदघाटन और पात्रों के प्रथम प्रवेश के समय सशक्त, आलोक.व्यवस्था कुछ ध्वनियों और संगीत आदि का सहारा लिया गया है, उसी प्रकार अन्त में। अन्त की यह सम्मिलित व्यवस्था तो और भी अधिक प्रभावशाली एवम् सार्थक है। जैसे–

''प्रकाश खण्डित होकर स्त्री और बड़ी लड़की तक सीमित रह जाता है। स्त्री स्थिर आँखों से बाहर की तरफ देखती आहिस्ता से कुर्सी पर बैठ जाती हैं बड़ी लड़की एक बार उसकी तरफ देखती है, फिर बाहर की तरफ। हल्का मातमी

संगीत उभरता है। जिसके साथ उन दोनों पर भी प्रकाश मद्धिम पड़ने लगता है। तभी लगभग अन्धेरे में, लड़के की बाँह थामे पुरूष एक की धुँधली आकृति अन्दर आती दिखायी देती है। उन दोनों के आगे बढ़ाने के साथ संगीत अधिक स्पष्ट और अंधेरा अधिक गहरा होता जाता है।'' ठीक उसी प्रकार, जैसे कि अभी तक अभिनय कर रहे पात्रों की अन्तिम नियति के रूप में गहराते अन्धेरे और मातमी विद्रूपता के सिवाए अन्य कुछ प्राप्त नहीं हो पाता। एक विवशता, एक मूक समझौता, एक अविश्वस्त अनिश्चितता, जो कि आधुनिक निम्न.मध्य.वर्गीय परिवरों की नियति बन चुकी है–कितने सशक्त ढंग से उभर आते हैं।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– रंग.शिल्प की दृष्टि से सजीवता और प्राणवत्ता प्रदान करने वाले तत्व कौन से होते हैं?

उत्तर ....

प्रश्न 2– नाटक के पात्रों या परिवार के सदस्यों से सम्बन्धों की अलहदगी, घुटन, टूटन, बिखराव और विघटन आदि की विद्रूप स्थितियों को उभारने के लिए नाटकाकार ने किस तरह के प्रकाश एवम् संगीत का सहारा लिया है?

उत्तर ....

प्रश्न 3– कथानक के अन्त में मातमी संगीत के अधिक स्पष्ट होने और अंधेरा अधिक गहराने से कौन सी स्थिति उभर कर आती है?

उत्तर ....

1.10 भाषा एवम् ध्वनि

रंग.शिल्प की दुष्टि से इन सारी व्यवस्थाओं के बाद क्रम आता है विशिष्ट ध्वनियों एवम् भाषा का। वास्तव में इस नाटक में मोहन राकेश नव्य रंग.शिल्पी तो प्रमाणित हुए ही हैं, हमारे विचार में उससे भी अधिक वे नाट्य.भाषा के शिल्प प्रमाणित हुए हैं। सीधी.सादी, सरल, एकदम बोल.चाल की भाषा में उन्होंने जो ध्वन्यात्मकता संज्ञा दी है। निश्चय ही वह अपना उदाहरण आप ही है आज तक हिन्दी भाषा में रचे गये नाटकों में इतनी सुघड़, शिल्पित नाटकीय भाषा का प्रयोग अन्यत्र कहीं भी नहीं हो सकता। नाटककार के कथ्य के अन्तराल के अनुरूप पात्रों की अन्तरात्मा को उभारने के लिए नितान्त बोलअचाल के आमफहम के ध्वन्यात्मक शब्दों का सहज प्रयोग किया है। कह सकते हैं कि अपने समग्र रूप, परिवेश, नाद.ध्वनि आदि सभी दृष्टियों से भाषा नाटक की स्थितियों, पात्रों की अन्तःबाहय क्रियाओं के साथ सीधी जुड़ी हुई है। एक भी शब्द ऐसा नहीं कि जो रंगशिल्प के विपरीत लगता हो, या चित्रण.अभिनयन एवम् सम्प्रेषण में बाधक बनता हो। नाटक के सभी पात्र असाधारण स्थितियों में जी रहे हैं। उसके प्रत्येक व्यवहार और बोल.चाल में एक प्रकार की विद्रूप घुटन, कुढ़न, तनाव, आक्रोश एवम् संत्रास है। उस सब को व्यक्त करने के लिए ठीक स्थित्यनुकूल ध्वन्यात्मक सहज शब्दों का प्रयोग करके नाटककार ने अद्भुत रंग कौशल का परिचय दिया है। नाशुक्रे आदमी, घर.घुसरा, रबर.स्टैम्प आदि शब्द और अनेक स्थलों पर उच्च अट्टहास जैसी– हा.हा.हा.ही.ही.ही की ध्वनियाँ पात्रों के संत्रस्त एवम् टूटे हुए व्यक्तित्व के अन्दर से फूटती हैं, बिलगाव और सम्बन्धों के टूटन को स्पष्टत व्यक्त एवम् रूपायित करती हैं। इसी कारण तो महेश आनन्द ने 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा को 'हरकत की भाषा' मानते हुये लिखा है –'आधे.अधूरे' में भी मुख्य भूमिका शब्दों की है ...बोल चाल की भाषा होते हुए भी वह हरकत की भाषा है। नाटक के प्रत्येक शब्द का सम्बन्ध पात्रों की क्रियाओं के साथ जुड़ा है...नाटक के शब्द स्वयं हरकत करते हुए मालूम होते है। यही कारण है कि प्रत्येक पात्र दर्शक के सामने अपने. आप खुलता जाता है।'' इसका स्पष्ट, कारण यह है कि परम्परागत नाटकीय भाषा का परित्याग करके 'आधे.अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने एक सर्वथा उपयुक्त रंग.भाषा की सफल तलाश की है। अपनी इस मान्यता के अनुसार कि रंगानुभव की सार्थकता दृश्य और श्रव्य के सामंजस्य में है और उसमें मुख्य भूमिका शब्दों की ही रहनी चाहिए,

उन्होने यहाँ निश्चय ही शब्दों को महत्वपुर्ण भूमिका शब्दों देकर दृश्य और श्रव्य के सामंजस्य के शिल्प.कौशल का अभूतपर्व परिचय दिया है। इस सम्बन्ध में रंगशिल्पी ओम् शिवपुरी ने उचित ही लिखा है कि –

"कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका कमन, उनका संयोजन सब कुछ ऐसा है, जो बहुत सम्पुर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्ति करता है। लिखित शब्द की यह शक्ति और उच्चरित ध्वनि.समूह का यही बल है, जिसके कारण नाट्य.रचना बन्द और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाये रख सकी"

इस प्रकार सामयिक जीवन की सम्वेदनात्य स्थितियों के लिये रंग.शिल्प के एक नवीन भाषा का सफल और सशक्त शोध किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1) 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा को 'हरकत की भाषा' किनने माना है?

अ– महेश आनन्द ने

ब– ओम् शिवपुरी ने

स– ब. व. कारन्त ने

द– एम. के. रैना ने

उत्तर ——————

प्रश्न 2– नाटककार के कथ्य की अन्तराल के अनुरूप पात्रों की अन्तरात्मा को उभारने के लिए किस तरह के शब्दों का प्रयोग किया है।

उत्तर ....

प्रश्न 3– अपने समग्र रूप, परिवेश, नाद–ध्वनि आदि सभी दृष्टियों से भाषा किन के साथ सीधी जुड़ी हुई है।

उत्तर ....

प्रश्न 4– 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा पर महेश आनन्द की टिप्पणी लिखिए।

उत्तर ....

प्रश्न 5– 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा के सम्बन्ध में रंगशिल्पी ओम् शिवपुरी ने क्या लिखा है?

उत्तर ....

1.11 पात्र.योजना

जिसे नाट्य.शिल्प, नाट्य.कला या रंग.शिल्प कहते है, उन दृष्टियों से मुख्यतः ऊपरोक्त तथ्यों पर ही विचार किया जाता है। किन्तु मोहन राकेश नव्य शिल्प का प्रयोग किया हैं अतः पात्र योजना की दृष्टि से भी यहाँ थोड़ा विचार कर लेना असंगत न होगा। सबसे मुख्य बात तो यह हैं कि रंग.शिल्प की दृष्टि से पात्र योजना करते समय राकेश ने इस बात का पूरा ध्यान रखा। अभी तक ऐसी स्थिति नही आई कि अभिनय के लिए सधे हुए रंग शिल्प, अभिनेता आदि उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध हो सके– ऐसा मानकर ही उन्होने बहुत ही सीमित– केवल पाँच पात्रों में एक समूचे

वर्ग और युग के समूचे अन्तःबाह्य व्यक्तित्व को बड़ी कुशलता के साथ संजो दिया है। इतने कम पात्र लेकर इतने व्यापक विषय का संयोजन, वास्तव में अद्‌भुत कला.शिल्प का परिचायक है। फिर पुरुष पात्र (पात्रों) की योजना में तो राकेश ने विश्व.नाट्य.शिल्प में पहली बार एकदम नवीन प्रयोग किया है। एक ही पुरूष पात्र कपड़ों के बहुत थोड़े वह भी कह लीजिए केवल कोट के हेर.फेर के साथ दुसरा, तीसरा चौथा पुरुष बनाकर हमारे सामने आ सकता है। दिग्दर्शक और अभिनेता ओम् शिवपुरी ने मोहन राकेश की इस योजना को अद्भुत और विशिष्ट कौशल से पूर्ण मानते हुए ठीक ही लिखा है कि –"एक दूसरे अनुभव की समानता का दिग्दर्शन है। इसके लिए नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पाँच पृथक भूमिकाएँ निभाये जाने की दिलचस्प रंगयुक्ति का सहारा लिया है। महेन्द्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रंख देने से या जगमोहन के स्थान पर जुनेजा को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के ढाँचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बर्ताव करता है"

इसी प्रकार नाटककार ने स्पष्टतः पात्रों को कोई नाम न देकर (यद्यपि बाद में नाम भी आ जाते हैं) भी एक नया प्रयोग किया है। वह महत्व व्यक्ति या व्यक्तियों के विशिष्ट नामों को नहीं, बल्कि परिवेश.परिस्थितियों में पलने वाले सामूहिकता, सामाजिकता या वर्गीय स्थितियों को देना चाहता हैं। इस दृष्टि से निश्चय ही नाम देने या ना देने से कोई अन्तर नहीं पड़ता है। जैसा कि ओम शिवपुरी ने कहा है कि –'महेन्द्रनाथ की जगह जगमोहन और जगमोहन की जगह जुनेजा भी हो सकता है। उसी प्रकार सावित्री की जगह सविता.रीता.गीता कोई भी हो सकती है। कथ्य को व्यापक आयाम् देने का निश्चय ही यह एक नव्य शिल्पगत प्रयोग है, जो नवीन होने के साथ.साथ भव्य एवम् विश्वसनीय भी है।'

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– नाटककार ने स्पष्टतः पात्रों को कोई नाम न देकर (यद्यपि बाद में नाम भी आ जाते हैं) भी एक नया प्रयोग किया है। इसके पीछे नाटककार की क्या मंशा है?

उत्तर ______________________________

____

____

____

प्रश्न 2– दिग्दर्शक और अभिनेता ओम् शिवपुरी ने मोहन राकेश की पात्र योजना के बारे में क्या लिखा है?

उत्तर ______________________________

____

____

1.12 मंचीय सीमाएँ

नाट्य.शिल्प या रंग.दृष्टि से जहाँ 'आधे.अधूरे' नाटक एक नये क्षितिज का उद्घाटन करने वाला नाटक प्रमाणित हो चुका है, वहाँ इसकी कुछ अपनी सीमाएं भी अंकित की जा सकती है। अनेक विद्वानों एवम् रंग.शिल्पियों ने इन सीमाओं की ओर ध्यान आकर्षिक भी किया है। 'आधे.अधूरे' नाटक पर जो सबसे बड़ा आक्षेप लगाया जाता है या लगाया जा सकता है। वह इसके पात्रों की योजना और चरित्र.चित्रण से सीधा सम्बन्ध रखता है। वह यह कि नाटक के छोड़े.बड़े प्रायः सभी पात्र एक ही साँचे में ढले हुए, एक जैसी ही मनोवृत्तियों, हीनता.ग्रन्थियों से ग्रस्त और शिकार

है। यह बात एक सजग पाठक और दर्शक को प्रायः यह सोचने के लियें विवश कर देती है कि क्या वर्गीय स्वाभाविकता का सर्वथा लोप हो गया है? इस से यह भी लगने लगता है कि नाटककार ने समाज या वर्ग के जिस चरित्र को खण्डों के माध्यम से व्यक्त किया है, वह अतिशयोक्ति लगती है। यह ठीक है कि काम.अर्थ आज विकृत और एकमात्र लक्ष्य बनकर विसंगतियों, विद्रूपताओं और असन्तुष्टि को जन्म दे रहे है। पर उस सीमा तक नहीं जैसा कि यहाँ चित्रित हुआ है। यह कुछ और वर्षों बाद का चरित्र हो सकता है। इस प्रकार एक काले सूट वाले से घोषित करवा कर बाद में उसे ही सभी पुरुष पात्रों के रूप में मंच पर भेजना नया शिल्पगत प्रयोग होते हुऐ भी उतना संगत एवम् सार्थक प्रतीत नहीं होता। यहाँ यह भी अनुभूति होने लगती है कि जीवन मात्र अधूरेपन का बिम्ब बनकर रह गया है, पूर्णता अतीत की कहानी बनकर रह गई है।

इसी प्रकार नाटक में जिस अन्तःबाह्य संघर्ष का चित्रण किया गया है, वह भी एकांगी है। परिवार आदि के टूटन की जो बातें कही गई है, वे भी एकांगी अधिक प्रतीत होती हैं। व्यवहार.जगत में आज भी व्यक्ति अनेक परिस्थितियों की सघनता के साथ समझौता करता आ रहा है, पर यहाँ समझौता यदि है भी तो गहराते हुए अन्धेरे का। यों प्रत्येक समझौते में विवशता की भावना रहा करती है, पर उस प्रकार की नहीं जैसी कि 'आधे.अधूरे' में 'एकमात्र' रूप में दिखाई गई है। संघर्ष व्यवहार और चेहरों में एकता स्थापित करके जिस अधूरेपन का आरोपण का किया गया है, वह उतना विश्वसनीय नहीं जितना कि नाटकीय। इस कारण नाटक का सारा संघर्ष, शाश्वत संघर्ष, जिजीविषा का संघर्ष न बनकर कुछ घिर आई या ओढ़ ली गई स्थितियों का ही संघर्ष बनकर रह गया है। सम्वाद.शिल्प के सम्बन्ध में भी आक्षेप किये जाते है। 'आधे.अधूरे' नाटक में काले सूट वाले के आरम्भिक सम्वाद एक ओर जहाँ संस्कृत नाटकों के कंचुकी, नट.नटी के प्रत्यावर्तन के कारण नव्य शिल्प.योजना के प्रतीक है, वहाँ वे भाषण की सीमा तक लम्बे हो गये प्रतीत होने ही लगते है– चाहे वे कितने भी अनुभूति.प्रवण है।

अन्त में, इन कुछ सीमाओं के रहते हुए भी, जहाँ तक नाट्क के कथ्य एवम् कथानक को एक समग्र बिम्ब के रूप में उभारने वाले नाट्य.शिल्प का प्रश्न है, उसे हम किसी भी दृष्टि से त्रुटिपूर्ण नहीं कह सकते। 'आधे.अधूरे' के शिल्प ने प्रमाणित कर दिया है कि मोहन राकेश रंग.शिल्प की किन गहराइयों, नव्य.योजनाओं, सम्भावित एवम् सत्य कल्पनाओं की ओर अग्रसर हो रह है। हम तो यहाँ तक कहना चाहते है कि, 'आधे.अधूरे' मोहन राकेश की उतनी कथ्य की दृष्टि से विशिष्ट उपलब्धि नहीं है जितनी रंग.शिल्प की दृष्टि से।

1.13 'आधे.अधूरे' की प्रमुख प्रस्तुतियाँ

हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में 'आधे.अधूरे' की जितनी प्रस्तुतियाँ अब तक हो चुकी है, उनके लिए एक बड़े और स्वतन्त्र पाठ की आवश्यकता है। इसलिए यहाँ हम इसकी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्तुतियों की संक्षिप्त चर्चा ही करेंगे। 2 मार्च, 1969 को केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी के दिल्ली के मावलंकर हॉल में आयोजित पुरस्कार अर्पण राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से प्रशिक्षित श्रेष्ठ कलाकारों द्वारा गठित 'दिशांतर' जो उस समय राजधानी की महत्वपूर्ण संस्था थी के द्वारा 'आधे.अधूरे' का मंचन किया गया। स्वयं मोहन राकेश भी इससे प्रत्यक्षतः जुड़े थे इसलिए 'आध ो.अधूरे' का यह प्रदर्शन पूरी तरह नाटककार की परिकल्पना और इच्छा के अनुकूल हुआ था। ओम शिवपुरी ने पुरुष पात्रों की पाँचों भूमिकाएँ बड़ी जीवन्तता एवम् विश्वसनीयता से अभिनीत की थी। सावित्री के रूप में सुधा शिवपुरी ने इस आधुनिक स्त्री चरित्र की जटिल मानसिकता और उसके अन्तर्द्वन्द्व को बड़े मनोयोग से उभारा था। पारिवारिक परिस्थितियों और अपने आप से असन्तुष्ट, कटु कुंठित और क्रमशः दिनेश ठाकुर तथा ऋचा व्यावसाय (बाद के कुछ प्रदर्शनों में बनवारी तनेजा और हेमा सहाय) ने अपने प्राणवान अभिनय के बल पर दर्शकों.समीक्षकों की भरपूर प्रशंसा प्राप्त की। माँ के ही चरण.चिन्हों पर चलती दमित.कुंठित बड़ी लड़की के रूप में अनुराधा कपूर की भी भरपूर सराहना हुई। यह इन कलाकारों के श्रेष्ठ अभिनय और कुशल पार्श्वकर्म का ही कमाल था कि इस नाटक का यह यह प्रस्तुतीकरण आइफैक्स जैसे प्रेक्षागृह में ही नहीं त्रिवेणी जैसे मुक्ताकाशी (ओपन एअर) मंच पर अपनी प्रभावशाली एवम् लोकप्रियता बनाए रख सका।

'दिशांतर' की इस महत्वपूर्ण प्रस्तुति के ठीक बाद 21 अप्रैल, 1969 करे बम्बई के तेजपाल हॉल में सत्यदेव दुबे के निर्देशन में 'थियेटर यूनिट' ने 'आधे.अधूरे' का एक अन्य बहुचर्चित प्रदर्शन किया। इसमें पुरूष की भूमिका में बम्बई रंगमंच के प्रतिष्ठित अभिनेता अमरीश पुरी के साथ स्त्री की भूमिका में मराठी भाषी अभिनेत्री डॉ. ललिता कामेरकर उर्फ ज्योत्सना कामेकर को लिया गया। परन्तु परिवार के विधटन में स्त्री की जिम्मेदारी को लेकर नाटककार और निर्देशक की सोच के अन्तर्विरोध के कारण ज्योत्सना इस चरित्र से न्याय नहीं कर सकीं। नाटककार ने जुनेजा के तर्कों के आधार पर स्त्री को दोषी सिद्ध करने और महेन्द्रनाथ की बेचारगी उभारकर पुरूष के प्रति सहानुभूति पैदा करने की कोशिश की है, जबकि निर्देशक सत्यदेव दुबे ने अपनी प्रस्तुति में जुनेजा की भूमिका को महेन्द्रनाथ और सावित्री के निजी मामलों में हस्तक्षेप मानते हुए स्त्री के पक्ष को उसके मुकाबले प्रबल करने की कोशिश की थी। बड़ा लड़का, छोटी लड़की और लड़के रूप में क्रमशः दीपा बसरू (अब दीपा श्रीराम लागू), भारती बर्वे और अमोल पालेकर जैसे आज के चर्चित फिल्म/टी.वी. कलाकारों ने निभाई। दुबे ने जब 'आधे.अधूरे' को मराठी म प्रस्तुत किया तो पुरूष की भूमिकाओं में डॉ. श्रीराम लागू का साथ देने के लिए ये सभी कलाकार मराठी प्रस्तुति में चले गए और हिन्दी प्रस्तुति के लिए इसके बाद सुनीला प्रधान (सावित्री), अनुया पालेकर (बिन्नी), सुचित्रा (किन्नी) और जयदेव हट्टगंडी (अशोक) ने काम किया। इसके प्रदर्शन चूँकि अनेक वर्षों तक होते रहे, इसलिए परिस्थिविश अमरीश पुरी और सुनीला प्रधान को छोड़कर अन्य कलाकारों को कई बार बदलना पड़ा।

24, अप्रैल, 1970 को कलकत्ता की सुप्रसिद्ध नाट्य.संस्था 'अनामिका' द्वारा श्यामानंद जालान के निर्देशन में 'आधे.अधूरे' की वह यादगार प्रस्तुति शुरू हुई जिसने प्रदर्शनीयता को नए प्रतिमान स्थापित किए और जिससे वहाँ नियमित मंचन की रविवासरीय योजना का श्रीगणेश हुआ। पुरूष की पाँच भूमिकाओं में कृष्णा कुमार मंच पर उतरे तो स्त्री की भूमिका वरिष्ठ एवम् सुप्रसिद्ध अभिनेत्री प्रतिभा अग्रवाल ने निभाई। अशोक, बिन्नी और के रूप में क्रमशः कल्याण चैटर्जी, यामा अग्रवाल और आभा जालान के अभिनय की भी खूब सराहना हुई। परन्तु सावित्री और बिन्नी के सम्बन्धों में एक प्रकार की प्रतिस्पर्द्धी दिखाने जैसी निर्देशकीय व्याख्या के कारण डॉ. प्रतिभा अग्रवाल जैसी संस्कारी अभिनेत्री सावित्री की भूमिका में सहज नहीं हो पाई।

28 सितम्बर, 1976 को दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल ने इस नाटक की एक प्रयोगधर्मी प्रस्तुति अमाल अल्लाना के निर्देशन में की। इसमें 'सम्बन्धों से मुक्ति नहीं पा सकता है मानव.मन' नामक गीत और कोरस को रखा गया। इसके बहुधरातलीय एवम् विस्तृत दृश्य.बन्ध तथा संगीत पर जापान के नाट्य.रूप काबुकी का प्रभाव था। ब्रेख्तियन शैली में, नाटक के कार्य.व्यापार को बीच में रोककर, प्रस्तावना के कुछ अंश, कुछ सम्वाद और कुछ मंच. निर्देश कोरस से गवाए/बुलवाए गए। स्त्री और पुरूष की मुख्य भूमिकाओं में सुरेखा सीकरी तथा मनोहर सिंह जैसे वरिष्ठ कलाकारों ने दिया। बुझी लालटेन को महेन्द्रनाथ तथा चाबियों के गुच्छे को घर का प्रतीकत्व प्रदान कर निर्देशिका ने अपनी निर्देशन प्रतिभा का अच्छा प्रमाण दिया। परन्तु स्वयं महिला होने के बावजूद सिंघानिया.प्रसंग में सावित्री और बिन्नी की भाव.भंगिमाओं तथा रंग.चर्चाओं से उनके चरित्र को गिराना अफसोसनाक है। इसी नाट्य. संस्था द्वारा 1992 को त्रिपुरा शर्मा के निर्देशन में इस नाटक की जो नई और उद्भावनापूर्ण प्रस्तुति की गई उसकी शैली, व्याख्या और चरित्र.निर्माण में पर्याप्त नवीनता एवम् मौलिकता थी। परिवार के सदस्यों में सारे तनाव, संघर्ष, कटुता और विघटन के बावजूद एक स्तर पर सम्बन्धों की आत्मीयता एवम् अन्तरंगता के बचे रहने का चित्रण इस प्रस्तुति की बहुत बड़ी विशेषता थी।

इनके अतिरिक्त, इसी बीच मोहन महर्षि (चण्डीगढ़), सुरेश भारद्वाज (दिल्ली), श्यामानंद जालान (कलकत्ता), सतीश आनन्द (पटना), वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता (चण्डीढ़), दिनेश ठाकुर (बम्बई) इत्यादी अनेक निर्देशकों ने देश के विभिन्न भागों में इस नाटक के चर्चित मंचन किए।

राजिन्दर नाथ, एम.के. रैना, सुशील चौधरी, राजेन्द्र गुप्त, अलखनंदन और हरीश भाटिया जैसे कई निर्देशकों को इसकी प्रस्तावना और एक ही कलाकार द्वारा पॉच भूमिकाएँ निभाने की युक्ति पर आपत्ति थी। अतः इन्होने 'प्रस्तावना' को छोड़ने या काटने.छांटने और पाँचों पुरूष भुमिकाओं के लिए अलग.अलग कलाकारों के प्रयोग किए। परन्तु इनमें से कोई भी प्रदर्शन प्रभावशाली नहीं हो पाया। इसलिए 'आधे.अधूरे' के लम्बे प्रस्तुति.इतिहास से यह

स्पष्टतः सिद्ध हो गया है कि इस नाटक के रंग.शिल्प के विषय में मोहन राकेश की सोच और परिकल्पना ही अधि ाक सटीक, संगत और सही थी।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए–

1) 'आधे.अधूरे' की प्रथम प्रस्तुति किस नाट्य संस्था द्वारा किस निर्देशक के निर्देशन में हुयी।

अ– दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल द्वारा निर्देशक अमाल अल्लाना के निर्देशन में

ब– 'दिशांतर' नाटककार मोहन राकेश के परिकल्पना के अनुसार

स– कलकत्ता की नाट्य.संस्था 'अनामिका' द्वारा श्यामानंद जालान के निर्देशन में

द– 'थियेटर यूनिट' द्वारा सत्यदेव दुबे के निर्देशन में

उत्तर– ——————

2) 'सम्बन्धों से मुक्ति नहीं पा सकता है मानव.मन' नामक गीत और कोरस को किस निर्देशक ने 'आधे.अध ूरे' के अपनी प्रस्तुति में शामिल किया?

अ– अमाल अल्लाना

ब– एम.के. रैना

स– श्यामानंद जालान

द– सत्यदेव दुबे

उत्तर – ——————

3) बुझी लालटेन को महेन्द्रनाथ का तथा चाबियों के गुच्छे को घर का प्रतीकत्व किस निर्देशक ने प्रदान किया?

अ– सत्यदेव दुबे

ब– एम.के. रैना

स– श्यामानंद जालान

द– अमाल अल्लाना

उत्तर – ——————

4) पुरूष पात्रों की पाँचों भूमिकाएँ सर्वप्रथम किस अभिनेता ने अभिनीत की थी।

अ– कृष्णा कुमार

ब– अमरीश पुरी

स– ओम शिवपुरी

द– डॉ. श्रीराम लागू

उत्तर – ——————

प्रश्न 2– किन निर्देशकों को एक ही कलाकार द्वारा पॉच भूमिकाऍ निभाने की युक्ति पर आपत्ति थी जिनके कारण उन्होंने पॉचों पुरुष भूमिकाओं के लिए अलग.अलग कलाकारों के प्रयोग किए।

उत्तर ——————————————————

1.14 सारांश

मोहन राकेश के नाटक अधिकांशतः ऐतिहासिक पृष्ठभूमियों पर रचे गये हैं। पर उनका अन्तराल, उनका भाव बोध ा जितना ऐतिहासिक है, उससे भी कहीं अधिक आधुनिक है। 'आधे.अधूरे' तो समग्रतः आधुनिक भाव.बोध से संपृक्त नाटक ही है यह एक बहुत बड़ी विशेषता एवम् उपलब्धि राकेश के नाटकों की मानी जा सकती है।

मोहन राकेश को मंच की सीमाओं का गहरा ज्ञान था। साहित्यिक स्तर और रंगमंच दोनों के सार्थक समन्वय के वे पक्षधर थे। मोहन राकेश का नाट्य चिन्तन नाटक और रंगमंच के व्यापक स्परूप को अपने में समाहित किये हुए हैं।

'आधे.अधूरे' ने नाट्य.शिल्प से सम्बन्धित इस इकाई में आप मोहन राकेश की अत्यन्त प्रभावशाली नाट्य रचना के रंग.पक्ष का अध्ययन किया है। हमने देखा कि 'आधे.अधूरे' में महान घटनाओं और कार्यावस्थाओं के विकास तथा आरम्भ से चरमोत्कर्ष तक निरन्तर विकसित होने वाल संघर्ष का अभाव है। इसकी संरचना गोलाकार हैं नाटक के आरम्भ और अन्त में कोई अन्तर नहीं है।

दृश्य.बन्ध, संगीत और छायालोक का भी सशक्त अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में सार्थक उपयोग यहाँ हुआ है। इसकी रंगमंचीयता सम्बन्धी सभी समस्याओं ने चुनौती बनकर समकालीन हिन्दी रंगकर्म को प्रेरित किया और उसे परिपक्व, समृद्ध और उपलब्धिपूर्ण बनाने में निर्णायक भूमिका आशा है इस इकाई को पढ़ने के बाद आप 'आधे.अधूरे' के नाट्य शिल्प की विशेषताओं को समझ गए होंगे।

जिस प्रकार मोहन राकेश ने पौराणिक, ऐतिहासिक या आधुनिक.सामाजिक किसी भी विषय को लेकर उसे नितान्त यथार्थवादी स्वरूप एवम् पर्यावरण प्रदान करने का सफल प्रयास किया, उसी प्रकार उन्होंने हिन्दी.नाटक को निश्चय ही एक आधुनिक यथार्थवादी एवम् मौलिक नव्य.शिल्प भी प्रदान किया है। वे सच्चे अर्थों में एक कुशल नाट्य.शिल्पी के साथ.साथ रंग.शिल्पी भी प्रमाणित हुए है। इस बात का सहज अनुमान उनके नाटकों के रचना.क्रम की दृष्टि से किये गये अध्ययन से हो जाता है। उनकी नाट्य.कला जहाँ परम्परागत भारतीय नाट्य.कला के साथ अन्तःस्यूत है, वहाँ आधुनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उन्होने उसे नया रंग, स्वरूप एवम् आयाम भी प्रदान किया है।

मोहन रोकश मूलतः युग.बोध के कलाकार माने जाते है। उनके इस विधि में गहन मानवीय अनुभूतियों की तीव्र वेदना और कसमसाहट विद्यमान हैं, उसी प्रकार उनका नाट्य.शिल्प भी आधुनिक रंग.बोधों से संयत एवम् आप्लावित हैं, इसी कारण उन्हें स्वातन्त्र्योत्तर भारत का एक प्रमुख नाटककार और स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक.साहित्य का प्रमुखतम नाटककार स्वीकार किया जाने लगा है। वास्तव में राकेश ने शिल्प के धरातल पर हिन्दी नाटकों को जो सूक्ष्म एवम् नव्य आन्तरिक बोध दिया हैं, उसके कारण वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

1.15 अपनी प्रगति जाँचिये

1. मोहन राकेश के तीनों नाटकों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. मोहन राकेश के नाट्य चिन्तन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. 'आधे.अधूरे' नाटक के वस्तु.विधान का कैन्द्र.बिन्दु लिखिए। (दीर्घउत्तरीय)

4. 'आधे.अधूरे' की रंग योजना पर टिप्पणी लिखिये। (लगभग 400 शब्दों में)
5. 'आधे.अधूरे' की दृश्य.योजना पर टिप्पणी लिखिए। (लगभग 200 शब्दों में)
6. रंग.शिल्प की दृष्टि से 'आधे.अधूरे नाटक में प्रकाश.योजना विशेषता बताइये। (लगभग 300 शब्दों में)
7. पात्र योजना के सन्दर्भ में मोहन राकेश द्वारा 'आधे.अधूरे' में किये गये नवीन प्रयोग पर संक्षिप्त

1.16 नियतकार्य/गतिविधियाँ टिप्पणी लिखिये।

1. मोहन राकेश के नाटकों का एक पत्रक (चार्ट) तैयार कीजिए जिसमें प्रकाशन वर्ष, प्रमुख पात्र एवम् संक्षिप्त विषय वस्तु का उल्लेख हो।
2. 'आधे अधूरे' नाटक के दृश्य योजना के अनुसार मंचन हेतु आवश्यक सामग्रियों की सूची तैयार कीजिए।
3. 'आधे अधूरे' नाटक के प्रमुख प्रस्तुतियों का एक पत्रक (चार्ट) तैयार कीजिए जिसमें प्रस्तुति स्थल, निर्देशकों के नाम, प्रमुख अभिनेताओं का उल्लेख हो।

1.17 स्पष्टीकरण के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

____

____

____

____

1.18 चर्चा के बिन्दु

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर और चर्चा करना चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

____

____

____

____

इकाई – 2

नाट्य तत्वों की दृष्टि से 'आधे.अधूरे'

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 'आधे.अधूरे' का देशकाल

2.4 'आधे.अधूरे' के पात्र : मध्यम वर्ग के प्रतीक

2.5 'आधे.अधूरे' के नामकरण की सार्थकता

2.6 'आधे.अधूरे' की सम्वाद योजना

2.7 'आधे.अधूरे' की भाषा

2.8 सारांश

2.9 अपनी प्रगति जाँचिये

2.10 नियतकार्य/गतिविधियाँ

2.11 स्पष्टीकरण के बिन्दु

2.12 चर्चा के बिन्दु

2.1 उद्देश्य

एम.ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के सप्तम खण्ड की यह दूसरी इकाई है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

इस इकाई में नाट्यरचना के सन्दर्भ में देशकाल का महत्व तथा 'आधे.अधूरे' नाटक के सन्दर्भ में देशकाल का अध्ययन कर आप जान पायेंगे कि नाटक के समस्त तथ्य समस्त चित्र आज के वैभव विलास के लिये कुछ भी करने को तैयार मध्यम वर्ग का है।

आप जान पायेंगें कि नाटक को समझने के लिये चरित्र सृष्टि से साक्षात्कार करना कितना आवश्यक है। प्रस्तुत नाटक के पात्र किस वर्ग के है और किन.किन विभिन्न प्रवृत्तियों और मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं?

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पायेंगे कि किसी साहित्यिक कृति के नामकरण का आधार क्या होता है तथा प्रस्तुत नाटक 'आधे.अधूरे' की नामकरण की सार्थकता का आधार क्या है।

किसी नाट्य कृति की साहित्यिकता एवम् मंचीय प्रस्तुति में उसकी भाषा एवम् सम्वाद योजना का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इस दृष्टि से इस इकाई के अध्ययन से आप 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा एवम् सम्वाद योजना की विशेषतओं से परिचित हो पायेंगे।

2.2 प्रस्तावना

प्रथम इकाई में आप मोहन राकेश के नाट्य कर्म, नाट्य चिन्तन के साथ.साथ मोहन राकेश के 'आधे.अधूरे' की नाट्य. शिल्प का अध्ययन कर चुके हैं।

पात्रों के व्यक्तित्व में स्पष्टता तथा वास्तविकता लाने के लिये, पात्रों के चारों ओर की परिस्थितियों, वातावरण तथा देशकालिक विधान के वर्णन की विशेष आवश्यकता पड़ती है।

घटनाओं की सम्पूर्ण गतिविधि और व्यवहारिकता पात्रों पर निर्भर करती है। नाटक में जिसे हम वस्तु या कथानक कहते हैं उसके निर्माता तो पात्र ही हुआ करते हैं। नाटक की सम्पूर्ण शक्ति, उसका सम्पूर्ण महत्व पात्रगत शक्ति और उसकी प्रयोग विधि पर स्थित होता है।

कथा या घटना का प्रस्तुतिकरण, पात्र या पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन एवम् स्वयं नाटककार का समस्त कथ्य सम्वाद के माध्यम से प्रकट हुआ करता है।

कोई भी साहित्यिक कृति भाषा के माध्यम से ही आकार ग्रहण कर सकती है और रचनाकार के विचारों को जनसमूह में परिव्याप्त करती है।

उपरोक्त सन्दर्भ में 'आधे.अधूरे' का देशकाल, पात्र, सम्वाद.योजना और भाषा का विवेचन इस इकाई में करेंगे।

2.3 'आधे.अधूरे' का देशकाल

देश और काल इन दो शब्दों से मिलकर बने हुये देशकाल शब्द में देश स्थान का सूचक है और काल समय का। निःसंदेह प्रत्येक कृति की कथा.घटनाएँ उसके पात्रों द्वारा किसी स्थान विशेष पर और काल विशेष में घटित हुआ करती है। दूसरे, कभी.कभी रचना विशेष का एक उद्देश्य विशेष स्थान कालखण्ड और उनकी विभिन्न स्थिति. पस्थितियों का चित्रण करना भी बताया जाता है। तीसरे, मनोवैज्ञानिक या रसोत्प्रेरकता की दृष्टि से देखें तो मानव मन मे स्थित स्थायीभाव, जो रचना को पढ सुन या देखकर जागृत होते और फलस्वरूप सामाजिक को रसाप्लावित किया करते है, एक विशिष्ट देशकालगत स्वरूप धारण करके ही मन मे स्थित रहा करते हैं और जो घटना चक्र उसके इस विशिष्ट रूप के अधिक अनुकूल पड़ता है उसी से वे तुरन्त और तीव्रतम रूप में जागृत हुआ करते हैं। देशकाल की इसी कथागत, पात्रगत उद्देश्यगत और रसगत महत्ता को देखते हुए प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना में देशकाल तत्व को किसी न किसी रूप में अवश्य स्थान दिया करता है। जिसमें अन्तर्बाह्य दोनों ही पक्ष आ जाते है। गहराई से विचार करें तो आधुनिकता या समकालीनता और समसामयिक से लेकर युगचित्रण तक देशकाल तत्व के अंग हैं। शास्त्रीय दृष्टि से और विशेषतः नाट्य रचना के सन्दर्भ में भी देखे तो भारतीय नाटयशास्त्र की परम्परा में कथा, पात्र और रस के अन्तर्गत तथा पाश्चात्य नाट्यशास्त्र की परम्परा में सकंलनत्रय के अन्तर्गत एवम् आज के मान्य समग्रतः छह तत्वों के अन्तर्गत देशकाल का महत्व स्वीकार किया गया है तथा इसको नाट्यरचना का एक अभिन्न और महत्वपूर्ण आवश्यक तत्व माना जाता है। रचना में अंकित वातवरण भी वस्तुत इसी का पर्याय है।

'आधे.अधूरे' का देशकाल चित्रण

रचनाक्रम से 'आधे.अधूरे' यदि राकेश जी की अन्तिम नाट्य रचना है तो विषय की दृष्टि से वैयक्तित्व स्तर पर भोगा हुआ यथार्थ भी है। इसका सृजन यूँ तो राकेशजी की पत्नी अनीता ओलक की एक कहानी पर हुआ है किन्तु साथ ही साथ इसमें राकेश और उनका पारिवारिक जीवन तथा 'सही घर को पाने की छटपटाहट भरी वैयक्त्वि कामना' भी अभिव्यक्त हुई है।

'आधे.अधूरे' अर्थ के दो आयाम प्रस्तुत करती है– घर परिवार के विघटन की समस्या इसके यथार्थवादी स्वर को उद्घाटित करती है और पात्रों का अधूरापन आधुनिक भावबोध को। निःसन्देह इन दोनों का ही मूलभूत कारण है–

आज की परिस्थितियाँ विशेषतः मध्यवित्तीय स्तर से ढह कर निम्न मध्यवित्तीय स्तर पर आये हुये एक घर की। यह घर है– महेन्द्रनाथ और सावित्री का जो सम्बन्ध की दृष्टि से पति.पत्नी हैं यानी घर रूपी रथ के दो पहिये। परिवार की अभावग्रस्तता और उस समय घर से बाहर निकली और अधिकाधिक वैभव प्राप्ति की अभिलाषा से ग्रस्त सावित्री की यथार्थपरक स्वार्थमयी दृष्टि उसको क्रमशः महेन्द्र से दूर ही नहीं करती जाती, नये.नये पर.पुरूषों तक से उलझाती जोड़ती चली जाती है और अपने परम्परागत नामार्थ के एकदम विपरीत वह परपुरूषगामिनी तक बन जाती है। निःसन्देह उसकी ये हरकतें पति महेन्द्र को तो तोड़ती ही है। पूरे परिवार को भी विभिन्न कुण्ठाओं प्रतिक्रियाओं, विद्रोह आक्रोशादि से भरते हुए अस्त.व्यस्त कर देती है। परिणाम यह होता है कि सभी एक दूसरे पर दोषारोपण करते हुये परस्पर विरोधी बनते चले जाते हैं। मनोवैज्ञानिक स्तर पर अस्तित्वादी मान्यता के अनुकूल सावित्री पूर्ण पुरुष की असफल खोज मे भी उलझती है और साथ ही साथ स्व की सन्तुष्टि में भी। वस्तुतः वह उस मध्यवित्तीय मानसिकता की शिकार है जो धन को जीवन में अतिरिक्त महत्व देती है और क्रमशः आक्रामक बनते बनते स्वयं को छलती जाती है या सही में भ्रमित होकर टूटती जाती है। यही टूटना छलना, आक्रमकता और सबसे अधिक वैयक्तिक स्वार्थपरक एकाकीपन इस घर के सभी सदस्यों में घर करता जाता है। सत्य तो यह है कि ये सभी चरित्र मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन के विभिन्न सच्चे रूपों को उजागर करने वाले बन पड़े हैं। विशेषतः आज के पाश्चात्य भौतिक वादी परिवेश में।

फ्रायड और जुंग आदि मनोवैज्ञानिकों ने जिस काम को मानव के लिये 'प्रकृति' बताया है। उस काम तथा तत्सम्बन्धी कुण्ठाओं के प्रभावों को विशेषतः मध्यवर्गीय घर परिवारों और उनके सदस्यों द्वारा भी यहाँ पर पर्याप्त मात्रा में और एकदम सच्चे रूपों में ग्रहण किया गया है। सावित्री.महेन्द्र के अतीतकालीन काम सम्बन्धी कुण्ठाओं का वर्णन बड़ी लड़की से, भाई अशोक की काम कुण्ठाओं का वर्णन किन्नी से एवम् किन्नी की काम कुण्ठा या जिज्ञासा का वर्णन स्वयं अशोक से करा कर नाटककार ने व्यंग्य ही नहीं किए है बल्कि आज के मध्यवर्गीय परिवारों की सही तस्वीर भी उजागर कर दी है। उधर पुरूष 1,2,3 का चोरी छिपे परकीया गमन (सावित्री के साथ) उनकी ही नहीं उनके धन सत्ता अधिकार भोगी समस्त वर्गो को भी उधेड़ता है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक एक ऐसे मध्यवर्गीय परिवार और उसके माध्यम से अपने समकालीन, तथाकथित भौतिकता प्रिय लोगों का चित्र प्रस्तुत करता हैं जिसमें अपनों पर विश्वास नहीं किया जाता पर दूसरों को अपने से श्रेष्ठ मानकर उसकी पूजा, प्रतिष्ठा, आदर सम्मान सभी कुछ किया जाता है। पर इससे जो हीनता का भाव मन के अन्दर घुसता चला जाता है वह व्यक्तित्व को कभी उभरने नहीं देता। इससे जिन्दगी बेमतलब हो जाती है। निःसन्देह, अपने इस समकालीन अंकन के द्वारा राकेश ने 'आध ुनिक मानव (व्यक्ति) की 'यातना गाथा' कही है, वह इतने सच्चेरूप में कि ''कुछ आलोचक ने इसे ''समकालीन यथार्थ जीवन का महत्वपूर्ण दस्तावेज'' कहा है तो कुछ ने ''समकालीन जिन्दगी और उसके मूल्यों की तलाश।'' यह भी इस नाटक की सफलता ही कही जायेगी कि ''यह नाटक हमारे बहुत नजदीक की कहानी' प्रतीत होता है।

प्रस्तुत नाटक केवल मध्य या निम्नमध्य वर्ग तथा उसकी आर्थिक काम विषयक स्थितियों तक ही सीमित नहीं है। दूसरी ओर कहीं.कहीं पर जीवन के कुछ अन्य क्षेत्रों और उसकी सच्ची परिस्थितियों को भी यह बड़े समर्थ और यथार्थ रूप में उभारता.अंकित करता है। आज के युग में प्रायः सर्वव्यापी का दुरूपयोग, अधिकारी वर्ग का अधीनस्थ नारी. कर्मचारी को दिल बहलाव का साधन मानना और अधीनस्थ नारी का अपना उल्लू सीधा करने के लिए अधिकारी को रीझाना, खुशामद करना, युवा वर्ग में व्याप्त विरोध, विद्रोह का भाव, हरामखोरी, एकाकीपन, बड़ों का मजाक उड़ाना, अशिष्टता आदि, नौकरीपेशा नारी और उसकी घर.बाहर की स्थिति, पाश्चात्य वातावरण, विसंगति भरा अन्ध ानुकरण, विद्यालयों का प्रतिकूल वातावरण, पड़ौसी.सम्बन्ध व्यक्तिगत और पारिवारिक दोनों ही स्तरों पर जिया. भोगा जाने वाला कुण्ठामय वातावरण आदि इसके कुछ सशक्त प्रमाण है।

'आधे.अधूरे' का देशकाल निःसंदेह आज का है, लेखक के अपने समकाल का है। समस्त कथा और पात्र अपने आप में एकदम विशिष्ट हैं और उसका सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है। फिर भी इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इसका समस्त तथ्य समस्त चित्र आज के तथाकथित वैभवेच्छुक और इसके लिए सब कुछ करने

वाले विशेषतः मध्यम वर्ग का है। ऐसा लगता है कि लेखक ने, आज के मध्यम वर्ग में तेजी से बढ़ती हुयी इस मानसिकता विशेष को अत्यन्त निकट से देखा है। यह भी सच है कि उसने जितना ध्यान बाह्य वातावरण पर दिया है। उससे भी कहीं अधिक वह पात्रों के आन्तरिक वातावरण में रमा है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

(वातावरण, बाह्य, समकाल, समय, देशकाल, स्थान, आन्तरिक, देशकाल)

1) देश और काल इन दो शब्दों से मिलकर बने हुये देशकाल शब्द में देश ——— का सूचक है और काल ———— का।

2) रचना में अंकित——— भी वस्तुत देशकाल का पर्याय है।

3) आधुनिकता या समकालीनता और समसामयिक से लेकर युगचित्रण तक ———— तत्व के अंग हैं।

4) प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना में ———— तत्व को किसी न किसी रूप में अवश्य स्थान दिया करता है।

5) 'आधे.अधूरे' का देशकाल लेखक के अपने ———— का है।

6) 'आधे.अधूरे' में रचनाकार ने जितना ध्यान ———वातावरण पर दिया है। उससे भी कहीं अधिक वह पात्रों के ————वातावरण में रमा है।

प्रश्न 2– 'आधे.अधूरे' में रचनाकार ने मध्य या निम्नमध्य वर्ग तथा उसकी आर्थिक काम विषयक स्थितियों के साथ. साथ और कौन सी परिस्थितियों का अंकन किया है?

उत्तर ______________________________

____

____

____

2.4 'आधे.अधूरे' के पात्र : मध्यम वर्ग के प्रतीक

'आधे.अधूरे' नाटक का कथानक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार से सम्बन्धित है। इसके समस्त पात्र भी इसी वर्ग के हैं। अधिकांश सामान्य प्रकार के पात्र है इसमें एक उच्च पदाधिकारी है और एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है। इस प्रकार इस नाटक के पात्र हमारे देश के मध्यवर्ग का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं

इस नाटक में कुल पात्रों की संख्या 12 है– 7 पुरूष हैं तथा 5 नारी पात्र हैं। इनमें दो पुरूष पात्र शिवजीत और मनोज, दो नारी पात्र रेखा तथा उद्योग सेन्टर वाली लड़की की केवल चर्चा होती है। रेखा नाम की लड़की की अवस्था 12 वर्ष के आस.पास होगी। वह छोटी लड़की किन्नी के सहेली है। उसके साथ गंदी बातें करने के कारण किन्नी अपने भाई अशोक की कोपभाजन बनती है और मार खाती है। बस, रेखा का नाम केवल इतनी ही देर के लिए केवल एक बार आता है।

इसी सन्दर्भ में उद्योग.सेण्टर वाली लड़की की चर्चा सुनाई देती है। उसका नाम नहीं मालूम, केवल उद्योग सेण्टर वाली लड़की कहकर छोटी लड़की उसका नाम लेती है। उस लड़की के पीछे अशोक (लड़का) दीवाना है और अशोक

उसे कभी चूड़ियाँ, कभी कुछ दे आता है। इस भेद को छोटी लड़की जानती है। वह जब इस भेद को खोलती है, तो अशोक चिढ़ जाता है और किन्नी को मारने के लिए दौड़ता है।

पुरूष पात्र शिवजीत तथा मनोज ऐसे पात्र है जो रंगमंच पर प्रकट नहीं होते हैं। केवल उनके नाम भर सुनाई देते हैं शिवजीत की चर्चा जुनेजा करता है। वह स्त्री सावित्री के चरित्र की बखिया उघेड़ते हुए कहता है कि सावित्री की कामपिपासा सावित्री को कई पुरूषों के निकट ले गई है। इन्हीं में शिवजीत भी एक पुरूष है। जुनेजा कहता है कि जरा सा भी किसी प्रकार का वैभव देखते ही सावित्री की लार टपकने लगती है। शिवजीत एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है। उसके पास बड़ी लम्बी चौड़ी डिग्रियां है और वह अनेक विदेशों की सैर कर आया है। विद्या और विदेश के अनुभव की चकाचौंध से भरा शिवजीत केवल नाममात्र को इस नाटक का एक पुरूष पात्र है, परन्तु वह मध्यवर्ग की एक श्रेणी विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।

मनोज एक युवक है वह बड़ी लड़की बिन्नी का पति हैं। नाटक में उसकी चर्चा दो बार होती है। एक तो एस समय जब बड़ी लड़की बिन्नी प्रथम बार रंगमंच पर आती है। उस समय हमको यह विदित होता है कि वह बिन्नी का पति है दूसरी बार उसका नाम नाटक के अन्त की ओर आता है। जुनेजा बताता है कि एक समय स्त्री सावित्री भी इस युवक मनोज के प्रति आकर्षित हुई थी।

अन्य पात्र प्रेक्षक के सम्मुख रंगमंच पर आते हैं। रंगमंच पर आने वाले पुरूष पात्रों की संख्या 5 है। इनमें चार तो पुरूष एक, पुरूष दो, पुरूष तीन तथा पुरूष चार ओर एक है लड़का अशोक।

पुरूष एक महेन्द्रनाथ– वह अपनी पत्नी के सहारे जीवित रहने वाला व्यक्ति है। वह एक प्रकार से अपने जीवन में असफल व्यक्ति हैं। उसका परिचय देते हुए नाटककार ने लिखा है कि "जिंदगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये है, अवस्था 50 वर्ष के उपर होगी।"

पुरूष दो सिंघानिया– यह एक बड़े अफसर है। इन्हें 5 हजार रूपये प्रति मास वेतन मिलता है। यह किसी बात पर टिकते नहीं है। अपने एक परिचय और विदेश के अनुभव की शेखी मारते हैं। इनके विषय में नाटककार ने लिखा है कि "अपने आपसे सन्तुष्ट, फिर भी आशंकित।"

पुरूष तीन जगमोहन – वह किसी समय मे स्त्री सावित्री के प्रेमी रहे थे। अब वह उसको झेलने के लिए तैयार नहीं है। उनका परिचय नाटककार ने इस प्रकार दिया है, "अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव भाव में।"

पुरूष चार जुनेजा – यह पुरूष एक महेन्द्रनाथ के मित्र है। नाटककार के शब्दों में इनका शब्द.चित्र यह है, "चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा एहसास। साथ काइयाँपन।"

लड़का अशोक – पुरूष एक महेन्द्रनाथ का पुत्र। उसकी अवस्था इक्कीस वर्ष के आस पास है। वह एक विद्रोही युवक है उसके विषय में नाटककार ने यह लिखा है– "चेहरे से यहाँ तक कि हँसी में भी, झलकती खास तरह की कड़ुआहट।"

स्त्री–सावित्री – वह पुरूष एक महेन्द्रनाथ की पत्नी है। वह अपने आप से असंतुष्ट होने के कारण अपने समस्त जीवन से असंतुष्ट है और भारतीय नारी के मानदण्ड से वह पतिता नारी है। नाटककार ने उसका सामान्य परिचय देते हुए लिखा है कि –"उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष।"

बड़ी लड़की बिन्नी – वह महेन्द्रनाथ और सावित्री की पुत्री है। वह मनोज की पत्नी है। वह उसी के साथ भाग गई थी। शीघ्र ही उससे असन्तुष्ट होकर वापिस घर लौट आई है। नाटककार के शब्दों में उसका सामान्य परिचय इस प्रकार है, "उम्र बीस के ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी.कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। पूरे व्यक्तित्व में बिखराव।"

छोटी लड़की किन्नी – उसकी उम्र बारह और तेरह वर्ष के बीच है। नाटककार के शब्दों में –"भाव, स्वर, चाल – हर चीज में विद्रोह"

इस प्रकार हम देखतें है कि इस नाटक में हमारे समाज के मध्य वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व किया गया है। इसमें प्रायः प्रत्येक अवस्था के और प्रत्येक श्रेणी के पात्र के दर्शन हो जाते है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए–

1) 'आधे.अधूरे' नाटक में कुल पात्रों की संख्या कितनी है–

अ– 13 ब– 16

स– 11 द– 12

उत्तर–

2) 'आधे.अधूरे' नाटक में कौन से दो पुरूष पात्र रंगमंच पर प्रकट नहीं होते हैं। केवल उनके नाम भर सुनाई देते है

अ– जगमोहन तथा अशोक ब– शिवजीत तथा मनोज

स– जगमोहन तथा सिंघानिया द– जुनेजा तथा महेन्द्रनाथ

उत्तर–

3) 'आधे.अधूरे' नाटक के पात्र हमारे देश के किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं?

अ–उच्चवर्ग ब– निम्नवर्ग

स– मध्यवर्ग द– उपर्युक्त तीनों

उत्तर–

4) 'आधे.अधूरे' नाटक में कुल 5 नारी पात्रों में से कितने नारी पात्र रंगमंच पर प्रकट होते हैं।

अ– 3 ब– 2

स– 5 द– 4

उत्तर–

5) नाटककार ने किस पात्र का परिचय देते हुए लिखा है–"भाव, स्वर, चाल–हर चीज में विद्रोह"

अ– सावित्री ब– अशोक

स– बिन्नी द– किन्नी

उत्तर–

2.5 'आधे.अधूरे' के नामकरण की सार्थकता

नाटक के नामकरण का आधार क्या हो? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके विषय में न तो सर्वसम्मत हल पेश किया जा सकता है और न एक निश्चय पर पहुँचा जा सकता है। इसका कारण यह हैं कि एक तो रचनाकार इस सन्दर्भ में स्वतन्त्र है कि वह अपनी रचना को क्या नाम दे, दूसरे इसके लिए कथानक के मध्य अनेक बातें देखी जाती है। रचनाकर अक्सर नाटक का नामकरण या तो नाटक के किसी प्रमुख पात्र का आधार मानकर करते हैं अथवा घटना के महत्वपूर्ण होने पर उसी को आधार मान लेते हैं। कई बार स्थान विशेष की प्रसिद्धि के कारण कथानक का उससे सम्बन्ध होने से स्थान का आधार ग्रहण किया जाता है और कभी कथावस्तु की मूल संवेदना अथवा केन्द्रीय भाव

को ध्यान में रखा जाता है। नाटक के उद्देश्य के आधार पर भी उसका नामकरण कभी.कभी किया जाता है। ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में हिन्दी में प्रारम्भ से ही यह परम्परा चली आ रही है कि नाटक का नामकरण उसमें वर्णित किसी ऐतिहासिक पात्र के आधार पर ही हो यथा—चन्द्रगुप्त, मुद्राराक्षस, स्कन्दगुप्त, पृथ्वीराज राठौर, लक्ष्मीबाई आदि किन्तु राकेश ने इस परम्परा के विरूद्ध अपने ऐतिहासिक नाटकों का नामकरण प्रतीकात्मक ही रखा है यथा–"लहरों के राजहंस"। सामाजिक समस्यापरक नाटकों में यह प्रवृति विशेष रूप से सक्रिय दिखायी देती है कि उसके नामकरण नाटकीय समस्या– उसके केन्द्रीय भाव, उद्देश्य अथवा मूल संवेदना पर आधारित हो– यथा–'मादा कैक्टस', दर्पण', इतिहास.चक्र', 'कैद और उड़ान', 'सिंदूर की होली' तथा 'लौटता हुआ दिन' आदि।

जहाँ तक 'आधे.अधूरे' नाटक का प्रश्न है यह नाटक उपर्युक्त पद्धतियों में से अन्तिम पद्धति के अन्तर्गत परिगणित किया जायेगा क्योंकि आधा अधुरापन इस नाटक की मूल संवेदना एवम् उद्देश्य है। यों भी राकेश ने अपने सभी नाटकों मे रचना के केन्दीय भाव को ही नाटक के नामकरण का आधार बनाया है। आलोच्य नाटक में एक ऐसे शहरी परिवार को प्रस्तुत किया गया है जिसके सभी पात्र आधे.अधूरे हैं और इसी कारण परिवार तनाव की स्थितियों से गुजरता हुआ विघटन की ओर अग्रसर हो गया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि ये पात्र अपने आधे.अध ूरेपन को दूसरे पर थोप देना चाहते हैं और इसी प्रतिक्रिया.स्वरूप पूरेपन की तलाश में भटकते हैं।

वास्तव में यह नाटक आज के महानगरीय संत्रासबोध, आर्थिक दबावों की छटपटाहट और तनाव को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। नाटक के सभी पात्रों में आधुनिक महानगरीय विसंगतियां दिखायी देती है। जिन्होंने इन पात्रों को तोड़ कर रख दिया है। हमारा शहरी मध्यवर्ग कमोबेश इन्हीं परिस्थितियों में जी रहा है, यह और बात है कि इस नाटक में चित्रित परिवार जैसी स्थिति अभी उनमें नहीं आ पायी है। किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इन विसंगतियों के कारण ही आज परिवार विघटनशीलता के कगार पर जा पहुँचा है। डॉ. विजय बापट ने इस विघटनशीलता और 'आधे.अधूरे' पर बड़ी बेबाकी से चर्चा की है और स्पष्ट कहा है–

"इस नाटक में विघटित होते हुए आज के मध्यवर्गीय शहरी परिवार का कड़वाहट भरा चित्रण किया गया है जिसकी विडम्बना यह है कि व्यक्ति स्वयं अधूरा होते हुए भी औरों के अधूरेपन को सहना नहीं चाहता। इस नाटक में महानगरों में रहने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। आज का परिवार अन्दर ही अन्दर किस तरह टूट चुका है, आपसी सम्बन्ध किस तरह चुक गए हैं– यह बड़े सशक्त ढंग से नाटककार ने इस नाटक में दिखाया है। इस नाटक के स्त्री पुरूष के आपसी निजी सम्बन्ध करीब.करीब चुक गए है और अब साथ.साथ रहने की और सामाजिक सम्बन्ध ढोने कीं कटुता ही शेष हैं।"

इस प्रकार यह आधा.अधूरापन ही नाटकीय कथा की मूल संवेदना है और नाटककार ने इस आधे.अधूरेपन को नाटक के प्रायः सभी चरित्रों में प्रस्तुत किया है। अब हम नाटक के नामकरण के आधार बिन्दु इस आधे.अधूरेपन की चर्चा कुछ पात्रों के माध्यम से आगे करेंगे क्योंकि यही हमारे विषय के भी आधार स्तम्भ हैं।

नाटक में जिस परिवार की कहानी कही गयी है वह आज यद्यपि निम्न मध्यवित्तीय स्थिति में हैं किन्तु एक समय था जब यह परिवार बड़ी अच्छी आर्थिक दशा में था। चार सौ रूपये किराये का मकान था, टैक्सियों में आना जाना होता था, किश्तों पर फ्रिज खरीदा गया था, बच्चों की कान्वेन्ट की फीसें जाती थीं, दावतें होती थीं शराब आती थी, आदि.आदि। किन्तु इसी अपव्यय के कारण परिवार की आर्थिक दशा खराब हो गयी। फलतः जब खाने की समस्या सामने खड़ी हो गयी तो गृहस्वामिनी सावित्री को नौकरी का सहारा लेना पड़ा। किसी तरह गुजर.बसर तो हो गयी किन्तु वह सुख अब कहाँ था। फलतः परिवार के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास गहराता चला गया और यह विश्वास अन्ततः सबको आधा.अधूरा बनाकर छोड़ देता है। तनावों में जीने के लिए और एक दूसरे के अधूरेपन को सहने के लिए। सभी सदस्य एक दूसरें के प्रति बेगानापन महसूसने लगते हैं और यही कारण है कि कोई भी घर को घर नहीं समझता तथा सभी घर के प्रति अनुत्तरदायी बन जाते है। नाटक में वर्णित कथा के मुखिया और उसकी गृहस्वामिनी इस दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेख्य है जिसके क्रियाकलाप उसके अधूरेपन की ही व्याख्या करते हैं, जिनका वर्णन हम आगे करेंगे।

नाटक की नायिका में यह अधूरापन सबसे सशक्त रूप में दिखायी देता हैं। उसके चरित्र की सच्चाई यही है कि वह काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटकती रहती है। महेन्द्रनाथ के बेकार हो जाने से उसे नौकरी का सहारा लेना पडा और इस सहारे ने ही उसे पर.पुरूषों की ओर आकृष्ट किया। उसे अपना निठल्ला प्रति आधा.अधूरा लगता है और नौकरी के बहाने वह पूरे पुरूष की तलाश में जुट जाती है। उसकी यह तलाश स्वयं सिद्ध करती है कि सावित्री भी आधी.अधूरी ही है। अपनी अपूर्णता को ही तो पूर्ण बनाने के लिए वह पर.पुरूषों के मध्य भटकती रहती है और हर बार स्वयं छली जाती है क्योंकि जब.जब किसी पुरूष को वह पाती है–कुछ की समय बाद उसे लगता है कि जिस व्यक्ति को वह पूर्ण समझे बैठी थी वह अपूर्ण ही है और वह उसे छोड़कर दूसरे, तीसरे आदि पुरूषों को तलाशती रहती है। जुनेजा उसके इस आधे.अधूरेपन पर व्यंग्य करते हुए कहता भी है–

"पहले कुछ दिन जुनेजा एक आदमी था तुम्हारे सामने। तुमने कहा है तब तुम उसकी इज्जत करती थीं। पर आज उसके बारे में जो सोचती हो, वह भी अभी बता चुकी हो। जुनेजा के बाद जिससे कुछ दिन चकाचौंध रहीं तुम, वह था शिवजीत। एक बड़ी डिग्री, बड़े.बड़े शब्द और पूरी दुनिया घूमने का अनुभव। पर असल चीज वही कि वह जो भी था, और कुछ ही था महेन्द्रनाथ नहीं था। पर जल्दी ही तुमने पहचानना शुरू किया कि वह निहायत दोगला किस्म का आदमी है। हमेशा दो तरह की बातें करता है। उसके बाद सामने आया जगमोहन। ऊंचे सम्बन्ध, जबान की मिठास, टिप.टाप रहने की आदत और खर्च की दरिया.दिली। पर तीर की असली नोक फिर उसी जगह पर कि उसमें जो कुछ भी था, जगमोहन का सा था महेन्द्र का सा नहीं था। असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इसमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल.दो.साल बाद तुम यही महसूस करतीं कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिये जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं तुम हमेशा ही इतनी खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं।"

सावित्री को एक ही व्यक्ति में पूरापन सिर्फ इसलिए नहीं मिल पाता क्योंकि वह व्यक्ति को व्यक्ति की तरह न देखकर उसमें कई विशेषताएं एक साथ देखना चाहती हैं – पद भी, वैभव भी, व्यक्तित्व भी और एक व्यक्ति भी। इसीलिए वह सदैव खोज में ही रहती है, पाती कभी नहीं और केवल पाती है तो उसी अधूरेपन को जो उसके पति के रूप में लड़खड़ाता हुआ घर में प्रवेश करता है। अशोक सावित्री के इसी आधे.अधूरेपन पर निम्नलिखित सम्वाद में व्यंग्य कर रहा है –

लड़का नहीं बरदाश्त है, तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर पर कि जिसके आने से–?

स्त्री : हाँ.हाँ.बता, क्या होता है जिनके आने से।

लड़का :जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।

इस प्रकार सावित्री अपने अधूरेपन को छिपाने का प्रयास भले ही कर ले किन्तु दूसरों पर अधूरापन थोपने वाली यह सावित्री नाटक की सबसे अधिक आधी.अधूरी पात्र है। दूसरी ओर महेन्द्रनाथ को वह आधा.अधूरा इसलिए कहती है क्योंकि वह उसमें "अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत" नहीं देखती और महेन्द्रनाथ के इस आधे.अधूरेपन का कारण है उसका निठल्लापन, घरघुसरापन और आरामतलबी। व्यापार में घाटा हो जाने और कहीं काम न मिल सकने के कारण वह निठल्ला हो गया। फलस्वरूप वह पत्नी की कमाई की रोटियाँ तोडने लगा, उसे बार.बार परिवार में अपमान की स्थिति का सामना करना पड़ा वह अपने को रबड़ का एक ऐसा टुकड़ा समझने को विवश हो गया जिसे पारिवारिक संदस्य बार.बार घिसकर अपनी प्रतिष्ठा को बचाने के काम में लाते रहे हैं। अपने इस अधूरेपन पर व्यंग्य करते हुए वह कहता भी है।

"'किसे सुना सकता हूँ? कोई है जो सुन सकता है? जिन्हें सुनना चाहिए, वे सब तो एक रबड़–स्टैम्प के सिवा कुछ समझते ही नहीं मुझे। सिर्फ जरूरत पड़ने पर इस स्टैम्प का ठप्पा लगाकर........। मैं इस घर में एक रबड़–स्टैम्प

भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ। बार–बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह कि क्यों मुझे रहना चाहिये इस घर में? नहीं न?................अधिकार, रुतबा, इज्जत– यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे। मेरे भरोसे तो सब.कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही सकता है। (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घुम रहा है। मेरी वजह से। (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बताए एक रात घर से क्यों भाग गयी थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिलकुल सामने आकर) और तुम भी तुम भी इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि –?

महेन्द्रनाथ स्वयं तो अपने आधे.अधूरेपन को स्पष्ट करता ही है, उसकी पत्नी सावित्री भी उसके अधूरेपन की चर्चा करते हुए जुनेजा से कहती है–

"यूं तो जो कोई भी एक आदमी की तरफ चलता.फिरता, बात करता हैं, वह आदमी ही होता है–पर असल में आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो? इसलिए कह रही हूँ कि जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूँढते पाया है। खास तौर से आपका। यह करना चाहिए या नहीं– जुनेजा से पूँछ लूँ। यहाँ जाना चाहिए या नहीं– जुनेजा से राय कर लूं। कोई छोटी से छोटी चीज खरीदनी हैं तो भी जुनेजा की पंसद से। कोई बड़े से बड़ा खतरा उठाना है– तो भी जुनेजा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझसे ब्याह करने का फैसला भी कैसे लिया उसने? जुनेजा के हामी भरने से। और उस भरोसे का नतीजा? कि अपने आप पर उसे कभी किसी चीज के लिए भरोसा नहीं रहा। जिन्दगी में हर चीज की कसौटी जुनेजा। जो जुनेजा सोचता है, जो जुनेजा चाहता है, जो जुनेजा करता है, वही उसे भी सोचना है, वही उसे भी चाहना है, वही उसे भी करना हैं। क्यों? क्योंकि जुनेजा तो एक पूरा आदमी है अपने में। और वह खुद? वह खुद पूरे आदमी का आधा.चौथाई भी नहीं हैं।

नाटकीय कथावस्तु में यह दो चरित्र प्रमुख हैं और दोनों ही चरित्रों में आधा.अधूरापन स्पष्ट झलकता है। उसके बच्चे भी इस आधे.अधूरेपन के शिकार है और इसका कारण है पारिवारिक पर्यावरण.वातावरण का प्रभाव। अपने माँ.बाप को देखकर उसमें भी वही आवारापन आ जाता है जिसके कारण वे एक.दूसरे में अधूरेपन की अनुभूति करते हैं। यही आधा.अधूरापन नाटक की केन्द्रीय भाव अथवा मूल संवेदना है और नाटककार ने इसे ही अपने नाटक के नामकरण का आधार बनाया है जो सर्वथा तर्कसंगत कथानुकूल, पात्रानुकूल एवम् नाटकीय थीम को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हुआ है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– नाटक के नामकरण का प्रमुख आधार क्या होता है?

उत्तर ....

....

....

प्रश्न 2– 'आधे.अधूरे' नाटक के नामकरण का आधार क्या है?

उत्तर ....

....

....

2.6 आधे अधूरे की सम्वाद.योजना

संस्कृत भाषा की 'वाक्' धातु में 'सम्' उपसर्ग के योग से निर्मित 'सम्वाद' शब्द का अभिधार्थ है– सम्यक् कथन। सामान्यतः किसी रचना विशेषतः नाट्य रचना में पात्रों द्वारा किया गया पारस्परिक अथवा स्वगत संलाप ही सम्वाद कहलाता है। इसी में पात्रों द्वारा कहे गये कथनों.उपकथनों की पूरी श्रृंखला होने के कारण इसी को कथोपकथन भी कहा जाता है। नाट्य रचना का तो यह प्राण तत्व होता है क्योंकि कथा या घटना का प्रस्तुतिकरण, पात्र या पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन एवम् स्वयं नाटककार का समस्त कथ्य इसी के माध्यम से प्रकट हुआ करता है। गहराई से विचार करें तो सम्वाद में केवल भाषा या शब्द समुच्य ही नहीं वरन् उनके उच्चारण का लहजा, गति, टोन आदि भी विशेष महत्व रखते है। एक बात और कथोपकथन में वर्तमान काल का प्रयोग होता है जिसके कारण कार्य अत्यन्त निकट, आंखों के सामने तीव्र गति और गहनता के साथ घटित होता हुआ जान पड़ता है तथा रचना में इससे कहीं अधिक विविधता, विश्रान्ति और स्वाभाविकता की वृद्धि होती है। कथोपकथन में ही नाटक का समस्त चमत्कार सीमित होता है। प्रभावशाली नाटकों में कथोपकथन रंगमंच पर उपस्थित किए गये शारीरिक कार्य व्यापार की अपेक्षा नाटकीय संघर्ष को गति देने में कहीं अधिक सहायक होता है। सच तो यह है कि नाटक में समस्त वाचिक अभिनय सम्भव ही इसके द्वारा हो पाता है। इन्हीं सब कारणों से सम्वाद या कथोपकथन नाट्य रचना का एक महत्वपूर्ण अंग है। शास्त्रीय दृष्टि से कथानुकूलता, पात्रानुकूलता, स्वाभाविकता, उद्देश्यपूर्णता, सम्बद्धता, मनोवैज्ञानिकता और सब मिलाकर अभिव्यंजकता आदि इसके अनिवार्य गुण माने गये है।

मोहन राकेश और सम्वाद योजना– केवल मात्र तीन नाटकों का सृजन करके ही स्वातन्त्र्योत्तर कालान्तर्गत 'आधुनिक नाटक का मसीहा' बन जाने वाले नाटककार मोहन राकेश के नाटकों.का सम्भवतः सर्वाधिक चर्चित और महत्वपूर्ण पक्ष रहा है–सम्वाद या भाषा। कारण यह भी है कि नाटक के इस पक्ष पर सर्वाधिक जोर तो उन्होनें दिया ही था, सर्वाधिक कार्य भी किया था। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि– "मै, जानने की भाषा के बजाय निरन्तर जीने की भाषा की ओर जाना चाहता हूँ।" कहना ना होगा कि इस पथ पर वे काफी आगे तक गये भी थे। वस्तुतः राकेश एक नाटककार थे जिन्होनें नाटक में सम्वाद और उसकी भाषा सामर्थ्य को अत्यन्त गहराई तक जाना पहचाना और माना।

पृष्ठभूमि और विकास.क्रम की दृष्टि से देखें तो राकेश के नाट्य क्षेत्र में प्रवेश करने के समय भी हिन्दी नाटकों की भाषा मुख्यतः साहित्यिक थी। दूसरी ओर, नये.नये कथ्य, जटिलता और मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता से भरा नाट्य विषय अपनी सटीक अभिव्यक्ति के लिए सही भाषा की तलाश करने लगा था। स्वयं राकेश इसमें अग्रणी थे। स्वयं राकेश को ऐसी मंचीय भाषा की तलाश थी जो समसामयिक प्रेक्षक से सम्बन्ध स्थापित कर सके।" कहना ना होगा कि अपने नाटकों में राकेश ने क्रमशः यही कार्य किया है और इसी की चरम सीमा है– 'आधे.अधूरे' और प्रमाण है– इसकी सम्वाद योजना।

आजीवन 'घर' की तलाश में भटकने वाले मोहन राकेश का 'आधे.अधूरे' विषय, पात्र और कथ्य सभी की दृष्टि से, आधुनिक समाज में आधे.अधूरे रूप में रहते हुए और सही घर की तलाश में भटकते हुए मध्यवर्गीय यानी आम आदमी की मनोगाथा है। महेन्द्रनाथ और उसके परिवार के सभी सदस्य ऐसे ही आम आदमी है जिन पर घर के नाम पर वस्तुतः मकान तो है किन्तु घर विघटित होता जाता है। निःसंदेह नाटक का विषय एकदम गम्भीर भी है और मनोविज्ञान सम्मत भी। अतएव, सम्वादो में भी गम्भीरता और मनोवैज्ञानिकता दोनों ही डटकर आनी स्वाभाविक थी, यूं सम्वादों के प्रायः सभी रूप प्रकार यहाँ मिलते हैं। महेन्द्रनाथ का प्रथम सम्वाद ही लगभग तीन पृष्ठ का है– वह भी एक प्रकार स्वगत जो कुछ अंश में तो प्रलाप सा भी जान पड़ता है। इसी भांति महेन्द्रनाथ सावित्री के झगड़े वाले कथोपकथन और अन्त में जुनेजा सावित्री का वाद.विवाद एवम् सबसे अधिक मि. सिंघानिया के कथनादि एकदम दीर्घ कोटि के सम्वाद है। दूसरी ओर सावित्री बिन्नी, अशोक बिन्नी आदि के सम्वाद अत्यन्त संकुचित या लघुकाय कोटि के बन पड़े है। इसी भांति बिन्नी और जुनेजा के कई कथन एकदम सूच्य कोटि के है। निःसन्देह, छोटे सम्वाद यदि कथा को गतिशील बनाने में सक्षम है तो दीर्घ सम्वाद एकदम भावना और संवेदना से परिपूर्ण

बनाए गए हैं। सबसे अधिक तो अन्त के लम्बे सम्वाद अंशतः सूच्य है, अंशतः तर्कपूर्ण किन्तु इनकी बड़ी उपलब्धि ा भाव.निवृत्ति है या सम्बोधित पात्र में सही किस्म की प्रतिक्रिया पैदा करना। इनका प्रेक्षक पर एक समग्र प्रभाव पड़ता है। इसलिए इन्हें अनाटकीय भी नहीं कहा जा सकता। रंगमंच पर इन्हौंने अपने को पूरी तरह सार्थक सिद्ध किया है। वस्तुतः ये सम्वाद पाठक प्रेक्षक को भावात्मक स्तर पर इतना ऊंचा उठा लेते है और उसकी चेतना का इतना विस्तार हो जाता हैं कि उस समय वह स्वगत या लम्बे सम्वाद को स्वाभाविक रूप में स्वीकार कर लेता है। इनकी एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है– इनका पात्र और परिस्थिति के पक्ष.विपक्ष दोनों का विश्लेषणात्मक प्रस्तुतिकरण करने में सक्षम होना। इसी के फलस्वरूप एक और यदि ये पात्र.परिस्थिति अनुकूल बन गये है तो दूसरी ओर उनके पक्ष.विपक्ष का विश्लेषण करते हुए पाठक में सम्यक सहानुभूति भी उत्पन्न कर देते है।

'आधे.अधूरे' के सम्वादों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है– **कथा और पात्रानुकूलता**। जहाँ तक प्रश्न है कथानुकूलता का तो ये एक ओर कथा.प्रसंग को प्रकट करते है तो दूसरी ओर उसको गति भी प्रदान करते है। इसी भांति, एक और यदि इनकी भाषा और आकार एकदम पात्रानुकूल रखे गये हैं तो दूसरी ओर इनके माध्यम से किसी न किसी पात्र की कोई चारित्रिक विशेषता भी उजागर हो जाती है। महेन्द्रनाथ.सावित्री के लड़ाई विषयक, बिन्नी.जुनेजा के घर की पूर्वस्थिति विषयक, अशोक.बिन्नी के सिंघानिया विषयक, एवम् सावित्री जुनेजा के महेन्द्रनाथ विषयक सम्वाद इसके उत्कृष्ट प्रमाण है।

विवेच्य नाटक के प्रायः सभी छोटे.बड़े सम्वाद **चरित्राभिव्यंजक** भी बने पड़े हैं। स्थिति विशेष की क्रिया.प्रतिक्रिया से लेकर सामान्य चारित्रिक विशेषता तक इनके माध्यम से अत्यन्त सशक्त रूप में मुखर हो जाती है। सिंघानिया, महेन्द्रनाथ, सावित्री अशोक से लेकर मनोज तक का अधिकांश चरित्रांकन सम्वादों के माध्यम से है। एक प्रमाण भी देखिये–

स्त्री– "वह नफरत करती है इस सबसे– इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी है अपने लिये..... एक पूरा आदमी। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़प कर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है।"

अधिकांश स्थलों पर ये सम्वाद **भाव और परिवेश के अनुकूल** भी बन पड़े हैं। फलतः इससे एक और यदि पात्र की क्रिया की सार्थकता अपेक्षाकृत अधिक समर्थ बन कर प्रकट होती है तो वह परिवेश को भी अधिक स्वाभाविकता और यथार्थता प्रदान कर देती है। कहना न होगा कि भावभिव्यक्ति का गुण भी इससे द्विगुणित हो जाता है। चाय को लेकर बिन्नी.सावित्री महेन्द्रनाथ की वार्ता आदि इसी की सशक्त प्रमाण है।" वस्तुतः राकेश के सम्वाद सीधे और सपाट नहीं है। कोई विशेष मनःस्थिति जब पात्रों के मन को आ घेरती है तो वे अतिशय सघनता और सांकेतिकता प्राप्त कर लेते है। तब शब्द जैसे संकेतों में बदल जाते हैं और वाक्य.विन्यास भी कहीं सघन और कही खण्डित हो जाता है। पात्र जिस तनाव और विकृति को झेलते है उसमें एक के शब्द दूसरे के उलझ जाते है। सम्वादों का सार उलझाव एक रचनात्मक रूप धारण कर लेता है।

अब आइये इस सम्वादों की भाषागत विशेषतायें पर। निःसन्देह, "नाटक में भाषा की पहचान सम्वाद के दायरे में होती हैं क्योंकि उसमें भाषा का सवाल नहीं उठता। सम्वाद नाटक के काव्य कथानक, चरित्र और उसकी स्थितियों में पैदा होता है, भाषा उसका माध्यम मात्र बनती है। फिर भी, सम्वाद के स्तर पर भी, भाषा का एक निश्चित दायित्व होता है। वह जब सम्वाद में ढलती है तो नाट्य स्थिति, चरित्र सम्बोधक और सम्बोधित व्यक्ति और प्रेषक की मनः स्थिति के अनुरूप अपना सहज स्वरूप निर्धारित करती है। इसमें भावना, प्रतिक्रिया और अनुक्रिया जगाने में शब्द महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। कहना न होगा कि सही शब्द की तलाश जितनी ज्यादा राकेश ने की है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। आधे.अधूरे, घर, खड़ा होना, नया कोई आदि नाना सरल, बहुप्रचलित शब्दों को भी राकेश ने अत्यन्त समर्थ सशक्त अर्थो में प्रयुक्त कर दिखया है। कहीं.कहीं ऐसे संटीक शब्दों मानों कि वर्ड बन गए है यथा 'नया' शब्द का प्रयोग देखिए –

बड़ी लड़की – कौन आने वाला है ?

पुरूष एक – सिंघानिया। इनका बॉस। वह नया आना शुरू हुआ है आजकल।

अर्थगर्भिता – इन शब्दों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इनके अर्थ के कई स्तर है– कहीं बिम्बात्मक तो कहीं प्रतीकात्मक और कही व्यंगात्मक किन्तु आन्तरिक अनुभूति से सर्वत्र जुड़े। प्रमाणार्थ एक सम्वादांश देखिये?

" स्त्री – यह सब किसे सुना रहे हो तुम ?

एक पुरूष – किसे सुना सकता हुँ? कोई है जो सुन सकता है, जिन्हे सूनना चाहिये, वे सब तो एक रबड़ स्टेम्प के सिवा कुछ समझते ही नहीं। सिर्फ जरूरत पड़ने पर इस स्टैप का ठप्पा लगाकर ....।

स्त्री – मुझे सिर्फ इतना पूछ लेने इनसे दे कि रबड़ स्टैम्प के माने क्या होते है? एक अधिकार , एक रूतबा, एक इज्जत ....यही न ?

एक पुरूष –................ " मै इस घर में एक रबड़ स्टैम्प भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकडा हूँ – बार.बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा।"

कहीं.कहीं लगता है कि सम्वाद एकदम बेतरबीत और उनकी भाषा कुछ.कुछ टुटी फूटी या अधूरी सी है। वस्तुतः यह सम्वाद भाषा रूप ही अपना विसंगति से एक ओर यदि पात्र की मनःस्थिति विशेष को मुखर करता है तो दूसरी ओर शब्द को अर्थ.विस्तार भी देता है। ऐसे स्थलों पर व्यंग और ध्वन्यार्थकता से भरे पूरे सम्वाद शब्द मात्र से नही वरन् उनके पूरे प्रयोग से एक नया अर्थ.उत्पन्न करते हुये मिलते हैं सिंघानिया और महेन्द्रनाथ के कई सम्वाद इसी कोटि में आते है। वास्तव में अर्थ.विस्तार की दृष्टि से सम्वाद में शब्द ही पर्याप्त नही होते। शब्दों के कई अन्तःसम्बन्ध ा होते है जिन्हे वे वाक्यों और वाक्य.समूह में धारण किये रहते है। ऐसी स्थिति में जब भाषा अवेचतन की गहराइयों से प्रवाहित होते है, तब वह अर्थ के दूसरे स्तरो पर क्रियाशील होते है।" प्रस्तुत नाटक में यह दुहरा स्तर कई सम्वादो में आसानी के परिलक्षित किया जा सकता है यथा एक प्रमाण देखिये–

स्त्री– यह चेहरा कुछ वैसा नही है–
बड़ी लड़की –कैसा?
स्त्री –तेरे डैडी जैसे?
बड़ी लड़की – डैडी जैसे? नहीं तो।
स्त्री –लगता तो है कुछ.कुछ।
बड़ी लड़की – वह तो इस आदमी का चेहरा बता रहा...........यह जो अभी गया है।

विवेच्य नाटक के सम्वादों की एक प्रमुख भाषागत विशेषता है–लय–सक्षमता। इस सम्बन्ध में डॉ. गोविन्द चातक की यह धारणा एकदम सत्य है कि 'आधे.अधूरे' के सम्वाद लय की दृष्टि से सबसे अधिक सक्षम है। वहाँ शब्दों और वाक्यों की लय, एक सम्वाद और दूसरे सम्वाद का परस्पर संघात, पात्रों का बोलने का लहजा, वाक्य विन्यास, शब्द क्रम सब मिलकर अद्भूत वाग्प्रवाह पैदा करते हैं। 'आधे.अधूरे', की भाषा इसलिए एकदम जबान पर चढ़ती है।" घर पर आने वालों के विषय में की गई महेन्द्र.सावित्री, सावित्री.सिघानिया की वार्ता, अशोक को लेकर की गयी बिन्नी. सावित्री की और बिन्नी के आगमन पर की गई महेन्द्र.सावित्री की वार्ता एवम् अन्त में जुनेजा.सावित्री के सम्वाद आदि इसी के सशक्त प्रमाण है।

समसामयिक विषय और एकदम मनोवैज्ञानिक कथ्य पर आधारित एवम् इन्ही के फलस्वरूप विभिन्न मानसिक ऊहापोहों से घिरे.भरे पात्रों वाला 'आधे.अधूरे' निश्चय ही एक नया प्रयोग है– कथ्य से लेकर भाषा मे भी गम्भीरता की अधिकता होने का खतरा स्वाभाविक ही था। यह राकेशजी का कौशल ही कहा जायेगा कि गम्भीर रचना को भी वे न केवल गम्भीराधिक्य से बचाए रहे है वरन् अपने गम्भीर कथ्य को आद्योपान्त एकदम सहज, सरल, स्वाभाविक

और सबसे अधिक आमफहम यानि बोलचाल की भाषा में ही अभिव्यक्त कर सके हैं, वह भी अत्यन्त सशक्त और प्रभावोत्पादक रूप में। सम्वादों में निहित अर्थ.गाम्भीर्य, अति का चुटीला पर समर्थ शब्दिक सार और सबसे अधिक सभी शास्त्रीय गुणों का पूरा.पूरा निर्वाह किये रखना इस सम्वाद भाषा का गुण तो है ही, लेखक का चमत्कार भी है। एकदम सच तो यह है कि सम्वाद शास्त्रीय और विशिष्ट कोटि की बन पड़े हैं। इसका महत्व उस समय और भी अधिक बढ़ जाता है, जबकि हम पाते है इसके सम्वाद और उनमें प्रयुक्त भाषा साहित्यिक नक्काशी से एकदम बची रही है, और उसके समझने, हृदयगत् करने के लिए न तो दिमाग पर जोर देना पड़ता है, न शब्दकोष के पन्ने पलटने पड़ते हैं। स्वयं लेखक भी इनके लिये 'विशिष्ट दर्शकवृन्द' की मांग नही करता। एकदम सच तो यह है कि यह सम्वाद.भाषा का आयोजन एक ओर यदि हिन्दी की नाट्य परम्परा से हट कर है त। दूसरी ओर स्वयं लेखक की नाट्य विकासोन्मुखता का साक्षी भी है। तीसरी ओर यह यदि लेखक कला भाषा का पूरा.पूर। प्रतिनिधित्व करता हैं तो चौथी ओर अपने समकालीन और भावी नाटककारों के सामने एक नूतन पथ भी निर्मित करता हुआ मिलता है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– सम्वाद किसे कहते है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 2– सम्वाद को नाट्य रचना का प्राण तत्व क्यों माना जाता है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 3– शास्त्रीय दृष्टि से सम्वाद के कौन.कौन से अनिवार्य गुण माने गये हैं?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 4– क्या 'आधे.अधूरे' के स्वगत या लम्बे सम्वाद को अनाटकीय कहा जा सकता है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 5–'आधे.अधूरे' नाटक के सम्वादों की एक प्रमुख भाषागत विशेषता लय–सक्षमता के सम्बन्ध में डॉ. गोविन्द चातक के विचार क्या है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 6–'आधे.अधूरे' के सम्वादों की एक महत्वपूर्ण विशेषता कथा और पात्रानुकूलता है –संक्षेप में टिप्पणी कीजिए।

उत्तर ....

....

....

....

2.7 'आधे.अधूरे' की भाषा

कोई भी साहित्यिक कृति भाषा के माध्यम से ही आकार ग्रहण कर सकती है। भाषा ही वह मूल तत्व है जो कृति के विचारों को एक स्थान पर लिखित रूप में निबद्ध करके उसे अक्षुण्ण बनाती है और रचनाकार के विचारों को जनसमूह में परिव्याप्त करती है। श्री मोहन राकेश की कृतियों पर इस दृष्टि से विचार करने के पूर्व हमें उनकी भाषागत पृष्ठभूमि पर भी विचार कर लेना चाहिए। स्वातन्त्रयोत्तर पीढ़ी ने पूर्ववर्ती पीढ़ी द्वारा व्यवहृत सांस्कारिक भाषा को छोड़कर उस भाषा को अपने साहित्य में स्थान दिया जो जन.सामान्यः की दैनन्दिन प्रयोग वाली व्यवहारिक भाषा थी। काव्य में यद्यपि काफी समय तक छायावादी मांसल शब्दों का प्रयोग होता रहा किन्तु कथा कृतियों में यह बदलाव बड़ी शीघ्रता से आया। राकेश के प्रारम्भिक दो नाटकों ('आषाढ़ का एक दिन' लहरों के राजहंस) में इसलिए जहाँ प्रसादीय भाषा के कुछ संस्कार कतिपय स्थलों पर मिलते हैं, वहाँ 'आधे.अधूरे' और उसके बाद के कृतित्व में एक स्पष्ट अलगाव की स्थिति दृष्टिगोचर होती हैं 'आधे.अधूरे' की भाषा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार शब्दों के सामान्य अर्थ से भी दूर उसकी ध्वनि तक पहुंचना चाहता है। इसीलिए मोहन राकेश ने उक्त नाटक के सम्वादों में संज्ञा, विशेषण एवम् क्रिया आदि के परवर्ती प्रयोग किये है। नाटक के पात्र किसी रूढ़ भाषा का प्रयोग न करके आम फहम अर्थात् अपने यथार्थ जीवन में व्यवहत होने वाली भाषा का ही सर्वत्र प्रयोग करते हैं किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि पात्रों के सम्वादों में भाषागत अश्लीलता को कहीं प्रश्रय मिल गया हो। जहाँ पर भी ऐसी स्थिति आयी है, नाटककार ने बिन्दु चिन्हों का प्रयोग करके वाक्यों में यत्र.तत्र रिक्तता छोड़ दी है। इससे दो प्रयोजन सिद्ध हुए है, एक तो अपशब्दों की सीमान्त अश्लीलता का प्रत्यक्ष कथन न कर उसे सांकेतित कर दिया गया है, दूसरे, शब्दों के पूरे अर्थ.जगत में मौन की गूँज से दर्शकों.पाठकों को परिचित कराया गया हैं नाटककार का यह भाषागत प्रयोग निससन्देह उसकी गरिमा को बढ़ाता ही है।

'आधे.अधूरे' नाटक की इस भाषागत विशिष्टता की विवेचना करते हुये श्री महेश आनन्द लिखते है– ''राकेश ने अपने सभी नाटकों में शब्दों के द्वारा सब–कुछ, कहने का प्रयास किया है, दृश्यों के माध्यम से जादुई चमत्कार दिखाने कोशिश नहीं की। 'आधे.अधूरे' में भी मुख्य भूमिका शब्दों की है, जिनके द्वारा समकालीन जिन्दगी के महत्वपूर्ण पहलू इस तीव्रता के साथ प्रस्तुत किये गये हैं कि वे दर्शक (पाठक) पर अपनी सच्चाई का सिक्का जमा देना चाहते हैं इस नाटक की भाषा अपने से पूर्ववर्ती हिन्दी नाटकों से एकदम अलग, आडम्बरहीन, बोलचाल की भाषा हैं नाटककार ने कहीं भी इसे साहित्यिक बनाने के चक्कर में व्यर्थ का रंग नहीं पोता।

सबसे बड़ी विशेषता इस भाषा की यह है कि बोलचाल की भाषा होते हुए भी यह एक हरकत की भाषा है। नाटक के प्रत्येक शब्द का सम्बन्ध पात्रों की क्रियाओं के साथ जुड़ा है–इसलिए कहीं भी सम्वाद पात्रों से अलग नहीं जान पड़ते। नाटक के शब्द स्वयं हरकत करते हुए मालूम पंड़ते हैं यही कारण है कि प्रत्येक पात्र दर्शक के सामने अपने. आप खुलता जाता है।

पात्रों के आक्रोश, कुढ़न और तनावपूर्ण वातावरण को प्रदर्शित करने के लिए ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग मिलता है जो स्वयं बोलते हुए चलते हैं 'रबड़ स्टैम्प' 'घरघुसरा', 'नाशुक्रे आदमी' जैसे शब्दों में पात्रों का आक्रोश तो भरा ही है–साथ ही ये शब्द पात्रों के समूचे व्यक्तित्व को स्पष्ट कर देते हैं। कहीं.कहीं ओह्.ओह् या हूँ हूँ हूँ हूँ शब्द केवल ध्वनिसूचक न होकर पात्रों की टूटन और झल्लाहट को भी व्यक्त करते है।

नाटक के सम्वाद नाट्य.स्थितियों के अनुकूल है।–''इसी विशेषता के कारण 'आधे.अधूरे' की भाषा थोपी हुई भाषा नहीं लगती बल्कि नाट्य.स्थितियों और पात्रों की क्रियाओं से जुड़ी हुई लगती हैं। लेकिन नाटककार ने इसके बिना किसी नाटकीय प्रयोजन के किसी शब्द का अनावश्यक प्रयोग नहीं किया। यही कारण है कि कोई भी सम्वाद रंग.स्थिति में बाधक नहीं बनता।''

डॉ. जीवनप्रकाश जोशी उन्हें शब्द का जादूगर कहते है और उनकी नाट्य.भाषागत देन का महत्तम् स्वीकारते है। इसी शब्द.शोध पर मोहन राकेश को नेहरू फेलोशिप मिली थी किन्तु दुर्भाग्य से वह उसे पूरा किए बिना ही चल बसे। डॉ. जोशी ने इसी प्रसंग में लिखा भी है– ....''और जब मैं यह कह रहा हूँ तब मेरे दिमाग में इसी नाटककार लिखित 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा का गठन, शब्द.चयन, आधुनिक व्यंग्य को व्यक्त करने वाला चटखारा, आम आदमी का अर्थ उच्चारण संक्षेप में आज की जबरदस्त आम फहम हिन्दुस्तानी भाषा की ध्वनि.धारा का करेंट भी दौड़ रहा हैं। अगर ऐसा न होता तो मनोवैज्ञानिक कारण इतना प्रबल न होता कि मोहन राकेश के पहले दो नाटकों की भाषा के ऋण पक्ष पर इतना कहने की भी जुर्रत होती है।''

'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा यथार्थ के एकदम निकट होने के कारण साहित्यिकता से एकदम हटकर है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए स्वयं राकेश का यह कहना है कि– ''साहित्यिकता आज के जीवन की मनोदशाओं तथा लय को अभिव्यक्ति नहीं दे सकती'' और इसी कारण उन्होंने न तो नाटकीय दृश्यों पर ध्यान दिया और न साहित्यिक रूढ़ भाषा पर, वरन् सीधी.सादी बोलचाल की अनगढ़ भाषा के माध्यम से नाटकीय 'थीम' को दर्शकों.पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। वास्तव में 'आधे.अधूरे' की सफलता का यही मुख्य रहस्य है।

अब हम 'आधे.अधूरे' नाटक में उपलब्ध भाषा.रूपों पर विचार करेंगे। इस नाटक में यद्यपि सर्वत्र बोलचाल की भाषा ही प्रयुक्त हुई है, तथापि कतिपय स्थलों पर संस्कृतनिष्ठ भाषा भी उपलब्ध होती है। इस प्रकार दो प्रकार की भाषा का प्रयोग यहाँ हुआ है–

1. सरल.स्वाभाविक बोल.चाल की भाषा, और
2. परिनिष्ठित हिन्दी खड़ी बोली।

सरल.स्वाभाविक बोलचाल की आम.फहम भाषा का प्रयोग नाटक में सर्वत्र हुआ है किन्तु जैसा कि हम अभी.अभी कह चुके हैं, परिनिष्ठित हिन्दी खड़ी बोली का प्रयोग भी कतिपय स्थलों पर हुआ हैं। यद्यपि यह प्रयोग केवल सिंघानिया के प्रसंग में हुआ है और वह भी हास्य और व्यंग्य की सृष्टि के लिए ही तथापि इस एकाध प्रयोग ने नाटक की प्राणवत्ता में अभिवृद्धि ही की है। इस सन्दर्भ में उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे है–

पुरुष दोः ना, बिलकुल नहीं। – अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क है कंपनी के, सो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते हैं। जापान से तो पूरा एक प्रतिनिधि मण्डल ही आया हुआ था पिछले दिनों। कुछ भी कहिए, जापान ने इन सब की नाक में नकेल कर रखी है। आजकल, अभी उस दिन मैं जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था।

उक्त भाषा.रूपों की हमने केवल प्रसंगात् चर्चा की है, केवल विवेचना की सम्यकता के ही निर्वाह के लिए। प्रायः यह देखा जाता है कि नाटक के सृजन के पीछे नाटककार के जो विचार अथवा उद्देश्य होते है। भाषा की कमजोरी से वह उतने सुगठित रूप में प्रकट नहीं हो पाते, इसीलिए नाटकीय भाषाशैली में कतिपय गुणों की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही इतनी भाव सबल और सम्प्रेषणीय है। ये गुण नाटक में सर्वत्र उपलब्ध होते है। संक्षेप में, इन गुणों पर भी दृष्टिनिक्षेप कर लिया जाय।

1. सरलता,रोचकता एवम् सुबोधता।
2. प्रवाहमयता।
3. पात्रानुकूलता।

4. विषयानुकूलता।
5. व्यंग्यात्मकता।
6. ध्वन्यात्मकता।
7. आधुनिक बोध।
8. स्पष्टता।
9. मुहावरों का शिष्ट प्रयोग।

अब हमें संक्षेप में उपर्युक्त सभी विशेषतायें की दृष्टि से 'आधे.अधूरे' की समीक्षा करेंगे।

1.सरलता, रोचकता और सुबोधता– नाटक की भाषा को सरल, सुबोध और रोचक होना चाहिए। यह गुण नाटकीय भाषा में नहीं है, तो उसमें स्वाभाविकता का भी रंचमात्र समावेश नहीं हो पायेगा। स्वाभाविकता लाने के लिए इस प्रकार नाटकीय भाषा का सरल, रोचक और सुबोध होना अपरिहार्य है। 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा में यह गुण सर्वत्र मिलता है। भाषागत सारल्य के कारण सर्वत्र रोचकता प्रवाहमान है और अपनी.सुबोधता के कारण ही वह भाव.संप्रेषण में पूर्ण सक्षम हैं यहाँ हम इस गुण से परिपूर्ण भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है –

पुरूष तीनः घर पर कोई नहीं है?

स्त्री : बिन्नी है अंदर।

पुरूष तीन : यहीं है वह ? उसका तो सुना था कि –।

स्त्री : हाँ! घर आयी हुई है कल से।

पुरूष तीनः तब का देखा है उसे। कितने साल हो गये।

स्त्रीः अब आ ही रही होगी बाहर। –देखो, तुमसे बहुत–बहुत बातें करनी है मुझे आज।

पुरूष तीनः मैं सुनने के लिए ही तो आया हूँ फोन पर तुम्हारी आवाज से ही मुझे लग गया था–।

स्त्री : मैं बहुत – वो थी उस वक्त।

पुरूष तीनः वह तो इस वक्त भी हो।

स्त्री : तुम कितनी अच्छी तरह समझते हो मुझे–कितनी अच्छी तरह। इस वक्त मेरी जो हालत है अन्दर से–

इस प्रकार की भाषागत सारल्य, रोचकता और सुबोधता नाटक में कहीं भी देखी जा सकती है।

2. प्रवाहमयता– नाटकीय भाषा में एक ऐसा प्रवाह, होना चाहिए कि कथा.गति में अथवा सम्वादों में कहीं भी विच्छिन्नता प्रतीत न हो बल्कि भाषा एवम् भावों में परस्पर अविच्छिन्नता होना अनिवार्य है ताकि वाक्यों एवम् कथानक में सहज रूप से भाव प्रवाहमान रह सके और उसमें कहीं भी व्यवधान उपस्थित न हो सके। जिस भाषा में प्रवाह नहीं होता वह ठस और जड़ता ग्रहण कर लेती है और प्रकारान्तर से भाव.सम्प्रेषण में बाधक बनती है। 'आधे.अधूरे' नाटक में प्रयुक्त भाषा में प्रवाहमयता का गुण अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में है जिससे कहीं पर भी भाव. सम्प्रेषण में व्याघात उत्पन्न नहीं होता। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

पुरूष चार : असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र कि जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में तो साल दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र, कोई जुनेजा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती, यही सब महसूस करतीं, क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक

साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह नहीं मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं। वह आदमी भी इसी तरह तुम्हें अपने आसपास सिर पटकता और कपडे फाड़ता नजर आता है।

3.पात्रानुकूलता– जैसा कि हम सम्वादों वाले अध्याय में यह स्पष्ट कह चुके हैं कि नाटकीय भाषा को उस नाटक के पात्रों के सर्वथा अनुकूल होना चाहिए। इसके लिए नाटककार को अमुक पात्र का स्तर, उसका रहन.सहन बौद्धिकता और सामाजिकता का पर्याप्त ध्यान रखना पड़ता है। राकेश ने, चाहे वह कहानी हो, उपन्यास हो अथवा नाटक, केवल शहरी पात्रों को ही अपने साहित्य में रखा ओर यही शहरीकरण उसकी भाषा को भी नितान्त शहरी बना देता है, जिसमें आम शहरीपन की बू आती हैं ऐतिहासिक नाटकों को छोड़कर उनकी सभी कृतियों में इस हिन्दी. अंग्रेजी.उर्दू मिश्रित 'शहरी भाषा' को देखा जा सकता है। इतना होने पर भी यह भाषा इतनी सपाट और प्रभविष्णु है कि सीधे मर्मच्छेदन करती है। 'आधे.अधूरे' में भी राकेश ने अपने शहरों पात्रों के कारण शहरी भाषा को व्यवहत किया है जो सर्वथा पात्रों के अनुकूल है। इस भाषा से एक प्रमुख लाभ यह हुआ है कि पात्रों का स्तर व्यंजित होने के साथ ही उनकी मनोदशा एवम् बौद्धिकता पर से भी परदा उठ गया है, यथा यह उदाहरण देखिये–

स्त्री :– (छोटी लड़की से) तू फिर एक किताब फाड़ लायी है आज?

छोटी लड़कीः अपने आप फट गये, तो मैं क्या करूँ? आज सिलाई की क्लास में फिर वही हुआ मेरे साथ । मिस ने कहा–।

स्त्री :– तू मिस की बात बाद में करना। पहले यह बता कि

छोटी लड़की :– रोज कहती हो बाद में करना, आज भी मुझ रोल लाकर न दीं, तो मैं स्कूल नहीं जाऊँगी कल से। मिस ने सारी क्लास के सामने मुझसे कहा कि

स्त्री : तू और तेरी मिस! रोग लगा रखा है जान को।

छोटी लड़की : तो उठा लो न मुझे स्कूल से। जैसे शोकी मारा–मारा फिरता है सारे दिन मैं भी फिरती रहा करूंगी।

बडी लड़की : तुझे तमीज से बात करना नहीं आता? बड़ा भाई है वह तेरा।

छोटी लड़की :फिरता नहीं वह मारा–मारा सारा दिन?

बड़ी लड़की : किन्नी।

छोटी : तुम यहाँ थीं, तो क्या–क्या कहा करती थी उसके बारे में ? तुम्हारा भी तो बड़ा भाई है। चाहे एक ही साल बड़ा है, है तो बड़ा ही।

बड़ी लड़की : (स्त्री से) ममा, तुमने इस लड़की की जबान बहुत खोल दी है।

उपर्युक्त सम्वाद में तीनों पात्रों की भाषा में बौद्धिक स्तर का अन्तर तो है ही, साथ ही उसमें किन्नी का आक्रोश और स्त्री की झुंझलाहट भी ध्वनित हो रही है।

4. विषयानुकूलता– 'आधे.अधूरे' नाटक में विषयानुकूलता का गुण भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। कथानक में जहाँ पर जैसा प्रसंग है आया है, वहाँ पर वैसी भाषा प्रयुक्त हुई हैं यदि प्रसंग हास्य व्यंग्यप्रधान तो भाषा भी हास्य एवम् व्यंग्य प्रधान हो गयी हैं। नाटक के अंतिम सम्वादों में जुनेजा और सावित्री परस्पर स्वयं सावित्री और महेन्द्रनाथ के चरित्रों को विश्लेषित करते हैं तो वहाँ पर विश्लेषण प्रधान भाषा ही व्यवहत हुई है सावित्री और महेन्द्रनाथ का एक सम्वाद हम यहाँ पर प्रस्तुत कर रहे हैं जो पारिवारिक तनाव एवम् महेन्द्रनाथ के कुण्ठाग्रस्तपूर्ण प्रसंग को उद्घाटित कर रहा है–

स्त्री :– यह सब कब.कब मिला है इनसे किसी को भी इस घर में है? किस माने मे ये कहते है कि ?

एक पुरुष :– किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़ स्टैम्प भी नही, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूँ– बार.बार घिसा जाने वाला रबड़ टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है एक भी ऐसा वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में? नहीं बता सकता न?

स्त्री : मैंने एक छोटी–सी बात पूछी है तुमसे ।

पुरूष एक : हाँ – जरा–सी ही बात तो है यह, अधिकार, रूतबा, इज्जत ,यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे। मेरे भरोसे तो सब.कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़.ही सकता है। (लड़के की तरफ इशारा करके) यह अब तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से । (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बताये एक रात घर से क्यों भाग गयी थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिल्कुल सामने आकर) और तुम भी तुम भी इतने सालों से क्यों चाहती रही हो कि.....?

स्त्री : (बौखलाकर शेष तीनों से) सुन रहे हो तुम लोग?

पुरूष एक : अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियां चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूं क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

स्त्री : मैं नहीं जानती तुम सचमुच ऐसा महसूस करते हो या .....?

पुरूष एक : सचमुच महसूस करता हुं। मुझे पता हैं मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर–ही–अन्दर इस घर को खा लिया है। (बाहर के दरवाजे की तरफ चलता) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है। (दरवाजे के पास रूककर) और बचा भी क्या है। जिसे खाने के लिए और रहता रहूँ। यहाँ? (चला जाता है)।

उपर्युक्त सम्वाद की भाषा में जसे तल्खी है वह प्रसंग के सर्ववा अनुकूल और प्रभावी है।

5. व्यंग्यात्मकता– 'आधे.अधूरे' नाटक का समग्र कथानक (वर्तमान विसंगतिय) एवम् आर्थिक सुविधा भोग पर एक क्रूर व्यंग्य है और इस व्यंग्य को मुखर करने में जिस भाषा को राकेश ने प्रयुक्त किया है वह भी वर्तमानिक संदर्भों से सम्पृक्त है। इसलिए स्वभावतः उसमें व्यंग्यात्मकता का समावेश हो गया हैं यह व्यंग्यात्मकता शब्दों और उनके अर्थो को तराशती हुई.सी प्रतीत होती है, विशेष रूप से महेन्द्रनाथ के परिवार के सदस्यों की भाषा में तो एक. दूसरे के लिए प्रत्येक कही गयी बात में जैसे केवल व्यंग्य ही है। एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है–

स्त्री : वैसे हजार बार कहोगे कि लड़के की नौकरी के लिए किसी से बात क्यों नहीं करती? और जब मैं मौका निकालती हूँ उसके लिए तो–।

पुरूष एक : हाँ हाँ हाँ सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मनाते कि इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से –।

पुरूष एक : मैं नहीं शुक मनाता ? जब जब किसी नये आदमी का आना.जाना शुरू होती है यहाँ, मैं हमेशा शुक मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था, फिर मनोज आने लगा था –

स्त्री : (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या–क्या बात रह गयी है कहने को बाकी ? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरूष एक : क्यों जगमोहन का नाम मेरी जुबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए ।

स्त्रीः (गहरी वितृष्णा के साथ) जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो उससे तो मन करता है कि आज ही मैं –।

6. ध्वन्यात्मकता – कुछ काल पूर्व तक नाटकीय भाषा में इस गुण का स्थान तक नहीं था किन्तु इधर नये रचनाकारों को लगा कि शब्दों के मात्र अर्थ ही महत्वपूर्ण नहीं है, उनकी ध्वनि की भी अपनी एक विशिष्ट अस्मिता

होती है। कई बार तो शब्द के अर्थ से उसकी ध्वनि ही अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। यह शब्दिक ध्वन्यात्मकता कहीं तो पात्रों के व्यंग्य को मुखर करती है और कही वार्तालाप में परस्पर उपेक्षा दर्शाने हेतु भी प्रयुक्त हुई है। सावित्री, महेन्द्रनाथ, बिन्नी आदि के सम्वादों में प्रयुक्त यह भाषागत ध्वन्यात्मकता 'आधे.अधूरे' की भावाभिव्यक्ति को अधिक सम्प्रेषणीय एवम् सार्थक बनाती है यथा–

(1) स्त्री : औ ह ह ! जुनेजा के यहाँ। –हो आओ।

(2) स्त्री: हाँ ह ह , दिखा आओ मुंह जाकर।

(3) पुरूष एक : (जैसे अखबार में कुछ पढ़ता हुआ) हूँ–हूँ–हूँ–हूँ–हूँ

(4) बड़ी लड़की: (बचते स्वर में) हाँ ह हं , बहुत खुश हूँ।

उपर्युक्त रेखांकित शब्दों में ध्वन्यात्मकता की प्रभुविष्णुता स्पष्ट देखी जा सकती है।

7. आधुनिक बोध – महानगरीय पृष्ठभूमि में लिखा होने के कारण 'आधे.अधूरे' में आधुनिक बोध की तीव्र अभिव्यक्ति हुई है और इस आधुनिक बोध को समग्रता प्रदान करने के लिए वैसी ही जीवन भाषा का प्रयोग अवश्यसम्भावी था राकेश ने इस नाटक के जिस समस्या.पारिवारिक तनाव के सन्दर्भ में महानगरीय सन्त्रास बोध ा को प्रस्तुत किया है वह यथार्थपरक है। अतः स्पष्ट है कि नाटक में आधुनिक बोधपरक भाषा ने नाटक को गहरी अर्थवत्ता प्रदान की है। इस प्रकार की भाषा सर्वत्र उपलब्ध होगी।

8. स्पष्टता – एक यथार्थवादी नाटक के प्रस्तुतीकरण में भाषागत स्पष्टता का गुण होना भी अपरिहार्य है। थीम चाहे लाख यथार्थवादी हो किन्तु यदि भाषागत लिजलिजी रोमानियत और फैन्तासी से परिपूर्ण है तो नाटक की सफलता संदिग्ध हो जाती है। 'आधे.अधूरे' नाटक में यह का यह भाषागत स्पष्टता सर्वत्र देखी जा सकती है। न कही शब्दों में कोई रंगीन पालिश और न ही चमत्कारपरक शब्दों की योजना। जो कुछ भी कथ्य है उसे साफ और सीधी.सादी भाषा में कह दिया गया है। उदाहरणार्थ–

स्त्री : क्या कह रही है तू ?

छोटी लड़की : बताओ, चलता है कुछ पता? स्कूल से आयी तो, घर पर कोई भी नहीं था। और अब आयी हूँ, तो तुम भी हो, डैडी भी है, बिन्नी दी भी है – पर सब लोग ऐसे चुप है जैसे –

स्त्री : (उसकी तरफ आती) तू अपना बता कि आते ही चली कहाँ गयी थी?

छोटी लड़की : कहीं भी चली गयी थी। घर पर था कोई जिसके पास बैठती यहाँ? – दूध गरम हुआ है मेरा?

स्त्री : अभी हुआ जाता है।

छोटी लड़की : अभी हुआ जाता है। स्कूल में भूख लगे तो कोई पैसा नहीं होता पास में। और घर आने पर घंटा. घंटा दूध ही नहीं होता गरम।

9. मुहावरों का शिष्ट प्रयोग – नाटकीय भाषा को जीवन्त धरातल प्रदान करने में मुहावरेदार भाषा की भी अपनी एक विशिष्ट भूमिका है। नाटक के कथ्य को अधिक सरल और भाव.सबल बनाने के लिए अक्सर नाटककार को उसमें मुहावरों को शामिल करना पड़ता है इस तथ्य के प्रति भी कृतिकार को जागरूक रहना चाहिए। 'आध े.अधूरे' का स्रष्टा शहरी लेखक है इसलिये उनके नाटक में मुहावरों का कम ही प्रयोग हुआ है किन्तु जो मुहावरे प्रयुक्त हुए है वे सर्वथा सार्थक और भाव.सम्प्रेषण में सक्षम है वास्तव में नाटक में वही मुहावरे प्रयुक्त हुये है जो आम आदमी की भावभिव्यक्ति के आम शब्द है कतिपय मुहावरे इस प्रकार है– हेर.फेर करना, जिदगी काटना, ठिकाने लगााना, मुंह दिखाना, जिन्दगी गुम होना, होश आना, घुल.घुलकर मरना, चोट पहुचाना, जान को राग लगाना, मन का गुबार निकालना, मारा.मारा फिरना, जबान खोलना, रासें कसना, मन का गुबार निकालना, जिन्दगी का भार ढोना,

जिन्दगी की कमाई, जिन्दगी चौपट करना, हड्डियों में जंग लगना, जानमारी करना, दिन.रात एक करना आदि। इस सन्दर्भ में कुछ वाक्य इस प्रकार है ––

1. जिस तरह तुमने ख्वार की है अपनी जिन्दगी उसी तरह वह भी ...... ।
2. शुक नहीं मनाते कि एक इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से––।
3. क्यों–जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नही कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए ?
4. तुम हमेशा बात को ढंकने की कोशिश क्यों करती हो ?
5. कितने साल हो चुके है मुझे जिन्दगी का भार ढोते ?

भाषा – रूप

'आधे.अधूरे' नाटक के विषय में पहले ही हम कह चुके हैं कि वह एक शहरी लेखक है इसलिए ग्रामीण आँचलिकता उसके कृतित्व में उपलब्ध नही होती। हाँ, महानगरीय जीवन को अभिव्यक्ति देने के लिए नाटक में सर्वत्र महानगरीय भाषा ही प्रयुक्त हुई है, जिसमें हिन्दी के शब्द तो है ही, उसके साथ उर्दु, अंग्रेजी और एकाध स्थलों पर पंजाबी परिवार का कथानक होने के कारण पंजाबी शब्द इस प्रकार परस्पर सम्बद्व है कि उन्हें अलग.अलग किया ही नहीं जा सकता और यह सम्बद्वता नगरीय व्यक्तियों की बोल.चाल का एक प्रमाणिक दस्तावेज है। प्रत्येक का विवरण हम नीचे दे रहे है

1. हिन्दी के तत्सम शब्दों का प्रयोग– नाटकीय भाषा में प्रायः इस प्रकार के शब्दों का अत्यल्प और विशेष प्रयोजनार्थ ही प्रयोग हुआ है। विशेष रूप से सिंघानिया वाले प्रसंग में सिंघानिया के चरित्र को स्पष्ट करने एवम् उस पर व्यंग्य करने के लिए इस प्रकार के शब्दों की एक खास भूमिका है। यथा

'आप क्या सोचते है आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है?'

''अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क है न कम्पनी के, तो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते है जापान से तो एक पूरा प्रतिनिधि ा मण्डल ही आया हुआ था पिछले वर्ष की आद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था ––''

2. हिन्दी के तद्भव शब्दों का प्रयोग– प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए नाटक में हिन्दी के तत्भव शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है, जिससे नाटकीय भाषा में स्वाभाविकता सपाटबयानी और विकास का गुण आ गया है। ये शब्द हैं – घर (गृह), सीख (शीक्षा), सांस (श्वास), हाथ (हस्त), दुध (दुग्ध), भूख (वुभुक्षा), आंखें (अक्षि), होठ (ओष्ठ), मां (मातृ) ; साड़ी (साटक), आदि –आदि ।

3. देशज शब्दों का प्रयोग– तद्भव शब्दों के अतिरिक्त कुछ देशज शब्द भी नाटकीय भाषा में व्यवहत हुए हैं जिनसे भाषा की सम्प्रेषणीयता बढ़ी है, यथा – ढर्रा, चिढ, मुनिया, चख.चख, किट्.किट्, लोदा, खीझना, तिंलमिलाना आदि।

4. हिन्दी शब्दों एवम् अक्षरों के कुछ विशिष्ट प्रयोग– नाटकीय भाषा को भाव.सबल बनाने एवम् प्रेक्षक पर पात्रों की मनः स्थिति के दबाव का सम्प्रेषण करने के लिए 'आधे.अधूरे' नाटक में कुछ हिन्दी शब्दों अथवा अक्षरों को विशिष्ट वाच्यार्थ प्रस्तुत किया गया है। यह प्रयोग दो प्रकार से हुए है, प्रथम तो यह कि शब्द के शुद्व उच्चारण के साथ पात्र की मानसिकता एवम् व्यर्थता बोध को स्पष्ट करने के लिए उससे मिलता.जुलता निरर्थक उच्चारण का प्रयोग और दूसरा यह कि पात्र की एक विशिष्ट भांगिमा के ध्वनन के लिए प्रथमाक्षर का दो.दो बार उच्चारणार्थ प्रयोग। दोनों रूपों के उदाहरण द्रष्टव्य है––

(अ) 1. तो पहले क्यों नहीं बताया तूने? मैं ऐसे ही ये सेंडविच.ऐंडविच –

2. यही चाय.वाय के बार में।

3 सब पिचक जाते हैं गाल.वाल।

4. कोई बच्चा.वच्चा?

(ब) शब्द के प्रथमाक्षर का दो बार प्रयोग जो पात्र की विशिष्ट भंगिमा के ध्वनि देता है

(1) जब नहीं हो.होता है, तब सब लोग होते हैं सिर पर। और जब हो होना होता है, तो कोई भी नही दि–दिखता कहीं।

(2) कब आयी है? यहाँ पर को .कोई भी क्यों नहीं था? तू .तूम भी कहाँ थी थोड़ी देर पहले?

(3) वह भी क.कहाँ था इस वक्त? मेरे कान खींचने के लिए तो पता नहीं क कहां से चला आयेगा। पर ज. जब सुरेखा की ममी से बात करने की बात थी , त.तो .....

5. बिन्दु चिन्हों का प्रयोग – जैसा कि हम अन्यत्र भी इसी अध्याय में कह चुके हैं कि इस नाटक में अर्थ. व्यंजना को अधिक भास्वर बनाने एवम् सीमान्त अश्लीलता के वाचिक प्रयोग से बचने के लिए अधिकांश स्थलों पर बिन्दु चिन्हों के द्वारा अर्थ को व्यंजित किया है। इसके अतिरिक्त मानसिक उद्वेग, झुंझलाहट एवम् वार्तालाप में गति लाने के लिए भी वाक्यों को झटके के साथ तोड़ गया है और इस तोड़क प्रक्रिया ने भावों को कुशलता के साथ सम्प्रेषित किया है। एक उदारहण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

बड़ी लड़की : तो नौकरी के सिवा ऐसा क्या है जो तू ....?

लड़का : यह मैं नहीं कह सकता। सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि जिस चीज में मेरी अन्दर से दिलचस्पी नहीं है।

स्त्री : दिलचस्पी तो तेरी–।

बड़ी लड़की : ठहरो ममा–।,

स्त्री : तू ठहर, मुझे बात करने दे। (लड़के से) दिलचस्पी तो तेरी सिर्फ तीन चीजों में है –– दिन भर ऊंघने में, तसवीरें काटने में और –– घर की यह चीज वह चीज ले जाकर ––।

लड़का : (कड़वी नजर से उसे देखता) इसे घर कहती हो तुम?

स्त्री : तो तू इसे क्या समझकर रहता हैं यहाँ?

लड़का : मै. इसे –।

इस सम्वाद में तीनों पात्रों के वाक्य बीच.बीच में टूटे हैं और उनकी पूर्ति बिन्दु चिन्हों द्वारा की गयी है जिनसे अव्यक्त भाव भी पूर्णताः व्यक्त हो गये हैं। मुख्यतः लड़के के आकोश एवम् घर की आवारगी का ध्वनन तो इन बिन्दु चिन्हों ने बहुत ही अधिक स्पष्ट किया है।

6. विशिष्ट अभियक्ति के लिए तोतली भाषा का प्रयोग –अशोक के व्यवहार से जब सावित्री अत्यधि ाक खिन्न हो उठती है तो अनायास ही उसके मुख से तोतली भाषा के शब्द फूट पड़ते है और यह तोतले शब्द सावित्री के आकोश, घृणा एवम् झुझंलाहट को प्रखरता के साथ व्यंजित करते है। अशोक के चरित्र पर सीधे आक्षेप लगाते हुए सावित्री उससे कहती है ।–

''तुछ नई तैना है तुजे। बैथदा लुल छी पल और तछबीलें तात। तितिनी तछबीलें लाती ऐं अब तल लाज मुन्ने ने –

7. उर्दू शब्दों का प्रयोग – नाटक में महानगरीय जनसामान्य की भाषा प्रयोग होने से उसमें उर्दू शब्दों का बहुलता के साथ प्रयोग होना स्वाभाविक है। यद्यपि समस्त नाटकीय पात्र हिन्दु हैं किन्तु फिर भी वे उर्दू शब्दों से युक्त हिन्दुस्तानी जबान बोलते है, जिसमें नाटक के कथ्य को सम्प्रेषित करने में पूरी.पूरी सहायता मिलती है, यही

कारण है कि नाटक के प्रायः प्रत्येक कथोपकथन में हिन्दी के साथ उर्दू शब्दों का व्यवहार हुआ है, यथा– जरूरी, आदत, फर्ज, आखिर, मातहत, ज्यादा, वक्त, गुजरेगा, शरम, जरूरत, इंतजार, फिलहाल, कारोबार, जिन्दगी, गर्द, नाहक, हमेंशा, नुकसान मदद, तकदीर, साफ, जमा. खर्च, हिस्सेदार, शुरू, खर्च, शायद, तय आदि.आदि ।

8. अंग्रजी शब्दों का प्रयोग––भाषा को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए वाक्यों में यत्र .तत्र अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। वाक्यों में ही नही, स्वंय नाटककार ने रंग.संकेतो में भी इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग खुलकर किया है, यथा – सिगार, कबर्ड, स्कूटर.रिक्शा, डैडी, ममा, स्कूल, बैग, क्लास, मिस, फाउण्डर्स डे, पी. टी. किट, क्लिप, फ्रेंच कट, शेव, रबड़.स्टैम्प आदि ।

नाटक में प्रयुक्तं भाषा.रुपों का विवेचन करने के उपरान्त संक्षेप में उसकी शैली पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। 'आधे.अधूरे' नाटक में मुख्य रूप से तीन प्रकार की शैलिया प्रयुक्त हुई है, जिनका उदाहरण सहित वर्णन हम आगे कर रहे हैं।

1. नाटकीय शैली – नाटक होने के कारण उसमें नाटकीय शैली होना स्वाभाविक ही है। इससे नाटकीय कथ्य का पूर्वापर सम्बन्ध सहज ही में हो गया है। सम्वादों में सर्वत्र यह नाटकीय शैली देखी जा सकती हैं। एक उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे है–

बड़ी लड़की : तबीयत ठीक नहीं उनकी?

पुरुष चार : तबीयत भी ठीक नहीं और वैसे भी – मैं तो समझता हूँ महेन्द्रनाथ खुद जिम्मेदार है अपनी यह हालत करने के लिए?

बड़ी लड़की : (उस प्रकरण से बचना चाहती) चाय बनाऊं आपके लिए?

पुरुष चार : (चाय का सामान देखकर) किसके लिए बनाए बैठी थी इतनी चाय ? पी नही लगता किसी ने ।

बड़ी लड़की : (असमंजस में) यह मैने ––– बनायी थी क्योंकि –––सोच रही थी कि–––।

पुरुष चारः (जैसे बात को समझकर) वे लोग जल्दी चले गये होगें। सावित्री को पता था न मैं आने वाला हूँ?

2. यथार्थवादी शैली––एक यथार्थपरक थीम की प्रस्तुत करने में यथार्थवादी शैली ही पूर्णत सक्षम हो सकती है। यही कारण है कि आलोच्य नाटक से यथार्थवादी शैली बड़ी सुष्ठ रूप से प्रयुक्त हुई है और इससे बढ़ कर भी उसकी विशेषता इसमें है कि इस शैली में व्यंग्यात्मकता भी समाविष्ट हो गयी है। भाषाशैली की दृष्टि से यह समन्वित शैली अपना विशेष महत्व रखती है, यथा –

लड़का : नहीं बरदाश्त है, तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर पर कि जिनके आने से?

स्त्री : हाँ हाँ.बता, क्या होता है जिनके आने से ।

लड़का : जिनके आने से हम जितने छोटे है, उससे और छोटे हो जाते है अपनी नजर में।

स्त्रीः (कुछ स्तब्ध होकर) मतलब?

लड़का : मतलब वही जो मैने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है?

स्त्रीः तू क्या समझता है। किस वजह से बुलाया है?

लडकाः उसकी किसी ''बडी'' चीज की वजह से। एक को कि वह इंटलेक्चूअल है दूसरे को कि उसकी जनखाह पांच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है आदमी को नहीं उसकी तनखाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

यथावादी शैली के ऐसे ही अन्य अनेक उदाहरण नाटक में अन्यत्र भी देखे जा सकते है।

3.विश्लेषणात्मक शैली – इस प्रकार की शैली का प्रयोग पात्रों के मनोविश्लेषण हेतु किया जाता है। वर्णन द्वारा पात्र का मनोविश्लेषण करने की सुविधा तो नाटककार को होती नही, वह केवल पात्रों के सम्वादों के माध्यम से ही (कभी.कभी स्वगत कथनो के द्वारा भी) अमुक पात्रों को विश्लेषित करता है। 'आधे.अधूरे' नाटक में सावित्री के स्वगत.कथन एवम् सावित्री और जुनेजा के लम्बे सम्वाद में इस शैली के दर्शन किए जा सकते है। नाटकीयता की दृष्टि से ये स्वगत.कथन और सम्वाद अनुपयुक्त भले ही हों किन्तु सावित्री के मानसिक ऊहापोह एवम् अन्तर्द्वन्द्व को यह शैली पूर्णतः स्पष्ट कर देती है।

समग्रतः यही कहा जा सकता है कि 'आधे.अधूरे' के कथ्य को यथार्थ रूप में पाठकों.दर्शकों तक सम्प्रेषित करने में राकेशजी की भाषा.शैली का अपूर्व योगदान है और नाटक की सफलता का भी बहुत कुछ श्रेय इसी जनजीवन की आम भाषा और यथार्थपरक शैली को ही है। वास्तव में नाटक में उठायी गयी समस्या को इसी भाषा.शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता था और मोहन राकेश ने वही किया भी।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1– 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा में कौन कौन से गुण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 2– नाटककार ने बिन्दु चिन्हों का प्रयोग किस उद्देश्य से किया है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 2– नाटककार ने बिन्दु चिन्हों का प्रयोग किस उद्देश्य से किया है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 3–'आधे.अधूरे' नाटक में मुख्य रूप से कितनी और कौन कौन सी शैली प्रयुक्त हुई है?

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 4— नाटक में कुछ देशज शब्दों का प्रयोग भी नाटककार ने किया हैं कुछ उदाहरण लिखिए।

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 5— नाटक में प्रयुक्त मुहावरों के कुछ उदाहरण बताइये।

उत्तर ....

....

....

....

प्रश्न 6— सत्य/असत्य लिखिए—

1) नाटक में समस्त नाटकीय पात्र हिन्दु हैं किन्तु फिर भी वे उर्दू शब्दों से युक्त हिन्दुस्तानी जबान बोलते हैं।

उत्तर— ——————

2) नाटक की सफलता का बहुत कुछ श्रेय जनजीवन की आम भाषा और यथार्थपरक शैली को ही है।

उत्तर— ——————

3) नाटक में तद्भव शब्दों के अतिरिक्त कुछ देशज शब्द भी नाटकीय भाषा में व्यवहृत हुए हैं जिनसे भाषा की सम्प्रेषणीयता में कमी आयी है।

उत्तर— ——————

प्रश्न 7— रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

(तत्भव, ध्वन्यात्मक, विश्लेषणात्मक, महानगरीय, मनोविश्लेषण)

1) महानगरीय जीवन को अभिव्यक्ति देने के लिए नाटक में सर्वत्र ———भाषा ही प्रयुक्त हुई है।

2) पात्रों के आक्रोश, कुढ़न और तनावपूर्ण वातावरण को प्रदर्शित करने के लिए ———शब्दों का प्रयोग मिलता है

3) 'आधे.अधूरे' नाटक में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग पात्रों के ——————हेतु किया गया है।

4) प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए नाटक में हिन्दी के ———शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है, जिससे नाटकीय भाषा में स्वाभाविकता सपाटबयानी और विकास का गुण आ गया है।

5) 'आधे.अधूरे' नाटक में सावित्री के स्वगत.कथन एवम् सावित्री और जुनेजा के लम्बे सम्वाद में ——————शैली के दर्शन किए जा सकते हैं।

2.8 सारांश

श्री मोहन राकेश भारत के स्वातन्त्रयोत्तर काल के लब्धप्रतिष्ठ रचनाकार थे। यह वह युग है जबकि विज्ञान, मनोविज्ञान, औद्योगिक परिवर्तन तथा भारत.विभाजनादि के विभिन्न तत्वों ने साहित्य और साहित्यकार दोनों को हीं हर प्रकार से प्रभावित.परिचालित किया। राकेश तो इसके दृष्टा और भोक्ता दोनों ही थे। निःसन्देह वैचारिक स्तर पर वे आधुनिकता और समकालीनता के पक्षधर वे और वैयक्तिक स्तर पर अतीत को भी आधुनिक या समकालीन सन्दर्भो में ग्रहण करते थे। देशी विदेशी साहित्य और नाना नयी विचाराधाएँ उनकी प्रेरणा स्त्रोत थी। यही कारण है कि उनके कृतित्व का मूलस्वर आधुनिकता और समकालीनता का अंकन करता है।

आधा.अधुरापन इस नाटक की मूल संवेदना एवम् उद्देश्य है। यों भी राकेश ने अपने सभी नाटकों मे रचना के केन्दीय भाव को ही नाटक के नामकरण का आधार बनाया है। आलोच्य नाटक में एक ऐसे शहरी परिवार को प्रस्तुत किया गया है जिसके सभी पात्र आधे.अधूरे हैं और इसी कारण परिवार तनाव का स्थितियों से गुजरता हुआ विघटन की ओर अग्रसर हो गया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि ये पात्र अपने आधे.अधूरेपन को दूसरे पर थोप देना चाहते हैं और इसी प्रतिक्रिया.स्वरूप पूरेपन की तलाश में भटकते हैं।

नाट्य.भाषा के अन्तर्गत राकेश ने चरित्रों के अनुकूल बोलचाल की जीवन्त एवम् रचनात्मक भाषा का प्रयोग किया है और उसे प्रतिध्वनित शब्दों, निरर्थक ध्वनियों, तुतली भाषा, और मौन के प्रयोग से तथा क्रियाओं के शब्दों के पर्याय रूप में इस्तेमाल करके रोचक एवम् समृद्ध बनाया है।

शास्त्रीय दृष्टि से कथानुकूलता, पात्रानुकूलता, स्वाभाविकता, उद्देश्यपूर्णता, सम्बद्धता, मनोवैज्ञानिकता और सब मिलाकर अभिव्यंजकता आदि सम्वाद के अनिवार्य गुण माने गये है जो कि 'आधे.अधूरे' के सम्वादों की महत्वपूर्ण विशेषताएं है।

'आधे.अधूरे' के कथ्य को यथार्थ रूप में पाठकों.दर्शकों तक सम्प्रेषित करने में राकेशजी की भाषा.शैली का अपूर्व योगदान है और नाटक की सफलता का भी बहुत कुछ श्रेय इसी जनजीवन की आम भाषा और यथार्थपरक शैली को ही है।

2.9 अपनी प्रगति जाँचिए

1. मोहन राकेश' प्रणीत नाटक 'आधे.अधूरे' के नामकरण की सार्थकता पर विचार कीजिए।
2. 'आधे.अधूरे' नाटक का नामकरण नाटक की मूल समस्या को उद्धृत करने में पूर्णतः सक्षम हैं।''— व्याख्या कीजिए।
3. 'आधे.अधूरे' नाटक के सम्वाद योजना पर एक विवेचनात्मक निबन्ध लिखिए।
4. नाटककार जीवन के स्वाभाविक सत्य को स्वाभाविक भाषा में ही व्यक्त करना चाहता है और उसने ऐसा कर सकने की अदभूत एवम् पूर्ण क्षमता का परिचय भी दिया है— स्पष्ट कीजिए।
5. 'आधे.अधूरे' नाटक में प्रयुक्त भाषा.शैली पर एक विवेचनात्मक निबन्ध लिखिए।

2.10 नियतकार्य / गतिविधियाँ

1. 'आधे.अधूरे' नाटक में मंच पर आने वाले पात्रों के एक दो पंक्तियों में परिचय दीजिए जिससे उनका चारित्रिक विशेषताएं स्पष्ट हो जाए।
2. 'आधे.अधूरे' नाटक में प्रयुक्त अंग्रेजी, उर्दु और देशज शब्दों का संकलन कर उनका हिन्दी में अर्थ लिखते हुए कोष तैयार कीजिए।

3. 'आधे.अधूरे' नाटक में प्रयुक्त कहावतों एवम् मुहावरों का संकलन कर उनका अर्थ स्पष्ट करते हुए एक. एक वाक्य की रचना कर पत्रक (चार्ट) तैयार कीजिए।

4. 'आधे.अधूरे' नाटक में प्रयुक्त तद्भव शब्दों का संकलन कर उनका तत्सम शब्द लिखिए।

5. 'आधे.अधूरे' नाटक में प्रयुक्त लम्बे सम्वादों का चयन कर उनका अभिनयात्मक पठन कीजिए।

2.11 स्पष्टीकरण के बिन्दु

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

2.12 चर्चा के बिन्दु

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर और चर्चा चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

इकाई – 3

(अ) यथार्थवादी दृष्टि एवम् युगबोध के परिप्रेक्ष्य में 'आधे. अधूरे'

(ब) व्याख्या खण्ड

(अ) यथार्थवादी दृष्टि एवम् युगबोध के परिप्रेक्ष्य में 'आधे. अधूरे' की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 'आधे.अधूरे' की यथार्थवादी दृष्टि

3.4 'आधे.अधूरे' का युगबोध

3.5 'आधे.अधूरे' में वर्णित समस्यायें

3.6 महानगरीय विघटनशील परिवार का चित्रण

3.7 सारांश

3.8 अपनी प्रगति जाँचिये

3.9 नियतकार्य / गतिविधियाँ

3.10 स्पष्टीकरण के बिन्दु

3.11 चर्चा के बिन्दु

3.1 उद्देश्य

एम. ए. उत्तरार्ध हिन्दी के प्रश्नपत्र षष्ठम् 'आधुनिक कथा साहित्य एवम् नाटक' के सप्तम खण्ड की यह तीसरी इकाई है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

इस इकाई के अन्तर्गत आर्थिक अभावों के कारण विघटित निम्न मध्यवर्ग के परिवार के जीवन के यथार्थ को उदघाटित किया गया है। अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् पारिवारिक, वैयक्तिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आदि सन्दर्भों में आज के जीवन के बहुमुखी यथार्थ को समझ पायेंगे।

'आधे.अधूरे' नाटक आज के मध्य और निम्न मध्यवर्गीय जीवन में अपने ही अधूरेपन के बोध को अन्य पर आरोपित करके देखने की प्रक्रिया को व्यक्त करने वाला नाटक है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप व्यक्ति के स्तर पर, परिवार के स्तर पर आधुनिक जीवन के यथार्थ बोध को समझ पायेंगे।

'आधे.अधूरे' नाटक समस्या नाटक की श्रेणी में आता है। प्रस्तुत इकाई में नाटक के माध्यम से उठाये गये समस्या का अध्ययन कर आप जान पायेगें कि निम्न वर्गीय परिवार में किस.किस प्रकार की समस्याएँ रहती है और समस्याओं का मूल कारण क्या है।

3.2 प्रस्तावना

पिछली दो इकाई में आप मोहन राकेश के 'आषाढ़ का दिन' लहरों के राजहंस' और 'आधे.अधूरे' का परिचय प्राप्त करने के साथ.साथ मोहन राकेश के नाट्य चिन्तन, 'आधे.अधूरे' का नाट्य शिल्प, देशकाल, सम्वाद योजना, भाषागत विशिष्टता एवम् पात्र योजना का अध्ययन कर चुके हैं। यहाँ 'आधे.अधूरे' की यथार्थवादी दृष्टि, 'आधे.अधूरे' का

युगबोध, 'आधे.अधूरे' में वर्णित समस्याएं और 'आधे.अधूरे' में महानगरीय विघटनशील परिवार के विश्लेषण का प्रयत्न करेंगे।

इसमें मध्य वर्ग से विघटित होकर निम्न वर्ग की ओर अग्रसर हो रहे नगरीय परिवार के आत्म.कुण्ठाओं, हीनताओं आदि से भरे खट्टे एवम् कडुवे जीवन का चित्रण किया गया है। इस वर्ग की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यहाँ अपनी गलती कोई भी स्वीकार नहीं करना चाहता। स्वयं के अधूरेपन को न तो कोई स्वीकारना ही चाहता है, और न उसे दूर कर अन्यों के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहता है। वह स्वयं अधूरा है, पर उसे दूसरे का अधूरापन सहा नहीं जाता है। परिणाम स्वरूप परिवार अभिशप्त होकर, पारस्परिक अविश्वासों से भरकर अनवरत बिखरते जा रहे हैं।

मध्य वर्ग में आज व्यक्ति के स्तर से लेकर परिवार और समाज के स्तर होने वाले परिवर्तनों का हमारे पारिवारिक और सामाजिक संरचना पर गहरा असर पड़ा है फलस्वरुप परम्परागत परिवारों में जो आपसी रिश्ते हुआ करते थे वो आज दिखायी नहीं देते। 'आधे.अधूरे' का सम्बन्ध इस परिवर्तन से बहुत गहरा है। इस इकाई में इस परिप्रेक्ष्य नाटक को समझ पायेंगे।

3.3 'आधे.अधूरे' की यथार्थवादी दृष्टि

'आधे.अधूरे' मोहन राकेश द्वारा रचित एक पूर्णतया यथार्थवादी नाटक है। वैसे तो यथार्थ का सम्यक् बोध राकेश के पूर्ववर्ती नाटकों में भी अपने सम्पूर्ण रुप में विद्यमान हैं, पर वहाँ आधारभित्ति के रूप में इतिहास एवम् ऐतिहासिक व्यक्तियों को अपनाया गया है। इतिहास एवम् ऐतिहासिक व्यक्तियों के माध्यम से जीवन के शाश्वत सत्यों एवम् चिरन्तन यथार्थ का उद्घाटन करने का प्रयास किया गया है।

'आधे.अधूरे' में यथार्थ बोध के लिये नाटककार के अपने युग के स्त्री, पुरुष, युवक, युवतियाँ और किशोर.किशोरियाँ को माध्यम बनाया हैं फिर यहाँ परिवेश भी ऐतिहासिक न होकर नाटककार के युग का, बल्कि उसके अपने ही आस. पास का और अपना आधुनिक यंत्र.युग की ही देन हैः अतः वहाँ भी यथार्थवादी दृष्टियाँ अपने समग्र आयाम में प्रतिफलित हुई है। एक ऐसे मध्यवर्गीय परिवार के यथार्थ एवम् कटु बोध को वर्ण्य.विषय के रूप में नाटकार ने अपनाया है जो कि आर्थिक वैषम्यों के कारण विघटित होकर निम्न.मध्यवर्ग की ह्रासोन्मुखी चेतनाओं की ओर द्रुतगति से अग्रसर होता जा रहा है।

3.3.1 पारिवारिक यथार्थ

परिवार अपने.आप में, जीवन में.विशेषतः भारतीय जीवन में एक महत्वपूर्ण इकाई है। वैसे तो स्वर्गीय प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी भारतीय निम्न, निम्न.मध्य और मध्यवर्गीय परिवारों की स्थितियों के यथातथ्य दर्शन होते है। वहाँ परिवारों के विघटन की प्रक्रिया के आरम्भ हो जाने की स्थितियाँ भी दिखाई देती है, फिर भी तब तक आज जैसी यान्त्रिक बौद्धिकता एवम् निर्ममता का समावेश हमें भारतीय परिवारों में नहीं दिखाई देता। इसी कारण वहाँ घुटन, विघटन, बिखराव और टूटन की प्रक्रिया की गति भी बड़ी धीमी हैं। इसके विपरीत 'आधे.अधूरे' नाटक यान्त्रिक बौद्धिकता के उग्र आयाम वाले युग.परिवेश में रचा गया है। इस कारण यहाँ परिवार के जिस यथार्थ का वर्णन किया गया है, वह अधिक तीव्र और अधिक पहचाना.सा लगता है। आज हम सभी विशेषतः आर्थिक दृष्टि से एक टूटन का अनवरत अनुभव करते रहते हैं। यही सब पारिवारिक यथार्थ के रूप में 'आधे.अधूरे' नाटक में महेन्द्रनाथ के परिवार में भी घटित हो रहा है। मध्य.वित्तीय स्तर से गिरकर निम्न.मध्यवर्गीय आर्थिक स्तर की ओर अग्रसर हो रहा महेन्द्रनाथ.सावित्री का परिवार तो एक प्रतीक है। यह प्रतीक ही पारिवारिक यथार्थ का चितेरा एवम् केन्द्र.बिन्दु है। जब परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी थी, तब घर में नौकर.चाकर सभी कुछ था। चार सौ रूपये किराये के मकान में परिवार रहता था। वर्गीय स्वभाव.दोष के कारण मित्र.मण्डलियाँ जुडती, पार्टियाँ .शराब उड़ते, राग.रंग मनाए जाते और इस प्रकार धीरे.धीरे इन सबका आधार.अर्थ (धन) इन तथा अन्य कारणों से चुक गया और तब कल तक के राग.रंग के अपने ही साथी पुरूष (महेन्द्रनाथ) और स्त्री (सावित्री) एक.दूसरे को अधूरे नजर आने लगे। बस, यही वह स्थिति है जहाँ से आज के परिवार विघटन की प्रक्रिया में पड़ कर अनवरत टूटते.बिखरते जा रहे हैं।

आर्थिक दृष्टि से बेकार होकर पुरूष (महेन्द्रनाथ) क्रमशः (सावित्री के शब्दों में) लिजलिजा, अपने माद्दे से रहित, आत्म.विश्वासहीन होकर रह जाता है। स्त्री (सावित्री) घर की ढ़हती स्थिति को सम्भालने के लिए नौकरी करती है। परिणामस्वरूप पुरूष में आत्महीनता की घुटन और स्त्री के दायित्व.निर्वाह की गर्वीली घुटन जन्म लेकर दोनों को परस्पर आधा.अधूरा मानने के लिए विवश कर देती है। दैनिक तनाव, वाग्.युद्ध, छटपटाहट, छींटाकाशी दोनों को पहले आन्तरिक धरातल पर अलग देती है और फिर एक.दूसरे से बाह्म रूप से भी अलग होने की घोषणा करने पर विवश कर देती है। इस सब का सीधा प्रभाव घर के बच्चों पर भी पड़ता है। एक तरफ तो जीवन के पहले भाग की भोगी गई ऐयाशियाँ, अब आ घिरे अभाव, इस पर परिवार के मुखियाओं की चख.चख, स्त्री को पूरे पुरूषों की तलाश में अपने ही घर में एक के बाद एक अनेक पुरूषों को आमन्त्रित करना– यह ... धन की भूख के साथ. साथ कामुकता की भूख को भी उभार देता है। परिणामस्वरूप घर की बड़ी लड़की बिन्नी अपनी ... के ही एक प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। वहाँ जाकर भी वह अपनी मायके वाली घुटन और टूटन में ही जीती.भागती है। युवक लड़का अशोक एक्ट्रसों के चित्र काटकर, आवारगी करके मन की भड़ास निकालता है। किशोरी लड़की किन्नी केवल जिद्दी और जबानदराज ही नहीं बन जाती, घर के बड़ों की कामुकता को भी बातों तथा व्यवहार के द्वारा रूपाकार प्रदान करने की चेष्टा करती है। इस प्रकार परिवार के जितने भी सदस्य है, सब की अपनी.अपनी डफलियाँ और अपने.अपने राग है। इस प्रकार महानगरीय जीवन का यह एक परिवार तो मात्र प्रतीक है। बाह्‌य दृष्टि से यद्यपि अभी तक स्थितियाँ यहाँ तक नहीं पहुँची जैसी कि चरम परिणति के रूप में 'आधे.अधूरे' में दिखाई गई हैं, फिर भी यह प्रक्रिया चल रही है। नाटककार मोहन राकेश ने इसे देखा, अनुभव किया और सम्भवतः व्यवहार या मनःस्थल में भोगा भी है। इसी सबका यहाँ पारिवारिक यथार्थ के नाम पर चित्रण एवम् अंकन किया गया है। निश्चय ही यह अंकन अत्यधिक कटु होते हुए भी सत्य है।

3.3.2 वैयक्तिक यथार्थ

यान्त्रिकता, बौद्धिकता, आर्थिक विषमता और उस पर अनेकानेक महत्वकांक्षाओं के दबाव– इन सबने मिलकर निश्चय ही आज के व्यक्ति को भीतर की भीतर एकदम खोखला करके रख दिया है। पर व्यक्ति ऐसी मनःस्थिति बना पाने में समर्थ नहीं हो पा रहा है कि वह अपने ही इस यथार्थ को स्वीकार कर ले। तभी तो वह अपना आध ा.अधूरापन अन्यों पर थोप करके एक प्रकार की कल्पित सान्त्वना ओढ़ कर सो जाना चाहता हैं। इस भावना ने उसे उग्र एवम् अहंवादी भी बना दिया है। ये अहंवाद यदि उसे अपने अधूरेपन का कभी अहसास करवाता भी है, तो भी वह उसे नकार कर, दूसरों के अधूरेपन को सहन कर पाने में भी अपने.आप को असमर्थ पाता है। अपने अध ूरेपन को ढाँपने के लिए वह कहीं अन्यत्र 'पूरे' की तलाश में भटक रहा है। इस कल्पित पूरेपन की तलाश में ही वास्तव में वह अपनों या अपने परिवार से कट रहा है अथवा कट जाना चाहता है। मोहन राकेश के प्रस्तुत नाटक 'आधे.अधूरे' में व्यक्ति के स्तर पर इसी यथार्थ का सजीव बल्कि जीवन्त अंकन हुआ है।

'आधे.अधूरे' नाटक में पुरूष महेन्द्रनाथ अपने पूरेपन की तलाश के लिए जुनेजा के आस.पास मण्डराता है, जबकि स्त्री सावित्री महेन्द्रनाथ को अधूरा मानकर कभी शिवजीत की ओर भागती है कभी जुनेजा की ओर तथा कभी जगमोहन की ओर। वह अपने बास सिंघानिया का बेशर्म बन कर जाँघे खुजाते रहना, पेण्ट के बटन खुले रखना आदि सब.कुछ सहन कर लेती है पर कहाँ मिल पाता है उसे कोई एक पूर्ण पुरुष? इस प्रकार नाटककार ने यह स्पष्ट किया है कि व्यक्ति के स्तर पर भी आज का व्यक्ति भीतर ही भीतर खोखला होता जा रहा है। तभी तो वह अपना खोखलापन और अधूरापन दूसरों पर थोपकर स्वयं उससे अलग हो जाना चाहता है।

3.3.3 सामाजिक यथार्थ

आर्थिक वैषम्यों के इस युग में व्यक्ति और परिवार ही नहीं, मूरा मध्य और निम्न मध्य वित्तीय व्यवस्थाओं वाला समाज भीतर ही भीतर खोखला होकर टूट जाना चाहता हैं, यह आज का एक कटु सत्य हैं। इन स्थितियों वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन, बल्कि प्रति पल अपने इस खोललेपन एवम् टूटन का निश्चय ही अनुभव करता है और निरन्तर बदलते मूल्यों के परिणामस्वरूप यदि रिश्वत आदि पा लेता है। (नैतिक विघटन यह भी है) तब तो वह उच्च वर्गों का अनुकरण करके टूटने लगता है। यदि उसे इस प्रकार के आर्थिक संगठन करने वाले साधन नहीं मिल पाते,

तब वह मध्य से निम्न.मध्य वित्तीय स्थितियों की ओर अग्रसर होता होता हुआ अपने.आप को अशक्त एवम् अशान्त अनुभव करने लगता है। यह अशान्त अशक्तता अनेक प्रकार की हीनता.ग्रन्थियों को जन्म देती हैं और तब अपने ही भीतर का आक्रोश, अपने ही भीतर का अधूरापन दूसरों पर थोपकर उन्हें आधे.अधूरे समझने के लिए विवश कर देता है। इस स्थितियों वाले पूरे समाज में ही आज यही कुछ हो रहा है– इसमें सन्देह नहीं।

महेन्द्रनाथ का काम जब तक अच्छा चलता रहा, पैसा आता रहा तो जोर शोर से उड़ाया भी जाता है। जब घाटा पड़ गया तो वितृष्णा, विक्षोभ और अधूरापन न जाने क्या.क्या उभर कर सामने आकर जीवन को विद्रुप बनाने लगा। जैसा कि हम पहले भी कह आए हैं, मध्य वर्ग की यह गलत नियति ही बन चुकी है कि धन पास आ जाने पर वह ऊपर अर्थात् उच्च वर्गो की ओर उड़ना चाहता है। महेन्द्रनाथ ने भी सपरिवार कुछ ऐसा ही किया। पर परिणाम? उच्च वर्ग में पहुँचने के स्थान पर मध्य वर्गीय स्थितियों से भी हाथ धोना पड़ा। मध्य से निम्न मध्य वित्तीय स्थितियों में आक्रोश और विक्षोभ का सपरिवार पिटारा बनकर रहना पड़ा। यह विक्षोभ केवल पति.पत्नी को ही नहीं, बल्कि सारे परिवार को ही अन्दर.बाहर से विक्षुब्ध एवम् विद्रोही बना देता हैं। इस ओढ़े हुए विद्रोह का यह रूप आज पूरे समाज में सर्वत्र देखा जा सकता है।

मध्य और निम्न.मध्यवर्गीय विवाहित.अविवाहित नारियों का नौकरी करने के लिए विवश होना, घर और दतर में तनावपूर्ण वातावरण में रूटीन बनकर जिये जाना, बाँस या अन्य उच्च वर्गीय लोगों के स्वार्थ के साधन बनना, अयाचित लोगों के भी अनेक प्रकार के आमन्त्रण और निमत्रण, बच्चों की पढ़ाई.लिखाई की चिन्ता और दबाव, उनके लिए पौष्टिक खुराक की असफल खोज, उनकी रोटी.रोजगार की चिन्ता, जवान बेटे.बेटियों के विवाह की चिन्ता, आर्थिक सुविधाओं के अभाव में जवान लड़कियों का घर के मिलने.जुलाने वालों के साथ ही पलायन, माँ के प्रेमी का लड़की में भी प्रेम और विवाह, फिर इन परिस्थितियों को ढाँपने के असफल प्रयत्न, वास्तविकताओं का सामना न कर पाना आदि ऐसी बातें हैं जो पूर्णयता तो नहीं, हाँ अधिकांशतः मध्य और निम्न.मध्य वर्गीय समाज में घर कर रही हैं। इस सबको नाटककार ने निश्चय ही बड़ी कुशलता से अपने समग्र यथार्थ रूप में रूपाकार प्रदान किया है। इस समाज की आर्थिक वैषम्यों के कारण होने वाली दुर्दशा छोटी लड़की किन्नी के इन शब्दों से कितने मार्मिक रूप में व्यक्त हो जाती है।

"स्कूल में भूख लगे, तो कोई पैसा नहीं होता पास में और घर में आने पर घंटा.घंटा दूध ही नहीं होता गरम।'' और फिर जब माँ सामान लाने में कुछ असमर्थता या टालमटोल करने का प्रयत्न करती है, तो वह कहती है–"तो उठा लो न मुझे स्कूल से। जैसे शोकी (बड़ा भाई अशोक) मारा.मारा फिरता है सारा दिन, मैं भी फिरती रहा करूँगी।''

3.3.4 मनोवैज्ञानिक यथार्थ

आज मनोविज्ञान ने मानव.स्वभाव की अन्तरतम प्रकृतियों का उद्घाटन.विवेचन किया है। मनोविज्ञान यह मानता है कि परिस्थतियाँ और परिवेश मानव.स्वभाव को चहुँमुखी रूप से प्रभावित करते हैं।

पारिवारिक स्तर पर मनोविज्ञान यह मान कर चलता है कि असन्तुलित पति.पत्नी वाले परिवार में जन्मे एवम् पलने वाले बच्चे भी उनके प्रत्यक्ष प्रभाव से अनेक प्रकार की विकृतियों से अनजाने ही ग्रस्त होकर असन्तुलित एवम् असामान्य हो जाया करते हैं। तब उसका अन्तःबाह्य उस विषाक्त वातावरण से छुटकारा पाने के लिए छटपटाटा रहता है और यह छटपटाहट उसे और भी अधिक अस्वाभाविक बना देती है। सहने की भी एक सीमा होती है और उसके बाद विद्रोह! वह भी विद्रूप विद्रोह की स्थिति आ जाती है। फिर सावित्री हो या उसकी बड़ी बेटी बिन्नी, अशोक हो या छोटी किन्नी सभी उसी विद्रूपता में जीते दिखाई देते है और किसी भी प्रकार से तनावों से भी और अन्य बन्धनों से भी छुटकारा पाना चाहते हैं। तभी तो बिन्नी अपनी ही माँ के किसी प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। तभी तो जुनेजा से वह (बिन्नी) कहती है।

''इतने साधारण ढंग से उड़ा देने की बात नहीं हैं अकंल! मैं यहाँ थीं, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़ियाघर के एक पिजंरे में रहती हूँ जहाँ आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या.क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार.तार कर देना...... उनके मुँह पर पटटी बाँध कर उन्हें बन्द कमरे में पीटना,

खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर (सिहर कर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने.कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने। कोई भी बाहर का आदमी उस सबको देखता जानता, तो यही कहता कि बहुत पहले ही ये लोग.....?"

ऐसी स्थितियों में परिवार के युवक और छोटे सदस्यों पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से क्या प्रभाव पड़ सकता हैं, सहज ही अनुमान किया जा सकता है। 'आधे.अधूरे' नाटक में इसी सब के यथार्थ मनोविज्ञान का अंकन एवम् उसके प्रभाव का सजीव चित्रण हुआ है। बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग कर, उसकी पत्नी की तरह रह कर भी तो अपने आपको सन्तुलित नहीं कर पाती। वह अपने घर का जो प्रभाव साथ ले जाती है, वह उसे वहाँ भी 'पूरा' नहीं रहने देता।

इसी प्रकार किन्नी का जीवन.चरित्र भी एक घोर मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। केवल तेरह वर्ष की आयु में ही उसकी प्रत्येक बात एवम् व्यवहार में वितृष्णा.विद्रोह की झलक दिखाई देने लगी है। यह विद्रोह परिवार के प्रति तो है ही, अपने अस्तित्व के प्रति भी है। स्त्री.पुरूष के यौन सम्बन्धों की चर्चा, उसकी नकल की चेष्टा, जो.सो उत्तर देना, मार खाकर और भी जिद करना और आत्म.केन्द्रित होकर रह जाना सभी कुछ एक ऐसे यथार्थ साँचे में ढला हुआ है कि जिसका मनोविज्ञान पूर्ण समर्थन एवम् वर्णन करता है। इस प्रकार नाटककार ने अपनी पैनी दृष्टि से आज के मध्य एवम् निम्न.मध्य वित्तीय स्थितियों वाले परिवार के माध्यम से इस प्रकार के समूचे समाज के अन्तर्मन को बड़ी गहराइयों के साथ छूने का, उसे उभार कर रख देने का सफल प्रयास किया है। माँ का एक साथ सब पाने का प्रयत्न, पिता का अन्यों पर अश्रित होना और इन्हीं कारणों से परस्पर चख.चख सारे परिवार के लिए, उससे आगे बढ़कर सारे जीवन और समाज के लिए एक अभिशाप बन जाती है या बन सकती है। 'आधे.अधूरे' में इस मनोवैज्ञानिक यथार्थ को पूर्ण वेग के साथ उभारा गया है।

स्पष्ट है कि 'आधे.अधूरे' अपने समग्र परिवेश में एक यथार्थवादी नाटक है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी दृष्टियों से जब हम नाटक का अध्ययन मनन करते हैं, तो निश्चय ही इसमें उपरोक्त सन्दर्भो में आज के जीवन के बहुमुखी यथार्थ के दर्शन होते हैं। जिस परिवार को आज के समग्र यथार्थ को उभारने के लिए माध्यम बनाया गया हैं, उसका प्रत्येक सदस्य जब अपने आप में टूटा हुआ, बिखरा हुआ एवम् अधूरा है, तो फिर एक पूरे परिवार की कल्पना कैसे की जा सकती है? इस कटु यथार्थ को, विषाक्त परिवेश को पीता हुआ आज का अव्यस्थित एवम् असाधारण बना मानव.समाज जिए जा रहा है— निश्चय ही यह भी एक व्यंग्यात्मक और विद्रूप ही सही.आज का एक भोगा जा रहा यथार्थ है।

वास्तव में आज व्यक्ति के स्तर से लेकर परिवार और समाज के स्तर पर नियति ही कुछ ऐसी बन चुकी है कि वह असाधारणता, असन्तुलन एवम् अनिश्चितता से ग्रस्त होकर, चहुँ ओर से आक्रान्त होकर जीता जाए। वह घर परिवार और समाज में रहकर भी इस अस्वाभाविक अनुभूति को अनवरत ढोता जाए कि वह अकेला.नितान्त अकेला है। अपना कहने को उसका कोई भी नहीं हैं। उस अपने और अपनत्व को पाने के लिए वह घुटता.टूटता और अन्त में घिस. घिस कर बिखरता रहे। यह स्थिति आज के जीवन का एक ऐसा यथार्थ है जिसे हम सब स्पन्दनहीन.से होकर भोगे जा रहे हैं। महेन्द्रनाथ, जगमोहन, जुनेजा सिंघानिया, अशोक, सावित्री, बिन्नी, किन्नी सभी उसी रौ.में बहकर, अपने अस्तित्व के प्रति सशंकित होकर जीवन की अन्योन्याश्रित समग्रता को धो डालना चाहता है। यही वह आज के जीवन का घिनौना और कटु यथार्थ है, जिसे नाटककार मोहन राकेश ने प्रस्तुत नाटक 'आधे.अधूरे' में अनेक स्तरों पर सजीव एवम् साकार किया है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1— 'आधे.अधूरे' नाटक के आधार पर बताइये कि पारिवारिक स्तर पर मनोविज्ञान क्या मानता है?

उत्तर ....

....

....

....

....

प्रश्न 2– मोहन राकेश के नाटक 'आधे.अधूरे' में व्यक्ति के स्तर पर किस यथार्थ का सजीव एवम् जीवन्त अंकन किया है?

उत्तर ....

....

....

....

....

3.4 'आधे.अधूरे' का युगबोध

स्वर्गीय मोहन राकेश मूलतः युग.बोध के ही सर्जक कलाकार माने जाते हैं। यह ठीक है कि उसकी सर्जनाओं में, विशेषतः नाट्य कृतियों में जीवन के अनेक शाश्वत सत्यों और मूल्यों का भी उद्घाटन हुआ है, पर विशद.व्यापक और मूल रूप में उन्होंने अपनी सभी प्रकार की कृतियों में भोगे जा रहे जीवन के बोध को ही, उसकी वितृष्णाओं और विघटनशील प्रवृत्तियों को ही उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। उसकी कृतियाँ, विशेषतः नाट्य.कृतियाँ चाहे ऐतिहासिक भूमि पर रची गई हैं, चाहे विशुद्ध आधुनिक सामाजिकता की भूमि पर रची गई हैं, उनमें युग.चेतना, युग के भोगे जा रहे 'आधे.अधूरे' क्षण ही सम्पूर्ण उग्रता के साथ रूपायित हुए हैं, इसी कारण उनमें तीखा व्यंग्य तो है ही, एक उग्र सामयिक पीड़ा और सम्वेदना भी है। 'आधे.अधूरे' नाटक के पात्र जिन जीवन.प्रक्रियाओं को भोगते दिखाये गये हैं, जिस परिवेश में चित्रित किये गये हैं, उसकी जिस अन्तश्चेतना एवम् वेदना का अंकन किया गया है वह तो सम्पूर्णतः एवम् समग्रतः आधुनिक या युग.बोध की प्रक्रिया हैं। अतः मोहन राकेश को युग.बोध का कलाकार कहना ही संगत प्रतीत होता है। राकेश के नाटकों के पात्र जिस युग.पीड़ा का अनुभव करते हैं– फिर चाहे वह कालिदास और मल्लिका हो या नन्द और सुन्दरी हो, महेन्द्रनाथ और सावित्री ही क्यों न रहे, वह प्रत्येक युग का मानव भोग सकता है, उन परिस्थितियों में प्रत्येक युग का मानव हो सकता है।

मोहन रोकश का प्रस्तुत नाटक 'आधे.अधूरे' अपने समग्र एवम् अन्तः बाहय रूपों में सर्जक कलाकार के युग.बोधों से ओतप्रोत नाटक है। 'आधे.अधूरे' नाटक आज के मध्य और निम्न.मध्यवर्गीय जीवन में आधे से अपने ही अधूरेपन के बोध को अन्य पर आरोपित करके देखने की प्रकिया को व्यक्त करने वाला नाटक है। अपने ही अधूरेपन से संत्रस्त, ऊबा और घुट रहा व्यक्ति किन परिस्थितियों में, दबावों में और यन्त्राणाओं मे जी रहा है। उस कटु सत्य को राकेश ने निकट से न केवल देखा है बल्कि भोगा भी है। अपने अपने ढंग से, अपने परिवेश, परिस्थितियों एवम् स्तरों में सारा समाज ही संत्रस्त एवम् पीड़ित है। काम और अर्थ के दबावों ने महत्वाकाक्षाओं से भरे मध्य एवम् निम्न मध्यवर्गीय जीवन को और अधिक संत्रस्त और पीड़ित बनाकर रख दिया है। उसी युग के यथार्थ बोध को नाटककार ने एक टूटकर बिखर रहे परिवार के माध्यम से व्यक्त किया है।

आज के काम और अर्थ के दबावों के कारण मानवता, विशेष कर सीमित और निम्न आर्थिक साधनों वाली मानवता के सामने अस्तित्व रक्षा का संकट सर्वाधिक उग्र रूप से अपना मुँह बाएं खड़ा है। उसी से संत्रस्त होकर आज का व्यक्ति महेन्द्रनाथ, सावित्री और इनके आश्रितों के रूप मे एक अप्रत्यक्ष टूटन, घुटन की अनुभूति से भरकर दर्द से कराह रहा है। बिडम्बना यह है कि वह खुलकर कराह पाने की स्थिति में भी नहीं रह पा रहा है। उसकी चेतनाएँ कुण्ठित हो रही है। इस ऊब और कुण्ठाओं के मूल कारण क्या है। कहानीकार कमलेश्वर के शब्दों में– "यह कुण्ठा

और ऊब अस्तित्व के संकट का परिणाम नहीं.....टूटते परिवार से उद्भूत है.....आर्थिक सम्बन्धों के दबाव के अनुस्यूत। यह अनुस्यूति इस सीमा तक हो चुकी है कि टूटन के सिवाय आज के व्यक्ति की अन्य कोई नियति नहीं रह गई। पर यह टूटन कुछ.कुछ वैसी ही है जो कि दीवार से गिरने वाले टूटे प्लस्तर के विभिन्न टुकड़ों को भी खुरदरे तिनकों के कारण एक दूसरे टुकड़े से जुड़े रहने के लिए कुछ.कुछ विवश कर दिया करती है। उसे हम असुविधाओं को ही बढ़ाने वाली तात्कालिक एवम् सामयिक सुविधाओं की विवशता भरी मांग कह सकते हैं। तभी तो 'आधे.अधूरे' का महेन्द्रनाथ घर से जाकर लौट जाता है। सावित्री टूटकर भी घर से टूट नहीं पाती और गहराते अन्धेरे में भी उसी मनहूस.मातमी संगीत से भरे घर की कुर्सी पर बैठ जाने के लिए विवश हो जाती है। घर से भागी लड़की बिन्नी प्रकाश के धुँधले पड़ कर अन्धेरे के रूप में गहराने पर भी बाहर की और मात्र देखकर ही विवश.सी रह जाती है। अन्तःबाह्य रूप से विद्रोही बन गये अशोक को जैसे बैठे गले से कहना पड़ता है– 'देखकर डैडी,' देखकर...।' यही वह युग का वास्तविक रूप है, जिसे राकेश ने अपने नाटकों की परम्परा में इतिहास और मिथक से हट कर 'आध े.अधूरे' में एकदम यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है। यह युग.बोध कितना भव्य, सजीव और कटु होते हुए भी अनुभूत है, फिर नाटक में किस प्रखरता से व्यक्त हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती।''

नाटककार ने अपने समकालिक जीवन की, वह जीवन जो परिस्थितियों की विषमता के सामने हथियार डाल चुका है, बड़ी ही सशक्त अभिव्यक्ति 'आधे.अधूरे' में की है। जिन्दगी में जो कटाव आ गया है, भागते हुए भी ठहराव आ गया है, भीड़ में रहते हुए भी अकेलेपन का अहसास निरन्तर वृद्धि करता जा रहा है, बौद्धिकता और ज्ञान.विज्ञान के साधनों के बल पर अपने.आपको पूरा समझते हुए भी आन्तरिक एवम् एकान्त के क्षणों में नितान्त अधूरेपन की अनुभूति बल पकड़ गई है, उनके कारण भावात्मक सम्बन्धों की असहनीयता, अविश्वास असन्तोष, असुरक्षा की दुर्दान्त भावनाएँ उभर रही हैं– इन सबके परिणाम आज का व्यक्ति, जो व्यक्ति के रूप में भी बौना बन कर रह गया है– उसी का क्लोज अप राकेश के इस नाटक 'आधे.अधूरे' मे प्रस्तुत किया गया है। युग या आधुनिकता का बोध ा इस नाटक में कहाँ तक हो पाया है, डॉ. मदान के द्वारा नटरंग की उद्धृत आलोचना के शब्दों में देखिये...."यह नाटक एक खाका है। तस्वीर नहीं है। महज एक टूटते हुए परिवार का खाका है। तस्वीर नहीं बन सकी।" तस्वीर बन भी कैसे सकती थी। तस्वीर में एक रंग, एक रूप रहता है। जबकि नाटक में व्यक्त जीवन में कोई रंग, कोई रूप रह नहीं गया है। वितृष्णा और विद्रूपता से भरे चेहरों को हम रंग.रूप वाले चेहरे नहीं कह सकते जिनकी कि कोई स्पष्ट तस्वीर बन सके। उनका तो आधा.अधूरा मात्र खाका ही बन सकता था, जो नाटककार राकेश ने बनाया हैं। वे आगे लिखते है– "इसके सारे चित्र रूढ़ हैं जिनकी निजता नहीं है, इसमें संत्रास का बोध नहीं होता, स्थितियाँ चरित्रों के बने.बनाये व्यक्तित्व को तोड़ती नहीं है, इनकी खुद की जिन्दगी नहीं है। परिवेश की जिन्दगी है......।" जब जिन्दगी ही अपनी न होकर महज परिवेश की हो तो फिर कोई पूरा चित्र कायम किया ही कैसे जा सकता है?

वास्तव में नाटक आज की निरन्तर बिखर रही परिस्थितियों और प्रवृत्तियों को अंकित करने के लिए रचा गया हैं। इस दृष्टि से कुछ आलोचक जो इसमें समग्रता के अभाव का आरोप लगाते है। उनके विचार अपनी ही समझदारी के परिचायक हैं, 'आधे.अधूरे' की बोधात्मक संयोजना के नहीं। नाटककार ने युग.सापेक्षता के साथ ही नाटक के आरम्भ में ही कहलवा दिया है–

"परन्तु मैं अपने सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता– उस तरह जैसे इस नाटक के सम्बन्ध में नहीं कह सकता। क्योंकि नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित होने का कारण यह है कि......परन्तु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज दिया जाय, वास्तविक कारण वही हो और जब मैं अपने ही सम्बन्ध में निश्चित नहीं हूँ तो फिर किसी चीज के कारण.प्रकारण के सम्बन्ध में निश्चित कैसे हो सकता हूँ?"

यहाँ नाटककार का तात्पर्य आधुनिक जीवन के यथार्थ परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति, समाज और उसकी समस्त क्रिया. प्रक्रियाओं में विद्यमान एक प्रकार की अनिश्चितता का भाव.बोध कराना है। जब व्यवहारिक जीवन में ही कुछ निश्चित नहीं रह पाया, जिन सम्बन्धों.व्यवहारों को निश्चित समझा जाता था, उन्हीं में तनाव, टूटन और बिखराव की स्थितियाँ आ गई हैं, तो अपने या अपने किसी कार्य के बारे निश्चित रूप में कैसे कहा जा सकता है। यही है वह सच्चा युग. बोध जो अपने समग्र रूप में प्रस्तुत नाटक में चित्रित एवम् रूपायित हुआ है।

उपरोक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप हम केवल इतना ही कह सकतें हैं कि एक विसंगति का नाम है आधुनिक जीवन और यह विसंगति मध्य तथा निम्न.मध्यवर्गीय ज़ीवन में अधिक विस्फोटक रूप में अभिव्यक्त हो रही है। राकेश ने उस विसंगति को भली प्रकार से देखा और समझा है। इसी कारण 'आधे.अधूरे' नाटक एक समग्र युग.बोध का परिचायक बन गया है। उसने जीवन और समाज को एक परिवार के रूप में तो यथार्थ के धरातल पर देखा.परखा ही है। उस परिवार के व्यक्ति के स्तर पर भी आज के विसंगत हो रहे जीवन को तौलने का प्रयत्न किया है। इस कारण यहाँ व्यक्ति का सत्य, परिवार का सत्य, व्यक्ति का बोध, परिवार का बोध और इन अर्थो में अपने समकालीन समग्र युग.जीवन का बोध बनकर अपने पूर्ण विद्रूप एवम् विसंगतियों के व्यापक कैनवास पर सुचित्रित हुआ है। 'आध ो.अधूरे' में व्यक्ति कटकर कटन के परिणामों को भोग कर, जीवन से पलायन करके भी उस भोगे जा रहे के साथ बन्ध जाने के लिए विवश हो गया है। यही आज के युग.जीवन का बोध एवम् सत्य है, जो जीवन्त एवम् ज्वलन्त रूप से यहाँ रूपायित हो सका है।

3.5 'आधे.अधूरे' में वर्णित समस्याएँ

'आधे.अधूरे' नाटक आज के महानगरीय संत्रास बोध उसमें व्याप्त आर्थिक कसाव की छटपटाहट और मध्यवर्गीय शहरी परिवार के तनावों का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। यह नाटक समस्या.नाटक की कोटि मे आता है क्योंकि इसमें चित्रित पात्र प्रायः किसी न किसी समस्या से जकड़े हुए हैं और नाटककार ने समस्याओं में जकड़े इन पात्रों को हू.ब.हू प्रस्तुत कर दिया हैं। समस्याओं को यह यथार्थाभिव्यंजन सचमुच हिन्दी नाटक की एक उपलब्धि है। मध यवर्गीय शहरी परिवार का यथार्थ चित्र होने से नाटक में इन समस्याओं को प्रस्तुत करना मोहन राकेश का कर्तव्य था। नाटक में वर्णित समस्याओं का विवेचन करने से पूर्व उस प्रारम्भिक वक्तव्य पर भी विचार कर लेना चाहिये जिसे का.सू.वा. (काले सूट वाले) के रूप में स्वयं राकेश ने उद्घाटित किया हैं, क्योंकि यह एक ऐसा वक्तव्य हैं जिसको सुनकर प्रारम्भ में ही यह आभास हो जाता हैं कि आलोच्य नाटक कुछ सवालों को प्रस्तुत करेगा। वक्तव्य यों हैं–

"मैंने कहा था यह नाटक भी मेरी ही तरह अनिश्चित हैं। उसका कारण भी यही हैं कि मैं इसमें हूँ। और मेरे होने से ही सब कुछ इसमें निर्धारित या अनिर्धारित हैं। एक विशेष परिवार, उसकी विशेष परिस्थितियां। परिवार दूसरा होने से परिस्थितियां बदल जातीं, मैं वही रहता। इसी तरह सब.कुछ निर्धारित करता। इस परिवार की स्त्री के स्थान पर कोई दूसरी स्त्री किसी दूसरी तरह से मुझे झेलती– या वह स्त्री मेरी भूमिका ले लेती और में उसकी। भूमिका किसकी थी– मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की, या तीनों के बीच से उठते कुछ सवालों की।"

वक्तव्य की अन्तिम पंक्ति नाटकीय समस्याओं की ओर गहरा संकेत कर रही हैं। अब हम यह देखेंगे कि नाटक में कौन.कौन सी समस्याएं उठाई गई हैं। ये समस्याएं हैं–

1. महानगरीय मध्यवर्गीय विसंगतियां।
2. आर्थिक दबाव से मुक्ति की समस्या।
3. पारिवारिक विघटनशीलता एवम् तनाव की समस्या।
4. प्रेम विवाह की समस्या।
5. सामाजिक सम्बन्धों के खोखलेपन की समस्या।
6. स्त्री की नौकरी की समस्या।
7. व्यक्ति के आधे.अधूरेपन की समस्या।
8. काम.विषयक मुक्ति की समस्या।

इन समस्याओं के अतिरिक्त पुरुष की बेकारी की समस्या, आवारा.पन की समस्या, अश्लील साहित्य की समस्या और अनुशासनहीनता की समस्या आदि अनेक छोटी.मोटी समस्याओं को भी नाटक में वर्णित किया गया है। उपर्युक्त आठ समस्याओं पर आगे विचार करेंगे।

1. महानगरीय मध्यवर्गीय विसंगतियों की समस्या – आज का महानगरीय मध्यवर्ग अनेक प्रकार की विसंगतियों का ढाँचा बनकर रह गया है और इन विसंगतियों का मूल कारण है अभाव। श्री रूपनारायण के शब्दों में– "अभाव की कडुवाहट से मुंह और शरीर विकृत करने का जितना अधिक अनुभव मध्यवर्ग में लक्षित किया जा सकता है उतना शायद अन्य किसी वर्ग में नहीं। मध्यवर्गीय व्यक्ति में आसपास की परिस्थितियों के कारण तथा उच्च वर्ग के व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर कुछ और पाने की लालसा इतनी तीव्र हो जाती है कि वह जो कुछ प्राप्त है उसको भी वह खो देता है पर एक के बाद एक ठोकर खाकर भी वह प्राप्त से मुंह मोड़ अप्राप्त की ओर तेजी से बढ़ना चाहता है। मोहन राकेश ने भी मध्यवर्गीय जीवन की इस विचित्र स्थिति को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। इन रचनाओं में उनका नाटक 'आधे.अधूरे' अत्यधिक महत्वपूर्ण है।"

'आधे.अधूरे' नाटक के सभी पात्रों में आधुनिक महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन जैसे साकार हो उठा है। ये पात्र मध यवर्गीय जीवन की विसंगतियों में जीते है। स्तरीकरण की यह भूख महेन्द्रनाथ के परिवार को दीमक की तरह चाट जाती है। सावित्री इसी विसंगति से मुक्ति पाने के लिए एक–एक करके पुरूषों को बदलती रहती है और मुख्य बात यह है कि यह सभी पुरूष उच्चवर्ग के है। श्री रूपनारायण के अनुसार– "ठाठ.बाट की जिन्दगी जीने की लालसा से मध्यवर्गीय व्यक्ति दूसरों की ओर आकृष्ट होता है। जाहिर है कि ये व्यक्ति उसकी दृष्टि में अधिक सम्पन्न है और उनके सम्पर्क में उसके जीवन अधिक सुखद हो सकते है। इसी आशा से वह एक के बाद दूसरे की ओर लपकता है– सहारा पाना चाहता है और उधर से निराश होने पर उसका मन कुण्ठा से भर जाता है जिससे उसे अपना व्यक्तिगत जीवन और पारिवारिक जीवन कडुवाहट से भरा लगने लगता है। परिणामतः उसकी दृष्टि में अपना साथी लिजलिजा और चिपचिपा ही रहता है दूसरे उसकी दृष्टि में एक विचित्र आकर्षण लिए रहते हैं।"

'आधे.अधूरे' की प्रमुख पात्र सावित्री की मनोदशा ठीक ऐसी ही है। इस मनोदशा को स्पष्ट करते हुए नाटककार ने जुनेजा से कहलवाया है– "तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा कितना कुछ एक साथ ओढ़ कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा ही इतनी खाली, इतनी ही बैचेन बनी रहती।"

इस प्रकार नाटककार ने जिस महानगरीय मध्यवर्गीय विसंगतियों की समस्या को उठाया है, उन्होनें आज महानगरीय जीवन में एक भयंकर उथल.पुथल मचा रखी है। समस्या का यथार्थ चित्रण होने और फिलहाल इसका कोई भी समाधान न होने के कारण नाटककार ने इस सवाल को यथातथ्य रूप में प्रेक्षकों.पाठकों के चिन्तन के लिए छोड़ दिया है।

2. आर्थिक दबाव से मुक्ति की समस्या – मध्यवर्गीय विसंगतियों का मूल कारण आर्थिक अभाव है। हमारा मध्यवर्ग इस आर्थिक अभाव से इतना त्रस्त है कि वह छटपटानें के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर पाता है। सावित्री इस आर्थिक दबाव से मुक्ति पाना चाहती है और उसके लिए उसे केवल एक रास्ता दिखायी देता है– उच्च वर्ग के पुरूषों का संसर्ग। किन्तु क्या वह रास्ता उचित है? सावित्री स्वयं इस रास्ते पर छली गयी। प्रत्येक उच्चवर्गीय पुरूष ने उसके यौवन को चूसा, निचोड़ा और फिर फालतू चीज समझकर फेंक दिया। तब फिर आर्थिक दबाव से मुक्ति कैसे मिले? इस समस्या के विषय में नाटककार अपना कोई मन्तव्य भी नहीं देता है। इस आर्थिक दबाव ने ही मध्यवर्गीय अशोक जैसे युवकों को हीनता बोध दिया है। अपनी माँ के मित्रों को घर पर आया देख वह बार. बार अपने को छोटा महसूसता है। यह सम्वाद देखिए–

लड़का : नहीं बरदाश्त है, तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर पर कि जिनके आने से–?

स्त्री : हाँ.हाँ – बता क्या होता है जिनके आने से?

लड़का : रहने दो। मैं इसीलिए चला जाना चाहता था पहले ही।

स्त्री : तू बात पूरी कर अपनी।

लड़का : जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है? उसकी किसी "बड़ी" चीज की वजह से। एक को कि वह

इंटलेक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनखाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है आदमी को नहीं– उसकी तनखाह को, नाम को, रूतबे को बुलाया है।

3. पारिवारिक विघटनशीलता और तनाव की समस्या – आर्थिक दबाव ने एक अच्छे खासे परिवार को इस प्रकार तोड़कर रख दिया कि परिवार के सभी सदस्य एक.दूसरे के प्रति अविश्वास, अनादर और कुण्ठा से भर उठे। फलतः परिवार में तनाव की स्थिति आ गयी है। सावित्री और महेन्द्रनाथ ही नहीं आज के प्रायः सभी परिवार इस तनाव की समस्या से ग्रस्त हैं। एक ओर बढ़ती मंहगाई और दूसरी ओर परिवार में दो.दो सदस्यों की बेकारी ने इस तनाव को बढ़ाने में मुख्य भूमिका अभिनीत की है। अशोक, बिन्नी, किन्नी, सावित्री और महेन्द्रनाथ सभी इस तनाव से ग्रस्त हैं और फलतः परिवार विघटनशीलता के कगार पर जा पहुंचा है। डॉ. विजय बापट का यह कथन इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है।–'' इस नाटक में विघटित होते हुए आज के मध्यवर्गीय शहरी परिवार का कडुवाहट.भरा चित्रण किया गया है। जिसकी विडम्बना यह है कि व्यक्ति स्वयं अधूरा होते हुए भी औरों के अधूरेपन को सहना नहीं चाहता।...... इस नाटक में महानगरों में रहने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।....... आज का परिवार अन्दर की अन्दर किस तरह टूटा चुका है। आपसी सम्बन्ध किस तरह चुक गये हैं यह बड़े सशक्त ढंग से नाटककार ने इस नाटक में दिखाया है। इस नाटक के स्त्री.पुरूष के आपसी निजी सम्बन्ध करीब. करीब चुक गये हैं और अब साथ.साथ रहने की और सामाजिक सम्बन्ध ढोने की कटुता ही शेष है। पुरूष महेन्द्रनाथ जीवन में असफल होकर स्त्री की कमाई की रोटी तोड़ रहा है। ग्रहपति की मर्यादा से वंचित रहकर भी तानों.व्यंगों से स्त्री को छेदता रहता है। अपनी इस नियति को स्वीकारने के लिए विवश होकर भी पूर्णतः स्वीकार नहीं कर पाता। आज के परिवार में बच्चों की माँ.बाप के प्रति श्रद्धा तो काफूर हो गयी है। ममता भी उड़ती चली जा रही है, बच्चे विपथगामी होते जा रहे हैं और नाटक के वाक्य– 'अन्धेरा अधिक गहरा होता जा रहा है' की यथार्थ अनुभूति होती जाती है।''

इस प्रकार पारिवारिक तनाव और विघटन की समस्या को इस नाटक में ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया गया है।

4. प्रेम.विवाह की समस्या –नाटक में महेन्द्रनाथ.सावित्री और बिन्नी.मनोज प्रेम विवाह और उसकी सफलता के माध्यम से नाटककार ने इस समस्या को भी उठाया है। सावित्री यद्यपि विवाह से पूर्व जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत आदि से प्यार कर चुकी थी किन्तु महेन्द्र से जब उसने प्रेम किया तो वह विवाह में परिणत हो गया। इस प्रकार 'आधे.अधूरे' नाटक में महेन्द्र एवम् सावित्री का प्रेम एक बीमार वातावरण को जन्म देता है। इस सन्दर्भ में श्री राजकुमार दरगन का कथन है– ''महेन्द्र अपनी पत्नी और घर से जिस ढंग से जुड़ा हुआ है। उसे प्रेम कहा जा सकता है। जुनेजा का विचार है कि महेन्द्र सावित्री से बेहद व्यार करता है। सम्भवतः वह इसी कारण उसका किसी अन्य से मिलना.जुलना भी उचित नही समझता। प्रेम और अधिकार, दोनों में असफलता से उसका व्यक्तित्व खण्डित हो जाता है, किन्तु यहाँ प्रेम प्रमुखता नहीं प्राप्त कर सका। नाटक में दो अन्य प्रेम.प्रसंग है, बिन्नी और मनोज का तथा अशोक और वर्णा का। दोनों पर घर के क्षयग्रस्त वातावरण का प्रभाव है। बिन्नी के लिए तो मनोज का प्रेम महज बहाना था, घर के उस घेरे से बाहर हो जाने का, किन्तु अपने घर की हवा को बाहर भी वह अपने और मनोज के बीच में से हटा नहीं पाती और उसकी प्रणय.भावना प्रिय पात्र को आहत करने की दुर्दमनीय इच्छा में परिवर्तित हो जाती है। निराश और मोह.भंग के सिवाय उसके हाथ और कुछ भी तो नहीं लगता। अशोक और वर्णा का प्रेम सांकेतित है।''

सावित्री और बिन्नी के प्रेम विवाह इन दोनों की चरित्रों की आवारगी के कारण कष्ट दायक बन जाते हैं और एक समस्या उठ खड़ी होती है कि क्या प्रेम.विवाह अनुचित है? यह समस्या आज भी हमारे समाज को घेरे हुए है और आये दिन प्रेम.विवाहों की असफलता के समाचार इस समस्या को और गहरा देते हैं।

5. सामाजिक सम्बन्धों के खोखलेपन की समस्या – मध्यवर्गीय विसंगतियों, तज्जन्य आर्थिक दबावों और पारिवारिक तनावग्रस्तता ने सामाजिक सम्बन्धों को इतना खोखला बना दिया है कि यह एक उग्र समस्या का रूप धारण कर चुकी है। नाटककार राकेश ने अपने 'आधे.अधूरे' नाटक में इस समस्या को प्रस्तुत किया है। सावित्री एवम् महेन्द्रनाथ यद्यपि पति पत्नी हैं किन्तु उनके कार्य.कलापों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे केवल सामाजिक

सम्बन्धों को ढोने और ढोते रहने को विवश हैं अन्यथा पारिवारिक मधुरता तो उनमें है ही नहीं वरन् उसके स्थान पर घृणा आ गयी है। उनका पति.पत्नी का सम्बन्ध एक खोलखा सम्बन्ध मात्र है और वे उस जीवन को एक क्षण भी नहीं जीते जो इस सम्बन्ध को रागात्मक रूप दे सके और दूसरों को इसकी अनुभूति करा सके। मां.बाप के इस प्रकार के खोखले सम्बन्धों को देखकर बच्चे भी वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं। अशोक न तो पिता को पिता और न मां को मां मानता है, यहाँ तक कि वह घर को घर भी नहीं समझता। ऐसा लगता है जैसे परिस्थितियों ने उन्हें साथ रहने को विवश कर दिया है। अन्यथा सम्बन्ध तो उसके इतने खोखले हो चुके हैं कि वे एक क्षण भी साथ रहने की मनोस्थिति में नहीं हैं। महेन्द्रनाथ घर में स्वयं को एक रबड़.स्टैम्प अथवा रबड का बार.बार घिसा जाने वाला टुकडा मात्र समझता है। सावित्री भी स्वयं को एक ऐसी मशीन मानती जो कि सबके लिए आटा पीस.पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती है। अशोक घर को घर नहीं समझता और घर में स्वयं को बेगाना महसूसता है। यह सब कथन सामाजिक सम्बन्धों के खोखलेपन की समस्या को उजागर कर रहे हैं।

6. स्त्री की नौकरी की समस्या – आधुनिक समाज में स्त्रियों से नौकरी करवाना एक फैशन बनता जा रहा है और इसने एक ऐसी समस्या का रूप ले लिया है जिसके दो पहलू हैं– एक तो युवकों के सामने बेकारी की समस्या उग्रतर हो रही है और दूसरे स्त्रियों को दतरों में अनेक पुरूषों के सम्पर्क में आना पडता है और इस प्रकार सामाजिक नैतिकता के मानदण्डो को खतरा पैदा हो गया है। महेन्द्रनाथ और अशोक बेकार है। किन्तु जब सावित्री को नौकरी मिल जाती है तो घर की आर्थिक दशा सुधरने के साथ ही कई.कई पुरूषों का घर में आगमन होने लगता है और घर पर एक अनैतिक वातावरण बनने लगता है। सावित्री स्वयं विपथगामिनी बनती है और उसके प्रभावस्वरूप बच्चे भी आवारा, अनुशासनहीन और चरित्रहीन हो जाते हैं और उनमें सम्मान, मूल्यों में आस्था, पारिवारिवारिक उत्तरदायित्व की भावना खत्म हो जाती है। एक सावित्री की नौकरी ने सारे परिवार को अस्त.व्यस्त कर डाला और उसे विघटन की ओर अग्रसर कर दिया।

7. व्यक्ति के आधे–अधूरेपन की समस्या – सामाजिक विडम्बनाओं ने मध्यवर्गीय व्यक्ति को एक ऐसा अध ूरापन विरासत में दिया है जिसके कारण वह अपने को पंगु अनुभव करने लगा और इससे भी बडी विडम्बना तो यह है कि व्यक्ति अपना अधूरापन दुसरे पर थोप देना चाहता है। सावित्री को महेन्द्रनाथ आधा.अधूरा व्यक्ति लगता है और एक 'पूरे' व्यक्ति की खोज में कभी जुनेजा तो कभी शिवजीत और कभी जगमोहन, वह सबमें पूरापन तलाशती है। किन्तु गहराई में जाकर उसे प्रत्येक पुरूष आधा.अधूरा ही लगता है और वह कहती है– "सब के सब एक से। बिल्कुल एक से है आप लोग। अलग.अलग मुखौटे पर चेहरा.चेहरा सब का एक ही।" किन्तु सावित्री यह नहीं जानती है कि वह भी आधी.अधूरी ही है और अपनी अपूर्णता को ही पूर्ण देखने के लिए यत्र.तत्र भटकती फिरती है।

8. काम–विषयक मुक्ति की समस्या – इधर कुछ समय से काम.विषयक मुक्ति चाहने वाला ने यह एक और समस्या खडी का दी है। 'आधे.अधूरे' की नायिका सावित्री भी इस समस्या को जन्म देने में सहायक रही है। वह अनेक पुरूषों के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखकर भी परिवार के प्रति अपने को सर्वाधिक उत्तरदायी सदस्य मानती है एक पुरूष से बंधकर रहना और जीवन भर निर्वाह करना तो जैसे उसे आता ही नहीं वह अपनी काम पिपासा को अनेक लोगो के द्वारा शान्त करने का प्रयत्न करती फलतः परिवार की नजर में आवारा, चरित्रहीन और कुलटा नारी बन जाती है। प्रकारान्तर से बिन्नी में भी यही अवगुण बीज रूप में दिखायी देता है। वह मनोज से प्रेम.विवाह रचाकर भी उससे सन्तुष्ट सिर्फ इसलिए नहीं रह पाती क्योंकि एक पुरूष से निर्वाह करना उसे नहीं सिखाया गया था। इस प्रकार नाटककार ने अपने इस नाटक में काम विषयक मुक्ति की समस्या को भी ठोस रूप में उठाया है।

अन्ततः यही कहना समीचीन प्रतीत होता है कि नाटक में अनेक समस्याओं को इसलिए उठाया गया है कि मध्यवर्ग अपनी समस्याओं में स्वयं साक्षात्कार कर ले और उनके निदान के विषय में सोचें। इसीलिए नाटककार ने अपनी ओर से कोई 'रिमार्क' इस सन्दर्भ में नहीं दिया है और न इन सवालों समस्याओं का कोई हल प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कुछ अनिश्चित सवाल उसने पेश किये है और उन्हें निश्चितता देना या उनका उत्तर देना वह उचित नहीं समझता बहरहाल ये कुछ समस्याएँ हैं। जिन्हौंने हमारे महानगरीय मध्यवर्ग को आक्रान्त कर रखा है।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1–'आधे.अधूरे' नाटक समस्या.नाटक की कोटि मे आता है' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर ....

....

....

....

....

प्रश्न 2–'आधे.अधूरे' नाटक में कौन.कौन सी समस्याएं उठाई गई हैं?

उत्तर ....

....

....

....

....

प्रश्न 3– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(मध्यवर्गीय, महानगरों, महेन्द्रनाथ, स्त्तरीकरण, विसंगतियों, आर्थिक, आवारगी)

1) नाटक में ———में रहने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।

2) आज का महानगरीय मध्यवर्ग अनेक प्रकार की ————का ढाँचा बनकर रह गया है।

3) 'आधे.अधूरे' नाटक के सभी पात्र ———— जीवन की विसंगतियों में जीते हैं।

4) मध्यवर्गीय विसंगतियों का मूल कारण ————अभाव है।

5) ————की यह भूख महेन्द्रनाथ के परिवार को दीमक की तरह चाट जाती है।

6) ———घर में स्वयं को एक रबड का बार.बार घिसा जाने वाला टुकडा मात्र समझता है।

7) सावित्री और बिन्नी के प्रेम विवाह इन दोनों की चरित्रों की ————के कारण कष्ट दायक बन जाते हैं

3.6 महानगरीय विघटनशील परिवार का चित्रण

मोहन राकेश लिखित 'आधे.अधूरे' नाटक का विकास एक मध्यवर्गीय परिवार के जीवन को लेकर किया गया है। यह परिवार पारिवारिक सुख से वंचित है। प्रत्येक सदस्य एक प्रकार की घुटन, बैचेनी और अकेलेपन का अनुभव करता है। वे एक साथ रहते हुए भी एक दूसरे के लिए अजनबी बने रहते है। वे जब भी मिलते हैं, परस्पर किच. किच करते है और जल्दी से अलग हो जाना चाहते हैं।

ग्रन्थियों का उद्घाटन – पिता यानी पुरुष एक सोचता है कि परिवार में उसका कोई उपयोग नहीं रह गया है और उसको गंभीरतापूर्वक इस तथ्य पर विचार करना चाहिए कि उसको क्या इस घर से अलग नहीं हो जाना चाहिए। यथा– ''सचमुच महसूस करता हूँ। मुझे पता है मैं एक हूँ जिसने अन्दर ही अन्दर इस घर को खा लिया है। पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है और बचा भी क्या है। जिसे खाने के लिए और रहता रहूँ यहाँ?''

स्त्री सावित्री यानी गृहस्वामिनी भी घर गृहस्थी से ऊबी हुई दिखाई देती है। वह बात बात पर उलाहना देती है कि वह घर वालों के लिए काम करते.करते ऊब गयी है। परिवार के समस्त सदस्य उसका मात्र शोषण करते हैं तथा उसकी सेवाओं के महत्व को समझते नहीं है। वह प्रायः घर को छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाने की बात करतीं है। यथा– ''मेरे पास अब बहुत साल नहीं है जीने को। पर जितने हैं, उन्हें में इसी तरह और निभाते हुए काटूँगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था, इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से अब अन्त है उसका।''

लड़का अशोक कहता है कि वह बेगाना महसूस करता है तथा लड़की बिन्नी कहती है कि वह बेगानी महसूस करती है। आखिर ऐसा क्यों? इसी प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करना सम्भवत इस नाटक का उद्देश्य है।

पुरूष जीवन की लड़ाई में प्रायः पराजित हो चुका है। वह किसी भी तरह यह विश्वास करने लगा है कि वह बेसहारा है तथा उसकी पत्नी उसका एक मात्र सहारा है। उसकी पत्नी उसमें समग्र पुरूष का, अपने इच्छित पति का दर्शन नहीं करती है। उल्टे उस पर झल्लाती है। परिणामतः वह अपने मन में एक घुटन का अनुभव करता है। उसकी घुटन का मूल कारण है उसकी हीन भावना, जो उसकी पत्नी ने उसके मन में बैठा दी है। नाटक मे इसी परिप्रेक्ष्य में पुरूष एक का चरित्र–चित्रण किया है। जुनेजा के शब्दों में – ''आज महेन्द्र एक कुढ़ने वाला आदमी है। वह एक वक्त था जब वह सचमुच हँसता था। अन्दर से हँसता था। पर यह तभी था जब कोई उस पर यह साबित करने वाला नहीं था कि कैसे हर लिहाज से वह हीन और छोटा है– इससे, उससे, मुझसे, तुमसे, सभी से। जब कोई उससे यह कहने वाला नहीं था कि जो.जो वह नहीं है, वही.वही उसे होना चाहिए, और जो वह है–।''

जुनेजा का यह विश्लेषण इसलिए ठीक प्रतीत होता है क्योंकि इसके पूर्व सावित्री भी इसी प्रकार का संकेत दे चुकी होती है – ''पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं है कि उसमे अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो..।'' महेन्द्र में इस शख्सियत के अनुभव को देख कर वह यहाँ तक कह देती है कि ''मत कहिये मुझे महेन्द्र की पत्नी।''

सावित्री की कुण्ठा का परिचय हमें सिंघानिया के आने की सूचना के साथ ही प्राप्त हो जाता है। पति.पत्नी झगड़ते दिखाई देते हैं। पत्नी सिंघानिया को आमन्त्रित करती है। उसका लक्ष्य है सिंघानिया के द्वारा लड़के की नौकरी लगाना। इतना हितकारी लक्ष्य होने पर भी महेन्द्रनाथ (पुरूष एक) को सिंघानिया का आना रूचिकर प्रतीत नहीं होता है। आखिरकार यह अस्वाभाविकता क्या हैं? इसका उत्तर नाटककार हमें तत्काल दे देता है कि सावित्री इस प्रकार से विभिन्न पुरूषों की अभ्यस्त है। वह महेन्द्रनाथ के साथ न रह कर अन्य पुरूषों के साथ रहना अधिक पसन्द करती है। स्वभावतः पुरूषः एक को यह अच्छा नहीं लगता है। इसी कारण वह विरोध प्रकट करता है। उसका विरोध इस कारण अप्रभावी रह जाता है क्योंकि वह स्वयं बेकार है और सावित्री एक कार्यालय में नौकरी करके घर का खर्च चलाती है। पुरूष कहता है। कि, ''जब.जब किसी नये आदमी का आना.जाना शुरू होता है। यहाँ, मैं हमेशा शुक्र मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था–''

तथा–''क्यों जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू?''

मनोज का नाम आते ही स्त्री रोक देती है। कि ''और क्या.क्या बात रह गई है कहने को बाकी।''

मनोज लड़की का प्रेमी है। इसी कारण सावित्री भी एकदम उछलती है और पुरूष भी सब कुछ जानते हुए चुप हो जाता हैं और जगमोहन का नाम लेकर स्पष्ट कर देता है कि वह अब भी जगमोहन के चक्कर में है।

स्त्री सर्वाधिक जुनेजा से अप्रसन्न दिखाई देती है। उसका नाम आते ही वह आवेश में आ जाती है। वह कहती है कि जुनेजा के कारण ही उसके पति की और उसके घर की बर्बादी हुई है। वह नहीं चाहती है कि जुनेजा उसके घर में झांके भी तथा उसका पति जुनेजा का नाम भी लें।

नाटककार कथा को इस प्रकार विकसित करता है कि सावित्री जगमोहन के साथ भाग जाने का प्रयत्न करती है और उसको बुलाकर स्वयं ही उसके साथ रहने का प्रस्ताव भी करती है।

नाटक के उत्तरार्द्ध में जुनेजा सावित्री से कहता है कि तुम्हें महेन्द्रनाथ कभी रूचिकर नहीं हुआ। एक दिन "तुम बात करने के लिए ही खास आयी थीं वहाँ और मेरे कंधे पर सिर रखे देर तक रोती रही थीं। उस दिन भी बिल्कुल इसी तरह तुमने महेन्द्र को मेरे सामने उधेड़ा था। कहा था कि वह बहुत लिजलिजा और चिपचिपा सा आदमी है।" उसको ऐसा बनाने वालों में तब तुमने उसके माता.पिता का नाम लिया था, मेरा नाम नहीं लिया था। इत्यादि।

इससे स्पष्ट है कि जुनेजा से सावित्री इस कारण असंतुष्ट है क्योंकि जुनेजा उसको अपने प्रेम में निराश कर चुका है। यह दमित कामेच्छा ही सावित्री को जुनेजा के बाद शिवजीत, जगमोहन तथा मनोज के प्रति आकर्षित रहती है। महेन्द्र के साथ रह कर वह अपने आप में एक अभाव का अनुभव करती रही है और उस अभाव की पूर्ति के लिए वह प्रत्येक सम्भव अवसर का लाभ उठाने के लिए प्रयत्नवान रही है।

तब फिर सावित्री महेन्द्र को छोड़ती क्यों नहीं है? इसका उत्तर यह है कि पैर जमाने के बाद ही दूसरा पैर हटाना चाहिए। जब तक कोई अन्य प्रबन्ध न हो जाय, तब तक जो गांठ में है, उसे भी क्यों छोड़ा जाय? कम से कम एक आड़ तो है ही। इसी मनोवृत्ति को लक्ष्य करके जुनेजा सावित्री से कहता है कि– "जिंदगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम से कम यह नामुराद मोहरा तो हाथ मे बना ही रहे?"

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिरकार सावित्री के मन में यह बात क्यों बैठ गई कि उसने गलत आदमी से शादी की थी। इस प्रश्न का उत्तर नाटककार प्रकारांतर से सावित्री के द्वारा दिलवा देता है। सावित्री आवेश में आकर अपने मन के गुबार को निकालती है। उसका कहना है कि महेन्द्रनाथ ने मेरी भावनाओं की परवाह कभी नहीं की थी। उसने सदैव अपनी मर्जी के मुताबिक मुझे चलाना चाहा। ऐसा करते समय वह मनुष्योचित व्यवहार को तिलांजलि देकर एक जंगली व्यक्ति की भांति व्यवहार करता था। यथा– दोस्तों के लिए जो फुसरत काटने का वसीला है, वही महेन्द्र के लिए उसका मुख्य काम होना चाहिए। वही महेन्द्र जो दोस्तो के बीच दब्बू सा बना हल्के. हल्के मुस्कराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल, बोल चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूँ? पर सावित्री फिर भी नहीं चलती। कभी इस आदमी को ही वह पूरा आदमी बना लेने की कोशिश करती है। कभी तड़प कर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सावित्री की कुण्ठा का निष्कर्ष इस प्रकार निकलता है। महेन्द्र ने सावित्री की भावनाओं का ख्याल नहीं किया, उससे मनमानी करवाना चाहा, सम्भवतः उसको अपने मित्रों के मनोरंजन की सामग्री बनाना चाहा। सावित्री को यह रूचिकर नही हुआ। वह महेन्द्र की विरोधी बन गई और दमित इच्छाओं की पूर्ति के अवसर देखने लगी। जुनेजा ने सर्वप्रथम उनको निराश किया था। इस कारण वह जुनेजा की विरोधी बन जाती है।

मनोज उसकी अंतिम शरण थी। वह भी एक प्रकार से उसको धोखा देता है। अतः वह एकदम निराश हो जाती है। हमारी उससे भेंट इसी स्थिति में होती है। इसी कारण सावित्री अपने प्रत्येक व्यवहार में हमको बौराई हुई सी दिखाई देती है। वह महेन्द्र से घृणा करती है, परन्तु स्वार्थवश बेसहारा भी नहीं होना चाहती है। यह उसकी कुटिलता है कि उसने महेन्द्र को अपना दीवाना बना रखा है। सावित्री के चरित्र की दुर्बलता को उसकी संतान भीं देखती है और वे भी उसी रास्ते पर चलने लगते हैं। सावित्री उन्हे रोकने में असमर्थ है– होनी ही चाहिए।

निष्कर्षतः नाटककार का उद्देश्य है आधुनिक मनोविश्लेषणशास्त्र के आधार पर मध्यवर्गीय परिवारों में व्याप्त कलह एवम् कुण्ठा का विश्लेषण प्रस्तुत करना। उसने फ्रायड तथा आडलर के सिद्धान्तों के आधार पर सावित्री के अस्वाभाविक व्यवहार का विश्लेषण किया हैं तथा युग के हीन भावना सिद्धान्त के आधार पर महेन्द्र की जलालत का विश्लेषण प्रस्तुत किया हैं। यहाँ विश्लेषण वह जुनेजा के माध्यम से प्रस्तुत करता हैं, क्योकि जुनेजा इस परिवार के साथ घुला.मिला हुआ हैं, कहने की आवश्यकता नहीं हैं कि नाटककार अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल हुआ हैं। उसने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया हैं वह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। जीवन में चुनाव के अवसर बहुत कम हैं। हमें जिनके साथ रहना हैं, उनके ही साथ अच्छी तरह रहने का प्रयत्न करें। सब चीजें किसी को भी एक जगह अथवा किसी

एक व्यक्ति से प्राप्त नहीं हो सकती हैं, प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई अभाव होता ही हैं, जैसा कि जुनेजा शिवजीत, जगमोहन, मनोज आदि के विषय में चर्चा करते हुए संकेत करता हैं।

पारिवारिक जीवन या दाम्पत्य जीवन की सफलता का सूत्र यह हैं कि पति.पत्नी परस्पर एक.दूसरे को पूरक समझें। एक के बिना दूसरा आधा.अधूरा हैं। पुरूष को चाहिए कि नारी की भावनाओं का दमन करके उसके मन में अपने प्रति घृणा एवम् विरोध उत्पन्न न करें। पतन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाने पर पतन की सीमा नहीं रह जाती हैं।

जीवन में चुनाव के अवसर बहुत कम हैं। अवगुण और कमियाँ सब में हैं। साथ रहने पर हमारे सामने साथी के अवगुण अधिक आते हैं। इससे लड़की बिन्नी कहती हैं कि हम जितना ही ज्यादा साथ रहते हैं............उतना ही ज्यादा अपने को एक–दूसरे से अजनबी महसूस करते हैं।

जुनेजा से बात करने के बाद सावित्री जुनेजा से कहती हैं कि वह महेन्द्र से कहे कि वह वस्तुस्थिति को समझें; उसकी आँखे तो खुल गई हैं। संयोगवश महेन्द्रनाथ वहाँ स्वयं ही आ जाता हैं। सम्भवतः अब वे दोनों व्यक्ति एक पूरी दुनिया का आनन्द लें सकेंगें।

यथास्थिति, अनुकूलता एवम् व्यवहारशीलता को मानव विकास का सर्वोपरि लक्षण माना गया हैं। 'आधे.अधूरे' नाटक बड़ी ही कलाशैली पर हमें उक्त आदर्श के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करता हैं।

3.7 सारांश

'आधे.अधूरे' मोहन राकेश का यथार्थवादी नाटक है। वैसे तो इतिहास एवम् ऐतिहासिक व्यक्तियों के माध्यम से जीवन के शाश्वत सत्यों एवम् चिरन्तन यथार्थ का उद्‌घाटन करने का साहसिक प्रयत्न राकेश के पूर्ववर्ती नाटकों में किया गया है।

"आधे.अधूरे' में यथार्थ बोध के लिये नाटककार के अपने युग के स्त्री, पुरूष, युवक, युवतियाँ और किशोर–किशोरियाँ को माध्यम बनाया हैं फिर यहाँ परिवेश भी नाटककार के युग का, विशुद्ध आधुनिक यंत्र.युग की ही देन हैः अतः यथार्थवादी दृष्टियाँ अपने समग्र आयाम में प्रतिफलित हुई है।

वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी दृष्टियों से जब हम नाटक का अध्ययन मनन करते हैं, तो निश्चय ही इसमें उपरोक्त सन्दर्भो में आज के जीवन के बहुमुखी यथार्थ के दर्शन होते हैं।

अपने.अपने ढंग से, अपने परिवेश, परिस्थितियों एवम् स्तरों में सारा समाज ही संत्रस्त एवम् पीड़ित है। काम और अर्थ के दबावों ने महत्वाकाक्षाओं से भरे मध्य एवम् निम्न मध्यवर्गीय जीवन को और अधिक संत्रस्त.पीड़ित बनाकर रख दिया है। उसी युग के यथार्थ बोध को नाटककार ने एक टूटकर बिखर रहे परिवार के माध्यम से व्यक्त किया है।

नाटककार ने नाटक में अनेक समस्याओं को इसलिए उठाया गया है कि मध्यवर्ग अपनी समस्याओं में स्वंय साक्षात्कार कर ले और उनके निदान के विषय में सोचें ।

पारिवारिक जीवन या दाम्पत्य जीवन की सफलता का सूत्र यह हैं कि पति.पत्नी परस्पर एक–दूसरे को पूरक समझें।

यथास्थिति, अनुकूलता एवम् व्यवहारशीलता को मानव विकास का सर्वोपरि लक्षण माना गया हैं। 'आधे.

अधूरे' नाटक बड़ी ही कलाशैली पर हमें उक्त आदर्श के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करता हैं।

3.8 अपनी प्रगति जाँचिए

1. मोहन राकेश मूलतः युग.बोध के ही सर्जक कलाकार माने जाते हैं– स्पष्ट कीजिए।
2. मोहन राकेश ने अपने नाटको में किन.किन समस्याओं को उठाया है? क्या वे इन समस्याओं का रूपांकन करने मे सफल रहे है? 'आधे.अधूरे' के सन्दर्भ में इन प्रश्नों पर युक्तियुक्त ढंग से विचार दीजिए।

3. 'आधे.अधूरे' एक समस्या–प्रधान नाटक है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।
4. "मोहन राकेश अपने इस नाटक के माध्यम से महानगरीय विघटनशील परिवार का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना चाहते है" समीक्षा कीजिए। (दीर्घउत्तरीय)

3.9 नियतकार्य / गतिविधियाँ

1. 'आधे.अधूरे' नाटक में व्यक्त यथार्थ एवम् समस्याओं का एक पत्रक तैयार कीजिए।

3.10 स्पष्टीकरण के बिन्दु

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

3.11 चर्चा के बिन्दु

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् जिन बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण चाहते हैं कृपया उन्हें रिक्त स्थान पर अंकित करें–

....

....

....

....

....

(ब) व्याख्या–खण्ड

साहित्य में रचना और रचनाकार को समझने के लिए विभिन्न पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किये गये कथन को बिना व्याख्यायित किये उसके बहुआयामी अर्थो को आत्मसात करना सम्भव नहीं होता है। अतः प्रस्तुत इकाई में नाटक के प्रमुख गद्यांशों की सप्रंसग व्याख्या की गयी है। जिसमें कि आप नाटक को पूर्ण रूपेण समझने में सफल हो सके और नाटक के बहुआयामी अर्थो को भलीभाँति आत्मसात कर सके।

गद्यांश 1

"मैं नहीं जानता आप क्या समझ रहे हैं? मैं कौन हूँ और क्या आशा कर रहे है? मैं क्या कहने जा रहा हूँ। आप शायद सोचते हों कि मैं इस नाटक में कोई एक निश्चित इकाई हूँ– अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता, व्यवस्थापक या कुछ और। परन्तु मैं अपने सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकता– उसी तरह जैसे इस नाटक के सम्बन्ध में नहीं कह सकता। क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित है। अनिश्चित होने का कारण यह है कि–परन्तु कारण की बात करना बेकार है। कारण हर चीज का कुछ.न.कुछ होता है, हालांकि यह आवश्यक नहीं कि जो कारण दिया जाय, वास्तविक कारण वही हो और जब मैं अपने ही सम्बन्ध में निश्चित नहीं हूँ, तो और किसी चीज के कारण. प्रकारण के सम्बन्ध में निश्चित कैसे हो सकता हूँ?"

सन्दर्भ–

प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग–

स्व. मोहन राकेश का 'आधे.अधूरे' नाटक एक यथार्थवादी.समस्या.नाटक है। राकेशजी के इस नाटक का महत्व इससे और बढ़ जाता है कि इसमें नाटककार ने कुछेक नवीन नाट्य.प्रयोग भी किये हैं। नाटकीय कथा का आरम्भ करने से पूर्व काले सूट वाले व्यक्ति को मंच पर प्रस्तुत करना एवम् उसके माध्यम से कथानक मे उभरने वाले चन्द सवालों का प्रस्तुतीकरण इन प्रयोगो में से एक है और इससे भी बड़ी बात है इसी काले सूट वाले द्वारा कालान्तर में चार पुरूषों की भूमिका अभिनीत करना। प्रस्तुत अवतरण में यह काले सूट वाला व्यक्ति अपना परिचय एक विशिष्ट मुद्रा में देता हुआ कहता है–'

व्याख्या–

आप जैसे प्रबुद्ध प्रेक्षकों के समक्ष इस प्रकार मंच पर प्रस्तुत होकर मैं अपना परिचय क्या दूँ ? क्योंकि मैं यह भी तो नहीं जानता कि आप मेरे विषय में क्या सोच रहे हैं कि मै हूँ कौन तथा मैं आप से क्या कहूँगा? हो सकता है कि आप मेरे विषय में यही धारणा मन में लिए होंगे कि मैं या तो एक अभिनेता हूँ या इस नाटक का व्यवस्थापक, प्रस्तुतकर्ता या और भी कुछ आप मेरे विषय में सोच रहे होंगे। लेकिन मैं अब तक स्वयं यह निश्चय नहीं कर पाया हूँ कि वास्तव में मेरा परिचय है क्या? अपने परिचय के विषय में मेरा अनिश्चित होना लगभग ऐसा ही है जैसे इस नाटक का अनिश्चित होना। अनिश्चित होने का कारण मैं आपको बता देता किन्तु उसकी कोई महत्ता नहीं है क्योंकि प्रत्येक बात का अपना कोई कारण होता है और उसकी स्वीकृति नितान्त वैयक्तिक होती है। इसलिए जो कारण बताया जाय वह सार्वभौमिक तो कदापि हो ही नहीं सकता। दूसरी मुख्य बात यह है कि नाटक के विषय में भी मैं कैसे कोई बात निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं के विषय में ही अनिश्चय की स्थिति में हो वह किसी भी दूसरी वस्तु के निश्चित या अनिश्चित होने के विषय में कुछ भी नहीं कह सकता– यदि कोई कहता है तो वह बेमानी ही होगा और इस प्रकार मैं स्वयं के प्रति अनिश्चित की स्थिति में होने से नाटक की अनिश्चितता के विषय में भी कुछ नहीं कह सकता क्योंकि बेमानी बात कहना मुझे रूचिकर नहीं।

विशेष–

1. काले सूट वाले व्यक्ति का इस प्रकार सर्वप्रथम मंच पर अवतरित होकर भी अपने प्रति अनिश्चित होने तथा नाटक को भी अनिश्चित बताने के पीछे दो मुख्य कारण हैं– एक तो नाटकीय कथा की अनिश्चितता बताकर नितान्त यथार्थ की प्रस्तुति का संकेत और दूसरे यह कि आज का 'पुरूष' जिस अनिश्चय के दौर से गुजर रहा है और अपनी 'अस्मिता' को ही खो बैठा है उसका संकेत। कालान्तर में यही व्यक्ति आज के 'पुरूष' को विभिन्न व्यक्तियों के मुखौटों से अनावृत भी करता है और हमारे भुक्त यथार्थ का साक्षात्कार भी कराता है।

2. कतिपय आलोचकों की दृष्टि में उपर्युक्त संकेत देने में न केवल काले सूट वाले सफल रहा है वरन् रंगमंच की सीमाओं के प्रति सचेत नाटककार ने इस प्रयोग के द्वारा रंगमंच की बहुत मदद की है।

गद्यांश 2

"मैं वास्तव में कौन हूँ?– यह एक ऐसा सवाल है जिसका सामना करना इधर आकर मैंने छोड़ दिया है। जो मैं इस मंच में हूँ, वह यहाँ से बाहर नहीं हूँ और जो बाहर हूँ– खैर, इसमें आपकी क्या दिलचस्पी हो सकती है कि मैं यहाँ से बाहर क्या हूँ? शायद अपने बारे में इतना कह देना ही काफी है कि सड़क के फुटपाथ पर चलते आप अचानक जिस आदमी से टकरा जाते हैं, वह आदमी मैं हूँ। आप सिर्फ घूरकर मुझे देख लेते हैं–इसके अलावा मुझसे कोई मतलब नहीं रखते कि मैं कहाँ रहता हूँ, क्या काम करता हूं, किस.किस से मिलता हूँ और किन.किन परिस्थितियों में जीता हूँ। आप मतलब नहीं रखते क्योंकि मैं भी आपसे मतलब नहीं रखता और टकराने के क्षण में आप मेरे लिए वही होते है जो मैं आपके लिए होता हूँ। इसलिए जहाँ इस समय मैं खड़ा हूँ, वहाँ मेरी जगह आप भी हो सकते थे– दो टकराने वाले व्यक्ति होने के नाते आपमें और मुझमें बहुत बड़ी समानता है। यही समानता आप में और उसमे,

उसमें और उस दूसरे में, उस दूसरे में और मुझमें बहरहाल, इस गणित की पहेली में कुछ नहीं रखा है। बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी.न.किसी अंश में आपमें से हर.एक व्यक्ति हूँ और यही कारण है कि नाटक के बाहर हो या अन्दर, मेरी कोई भी एक निश्चित भूमिका नहीं है।"

सन्दर्भ–

प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग–

नाटक के प्रारम्भ में कथानक को स्पष्ट करने एवम् नाटक से दर्शकों का सीधा साक्षात्कार कराने वाले काले सूट वाला आदमी प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देता है कि वह एक अनिश्चित है। कारण बताना वह बेकार समझता है क्योंकि उसकी दृष्टि में प्रत्येक कारण वास्तविक नहीं हुआ करता। इसी प्रसंग में वह आगे कहता है–

व्याख्या–

मेरा अपना परिचय क्या है और मेरी वास्तविकता क्या है? इस विषय में अब मैने कुछ भी सोचना छोड़ दिया है। आपके सामने मैं जिस रूप में हूं, मेरा यही रूप इस मंच के बाहर नहीं है और जो रूप बाहर है, वह भी मेरा वास्तविक रूप है– यह भी नहीं कहा जा सकता। यों भी इस विषय मे आपकी कोई रूचि नहीं होगी क्योंकि ऐसी व्यर्थ की बातों में किसी की भी रूचि नहीं होती। जैसे आप मेरे विषय में नहीं सोचते, मै भी आपकी हर बात के विषय मे नहीं सोचता। यही स्थिति हम सब की है। मेरा इतना ही परिचय काफी है कि मैं आप ही में से एक व्यक्ति हूँ इसलिए आम आदमी हूँ। सड़क पर मिलने वाले किसी व्यक्ति से जैसे आपका कोई सम्बन्ध नहीं होता और न ही आप उसके विषय में सोचते हैं वही व्यक्ति मुझे समझिये किन्तु इतना अवश्य है कि आम आदमी होने के कारण मैं आप सबसे सम्बद्ध हूँ। किसी न किसी अंश में मेरा कोई न कोई रूप आप सब में स्थित है इसलिए आपका और मेरा सीधा सम्बन्ध है। मतलब यह कि आप मुझे अपने से अलग मत समझिये। किन्तु इतने विविध रूपों में बंटा होने के कारण ही मैं अनिश्चित हो गया हूँ और इसी अनिश्चितता के कारण नाटक में भी मैं कोई निश्चित भूमिका के रूप में उपस्थित नहीं हो सका और सर्वत्र अनिश्चित ही रह गया हूं।

विशेष–

यहाँ पर काले सूट वाले ने स्पष्टतः अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया है कि यद्यपि उसने नाटक में विविध भूमिकाएं अभिनीत की हैं तथापि यह भूमिकाएं प्रकारान्तर से उन दर्शकों ने ही निभायी हैं और स्पष्टतः दर्शक नाटक में अपने ही मुखौटो को विविध रूपों में देखेंगे।

गद्यांश 3

"पर कौन.सी अड़चन?– उसके हाथ में छलक गयी चाय की प्याली, या उसके दतर से लौटने में आधा घंटे की देर– ये छोटी–छोटी बातें अड़चन नहीं होतीं, मगर अड़चन बन जाती है। एक गुब्बार.सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मैं इन्तजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लें और आखिर वह सीमा आ जाती है। जहाँ पहुँचकर वह निढाल हो जाता है। ऐसे में वह एक ही बात कहता है कि मैं इस घर से ही अपने अन्दर कुछ ऐसी चीज लेकर गयी हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नही रहने देती है।"

सन्दर्भ–

प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग–

सावित्री की आवारगी के प्रभावस्वरूप उसकी तरूणी पुत्री बिन्नी भी उसी मार्ग पर बढ़ने लगी और एक दिन सावित्री के युवा प्रेमी मनोज के साथ घर छोड़कर भाग गयी। वह गयी थी एक सुखी परिवार बसाने किन्तु पारिवारिक उपहार

आवारापन ने वहाँ भी उसे सुखी नहीं रहने दिया। परिवार की आवारगी, अनुशासनहीनता और चरित्रहीनता ने उसे इतना अस्वाभाविक बना दिया कि वह चाहने पर भी अपने को कभी स्वाभाविक स्थिति में नहीं ला पाती। सावित्री से वह अपनी इसी मनोदशा के विषय में बताते हुए कहती है।

व्याख्या– मै यही नहीं तय कर पाती कि आखिर ऐसी वह कौन.सी अड़चन है। जो मुझे मनोज के साथ स्वाभाविक स्थिति में नहीं रहने देती है। छोटी.छोटी बाते मनोज और मेरे बीच में ऐसा अलगाव पैदा कर देती है कि फिर मैं उससे विमुख हो उठती हूँ जैसे– मनोज के हाथ में चाय की प्याली छलक जाय या कभी वह अपने दतर से आध ा घण्टा देर से घर आये। यही छोटी.छोटी बातें है लेकिन हमारे मध्य इन्ही ने दरार पै.. की है। इससे मैं इतनी अस्वाभाविक हो उठती हूँ कि मेरे मन में अब सदैव एक खीझ भरी रहती है और मैं उसे उतारने के लिए बार.बार मनोज से उलझ जाती हूँ। सम्भवतः इस बहाने मैं अपनी खीझ को उस पर व्यक्त कर सकूँगी। मेरे इस प्रकार के उत्तेजित, खीझ भरे व्यवहार को देखकर वह हर बार मुझसे यही कहता है कि मै इसी घर से कुछ अपने साथ ऐसा लेकर गयी हूँ जो बार.बार मुझे अस्वभाविक बना देता है। ऐसा कहते समय मनोज निढाल स्थिति में पड़ जाता है और वह यही कहता है।कि इसी उपहार में पायी गई चीज के कारण मेरा जीवन उलझनपूर्ण हो गया है।

विशेष –यद्यपि बिन्नी नहीं जानती कि ऐसी क्या चीज है। जिसे वह अपने मायके से ले गयी है और जिसके कारण वह सदैव अस्वाभविक रहती है। किन्तु सावित्री उसके इस प्रश्न से चौक उठती है क्योंकि वह तो जानती है कि उसने विरासत में अपनी पुत्री बिन्नी को जो आवारापन दिया है। वह बिन्नी और मनोज के पारिवारिक तनावों और अस्वाभाविकता की जड़ है। बिन्नी चूंकि आवारापन से भरे वातावरण में पली थी इसलिए जब मनोज के घर में वह वातावरण नही मिलता तो प्रतिक्रिस्वरूप खिन्न और अस्वभाविक जीवन व्यतीत करने लगी।

गद्यांश 4

"कई.कई दिनों के लिए अपने को उससे काट लेती हूँ। पर धीरे.धीरे हर चीज फिर उसी ढर्रे पर लौट आती है। सब कुछ फिर उसी तरह होने लगता है। जब तक कि हम, नये सिरे से फिर उसी खोह में नहीं पहुँच जाते।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग–सावित्री के घर में बिन्नी केवल इसलिए भाग.भाग कर आती है कि वह उस घर में, जो उसका अपना घर है। अपने को कभी भी स्वाभाविक स्थिति में नही रख पाती है। छोटी.छोटी बातों के कारण वह मनोज से लड़ पड़ती है, उससे रूठ जाती है और अन्ततः जब मनोज परेशान हो उठता है। तो वह बिन्नी से यही कहता है कि जिस घर में वह पली है उसी की छाप पड़ जाने के कारण अस्वाभाविक रहती है। बिन्नी अपने और मनोज के मध्य इसी तनाव की स्थिति का वर्णन करती हुई कहती है–

व्याख्या– मनोज के साथ उलझ पड़ने और उसकी बातें सुनकर मैं उसकी उपेक्षा करने लगती हूँ और उससे दूर रहने लगती हूँ। किन्तु यह दुराव की स्थिति भी मुझसे अधिक दिनों तक सहन नहीं हो पाती और मैं महसूस करती हूँ कि फिर कुछ दिनों में स्थित सामान्य होने लगती है। हम फिर से परस्पर बोलने और एक दूसरे के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करने लगते हैं। इस प्रकार कुछ दिनों तक हमारा पारिवारिक जीवन शांति और सौहार्द्र के वातावरण में गतिमान हो जाता है। यह स्थिति तब तक रहती है जब तक कि हम पुनः उलझन, खीझ और तनाव की दशा में एक बार फिर से स्वयं को उलझा नहीं लेते। वह स्थिति आते ही हम पुनः उलझ जाते हैं।

विशेष–लेखक ने बिन्नी की अस्वाभाविक मनःस्थिति का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक चित्रण यहाँ पर किया है और बिन्नी के चरित्र को समझने में इन पंक्तियों से बड़ी सहायता मिल जाती है।

गद्यांश 5

"हाँ, पूछ कर ही जानना है आज। कितने साल हो चुके हैं मुझे जिन्दगी का भार ढोते? उनमें से कितने साल बीते हैं मेरे इस परिवार की देख.रेख करते? और उस सबके बाद मैं आज पहुँचा कहाँ हूँ? यहाँ कि जिसे देखो वही मुझसे उलटे ढंग से बात करता है? जिसे देखो वह मुझसे बदतमीजी से पेश आता है।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– व्यापार में घाटा हो जाने के कारण महेन्द्रनाथ बेकार हो गया और सावित्री की कमाई की रोटी खाने लगा फलस्वरूप घर में न तो पत्नी और न बच्चे ही उसका आदर करते हैं। सभी उसका अपमान करने पर उतारू रहते हैं। इसी गर्हित वेदना ने महेन्द्रनाथ को इतना खिन्न बना दिया कि उसे यही प्रतीत हुआ जैसे परिवार में उसका कोई महत्व ही नहीं रह गया है। अपनी इसी स्थिति से खींझकर वह अपनी पत्नी और बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहता है–

व्याख्या– मुझे आज निश्चित रूप से यह जानना है कि इस परिवार में रहते मैंने अपने जीवन के कितने कीमती वर्ष बरबाद कर दिये। मेरा जीवन वर्षों से एक भार.सा बन गया है और मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कितने वर्षों से इस भार को अयाचित बोझ की तरह ढोता आ रहा हूँ। मै यह भी तुम लोगों के मुख से जानना चाहता हूँ कि तुम लोगों के इस परिवार का पालन.पोषण मैं कितने वर्षों से करता आ रहा हूँ और उस दायित्व का प्रतिफल मुझे यही मिल रहा है कि आज घर में मेरी स्थिति इतनी दयनीय हो गयी है। सभी लोग मेरा अपमान करने, मेरा अनादर करने में सुख का अनुभव करते हैं। कोई तो ऐसा होता जो मुझसे ठीक ढंग से बात कर लेता किन्तु यहाँ तो यह स्थिति है कि अपमान, अनादर.भाव ही मेरी इतने सालों की कमाई हैं।

विशेष– महेन्द्रनाथ की दयनीय मनःस्थिति का अत्यन्त यथार्थ एवम् मनोवैज्ञानिक चित्रण यहाँ पर किया गया है और इन पंक्तियों में जैसे उसकी खीझ, हीनताबोध और नैराश्यभाव साकार हो उठे हैं।

गद्यांश 6

"मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी क्या यही हैसियत है इस घर में कि जो जब जिस वजह से जो भी कह दे, मैं चुपचान सुन लिया करूं? हर वक्त की दुतकार, हर वक्त की कोंच, बस यही कमाई है मेरी इतने सालों की?

सन्दर्भ–प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग–महेन्द्रनाथ अपने घर वालों के अपमान और निरादर भरे व्यवहार से इतना खिन्न हो उठा है कि वर्षो से जो खिन्नता उसके मन में भरती चली आ रही थी वह एक गुबार के रूप में फट पड़ती है और वह व्यंग्यात्मक पूर्ण स्वर में परिवार के सभी सदस्यों के प्रति कहने लगता है–

व्याख्या– इस घर में एक पति और बाप का महत्व मुझे मिलना चाहिए था किन्तु मिला क्या मुझे? न पति का सम्मान और न पिता की गरिमा से भरा आदर। जिसे देखों वही मेरा अनादर करता है, मेरा अपमान करता है। बार.बार मुझे हीन सिद्ध किया जाता है और कारण बता.बताकर मुझसे ऐसी.ऐसी बातें कही जाती है जो अकथनीय होती है। उस पर भी सब यही सोचते हैं कि उनकी बातों को मैं चुपचाप सुन लिया करूं। क्या मेरे इतने वर्षों की सेवा और कर्तव्यों का यही प्रतिफल है कि सारे सदस्य मेरा अपमान करें, मेरा निरादर करे, मेरे हृदय पर बार.बार चोट करें और मै चुपचाप इन सब को सहता रहूं सुनता रहूँ।

विशेष–इस उद्धरण में महेन्द्रनाथ की कुढ़न, घुटन और खीझ को बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है और पाठक. दर्शक महेन्द्रनाथ के इस कथन को पढ़ सुनकर उसके प्रति सहानुभूति से भर कर द्रवित हो उठता है। मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से यह सम्वाद दर्शनीय है।

गद्यांश 7

"हाँ.छोटी सी बात ही तो है यह। अधिकार, रूतबा, इज्जत– यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आजतक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे। मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है।"

सन्दर्भ–प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– महेन्द्रनाथ निठल्ला होने के कारण घरवालों के मध्य जब बार.बार प्रताड़ित.लांछित होने लगा तो उसका मन क्षुब्ध हो उठा और अन्ततः उसे परिवार के सदस्यों से यह पूछना ही पड़ा कि जिस परिवार का भरण.पोषण करने के लिए उसने अपना जीवन गंवा दिया उसका प्रतिफल उसे आज इस रूप में मिल रहा है। इस पर उसकी पत्नी सावित्री कहती है कि उसे घर में आदरपूर्ण पद तो प्राप्त है। पत्नी का कथन सुनकर महेन्द्रनाथ व्यंग्य करते हुए कहता है–,''

व्याख्या–यह ठीक है, तुमने मुझसे एक छोटी.सी बात पूछी है किन्तु उसका अर्थ कितना गहरा है इसे भी मैं जानता हूँ। अधिकार, सम्मान और प्रतिष्ठा नाम की चीजें इस घर को सदैव बाहरी लोगों के द्वारा मिलती रही हैं, मैं भला ये सब इस घर को कहाँ दे पाया। मेरा तो केवल नाम है, सम्मान तो तुम लोग उन्हें देते ही जिन्हें आदरपूर्वक घर पर आमंत्रित करते रहे हो। यही कारण है कि इस घर का आज तक जितना भी हित हुआ है वह सब बाहरी लोगों के कारण हुआ क्योंकि मैं तो केवल तुम लोगों को हानि पहुंचाता रहा हूँ तुम्हारा अपमान करता रहा हूँ और प्रकारान्तर से घर की प्रतिष्ठा को भी नुकसान पहुंचाता रहा हूँ। इसीलिए तुम्हारा यह कहना सही है कि मेरे द्वारा तो सदैव इस घर का बिगड़ता आया है और भविष्य में भी मेरे द्वारा कभी भला हो पायेगा, यह कह सकना कठिन है।

विशेष– महेन्द्र के स्वर में यहाँ पर जो तल्खी और कटुतापूर्ण व्यंग्य है उससे उसकी मनोदशा अथवा मनोव्यथा का सहज ही में आंकलन किया जा सकता है।

गद्यांश 8

''मत कह, नहीं कह सकता तो। पर मैं। मिन्नत.खुशामद कर के लोगों को घर पर बुलाऊँ और तू आने पर उनका मजाक उड़ाये, उनके कार्टून बनाये– ऐसी चीजें अब मुझे बिलकुल बरदाश्त् नहीं हैं सुन लिया? बिलकुल.बिलकुल नहीं है।''

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग –सावित्री के बॉस सिंघानिया के आगमन को लेकर उसका पुत्र अशोक जब बहुत बौखला उठता है और सिंघानिया का विविध प्रकार से उपहास करता है तो सावित्री अशोक के इस विद्रोही व्यवहार को सहन नहीं कर पाती और इस बात से तो और भी उखड़ जाती है– कि अशोक ने सिंघानिया का कार्टून बनाया है। वह अशोक को झिड़कती हुई कहती है–

व्याख्या– यदि तुझे मेरी बातों पर अमल नहीं करना है और मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं देना है। तो ठीक है तू कुछ मत कह किन्तु मुझे तेरी यह उच्छृंखलता बिल्कुल पसन्द नहीं है कि जिन लोगों को मैं अपना समझकर, उनका आदर करके और अनुरोध करके अपने घर पर आमंत्रित करूं, तू उन लोगों का व्यंग्य चित्र बनाये या उनका उपहास करे। मैं तेरी इस दुष्टता को कदापि सहन नहीं कर पाऊँगीं और न ही मुझे यह सब तौर.तरीके पसन्द हैं। मेरा यह स्पष्ट निर्णय है कि मेरे आमंत्रित अतिथियों के विषय में कुछ भी कहने का तुझे कोई अधिकार नहीं है।

विशेष–सावित्री का स्त्रैण दम्भ स्वयं इस तथ्य की गवाही यहाँ पर दे रहा है कि वह वास्तव में आवारा और चरित्रहीन है तथापि अपनी इस सच्चाई को वह सुनना नहीं चाहती उल्टे अपने स्पष्टभाषी पुत्र अशोक को ही उच्छृंखलता के नाम पर फटकारती है।

गद्यांश 9

''इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। कि मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है। इस घर का भार जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ सम्बन्ध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं तुम लोगो के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो तो मैं कोशिश छोड़ दूँगीं। हाँ, इतना अवश्य है कि मैं अकेले दम इस घर की जिम्मेदारियाँ नहीं उठाती रह सकती। एक आदमी है जो घर का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ धरे बैठा। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना

अपना अपमान समझता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहाँ दर्द नहीं किसी चीज का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहू रात.दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूँ अपनी जगह? उससे तो तुमसे से कोई छोटा नहीं होगा?

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– अशोक को यह रूचिकर नहीं कि सावित्री घर में उच्च स्तर के लोगों को बुलवायें। ऐसे लोगों के माध्यम से वह अपनी मां पर व्यंग्य करते हुए कहता है। कि जब.जब उसने किसी बड़े व्यक्ति को घर बुलाया और उसका स्वागत.सत्कार किया है। तब.तब उसे लगा है कि वह जितना हीन था उससे भी अधिक हीन हो गया है। तात्पर्य यह है कि बड़े लोगों के आगमन से परिवार के सदस्यों में हीनताबोध बढ़ता है। अशोक का यह कथन सुनकर सावित्री वितृष्ण होकर कहती है–

व्याख्या– मैंने जब भी किसी बड़े आदमी को इस घर में निमंत्रित किया है और उसका सत्कार किया है तो केवल इसलिए ताकि इस घर का कुछ भला हो सके। घर की आर्थिक स्थिति को सुधारने में मैं अकेली भला क्या कर सकती हूँ, उल्टे मेरे ऊपर अधिक बोझ आ पड़ा है और उसी बोझ को हल्का करने के निमित्त मैं चाहती हूँ कि किसी बड़े आदमी के माध्यम से किसी की नौकरी लग जाय और मुझे सहायता मिल जाय यही कारण है कि विशेष लोगों से मैं सम्बन्ध बढ़ाती हूँ वह अपने लिए नहीं तुम लोगों के ही हित के लिए करती हूँ। मुझे पता नहीं था कि इससे तुम में हीनता बोध बढ़ता है और तुम स्वयं को छोटा अनुभव करते हो। यदि ऐसा ही है तो मैं भविष्य में अब कोई भी प्रयत्न नहीं करूंगी। किन्तु यह भी निश्चित है और मुझे कहना पड़ रहा है कि अकेले मुझसे अब इस परिवार का भरण–पोषण सम्भव नहीं हो पायेगा। तेरे पिता व्यापार ठप्प पड़ जाने के बाद से वर्षो से बेकार घूम रहे हैं। उन्हें तो कुछ करना.धरना है नहीं और तेरे लिए अगर मैं कुछ प्रयत्न करना भी चाहूँ तो तू उसमें अपना अपमान समझता है। इस स्थिति में भला मुझे क्या पड़ी है जो सबके लिए अपने को व्यर्थ ही में नष्ट करती रहूँ, मैं भी कुछ नहीं करूंगी। जब इस घर के दायित्व को कोई भी नहीं संभालना चाहता तो मैं ही क्यों रात.दिन अपने को बरबाद करूँ। मैं भी ऐसा ही करूंगी और उत्तरदायित्व से मुख मोड़ लूँगी। इससे तो तुम में हीनताबोध नहीं बढ़ेगा और मेरे विचार से इससे तुम में बड़प्पन की भावना ही बढ़ेगी।

विशेष–सावित्री यहाँ पर प्रदर्शित करना चाहती है कि घर के प्रति सबसे अधिक उत्तरदायित्व की भावना उसी में है और वह सबके हित के लिए ही कुछ विशिष्ट लोगों को घर में आमंत्रित करती रहती है। किन्तु इस तथ्य से सभी परिचित हैं कि सावित्री का यह चेहरा केवल प्रदर्शन के लिए है परन्तु उसकी वास्तविकता कुछ और ही है।

गद्यांश 10

"यूं तो जो कोई भी एक आदमी की तरह चलता.फिरता, बात करता है, वह आदमी ही होता है। – पर असल में आदमी होने के लिए क्या जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो?"

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग–हीनताबोध से ग्रस्त महेन्द्रनाथ सावित्री और बच्चों पर व्यंग्य करने के उपरान्त घर छोड़कर चला जाता है और रात में अपने मित्र जुनेजा के यहाँ रहता है। किन्तु सावित्री के प्यार के वशीभूत होकर वह रह नहीं पाता और जुनेजा को सावित्री को समझाने के लिए भेजता है। सावित्री उस समय घर से बाहर जगमोहन के साथ चली गयी थी इसलिए जुनेजा को कुछ देर प्रतीक्षा करनी पड़ी और जब सावित्री वापस लौटी तो जुनेजा को बैठा देखकर उसका विक्षोभ क्रोध में परिणत हो गया। जुनेजा द्वारा यह कहने पर कि वह महेन्द्रनाथ को किसी प्रकार अपने प्यार से मुक्त क्यों नहीं कर देती तो यह सुनकर सावित्री महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व पर व्यंग्य करती हुई कहती है–

व्याख्या–यह ठीक है कि जिस व्यक्ति में मनुष्य की भांति चलने.फिरने, बात करने और उसी प्रकार से रहने के गुण पाये जाते है। उसे साधारणतः मनुष्य ही कहा जाता है क्योंकि उसमें न तो पशुओं के गुण हैं, न पक्षियों के बल्कि वह भी आम मनुष्य की भांति ही आचरण करता है किन्तु क्या केवल चलने.फिरने या बात.व्यवहार करने से ही उसे मनुष्य मान लेना चाहिए। सावित्री कहती है, उसकी दृष्टि में एक मनुष्य होते हुए भी मनुष्य कहलाने का अधिकारी

तब तक नहीं है, जब तक यह प्रमाणित न हो जाय कि उसमें आम मनुष्यता से इतर अपनी एक विशिष्टता, अपना एक विशेष व्यक्तित्व है। जिस व्यक्ति में अपनी विशेषता और व्यक्तित्व नहीं होता वह दो हाथ पैरों वाला मनुष्य होते हुए भी सावित्री की दृष्टि में पूर्ण मनुष्य नहीं है।

विशेष– यहाँ पर सावित्री ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि सामान्य गुणों की दृष्टि से यद्यपि महेन्द्रनाथ पुरुष ही है। किन्तु उसमें न तो अपनी कोई विशिष्टता है और न ही अपना एक अलग व्यक्तित्व, एक स्पष्ट अलगाव वाली अस्मिता। इस प्रकार वह महेन्द्रनाथ को अपूर्ण व्यक्ति अथवा आधा.अधूरा मनुष्य ही मानती है।

गद्यांश 11

"मुझे उस असलियत की बात करने दीजिए जिसे मैं जानती हूँ। एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन.सी जरूरत? अपने अन्दर के किसी उसको एक अधूरापन कह लीजिए, उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए अपने में पूरा होना होता है। किन्हीं दूसरों को पूरा करते रहने में ही जिन्दगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेन्द्र के लिए जिन्दगी का मतलब रहा है–जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज है। वह जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते है, उम्मीद करते है–या जिस तरह वे सोचते है, उनकी जिन्दगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– जुनेजा के सम्मुख अपने पति के व्यक्तित्व पर आक्षेप लगाती हुई सावित्री कहती है। कि यद्यपि वह आदमी की तरह एक आदमी ही है। किन्तु न तो उसका अपना कोई विशिष्ट व्यक्तित्व है और न ही वह पूर्णता जो वह चाहती है। महेन्द्रनाथ सदैव दूसरों पर आश्रित रहने का आदी है। यही कारण है– कि वह जो कुछ भी करता आया है। वह अपने मित्र जुनेजा के ही परामर्श से करता रहा है और जुनेजा तो अपने आप में एक पूर्ण व्यक्तित्व है। जब कि महेन्द्रनाथ इस सन्दर्भ में उसका चौथाई अंश भी नहीं है। इस पर जुनेजा उसकी बात काटकर महेन्द्रनाथ के बारे में कुछ कहना चाहता है और उसकी वास्तविकता बताना चाहता है। किन्तु सावित्री स्वयं महेन्द्रनाथ की वास्तविकता के विषय में कहती है–

व्याख्या– जिस वास्तविकता के विषय में आप मुझे बताना चाहते हैं, उसी विषय में मैं भी आप से कह रही हूँ क्योंकि मुझे उस वास्तविकता से बार.बार साक्षात्कार करना पड़ा है। महेन्द्रनाथ को इतने वर्षो तक झेलने के बाद मुझे तो यही अनुभूति हुई है कि मनुष्य कहलाने का उसे कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति जब अपना घर बसाता है। तो उसके मन में कई एक आकांक्षाओं के साथ ही एक आवश्यकता भी लगी.जुड़ी होती है और यह आवश्यकता उस आदिम भोगेच्छा की प्रतीक है। जो उसे प्राकृतिक भूख के रूप में मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में कभी भी सम्पूर्ण नहीं हुआ करता न हो सकता है, क्योंकि अपूर्णता एक नैसर्गिक वस्तु है और यही कारण है कि अपनी आदिम भूख और तज्जन्य अपूर्णता को पूर्ण बनाने के लिए वह दूसरे अपूर्ण व्यक्ति से सम्पर्क बढ़ाता है ताकि दोनों आधे.अधूरे व्यक्ति मिलकर पूर्णता प्राप्त कर सकें। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के सान्निध्य में रहकर अपने को पूर्ण बनाता है। किन्तु यह दृष्टिकोण तो नितान्त भ्रामक और गर्हित भी कि वह दूसरों के जीवन को पूर्ण बनाते. बनाते स्वयं को अधूरा ही रहने दे और इस प्रकार एक बहुमूल्य जीवन व्यर्थ नष्ट हो जाए। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह कभी भी पूर्ण नहीं हो पाता और सदैव अपूर्ण ही रह जाता है क्योंकि उसके जीवन का उद्देश्य ही केवल दूसरों की अपूर्णता को पूर्ण करना अथवा उनकी रिक्तता को भरना है। जिस महेन्द्र की आप इतनी प्रशंसा कर रहे है। वह ऐसा ही व्यक्ति है और उसके जीवन का लक्ष्य ही दूसरों की रिक्तियों को भरने है। उसके मित्र जो उससे चाहते और अपेक्षा करते हैं। उसकी पूर्ति ही उसके जीवन का लक्ष्य है और यहाँ तक कि उसके मित्र जिस ढंग से सोचते है। उसकी पूर्ति वह करता रहे। ऐसे व्यक्ति को मैं कदापि पूर्ण नहीं मान सकती।

विशेष –पूर्ण पुरुष की इस वृहत् व्याख्या के पीछे सावित्री का उद्देश्य केवल यही सिद्ध करना है। कि महेन्द्र एक अपूर्ण और आधा.अधूरा व्यक्ति है, जिसकी अपनी कोई इच्छा नहीं है और जो दूसरों पर ही सदैव निर्भर रहता है।

गद्यांश 12

"वह एक पूरा आदमी चाहती है। अपने लिए.एक.पूरा आदमी। गला फाड़कर वह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलम कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फर्क पड़ने लगता है। इस आदमी में, तो दोस्तों में इसका गम मनाया जाने लगता है।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– सावित्री चूँकि महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व को अपूर्ण समझती है और यह मानती है कि अपनी इसी कमीं के कारण वह सदैव दूसरों पर आश्रित रहता आया है। इसलिए वह महेन्द्रनाथ से घृणा करती है। वह कहती है कि आपने इसी हीनताबोध को छिपाने के लिए महेन्द्रनाथ घर में अपने कपड़े फाड़ता है, पत्नी को पीटता है या बच्चों को मारता है, सावित्री को अपने ढ़ंग से चलने के लिए विवश करने का प्रयत्न करता है किन्तु सावित्री नहीं मानती। इसी प्रसंग मे वह आगे कहती है–

व्याख्या – मैं महेन्द्रनाथ के आधे.अधूरेपन के कारण ही उसे घृणा करती और चाहती हूँ कि कैसे भी हो मुझे एक पूरा आदमी मिल सके जो स्वयं सोच और समझ सके। गला फाड़कर मैं सदैव यही बात कहती रही हूँ। कभी तो मैं महेन्द्रनाथ को अपने मनोनुकूल ढालने का प्रयत्न करती हूँ और कभी तो मैं देखती हूँ कि यह मेरी इच्छा के अनुकूल अपने को परिवर्तित करने में हिचक रहा है तो मैं उसकी उपेक्षा करने लगती हूँ। इस प्रकार के मेरे विधेयात्मक और निषेधात्मक दोनों प्रकार के प्रयत्नों से कभी.कभी ऐसा लगता है कि जैसे मै अपने उद्देश्य मै कुछ सफलता पा रही हूँ। क्योंकि मैं स्पष्ट रूप से उसमें अन्तर अनुभव करती हूँ। किन्तु जब.जब ऐसा अवसर आया है तो उसके मित्रों में निराशा छा जाती है क्योंकि तब उन्हें लगता है कि अब वह उनके परामर्श से कोई कार्य नहीं करेगा अथवा उन पर सब पहले की ही तरह आश्रित नहीं रहेगा। इसीलिए तब महेन्द्रनाथ के मित्रों में दुख की लहर छा जाती है और वे उसे पुनः भड़काने लगते हैं।

विशेष –सावित्री की स्थिति का बड़ा सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण यहाँ पर हुआ है और यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दोनो पति.पत्नी में तनाव का मुख्य कारण महेन्द्रनाथ के मित्र रहे है क्योंकि सावित्री के कथनानुसार वे ही महेन्द्रनाथ को बिगाड़ते है और सावित्री के प्रति भड़काते रहते है जिससे घर में सदैव तनाव बना रहे और वे मित्र अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहें। सावित्री के इस कथन में मध्यवर्गीय विसंगतियाँ साकार हो उठी है।

गद्यांश 13

"असल बात इतनी ही कि महेन्द्रनाथ की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल दो साल बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने एक गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्रनाथ, कोई जुनेजा कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती, यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहतीं।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग – जुनेजा सावित्री को समझाने आया था किन्तु जब सावित्री ने महेन्द्रनाथ पर यह आरोप लगाया कि वह अधूरा व्यक्ति है और उसे अधूरा बनाने वालो में मुख्य रूप से जुनेजा का ही हाथ है तो वह बौखला उठा। वह पहले तो सावित्री को समझाता है और फिर उसके चरित्र पर लगे उन तमाम धब्बों को उसे दिखाता है जो उसने स्वयं अपने पर लगाये थे। उसका स्पष्ट कहना है कि वह स्वयं आधी.अधूरी स्त्री है इसीलिए यहाँ.वहाँ कितने ही पुरुषों के मध्य भटकती रही है किन्तु किसी भी पुरुष से उसे पूर्ण सन्तोष नहीं मिल सका। कभी जुनेजा के प्रति आकर्षित हुई, कभी शिवजीत के प्रति और कभी जगमोहन के प्रति किन्तु सभी से वह सर्वथा असन्तुष्ट ही रही। वह अन्ततः सावित्री की महत्वाकांक्षाओं पर व्यंग्य करते हुए कहता है–

व्याख्या – तुम्हारे चरित्र को देखकर अन्ततः यही कहा जा सकता है कि तुम कभी भी किसी एक व्यक्ति से सन्तुष्टि पा ही नहीं सकती हो। महेन्द्रनाथ को तो तुम सदैव अधूरा ही समझती रही किन्तु उसके अतिरिक्त भी जुनेजा, शिवजीत या जगमोहन जो भी तुम्हारे जीवन में आया तुम्हें उसके विषय में भी यही शिकायत रही। इसीलिए मुझे कहना पड़ रहा है कि महेनद्रनाथ की जगह इन व्यक्तियों में से जो कोई भी होता कुछ समय बाद तुम यही सोचती कि अमुक व्यक्ति से विवाह करके तुमने एक भारी भूल कर दी है। इसका कारण यही है कि तुम एक व्यक्ति से सम्बद्ध रह कर जी ही नहीं सकती हो, क्योंकि तुम इसकी आदी नहीं हो। तुममें इतनी अधिक महत्वाकांक्षा है कि तुम एक वस्तु से सन्तुष्ट हो ही नहीं सकती वरन् तुम चाहती हो कि तुम्हारे साथ बहुत कुछ रहे, बहुत कुछ तुम पा सको और उस बहुत कुछ के साथ जीवन व्यतीत करती रहो किन्तु इतना सब कुछ एक साथ पा जाना तुम्हारे लिए अब तक कभी भी सम्भव नहीं हो सका। तुम छटपटाती रहीं, टूटती और जुड़ती रहीं किन्तु अपना प्राप्य कभी नहीं पा सकी और इसी भटकाव में तुम्हारा जीवन छिन्न.भिन्न होकर रह गया। तुम भटकती रहीं और तुम्हारी आकांक्षाएं अपना दम तोड़ती रही। जो अवारापन तुमने स्वयं स्वीकार किया, कालान्तर में वह तुम्हारी एक प्रवृत्ति बन गया जिसके कारण तुम्हारा जीवन सदैव.सदैव के लिए अव्यवस्थित होकर रह गया। इसीलिए तुमने जब.जब अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति करनी चाही और वैसा जीवन जीने के लिए किसी पुरूष का सहारा लिया, सदैव तुम अपने को ही छलती रही और तुम्हें जीवन में परिणतिस्वरूप सदैव वही रिक्तता मिली, वही अधूरापन मिला और बेचैन होकर इसीलिए तुम सदैव छटपटाती रही हो। तुम्हें शान्ति और सुख न मिलने का यही मुख्य कारण रहा है फिर भी तुम दूसरों पर ही दोष थोपती जा रही हो।

विशेष – सावित्री की छटपटाहट और उसकी मूल प्रवृत्ति का उद्घाटन जुनेजा के कथन के माध्यम से नाटककार ने बड़े सशक्त रूप से किया है। सावित्री की चारित्रिक विशिष्टताएं इस कथन से पूर्णतः निरावृत्त हो जाती है और उसका असली रूप सामने आ जाता है।

गद्यांश 14

''वह भी देखा है। देखा है कि जिस मुठ्ठी में तुम कितना कुछ एक साथ भर लेना चाहती थी, उसमें जो था, वह भी धीरे–धीरे बाहर फिसलता गया है– कि तुम्हारे मन में लगातार एक डर समाता गया है। जिसके मारे कभी तुम घर का दामन थामती रही हो, कभी बाहर का और वह डर एक दहशत में बदल गया जिस दिन तुम्हें एक बहुत बड़ा झटका खाना पड़ा अपनी आखिरी कोशिश में।''

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग – सावित्री की चारित्रिक विशिष्टताओं का पर्दाफाश करते हुये जुनेजा यह स्पष्ट कह देता है कि वह किसी एक पुरूष से सन्तुष्ट हो सकने की आदी कभी नहीं रहीं है। उसके आवारापन ने उसे इतना चंचल बना दिया है कि वह एक पुरूष से जीवन भर निर्वाह करने की अभ्यस्त नहीं रह गयी। अपने इसी अस्वाभाविकता के कारण वह महेन्द्रनाथ के साथ निर्वाह करने में असमर्थ रही और वह उसे एक कुढ़नशील व्यक्ति दिखायी देने लगा किन्तु सावित्री नहीं जानती थी कि महेन्द्र को यह रूप प्रदान करने में मुख्य भूमिका उसी की रही है। उसी के द्वारा बार.बार अपमानित अनादृत होने के कारण महेन्द्रनाथ कुढ़नशील व्यक्ति बना और उसमें हीनताबोध जाग्रत हुआ। सावित्री जुनेजा के इस तर्क को काटती हुई कहती है कि उसने महेन्द्र के आसपास घटित होने वाली बातों की ओर ध्यान नहीं दिया तो जुनेजा उसके इस आरोप का भी खंडन करते हुए कहता है–

व्याख्या – तुम्हारा कहना ठीक ही है। तुम यही समझ सकती हो किन्तु वास्तविकता यही है कि मैनें महेन्द्र को देखने समझने के साथ ही उसके परिवेश को भी खूब अच्छी तरह देखा समझा है। मैने यही देखा है कि तुम्हारी महत्वाकाक्षांएं इतनी असीमित है कि तुम उन्हें अपनी सीमित मुट्ठी में भर ही नहीं सकती किन्तु तुमने हर बार यही प्रयत्न किया कि तुम्हारी आकांक्षाएं तुम्हारे कब्जे में रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि तुम्हारी मुट्ठी सदैव खाली ही रही और यही खालीपन तुम्हें जीवनभर डसता रहा। तुम्हारी इसी आकांक्षा पूर्ति की इच्छा के कारण उस मुट्ठी में कुछ जुड़ तो पाया नहीं, जो कुछ था वह उसमें से धीरे.धीरे फिसलकर तुमसे दूर हो गया। अर्थात् जो कुछ तुम्हें

प्राप्त था – पति के रूप में– वह भी तुमसे विमुख हो गया। अनगिनत पुरूषों के संसर्ग ने तुम्हें एक भटकाव की स्थिति में डाल दिया और तुम मूर्ख बनी भटकती रही। तुम्हारा ध्यान घर से हट गया जिससे घर में सदैव अशांति रहने लगी और एक अच्छे खासे परिवार को घुटन भरे वातावरण में जीने को विवश होना पड़। महेन्द्रनाथ भी, जो तुम्हें हृदय से प्यार करता था और अभी भी करता है तुम्हारे बदले चरित्र और आवारापन के कारण तुमसे खिन्न रहने लगा। एक ओर तुम्हें बाहर से बार.बार असफलता मिलती रही और दूसरे घर में भी तुम्हारी वह स्थिती अब नहीं रह गयी थी। इससे तुम्हारे मन में एक अनजाना भय भर उठा। धीरे.धीरे यह भय बढ़ता गया और आंशकित होकर तुम कभी अपने को घर से सम्बद्ध करने लगी और कभी घर से कटकर बाहर के लोगों से स्वयं को जोड़ने लगी और इस प्रकार अपना बचाव करती रही। आशय यह है कि पति की नजरों में गिर जाने के भय से मर्यादा और सम्मान का भय भी तुम्हें होने लगा और तुम घर की ओर ध्यान देने लगी किन्तु दूसरी ओर तुम्हारा अवारापन और तुम्हारी चंचलता तुम्हें बाहरी संसार में खींच ले जानें को सन्नद्ध थी। तुम्हारी स्थिति क्रमशः आतंक में परिवर्तित होता गया और एक दिन तुम पूर्णतः आतंकित हो उठी जब तुमने देखा कि तुम्हारा अंतिम प्रयत्न भी व्यर्थ सिद्ध हो गया। यह अंतिम प्रयत्न तुम्हारी भाव.धारा को ऐसा कुण्ठित कर गया कि तुम्हारा डर आतंक से पूर्णतः ग्रस्त हो गया।

विशेष – जुनेजा ने यहाँ पर सावित्री की महत्वाकांक्षाओ और तज्जन्य अधूरेपन पर बड़ा ही सुन्दर और तीक्ष्ण कटाक्ष किया है। अनेक पुरूषों के सम्पर्क में आने पर वह भले ही स्वयं को गौरवान्वित समझती रही किन्तु उसने वास्तव में उसे चरित्रहीन और अवारा बना दिया था। वह बाहर और घर दोनों ही जगह लोगों की दृष्टि में गिर गयी। इसी भय से मुक्ति पाने हेतु उसने मनोज नामक युवक से सम्पर्क बढ़ाया और उसके साथ जीवन जीने की कल्पना की किन्तु उसकी कल्पना का महत्व तब ढह गया जब उसने देख कि उसका प्रेमी उसकी स्वयं की बेटी बिन्नी को भगाकर ले गया है और सावित्री की अपूर्णता पर एक कील और लग गयी।

गद्यांश 15 ''मैंने आपसे कहा है न बस सब के सब .... सब के सब एक से। बिलकुल एक से है आप लोग। अलग.अलग मुखौटे, पर चेहरा ? चेहरा सबका एक ही।''

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग – जुनेजा सावित्री के चरित्र को स्पष्ट करते हुये कहता है कि सावित्री ने जब और कोई चारा नहीं देखा तो अन्ततः अपने पुराने प्रेमी जगमोहन को घर बुलवा लिया और उसके साथ बाहर जाकर उससे यह अनुरोध किया कि उसके साथ शेष जीवन व्यतीत करना चाहती है और यह जगमोहन ने कहा होगा कि अब समय निकल चुका है। और इस प्रकार उसने सावित्री को टाल दिया तथा सावित्री फिर उसी घर में लौट आयी जिसे कुछ ही समय पूर्व छोड़ गयी थी। जुनेजा के इस प्रत्यक्ष कथन से सावित्री विक्षुब्ध हो उठी और कहने लगी।

व्याख्या – मैं आपसे पहले ही कह चुकी हूँ कि आपसे मैं बहुत कुछ सुन चुकी हूँ और अब आप चुपचाप चले जाइए। आप सभी पुरूष एक जैसे हैं। चाहे वह जगमोहन हो या शिवजीत या आप स्वयं। आप सभी पुरूषों में कोई भेद नहीं है। अपने स्वार्थों तक ही सीमित हैं आप लोग। सबकी मनोवृत्तियाँ एक सी है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप लोगों ने मुखौटे भले ही अलग.अलग ओढ़ रखे हैं किन्तु चेहरा आप सबका एक ही है। किसी में तो कोई अन्तर होता किन्तु मेरा अनुभव बताता है कि अन्दर से आप सब एक जैसे ही हैं।

विशेष –सावित्री के इस कथन में जहाँ उसकी क्षुब्ध मनोदशा का सही आंकलन हो सका है वहा नाटकीय कथ्य भी पूरी तरह उजागर हो गया हैं। वास्वत मे नाटक में सभी पुरूष पात्र मध्यवर्गीय पुरूष की विभिन्न मानसिकताओं के प्रतीक हैं और प्रकारान्तर से एक ही पुरूष की भिन्न.भिन्न मनोदशाओं का उद्घाटन करते हैं। सावित्री के कथन से इस तथ्य की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है।

गद्यांश 16

''फिर भी तुम्हें लगता रहा है कि तुम चुनाव कर सकती हो। लेकिन दाएं से हटकर बांए, सामने से हटकर पीछे, इस कोने से हटकर उस कोने में – क्यों सचमुच कहीं कोई चुनाव नजर आया है तुम्हें? बोलो, आया है नजर कहीं?''

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग – जुनेजा जब सावित्री से यह बात कहता है कि सावित्री की असीमित आकांक्षाओं ने ही उसे अनेक पुरूषों के मध्य भटकाया और पति के रूप में उसे जो कुछ प्राप्त था भी, वह भी उससे छूट गया तो सावित्री विक्षुब्ध होकर कहती है कि तुम सभी पुरूष एक ही मनोवृत्ति के हो। किसी में कोई भेद नहीं और इसलिए अब आप चलें जाएं। सावित्री की इस स्वीकारोक्ति को सुनकर जुनेजा पुनः कटाक्ष करते कहता है –

व्याख्या – मुझे आश्चर्य इसीलिए हो रहा है कि इतना सब कुछ जानते हुए भी तुम सदैव यही सोचती.समझती रही हो कि अभी भी तुम अपने जीवन के हित में कोई फलदायक चुनाव कर सकती हो। किन्तु क्या तुमने अपने परिवेश पर भी ध्यान दिया? तुम्हारा परिवेश इस प्रकार का चुनाव करने के उपयुक्त है भी या नहीं, यह तुमने सोचा तक नहीं। इसका कारण यह है कि तुमने जिस पुरूष से भी संसर्ग बढ़ाया, कालान्तर में तुम्हें वही पुरूष आधा.अधूरा लगा और तब तुमने सोचा कि अरे, यह तो उसी पिछले पुरूष को मुखौटा है। हर बार तुम्हें यही अनुभूति हुई और इसीलिए तुम कभी भी कोई निर्णय नहीं सकीं। निर्णय लेने की स्थिति ही तुम्हारी नहीं रही। अब स्थिति बदल चुकी है कि तुम चाहो भी तो निर्णय लेने का साहस नहीं जुटा सकतीं।

विशेष –जुनेजा के शब्दों में नाटककार ने यहाँ पर सावित्री की स्थिति को पूर्णतः अनावृत रूप मे प्रस्तुत कर दिया है। सावित्री दूसरों को अपूर्ण समझती रही है और प्रत्येक पुरूष उसे दूसरे का मुखौटा ओढ़े हुए दिखायी दिया है किन्तु वास्तव में वह नहीं जानती कि आधी.अधूरी तो वह स्वयं है और इसीलिए पूर्णता की तलाश में भटकती रही है।

गद्यांश 17

"तुम्हारा घर है। तुम बेहतर जानती हो। कम से कम मानकर यही चलती हो। इसीलिए बहुत कुछ चाहते हुए भी मुझे और कुछ भी सम्भव नजर नहीं आता और इसीलिए फिर एक बार पूछना चाहता हूँ तुमसे क्या सचमुच किसी तरह तुम उस आदमी को छुटकारा नहीं दे सकतीं।"

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग – जुनेजा और सावित्री में बहस चल ही रही थी कि तभी सावित्री की छोटी बेटी किन्नी अन्दर से दरवाजा खटखटाने लगी और दरवाजा खोलने को कहने लगी। बिन्नी के पूछने पर कि क्या दरवाजा खोल दिया जाय, सावित्री स्पष्ट मना कर देती है। उसी समय जुनेजा कहता है कि दरवाजा खोल दो और सावित्री विक्षुब्ध होकर उसे फटकारती हुई कहती है कि यह मेरा घर है और मैं आपसे अधिक अच्छी तरह अपने घर के विषय में जानती हूँ। सावित्री के कथन के प्रत्युत्तर में जुनेजा कहता है –

व्याख्या – यह ठीक है, यह घर तुम्हारा ही है और अपने घर के विषय में तुम मुझसे अधिक अच्छी तरह जानती हो। कम से कम तुम्हें लगता तो ऐसा ही है कि तुम घर के प्रति अत्यधिक जागरूक हो। व्यंग्यार्थ यह है कि यदि तुमने इस घर को अपना घर समझा होता तो आज यह नौबत ही क्यों आती कि तुम्हारे पति का तुमसे समझौता कराने मुझ जैसे बाहरी व्यक्ति को इस प्रकार आना पड़ता। तुम्हारे इसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण चरित्र को समझ लेने के बाद अब मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि मैं तुम्हें लाख समझाऊँ किन्तु अपने उद्देश्य में कदापि सफल नहीं हो सकता और न ही मुझे अब यह सम्भव लगता है कि तुम दोनों पति.पत्नी के बीच में किसी प्रकार का रागात्मक अनुभूति का समझौता हो सकेगा। इसीलिए यद्यपि मैं तुमसे पहले भी यही प्रश्न पूछ चुका हूँ, मैं फिर से यही पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी भी तरह तुम महेन्द्रनाथ को अपने प्यार की मरीचिका से मुक्त नहीं कर सकतीं? आशय यह है कि अब परिस्थितियाँ इतनी बदल चुकी है कि तुम दोनों का साथ.साथ रह सकना सम्भव नहीं रह गया है, ऐसी स्थिति में क्या यही अच्छा नहीं रहेगा कि तुम महेन्द्रनाथ को त्याग दो?

विशेषः–सावित्री के चरित्र पर बड़ा सटीक और सशक्त प्रहार यहाँ पर जुनेजा के माध्यम से नाटककार ने किया है। अपनी इसी यथार्थता के कारण इस नाटक को श्रेष्ठ स्वीकारा जाता है।

गद्यांश 18

''इसलिए कि आज वह अपने को बिलकुल बेसहारा समझता है। उसके मन में यह विश्वास बिठा दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी उसके लिए जिन्दगी में तुम्हारे सिवा कोई चारा, कोई उपाय नहीं है और ऐसा क्यों इसीलिए किया तुमने कि जिन्दगी में और कुछ हासिल न हो, तो कम से कम यह नामुराद मोहरा तो हाथ में बना ही रहे।''

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– जुनेजा सावित्री से यह अनुरोध करता है कि चूंकि अब यह निश्चित हो गया है कि महेन्द्र और सावित्री के मध्य कोई समझौता नहीं हो सकता और न ही उनके पूर्ण रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो सकते है। इसलिए अच्छाई इसी में है कि सावित्री महेन्द्रनाथ का परित्याग कर दे। जुनेजा के इस कथन को सुनकर सावित्री उससे कहती है कि वह बार.बार इस बात को क्यों और किस उद्देश्य से कह रहा है ? तब जुनेजा प्रत्युत्तर में कहता है–

व्याख्या–मैं तुमसे महेद्रनाथ को अपने प्यार से मुक्त कर देने के लिए इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि वह आज तुम्हारे बिछोह में स्वयं को निराश्रित समझ बैठा है। उसे लगता है कि अब उसका कोई नहीं रह गया है और यह निराश्रय की भावना तुम्हीं ने उसके मन में कूट.कूट कर भर दी है क्योंकि तुमने उसे यह विश्वास दिला दिया है कि उसकी सब कुछ तुम्ही हो और तुम्होरे अतिरिक्त उसे आश्रय देने वाला और कोई नहीं है। तुमने उसके मन यह विश्वास क्यों भर दिया इसके पीछे भी तुम्हारी स्वार्थी मनोवृत्ति ही कार्यरत रही है क्योंकि तुम सदैव यही सोचती रही हो कि जीवन में इतने पुरुषों के संसर्ग के बावजूद दुर्भाग्य से यदि कोई उपयुक्त व्यक्ति तुम्हें न मिल सका तो यह उपेक्षित व्यक्ति तो सदैव पति के रूप में बना ही रहेगा और कि इसके रहते तुम्हे समाज में पत्नी के रूप में ही स्वीकारा जायेगा, कोई तुम्हें कुलटा या चरित्रहीन नहीं कह पायेगा। बस इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु तुमने यह नाटक महेन्द्र के साथ रचा है।

विशेष–जुनेजा के माध्यम से नाटककार ने सावित्री की मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्र इस पंक्तियों में प्रस्तुत कर दिया है और यह स्पष्ट कर दिया कि अपने त्रिया.चरित्र के बल पर उसने महेन्द्रनाथ को मूर्ख बना रखा है और उसे यह विश्वास दिला दिया है कि उसकी जो कुछ है, सावित्री ही है, उसके अतिरिक्त उसका प्रिय पात्र कोई भी नहीं हैं।

गद्यांश 19

''वह कमजोर है, मगर इतना कमजोर नहीं है। तुमसे जुड़ा हुआ है, मगर इतना जुड़ा हुआ नहीं है। उतना बेसहारा भी नहीं है जिसना वह अपने को समझता है। वह ठीक से देख सके, तो एक पूरी दुनिया है उसके आस.पास। मैं कोशिश करूंगा कि वह आंख खोलकर देख सके उसे।''

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित 'आधे.अधूरे' नाटक से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग– जुनेजा का कहना है कि सावित्री ने महेन्द्रनाथ को इस बात का विश्वास दिला दिया है कि वह उसकी सर्वाधिक हितेषिणी है और उसके अतिरिक्त इस समस्त संसार में उसका कोई हितैषी नहीं हैं। वह सावित्री के बिना पंगु और निराश्रित है। इस पर सावित्री कहती है कि वह ठीक है और अच्छाई इसी में है कि जुनेजा इस बात को महेन्द्रनाथ से जाकर कहे। वह यहाँ तक कह देती है कि वह महेन्द्र को अपने पास ही रखे, उसे उसकी कोई आवश्यकता नहीं है और न ही यह स्वयं महेन्द्रनाथ के हित में है। सावित्री के इस कथन के प्रत्युत्तर में जुनेजा कहता है–

व्याख्या– ठीक है, जब तुम्हें अपने पर इतना ही दम्भ है तो महेन्द्रनाथ अब इस घर में कभी नहीं आयेगा। मैं मानता हूँ कि वह हर्दय से दुर्बल है किन्तु जितना तुम समझती हो उतना दुर्बल नहीं है। तुम्हारे प्यार से वह बंधा हुआ भी है किन्तु ऐसा जकड़ा हुआ भी नहीं है कि उससे मुक्त ही न हो सके। मैं उसे उतना निराश्रित भी नहीं समझता, यद्यपि स्वयं महेन्द्रनाथ को यह गलतफहमी है कि वह निराश्रित है। मैं अभी जाता हूँ और उसे समझाने का पूरा

प्रयत्न करूंगा क़ि वह अपने में सुधार करे और जो एक विस्तृत परिवेश उसके सामने है उसे वह देख सके और अपने को उस परिवेश से सम्बद्ध कर सके। मैं पूरा प्रयास करूंगा कि मैं उसे उसकी अस्मिता से परिचित करा सकूँ और इस प्रकार तुम्हारे दम्भ को तोड सकूँ।

विशेष–जुनेजा के माध्यम से यहाँ पर सावित्री के परिप्रेक्ष्य में महेन्द्रनाथ के व्यक्तित्व का भी पूर्ण आकलन.उद्घाटन हो गया है। महेन्द्रनाथ वास्तव में सावित्री को अत्यधिक प्यार करता है और उसके बिना अपने को निराश्रित समझता है, इस तथ्य का उद्घाटन यहीं पर हुआ है। इस प्रकार जुनेजा का यह सम्वाद नाटक में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. गिरिश रस्तोगी – 'मोहन राकेश और उनके नाटक'
2. डॉ. नगेन्द्र – 'आधुनिक हिन्दी नाटक'
3. गिरिश रस्तोगी – 'समकालीन. नाटककार'
4. गिरिश रस्तोगी – 'समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच'
5. अब्दुल सुभान– 'मोहन राकेश के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन'
6. सम्पादक धीरेन्द्र शुक्ल – 'हिन्दी नाट्य परिदृश्य'
7. सम्पादक धीरेन्द्र शुक्ल – 'हिन्दी नाटक और रंगमंच'
8. प्रमिला सिंह – 'आधुनिक हिन्दी नाटक'
9. शान्ति मलिक– 'भारतेन्दु युग के नाटकों की शिल्प विधि'

बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1– सत्य/असत्य लिखिए–

अ–सत्य ब–असत्य स–सत्य द–सत्य इ–सत्य

उत्तर 2– (1) 'आषाढ़ का एक दिन' सन् 1958 में प्रकाशित।
(2) 'लहरों के राजहंस' सन् 1966 में प्रकाशित।
(3) 'आधे.अधूरे' सन् 1969 में प्रकाशित।

उत्तर 3– 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम – कालिदास, मल्लिका, अम्बिका और विलोम

उत्तर 4– '–'लहरों के राजहंस' नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम – नन्द, सुन्दरी, श्यामांग

उत्तर 5– 'आधे.अधूरे' नाटक पर लेखक को संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था

1.4 मोहन राकेश का नाट्य चिन्तन

उत्तर 1–उचित कथनों पर सही/गलत लिखिए–

1 सही 2 सही 3 गलत 4 गलत
5 सही 6 गलत 7 सही

उत्तर 2– नाटक के लिए रंगमंच का महत्व स्वीकार करते हुए मोहन राकेश ने लिखा है– "लिखा गया नाटक एक हड्डियों के ढाँचे की तरह है जिसे रंगमंच का वातावरण ही मासंलता प्रदान करता है।"

उत्तर 3– दर्शकों के विषय में मोहन राकेश का कहना है –"दर्शक वर्ग में गम्भीर रंगमंच के संस्कार न होना अपने में कोई बहुत बड़ा तर्क नहीं है, क्योंकि यह संस्कार धीरे–धीरे चाहे विकसित हों, अपने आप विकसित नहीं होगा। उसके लिए जैसे–तैसे यह सम्भव बनाना ही होगा कि हमारे रंग प्रयोग एक विस्तृत दर्शक समुदाय तक पहुँच सकें।"

1.5 'आधे.अधूरे' के वस्तु विधान का केन्द्र बिन्दु

उत्तर 1– 'आधे.अधूरे' की वस्तु.योजना का वर्ण्य.विषय एवम् केन्द्र मध्य वर्ग से विघटित होकर निम्न वर्ग की ओर अग्रसर हो रहे नगरीय परिवार है। इसमें ऐसे परिवार के आत्म.कुण्ठाओं, हीनताओं आदि से भरे खटटे एवम् कडुवे

जीवन का चित्रण किया गया है। इस वर्ग की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यहाँ अपनी गलती कोई भी स्वीकार नहीं करना चाहता। स्वयं के अधूरेपन को न तो कोई स्वीकारना ही चाहता है, और न उसे दूर कर अन्यों के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहता है। वह स्वयं अधूरा है, पर उसे दूसरे का अधूरापन सहा नहीं है। परिणाम स्वरूप परिवार अभिशप्त होकर, पारस्परिक अविश्वासों से भरकर अनवरत बिखरते जा रहे है। इस प्रकार का ही एक परिवार वस्तु.योजना का वर्ण्य.विषय एवम् केन्द्र है।

1.6 नाटक के तत्व एवम् शिल्प में अन्तर

उत्तर 1–कथावस्तु, पात्र एवम् चरित्र.चित्रण, सम्वाद.योजना, भाषा शैली, वातावरण तथा उद्देश्य आदि नाट्य तत्व के अन्तर्गत आता है।

उत्तर 1– नाट्य तत्व का सीधा सम्बन्ध रंग.योजनाओं, वस्तु.स्थितियों की अभिव्यक्तियों, साज.सज्जा और उसके द्वारा विश्वस्त वातावरण की सृष्टि और मंचीय प्रक्रियाओं के साथ ही रहा करता हैं। उसमें रंग और प्रकाश की व्यवस्था भी आ जाती हैं। वे संकेत एवम् क्रियाएँ भी आ जाती हैं जो अन्तः.बाह्य पात्रीय एवम् नाटकीय स्वरूपों को और स्थितियों को उजागर करती हैं।

1.7 रंग योजना

उत्तर 1–सत्य/असत्य लिखिए–

1) सत्य
2) असत्य
3) सत्य
4) सत्य

1.8 दृश्य योजना

उत्तर 1– सत्य/असत्य लिखिए–

1) सत्य
2) सत्य

उत्तर 2– 'आधे.अधूरे' की दृश्य .योजना एक निम्न.मध्य.वर्गीय जीवन के घर का सजीव प्रतीक है।

उत्तर 3– **हाँ**

उत्तर 4– 'आधे.अधूरे' की दृश्य .योजना बाह्य स्थितियों के साथ.साथ अपने व्यापक प्रतीकात्मक मुहावरे के रूप में उससे भी कहीं अधिक वहाँ रहने वाले लोगों की अन्तः विभाजित.स्थितियों एवम् टूटन.विद्रूपता का भी द्योतक है और यही इस शिल्प की एक अभिनव सर्जक कल्पना एवम् सार्थकता है।

उत्तर 5– नाट्य.योजना और उसके दृश्य .विधान का आधार तीन भिन्न दिशाओं में खुलने वाले दरवाजों वाला एक ही कमरा है।

उत्तर 6– 'आधे.अधूरे' नाटक को अनेक बार बंद और खुले मंच पर मंचित करने वाले ओम् शिवपुरी के विचार हैं– 'आधे.अधूरे' का कार्य.स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफा, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, फाइलें आदि है। यह कमरा एक समय साफ.सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पर धूल की तह जम गई है। काकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गयी है। परिवार का हर एक सदस्य एक.दूसरे से कटा हुआ है, घर की हवा तक में उस स्थायी तल्खी की गंध है, जो पांचों व्यक्तियों के मन में भरी है– ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप..... दम घोंटने वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है"

1.9 प्रकाश योजना एवम् संगीत

उत्तर 1– रंग.शिल्प की दृष्टि से सजीवता और प्राणवत्ता प्रदान करने वाले तत्व होते है– ध्वनि, प्रकाश और पार्श्व. संगीत।

उत्तर 2– नाटक के पात्रों या परिवार के सदस्यों से सम्बन्धों की अलहदगी, घुटन, टूटन, बिखराव और विघटन आदि की विद्रूप स्थितियों को उभारने के लिए नाटकाकार ने खण्डहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत, लड़के का काटी तस्वीर को बड़े.बड़े टुकड़ों में कतरना, प्रकाश आकृतियों पर धुंधला कर कमरे के अलग.अलग कोनों में सिमटता विलीन होता हुआ– अंधेरे के साथ.साथ संगीत का रूकना और कैंची की चक्.चक्.चक् आदि तरह के प्रकाश एवम् संगीत का सहारा लिया है

उत्तर 3– कथानक के अन्त में मातमी संगीत के अधिक स्पष्ट होने और अन्धेरा अधिक गहराने से यह स्थिति उभर कर आती है कि पात्रों को अन्तिम नियति के रूप में गहराते अन्धेरे और मातमी विद्रूपता के सिवाए अन्य कुछ प्राप्त नहीं हो पाता। एक विवशता, एक मूक समझौता, एक अविश्वस्त अनिश्चितता, जो कि आधुनिक निम्न.मध्य.वर्गीय परिवरों की नियति बन चुकी है– सशक्त ढंग से उभर आते हैं।

1.10 भाषा एवम् ध्वनि

उत्तर 1– 1) अ– महेश आनन्द ने

उत्तर 2– नाटककार के कथ्य के अन्तराल के अनुरूप पात्रों की अन्तरात्मा को उभारने के लिए नितान्त बोलअचाल के आमफहम के ध्वन्यात्मक शब्दों का सहज प्रयोग किया है।

उत्तर 3– अपने समग्र रूप, परिवेश, नाद.ध्वनि आदि सभी दृष्टियों से भाषा नाटक की स्थितियों, पात्रों की अन्तःबाह्य क्रियाओं के साथ सीधी जुड़ी हुई है।

उत्तर 4– 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा पर महेश आनन्द ने लिखा है –'आधे.अधूरे' में भी मुख्य भूमिका शब्दों की है ...बोल चाल की भाषा होते हुए भी वह हरकत की भाषा है। नाटक के प्रत्येक शब्द का सम्बन्ध पात्रों की क्रियाओं के साथ जुड़ा है...नाटक के शब्द स्वयं हरकत करते हुए मालूम होते है। यही कारण है कि प्रत्येक पात्र दर्शक के सामने अपने.आप खुलता जाता है।''

उत्तर 5– 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा के सम्बन्ध में रंगशिल्पी ओम् शिवपुरी ने लिखा है– ''कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके । शब्दों का चयन, उनका कमन, उनका संयोजन सब कुछ ऐसा है, जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्ति करता है। लिखित शब्द की यह शक्ति और उच्चरित ध्वनि.समूह का यही बल है, जिसके कारण नाट्य. रचना बन्द और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मोहन बनाये रख सकी''

1.11 पात्र योजना

उत्तर 1– नाटककार ने स्पष्टतः पात्रों को कोई नाम न देकर (यद्यपि बाद में नाम भी आ जाते हैं) भी एक नया प्रयोग किया है। क्योंकि नाटककार व्यक्ति या व्यक्तियों के विशिष्ट नामों को महत्व नहीं, बल्कि 0परिवेश. परिस्थितियों में पलने वाले सामूहिकता, सामाजिकता या वर्गीय स्थितियों को देना चाहता हैं। इस दृष्टि से निश्चय ही नाम देने या ना देने से कोई अन्तर नहीं पड़ता है।

उत्तर 2–दिग्दर्शक और अभिनेता ओम् शिवपुरी ने मोहन राकेश की पात्र योजना के अद्भुत और विशिष्ट कौशल से पूर्ण मानते हुए लिखा है कि –''एक दूसरे अनुभव की समानता का दिग्दर्शन है। इसके लिए नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पाँच पृथक भूमिकाएँ निभाये जाने की दिलचस्प रंगयुक्ति का सहारा लिया है। महेन्द्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रख देने से या जगमोहन के स्थान पर जुनेजा को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के ढॉंचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बर्ताव करता है''

1.12 'आधे.अधूरे' की प्रमुख प्रस्तुतियां

उत्तर 1–

1) ब– 'दिशांतर' नाटककार मोहन राकेश के परिकल्पना के अनुसार

2) अ– अमाल अल्लाना

3) द – अमाल अल्लाना

4) स– ओम शिवपुरी

उत्तर 2– राजिन्दर नाथ, एम.के. रैना, सुशील चौधरी, राजेंद्र गुप्त, अलखनंदन और हरीश भाटिया आदि निर्देशकों को एक ही कलाकार द्वारा पॉच भूमिकाएँ निभाने की युक्ति पर आपत्ति थी जिनके कारण उन्होंने पॉचों पुरूष भुमिकाओं के लिए अलग.अलग कलाकारों के प्रयोग किए।

इकाई – 2 नाट्य तत्वों की दृष्टि से 'आधे.अधूरे'

2.3 'आधे.अधूरे' का देशकाल

उत्तर 1– रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए–

10) स्थान, समय

2) वातवरण

3) देशकाल

4) देशकाल

5) समकाल,

6) बाह्य, आन्तरिक

उत्तर 2– 'आधे.अधूरे' में रचनाकार ने मध्य या निम्नमध्य वर्ग तथा उसकी आर्थिक काम विषयक स्थितियों के साथ.साथ जीवन के कुछ अन्य क्षेत्रों और उसकी सच्ची परिस्थितियों को भी बड़े समर्थ और यथार्थ रूप में अंकित करता है। आज के युग में प्रायः सर्वव्यापी का दुरुपयोग, अधिकारी वर्ग का अधीनस्थ नारी.कर्मचारी को दिल बहलाव का साधन मानना और अधीनस्थ नारी का अपना उल्लू सीधा करने के लिए अधिकारी को रीझाना, खुशामद करना, युवा वर्ग में व्याप्त विरोध, विद्रोह का भाव, हरामखोरी, एकाकीपन, बड़ों का मजाक उड़ाना, अशिष्टता आदि, नौकरीपेशा नारी और उसकी घर.बाहर की स्थिति, पाश्चात्य वातावरण, विसंगति भरा अन्धानुकरण, विद्यालयों का प्रतिकूल वातावरण, पड़ौसी.सम्बन्ध व्यक्तिगत और पारिवारिक दोनों ही स्तरों पर जिया.भोगा जाने वाला कुण्ठामय वातावरण आदि इसके कुछ सशक्त प्रमाण है।

2..4 'आधे.अधूरे' के पात्र : मध्यम वर्ग के प्रतीक

उत्तर 1–सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए–

1) द– 12

2) ब– शिवजीत तथा मनोज

3) स– मध्यवर्ग

4) अ– 3

5) द– किन्नी

2..5 'आधे.अधूरे' के नामकरण की सार्थकता

उत्तर 1– नाटक के नामकरण का प्रमुख आधार निम्न होता है–

नाटक के प्रमुख पात्र

नाटक की महत्वपूर्ण घटना

स्थान विशेष

कथावस्तु की मूल संवेदना अथवा केन्द्रीय भाव

नाटक का उद्देश्य

उत्तर 2– 'आधे.अधूरे' नाटक के नामकरण का आधार कथावस्तु की मूल संवेदना अथवा केन्द्रीय भाव है। नाटक में एक ऐसे शहरी परिवार को प्रस्तुत किया गया है जिसके सभी पात्र आधे.अधूरे हैं और इसी कारण परिवार तनाव की स्थितियों से गुजरता हुआ विघटन की ओर अग्रसर हो गया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि ये पात्र अपने आधे.अधूरेपन को दूसरे पर थोप देना चाहते हैं और इसी प्रतिक्रिया.स्वरूप पूरेपन की तलाश में भटकते हैं। आधा. अधूरापन ही नाटकीय कथा की मूल संवेदना है और नाटककार ने इस आधे.अधूरेपन को नाटक के प्रायः सभी चरित्रों में प्रस्तुत किया है।

2..6 'आधे.अधूरे' की सम्वाद योजना

उत्तर 1– सामान्यतः किसी रचना विशेषतः नाट्य रचना में पात्रों द्वारा किया गया पारस्परिक अथवा स्वगत संलाप ही सम्वाद कहलाता है।

उत्तर 2– सम्वाद को नाट्य रचना का तो प्राण तत्व माना जाता है क्योंकि कथा या घटना का प्रस्तुतिकरण, पात्र या पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उदघाटन एवम् स्वयं नाटककार का समस्त कथ्य इसी के माध्यम से प्रकट हुआ करता है।

उत्तर 3– शास्त्रीय दृष्टि से सम्वाद के कथानुकूलता, पात्रानुकूलता, स्वाभाविकता, उद्देश्यपूर्णता, सम्बद्धता, मनोवैज्ञानिकता और सब मिलाकर अभिव्यंजकता आदि इसके अनिवार्य गुण माने गये है।

उत्तर 4– 'आधे.अधूरे' के स्वगत या लम्बे सम्वाद को अनाटकीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि दीर्घ सम्वाद एकदम भावना और संवेदना से परिपूर्ण बनाए गए हैं। इनकी सबसे बड़ी उपलब्धि भाव.निवृत्ति है या सम्बोधित पात्र में सही किस्म की प्रतिकिया पैदा करना। इनका प्रेक्षक पर एक समग्र प्रभाव पड़ता है। रंगमंच पर इन्होंने अपने को पूरी तरह सार्थक सिद्ध किया है। वस्तुतः ये सम्वाद पाठक प्रेक्षक को भाव।नात्मक स्तर पर इतना ऊंचा उठा लेते है और उसकी चेतना का इतना विस्तार हो जाता है कि उस समय वह स्वगत या लम्बे सम्वाद को स्वाभाविक रूप में स्वीकार कर लेता है।

उत्तर 5 'आधे.अधूरे' नाटक के सम्वादों की एक प्रमुख भाषागत विशेषता लय–सक्षमता के सम्बन्ध में डॉ. गोविन्द चातक की धारणा है कि– 'आधे.अधूरे' के सम्वाद लय की दृष्टि से सबसे अधिक सक्षम है। वहाँ शब्दों और वाक्यों की लय, एक सम्वाद और दूसरे सम्वाद का परस्पर संघात, पात्रों का बोलने का लहजा, वाक्य विन्यास, शब्द क्रम सब मिलकर अद्भूत वाग्प्रवाह पैदा करते हैं। 'आधे.अधूरे', की भाषा इसलिए एकदम जबान पर चढ़ती है।''

उत्तर 6– 'आधे.अधूरे' के सम्वादों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है–कथा और पात्रानुकूलता। जहाँ तक प्रश्न है कथानुकूलता का तो ये एक ओर कथा.प्रसंग को प्रकट करते है तो दूसरी ओर उसको गति भी प्रदान करते है। इसी भांति, एक ओर यदि इनकी भाषा और आकार एकदम पात्रानुकूल रखे गये हैं तो दूसरी ओर इनके माध्यम से किसी न किसी पात्र की कोई चारित्रिक विशेषता भी उजागर हो जाती है। महेन्द्रनाथ.सावित्री के लड़ाई विषयक, बिन्नी. जुनेजा के घर की पूर्वस्थिति विषयक, अशोक.बिन्नी के सिंघानिया विषयक, एवम् सावित्री जुनेजा के महेन्द्रनाथ विषयक सम्वाद इसके उत्कृष्ट प्रमाण है।

2.7 'आधे.अधूरे' की भाषा

उत्तर 1– 'आधे.अधूरे' नाटक की भाषा विशिष्ट गुणों के कारण ही इतनी भाव सबल और सम्प्रेषणीय है। निम्न गुण नाटक में सर्वत्र उपलब्ध होते है–

1.सरलता,रोचकता एवम् सुबोधता।

2. प्रवाहमयता।

3. पात्रानुकूलता।

4. निषयानुकूलता।

5.व्यंग्यात्मक।

6. ध्वन्यात्मकता।

7. आधुनिक बोध।

8. स्पष्टता।

9. मुहावरों का शिष्ट प्रयोग।

उत्तर 2– इस नाटक में अर्थ.व्यंजना को अधिक भास्वर बनाने एवम् सीमान्त अश्लीलता के वाचिक प्रयोग से बचने के लिए अधिकांश स्थलों पर बिन्दु चिन्हों के द्वारा अर्थ को व्यंजित किया है।

उत्तर 3– 'आधे.अधूरे' नाटक में मुख्य रूप से तीन सी शैली प्रयुक्त हुई है यथा– नाटकीय शैली, यर्थाथवादी शैली और विश्लेषणात्मक शैली।

उत्तर 4– नाटक में कुछ देशज शब्दों का प्रयोग भी नाटककार ने किया हैं कुछ उदाहरण –ढर्रा, चिढ, मुनिया, चख.चख, किट्.किट्, लोदा, खीझना, तिलमिलाना आदि।

उत्तर 5– नाटक में प्रयुक्त कतिपय मुहावरे इस प्रकार है– हेर–फेर करना, जिदगी काटना, ठिकाने लगााना, मुंह दिखाना, जिन्दगी गुम होना, होश आना, घुल–घुलकर मरना, चोट पहुचाना, जान को राग लगाना, मन का गुबार निकालना, मारा.मारा फिरना, जबान खोलना, रासें कसना, मन का गुबार निकालना, जिन्दगी का भार ढोना, जिन्दगी की कमाई, जिन्दगी चौपट करना, हड्डियों में जंग लगना, जानमारी करना, दिन.रात एक करना आदि।

उत्तर 6– सत्य/असत्य लिखिए–

1) सत्य

2) सत्य

3) असत्य

उत्तर 7– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1) महानगरीय

2) ध्वन्यात्मक

3) मनोविश्लेषण

4) तत्भव

5) विश्लेषणात्मक

उत्तर 8– निबन्धात्मक प्रश्न

इकाई – 3 यथार्थवादी दृष्टि एवम् युगबोध के परिप्रेक्ष्य में 'आधे.अधूरे'

3.3 'आधे.अधूरे' की यथार्थवादी दृष्टि

उत्तर 1– पारिवारिक स्तर पर मनोविज्ञान यह मान कर चलता है कि असन्तुलित पति.पत्नी वाले परिवार में जन्मे एवम् पलने वाले बच्चे भी उनके प्रत्यक्ष प्रभाव से अनेक प्रकार की विकृतियों से अनजाने ही ग्रस्त होकर असन्तुलित एवम् असामान्य हो जाया करते हैं। तब उसका अन्तःबाह्य उस विषाक्त वातावरण से छुटकारा पाने के लिए छटपटाटा रहता है और यह छटपटाहट उसे और भी अधिक अस्वाभाविक बना देती है। सहने की भी एक सीमा होती है और उसके बाद विद्रोह! वह भी विद्रूप विद्रोह की स्थिति आ जाती है। फिर सावित्री हो या उसकी बड़ी बेटी बिन्नी, अशोक हो या छोटी किन्नी सभी उसी विद्रूपता में जीते दिखाई देते है और किसी भी प्रकार से तनावों से भी और अन्य बन्धनों से भी छुटकारा पाना चाहते हैं।

उत्तर 2–यान्त्रिकता, बौद्धिकता, आर्थिक विषमता और उस पर अनेकानेक महत्वकांक्षाओं के दबाव– इन सबने मिलकर निश्चय ही आज के व्यक्ति को भीतर की भीतर एकदम खोखला करके रख दिया है। पर व्यक्ति ऐसी मनःस्थिति बना पाने में समर्थ नहीं हो पा रहा है कि वह अपने ही इस यथार्थ को स्वीकार कर ले। तभी तो वह अपना आधा.अधूरापन अन्यों पर थोप करके एक प्रकार की कल्पित सान्त्वना ओढ़ कर सो जाना चाहता हैं। इस भावना ने उसे उग्र एवम् अहंवादी भी बना दिया है। ये अहंवाद यदि उसे अपने अधूरेपन का कभी अहसास करवाता भी है, तो भी वह उसे नकार कर, दूसरों के अधूरेपन को सहन कर पाने में भी अपने.आप को असमर्थ पाता है। अपने अधूरेपन को ढाँपने के लिए वह कहीं अन्यत्र 'पूरे' की तलाश में भटक रहा है। इस कल्पित पूरेपन की तलाश में ही वास्तव में वह अपनों या अपने परिवार से कट रहा है अथवा कट जाना चाहता है। मोहन राकेश के प्रस्तुत नाटक 'आधे.अधूरे' में व्यक्ति के स्तर पर इसी यथार्थ का सजीव बल्कि जीवन्त अंकन हुआ है।

3.5 'आधे.अधूरे' में वर्णित समस्यायें

उत्तर 1–'आधे.अधूरे' नाटक समस्या.नाटक की कोटि मे आता है क्योंकि इसमें चित्रित पात्र प्रायः किसी न किसी समस्या से जकड़े हुए हैं और नाटककार ने समस्याओं में जकड़े इन पात्रों को हू.ब.हू प्रस्तुत कर दिया हैं। समस्याओं को यह यथार्थाभिव्यंजन सचमुच हिन्दी नाटक की एक उपलब्धि है।

उत्तर 2 –'आधे.अधूरे' नाटक में निम्न समस्याएं उठाई गई हैं–

1 महानगरीय मध्यवर्गीय विसंगतियां।

2 आर्थिक दबाव से मुक्ति की समस्या।

3 पारिवारिक विघटनशीलता एवम् तनाव की समस्या।

4 प्रेम विवाह की समस्या।

5 सामाजिक सम्बन्धों के खोखलेपन की समस्या।

6 स्त्री की नौकरी की समस्या।

7 व्यक्ति के आधे.अधूरेपन की समस्या।

8 काम.विषयक मुक्ति की समस्या।

इन समस्याओं के अतिरिक्त पुरूष की बेकारी की समस्या, आवारा.पन की समस्या, अश्लील साहित्य की समस्या और अनुशासनहीनता की समस्या आदि अनेक छोटी.मोटी समस्याओं को भी नाटक में वर्णित किया गया है।

उत्तर 3– रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1) महानगरों

2) विसंगतियों

3) मध्यवर्गीय

4) आर्थिक

5) स्तरीकरण

6) महेन्द्रनाथ

7) आवारगी

MPBOU

SELF LEARNING MATERIAL

म.प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, भोपाल
राजा भोज मार्ग, कोलार रोड, भोपाल